

महासती द्वय स्मृति ग्रंथ

साध्वी श्री चन्द्रप्रभा
एस.ए.

महासती द्वय स्मृति ग्रंथ

[अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कानकुवंर जी म. सा.
एवं
परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवंरजी म. सा.
की
पावन स्मृति में प्रकाशित]

1647



प्रधान सम्पादिका
साध्वी चन्द्रप्रभा, एम. ए., साहित्यरत्न



प्रबंध सम्पादक
डॉ. तेजसिंह गौड़, एम. ए., पी - एच. डी .

प्रकाशक
स्मृति प्रकाशन समिति, ४५, वीरप्पन स्ट्रीट,
साहुकार पेठ, मद्रास - ७९

❧ आशीर्वचन

स्व. आचार्य सम्राट् श्री श्री १००८ श्री आनंद ऋषि जी म. सा.
आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म. सा.
श्र. सं. सलाहकार श्री रतन मुनि जी म. सा.

❧ मार्गदर्शन

उपप्रवर्तक मुनि श्री विनयकुमार जी म. सा. 'भीम'
श्री महेन्द्र मुनि जी म. सा. 'दिनकर'
परमविदुषी महासती श्री उमरावकुवर जी म. सा. 'अर्चना'

❧ प्रेरणा

सरलमना साध्वी श्री बसन्तकुवर जी म. सा.
विदुषी साध्वी श्री कंचन कुवरजी म. सा., बी. ए.
साध्वी श्री चेतनप्रभा जी म. सा., एम. ए., साहित्यरत्न

❧ प्रधान सम्पादिका

साध्वी श्री चन्द्रप्रभा, एम. ए., साहित्यरत्न

❧ सम्पादक

डॉ. तेजसिंह गौड़, एम. ए., पी. - एच. डी.

❧ संयोजक

श्री रीखबचंद लोढ़ा, मद्रास

❧ मूल्य - १५१/- (एक सौ इक्कावन रुपये मात्र)

श्रावण कृष्ण नवमी, वि. सं. २०४९, २४ जुलाई १९९२

❧ प्रकाशक

स्मृति प्रकाशन समिति,
४५, वीरप्पन स्ट्रीट, साहुकार पेठ,
मद्रास - ६०००७९

❧ मुद्रक

अर्चना प्रकाशन के लिए
रोहित आफसेट, उज्जैन

समर्पण

(१)

जब तक है यह दृश्य सृष्टि का नियति नियंत्रित भू आकाश
कण-कण यो बना रहेगा स्मृतियों का दिव्य प्रकाश॥
जब तक नभ में चन्द्र दिवाकर जब तक अमर रहे यह नाम-
श्री कान - चम्पा के चरणों में करती हूँ शत-शत बार प्रणाम॥

(२)

करुणा की मूर्ति ओ गुरुवर्या लोकोत्तर प्रतिभा साकार।
मन उपवन से चुनकर लायी भावांजली पूरित उपहार॥
शतदल कमल सदृश सुषमा का स्वप्न संजोकर मैं इस बार-
श्रद्धा सुमन समर्पित करती कृपया इसे करो स्वीकार॥

महाश्रमणी रत्न, सरलमन, अध्यात्मयोगिनी सददादगुरुवर्या, शासन प्रभाविका स्व. पू.
महासती जी श्री कानकुंवर जी म. सा. एवं परम विदुषी, प्रखर व्याख्यात्री, आण्णसिद्धा,
सागरवर गंभीरा, क्षमा और शांति के प्रतीक, मेरे आस्था के आयाम, जीवन निर्मात्री
मातृस्वरूपा शासनचन्द्रिका स्व. पू. सद्गुरुवर्या श्री चम्पाकुंवर जी म. सा. के पावन चरणों
में

सादर,
सश्रद्धा,
सद्विषय
समर्पित
समर्पित

* आर्या चन्द्रप्रभा, 'मुम्कली'

प्रकाशकीय

जैन धर्म के इतिहास में साध्वियों की परम्परा बहुत समृद्ध रही है किन्तु खेद का विषय है कि इस परम्परा का सुव्यवस्थित इतिहास उपलब्ध नहीं है। प्राचीन काल को छोड़ भी दें तो वर्तमान काल की साध्वी परम्परा का विवरण भी सुव्यवस्थित रूप से नहीं मिलता है। इसके परिणाम स्वरूप पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से भी इस विषय पर कुछ लिख पाना कठिन है।

गुरुवर्या श्री महासती श्री कानकुंवर जी म. सा. एवं परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. सा. आचार्य प्रवरर श्री जयमलजी म. सा. की परम्परा की देदीप्यमान साध्वीरत्न थी। आपकी गुरुणी सद्गुरुवर्याश्री महासती श्री सरदार कुंवरजी म. सा. का विस्तृत जीवन परिचय भी नहीं मिल पाया है, कुछ अंश में ही उपलब्ध है।

अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुंवरजी म. सा. एवं परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. सा. हमारी विनती को स्वीकार कर मद्रास पधारे, यह हम पर उनका उपकार था। वि. सं. २०४४ से वि. सं. २०४८ तक दोनों ही महासतियाँ जी ने स्वअर्जित ज्ञान को जन-जन में मुक्त हस्त से वितरित किया। इससे जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। हमारे दुर्भाग्य से अल्पकाल में ही महासतीद्वय महाप्रयाण कर गए। यह श्री संघ के लिए अपूरणीय क्षति हुई।

महासती द्वय की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए एक स्मृति ग्रंथ के प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इस ग्रंथ के लिए आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म. सा. श्रमण संघीय सलाहकार श्री रतनमुनि जी म. सा. उपप्रवर्तक मुनि श्री विनय कुमारजी म.सा. 'भीम', श्री महेन्द्र मुनि जी म. सा. 'दिनकर' परम विदुषी महासती श्री उमरावकुंवर जी म. सा. 'अर्चना' महासती श्री बसंत कुंवर जी म. सा., विदुषी महासती श्री कंचनकुंवर जी म. सा., महासती श्री चेतन प्रभाजी म.सा. महासती श्री सुमन प्रभाजी म. सा. एवं महासती श्री अक्षय ज्योतिजी म. सा. का आशीर्वाद मार्गदर्शन, प्रेरणा एवं सहयोग प्राप्त हुआ। इसके लिये मैं सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

साध्वी श्री चन्द्रप्रभाजी म. सा. ने इस स्मृति ग्रंथ की प्रधान सम्पादिका का भार वहन कर ग्रंथ की समस्त सामग्री का सम्पादन संशोधन, परिवर्द्धन, परिवर्तन किया इसके लिये उनके प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ। साथ ही सम्पादन सहयोगी डॉ. तेजसिंह गौड़ यदि कठिन परिश्रम करके देशभर के विद्वान मुनि भगवंतो, विदुषी महासतियाँ जी एवं लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों से सम्पर्क कर लेख प्राप्त नहीं करते तो यह ग्रंथ मूर्तरूप नहीं

ले पाता। इतना ही नहीं डॉ. गौड़ ने सम्पादन में भी पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया और ग्रंथ को पूरी साज-सज्जा के साथ सुन्दर रूप से मुद्रित कर प्रकाशित करवाया। इसके लिए मैं उनके प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ।

यदि अर्थ सहयोगी स्वधर्मी बन्धु उदार हृदय से अर्थ सहयोग नहीं देते तो भी यह ग्रंथ मूर्तरूप नहीं ले पाता। इसलिये मैं सभी अर्थ सहयोगी बंधुओं का भी हृदय से आभारी हूँ।

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ के तैयार होने में जिन-जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग रहा है, उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि भविष्य में जब भी आवश्यकता हो, सभी का इसी प्रकार का सक्रिय सहयोग अवश्य प्राप्त होगा।

इसी कामना के साथ —

अक्षय तृतीया
वि. सं. २०४९

रीखबचन्द लोढ़ा
संयोजक
स्मृति प्रकाशन समिति,
४५, वीरप्पन स्ट्रीट,
साहुकार पेठ, मद्रास - ७९

सम्पादकीय



न साधना पद्धति में बिना किसी जाति और लिंग भेद के आत्म-चेतना के विकास करने का अवसर सभी के लिए है। यही कारण है कि आदि तीर्थंकर भगवान् श्री ऋषभदेव के समय सर्वप्रथम मोक्ष प्राप्त करने वाली माता मरुदेवी थी। उन्हीं के धर्म शासन में आर्या ब्राह्मी और आर्या सुन्दरी हुई। इन्होंने अपने उपदेश से घोर तपस्या में लीन बाहुबलि के मान को चूर किया था। ये दोनों साध्वियाँ भगवान् श्री ऋषभदेव की पुत्रियाँ और बाहुबलि की बहनें थी। बाहुबलि अपनी तपस्या के साथ अहंकार एवं अभिमान में मदोन्मत्त बने हुए थे और संयम में ज्येष्ठ अपने लघु बंधुओं की वंदना के लिए नहीं जा पा रहे थे। वीरा म्हारा गज थकी उतरो - बहनों के ये प्रेरक वचन सुनकर बाहुबलि बाहर से भीतर की ओर मुड़े और उनक अहंकार चूर-चूर हो गया। लघु बंधुओं की वंदना के लिए उनके चरण भूमि से उठ गये और तभी उन्हें केवल ज्ञान हो गया।

उन्नीसवें तीर्थंकर भगवती मल्ली भी एक नारी ही थी, जो अपनी साधना के बल पर तीर्थंकर बनी।

श्री रथनेमि को अपनी साधना से पथ भ्रष्ट होने से बचाने वाली साध्वी राजीमती भी एक नारी ही थी और एक ही रात्रि में केवल ज्ञान प्राप्त करने वाली भी दो नारियाँ ही थीं - एक साध्वी प्रमुखा श्री चन्दनबाला और दूसरी उनकी अन्तेवासिनी साध्वी श्री मृगावती ऐसा प्रसंग अन्यत्र दुर्लभ है।

तत्त्वज्ञ श्राविका जयन्ती का नाम जैन इतिहास में गौरव के साथ लिया जाता है। महारानी कमलावती ने राजा की धन लिप्सा एवं मोह निद्रा को भंग कर प्रतिबोध देकर साधना पथ पर प्रवृत्त किया।

सर्वं जग जइ तुहं, सर्वं वावि घण भवं।

• सर्वं विते अपज्जतं, जे व ताणाय तेतिव॥

उत्तराध्ययन १८/३९

हे राजन्। यदि यह संसार सारा तुम्हारा हो जाए अथवा संसार का सारा धन तुम्हारा हो जाए तो भी ये सब तुम्हारे लिये अपर्याप्त है। यह धन, जन्म, मृत्यु के कष्टों से तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।

सीता, द्रोपदी, दमयंती, अंजना आदि सतियों का जीवन चरित्र हमारी संस्कृति की महान् धरोहर है। आचार्य श्री हरिभद्र सूरि को आचार्य और महामनीषी बनाने का श्रेय

भी नारी याकिनी महत्तरा को ही है। यदि याकिनी महत्तरा नहीं होती तो कितना अनर्थ होता, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यहाँ एक बात का और उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि जब जैन धर्म में समानता की बात आती है तो यह उल्लेख भी मिलता है कि पुत्रियाँ भी अपने पिता की सम्पत्ति में बराबर की अधिकारिणी हैं। इस सम्बन्ध में आदिपुराण का उल्लेख दृष्टव्य है : -

पुत्रयश्च सवि भागहा समं समाशकेः

पर्व ३८/१५४

अर्थात्, पुत्रों की भांति पुत्रियाँ भी सम्पत्ति की बराबर-बराबर भाग की अधिकारिणी हैं।

हमारे देश के ऋषि मुनियों ने नारी की महत्ता को ही ध्यान में रखकर कहा - यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं। या यो कह सकते हैं कि जिस घर में नारी की पूजा होती है अर्थात् सम्मान दिया जाता है वहाँ सुख, समृद्धि और शान्ति रहती है।

ये तो नारी की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले कुछ उदाहरण हैं, जो प्रतीक स्वरूप हैं, यदि हम इतिहास उठकर देखें तो पाते हैं कि नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है और वह कभी भी पुरुष से पीछे नहीं है। साधना के क्षेत्र में भगवान् श्री ऋषभदेव से लेकर आज तक संख्यात्मक दृष्टि से साध्वियाँ अधिक हुई हैं और साधना की दृष्टि से भी वे पीछे नहीं रही हैं। इसी प्रकार श्राविकायें भी श्रावकों से आगे निकली हैं।

जिस प्रकार साधना के क्षेत्र में नारी ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं, उसी प्रकार नारी अन्य क्षेत्रों में भी पीछे नहीं रही है। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सेवा, आर्थिक, क्रीडा आदि समस्त क्षेत्रों में जब भी नारी को कार्य करने का अवसर मिला है, उसने अपने आपको पुरुष से श्रेष्ठ ही सिद्ध किया है। यहाँ अपने कथन की पुष्टि में कोई उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इन क्षेत्रों की विश्व विख्यात नारियों को प्रायः सभी अच्छी प्रकार जानते हैं।

परम श्रद्धेया सदादगुरुवर्य्याश्री अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कानकुवंरजी म. सा. एवं परम पूजनीया सद्गुरुवर्य्याश्री कुशलप्रवचनकर्त्री, परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवंरजी म. सा. दोनों ने ही अपनी साधना की सौरभ से राजस्थान, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु को सुरभित किया। दोनों ने ही स्वअर्जित ज्ञान को मुक्तहस्त से जन-जन में बाँटा।

सद्दादगुरुवर्य्याश्री की सेवा सुश्रुषा विख्यात है। उन्हें दूसरों की सेवा करने में परमानंद की अनुभूति होती थी किन्तु जहाँ तक मुझे याद है उन्होंने कभी भी किसी से अपनी सेवा नहीं करवाई। अपने अंतिम समय में भी वे अपना कार्य स्वयं ही किया करती थी। उनकी प्रवचन शैली भी निराली थी। अपने प्रवचनों में वे शास्त्रीय उद्धरणों के साथ कथा/दृष्टांतों का समावेश किया करती थी। उनका कथा/कहानी सुनाने का अपना ढंग था। कहानी वे अक्सर मारवाड़ी में ही सुनाया करती थी। आपके श्रीमुख से मारवाड़ी में कहानी सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे।

सद्गुरुवर्य्याश्री का समाज के उत्थान के लिये किये जाने वाले प्रयासों, स्वाध्यायशीलता और ओजस्वी प्रवचनकर्त्री के रूप में विशेष स्थान है। अपने प्रवचनों में आप शास्त्रीय उद्धरणों को प्रस्तुत कर उनका बोधगम्य भाषा शैली में विवेचन कर श्रोताओं को भावविभोर कर दिया करती थी। आपकी प्रवचन शैली की विशेषता यह थी कि श्रोता प्रवचन पीयूष का पान करने के लिये स्वतः ही खींचा चला आता था। अवसरानुकूल दृष्टांतों को भी आप अपने प्रवचन में सम्मिलित कर लिया करती थीं। इससे प्रवचन में रोचकता उत्पन्न हो जाती थी।

आप सतत स्वाध्याय करती रहती थी और अपनी शिष्याओं को भी स्वाध्याय के लिए प्रेरित करती रहती थी। ज्ञान प्राप्ति के लिये आप अपनी शिष्याओं को न केवल प्रेरणा दिया करती थी वरन् आवश्यकतानुसार विद्वान पंडितों की भी व्यवस्था करवा दिया करती थी और समय-समय पर आप स्वयं भी अध्यापन किया करती थी। सद्दाद गुरुवर्य्याश्री एवं सद्गुरुवर्य्याश्री दोनों ने ही अपने संयमित जीवन का अधिकांश समय मारवाड़ की धरा पर जैन धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए व्यतीत किया। वि. सं. २०३४ का अपना पाली (मारवाड़) का यशस्वी वर्षावास समाप्त कर जन्मभवन का आदर करते हुए आपश्री ने मध्यप्रदेश की ओर विहार किया। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आपने कटंगी, बालाघाट, दुर्ग, बालोद आदि नगरों में जैन धर्म की ध्वजा फहराई और फिर महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और कर्नाटक में विचरण कर गुरु गच्छ की महिमा में चार चाँद लगाये। कर्नाटक से आपने श्रद्धालु भक्तों के आग्रह को स्वीकार कर मद्रास की ओर विहार किया और वि. सं. २०४४ से अपने अंतिम समय तक साहुकार पेठ मद्रास में विराजकर जिनवाणी का अमृत बरसाया। यहाँ यह स्मरणीय है कि बीच-बीच में सद्दाद गुरुवर्य्याश्री की अस्वस्था भी बनी रही किन्तु इस अस्वस्थता में भी आपने संयम पालन और अपने धर्म-निर्वाह में कहीं कोई शिथिलता नहीं आने दी। इस प्रकार मारवाड़ की पावन धरा पर जन्म लेकर सुदूर दक्षिण भारत में जाकर आप श्री ने जन-जन में जैन धर्म के प्रति अनुराग उत्पन्न किया। आपके अंतिम समय में जिन-जिन भाई-बहनों ने सेवा का लाभ लिया वे साधुवाद के पात्र हैं।

सद्दादगुरुवर्य्याश्री एवं सद्गुरुवर्य्याश्री दोनों ही स्वभाव से सरल, सहज, पर-दुःखकातर, क्षमाशील एवं समताभावी थी। किन्तु संयम पालन में शिथिलता दोनों की ही

स्वीकार नहीं थी। इस विषय में उनका अनुशासन कठोर था। इस कठोरता में भी एक आनंद था। उनका स्नेहभाव सभी पर समान रूप से था।

सद्दादगुरुवर्य्याश्री अपने संयम जीवन के साठ वर्ष पूर्ण करने वाले थे और सद्गुरुवर्य्याश्री चत्वारत्तीस वर्ष। सद्दादगुरुवर्य्याश्री की दीक्षा के साठ वर्ष पूर्ण होने पर उनकी दीक्षा हीरक जयंती मनाने और उस अवसर पर कुछ विशिष्ट आयोजन करने के भाव मेरे मानस पटल पर उभर रहे थे। मैं यह निश्चित नहीं कर पा रही थी कि दीक्षा हीरक जयंती कार्यक्रम किस प्रकार निर्धारित किया जावे। मैंने अपने ये विचार किसी पर भी प्रकट नहीं किये कि इसी बीच हमारा विहार कन्याकुमारी की ओर हो गया। कन्याकुमारी से वापस मद्रास की ओर विचरण करते समय मेरे मानस पटल पर इस समारोह के लिये कार्यक्रम की कुछे रेखायें उभरने लगी और मैं मन ही मन विचार करने लगी कि जब कुछ रूपरेखा बन जावे तब अपनी सहयोगी साध्वी बहनों के सम्मुख अपने विचार प्रकट करूं। किन्तु नियति को शायद यह सब कुछ स्वीकार नहीं था। मेरे विचारों को सबसे गहरा आघात उस समय लगा जब हम मद्रास की ओर अपने कदम बढ़ा रही थी। एकाएक समाचार मिला कि मेरे जीवन निर्मात्री सद्गुरुवर्य्याश्री परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. सा. ने अपने नश्वर देह का त्याग कर दिया है। इस समाचार ने मुझे किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। मैं शून्य में खो गई और अपने आपको असहाय अनुभव करने लगी। अब आगे क्या होगा ? कैसे होगा ? जैसे प्रश्न मेरे मानस पटल पर मंडराने लगे। साथी गुरु बहनों ने धीरज बंधाया और कहा - सहास से काम लो। जन्म-मृत्यु का चक्र तो शाश्वत है। जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु भी अवश्य है। जो आया है, वह जाएगा ही। इस चक्र से तो तीर्थंकर भी नहीं बच पाये हैं। जैसे-तैसे मद्रास सद्दादगुरुवर्य्याश्री की सेवा में पहुँचे। उन्हें भी अपनी प्रिय सुयोग्य सुशिष्या के एकाएक चले जाने का गहरा आघात लगा था, किन्तु उन्होंने अपने सुदीर्घ जीवन काल में सब कुछ जान-समझ लिया था। मैंने तो अपने जीवन की देहरी पर कदम रखा ही था कि यह असहनीय आघात लग गया।

कहते हैं समय बहुत बड़ी औषधि है। समय बीतता गया और सब कुछ यथावत होता गया। कुछ समय पश्चात् विचार उत्पन्न हुए कि सद्गुरुवर्य्याश्री की पावन स्मृति में कुछ करना चाहिए। क्या किया जाए? यह विचार चिंतन चला। अंत में अपने अध्ययनशील मानस पर एक स्मारिका प्रकाशित करने का विचार बनाया। इसे क्रियान्वित करने के लिए सर्वप्रथम मैंने अपनी वरिष्ठ गुरु बहनों के समक्ष अपने विचार रखे। उनसे मुझे इस सम्बन्ध में प्रोत्साहन ही मिला। इससे मेरा उत्साह बढ़ गया। इसके पश्चात्, मद्रास के धर्म अनुरागी और परम गुरुभक्त भाई श्री रीखबचंद जी लोढ़ा के समक्ष अपनी योजना रखी। श्री लोढ़ा जी ने मेरी योजना का न केवल समर्थन किया वरन् तन, मन और धन से सहयोग करने का भी वचन दिया।

इतना सब कुछ निश्चित हो जाने के उपरांत चार सौ पृष्ठों की एक स्मारिका प्रकाशित करने के लिए उज्जैन (म. प्र.) के डॉ. तेजसिंहजी गौड़ को एक पत्र लिखा

गया। अपेक्षा से भी कम समय में डॉ. गौड़ का उत्तर मिला जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि चौर सौ पृष्ठों की स्मृतिका के स्थान पर स्मृति ग्रंथ प्रकाशित करना अधिक उपयोगी और गरिमामय रहेगा। दोनों के व्यय में कोई विशेष अंतर भी नहीं आवेगा। साथ ही डॉ. गौड़ ने स्मृति ग्रंथ के लिए प्रस्तावित रूपरेखा भी बना कर अवलोकनार्थ एवं अनुमोदनार्थ भेजी। स्मृति ग्रंथ का यह सुझाव उपयोगी लगा और आपस में विचार-विमर्श कर सदगुरुवर्याश्री परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवर जी म. सा. की स्मृति में स्मृति ग्रंथ के प्रकाशन की योजना को अंतिम रूप दे दिया गया। इस स्मृति ग्रंथ के लिए विद्वानों से सम्पर्क कर लेखादि मंगवाने का भार भी डॉ. गौड़ जी को सौंपने का निर्णय कर, इसके अनुरूप उन्हें सूचना दे दी गई।

अभी स्मृति ग्रंथ का कार्य आरम्भ हुआ ही था अपेक्षित सामग्री एकत्र हो ही रही थी कि इसी बीच एक और गहरा आघात लगा। सददादगुरुवर्याश्री अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुवरजी म. सा. जो पिछले कुछ दिनों से अस्वस्थ थे, दिनांक ४ अगस्त १९९१ श्रावण कृष्ण ९ वि. सं. २०४८ को हमें छोड़कर महाप्रयाण कर गए। आपश्री के देवलोक होने से हम सभी को गहरा अघात लगा। अब हमारे सम्मुख यह समस्या उत्पन्न हो गई कि सदगुरुवर्याश्री की स्मृति में प्रकाश्य स्मृति ग्रंथ के सम्बन्ध में क्या किया जाये ? यह इसी स्वरूप में प्रकाशित किया जाता है तो उचित नहीं रहेगा, कारण कि दादगुरुवर्याश्री की भी अब स्मृतियाँ ही शेष रह गई थीं। पर्याप्त सोच विचार के पश्चात् यही निर्णय लिया गया कि सददादगुरुवर्याश्री एवं सदगुरुवर्याश्री दोनों की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये इस ग्रंथ को महासती द्वय स्मृति ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया जावे। इसी प्रकार के सुझाव भी कुछ दिनों के पश्चात् हमारे समक्ष आये भी। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर इसके अनुरूप महासती द्वय स्मृति ग्रंथ प्रकाशित करना है, यह सूचना आवश्यक कार्रवाई के लिये डॉ. गौड़ को दे दी गई।

इस प्रकार मूल रूप में परम विदुषी महासती श्रीचम्पाकुवरजी म. सा. की स्मृति में प्रकाशित होने वाला स्मृति ग्रंथ अब महासती द्वय (अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुवर जी म. सा. एवं परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवर जी म. सा.) स्मृति ग्रंथ के रूप में प्रकाशित होकर आपके हाथों में है।

मूल रूप में ग्रंथ की प्रस्तावित रूप रखा दो खण्डों में प्रसारित की गई। किन्तु बाद में विचार विमर्श के पश्चात् प्रस्तुत ग्रंथ को पाँच खण्डों में सुव्यवस्थित कर प्रकाशित किया गया। इन पाँचों खण्डों की विषय वस्तु का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है : -

प्रथम खण्ड- श्रद्धासुमन में महासती द्वय के सम्बन्ध में मुनि भगवतों, महासतियाँ जी तथा श्रद्धालु श्रावक/श्राविकाओं द्वारा अर्पित श्रद्धांजलियाँ दी गई हैं। किन्तु ये कोरम कोर श्रद्धांजलियाँ ही नहीं हैं। इनमें प्रसंगानुसार जैन विद्या के तत्त्वों का उल्लेख भी है और महासती द्वय के जीवन के अविस्मरणीय क्षणों के विवरण के साथ ही उनके सदगुणों का भी दिग्दर्शन करवाया गया है। इस प्रकार यह खण्ड स्वतः ही महत्वपूर्ण बन गया है।

इस खण्ड में काव्यमयी श्रद्धांजलियां भी दी गई हैं। रस, छन्द, अलंकार की दृष्टि से कुछ काव्यांजलियों का काव्य सौष्ठव आनन्द विभोर कर देता है। इनमें कुछ गेय पद भी हैं। पद्यमय श्रद्धांजलियाँ काव्य साहित्य की निधि बन गई हैं।

साधक जीवन में और गृहस्थ जीवन में भी गुरु का विशेष महत्व और स्थान होता है। वह गुरु ही होता है जो समय-समय पर अपने शिष्यों-भक्तों का पथ प्रदर्शन करता है, उन्हें सत् पथगामी बनाता है, उनके जीवन को संवारता है। द्वितीय खण्ड में महासती द्वय की गुरु परम्परा दी गई है। धर्मवीर लोकश्राव से आचार्य श्री जयमलजी म. सा. की परम्परा के आचार्य श्री कानमलजी म. सा. की परम्परा के उल्लेख के साथ ही स्वामी श्री जोरावरमलजी म. सा. कलम के जादूगर मरुधरा मंत्री स्वामी श्री हजारीमलजी म. सा. समतायोगी, उपप्रवर्तक स्वामी श्री ब्रजलाल जी म. सा., युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म. सा. 'मधुकर' एवं विदुषी महासती श्री सरदार कुंवर जी म. सा. के जीवन पर प्रकाश डालने वाले लेख दिये गए हैं। तृतीय खण्ड में महासती द्वय के जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुंवर जी म. सा. के जीवन दर्शन को लिपिबद्ध किया है उन्हीं की विदुषी शिष्या महासती श्री कंचनकुंवर जी म. सा. ने और साथ ही उनकी पाँच प्रिय कहानियाँ भी दी गई हैं। इसी के साथ श्रीकान शतक (पद्य मय जीवन परिचय - मेरे द्वारा रचित) भी दिया गया है। परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. सा. का जीवन दर्शन मैंने स्वयं लिपिबद्ध किया है। महासती द्वय के जीवन पर प्रकाश डालने वाले कुछ अन्य लेख भी हैं। मैं यहाँ एक बात स्पष्ट करना प्रासंगिक समझती हूँ कि महासती द्वय का प्रस्तुत जीवन परिचय उनके पाली वर्षावास के पश्चात् का विवरण देने वाला है। महासती द्वय के मारवाड़ के कृतित्व के सम्बन्ध में इन आलेखों में नहीं के बराबर प्रकाश डाला जा सका है। इस सम्बन्ध में पर्याप्त समय और श्रम की आवश्यकता है। समयाभाव होने और मारवाड़ से सुदूरदक्षिण में होने तथा महासती द्वय के मारवाड़ विवरण की जानकारी देने वाले कोई भी स्रोत न होने के कारण यह कमी रह गई है। इसकी पूर्ति भविष्य में करने का प्रयास किया जावेगा।

चतुर्थ खण्ड- नारी : मूल्य और महत्व है। इस खण्ड में कुल ग्यारह लेख दिये गए हैं। इन सभी लेखों में नारी के महत्व और उसके गरिमामय, जीवन दर्शन पर विद्वान लेखकों ने विस्तार से प्रकाश डाला है। समयाभाव के कारण हम इस खण्ड को चाहते हुए भी और अधिक स्मृद्ध नहीं कर पाये।

जैन परम्परा के विविध आयाम - यह नाम है पंचम खण्ड का। इस खण्ड में कुल उन्चास लेख दिए गए हैं। इन लेखों में देश के सुविख्यात विद्वान लेखकों ने अपने-अपने लेखों में नए दृष्टिकोण से सप्रमाण अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। कई लेखों में तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। कुछ लेख ऐसे भी हैं जो अनुसंधानकर्ताओं के लिए मार्गदर्शन करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो आगे अनुसंधान के लिए प्रेरित करते हैं। प्रयास यही किया गया है कि सामग्री उपयोगी और ज्ञानवर्धक हो तथा उसमें कुछ न कुछ नवीनता हो।

इस प्रकार पाँच खण्डों में संयोजित यह महासतीद्वय स्मृति ग्रंथ प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ के लिए स्व. आचार्य सम्राट् श्री आनंद महर्षि जी म. सा. के आशीर्वाचन हमें पूर्व में ही प्राप्त हो गए थे। साथ ही वर्तमानाचार्य श्री देवेन्द्रमणि जी म. सा. श्रमण-संघीय सलाहकार श्री रतन मुनि जी म. सा. उपाध्याय श्री विशालमुनि जी म. सा. उप प्रवर्तक मुनि श्री विनय कुमारजी म. सा. 'भीम' श्री महेन्द्र मुनि 'दिनकर' पू. अध्यात्म योगिनी, परम विदुषी महासती श्री उमरावकुंवर जी म. सा. 'अर्चना' सरलमना महासती श्री बसंत कुंवर जी म. सा. विदुषी महासती श्री कंचनकुंवर जी म. सा. महासती श्री चेतन प्रभाजी म. सा. आदि की ओर से आशीर्वाद, मार्गदर्शन, सहयोग एवं प्रेरणा प्राप्त हुई, उसके लिए सभी के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

डॉ. तेजसिंह गौड़ ने अल्प समय में कठिन परिश्रम करके ग्रंथ के अनुरूप सामग्री एकत्र की और सम्पादित रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत की तथा फिर ग्रंथ को सुन्दर रूप से मुद्रित ढ़िकवाया उसके लिए उन्हें धन्यवाद देकर उनके श्रम को कम करना नहीं चाहती। हाँ, इन्तना अवश्य चाहती हूँ कि उनका सहयोग आवश्यकतानुसार अवश्य मिलता रहे।

सुश्रावक श्रीमान् रीखबचन्द जी लोढ़ा ने जिस लगन और निष्ठा से संयोजक के कर्तव्य का निर्वाह किया है, उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। दिन रात अथक परिश्रम करके आर्थिक सहकार प्राप्त करना श्री लोढ़ाजी के ही सामर्थ्य की बात थी। वैसे यह कार्य उनका अपना था, फिर भी वे साधुवाद के पात्र हैं।

जिन अर्थ सहयोगी बंधुओं और विद्वान लेखकों के सहयोग से यह महासती द्वय स्मृति ग्रंथ मूर्त-रूप ले सका, वे सभी तथा अन्य ज्ञात/अज्ञात सहयोगी भी साधुवाद के पात्र हैं।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना भी आवश्यक समझती हूँ कि एक वर्ष से भी कम की समयावधि में यह महासती द्वय स्मृतिग्रंथ सम्पूर्ण रूप से तैयार हुआ है। यदि स्मृतिग्रंथों/अभिनन्दन ग्रंथों की परम्परा में झाँक कर देखें तो इतनी कम समयावधि में शायद ही कोई ग्रंथ सर्वांग रूप से प्रकाशित हो पाया हो, यह हमारे लिए गौरव की बात है।

प्रयास तो यही किया गया है कि ग्रंथ में कोई त्रुटि नहीं रह पाये किन्तु ऐसा हो पाना संभव नहीं है। इस ग्रंथ में रही हुई कमी की ओर ध्यान आकर्षित करवाने वाले विज्ञ पाठकों का स्वागत है। यदि यह ग्रंथ लक्ष्य भ्रमित पाठक का थोड़ा भी मार्गदर्शन कर सका तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूंगी।

अक्षय तृतीया, सं. २०४९

अम्बतुर (मद्रास)

दि. ५-५-९२

साध्वी चन्द्रप्रभा 'मुस्कानी'

यत्किञ्चित



त वर्ष साध्वी श्री चन्द्रप्रभाजी म. सा. का एक पत्र मिला था। इस पत्र में उन्होंने अपनी सद्गुरुवर्याश्री परमविदुषी महासती श्री चम्पाकुवर जी म. सा. की स्मृति में एक स्मारिका के प्रकाशन के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा अभिव्यक्त की थी। स्मारिका जिस स्वरूप में निकालने का विचार था, उसको देखते हुए मैंने सुझाव दिया था कि यदि इसे स्मृति ग्रंथ का स्वरूप दे दिया जावे तो अधिक उपयोगी प्रकाशन होगा। और इसके साथ ही एक संक्षिप्त रूपरेखा भी उनके अवलोकनार्थ/अनुमोदनार्थ उनकी सेवा में भेज दी। मुझे तब हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हुई जब उनका सकारात्मक उत्तर मिला और साथ ही स्मृतिग्रंथ के लिए आवश्यक तैयारियाँ करने का निर्देश भी मिला। इस सूचना के प्राप्त होते ही मैं सक्रिय हो गया और विद्वान् मुनि भगवन्तों, विदुषी-साध्वियों एवं जैन धर्म - दर्शन के विशिष्ट विद्वानों से विभिन्न विषयों पर शोध परक एवं चिंतन परक आलेख भेजने के लिए आग्रह पत्र दिये गए। कुछ ही समय पश्चात् परिणाम भी सामने आने लगे। विद्वान् लेखकों की ओर से आलेख आने लगे तथा कुछ सुझाव भी प्राप्त हुए, जिन पर गंभीरता से विचार कर उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास भी किया गया।

स्मृति ग्रंथ से सम्बन्धित आलेख आदि अपेक्षा से भी कम समय में यथेष्ट रूप से हमें प्राप्त हो गये। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि जिन-जिन विद्वानों से जिन-जिन विषयों पर अपना आलेख भेजने के लिये निवेदन किया गया था, लगभग सभी ने उसके अनुरूप आलेख भेज कर सहयोग प्रदान किया। इस आत्मीय सहयोग के लिए मैं समस्त विद्वान् लेखकों का हृदय से आभार मानता हूँ।

स्मृति ग्रंथ हेतु प्राप्त समस्त सामग्री का खण्डवार वर्गीकरण कर उसका अवलोकन सम्पादन/पुनर्लेखन आदि किया गया। प्राप्त सामग्री को मुद्रणार्थ देने के पूर्व मार्गदर्शन प्राप्त करना आवश्यक समझा गया। साध्वी जी श्री बसंतकुवर जी म.सा., साध्वीजी श्री कंचनकुवर जी म. सा. एवं इस ग्रंथ की प्रधान सम्पादिका साध्वीजी श्री चन्द्रप्रभा जी म. सा. की सेवा में सर्वप्रथम प्राप्त सामग्री अवलोकनार्थ प्रस्तुत की गई। तीनों साध्वीजी ने ध्यानपूर्वक समस्त सामग्री का अवलोकन कर कुछ सुझाव भी दिये। साध्वी जी श्री चन्द्रप्रभाजी म. सा. का इस सम्बन्ध में विशेष उत्तरदायित्व होने से उन्होंने समस्त सामग्री का आद्योपांत अध्ययन किया और जहां भी आवश्यक समझा गया, संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किया। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा किया गया परिश्रम प्रशंसनीय है। उन्होंने पूर्ण लगन, निष्ठापूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह किया। इसके साथ ही उनसे मुझे यह भी निर्देश मिला कि समस्त सामग्री एक बार श्रद्धेय आचार्य श्री देवेन्द्र

मुनिजी म. सा. एवं परम विदुषी महासती श्री उमरावकुवंर जी म. सा. 'अर्चना' की सेवा में प्रस्तुत कर उनसे आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त कर लें। साथ ही उनके निर्देशों का यथासम्भव पालन किया जावे।

विद्वद्वर्य आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म. सा. ने ग्रंथ की समस्त सामग्री का अवलोकन किया और अपने अमूल्य सुझाव दिये। आपके अतिरिक्त श्रद्धेय उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि म. सा. के विद्वान शिष्य श्री रमेश मुनि जी शास्त्री ने भी प्राप्त लेखों का अवलोकन किया। आपने भी अमूल्य सुझाव देकर हमारा मार्गदर्शन किया। परमविदुषी महासती श्री उमरावकुवंर जी म. सा. 'अर्चना' एवं उनकी सुयोग्य शिष्या डॉ. श्री सुप्रभाकुमारी जी म. 'सुधा' ने भी ग्रंथ की प्राप्त सामग्री का अवलोकन कर बहुमूल्य सुझाव देकर हमारा मार्गदर्शन किया। ग्रंथ में हमने सुझावों को पूर्णतः क्रियान्वित करने का पूरा-पूरा प्रयास किया है। जिससे ग्रंथ सुन्दर एवं उपयोगी बन गया है। ऐसी हमारी पान्यता है।

जैसा कि सर्वविदित है, यह स्मृति ग्रंथ परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवंर जी म.सा. की स्मृति में प्रकाशित हो रहा था किन्तु विधि के विधान के आगे किसी का वश नहीं चलता। अभी ग्रंथ का कार्य आरम्भ हुआ ही था कि क्रूर काल ने अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुवंर जी म. सा. को अपना ग्रास बना लिया। एकाएक घटी इस घटना ने सबको झकझोर दिया और तत्काल निर्णय लिया गया कि अब यह स्मृति ग्रंथ महासती द्वय स्मृति ग्रंथ के रूप में प्रकाशित करना है। इस निर्णय के परिणाम स्वरूप ग्रंथ के आकार में भी कुछ परिवर्तन हुआ है, जो स्वाभिक है। इस प्रकार अब यह ग्रंथ अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुवंर जी म. सा. एवं परमविदुषी महासती श्री चम्पाकुवंरजी म. सा. की पावन स्मृति में महासती द्वय स्मृति ग्रंथ के रूप में आपके हाथों में है।

इस ग्रंथ के लिये आचार्य सम्राट श्री आनंद ऋषिजी म. सा., आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म. सा., श्रमण संघीय सलाहकार श्री रतन मुनिजी म. सा., उपप्रवर्तक मुनि श्री विनयकुमारजी म. 'भीम' श्री महेन्द्र मुनिजी म. परम विदुषी महासती श्री उमरावकुवंर जी म. सा. 'अर्चना' आदि का आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन तथा महासती श्री बसंत कुवंर जी म. सा., महासती श्री कंचनकुवंर जी म. सा. एवं महासती श्री चेतन प्रभाजी म. सा. की प्रेरणा और महासती श्री सुमन सुधाजी म. सा. तथा नवदीक्षिता महासती श्री अक्षय ज्योति जी म. सा. का सतत सहयोग मिलता रहा। जिसके लिये मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

यदि देश भर के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों का सहयोग नहीं मिला होता तो स्मृति ग्रंथ की योजना को मूर्तरूप नहीं मिल पाता। उन सभी विद्वान बंधुओं के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी प्रकार का सहयोग प्रदान किया है। उन विद्वान बंधुओं से क्षमा चाहता हूँ.. जिनके लेख अपरिहार्य कारणों से प्रकाशित नहीं हो सके हैं। वे इसे अन्यथा न लेते हुए अपना आत्मीय सहयोग भाव बनाये रखें।

स्मृति प्रकाशन, मद्रास के संयोजक श्रीमान् रीखबचंद जी सा. लोढ़ा का विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होंने किसी भी परिस्थिति में अर्थ सहयोग की बाधा नहीं आने दी और जिसके परिणाम स्वरूप यह ग्रंथ आज समय पर आपके हाथों में है।

श्री महेशजी गुप्ता, रोहित ऑफसेट, उज्जैन को हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने पूरी लगन के साथ इस ग्रंथ के मुद्रण के कार्य को सम्पन्न किया और इसे हर दृष्टि से सुन्दर बनाने का प्रयास किया।

ग्रंथ के मुद्रण की अवधि में उज्जैन में सिंहस्थ महापर्व की गहमा गहमी चल रही थी। चारों ओर इस महापर्व की व्यस्तता की छाया परिलक्षित हो रही थी। ऐसे व्यस्ततम वातावरण में यह स्वाभाविक है कि प्रुफ संशोधन में जाने-अनजाने कुछ त्रुटियाँ रह गई हो, इसका उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर लेते हुए विज्ञ पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि वे पढ़ते समय आवश्यक संशोधन कर पढ़ें।

प्रस्तुत ग्रंथ में जो अच्छा बन पड़ा है उसका समस्त श्रेय महासती द्वय की अखण्ड साधना और उनकी शिष्याओं को है। जो त्रुटियाँ/कमियाँ रह गई हैं उसका दायित्व मैं स्वीकार करता हूँ।

अंत में सभी ज्ञात-अज्ञात सहयोगी महानुभावों के प्रति एक बार पुनः आभार व्यक्त करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि मुझे सभी से भविष्य में जब भी आवश्यकता होगी इसी प्रकार का आत्मीय सहयोग मिलता रहेगा।

सहयोग की अपेक्षाओं के साथ-

महावीर जयंती, वि. सं. २०४९
उज्जैन (घ. प्र.)

तेजसिंह गौड़

अनुक्रमणिका

❁ समर्पण	३
❁ प्रकाशकीय	५
❁ सम्पादकीय	७
❁ यत्किञ्चित्	१४

श्रद्धा सुमन

१ से ८८

❁ संदेश	स्व. आचार्य सम्राट् श्री आनंद ऋषिजी म.	१
❁ पावन प्रेरणा स्रोत	आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि	२
❁ निर्धूम ज्योति	आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि	२
❁ संदेश	आचार्य श्री पद्मसागर सूरेश्वर	३
❁ गुणों की मधुर महक	उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि	४
❁ समाज पर उपकार	उपाध्याय श्री केवल मुनि	४
❁ ज्योति से ज्योति प्रज्वलित हो	उपाध्याय श्री विशाल मुनि	५
❁ शुभ संदेश	श्री कुन्दन ऋषि	६
❁ कमी हो गई	—	६
❁ श्रद्धांजलि	—	७
❁ आशीर्वचन	श्री रतन मुनि	७
❁ उनकी स्मृति अमर है	श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'	८
❁ सरल स्वभावी महासतीजी	मुनि श्री सुमति प्रकाश	८
❁ संदेश	प्रवर्तक श्री रूपचंद जी म.	९
❁ श्रमणी समुदाय की क्षति	आचार्य कल्प श्री शुभचन्द्रजी म.	९
❁ भावना	उ.मा. प्रवर्तक श्री पद्मचन्द जी भण्डारी	१०
❁ विशिष्ट व्यक्तित्व की धनी	श्री अजित मुनि	१०
❁ समर्पित साधिका	श्री अजित मुनि	११
❁ इच्छा अधूरी रह गई	श्री नमन मुनि	१२
❁ शत् शत् श्रद्धांजलि	मुनिश्री उत्तम कुमार	१२
❁ शुभकामना	श्री सुरेश मुनि	१४

❁ हार्दिक श्रद्धांजलि	उपप्रवर्तक श्रमण श्री विनय कुमार 'भीम'	१४
❁ श्रद्धांजलि	श्री महेन्द्र मुनि 'दिनकर'	१५
❁ अपूरणीय क्षत्री	श्री आशीष मुनि	१५
❁ श्रद्धांजलि पुष्प	श्री अचल मुनि	१७
❁ मुझे स्मृति है	पं. श्री विचक्षण मुनि	१८
❁ अर्पित है भावांजली	साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'	१९
❁ शांति एवं भव्यता की प्रतिमूर्ति	उपप्रवर्तिनी श्री मानकुंवर म.	२०
❁ फलकों में आहट	जैन आर्या डॉ. सुप्रभा कुमारी 'सुधा'	२१
❁ गुण स्मृति	बा.ब्र. प्राणकुंवर बाई म.	२१
❁ प्रतिभा की धनी श्रमणी श्री चम्पाजी म.सा.	साध्वी श्री बिन्दु प्रभा.	२३
❁ भावभीनी श्रद्धांजलि	साध्वी श्री हेमप्रभा	२४
❁ हृदय मंदिर की आराध्या	महासती श्री कंचन कुंवर म.	२५
❁ जनजीवन का आधार	साध्वी श्री अक्षय ज्योति	२७
❁ श्रद्धांजलि	साध्वीवृंद	२९
❁ श्रमण संघ की दो महान विभूतियाँ	साध्वी श्री कमल प्रभा	३०
❁ शत् शत् श्रद्धासुमन	साध्वी श्री चन्द्रप्रभा	३१
❁ आध्यात्मिक ज्योति की दिव्य मशाले	साध्वी श्री सुमंगल प्रभा	३२
❁ गुण रत्नों से आप्तावित जीवन	साध्वी श्री चन्दनबाला	३३
❁ श्रद्धा सुमन	साध्वी श्री मनोहर कुंवर	३४
❁ मेरा स्वप्न अधूरा रह गया	साध्वी श्री जयमाला	३५
❁ सरलता की प्रतिमूर्ति	साध्वी श्री आनन्दप्रभा	३६
❁ श्रद्धांजलि	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	३८
❁ शोक एवं श्रद्धांजलि प्रस्ताव	मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन ब्यावर	३८
❁ शोक एवं श्रद्धांजलि प्रस्ताव	ब्यावर	३८
❁ शोक प्रस्ताव	श्री रतन मुनि	३९

❁ आमेट में शोकसभा		३९
❁ शोक प्रस्ताव	श्री जैन संघ मेड़ता सिटी	४०
❁ हार्दिक श्रद्धांजलि	श्री मूलचंद सुराणा	४०
❁ महासती श्री कानकंवरजी		
म. को श्रद्धांजलि	श्रीसंघ बालाघाट	४१
❁ अपूरणीय क्षति	श्री रीखबचन्द लोढ़ा	४२
❁ उनके बताये मार्ग का		
अनुसरण करें	श्री संघ रामपुरा	४३
❁ शिवपुर में शोकसभा		४४
❁ हार्दिक श्रद्धांजलि	श्री प्रकाश जैन	४४
❁ श्रद्धासुमन	श्री जतनराज मेहता	४५
❁ उपकारी गुरुवर्या	वैराग्यवती शकुन्तला	४५
❁ हार्दिक श्रद्धांजलि	श्री ताराचंद लोढ़ा	४६
❁ दर्शन की इच्छा		
अधूरी रह गई	श्री नेमीचन्द सुराणा	४७
❁ शांत स्वभावी महासतीजी	श्री उगमचन्द सुराणा	४७
❁ स्मृति ही शेष है	श्री माणकचन्द दुग्गड़	४८
❁ हार्दिक श्रद्धांजलि	श्री अनोपचंद पारख	४९
❁ तेजस्वी साध्वी रत्ना	श्री के.टी. शाह	५०
❁ अनमोल हीरा	ललित महिला मंडल, मद्रास	५०
❁ सरलता की प्रतिमूर्ति	श्री किशनलाल बैताला	५१
❁ अविस्मरणीय जीवन	डॉ. मानमल सुराणा	५१
❁ सागरसम गम्भीर	श्री सुरेन्द्र एम. मेहता	५२
❁ अनमोल रत्न	श्री तनसुख बेन	५३
❁ श्रद्धा के दो पुष्प	सौ सुनीला नाहर	५३
❁ श्रद्धांजलि	श्री प्रकाशचन्द्र मूथा	५५
❁ हार्दिक श्रद्धांजलि	वै. शकुन्तला नाहर	५६
❁ महावीर क्लाथ स्टोर डमोल जैन श्री संघ रामपुरा		५६ से ६२
श्री संघ रायचूर, महासती श्री मनोहर कुंवर, परीक्षा बोर्ड अहमद नगर, श्री पन्नालाल हिरण आमेट, श्री रतनलाल कोठारी, गोरन, श्री जैन वीर संघ, ब्यावर, मुनि श्री अमृतचंद म. श्री संघ कवर्धा, श्री		

ताराचंद बाफणा, ब्यावर, श्री बाबूलाल अतुल कुमार एण्ड कं. कोचीन, श्री ओसवाल दमाज, रामपुरा आदर्श ज्योति ग्रुप, कुम्भकोणम, सौ. शांतिबाई मकाना, सिकन्दराबाद, दौलतराम सुराणा, नागौर, फतेहचंद बाफणा भोपाल, मोदी निहालचन्द, ब्यावर, नेमनाथ जैन, मेरठ, मांगीलाल कुचेरा, बाबूलाल सुराणा, कुचेरा, लोढा उगमचंद बोलाराम बाजार, लूनकरण सोनी, भिलाई, हुकमीचंद कुचेरा, प्रेमचन्द बागमार, कुचेरा, चम्पालाल सिंघवी कुचेरा, डॉ. (श्रीमती) कुसुमलता जैन, इन्दौर, प्रसन्नकुमार चोरडिया, बालाघाट, हुकुमचंद जैन, रामपुरा, डा. गुलाबसिंह दरडा, जयपुर

❁ श्रद्धा सुमनः महासती
द्वय के चरणों में

ताराचंद लोढा

६२

काव्याँजलि

❁ शोक पंचक

प्रवर्तक श्री रूपचंद 'रजत'

६६

❁ श्रद्धासुमन

श्री रूपचंद 'रजत'

६६

❁ श्रद्धा के सुमन भेंट
चढ़ायें

प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

६८

❁ श्रद्धा के दो फूल

प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

६९

❁ महासती श्री कानकंवरजी
म.

उपप्रवर्तक
श्री चन्दन मुनि पंजाबी

६९

❁ महासती श्री चम्पाकुंवरजी
म.

उपप्रवर्तक
श्री चन्दन मुनि 'पंजाबी'

७१

❁ कान त्याग संसार

उपप्रवर्तक श्री सुकनमल म.

७३

❁ शोक पंचक

उपप्रवर्तक श्री सुकनमल म.

७४

❁ श्रद्धा पुष्पाँजलि भेंट

मुनिश्री उत्तम कुमार 'मिश्री'

७४

❁ नारी का असली रूपः
महावीर की दृष्टि में

श्री विनोद मुनि

७६

❁ स्मृति के लिए

श्री नमन मुनि

७८

❁ मरुधरा की महानसती

साध्वी श्री तरुण प्रभा 'तारा'

७९

❁ घणी दुःख भरी बात

साध्वी श्री तरुण प्रभा 'तारा'

८०

❁ श्रद्धा सुमन

साध्वी श्री मणिप्रभा

८१

❁ श्रद्धा पुष्प

साध्वी श्री सुदर्शन प्रभा

८१

❁ धीरज कौन बंधाये

महासती श्री कंचन कुंवर

८२

❁ चंपा महासङ् - सङ्पणमामि	डा. उदयचंद जैन	८२
❁ चम्पा दशक	एम.आर. भावनारायण	८४
❁ धन्य धन्य हे महासती	श्री शशिकर खटका राजस्थानी	८५
❁ पू. श्री कानकुंवरजी म. श्रद्धांजलि	श्री संजय कटारिया	८६
❁ बिखरे शूल हरो -	श्री ताराचंद लोढ़ा	८७
❁ किया जीवों का उद्धार	श्री माणकचन्द दुग्गड़	८८

गुरु परम्परा

१ से ४६

❁ स्थानकवासी जैन आचार्य - परम्परा	डॉ. तेजसिंह गौड़	१
❁ स्वामी जी श्री जोरावमल जी महाराज	साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चन'	२०
❁ मुनिश्री हजारीमल जी महाराज	मुनि महेन्द्र कुमार 'दिनकर'	२३
❁ समता योगी स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.	श्रमण श्री विनयकुमार 'भीम'	२८
❁ युवाचार्य श्री मधुकर मुनि : जीवन दर्शन	साध्वी श्री आनंद प्रभा 'आशा'	३१
❁ अद्भुत देह और मन के सौन्दर्य की प्रतिभा	जैन आर्या डॉ. सुप्रभा कुमारी 'सुधा'	३१

महासती द्वय : जीवन दर्शन

१ से ७६

❁ महासती श्री कानकुंवर जी म : जीवन दर्शन	साध्वी श्री कंचनकुंवर	१
❁ पाँच कहानियाँ	साध्वी श्री कंचनकुंवर	२५
❁ श्री कान शतक	साध्वी श्री चन्द्रप्रभा	३१

❁ आँखों देखा यथार्थ	साध्वी श्री तरुण प्रभा 'तारा'	३५
❁ महासती श्री चम्पाकुवर जी म.: जीवन दर्शन	साध्वी श्री चन्द्रप्रभा	३८
❁ जो पाया उनसे पाया	साध्वी श्री तरुणप्रभा 'तारा'	७३
❁ महाविदुषी श्रमणी	श्री चाँदमल बावेल	७५

नारी : मूल्य और महत्व

१ से ६०

❁ विश्व चेतना में नारी का गौरव	युवाचार्य डॉ. शिवमुनि	१
❁ विश्व शांति के संदर्भ में नारीकी भूमिका	मुनि श्री नेमीचन्द्र जी म.	६
❁ अतीत की प्रमुख साध्वियाँ	प्रवर्तक श्री रमेश मुनि	१५
❁ श्रमण संस्कृति में नारी : एक मूल्यांकन	श्री रमेशमुनि शास्त्री	२०
❁ महिमामयी नारी	महासती श्री उमरावकुवर 'अर्चना'	२७
❁ श्रमणी तीर्थ का जैन धर्म की प्रभावना में अवदान	साध्वी डॉ. दिव्यप्रभा	३३
❁ जैन आगम साहित्य में नारी का स्वरूप	महासती श्री उदित प्रभा 'उषा'	३९
❁ साध्वी जीवन : एक चिंतन	दीक्षित डॉ. सुशील जैन 'शशि'	४३
❁ अंध विश्वास निवारण में नारी की भूमिका	श्रीमती माया जैन	४७
❁ हिन्दी काव्य के विकास में श्रम णियों का योगदान	श्री कन्हैयालाल गौड़	५१
❁ जिन शासन में श्रमणियों की भूमिका	डॉ. (श्रीमती) कुसुमलता जैन	५७
❁ श्रमणी परम्परा को कुचेरा की देन	साध्वी बसंत कुवर	६०

जैन परम्परा के विविध आयाम

१ से २५६

❁ कर्मसिद्धांत की उपयोगिता	आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि	१
❁ सम्यक् दर्शन	श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'	१६
❁ समतायोग का अंतः दर्शन	श्री रतन मुनि	१९
❁ जिन और जिन शासन माहात्म्य	मुनि श्री सुकनमल	२२
❁ स्वाध्याय : एक अनुचितन	डॉ. सुव्रत मुनि	३०
❁ पुद्गल : एक पर्यवेक्षण	श्री रमेश मुनि शास्त्री	३४
❁ जैन साधना और ध्यान	डॉ. सागरमल जैन	५३
❁ जैन परम्परा में स्वाध्याय तप	डॉ. दामोदर शास्त्री	८२
❁ श्रमण संस्कृति : एक परिशीलन	मुनि (डॉ.) राजेन्द्र कुमार 'रत्नेश'	९८
❁ जैन मंत्र साधना पद्धति	डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी	१०४
❁ पारिस्थितिकी और जैन चिंतन	डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी	११०
❁ जैन दर्शन में जीव के अस्तित्व की वैज्ञानिकता	डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया	११४
❁ जैन धर्म सर्वोदयतीर्थ है	डॉ. भागचन्द्र 'भास्कर'	११७
❁ जैन मंत्र साहित्य : एक परिचय	डॉ. संजीव प्रचंडिया	१२७
❁ समतायोग: एक अनुचितन	श्री जशकरण डागा	१३१
❁ स्वाध्याय का सरल स्वाध्याय	श्री लक्ष्मीचंद 'सरोज'	१४३
❁ वर्तमान संदर्भ में जैन गणित की उपादेयता	डॉ. परमेश्वर झा	१४८
❁ यंत्र रचना प्रक्रिया और प्रभाव	श्री सतीश मुनि	१५४
❁ जैन दर्शन सम्मत मुक्त मुक्ति - स्वरूप साधन	पं. देवेन्द्र कुमार जैन	१५८

❁ जैन धर्म में व्रत	डॉ. ए. बी. शिवाजी	१६८
❁ जैन दर्शन में ज्ञान का स्वरूप	डॉ. कालिदास जोशी	१७४
❁ आचारांग और कबीर दर्शन	डॉ. निजाम उद्दीन	१७६
❁ स्वप्न मनोविज्ञान और मानव अस्तित्व	डॉ. वीरेन्द्र सिंह	१८१
❁ समन्वय का मार्ग स्यादवाद	डॉ. उदयचन्द्र जैन	१८४
❁ नीति तत्त्व और जैन आगम	श्री सुभाष मुनि 'सुमन'	१८९
❁ अहिंसा की परिधि में पर्यावरण संतुलन	डॉ. पुष्पलता जैन	१९६
❁ जैन आचार : पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता	श्री राजीव प्रचंडिया	२०२
❁ शब्द विचार	डॉ. धन्नलाल जैन	२०७
❁ जैन दर्शन में प्रयुक्त कतिपय दार्शनिक शब्द	डॉ. (श्रीमती) अलका प्रचंडिया	२१०
❁ सप्तधातु और आधुनिक विज्ञान	डॉ. सज्जन कुमार	२१३
❁ मानवीय मूल्य और जैनधर्म	डॉ. (श्रीमती) शारदास्वरूप	२२०
❁ हेमचन्द्राचार्य और उनका सिद्ध हेम व्याकरण	प्रो. अरूण जोशी	२२४
❁ बुद्धि का वैभव	डॉ. आदित्य प्रचंडिया	२२९
❁ जैन धर्म में तप का स्वरूप	मुनि श्री अमृतचन्द्र	२३४
❁ जैन धर्म में तप का महत्व	श्री चाँदमल बावेल	२३७
❁ जैनमत में पुनर्जन्म	श्री प्रह्लादनारायण वाजपेयी	२४४
❁ वर्तमान संदर्भ में शाकाहार की उपादेयता	श्रीमती किरण सिरोलिया	२४७
❁ जैन धर्म में तप	सौ. सुनीला नाहर	२५०
❁ कुचेरा और जैन धर्म	श्री जतनराज मेहात	२५०

* * * * *

महासती द्वय स्मृति ग्रंथ.

श्रद्धा सुमन



जैन धर्म दिवाकर, राष्ट्रसंत आचार्य सम्राट

• पू. श्री आनन्द ऋषि जी म.सा. का संदेश

भारतीय संस्कृति में नारी को महत्वपूर्ण, गरिमामय स्थान दिया गया है। नारी को नर की खान बताकर उसे गौरवान्वित एवं सम्मानित किया था। भगवान महावीर ने चतुर्विध संघ में उसे स्थान देकर साधना का समान अधिकार प्रदान किया था। नारियों ने समय-समय पर पुरुषों को उबारा है।

राजुल ने स्थनेमि जैसे महारथी को पथ भ्रष्ट होने से बचाया था। याकिनी महत्तरा ने हरिभद्र के घमण्ड-दर्प में आये हुए ज्ञान के मद को उतारा था। ऐसे अनेकानेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

आज भी नारी धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे ही है। उन्हीं साध्वी परम्परा की शृंखला में महासती जी श्री कान कुंवर जी म. एवं श्री चम्पा कुंवर जी म. भी हैं।

राजस्थान की पुण्य भूमि में जन्में एवं आंध्र, कर्णाटक, तामिलनाडु, मध्यप्रदेश आदि विविध प्रांतों को स्पष्टि हुए आगे बढ़ते रहे। दोनों साध्वियों में परस्पर प्रेम, स्नेह, वात्सल्य था। सरल, नम्र एवं भद्रिक परिणामी थी। उनकी वाणी में माधुर्य था। व्यवहार में कौशल्य था तथा सभी को साथ लेकर चलने की भावना थी। उनका अध्ययन गहरा था। दोनों सतियों का पांच मास के अंतराल में स्वर्गवास होना उनके आपसी स्नेह का द्योतक है।

सती-द्वय की पुण्य स्मृति में ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है, यह संतोष का विषय है। इस ग्रंथ के माध्यम से जनता उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से पूर्ण रूपेण परिचित होकर उनके आदर्श जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन को समुज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करेगी ऐसी हार्दिक अन्तराभिलाषा है।

अहमदनगर। दि. १०-१०-१९९१

पावन प्रेरणा स्रोत

• आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि, पीपाड़ सिटी

आज (६.८.९१) टेलीग्राम प्राप्त हुआ। जिसमें स्थविरा परम विदुषी महासती श्री कान कुंवर जी के समाचार पढ़कर अत्यधिक विचार हुआ। महासती जी पुरानी परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाली साध्वी रत्न थी। जिन्होंने सुदीर्घ काल तक संयम साधनाकर अपने जीवन को धन्य बनाया। जिनका पवित्र चरित्र जन-जन के लिए पावन प्रेरणा स्रोत रहा। जो मारवाड़ से विहार कर मद्रास जैसे सुदूर प्रांत में पधारी। जहां भी पधारी धर्म की अपूर्व प्रभावना की। आज उनका भौतिक देह हमारे बीच नहीं है किन्तु उनका यशः शरीर आज भी जीवित है और भविष्य में भी सदा जीवित रहेगा। उन्होंने अपने जीवन काल में शासन की जो सेवा की है, वह कभी भुलाई नहीं जा सकती।

यहां पर स्मृति सभा में महासती श्री कान कुंवरजी म.सा. के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया और चार लोग्सस का ध्यान कर महासती जी के प्रति श्रद्धा-सुमन समर्पित किये गये।

महासती श्री बसंतकुंवर जी, महासती श्री कंचनकुंवर जी महासती श्री चेतनप्रभाजी, महासती श्री चन्द्रप्रभाजी, महासती श्री सुमन जी आदि आप सभी सती मंडल को बड़े महासती जी के स्वर्गवास से खेद होना स्वाभाविक है, क्योंकि वे छत्र स्वरूपा थी। आप सभी की संयम साधना और आध्यात्मिक प्रगति कराने में उनका अपूर्व योगदान आप सभी को मिला है। इसलिये सद्गुरुणी जी के वियोग से मन खिन्न होना स्वाभाविक है, पर आप सभी ज्ञानी हैं। अतः चिंता नहीं चिंतन करें और अतिजात शिष्या बनकर सद्गुरुणी जी के नाम को अधिक से अधिक रोशन करें, यही हमारा संदेश है।

ऐसी विषम परिस्थिति में अपने आपको अकेला न समझे, आप हमारे हैं, जो कोई भी कार्य हो बिना संकोच सूचित करें।

* * * * *

निर्धूम-ज्योति

• आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

स्वभाव में सरलता, व्यवहार में नम्रता, वाणी में मधुरता, मुख पर सौम्यता, नयनों में तेजस्विता, हृदय में पवित्रता जिनके जीवन में जगमगा रही हो, वह जीवन जन-जन के आस्था का केन्द्र होता है। मानव का उन्नत और समुन्नत मस्तिष्क उनके चरणों में सहज नत हो जाता है। महासती चम्पाकुंवर जी का जीवन ऐसा ही जीवन था। चम्पा के फूल की तरह ही उनका जीवन सद्गुणों की सौरभ से महक रहा था।

उनका स्वभाव बहुत ही सरल था। छल प्रपञ्ज और माया का अभाव था वे जैसी बाहर थी वैसी अन्दर थी। दूसरी विशेषता यह थी कि उनकी वाणी में सहज मधुरता थी। जो जन-मन को चुम्बक की

तरह खींच लेती थी। पराया भी सहज में अपना बन जाता था। वे आवश्यकतानुसार ही बोलती थी। वार्तालाप में कहीं पर भी अहंकार झलकता नहीं था। हल्के शब्दों का प्रयोग तो वे करना ही नहीं जानती थी। वे तौल-तौल कर बोलती और परिमित शब्दों का ही प्रयोग करती थी। उनके जीवन की तीसरी विशेषता थी कि उनका व्यवहार अत्यधिक मधुर और नम्र था। वे विदुषी थी पर अपने वैदुष्य का अहंकार उनके मन में नहीं था। बड़ों के साथ बहुत ही नम्रता के साथ पेश आती और छोटों के साथ भी इस प्रकार का व्यवहार करती कि छोटे उनके व्यवहार से आल्हादित हो जाते थे। चतुर्थ विशेषता यह थी कि उनका चेहरा चम्पा के फूल की तरह सदा खिला रहता था। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में वे सदा समभाव में रहती थी।

आज भले ही उनका भौतिक देह हमारे हमारे बीच न रहा हो किन्तु यशः शरीर से वे आज भी जीवित हैं और भविष्य में भी सदा जीवित रहेगी। उनके स्वर्गवास से एक ऐसी विदुषी साध्वी की क्षति हुई है जिसकी पूर्ति होना बहुत ही कठिन है।

मारवाड़ की धरती में वे जन्मी, उनके जीवन का बाल्यकाल राजस्थान की धरती में विकसित हुआ। संयम साधना को स्वीकार करने के पश्चात् भारत के विविध अंचलों में पैदल परिभ्रमण कर उन्होंने जैन शासन की प्रबल प्रभावना की। जीवन की सान्ध्य-वेला में वे मद्रास विराजी। अपने प्रभावशाली प्रवचनों से जन-जन के मन में श्रद्धा की ज्योति प्रज्वलित की और अन्त में मद्रास की माटी पर ही समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया।

भारत के तत्त्वदर्शी महर्षियों ने उसी जीवन को सार्थक माना है जो दोष विवर्जित है। दोषों की कालिमा से मुक्त है। निर्धूम ज्योति की तरह है। महासती चम्पाकुंवर जी ने अपने जीवन को इस तरह से जीया जिसमें किसी प्रकार का दाग न लगा। इसीलिए श्रद्धालुगण श्रद्धा से उत्प्रेरित होकर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे हैं। ग्रन्थ के माध्यम से असीम भावों को ससीम शब्दों में व्यक्त करने का लघु प्रयास किया जा रहा है। इस प्रयास में वे पूर्ण सफल बने, यही मंगल कामना है। भावना है।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से इतिहास के वे अज्ञात पृष्ठ प्रकाश में आयेंगे जिससे जैन धर्म की प्रबल प्रभावना होगी।

* * * * *

आचार्य श्री पद्मसागर सूरीश्वरजी म.सा. का शुभकामना संदेश

महासती द्वय स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन होने जा रहा है, जानकर प्रसन्नता हुई। सम्पादन का कार्यभार आप जैसी सुयोग्य लेखिका को सौंपा गया है, वह प्रशंसनीय है। जैन परम्परा, इतिहास, दर्शन एवं तत्त्वज्ञान का विषय उसमें प्रस्तुत किया जायेगा जो विद्वानों के लिए उपयोगी बनेगा। इस ग्रन्थ संपादन के लिए मेरी शुभ कामना।

* * * * *

गुणों की मधुर महक

• उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि

मैंने से बीज में विराट् वृक्ष का अस्तित्व छिपा रहता है। काली-कलूटी सीप में चमचमाता मोती रहता है। घनघोर बादलों में पानी का सागर लहलहाता है। वैसे ही व्यक्ति में व्यक्तित्व छिपा रहता है। महापुरुषों के सम्पर्क से उस व्यक्तित्व में निखार आता है। एक दिन संसार जिसे सामान्य व्यक्ति समझता है, वही व्यक्ति योग्य निमित्त पाकर जन-जन का आराध्य केन्द्र बन जाता है।

महासती चम्पाकुंवर जी भारत के उस रंगीले प्रदेश में जन्मी जिसे लोग राजस्थान के नाम से जानते पहचानते हैं। राजस्थान की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्पराएं अपने ढंग की अनुठी हैं। जहां कला और साहित्य का मधुर संगम है। यहां की धरती मैदानी पहाड़ी और रेतीले टीलों से मण्डित है। रेतीले टीलों पर उभरती हुई लहरों को निहारकर नेत्र कभी थकते नहीं। पहाड़ी धरती जहां दृढ़ता और स्थिरता की प्रतीक है वहां रेतीली धरती लचीलेपन की द्योतक है। उसी धरती में चम्पा कुंवर जी का जन्म हुआ। इसीलिए वे कठोर भी थी, और मृदु भी थी।

जीवन के ऊषा काल में ही संयम साधना की ओर उन्होंने मुस्तैदी से कदम बढ़ाये और निरन्तर आगे बढ़ती रही जिससे वे जन-जन की श्रद्धा केन्द्र बन गईं।

आज भले ही उनका भौतिक देह हमारे बीच नहीं है किन्तु यशः शरीर से वे आज भी हमारे बीच हैं और सदा-सर्वदा वे जीवित रहेगी और अपने गुणों की मधुर महक से जन-जन के मन को आल्हादित करती रहेंगी।

आज आवश्यकता है उनके सद्गुणों की अपनाने की। यदि उनके सद्गुण अपनाकर संघ समुत्कर्ष के मार्ग में आगे बढ़ सकें, स्नेह सद्भावना का संचार कर सकें तो उनके प्रति सच्ची श्रद्धार्चना होगी। श्रद्धालुओं का दायित्व है कि संघ समुन्नति के लिए वे सर्वार्थना समर्पित हों।

* * * * *

समाज पर उपकार

आपके प्रधान संपादकत्व में महासती पं. कानकंवरजी म.पं. चम्पाकुंवर जी. महासती द्वय का स्मृति ग्रंथ निकल रहा है बड़ी प्रसन्नता की बात है। श्रमणी संघ में इनके स्वर्गवास से बड़ी कमी हुई है। महासतीजी ने जैन समाज पर बड़ा उपकार किया है। राजस्थान से लंबा विहार करके मद्रास तक पहुंचे और यहाँ भी धर्म का प्रचार किया।

चेपेरी, मद्रास

• उपाध्याय श्री केवल मुनि

ज्योति से ज्योति प्रज्वलित हो

• उपाध्याय श्री विशाल मुनि, मद्रास

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि महान साध्वी महसती श्री कानकुवंरजी म.सा. एवं पूजनीया महासती श्री चम्पाकुवंर श्री म.सा. की चिर स्मृति के लिये एक स्मृति ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है। जिन महापुरुषों का हम पर उपकार है, उनके प्रति सतत श्रद्धाशील रहना महान आत्माओं का स्वभाव होता है। जिन्होंने अपने जीवन में सतत् परोपकार किया है, समाज या देश की सेवा की है, उनका जीवन मरणोपरान्त श्रद्धालुओं के मन प्रांत में जीवित ही रहता है। उनके प्रति सद्भावना, श्रद्धा निरंतर उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। उस श्रद्धातिरेक का परिणाम होता है स्तवन, श्रद्धासुमन स्मरण गुण तथा जीवन विवरण चरित्र लेखन तथा स्मृति ग्रंथ प्रकाशन।

महान आत्माएं सदैव ऐसे कार्य करते रहते हैं जो समाप्त होने पर भी आदर्श एवं अनुकरणीय होते हैं। उन कार्यों की पुनरावृत्ति परिवार समाज देश राज्य के लिए सुखद होती है। उन कार्यों से ही आनेवाली जनता के मन में संस्कारों की श्रृंखला पैदा होती है। अनेक विचार विवेकशील आत्मायें महापुरुषों के जीवन दर्शन का अध्ययन कर अपने जीवन का परिनिर्माण करने में सक्षम हो जाते हैं। इसी को संस्कृति एवं साहित्य का वैभव कहा जाता है। इसी श्रृंखला में आर्या श्री चन्द्रप्रभाजी का एक प्रयत्न है। महासती श्री कानकुवंरजी म.सा. एवं महासती श्री चम्पाकुवंरजी म.सा. की स्मृति में स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन।

महानगर मद्रास में चातुर्मास कल्प प्रवास एवं शेष काल प्रवास के दौरान ओजस्वी व्याख्यात्री महासती द्वय के दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। उनका जीवन एवं जीवन चर्या साधुतः साधना के सौरभ से सुरभित थी। साध्वी परिवार की सुव्यवस्था में आपका जीवन बहुत ही अनुकरणीय लगा। आप में सुयोग्य प्रशासनिक क्षमता थी। जिस प्रकार आपका स्नेह-वात्सल्य था उसके साथ-साथ आपका प्रभाव एवं रोब भी था। आप स्वयं सेवा स्वाध्याय तथा अन्यान्य आध्यात्मिक कार्य कलाओं में लगी रहती थी, परिणामस्वरूप आपका शिष्यावर्ग स्वाभाविक रूप से उस ओर संलग्न रहने की कोशिश में लगा रहता था। आप सुन्दर सुव्यवस्थित, व्यावहारिक, प्रेरणादायी जीवन चर्या के पक्षधर थे। आपके मन में समाज की समुन्नति की चिन्ता भी रहती थी। यही कारण है कि समय-समय पर श्रावक-श्राविकाओं को सत्कार्यों की प्रेरणा एवं अनेक विद्या कार्यक्रम प्रदान करते रहते थे।

महासती द्वय अपने पीछे एक सुयोग्य शिष्या परिवार छोड़ गए हैं। उनका शिष्या परिवार उनके जीवन आदर्श को अपना पथ बनाकर आगे बढ़े, साथ ही उनके जीवन में वह शक्ति प्राप्त हो जिसमें महासती गुरुणी जी म.सा. के स्वप्नों को उनकी कार्य वैधियों को जो भी वे अधूरा छोड़ गई हैं या जो कुछ उनके मन में समाज सेवा तथा साधना का भाव उसे पूरा कर सकें।

उनका आदर्श जीवन सबके लिये प्रेरणादायी है। उस ज्ञान ज्योति से ज्योति प्रज्वलित होती जाये, जिन शासन की महिमा बढ़े।

* * * * *

शुभ संदेश

• श्री कुन्दन ऋषि मंत्री एवं सलाहकार

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता भी रमण करते हैं, इस काव्य से नारी की गौरव गरिमा की जानकारी होती है। नारी ने समय पर पुरुष को उभारा है, सम्बल दिया है और संमार्ग पर लाया है उसका बहुत बड़ा उपकार है फिर भी नारी ने दिल खोलकर पुरुष प्रधान संस्कृति को स्वीकार किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय सन्त तुलसी की पत्नी ने यदि समय-समय पर शब्दों की चोट नहीं की होती तो वे विषय लम्पट ही बने रहते। रथनेमीजी जो राजीमती को देखकर संयम मार्ग से विचलित हुए थे, उन्हें राजमति ने धिरव्यु ते जसो कामी, वन्त इच्छसी आवेरु, सेयं ते मरण भवें इन तीन वाक्यों से उका जीवन बदल दिया था। जिस तरह मदोन्मत्त हाथी अंकुश से वश में होता है उसी तरह वाणी के अंकुश से रथ नेमी संयम से में स्थिर हो गए।

याकिनी महत्तरा ने हरिभद्र की विद्वता के मद को गाल दिया था एवं महान सन्त बना दिया था। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। उसी उज्ज्वल नारी परम्परा को अक्षुण्ण रखनेवाली साध्वी रत्न श्री कानकंवरजी एवं चम्पाकंवरजी थी।

महासतीजी का जन्म राजस्थान में हुआ, श्री जयमलजी म. की सम्प्रदाय में दीक्षित होकर वर्षों तक राजस्थान की जनता को जगाते रहे। मध्यप्रदेश आन्ध्रा, कर्नाटका क्षेत्रों को स्पशति हुए मद्रास पहुंचे एवं जनजागरण कर अनेक लोगों को प्रतिबोधित किया, अपने मधुर व्यवहार निस्पृहता एवं मधुरवाणी से धर्म का प्रचार प्रसार किया।

अंतिम समय में शुद्ध भावना द्वारा नश्वर शरीर को छोड़ा, नश्वर शरीर द्वारा जो आत्मोन्नति के कार्य हुए हैं वे उनके नाम को चिरस्थायी बनाने वाले होंगे। इस स्मृति ग्रंथ द्वारा उनके जीवन चरित्र से अनेक भव्य आत्माओं को प्रेरणा बनी रहें। यही शुभकामना।

* * * * *

कमी हो गई

यह समाचार जानकर अत्यंत खेद हुआ कि आपकी गुरुणी जी सरलमना व्यवृद्धा महासती जी श्री कानकुंवरजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया। यह आप सती वर्ग के लिए दुख का विषय है ही पर श्रावक-श्राविका के लिए भी कम दुःख की बात नहीं, ऐसे शान्त स्वभावी सतीजी की कमी पूरे संघ में अखर रही है पर क्रूर काल के आगे किसी का भी जोर नहीं, ऐसे सतीजी भाग्यशाली थे जिन्होंने लम्बे समय तक संयम साधना करते हुए समाज की सेवा की है। अन्तिम समय में उनके भाव उज्ज्वल रहे हैं। आप जैसे सती वर्ग को तैयार किया है, अब आप सभी की जिम्मेदारी बढ़ गई है।

(६)

आप सभी सुसंगठित रहकर समाज की सेवा में अग्रसर रहकर गुरुणीजी का नाम रोशन करें, यही गुरुदेवों की भावना है।

पुनः पू. प्रवर्तक श्री जी पू. उप प्रवर्तकश्रीजी व श्री महेन्द्र मुनिजी ने महासतीजी श्री वसन्ताजी म.सा. आदि ठाणा ६ की बहुत २ सुख साता पुछवायी है और साथ ही इस महान दुःख को झेलने की शक्ति जिनशासन आप में प्रदान करें। महासती जी श्री कानकुंवरजी म.सा. जहां पर भी उनकी आत्मा हो वहां पर उनकी आत्मा को शांति मिले ऐसी हमारी शुभ भावना है।

• प्रेषक केवलचंद धोका, पाली

* * * * *

श्रद्धांजलि

आपका तार मिलते ही दिनांक ५-८-९१ को पूज्य प्रवर्तक श्री रूपचंदजी म.सा पूज्य उप प्रवर्तक श्री सुकनमलजी म.सा आदि ठाणा के सांनिध्य में शोक सभा मनाई गई है। जिसमें सम्वेदना प्रकट की गई है व पाँच-पाँच नवकार मंत्र का उच्चारण करके मौन रख श्रद्धांजलि दी गई। स्व. आत्मा महासती श्री कानकुंवर जी म.सा की आत्मा को शान्ति मिले ऐसी जिनेश्वर देव से प्रार्थना की गई।

• प्रेषक-केवलचंद धोका, पाली

* * * * *

आशीर्वचन

• श्री रत्न मुनि

श्रमण संघीय सलाहकार

आगमों में संघ को समुद्र की उपमा दी है। जैसे समुद्र (रत्नाकर) में अनेक प्रकार के मणि, माणक, रत्न आदि बहुमूल्य अपार खजाना छुपा रहता है। उसमें गोता लगाने वाले उन बहुमूल्य मणिओं को प्राप्त कर अपनी दरिद्रता दूर कर भौतिक समृद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

इसी प्रकार संघ में में त्यागी, वैरागी, सेवानिष्ठ तपस्वी, प्रवचन प्रभावक, ज्ञानी-ध्यानी, योगी, धर्म प्रचारक आदि अनेक प्रकार के श्रमण-श्रमणी रत्न हैं।

श्रमण संघ का यह एक सौभाग्य है कि अनेक प्रतिभाशाली मुनिराजों के साथ श्रमणी वर्ग भी है। वे संघ की गरिमा को बढ़ाने में अग्रणी रही है। महास्थविरा श्री कानकंवरजी महाराज एवं विदुषी महा साध्वी श्री चम्पाकंवरजी महाराज ऐसे श्रमणी रत्नों में से थी। उन्होंने अपने संयमी जीवन के सौरभ से श्रमण संघ के गौरव को बढ़ाने के साथ स्व- पर कल्याण करते हुए चारित्रिक जीवन को कृतार्थ किया है। आपके सद्गुणी संयमी जीवन की सौरभ को सुरमित करने हेतु आप की प्रशिष्या शिष्या साध्वी श्री चन्द्रप्रभा, (M.A.) प्रयास सफल हो ऐसी शुभेच्छाओं के साथ।

उनकी स्मृति अमर हैं।

• श्रमण संघीय महामंत्री श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद', चितौडगढ़

श्रमण श्रमणी विश्व जीवन के प्रतीक है। प्राणिमात्र के प्रति सकरुणा भाव लिये निरन्तर अध्यात्म यात्रा के पथिक श्रमण श्रमणी विश्व मानव है। सत्ता और संग्रह से परे सम्पूर्ण विरक्ति- अहर्निश निमग्न ऐसे पूज्य चारित्र आत्मा विश्व की अनमोल धरोहर है।

निःस्वार्थ लोक जीवन को प्रतिपल अम्युदय की दिशा देने वाले संत सती लोक मंगल के प्रणेता है। यह धरा उनसे धन्य है।

परमार्थ ही जिनका लक्ष्य रहा है वे स्वतः मंगल स्वरूप होते हैं। वे देह से व्यतीत होने पर भी अमर होते हैं। उनके संदेश अमर होते हैं, **उनके उपदेश अमर होते हैं।** श्रमणीरत्ना विदुषी महासतीजी श्री कानकुंरजी म.सा. और उन्ही की पसुशिष्या श्रमणीरत्ना महासती जी श्री चमदुकुंरजी ने विश्व धरातल पर सर्वदा स्मृत है, अमृत है। उनकी साधना उनके ध्येय और उनका प्रकर्ष चिंतन संपर्कशील महानुभावों के हृदय पट पर अंकित है। उनकी स्मृति अमरहैं।

उनका सुदीर्घ संयमी जीवन एक मंगल आदर्श का प्रारूप रहा है। अच्छा हो हमारा यह जन जीवन उनके जीवन्त आदर्शों से प्रेरणा लेकर धन्य-धन्य होता है।

* * * * *

सरल स्वभावी महासतीजी

• मुनि सुमति प्रकाश वड़वलनी मद्रास

यहां स्थिविरा महासती जी का स्वर्गवास हम सब के लिये बहुत ही दुःखद रहा। मुझे तो पुनः दर्शन करने का भी सौभाग्य नहीं मिला। आप सभी पुण्यवान हो जो उनकी सेवा तथा दर्शन का समय मिला। महासतीजी बहुत ही सरल स्वभावी मधुरभाषी थी। उनकी गुण गाथा हमेशा-हमेशा के लिए स्मृति कोश में सुरक्षित रहेगी।

सभी मिलकर उनके नाम को रोशन करें। अपने ज्ञान ध्यान की वृद्धि करें। यही शुभ भावना है।

संदेश

• प्रवर्तक श्री रूपचन्दजी म.सा.

प्रकाशन का आयोजन उनका होता है जिनके जीवन में प्रेरक प्रसंगों की अधिकता हो ऐसा जीवन किसी का भी हो सकता है संत, सती श्रावक या सेवक। “महासती द्वय स्मृति ग्रन्थ” का प्रकाशन एक ऐसा ही आयोजन है महासती द्वय पू. श्री कानकंवर जी म. एवं स्व. श्री चम्पाकंवरजी म. का जीवन भी सेवा सरलता एवं सुविचिता के त्रिवेणी संगम स्वरूप रहा, महासती द्वय ने अपने संयमी जीवन में जिन शासन की महती प्रभावना की। उत्तर भारत मध्यभारत और दक्षिणी भारत का अधिकांश क्षेत्र महासती द्वय का विचरण क्षेत्र एवं धर्म कार्य क्षेत्र रहा। महासती द्वय स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन कार्य सफल हो, पाठकों को उक्त ग्रन्थ से जन-जीवन उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो इसी सद्भावना के साथ-

* * * * *

श्रमणी समुदाय की क्षति

यहां पर जयगच्छाधिपति आचार्य कल्प श्री १००८ श्री शुभचंद्र जी म.सा. आगम विवेचक पं. र. श्री पार्श्वचंदजी म. सा. ठाणा ४ से सुख शांति पूर्वक चातुर्मास विराजमान है। आपको धर्म ध्यान करते रहने को फरमाया है।

विशेष आज किसी दर्शनार्थी श्रावक से ज्ञात हुआ कि आपके वहां विराजित महासतीजी श्री कानकंवरजी काल धर्म को प्राप्त हो गये।

महासतियाँजी पुरानी पीढ़ी की अनुभवी विचारशील श्रमणी थी। सरल प्रकृति की थी। श्रमणी समुदाय में क्षति हुई। यहां से गुरुदेव ने उनकी शिष्याओं से धैर्यपूर्वक उनके सदगुणों की अनुगामी बना ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि करने का संदेश फरमाया है। आप लोगों पर जिम्मेदारी का भार आ गया है। जिसे स्वविवेक द्वारा भलीभांति निभावें। पूर्वजों की धवल कीर्ति है उसे और अधिक बढ़ावों यही आप से अपेक्षा है।

चातुर्मास सम्पन्न होने के पश्चात अधिक से अधिक मर्यादा पूर्वक विचरण करके जिनशासन की प्रभावना करें साथ ही सम्यक श्रद्धान वाले ज्ञान ध्यान की अभिवृद्धि करें।

प्रेषक-विमलचंद सांखला
सांडिया जिला पाली (राज.)

* * * * *

उत्तरभारतीय प्रवर्तक श्री पद्मचन्द्रजी म.सा. की भावना

स्मृति ग्रंथ की परम्परा में आप महासती श्री कानकुवंरजी म.सा एवं महासती श्री चम्पाकुवंरजी म.सा. की पावन स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए एक स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन कर रहे हैं। आप का यह कार्य प्रशंसनीय है। महासतीजी द्वय जीवनभर अहिंसा प्रेम और सेवा भाव का प्रचार करती रहीं। अज्ञान अंधकार को दूर करने का आदरणीया साध्वीजी द्वय ने अच्छा प्रयास किया था। आशा है, प्रकाशित होने वाला स्मृति ग्रंथ भी उनकी इसी कार्य प्रणाली को जीवन्त बनाने में सक्षम होगा। ऐसी भावना पूज्य गुरुदेव उ.भा. प्रवर्तकश्री जी. भा. ने प्रकट की है।

प्रेषक-डॉ. सुव्रत मुनि. गन्नोर मंडी
जिला सोनीपत

* * * * *

विशिष्ट व्यक्तित्व की धनी

• श्री अजित मुनि. रत्नाम (म.प्र.)

आज आपकी ओर से आई प्रेस विज्ञप्ति के द्वारा ज्ञात हुआ कि वयोवृद्धा महासती श्रीकानकुवंरजी म. का ४ अगस्त ९१ को ससंथारा स्वर्गवास हो गया। सूचना से अत्यधिक हार्दिक खेद हुआ। ऐसे प्रसंग से मन की व्यथा सहज ही बढ़ जाती है। इसे साम्प्रदायिक संदर्भ में क्षति की स्थिति ही कहेंगे। काल ने अंततः अपनी क्रूर करनी में अपना पलड़ा भारी रखा। काल क्या जाने कि उसके ऐसे दुर्दात वर्ताव से संघ समाज में कैसी रिक्तता व्यापेगी? इस घड़ी का स्वागत पूर्णतः अध्यात्मचेता प्राणी ही कर पाता है जो सतत जागृति बनाए रखे वे अत्मा ही जगति में धन्यवाद की पात्रता रखती है।

मनसा/वाचा/ कर्मणा की त्रिपथगा पर जो ऊर्ध्वारोहित होकर शिवालय की शाश्वत अमरता में ज्योति लीन हो जाए। वही आत्मा हमारे लिए श्रद्धेय हो जाती है। संयम की महक से संवारना एवं स्वाध्याय प्रज्ञा से निरन्तर प्रक्षालन करना जिनका एकमात्र जीवन लक्ष्य है। पार्थिवता के प्रति निजसंगता एवं संसारिकता के प्रति निर्ममत्व भाव का सुन्दर प्रणयन हो ज्ञान/दर्शन/ चारित्र के त्रिगुहे पर जो शिखरायमान हो, सरल और सहजता जिन के सान्निध्य में विनम्रता के साथ सन्नद्ध हो। आत्म संकल्प की गरिमा से जिनकी स्वर/गति ओत-प्रोत हो। जो जन मानस में बोधि ज्योति से जगमगाहट विकीर्ण कर दे। जो साधना की संबल निधि हो, बस ऐसी ही विशिष्ट व्यक्तित्व की धनी हमारी महासती श्री कानकुवंरजी म.थी।

स्वर्गीया महासतीजी म.से ब्यावर/जावरा में दर्शन/वार्ता के अवसर आए। हर शब्द में आत्मीयता घुली रहती, हर व्यवहार में वात्सल्य रसान्विति रहती। हर आग्रह में अनुनय की महानता दर्शित होती।

आपने विचरण की जिन लम्बी दूरियों को नाप कर छोटा बनाया, वह आपके अदम्य साहस/ उत्साह का प्रतीक है। आपके संयम साधना की षष्टि पूर्ति यह उजागर रूप से प्रमाणित करती है, कि जिन

शासन प्रभावना के स्वरूप को आपने विस्तृत आकार प्रदान किया है। वे सदा आत्म प्रदर्शन से दूर रह कर आत्मसात करने में रुचि रखती रही। उन्होंने अपनी यात्रा में तीव्रता समा दी। वे हम सभी को आँखों से भी ओझल होकर अग्रसर हो गई।

उनका भावात्मकपक्ष सराहनीय/ प्रशंसनीय ही बना रहेगा। उनकी दी गई प्रेरक सीख से जन मानस की आस्था ऊर्जा में नवीन उद्भावनाएं प्रस्फुरित होती रहेगी। मेरी ओर से उनके प्रति इन स्मृति पलों में सम्यक भावांजलि का उमड़ता /मुखरता सैलाब महाभाग, शासन पुत्री, वयोवृद्धा महासतीवर्या श्री कानकुवंरजी म. की विरागी वेदिका पर सादर समर्पित है।

दिवंगता महासतीजी म. के सुयोग्य शिष्या मंडल से सत्व स्नेह सहित अनुशंसा है कि वे अपनी महामना श्रद्धेया गुरुवर्याश्री के व्यक्तित्व प्रभावना को लक्ष्यगत रखते हुए जय परम्परा की पावनतम वैजयंती फहराने में सर्वांगीण कुशल क्षमता से परिपूरित हैं। उनकी स्मृति थाती, विश्व की अनिर्वचनीय शोभा बनें।

* * * * *

समर्पित साधिका

• श्री अजित मुनि, रतलाम (म.प्र.)

चतुर्विध संघ की स्थापना तीर्थ प्रवर्तन की स्थापना प्रक्रिया है। यही संघ तीर्थ महिमावंत होता है। संघ माहात्म्य की ओजस्विता का स्वरूप उसकी शाश्वत मर्यादा में दृश्यमान है। इस मर्यादा-महक से जब भी प्राणी अनुप्राणित होता है, तो उसकी शक्ति उज्ज्वलता सर्वोपरि पावनतम स्थिति की उपलब्धि कर लेती है। यही आराधना/ उपासना का मोक्ष का मार्ग है मोक्ष मार्ग के यात्रिक के सम्मुख प्रत्येक प्रकार के पल अपनी क्षमता के दल-बल के साथ आते हैं। किन्तु साधक हर प्रसंग पर अपनी साम्यभाविता के बेजोड़ निखार से अपनी स्वयं सिद्ध अपराजेयता प्रमाणित कर देता है। ऐसी विरलतम सा नी से विश्व चकाचौंध हो जाता है। इसे हमारी छद्मस्थ दृष्टि चमत्कार मान लेती है।

संघ प्रवृत्ति सदा से संयम निष्ठागत विधि निषेध के माध्यम से संचालित रही है। जब उपासना सम्मत जीवन में आचार ऊर्जा प्रस्फुटित होती है, तो उसकी ऊँचाई/गहराई/ अमाप होती है। गणनीय अंक का तो प्रश्न ही नहीं होता है। इस प्रवृत्ति प्रवाह का आचमन, लक्ष्य संकल्प सिद्धि को परिपुष्ट ही करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए बाधा का कोई अर्थ ही नहीं होता है। वह अपने ध्येय पथ पर दृढ़ गति से अग्रसर होता ही चला जाता है। वहाँ पीछे छूटे हुए से अपना कोई लगाव नहीं रखता है। फिर आत्मतत्त्व की उत्कर्षणमयता में लवलीन हो जाना ही शेष विकल्प बचा रहता है। यही समग्रता की सम्पूर्णता है।

संघ सदस्य उसके संविधान की सक्रियता से संषक्त रहता है। भगवान महावीर के इस चतुर्विध संघ में तहगत किंचित भी भिन्नता नहीं पाई जा सकती है।

सैद्धांतिक आचरणगत जो नियम पुरुष के लिए हैं। वही नियमाधिकार नारी के लिए भी सुरक्षित है। धार्मिक व्यवहार में मूलतः भेद-रेखा का कही भी विभाजन नहीं है। यह एक गौरवान्वित विशिष्ट तथ्य है। जयगच्छीय गुरुपरम्परा के पथ चिन्हों पर आगत स्वनामधन्य महासती श्री चम्पाकुवंरजी म. की स्थान

उपलब्धि उनकी अपनी एक विशिष्टता रहेगी। उन्होंने संयम वृत्ति को मनसा/वाचा/कर्मणा द्वारा साकार किया। वे अपने चंपईवर्णों व्यवहार/ वाणी से प्रत्येक जन मन को प्रेरित/प्रभावित करती रही। उनकी उपासना की मधुर महक ने प्रत्येक मानस में नयी स्फूर्ति चेतना से एक जगमगाहट की सरसाई बसा सरसादी।

स्वर्गीया महासती जी म. मारवाड से महाकौशल म.प्र.की ओर विचरण हेतु अग्रसर होते हुए जावरा (म.प्र.) आई थी। तभी उनसे वार्ता करने का अवसर आया था उनकी मानस भूमि में सरलता/वार्ता में आत्मीयता/ गुरुत्व के प्रति समर्पण/श्रद्धाशीलता की महनीय भावात्मकता से ओत-प्रोत रचनात्मक स्थिति के दर्शन होते थे।

महासतीजी म. संघ तीर्थ की एक साधिका सदस्या रही। उनकी श्रद्धा स्मृति में ग्रंथायोजन की साकारता के उपक्रम में सभी जुटे हुए हैं। आप सभी की शुभद लक्ष्य पूर्ति के माध्यम से जन-दर्शन में जिन संस्कृति की विरासत स्थापित हो यह श्रेयस्कर कामना-कल्पना है।

* * * * *

इच्छा अधूरी रह गई

• श्री नमन मुनि, मल्लेश्वरम्

पूज्या महासतीवर्या श्री कानकुवंरजी म.सा. की स्वर्ग गमन की सूचना ने संत मंडल को स्तब्ध कर दिया। दुःखी हृदय के लिए अपनी ओर से सांत्वना प्रकट करता हूँ। मद्रास प्रवास के समय की बहुत सी स्मृतियाँ स्मृतिकोश में सुरक्षित हैं। अभी कुछ समय पूर्व तो साध्वी रत्ना सरल मना श्री चम्पाकुवंरजी म.सा. की छत्र-छाया से वंचित हुए। फिर अब इतनी जल्दी बड़े गुरुणी जी का वियोग असह्य है। पर नियति इसकी जड़ में मट्टा डालना हमारे वश की बात नहीं।

पू. श्री कानकुवंरजी म.सा. के पास बैठकर सर चित्त से सुने अनुभूति के बोल मुझे बारबार उनकी स्मृति दिला रहे हैं। पू. साध्वीवर्या तो अपनी साधना में पवित्र थी। उनके जीवन की सौरभ को हम अपने जीवन में उतार सकें। तो जीवन के इस बोहिड में भी शांति आ सकेगी।

पू. गुरुदेवश्री सुमति प्रकाशजी म.सा. व पू. उपाध्याय श्री विशाल मुनिजी म.सा. आदि ठाण आपकी असह्य वेदना के क्षणों में आपके साथ थे। वे तो सभी मद्रास में थे। मैं दूर हूँ। मेरी महासतीजी के दर्शन करने की इच्छा भी अधूरी रह गई। अपनी ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

* * * * *

शत्-शत् श्रद्धांजलि अर्पणा

• मुनि श्री उत्तम कुमार (बैंगलोर)

महापुरुषों का जीवन अगरबत्ती के समान होता है। जैसे अगरबत्ती स्वयं जलकर राख बन जाती है। अपने अस्तित्व तक को मिटा देती है, उसी प्रकार महापुरुष भी अपने जीवन में आये हुए अनेक

भीषणतम परिषहों को सहन करते हुए भी जन-जन के लिए परोपकार का काम करते हैं। अपने दुःख की परवाह नहीं करते। उनका जीवन पर हिताय होता है। वे महापुरुष नारी के रूप में हो अथवा पुरुष के रूप में यहाँ गुणों की पूजा होती है, लिंग और वेष की नहीं।

पुरुष के रूप में तो अनेक महापुरुष प्रसिद्ध हैं ही पर नारियों में भी कमी नहीं है। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई राजस्थान की मीराबाई, महाराष्ट्र की जीजाबाई, एवं अन्य अनेक वीरांगनाएँ भारत माता की कुक्षि से अवतरित हुई हैं।

जिन शासन की साधिका परम विदुषी महासती श्री कानकुवरजी म.सा. जिनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। आपने अपने जीवन को तप त्याग और साधना में इस ढंग से लगाया था कि जिसके कारण आप क्षमाशील विनयवान और सरलता की प्रतिमूर्ति हो गई। आपके दर्शन सर्व प्रथम मई १९९१ में मद्रास के साहुकार पेठ में हुए थे। आपका विनम्रपन वाणी में शालीनता एवं आचरण में पवित्रता वास्तव में प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। आपने हम जैसे छोटे-छोटे सन्तों को भी अवर्णनीय सम्मान दिया। आप एक गंभीर मननशील साधिका थी। आपने अनेक शास्त्रों का एवं बहुत से थोकड़ों का तलस्पर्शी अध्ययन किया था।

आपकी वाणी में मिठास थी। आपने अपने जीवन के लम्बे समय तक शुद्ध एवं निर्मल चरित्र का पालन किया था। आपने संथम काल में महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, कर्नाटका एवं तामिलनाडू, आदि क्षेत्रों में पाद विहार करते हुए सम्पर्क में आये हुए अनेक मुमुक्षु आत्माओं को आत्म बोध से लाभान्वित कराया। ऐसी महान आत्मा का श्री संघ से बिछुड जाना जैन समाज के लिए बहुत बड़ी क्षति है।

आप के जीवन में अनेक परिषह आए फिर भी आपने साहस और धैर्य के साथ उनको सहन किया। आपकी ही शिष्या विदुषी श्री चम्पाकुवरंजजी म.सा. का आप के समक्ष ही स्वर्गवास होना बहुत ही कष्ट प्रद क्षण थे। ऐसे वक्त में भी आप स्थिर रही।

आपकी अनेक होनहार शिष्याएँ हैं जैसे कि सेवाभावी श्री बसंतकंवरजी म.सा., विदुषी श्री कंचन कंवरजी म.सा., श्री चेतन प्रभाजी म.सा., श्री चन्द्रप्रभाजी म.सा., मधुर गायिका श्री सुमन सुधा जी म.सा. एवं नव दीक्षिता श्री अक्षय ज्योति जी. म.सा. आदि साध्वी मंडल होनहार और समाज की गौरव है। आप लोगों से समाज बहुत कुछ आशा लगाये बैठा है। पाँच माह के अन्तराल में दो-दो विदुषी महासाध्वियों का स्वर्गवास होना समाज के लिए बहुत ही कष्ट की बात है।

अन्त में स्वर्गागामी साध्वी द्वय को शतः शतः श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए आप लोग जहाँ भी विराजमान हैं, सुख शांति की कामना करता हूँ और हार्दिक मंगल भावना भाता हूँ।

* * * * *

शुभ कामना

• अध्यात्म ध्यानी श्री सुरेश मुनि शास्त्री, पूना (महा.)

अध्यात्मयोगिनी गहन आगम ज्ञाता स्व. साध्वी श्री कानकुंवर जी म. (भुआजी) एवं साध्वी रत्ना परम विदुषी जिन धर्म प्रभाविका स्व. श्री चम्पाकुंवर जी म. (भतीजी) कुचेरा (राजस्थान) की दिव्य मणियाँ थी।

आप दोनों के दीक्षा प्रदाता मरुधरा मंत्री स्व. स्वामीजी श्री हजारी मलजी म. रहे हैं। श्री कानकुंवर जी म. महा. श्री सरदारकुंवर जी की शिष्या बनी तथा श्री चम्पाकुंवर जी महा. श्री कान कुंवर जी की शिष्या हुई।

आप दोनों का जीवन संयम साधना, ज्ञानाराधना में सतत लगा रहा। समाजोत्थान की दिशा में भी सक्रिय योग दान दिया। साध्वी तथा महिला-युवती जगत के लिए प्रेरक स्फूर्णा देने में आपका ओजस्वी श्रम-प्रयास रहा है। प्रकृति से सरल, प्रवृत्ति से सहज शांत मना, श्रमणी धर्म आचार विचार व्यवहार में कुशल वाणी से मधुर, उदारता में मृदु आत्म साधना में रत रहना ही आपके संयमी जीवन की सफलता रही है।

संयम सूर्य ध्यान योग निधि स्वामीजी श्री ब्रजलालजी म. श्रमण संघ के पूर्व युवाचार्य बहुश्रुत, आगमज्ञ शांत दांत पूज्य श्री मिश्रीमलजी म. 'मधुकर' के द्वारा जिन्होंने महान ज्ञान- कोष अनुशासन पद्धति प्राप्त की थी। आप दोनों ने अपना संयमी जीवन धन्य बनाया इतना ही नहीं आपकी गुरु बहिनों, शिष्या प्रशिष्याओं को भी वही सफल सबल मार्ग दर्शन दिया जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान में आपका श्रमणी परिवार जिन शासन की प्रभावना कर रहा है। आपका श्रमणी परिवार इसी तरह श्रमण संघ की महिमा गरिमा बढ़ाने में संलग्न रहेगा।

साध्वी श्री चन्द्रप्रभाजी म.एम.ए. अपनी गुरुणी तथा दादगुरुणीवर्या की पावन स्मृति को स्थायित्व देने हेतु स्मृति ग्रंथ का सम्पादन कर रही हैं। यह गुरुणी श्रद्धा के अनुकूल कर्तव्य है तथा वे साधुवाद के योग्य है। ग्रंथ प्रीत्यर्थ मेरी शुभकामना।

* * * * *

हार्दिक श्रद्धांजलि

• उपप्रवर्तक श्रमण श्री विनय कुमार 'भीम'
शिवपुर जिला भीलवाड़ा (राज.)

आज तार मिला कर्णकुहरों को शब्द बड़े ही अप्रिय लगे कि श्री कानकुंवरजी म.सा. का ४-८-९१ को मद्रास में स्वर्गवास हो गया। यह समाचार समाज के लिए गहरा आघात पहुंचाने वाला है।

(१४)

मार्च में श्री चम्पाकुवर्जजी म.सा. का स्वर्गवास हुआ था। और अगस्त में आपश्री का स्वर्गवास हो गया। भाग्य की विडम्बना बड़ी विचित्र है। आपके सिर पर जो हाथ गुरुणीजी का था वह उठ गया। हम आपके हृदय की पीड़ा को समझते हैं। आप धैर्य धारण कर इस असह्य पीड़ा को सहन करें।

आप मद्रास में हैं और मैं मेवाड में दूरी बहुत है अधिक लिखने की स्थिति में भी नहीं हूँ। मैं ऐसे समय में आपके साथ हूँ। अब आप उधर से विहारकर मारवाड की ओर पधारें। अल्प काल में ही दो परम विदुषी महासतियाँजी को क्रूरकाल ने हमसे छीन लिया है। इस समय धैर्य धारण करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। मैं अपनी ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

* * * * *

श्रद्धांजलि

• श्री मेहन्द्र मुनि 'दिनकर', पाली

वयोवृद्धा सरल हृदया महासती श्री कानकुवर्जजी म. सा. के देवलोक गमन के समाचार सुनकर हृदय को बहुत ही आघात लगा। जैन समाज एवं जयमल सम्प्रदाय में उनके स्वर्गवास से बड़ी भारी कमी हो गई है। कम समय में ही दो महान सतियाँ देवलोक हो गई। इससे बढ़कर और दुःख क्या हो सकता है। ऐसी दुःखमय घड़ी में हम आपके साथ हैं। आप धैर्य से काम लें। हम तो दूर हैं। यहाँ शोक सभा का आयोजन किया गया और उसमें श्रद्धांजलि अर्पित की गई। आप सभी को अपनी गुरुणी के बताये आदर्श मार्ग पर चलते हुए उनके अधूरे कार्यों को पूरा करना है।

* * * * *

अपूरणीय क्षति

• श्री आशीष मुनि शास्त्री, एम.ए.

परिवर्तिनी संसारे मृतः को वा न जायते,
सः जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्

परिवर्तनशील इस संसार की प्रत्येक चीज में परिवर्तन आता रहता है। आज का जन्मा हुआ बालक धीरे-धीरे किशोर युवा एवं वृद्ध अवस्था को प्राप्त होता है सुबह का खिला हुआ फूल शाम तक मुर्झा जाता है। आज की बनी हुई सुन्दर से सुन्दर मनोभिराम चीज भी समय आने पर ज़ीर्ण-शीर्ण ही नहीं होती है, बल्कि उसका अस्तित्व भी मिट जाता है। कहा भी है समय की शिला पर मधुर चित्र कितने किसी ने बनाये किसी ने मिटाये हम शास्त्रों में पढ़ते हैं एवं गुरुजनों से सुनते हैं कि अयोध्या नगरी का वैभव किसी समय अपने चरम उत्कर्ष पर था। जिसे देवराज की आज्ञा से देवों ने बसाया था। जहाँ पर ऋषभ प्रभु ने आसि मसि, कृषि आदि की सम्पूर्ण कलाओं का ज्ञान देकर आज की सभ्यता का श्रीगणेश

किया था, जिस नगरी को इस अवसर्पिणी के आद्य चक्रवर्ती भरत की राजधानी व ३२००० देशों की राजधानियों की भी राजधानी कहलाने का गौरव प्राप्त था जहाँ सत्यवादी हरिश्चन्द्र और मर्यादा पुरुषोत्तम राम जैसे राजाओं ने राज किया था आज उस अयोध्या का अस्तित्व कहाँ है? इसी तरह हस्तिनापुर नगर जो चक्रवर्ती श्री शान्तिनाथ, श्री कुन्धुनाथ एवं श्री अरुनाथ की राजधानी थी एवं उनके दीक्षित होने व तीर्थ स्थापना करने पर ६४ इन्द्र व असंख्य देव उन प्रभु की धुली को मस्तक में लगाने के लिए जहाँ आया करते थे। आज वह हस्तिनापुर नगर काल के किस गर्त में समा गया ऐसी ही अनंतानंत चीजें काल के गर्त में समा गई, समा रही और समायेंगी भी। इसीलिए तो कहा है संसरति इति संसार अर्थात् जो संसरण करता रहता है, सर ता रहता है, परिवर्तन आता रहता है उसे संसार कहते हैं।

परिवर्तन के इस अनंत प्रवाह में कुछ पुण्यशाली ऐसी आत्माएं भी आती हैं जो परिवर्तन में ही अपरिवर्तन (सिद्धपद) को पाने के लिए अग्रसर होती हैं। इन्हीं भावों से प्रेरित होकर लगभग ६० वर्ष पूर्व महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. ने एवं लगभग ४३ वर्ष पूर्व महासती चम्पाकुंवरजी म. सा. ने संयम जीवन को अपना कर महावीर की धर्म वाटिका में महकते हुए पुष्प की तरह महक उठी थी। स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.सा. से ज्ञान ध्यान पाने वाली इन दोनों महान साधिकाओं ने राजस्थान मध्यप्रदेश मेवाड़, महाराष्ट्र आन्ध्र कर्नाटक, तमिलनाडू आदि प्रान्तों में विचरण कर अपनी पतित पावनी वाणी से हजारों लाखों नर नारियों को धर्म के मार्ग में लगाया था। आप साध्वी द्वय की संयम साधना एवं पावनी वाणी का ही प्रभाव है कि महासती श्री बसंत कुंवरजी म.सा. महासती श्री कंचन कुंवरजी, महासती श्री चेतनप्रभा जी, महासती श्री चन्द्रप्रभाजी महासती, श्री सुमन प्रभाजी, महासती श्री अक्षय ज्योति जी ने अपने जीवन को आपके ही श्री चरणों में समर्पित कर जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की।

इस तरह स्व- पर कल्याण साधिका साध्वी द्वय का जीवन जन-जन के लिए कल्याणकारक था। दोनों साध्वियों का ५ महीने के अन्तराल में ही स्वर्गारोहण होना यह श्रमण संघ के लिए अपूरणीय क्षति है।

साध्वी जी म.सा. के पावन दर्शन का सौभाग्य मुझे जून १९९० में मद्रास में आराध्य गुरुदेव तपस्वी रत्न श्रमण संघीय सलाहकार श्री सुमति प्रकाश जी म. एवं उपाध्याय प्रवर श्री विशाल मुनिजी म.सा. के साथ साहुकार पेठ जाने पर हुआ था। साध्वी जी के प्रथम दर्शन में ही उनकी संयम साधना की दृढ़ता एवं आकर्षक व्यक्तित्व ने मुझे आकर्षित किया था। मार्च १९९१ में जब साध्वी श्री चम्पाकुंवरजी म. के देहवसान की सूचना मिली तो मैं तो हतप्रभ ही रह गया था पर काल के इन क्रूर पंजों से बच भी कौन सका है।

चक्की है मौत की निहायत सड़ी

दो पाट है इस में जमी और आसमा।

जो आया बीच में पीस डाला उसको

ए मेहर कोई सलामत निकला नहीं॥

महासती जी की श्रद्धांजलि सभा में हमारा भी जाना हुआ और महासती कानकुंवरजी महाराज साहब से वार्ता भी हुई। तत्पश्चात् छह दिन साहुकार पेठ में ही रहे और साध्वी जी की ज्ञान, ध्यान एवं

संयम साधना को निकटता से देखा था। लगभग ५ महीने के अन्तराल में काल कराल ने महासती जी म. को भी अपनी चपेट में ले लिया। इसी लिए तो जीवन की क्षणभंगुरता पर कबीर ने कहा था —

माली आवत देख कर, कलियाँ करी पुकार

फूले-फूले चुन लिये, कल ही हमारी बारा।

आना जाना तो संसार में लगा ही रहता है पर स्व-पर कल्याणी आत्माओं का अकस्मात् विछोह असह्य होता है। श्रमण संघ की महकती हुई कलियों को छीनकर काल कराल ने अपूरणीय क्षति की है। परन्तु इस घड़ी को टाल भी कौन सकता है। मैं शासनेश महाप्रभु से यही प्रार्थना करता हूँ कि साध्वी जी की आत्मा को चिर शांति प्राप्त हो।

* * * * *

श्रद्धांजलि पुष्प

• श्री अचल मुनि

संसार परिवर्तनशील है। समय-समय पर हर वस्तुओं में परिवर्तन आ जाता है। कालानुसार क्योंकि समय का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि चाहे वह मानव हो, चाहे, देव हो, चाहे वह एकेन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव हो, चाहे वह देवाधिदेव तीर्थंकर ही क्यों न हों, संसार की प्रत्येक वस्तु या प्राणी पर काल का प्रभाव पड़ता है।

जैसे एक सुन्दर सुहावना बाग है, उसमें समय आने पर अनेक प्रकार के पुष्प खिलते हैं। पुष्प खिलने से बाग का सम्पूर्ण वातावरण सुहावना, और मनोरम बन जाता है। उस बाग में परिभ्रमण करने वाले व्यक्तियों के लिए जीवन दायी शुद्ध आक्सीजन मिलता है। लेकिन जैसे-जैसे समय का चक्र बितता जाता है। वही बाग जो कुछ समय पूर्व सुन्दर और सबके हृदय को आनंद प्रदान करने वाला था। उसी बाग पर प्रकृति की मार ऐसा पड़ती है कि वहीं बाग रेगिस्तान में परिवर्तित हो जाता है।

यह सब किसके कारण हुआ? यह किसी व्यक्ति ने नहीं किया। यह सब कुछ जो परिवर्तन हुआ है वह काल का प्रभाव है इस काल के प्रभाव से कोई भी नहीं बच सकता है।

इसी प्रकार इस संसार में हजारों व्यक्ति जन्म लेते हैं। जन्म लेकर अपने जीवन को अधर्म के मार्ग में लगाकर इस अमूल्य मानव शरीर को प्राप्त कर उसे उत्थान की ओर ले जाने के बजाय पतन की ओर ले जाते हैं। ऐसे अधर्मी पापी पतनगामी जीव के मर जाने पर कोई भी व्यक्ति उसे स्मरण नहीं करता है। लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो इस रंगरंगीली दुनियाँ में जन्म धारण करके मानव जीवन की महत्ता को समझकर अपने आत्मोत्थान के लिए एक ऐसा महामार्ग चुन लेते हैं। जिस मार्ग पर अपने जीवन को अग्रसर करके, आत्म विकास करके स्वयं संमार्ग का पथिक बनकर स्वयं संमार्ग पर अपने कदमों को आगे बढ़ाता है। और संपर्क में आने वालों को सही मार्ग दर्शन कराना है। स्वयं तैरता है और दूसरों को तारता है। उन्हें ही हम महापुरुष की संज्ञा देते हैं।

ऐसे ही दो महान आत्माएँ हैं जिन्होंने इस संसार में अवतार लेकर जन-जन के लिए पथ प्रदर्शक बनी हैं। वे हैं स्व. पूज्य श्री कानकंवर जी म. एवं श्री चम्पाकंवर जी म. ये दोनों जैन समाज के उज्ज्वल नक्षत्र के समान थीं। जिनकी साधना का लक्ष्य जो आत्मा अनादिकाल से इस चार गति चौरासी लाख जीवायोनि में परिभ्रमण कर रही है। उस परिभ्रमण से मुक्त होने के लिए कौन सा रास्ता अपनाये किस मार्ग पर अपने कदम को बढ़ाये जिससे यह आत्मा जल्दी से जल्दी इस संसार से अलग हो जाये। उनके मन में विचार आया जब तक हम संसार में रहेगे, घर गृहस्थी में रहेगे तब तक हम साधना नहीं कर सकेंगे। आत्मा को पावन नहीं कर सकेंगे। आत्मा के उत्थान के लिए उनको एक ही महामार्ग नजर आया। अगर उस मार्ग पर अपने कदम को बढ़ाये तो एक न एक दिन तो हम आत्मा से परमात्मा बन सकेंगे। वह मार्ग था संयम का, दीक्षा का। उन दोनों महान, आत्माओं ने अपने आप को संसार से अलग करके संयम रूपी खाड़े की धार पर चलकर अपने तन मन को त्याग, तपस्या सेवा जप तप के द्वारा अपने जीवन को सुवासित किया। सरलता को अपने जीवन में अपनाया। सरलता एक महान गुण है। जिसने इसे अपनाया उसका कल्याण हो गया। क्योंकि प्रभु महावीर ने कहा जिस हृदय में सरलता नहीं होती वहाँ पर धर्म टिक नहीं सकता है। जहाँ पर शुद्धता है वही पर धर्म है।

धम्मो सुद्धस्स चिद्धई। सरलता ही मोक्ष का राज मार्ग है। आपने प्रभुवीर की वाणी का हृदयंगम करके उसी मार्ग पर अपने आप को समर्पित कर दिया। ऐसे महान आत्माओं के गुण हम लिख नहीं सकते हैं। उन्हें अपने टूटे फूटे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं। जैसे सागर को कोई व्यक्ति नापना चाहे तो नहीं नाप सकता है उसी प्रकार महापुरुषों के गुण कीर्तन हम नहीं लिख सकते हैं। ऐसे महान साध्वियों को मैं हार्दिक श्रद्धांजलि आर्पित करता हूँ।

* * * * *

मुझे स्मृति है

• पंडितजी श्री विचक्षण मुनि, तिरुपति

स्मृति शब्द का अर्थ है- यादगार (मधुर यादगार) इस अनादि अनंत संसार में अनन्ता जीवात्मा प्रतिक्षण जन्म लेते हैं और स्व आयुष्यानुसार मृत्यु को प्राप्त करते हैं। कब जन्मा कब मरा, कौन याद रखता है। समय के थपेड़ों में सब की विस्मृति हो जाती है। संसार में कोई-कोई विरली आत्मा ही होती है जिन्हें जगत विस्मरण नहीं कर पाता है।

ऐसी ही सेवा एवं साधना की प्रतिमूर्ति शासन प्रभाविका महासाध्वी कानकंवरजी म.सा. तथा परम विदुषी अध्यात्म योगिनी दृढ़ आत्मविश्वासी महासती चम्पाकंवर जी म.सा. नश्वर शरीरोपरान्त भी स्मृति पटल पर है।

महान आत्माओं का जीवन प्रकाश स्तंभ के समान होता है। जैसे अंधकार में तूफान ज्वार भाटा आदि से भटके हुए जहाजों को प्रकाश स्तंभ गन्तव्य पथ बतलाता है। उसी प्रकार पूज्या साध्वी जी म.सा. का जीवन रहा। अनेकानेक भटके कंट काकीर्ण पथ में फंसे पथिकों को सम्यक्त्व का पथ दिखाकर गंतव्य पथ पर लगाया है।

महासती जी म.सा. के स्वर्गवास होने पर भी अनेक शुभ पुद्गल अनेक आत्माओं के कल्याणकारी हैं। मद्रास में दोनों पूज्य साध्वी जी म.सा. कई बार दर्शन करने का तथा चर्चा वार्ता करने का मौका मिला। कहते हैं नमंति फलिनों वृक्षा फलवान वृक्ष झुकते हैं, नमते हैं। पूज्या साध्वी द्वय में जो विनम्रता तथा सरलता के दर्शन किये अविस्मरणीय हैं। पूज्या महासती कान कुंवरजी म.सा. काफी अस्वस्थ थे शरीर में काफी वेदना थी, वेतना की परवाह किये बिना ही उठने लगी तो मैंने कहा साध्वी जी आप वृद्ध हैं, तकलीफ है पाटे पर ही विराजो पाटे से उतरते बोली नश्वर शरीर के लिए स्वधर्म को छोड़ क्या? कहते हुए वंदना करने लगी। उनकी महानता को देख नतमस्तक हो गया मैं।

अनेक प्रकार की शारीरिक वेदना, कष्ट होने पर भी उनके जीवन में समता ही देखी। आप साध्वी द्वय कभी भी निंदा प्रशंसा की कटीली झाड़ियों में उलझती नहीं थी। सदा ध्यान चिंतन एवं साध्वी (लघु) को स्वाध्याय करवाती रहती थी।

आप स्वाध्याय को बहुत महत्व देती थी। स्वयं स्वाध्याय में रत रहते हुए अपनी शिष्या वर्ग को भी स्वाध्याय में लगाये रखती थी। प्रेरणा देती रही। दीर्घ काल तक एक स्थान में स्थिरवास करने पर भी आप हमेशा लघु साध्वी को अनेक स्थानों में भेजकर धर्म जागृति का संदेश देती रही।

पूज्या चम्पाकुंवर जी म.सा. के प्रवचन सुनकर का मौका मिला। आपकी वाणी में अद्भुत प्रभाव था। वाणी की मधुरता तो आपको परम पूज्य युवाचार्य मधुकर मुनिजी म.सा. से विरासत में ही मिली थी।

आज साध्वी द्वय का नश्वर देह सामने नहीं है वह पंचतत्व में विलीन हो गई है। परन्तु उनका गुण रूपी शरीर अब भी अनेकों आत्माओं के लिए प्रेरणादायी है तथा रहेगा वास्तव में साध्वी जी के हर व्यवहार में एक प्रकार का उपदेश मिलता था। आज भी उनके गुण स्मृति पटल पर आते ही हृदय गद-गद होता है ऐसी महान आत्माओं का वरद हस्त हमेशा बना रहे। इन्हीं मंगलकामनाओं के साथ श्रद्धापुष्प अर्पित करता हूँ।

* * * * *

अर्पित है भावांजलि

• जैन साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्वना'

पूज्य महासती जी श्री कानकुंवरजी म.सा. के देह विलय के समाचार सुने तो दिल में बड़ा आघात लगा, हृदय, आंखें भर आयी, क्योंकि हम परम श्रद्धेया पूज्या गुरुणीजी म. श्री सरदार कुंवरजी म.सा. की ११ शिष्यायों में दो ही शेष रहे थे। मेरी तो एक ही बड़ी गुरु बहन थी, मुझे छोड़ कर चले गये आज मन में बड़ा ही खालीपन लग रहा है। उनके जीवन की अनेकानेक स्मृतियाँ आज स्मृति के झरोखे से एक के बाद एक झाँकने लगी हैं। कई बार साथ रहने का अवसर मिला। वास्तव में उनका जीवन सरलता, सरसता, सादगी और श्रमणचर्या से परिपूर्ण था। वे अपनी साधना के प्रति जागरूक थे। जीवन भर रत्नत्रय की सम्यक आराधना साधना करते हुए, आप समाधि को प्राप्त हुए। अन्त में हार्दिक श्रद्धासुमन समर्पण के साथ यह कामना करती हूँ कि उनकी आत्मा को चिरंशांति प्राप्त हो।

आपकी ही प्रिय सुशिष्या महासती श्री चम्पाकुंवरजी एक अनुभवी एवं चरित्रनिष्ठ महासती थी। विनय विवेक सेवा एवं सौम्यता की साक्षात् मूर्ति थी। हमेशा स्वाध्यायरत रहती थी, उन्हें कभी भी बैठे रहना अच्छा नहीं लगता था तथा वे समय पालन में थोड़ा भी शिथिलता सहन नहीं करती थी किन्तु अपनी छोटी-छोटी शिष्याओं को कभी उदास नहीं देख सकती थी, उनका करुणापूरित मातृहृदय शीघ्र ही पिघल जाया करता था। महासती जी का वियोग निश्चित ही श्रमण संघ के लिए अपूरणीय क्षति है। मैं उनको भी कभी भूल नहीं सकती हूँ। उनकी शिष्या साध्वी चन्द्रप्रभाजी आदि के प्रति सहानुभूतिपूर्वक यह कामना करती हूँ कि वे श्रमण संघ की गरिमा को बढ़ाएं और सद्गुरुजी के बताये हुए आदर्श को सदा सामने रखती हुई प्रगति पथ पर बढ़ती रहें। यही उनके प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

सरलता सरसता की थी प्रतिमूर्ति,

बनी रहेगी युग-युग तक आपकी यशः कीर्ति।

जीवन के कण-कण में थी स्मृति।

आती रहेगी सदा आपकी मधुर स्मृति॥

* * * * *

शांति एवं भव्यता की प्रतिमूर्ति

• उपप्रवर्तिनी श्री मानकुंवर म.

जीवन की समस्त उपलब्धियों का सार मृत्यु है। मृत्यु कार्य काल का लेखा जोखा है। जिन्होंने मृत्यु से नहीं जन्म ले छुटकारा पाने का पुरुषार्थ २२ वर्ष की अल्पायु से ४३ वर्ष तक किया। आपके सम्पूर्ण जीवन में स्वाध्याय, सेवा, अध्ययन एवं समाजोत्थान की विभिन्न दिशाओं में सतत् प्रयास रहा है। साथ ही आत्मानुरागिनी विदुषी श्री कानकुंवर जी महाराज का जीवन भी संयम की इसी त्रिपथगा से आलोकित रहा है।

चम्पा पुष्प की वह गंध पुष्प के विलीन होने पर आज भी मनः प्राण में जीवित है। उनका अप्रमत्त संयम हमारे लिये भी अनुकरणीय- स्मरणीय एवं आदर्श बन गया। संयम का वह पावन निर्झर देह दृष्ट्या हमारे समक्ष नहीं है किन्तु उनका निर्मल यशः काय श्रद्धाशील मानस के लिए पथ प्रदर्शन का मंगल ध्येय है।

महासती द्वय स्मृति ग्रंथ का यह प्रकाशन प्रबुद्ध पाठकों के लिये प्रेरणास्पद बनेगा इसी सन्धावना के साथ एक बार पुनः महासती द्वय के संयमी जीवन का श्रद्धार्चन।

* * * * *

पलकों में आहट

• जैन आर्या डॉ. सुप्रभा कुमारी 'सुया'

“संसार सीसे जह नागराया” निष्ठावान् साधक अपने जीवन के रणक्षेत्र में हाथी की तरह अंतिम दम तक जूझता ही रहता है। वह भी कुछ क्षण के लिये नहीं अपितु जीवन की अंतिम सांस तक। जिस प्रकार मोमबत्ती जलाई जाती है तो वह जलती ही जाती है। जब तक कि जलकर निःशेष नहीं हो जाती बुझने का नाम नहीं लेती हैं।

मरुधरा मंत्री स्व. स्वामीजी पूज्य श्री हजारीमलजी म.सा. की सुशिष्या आगम वारिधि, सरलमना स्व. श्री विदुषी पूज्य महासतीजी श्री सरदारकुंवरजी म.सा. की शिष्या एवं मेरे श्रद्धेया मातृस्वरूपा पूज्या गुरुवर्या श्री उमरावकुंवरजी म.सा. ‘अर्चना’ की बड़ी गुरु बहन वयोवृद्धा पूज्या महासतीजी श्री कानकुंवरजी म.सा. एवं उन्हीं की सुयोग्य शिष्या महासतीजी श्री चंपाकुंवरजी म.सा. दोनों ही बड़ी निष्ठावना साधिका थी। बहुत बार दर्शन एवं सेवा का सौभाग्य भी मिला था। वास्तव में महासतीद्वय रत्नत्रय की साधना आराधना में अत्यंत जागरूक थे।

महासती श्री कंचनकुंवरजी, महासती श्री चन्द्रप्रभाजी एम.ए. आदि आपकी योग्य शिष्याएं अपनी गुरुवर्या श्री के आदर्शों को ध्यान में रखते हुए ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करती हुई संघ की शोभा बढ़ाएंगी। वस्तुतः जो स्मृतियों में शेष रहते हैं, मृत्यु उन्हें कभी हमसे दूर नहीं कर सकती। संयम पथ पर बढ़ते हुए कदम भले ही मृत्यु के कोहरे में अदृश्य हो गए हों लेकिन उनकी आहट सदैव हमारी पलकें अनुभूत करती रहेगी।

इन्हीं भावनाओं के साथ महासती द्वय के श्री चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित करती हूँ।

* * * * *

पू. श्री चम्पाकुंवरजी म. की गुण स्मृति

• गो.सं. महाविदुषी पू.बा. ब. प्राणकुंवर बाई म.सा. विद्या भास्कर (मद्रास)

इस अवसर्पिणी काल के भरत क्षेत्र में अनेक विभूतियाँ जिन शासन में हो चुकी हैं। जिन्होंने जीवन को धन्य कर दिया है और मृत्यु को अमर बना दिया है। ऐसे महान यशस्वी विदुषी श्री साध्वीरत्ना पू. चंपाकुंवरजी म.सा. का जन्मस्थान कुचेरा (राजस्थान) था। आपकी माता का नाम किसनाबाई और पिता का नाम फूसालालजी सुराणा था। आपके माता पिता धर्म प्रेमी थे। वही संस्कार आपके जीवन में आने से आपको छोटी उम्र में दीक्षा अंगीकार करने की भावना हुई।

वि. स. २००५ पौष शुक्ला दसमी के दिन आपने अध्यात्मयोगिनी शांतस्वभारी गुरुणी श्री कानकुंवरजी म.सा. के पास दीक्षा अंगीकार करके ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना की। पू. महासतीजी एक अद्भुत और अद्वितीय विभूति थी। बड़े ही शांत, दांत गंभीर और मधुर प्रकृति वाली थी। चरित्र निष्ठा, प्राणों की दृढ़ता और भावों की भव्यता थी। उनका चेहरा इतना सौम्य और रसिक था कि देखने वालों को आत्म तृप्ति की अनुभूति होती थी। उनमें बालक सी निश्चलता, युवक सी कार्यदृढ़ता, प्रौढ़ सी गंभीरता और वृद्ध सी अनुभव गरिमा थी।

जिन्होंने अपने ज्ञानबल ध्यानबल, चरित्रबल और तपबल से जिनशासन की शोभा में अभिवृद्धि करने, पर कल्याण के साथ-साथ अपने आपको ऊर्ध्वगामी बनाकर विकास प्राप्त किया था। उनके जीवन में वैराग्य का स्रोत बह रहा था। रोम रोम में रत्नत्रय का रणकार था। श्वास श्वास में सो हं प्राप्त करने की उत्कंठा थी। आत्मा का प्रदेश प्रदेश में प्रभु पद प्राप्त करने की भावना थी।

चिंतन की अजस्र धारा में स्वाधीन रहते थे।

घंटो-घंटों एक आसन पर आसीन थे।

वृद्ध अवस्था का समागम होने पर भी।

ध्यान और स्वाध्याय में तल्लीन रहते थे।

पू. महासतीजी का जैसा नाम था वैसा ही गुण था। जिस तरह चंपा का फूल अपनी सुगंध को चारों तरफ फैलता है उसी तरह आपने सम्यक की साधना ज्ञान की आराधना और दर्शन की दिव्य सुगंध चारों तरफ फैलाई हैं।

वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम लेने वाले पथिक का तन और मन का ताप शांत हो जाता है उसी तरह आपका ब्रह्मचर्य और तप का अद्भुत प्रभाव जिस पर पड़ता था उसे अपूर्व शांति और शीतलता का अनुभव होता था। आपका जीवन सूर्य की तरह प्रकाशित चंद्र की तरह सौम्य, फूलों की तरह रसदार, गजराज की तरह मस्त और सिंह की तरह निर्भीक था।

“ Simple living and high thinking ” आपका जीवन सादा और विचार उच्च था।

पू. महासतीजी धर्म के तत्व के शब्दार्थ भावार्थ गूढ़ार्थ को ऐसी गंभीर और प्रभावशाली में विविध न्याय दृष्टांत देकर समझाते थे कि श्रोतावृंद उसमें तन्मय, चिन्मय बन जाते थे और अपूर्व शांति से वीरवाणी का रसपान करते थे।

पू. महासतीजी का जीवन में सेवा का गुण अद्भुत था। पू. कानकुंवरजी म. की सेवा में अपनी कार्य कुरबान कर दी थी। गुरुणी की सेवा पूरे प्रेम से करती थी। छोटी उम्र में गुरुणी के हृदय में अपना स्थान प्राप्त किया था। लेकिन कर्म की गति विचित्र है कालदेव पू. कानकुंवरजी म.सा. का शिष्यारत्न पू. चंपाकुंवरजी म.सा. को उठाकर ले गये यह दुर्घटना हमारे लिये असह्य है। अंत में शासनदेव से हमारी प्रार्थना है कि उस महान विभूति को शाश्वत शांति प्रदान करें और उनके शिष्या समुदाय को इस व्रजाघात को धैर्यपूर्वक रहने की शक्ति प्रदान करें।

* * * * *

प्रतिभा के धनी श्रमणी चम्पाजी म.सा.

• गुरुवर्या श्री नंदकुंवरजी म. की शिष्या साध्वी श्री बिन्दु प्रभा सा. र.

महान विभूतियाँ शताब्दियों के बाद जन्म लेती हैं। और अपने दिव्य गुणों द्वारा वह समय के आकाश पर अमिट कहानी लिख जाती है महापुरुषों का जीवन गगनचारी सूर्य के समान होता है, जिसके प्रकाश में असंख्य प्राणी मार्ग दर्शन पाते हैं। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य होता है। अपने लिए भी और अन्य जीवों के लिए भी।

इस नश्वर संसार में प्रतिपल, प्रतिक्षण सैकड़ों आत्माएँ जन्म लेती हैं। और मृत्यु की गोद में समा जाती है। यह क्रम आज से नहीं अपितु अनादिकाल से अनवरत चला आ रहा है। जन्म मरण की इस चिर परम्परा पर अभी तक किसी ने अपना अनुशासन नहीं जमाया है। और न ही कोई जमा सकेगा क्यों कि जन्म और मरण की जो प्रक्रिया हो रही है वह कृत्रिम नहीं अपितु यथार्थ है।

महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. एक ऐसे ही अद्भुत सौरभ सुमन थे जिनमें त्याग वैराग्य करुणा आदि का अपार भंडार था। आपकी प्रवचन शैली अत्यंत रोचक थी। आपकी वाणी में अमृत का अक्षय स्रोत प्रवाहित होता था।

तेजोमय जीवन दीप सदा के लिए बुझ गया। समाज का एक अनमोल रत्न हमसे सदा के लिए छीन लिया गया। विधि का विधान कठोर है। आयु बल का क्या प्रमाण यह कौन जानता था कि हमें श्रमणी रत्न यों छोड़कर चल देंगे।

आपके महान जीवन का सर्वप्रथम परिचय मुझे वैराग्यावस्था में मध्यप्रदेश के धमतरी ग्राम में प्राप्त हुआ। अतः विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि वे ज्ञान के भंडार थे। आपकी मधुर स्मृतियाँ मेरे मानस पटल पर ज्यों की त्यों अंकित है। इसी शुभ कामना है के साथ मैं पूज्या साध्वी रत्न श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. के चरण कमलों में अपने भाव पुष्प समर्पित करती हूँ।

हृदय का सम्राट जिगर का हुकमरा जाता रहा।

खार का महबूब गुलों का महरबां जाता रहा।

मौन क्यों गुच्छे है और क्यों हर कली मुरझा गई।

आज हमारे बाग से है बागवां जाता रहा।

* * * * *

भावभीनी श्रद्धाञ्जलि

• साध्वी श्री हेमप्रभा

भारतीय संस्कृति में संत जीवन को एक आदर्श रूप में माना जाता है। संयम और संस्कृति की धाराओं में प्रवाहमान संत जीवन व्यक्ति, समाज राष्ट्र एवं समस्त मानवता के लिए वरदान रूप सिद्ध होता है। किसी भी महापुरुष अथवा सन्त के जीवन को जब कभी हम अपने सम्मुख लाते हैं, तो ऐसा मालूम पड़ने लगता है। मानों इन्द्रधनुषी-वर्णों के सुरभित सुमन की एक रमणीय वाटिका हमारे सामने साकार हो उठी है और जिस प्रकार उन रंग बिरंगे फूलों की सुगन्ध से किसी भी मनुष्य का मन आनन्द विभोर हो उठता है, ठीक उसी तरह महापुरुषों के गुण रूपी फूलों की सुगन्ध भी मन की वृत्तियों में पवित्र आनन्द की चल-लहरी सी प्रवाहित कर देती है। वस्तुतः सौरभ की भांति महान् गुणों को भी केवल अनुभूत किया जा सकता है। उस स्थिति में मनुष्य की कलुषित भावनाएँ शान्त हो जाती हैं और मन पवित्र चल लहरी को आत्मसात करते हुए निरन्तर आगे बढ़ता है। वस्तुतः ऐसा पावन धवल और निर्मल जल का ही पर्याय होता है एक साधक का जीवन। सन्त इस संसार में फूलों की वर्षा करने के लिये, अमृत बाँटने के लिये तथा अपने जीवन को माँजते हुए अपनी आत्मा और विश्व दोनों का कल्याण करने के लिये आते हैं - कहा भी है :-

“संत तो समाज के कंटक उठाने को आते हैं,
मोक्ष के साधन जग हेतु जुटाने को आते हैं।

बड़ी साधना से जो कुछ भी पाते हैं जीवन में,
उसे भी मुस्कराकर लुटाने को आते हैं॥

हमारे सरल हृदया बयोवृद्धा पूज्या महासतीजी स्व. श्री कानकुंवरजी म.सा. एवं स्व. विदुषी महासतीजी श्री चम्पाकुंवरजी म. सा. ने अपने संयमी जीवन के सुदीर्घ काल में समाज को बहुत कुछ दिया।

स्वभाव में सरलता, व्यवहार में नम्रता, वाणी में मधुरता मुख-कमल पर सौम्यता, नयनों में तेजस्विता, समता, सहिष्णुता आदि गुणों के कारण उनका व्यक्तित्व गौरवपूर्ण गरिमा से चमक उठा था। अस्वस्थ होते हुए भी आपका एक भी क्षण प्रमाद में व्यतीत नहीं होता था। सतत् जप, तप, मौन साधना में तल्लीन रहते थे।

श्रद्धेया कानकुंवरजी म.सा. हमारे गुरुवर्या श्री उमरावकुंवरजी म.सा. ‘अर्चना’ की गुरु बहिन थी। समय-समय पर श्रद्धेया गुरुवर्या श्री हमें उनके जीवन से सम्बन्धित अनुभव सुनाया करते हैं। मुझे भी आपश्री के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैंने अनुभव किया कि वे जहां फूल से कोमल थे, वहीं अपनी संयम साधना में वज्र से कठोर भी थे।

हजारों मीलों की पद यात्रा कर आपने वीतराग प्रभु महावीर की वाणी का प्रचार-प्रसार किया। अनेक पथ भूलें राहियों को पथ दिखलाया। अपने सदुपदेशों के द्वारा अनेक धर्मान्धों के हृदय में धर्म की ज्योति जगाकर अडिग आस्था एवं निष्ठा प्रदान की।

उनकी गौरवमय शिष्या समुदाय में चार चांद लगाने वाले पूज्या चम्पाकुंवरजी म.सा. एक विदुषी महासती थी। आगम, स्तोत्रों एवं द्वालों के प्रति अपार निष्ठा एवं गहरी रुचि थी। उनमें श्रमणाचार के प्रति सजगता एवं जागरूकता थी। अपनी शिष्याओं को भी निरन्तर जागरूक रहकर संयम साधना में प्रगति करने की पवित्र प्रेरणा प्रदान करती थी।

यह किसी ने भी नहीं सोचा था कि सद्गुरुणी श्री कानकुंवरजी म.सा. एवं उनकी शिष्या श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. का राजस्थान में पुनः आगमन नहीं हो सकेगा। विधि की विडम्बना है। मात्र पाँच महीने के अन्तराल में दोनों महान् विभूतियों का दिवंगत होना समग्र जैन समाज के लिए एक अपूरणीय क्षति है। उन्होंने नश्वर देह को भले ही त्याग दिया हो लेकिन वह स्मृतियों में जीवित है और जो स्मृतियों में जीवित रहते हैं, वह अमर बन जाते हैं।

अन्त में दिवंगत आत्माओं को अखण्ड आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो, इसी मंगल-कामना के साथ उनके श्री चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ।

• महासती श्री उमरावकुंवरजी म, 'अर्चना' की शिष्या

* * * * *

हृदय मंदिर की आराध्या

• महासती श्री कंचनकुंवर म., मद्रास

सागर की उत्ताल तरंगों को चीरकर नाव को मंजिल तक पहुंचाने का लक्ष्य लिये नाविक सावधानी के साथ सतत-परिश्रम कर नाव को आगे बढ़ाता है। मेरी जीवन नैया भी संसार सागर की तरंगों में डोल रही थी। ऐसी विकट स्थिति में पू. गुरुणीजी सरल हृदया श्री कानकुंवरजी की शिष्या परमश्रद्धेया, परोपकारिणी, अध्यात्म योगिनी, गुरु बहन, परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. सा. ने अत्यन्त कृपा कर पतवार थाम कर मंजिल तक पहुंचाने का उपक्रम प्रारम्भ कर मुझे उपकृत किया। पू. श्री के चरणों में कोटिशः वंदन।

मूर्तिकार छैनी और हथौड़े की मार से पाषाण कोभी प्रतिमा बनाकर पूजा योग्य बना देता है। पू. श्री के सान्निध्य में धर्म के मर्म को समझने के अनेक अवसर प्राप्त हुए। सतत् प्रेरणा पाकर मेरा जीवन पुष्प भी फल्लवित हो उठा। धन्य है उस मूर्तिकार को।

सांसारिक प्रलोभनों की भूल भूलैया में भटके प्राणियों के लिए करुणाशील मन ही पथ प्रदर्शक बनता है। पू. श्री ने शास्त्रों तथा थोकड़ों के माध्यम से शूलों को फूलों में बदलने के निरन्तर प्रयास से मार्ग प्रशस्त हुआ। चौदह वर्षों से बने साया ने अचानक विरह की वेदना भर दी।

भगवान महावीर स्वामी ने अपने अनन्य शिष्य गौतम स्वामी को अपने अंतिम क्षणों में अपने से दूर भेज दिया था। वही बात पू. श्री ने भी अपनाई। काफी समय से कुछ साध्वियों को धर्म प्रचार हेतु

अन्यत्र भजने की बात चल रही थी। पू. श्री का आदेश प्राप्त कर तीन छोटी बहनों को साथ लेकर कन्याकुमारी क्षेत्र की ओर प्रस्थान करना पड़ा। सम्भवतः पू. श्री यह जानते थे कि वियोग को सहना अत्यन्त कठिन होगा। इसी बात को ध्यान में रख कर उन्होंने अपनी मधुर वाणी से मार्ग दर्शन देकर शीघ्र वापस आने का आदेश भी दिया। किंतु अपनी अल्पबुद्धि के कारण हम कुछ समझ नहीं सके। महान आत्मा का वियोग असहनीय है। पू. श्री की वाणी का एक एक शब्द आज भी मार्ग दर्शन प्रदान करता रहता है।

पू. महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. सा. का जन्म कुचेरा के सुराणा परिवार में हुआ था। सात वर्ष की अल्पायु में ही वैराग्य के बीज आप में अंकुरित होने लगे थे। आपश्री के सांसारिक भुआजी (पू.श्री कानकुंवरजी म.सा.) की दीक्षा कुचेरा में हो रही थी, उसी समय छोटी-सी अवस्था में ही संसार त्यागने की प्रबल भावना जाग उठी देखकर परिवार वालों ने उन्हें कटंगी भिजवा दिया था। समय के साथ साथ उनकी यौवनावस्था को देखकर परिवार वालों ने उन्हें सांसारिक बंधनों में जकड़ने की दृष्टि से श्री रामलाल जी कातेला के साथ विवाह कर संतोष की सांस ली। वैवाहिक जीवन के अल्प समय के पश्चात् ही वैधव्य का दारुण दुःख आ पड़ा।

संसार की विचित्रता ने वैराग्य के सूखे पौधे को पुनः हराभरा कर दिया। निरन्तर ज्ञान ध्यान में रत, सामायिक, प्रतिक्रमण, थोकड़े, स्वाध्याय, ढाल आदि अनेक विध प्रयासों से ज्ञान ज्योति प्रज्ज्वलित करते रहे। वैराग्य की उता तरंगों ने पू. गुरुवर्या श्री कानकुंवर जी म. सा. के पास शिष्या रूप में रहने का दृढ़ संकल्प लिया और निरन्तर प्रयास से मुक्तिपथ का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सात वर्षों तक मौन व्रत ग्रहण का शास्त्रों का अध्ययन और थोकड़ों के अभ्यास पर अधिक ध्यान दिया। आपके प्रवचन में जीवन जीने की कला कैसी हो, इस बात पर विशेष प्रकाश डाला जाता था। साथ ही अपने प्रवचनों में आप शास्त्रीय उद्धरण प्रस्तुत कर उसे अधिक पुष्ट बनाया करती थी। आपकी प्रवचन शैली इतनी आकर्षक थी कि श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते थे।

पू. गुरुवर्या के साथ आपने मारवाड़, मेवाड़, मालवा, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु प्रदेशों में विचरण कर जन जन को जागृत कर धर्ममय बनाया।

मद्रास आपका अंतिम पड़ाव सिद्ध हुआ। पू. गुरुवर्या, वयोवृद्धा श्री कानकुंवरजी म. सा. की अस्वस्थता के कारण मद्रास में स्थिर रहने के लिए बाध्य कर दिया। पू. गुरुवर्या की निरन्तर सेवा के साथ साथ जन मन में जागृति का अभियान अबाध गति से चल रहा था।

कन्या कुमारी की ओर प्रस्थान के समय अस्वस्थता के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। हम भी शीघ्रातिशीघ्र वापस आ रहे थे कि अचानक मार्ग में पू. श्री. के वियोग के समाचार ने हम सभी को असहाय बना दिया। विधि के अटल नियमों ने असीम उपकारी की छाया से हमें वंचित कर दिया।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा की वह रात्रि सभी के लिए दुःखदाई बन गई। सांध्य प्रतिक्रमण के पश्चात बहनों के साथ ज्ञानचर्या करते करते ही अचानक सिर में दर्द उठा और सभी के लिए सिरदर्द बनकर रह गया। त्याग प्रत्याख्यान के साथ संशारा ग्रहण कर समाधि मरण के साथ परलोक के लिए प्रस्थान कर गए। पू. गुरुवर्या की सेवा करते करते शिष्या ने मार्ग प्रशस्त कर लिया।

पू. श्री की असीम कृपा दृष्टि ने हम सभी को सत्यमार्ग पर चलना सिखाया। उनके बताये हुए मार्ग पर चलते हुए स्व-पर कल्याण में निरन्तर लगे रहें, इसी भावना के साथ पू. श्री के पावन चरणों में श्रद्धा सुमन समर्पित करती हुई आशा करती हूँ कि वे जहाँ भी हो वहाँ से हमारा मार्गदर्शन करते रहे ताकि हम भी संयम, तप, चारित्र में रुचि बढ़ाकर उनके बताये मार्ग पर बढ़ती रहें। इसी कामना के साथ उनके चरणों में कोटि कोटि वंदना।

* * * * *

जन जीवन का आधार

• साध्वी श्री अक्षय ज्योति म., मद्रास

जग में जीवन श्रेष्ठ वही,
जो फूलों सा मुस्काता है।
अपने गुण सौरभ से जग के,
कण कण को महकाता है॥

दही का मंथन करने से नवनीत प्राप्त होता है और जीवन का मंथन करने से अनुभव का अमृत मिलता है। नवनीत दही का सार है, तो अनुभव जीवन का सार है। महापुरुषों का जीवन निराला होता है, उस जीवन में अनेक प्रकार के मीठे और कड़वे अनुभव होते हैं। और उन कड़वे मीठे अनुभवों को महापुरुष सहज रूप से ग्रहण करते हैं। न मीठे अनुभवों के प्रति उनके मन में अनुराग होता है और न कड़वे के प्रति द्वेष ही होता है। वह तो समभावी साधक होता है। ऐसे ही साधकों में हमारे गुरुवर्या श्री कानकुंवर जी म. सा. और श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. थी। उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया। उनके मन में सदैव परोपकार की भावना होती थी। उन्होंने मेरे जीवन को नया मोड़ दिया, डूबती हुई को बचाया। मैं आज जो कुछ भी हूँ वह उनकी कृपा का ही परिणाम है। मैं एक अनजान थी। धर्म के बारे में, धर्म के तत्वों के बारे में कुछ नहीं जानती थी और अपना जीवन अंधकार में व्यतीत कर रही थी। पू. महासती जी दाद गुरुवर्या ने मेरे जीवन का विकास किया, डूबने से बचाया। अंधकार में जीवन व्यतीत करने वाली को प्रकाश में जीवन व्यतीत करने की कला का ज्ञान प्रदान किया।

जिस समय मैं गुरुवर्या श्री के सम्पर्क में/सान्निध्य में आई उस समय मैं कुछ भी नहीं जानती थी। केवल एक बार उनके दर्शन किये। उन्होंने मुझे देखा, मेरा परिचय जाना। उन्होंने कहा था-आरती! (मेरा सांसारिक नाम) तुझे धर्म के बारे में तो कुछ भी ज्ञात नहीं है। तू जैन है और कुछ नहीं जानती।” इतना कहते हुए उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए मुझे देखा था। इस अपनत्व से मैं उनके प्रति समर्पित हो गई। उनके पास से जाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। मेरे हृदय में ऐसी भावना उठी कि बस उनके समीप बैठी ही रहूँ। मैंने पूछा “म.सा. क्या मैं आपके पास रह सकती हूँ? मैं आपके पास रहकर कुछ सीखना चाहती हूँ।”

पू.म.सा. ने प्रसन्नतापूर्वक कहा-“तुम हमारे साथ रह सकती हो और जो भी सीखना चाहती हो सीख सकती हो।” म.सा. का उत्तर सुनकर मैं आनंद विभोर हो गई। इसके पश्चात मैं अपने घर गई और अपने माता-पिता को बताया कि मैं म.सा. के पास रहकर कुछ ज्ञान-ध्यान सीखना चाहती हूँ। मेरी बात को सुनकर माता जी ने कहा- तू जो भी सीखना चाहती है, म.सा. के पास रहकर सीख ले। किन्तु घर पर आती जाती रहना।

माता-पिता की आज्ञा मिलने पर मैं म.सा. के पास आ गई। यहां आकर मेरा धार्मिक अध्ययन आरम्भ हो गया। आपश्री के सान्निध्य में मेरा अध्ययन तो हुआ ही साथ ही आपने मुझे जीवन में कुछ करने की कुछ बनने की भी प्रेरणा दी। मैं लगभग डेढ़ वर्ष तक म.सा. की सेवा में रही। इसमें से आधा समय तो घर जाने आने में ही व्यतीत हो जाता। एक दिन म.सा. ने मुझसे पूछा-“तुझे यह संसार कैसा लगता है? क्या तुम इस संसार से सम्बन्ध जोड़ना चाहती हो?”

मैं म.सा. के प्रश्न का अर्थ नहीं समझ पाई। मैंने उन्हीं से पूछा-“यह संसार कैसा है? इस संसार से कैसा सम्बन्ध रखना है?”

“यह संसार झूठे रिश्ते नाते को अपनाता है। सभी को मेरा और तेरा कहता है। हमें इस संसार से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना है। यह संसार भयंकर दावानल है। जो इसमें फँसता है, वह वही भस्म हो जाता है।” म.सा. ने बताया।

म.सा. का कथन सुनकर मैं धबरा गई और पूछा-“जब इसमें सब भस्म हो जाते हैं, तो क्या मैं भी भस्म हो जाऊंगी या?”

“नहीं, सब भस्म नहीं होते। अनेक महापुरुष ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपना जीवन सफल बनाया है। हम भी उन महापुरुषों के बताये मार्ग पर चलकर, उसका अनुसरण करके अपने जीवन को सफल बना सकते हैं।” म.सा. ने कहा।

“हम अपना जीवन किस प्रकार सफल बना सकते हैं?” मैंने पूछा।

“अपना सारा जीवन परोपकार की भावना में व्यतीत करना है। इस संसार से निकल कर भगवान महावीर के बताये मार्ग पर चलना है। जैसे हम चल रहे हैं।” म.सा. ने बताया।

“क्या ऐसा करने से मेरा जीवन सफल हो जावेगा?” मैंने पुनः प्रश्न किया।

“क्यों नहीं होगा? जब तक हम कर्म का क्षय करने के प्रयास में लगे रहेंगे, अपने समस्त कर्मों का क्षय कर देंगे, तो हमारा जीवन सफल हो जावेगा।” म.सा. ने बताया। इसके पश्चात म.सा. ने संसार का असारता के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से बताया। म.सा. की वाणी सुनकर मुझे संसार से विरक्ति हो गई। मैंने म.सा. के समक्ष निवेदन किया-“म.सा. मैं भगवान महावीर के बताये पथ को अपनाना चाहती हूँ। इसके लिये मुझे क्या करना है? कृपया मार्गदर्शन प्रदान करने का कष्ट करें।”

“इसके लिये सर्वप्रथम तुम्हें, अपने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करनी होगी। उसके पश्चात ही तुम इस मार्ग को अपना सकती हो।” म.सा. ने बताया।

इसके पश्चात् मैं अपने माता-पिता के पास गई और उन्हें सारी स्थिति बताकर आज्ञा प्रदान करने के लिये निवेदन किया। प्रारंभ में तो उन्होंने आज्ञा देने से इंकार कर दिया किंतु मेरे बार बार के आग्रह और समझाने पर उन्होंने आज्ञा प्रदान कर दी। मैं अपने उद्देश्य में सफल हो गयी। आज्ञा मिलने के पश्चात् मेरी दीक्षा हुई। दीक्षोपरांत एक डेढ़ माह तक ही मैं म.सा. की छत्र छाया में रह पाई कि क्रूर काल ने उन्हें हमसे छीन लिया।

पू. गुरुणीजी म.सा. का यही निर्देश रहता था कि समय को व्यर्थ मत गवाओं। एक एक पल कीमती है। जो पल चला गया वह लौटकर नहीं आता। इसलिये अपना अधिकतम समय अध्ययन में व्यतीत करो। अध्ययन-स्वाध्याय के प्रति वे सदैव ही प्रेरणा प्रदान करते रहते थे।

पू.गुरुवर्या श्री सदैव सद शिक्षा दिया करते थे। उनका स्वभाव सरल एवं सहज था। मैं दोनों ही म.सा. के उपकार को कभी भी नहीं भूल सकती हूँ। उन्होंने ही मेरे जीवन का उद्धार किया। ऐसी जीवन निर्मात्री दाद गुरुवर्या को कैसे भुलाया जा सकता है।

धन्य है ऐसे महापुरुष जिन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया। ऐसी महान आत्मा को मेरा शत-शत प्रणाम और भाव भरी श्रद्धांजलि अर्पित है।

मेरे जीवन नैया के खेव हार हो तुम।
मेरे जीवन के अनुपम हार हो तुम॥
दिन रात स्मृति रहती है, तुम्हारी-
मेरी श्रद्धा के एकमात्र आधार हो तुम॥

* * * * *

श्रद्धांजलि

समाचार विदित हुआ कि वयोवृद्ध सरलमना म. सती श्री कानकुंवर जी मा. सा का स्वर्गवास हो गया है, यह जानकर अति ही खेद हुआ। काल के आगे किसी का जोर नहीं चलता। इस आकस्मिक निधन से म. सती मंडल बहुत दुखित हुआ है। आप एक श्रेष्ठ श्रमणी थीं। इस वियोग से जो संघ में कमी हुई है यह बहुत ही बड़ा आघात है। श्री जिनेश्वर देव से यही प्रार्थना करते हैं कि मृत आत्मा को शान्ति मिले एवं शोक से सती मंडल को इस आघात को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

ऐसी म. सती जी की क्षति हो जाने पर उसकी पूर्ति हो जाना निकट भविष्य में असम्भव है। म. सती जी के प्रति श्रद्धा सुमन व्यक्त करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

• साध्वीवन्द, डूंगला

* * * * *

श्रमण संघ की दो महान् विभूतियाँ

• साध्वी श्री कलमप्रभा 'शास्त्री'

(आगमरसिका श्री सोहन कंवर जी म.सा. की सुश्रिष्या)

वीर भूमि भारत की पावन पुण्य धरा पर अनेकानेक मनीषियों ने जन्म लिया। जिन्होंने अपने पवित्र चरित्र, तेजस्वी व्यक्तित्व और ज्ञानमय प्रकाश द्वारा जन-जन के जीवन को मार्गदर्शन प्रदान किया।

वर्तमान में जहाँ एक ओर समूचे विश्व में आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद विषमता, क्रूरता, अंधविश्वास व संघर्ष का बोलबाला है, वहीं दूसरी ओर हमारे जिन शासन में महान् आराधिका साध्वी समाज एक अहम् भूमिका निभा रहा है। जिनकी संयम यात्रा का लक्ष्य जीवदया, धर्मरक्षा, शान्ति, सद्भावना स्व व पर कल्याण है।

आध्यात्मिक जगत में नारी वर्ग ने अनेक तेजस्वी दिव्य कीर्तिमान स्थापित किये हैं। नारां वर्ग ने अपनी ज्ञान-दर्शन चरित्र व तप की शक्ति को प्रकट कर पुरुष वर्ग को एक चुनौती सी दी है कि वह उसे उबला समझने की भूल न करें।

हालांकि इस विराट विश्व की धरा पर अनेकानेक आत्मा जन्म लेती है। लेकिन वर्तमान में किसे समय है कि दूसरों के बारे में सोचे ? लेकिन वे आत्माएँ निःसन्देह स्मरणीय बन जाती हैं जो इस धरा पर जन्म लेकर कल्याणकारी कार्यों में अपने-आपको समर्पित कर देती हैं। ऐसा ही समर्पित जीवन था श्रद्धेया कानकुंवर जी म.सा का। जिन्होंने पहले स्वकल्याण तत्पश्चात् पर कल्याण के मार्ग को अपनाया।

आपश्री का स्वभाव अत्यन्त सरल था। क्षमा, विनय, सरलता, सादगी, दयालुता आदि विविध गुणों से सुसज्जित आपका श्रमणी जीवन गुलाब की तरह सुवासित, नवनीत की भाँति मृदु मिश्री के समान मीठा व चन्द्र के समान शीतल था।

आप बाल युवा-वृद्ध जैन व जैनैतर सभी के श्रद्धा केन्द्र थे। वस्तुतः आप नारी समाज व समग्र जिन शासन के अनमोल रत्न थे। हालाँकि आप अब हमारे बीच में नहीं हैं। लेकिन आपने अपने सतत् प्रयासों के द्वारा जिन शासन की गरिमा में जो चार चाँद लगाये, उससे आपको सदैव याद किया जाता रहेगा। चूँकि महापुरुषों का अभिनन्दन अन्य साधकों के लिये प्रेरणा प्रदान करता है, उनमें साधना पथ पर आगे बढ़ने की तीव्र आकांक्षा पैदा करता है। अतः मैं इसी भावना से प्रेरित होकर इस अवसर पर अपने श्रद्धासुमन आपके चरण सरोजों में अर्पित करती हूँ।

* * * * *

शत्-शत् श्रद्धा सुमन

• श्री मधुकर शिष्या झणकार चरणोपासिका साध्वी श्री जन्द्रप्रभ चन्द्रिका' आमेट (राज.)

मनुष्य जीवन एक गहरे सागर की भाँति है। जिस प्रकार समुद्र में अनेक लहरें आकर मिलती हैं। उसी प्रकार मानव जीवन में भी मानव का अनेक व्यक्तियों से समागम होता है। कुछ व्यक्तियों के मिलन से जीवन में अपार प्रसन्नता होती है और कुछ व्यक्तियों का क्षणिक सामीप्य ही जीवन में संघर्ष क्लेश उत्पन्न कर देता है।

जब मनुष्य सच्चे सन्त या साधकों के पास जाता है तो संत अपने अनुपम ज्ञान इसी सौन्दर्य से मनुष्य की क्षुधा या झोली को भर देते हैं। इसी शृंखला में महान विदुषी साध्वीरत्ना श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. का नाम आता है। जब मैं वैराग्य अवस्था में थी तब मुझे आपश्री के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराजश्री के मुख पर अनुपम तेज देदीप्यमान हो रहा था। आपकी सुन्दर मुखाकृति को देखकर कोई भी मानव प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। आपकी आवाज में विचक्षण जादू, शीतलता, स्वभाव में अपनापन कोमलता का सहज ही अलौकिक मिश्रण था। आपको देखकर ऐसा लगता था कि जिस प्रकार बालक स्वभाव से, कोमल, छल-कपट से दूर, मोह माया रहित होता है उसी प्रकार आप श्री भी क्रोध, मान, माया, राग, द्वेष से रहित थी।

एक आदर्श श्रमणी के सभी सद्गुणों से आप सर्वथा सुअलंकृत हैं। ऐसा कहते हुए मैं किसी अतिशयोक्ति का आश्रय नहीं ले रही हूँ। आप परम शीतल, मृदुभाषी एवं वैदुष्य की अगाध अम्बोधि होते हुए भी मितभाषी थी। आपका मितभाषण श्रोताओं पर जादू सा प्रभाव छोड़ जाता था। व्यक्तिगत रूप से मैंने आपसे जो वात्सल्यता, आत्मीयता, अपनत्व प्राप्त किया है उसके वर्णन के लिए मेरे पास उचित शब्दों का नितान्त अभाव है।

व्यक्तिगत रूप से मैंने आपसे जो वात्सल्य, आत्मीयता अपनत्व प्राप्त किया है उसके वर्णन के लिए मेरे पास उचित शब्दों का नितान्त अभाव है। केवल श्रद्धावनत् मस्तक होकर आपके सम्बन्ध में अपनी तुच्छ बुद्धिनुसार जो कुछ शब्द कुसुम प्रस्तुत किए हैं वे मात्र सूर्य के आगे लघु दीपक की द्युति के समान हैं। मैं उन्हे शत्-शत् श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ।

तुच्छ लेखनी मेरी है, सद्गुणों के आप भंडार।

मेरी भावना वंदन के हित रहती है सदैव तैयार॥

शांति दया अनुकम्पा सागर। हृदय आपका परम उदार।

महासती श्री चम्पाकुंवरजी शत्-शत् वंदन करे स्वीकार॥

* * * * *

‘आध्यात्मिक ज्योति की दिव्य मशालें’

• श्रीमधुकर शिष्या झणकार चरणोपासिका साध्वी श्री सुमंगलप्रभा ‘सविता’ आमेट

जन्म के बाद मृत्यु अवश्यंभावी है। किन्तु महापुरुष मृत्यु को समझकर उसके लिए सदा हाथ में मशाल की तरह मार्गदर्शक बना रहता है। जिस प्रकार मशाल का प्रकाश सब तरह से प्राप्त होता है और प्रकाश के साथ ही लवलीन हो जाता है। इसी प्रकार हम दो ऐसी महान आत्माओं की तुलना मशाल से कर रहे हैं जिन्होंने जन्म के बाद मृत्यु को अवश्यंभावी समझ कर भरी जवानी में श्री कानकुंवरजी म.सा. ने २१ वर्ष की उम्र में एवम् चम्पाकुंवर जी म.सा. ने २२ वर्ष की उम्र में अपने जीवन को मशाल की तरह बनाने के लिये जीवन रूपी डण्डे पर संयम रूपी कपड़ा लगाया तथा आध्यात्मिक साधना रूपी स्नेह से दिव्य ज्योति को प्रकट किया है। गुरु हजारी ब्रज-मधुकर रूपी दियासलाई से ज्योति प्रकट करने वाले बने।

मशाल जिस प्रकार अपना कार्य पूरा करके स्वस्थान पर आते-आते अदृश्य हो जाती है उसी प्रकार ये दोनों महान, आत्माएँ राजस्थान से मेवाड़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्णाटक, मद्रास में कुछ समय विराजकर अपने आप में अन्तर्ध्यान हो गईं। मैं भी अपने आपको सौभाग्यशाली समझती हूँ कि जिस धरती पर दोनों आत्मा ने जन्म व दीक्षा ग्रहण की उसी धरती के कणों में मेरी भी अभिवृद्धि हुई एवम् दीक्षा भी।

अंत में मैं ऐसे महान् आध्यात्मिक ज्योति की दिव्य मशाल, कान-चम्पा की आत्मा दिव्यात्मा बन गई। मेरे मन में दर्शन की अभिलाषा थी वह अंतराय कर्मों के कारण मन की मन में रह गई। अब मैं आपश्री के चरणों में कोटिशः श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

कितना पावन निश्चल जीवन सजग साधना में रत था,
स्पष्ट-स्पष्ट कहने की आदत वाला पावन तव पथ था,
छेड़ गये हो तुम तो हमको, याद तुम्हारी आती है,
तेरे पद चिन्हों पर चलना, यही हमारी थाती है॥

* * * * *

उच्च कोटि की द्वायात्मा

• श्री मधुकर शिष्या झणकार चरणोपासिका साध्वी आमेट (राज.)

अनादिकाल से हमारी आत्मा जन्म और मृत्यु के दोनों तटों के बीच रही है। अनन्त काल बीत गया इस प्रक्रिया में। ठाणांग सूत्र में भगवान ने कहा कि ऐसा कोई स्थान न बचा जहाँ इस आत्मा ने

जन्म ग्रहण न किया हो और ऐसा कोई प्राणी नहीं बचा जिसके साथ अपनी आत्मा ने संबंध न किया हो। अनन्त-शक्ति को पहचानकर आत्मा और शरीर भेद विज्ञान को पा लिया। आत्म वैभव, सम्पन्न महासती द्वय की साधना विश्व के प्राणिमात्र के प्रति मंगलमय भावनाओं से ओत-प्रोत, वात्सल्यमय भावनाओं से सराबोर और सबके कल्याण की भावनाओं से युक्त थीं। आप दोनों का जीवन त्याग वैराग्य पूर्ण दीप्तिमय जीवन की अद्भुत मशाल के रूप में था।

आपने गुरु आज्ञा, विनम्रता, सरलता, स्पष्टता, विराटता, सजगता, वात्सल्यता से ही आत्मा का श्रृंगार किया। आप उभय महान आत्माओं का जीवन बंदनीय एक स्तुत्य है। उभय आत्मा जहां भी हो उसे शांति प्राप्त हो और अंततः चरम लक्ष्य अक्षयानंद की प्राप्ति हो, इन्हीं भव्य भावनाओं के साथ उच्च कोटी-की द्वायात्मा को श्रद्धा प्रसून समर्पित है।

गुणरत्नों से आप्लावित जीवन

• श्री मधुकर शिष्या झणकार चरणोपासिका
एस.चन्दन बाला 'मंजुल' आमेट (राज.)

विदुषी साध्वी श्री चन्द्रप्रभा के कुशल सम्पादन में महासती जी स्व. साध्वी रत्न श्री कानकुंवरजी म. सा. मधुर व्याख्यानी स्व. श्री चम्पाकुंवरजी म. सा. की पावन स्मृति में महासती द्वय स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन हम सभी के लिए महान उपलब्धि है।

दोनों ही साध्वी प्रवर जैन समाज की महान विभूतियां थी। जिनके जीवन सरोवर में प्रेम, दया, करुणा के सुगंधित पुष्प विकसित होते हैं व परोपकार का माधुर्य, चारित्रादि गुणों का सौन्दर्य अनोखेपन को लिए हुए हो, वह आदरणीय/वन्दनीय/ पूजनीय बन जाता है।

उन्हीं में से ये ये द्वय साध्वी रत्न जिन्होंने सद्गुणों की अनोखी रंग-बिरंगी छटा जन मानस पर बिखेर दी। नानाविध गुणों से जीवन शोभा में अभिवृद्धि की।

द्वय श्रमणी रत्न बाहर से जितने मनोरम थे। उससे भी कहीं अधिक आप अन्दर से मनोरम थे। आपकी मंजुल मुखाकृति पर गम्भीर वैचारिकता की भव्य आभा झलकती थी। और उदार आंखों के भीतर से बालक के समान सहज स्नेह सुधा बरसती थी। जब भी देखा वार्तालाप में सरलता शालीनता और संक्षिप्तता के दर्शन होते थे। हृदय की उच्छल संवेदनशीलता एवं उदारत करुणा दिखाई देती थी।

मैंने कई बार आपके दर्शन किये, करीब से देखने का मौका मिला। आपका बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। कुछ क्षणों के सम्पर्क में ही जीवन की लम्बी दूरी को पार करके आगन्तुक आत्मीय स्नेह के सूत्र में बंध जाता था। आपका प्रथम साक्षात्कार ही जीवन की स्मरणीय रमणीय याद बन जाती थी। अनेकानेक गुणरत्नों से जिनका जीवन आप्लावित था वे द्वय सती प्रवर आज हमारे मध्य इस भौतिक देह से नहीं है। उन द्वय महासती की दिवंगत आत्मा को भावाभिष्यंजना अर्पित करती हूँ।

कहां गए हो द्वय महासती, छोड़ हमें मझधार में।

अपनी शानी एक तुम्हीं थे, इस साधक संसार में॥

तुम सी श्रमणी जपी तपी नहीं, अन्य कोई मिल जाता है।

तुम सी श्रमणी खोजने पर, वो ध्यान तुम्हीं पर जाता है॥

तुम तो जाकर बैठ गए हो, दिव्य देव संसार में।

अपनी शानी एक तुम्हीं थे, इस साधक संसार में॥

ऐसी दिव्यात्मा के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ।

* * * * *

श्रद्धा सुमन

• श्री मधुकर शिष्या झणकार चरणोपासिका साध्वी श्री मनोहर कुंवर, अमेट (राज.)

श्रद्धेय महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. आज हमारे बीच नहीं हैं। अभी-अभी पत्र मिला मद्रास से मंत्रीजी लोढ़ाजी द्वारा कि महासती द्वय स्मृति ग्रन्थ निकल रहा है। यह जानकारी विचार हुआ कि मैं उन दोनों महान् आत्माओं के विषय में कुछ लिखूँ। जन्म-मरण की श्रृंखला कर्मबद्ध आत्मा के साथ अविरल चलती रहती है। कर्म की लीला अपरम्पार है, किन्तु जो अपने भव्य जीवन को निरन्तर आत्मकल्याण में लीन कर देता है वह मृत्युञ्जयी, आत्मजयी एवं कर्मजयी बन जाता है।

इसी श्रृंखला में आबद्ध नाम है पूज्य स्वामी जी मरुधरा मंत्री प्रवर्तक श्री हजारीलाल जी म.सा., उप प्रवर्तक शासन सेवी पूज्य स्वामी जी श्री ब्रजलाल जी म.सा., बहुश्रुत पंडित रत्न आगम महारथी श्री युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म.सा. 'मधुकर' की सुशिष्या श्री कानकुंवरजी म.सा. का मारवाड़ की हृदयस्थली कुचेरा की पावन भूमि में श्रीमान् बीजराज जी सुराणा की धर्मपत्नी श्रीमती अनछीबाई की कुक्षि से भाद्र कृष्ण ८, संवत् १९६८ को जन्म लिया। बचपन में अलौकिक प्रतिभा से अपूर्व अध्ययन कर जीवन बगिया को संवारा।

जब युवा अवस्था की देहली पर आगमन हुआ तो आपका विवाह श्रीमान् घासीलालजी भंडारी के साथ सम्पन्न हुआ। आपका जन्म, शादी और दीक्षा का स्थान कुचेरा ही रहा। कुछ समय के पश्चात् भंडारी जी का स्वर्गवास हो गया और महासती श्री सरदारकुंवरजी म.सा. का पदार्पण हुआ तथा आपश्री के सान्निध्य में ज्ञान ध्यान सीखा एवं वैराग्यभावना जागृत हुई। आपने माघ शुक्ला १० संवत् १९८९ में पूज्य स्वामीजी श्री हजारीलालजी म.सा. के मुखारविंद से कुचेरा में दीक्षाग्रहण की। फिर आपने गुरुणीसा श्री सरदारकुंवरजी म.सा. से जैन, दर्शन साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन किया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत की आप अच्छी ज्ञाता थी। स्वाध्याय के सम्बल से आत्मबोध व प्रज्ञा का प्रस्फुटन हुआ। आपकी व्याख्यान शैली अद्भुत थी। महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. आपकी संसार पक्षीय भतीजी थी। श्री चम्पाकुंवर जी

म.सा. के प्रवचन मधुर एवं प्रभावशाली होते थे। आपके दर्शन, वाणी एवं सेवा का मुझे अनेक बार लाभ मिला। आप मेरी संयम यात्रा के पाथेय थे। जनमानस को प्रेरणा प्रदान कर धर्म के प्रति निष्ठा जागृत करना आपका लक्ष्य रहता था। जहाँ भी आपका विचरण होता संघ में हर्ष की लहर दौड़ जाती। आप दोनों ही महान सतियां शिरोमणी शांत-प्रशांत जीवन व्यतीत कर आपने धैर्य, सहनशीलता, समर्पण एवं संघ निष्ठा का आदर्श प्रस्तुत किया, जो अनुकरणीय है। ऐसे श्रमणी रत्न का हमारे मध्य से चला जाना चतुर्विध संघ के लिए महती एवं अपूरणीय है। दोनों दिव्यात्माओं को कोटिशः श्रद्धासुमन अर्पित करती हूँ।

श्री कान चम्पा हमसे, जुदा हो गई।

मन की इच्छा मेरी, मन की मन में रह गई।

सोचा था दर्शन की कामना, अब शीघ्र पूरी होगी।

लेकिन आप स्वप्निल दुनिया से विलीन हो गई॥

* * * * *

मेरा स्वप्न अधूरा रह गया

• श्री मधुकर शिष्या झणकार चरणोपासिका साध्वी जयमाला 'जीजी' आमेट

कई दिनों से सोच रही थी कि दोनों महान आत्माओं के बारे में कुछ लिखूँ। लिखना भी ऐसे महापुरुषों के संयमी जीवन तथा उनके सान्निध्य में हुए अपने अनुभवों से जिनकी महानता का कोई ओर छोर ही नहीं, फिर भी साहस करके लिखने बैठी। आँखें बंद करके याद करने, लगी कहाँ से शुरू करूँ। धीरे-धीरे चिंतन संवत् २०२९ की ओर गया। आप श्री कुचेरा में चातुर्मासार्थ विराज रहे थे।

उस समय पूज्य गुरुदेव उप प्रवर्तक शासन सेवी पूज्य स्वामी जी श्री ब्रजलाल जी म.सा. एवं बहुश्रुत पंडित रत्न आगम महारथी युवाचार्य भगवन् श्री मिश्रीमल जी म.सा. का गोटेन चातुर्मास एवं गुरुणीसा म.सा. का धन्यारी कला था। जैसे ही मैं बीकानेर से आई तो गुरुणीसा म.सा. ने कहा पूज्य गुरुदेव श्री के दर्शन एवं दीक्षा मुहूर्त के लिए गोटेन जाओ। वहाँ पूज्य गुरुदेव ने फरमाया कि तेरी दीक्षा मृगसर शुक्ला पंचमी को आसोप में होगी। अभी तुम कुचेरा जाओ। पूज्य स्वामी जी रावतमल जी म. सा. एवं महासतियाँजी श्री कानकुंवरजी म.सा. परम विदुषी चम्पाकुंवरजी म.सा. आदि ठाणा को विनती करना कि मेरी दीक्षा पर पधारना तथा पधारने की स्वीकृति दिलाओ। उस समय मैं गुरु आज्ञा से कुचेरा गई। आपश्री के मैंने दर्शन किए और देखा आपका अध्ययन ठोस था। आप अपनी शिष्याओं को तत्परतापूर्वक अध्ययन करवाती। श्रावक वर्ग को किस प्रकार से प्रेरणा देना, इस कला में भी आप दोनों प्रवीण थी। आपका जीवन संयमित एवं मर्यादित था। सही है जे एगे जिये जिया पंचहि। इसके अनुरूप ही आपकी साधना थी। आपके बारे में क्या कहूँ जितना कहूँ उतना ही कम है। मुझे आपने बहुत ही अच्छे ढंग से संयम जीवन जीने की शिक्षा दी तथा आसोप तो किसी कारणवश न पधारकर आप धन्यारी कला पधारे। आपश्री से गुरुणी जी म.सा. ने बड़ी दीक्षा देने का अनुरोध किया। फिर मेरी बड़ी दीक्षा आपश्री के मुखारविंद से हुई। मुझ पर आपका बहुत स्नेह था। मैंने सुना की आप अस्वस्थ है। भावना मेरी प्रबल थी

कि मैं आपश्री के दर्शन करूँ लेकिन अंतराय कर्म के कारण मेरा स्वप्न अधूरा ही रहा। परम विदुषी म. सा. तो अचानक ही स्वर्ग पधार गये, कुछ समय के बाद आप भी हमें छोड़ कर सदा-सदा के लिए चले गए।

अंत में कोटिशः श्रद्धा सुमन अर्पित करती हुई शासन देव से प्रार्थना करती हूँ कि आप दोनों आत्माएँ जहाँ भी हो उन्हें चिर शांति प्राप्त करें।

* * * * *

सरलता की प्रतिमूर्ति

• श्री मधुकर झणकार चरणोपासिका साध्वी श्री आनन्दप्रभा 'आशा' आमेट (राज.)

जिन्दगी न केवल जीने का बहाना है।

जिन्दगी न केवल साँसों का खजाना है॥

जिन्दगी है सूरज पूर्व दिशा का

जिन्दगी का काम सूरज उगाना है।

वास्तव में जिन्दगी उसी की सार्थक है जो दूसरों के लिये प्रेरणा बन सके, दूसरों के लिये काम आ सके।

ऐसी ही सुवासित जिन्दगी थी हमारी श्रद्धा केन्द्र ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सकल साधिका स्नेह एवं सरलता की मंगलमूर्ति श्री श्री १०८ श्री कानकुंवरजी म.सा. की जो आज भौतिक देह से हमारे सामने नहीं है।

आप सरलता की साक्षात् प्रतिमा थी सरलता एवं निर्मलता आपके रोम-रोम में उद्भावित थी। आपकी सरलता से प्रभावित होकर संत सतियाजी एवं कई श्रावक श्राविकाएं आपको सरलमना के नाम से भी पुकारते थे।

मुझे भी परमाराध्या द्वय महासती जी के मंगलमय दर्शन का लाभ वि.सं. २०३२ में कुचेरा में प्राप्त हुआ था। प्रथम पावन दर्शन में ही आपकी सरलता विनम्रता और उदारता पूर्ण सुमधुर व्यवहार से मेरा अन्तरमन आनंदरस से आप्लावित हो गया। आत्मीयता की अमृतमयी अनुभूति से अन्तःकरण अपार आनन्द के क्षीर सागर में अवगाहन करने लगा। कोई सजावट नहीं, कोई बनावट नहीं ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं वर्षों से आपकी कृपापात्र रही हूँ।

आपका आदर्श जीवन, आत्म साधना सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय समर्पित था।

आपके अन्तर्मन में प्रतिपल और प्रतिक्षण सौम्यता सरलता उदारता और सात्विकता का निर्मल निर्झर कलाकल, छलछल का मधुर निनाद करता हुआ प्रवाहमान था। और वह भावुक भक्तों के पाप ताप को मिटाकर आध्यात्मिक सरलता प्रदान करता था।

उनके पावन सान्निध्य में बैठकर स्वभाव की शीतलता और विशालता के संदर्शन होते थे।

हमारे दुर्भाग्य के कारण क्रूरकाल ने हम से उनको छीन लिया। आज आप हमारे सामने नहीं हैं। किन्तु उनके ज्योतिर्मय जीवन से सतत प्रेरणा मिलती रहेगी। मैं उन द्वय श्रमणी प्रवर के चरणारविन्दों में स्नेहस्निग्ध श्रद्धापुष्प अर्पित करती हूँ।

* * * * *

श्रद्धाजंलि

मनुष्य की आत्मा अनन्त शक्ति का अखण्ड स्रोत है। मानव इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।

समस्त मानवीय शक्तियों का संगठन, नियंत्रण तथा सदुपयोग, संयम और सदाचार द्वारा ही हो सकता है। संयम महान शक्ति है। संयमशील पुरुष ही वीर होते हैं। मनुष्य समाज पर निर्भर है। संयम ही एकमात्र वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य -मनुष्य समाज पर निर्भर है। संयम ही एकमात्र वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी तमाम शक्तियों का विकास कर सकता है। संयम के द्वारा ही आत्मा सिद्ध बुद्ध, निरञ्जन, निराकार बन जाती है। सुख और शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति हमारा लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग संयम के अतिरिक्त अन्य नहीं है।

संयम के अभाव में धर्म साधना नहीं हो सकती। मन, वचन और काया के संयम से ही जीवन का निर्माण संभव है।

परमपूज्य शासन प्रभाविका, सरलता एवं सौम्यता की मूर्ति विदुषी महासती जी श्री कानकुंवरजी म.सा. का जन्म कुचेरा में हुआ तथा २२ वर्ष की उम्र में ही आपने कुचेरा में ही संयम अंगीकार किया। आपकी स्वाध्याय में अधिक रुचि थी। आपने जैन दर्शन साहित्य का गहरा अध्ययन किया। आपकी वाणी में मधुरता एवं सरलता थी। आपने लगभग ६० वर्षों तक निर्मल चरित्र का पालन किया। दिनांक ४ अगस्त १९९१ को दोपहर लगभग १२.४० बजे आपने संथारे सहित देह त्याग किया।

इसी प्रकार परम पूज्य श्रमणीरत्न परमविदुषी महासतीजी श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. का जन्म कुचेरा में हुआ तथा २४ वर्ष की आयु में आपने दीक्षा कुचेरा में ली तथा लगभग ४३ वर्षों तक संयम साधना का पालन कर जिन शासन के गौरव में अभिवृद्धि की। आप सरल स्वभावी, मधुर व्याख्यानी, मृदुभाषी, सेवाभावी, स्पष्टवादिता शिक्षाविज्ञ आदि अनेक गुणों से युक्त थी।

आपने पिछले ४-५ वर्षों में मद्रास साहूकारपेठ में रहकर श्रावक-श्राविकाओं में विशेष धर्म जागरण की प्रेरणा दी। दिनांक १७-३-९१ को रात्रि में ११.३० बजे आपने मद्रास में देह त्यागा।

मैं पूज्य दोनों महासतीयांजी म. सा. के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ तथा उनकी आत्मा के शाश्वत सुख प्राप्ति की मंगल कामना करता हूँ। आप जैसे परम विदुषी महासतीयांजी को खोकर समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। जिसकी निकट भविष्य में पूर्ति नहीं हो सकती है।

अमरचन्द मोदी
मंत्री

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
पोपलिया बाजार
श्री जैन स्थानकवासी वीर संघ
पोपलिया बाजार, ब्यावर

* * * * *

शोक एवं श्रद्धांजलि प्रस्ताव

परमपूज्य गुरुदेव श्रमण संघीय स्व. युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म.सा. 'मधुकर' की अन्तेवासिनी परम श्रद्धेया वयोवृद्धा पूज्या महासतीजी श्री कानकुंवरजी म.सा. का दिनांक ४-८-९१ को मध्याह्न साढ़े बारह बजे मद्रास साहूकारपेठ में संथारापूर्वक समाधिकरण हो गया।

श्रद्धेया महासतीजी ने २२ वर्ष की आयु में मरुधर मंत्री स्व. स्वामीजी श्री हजारीमल म. सा. के करकमलों द्वारा मरुधरा की महान सती पूज्या सरदारकुंवरजी म.सा. को नेश्राय में भागवती दीक्षा अंगीकार की। ५८ वर्ष की संयम पर्याय में आपने स्वयं को सदैव स्वाध्याय, मौन एवं ज्ञानाराधना में तल्लीन रखा।

आपके देवलोक गमन से चतुर्विध संघ की एक अपूरणीय क्षति हुई है।

अत्र विराजित परम विदुषी पूज्या महासती जी श्री उमरावकुंवरजी म.सा. 'अर्चना' आदि ठाणा ११ के सान्निध्य में श्री आगम प्रकाशन समिति एवं मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन की ओर से ब्रज मधुकर स्मृति भवन में शोकसभा का आयोजन किया गया। दोनों संस्थाओं के परिवार जन स्वर्गस्थ आत्मा को शांति प्राप्ति की कामना करते हुए श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

अमरचन्द मोदी
मंत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

उत्तमचंद मोदी
मंत्री

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
ब्यावर

* * * * *

शोक एवं श्रद्धांजलि प्रस्ताव

श्री आगम प्रकाशन समिति एवं मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन समिति की स्थानीय कार्यकारिणी की आज दिनांक १९-३-९१ को यह सम्मिलित सभा पूज्य महासतीजी जयमालाजी आदि ठाणा के सान्निध्य में साध्वीजी श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. के मद्रास में दिनांक १७-३-९१ को हुए देहावसान के लिए हार्दिक शोक प्रकट करती है।

साध्वी जी श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. ने विक्रम सं. २००५ माघ शुक्ला १० को स्वामी जी श्री हजारीमल जी म.सा. के मुखारविन्द से आर्हती दीक्षा अंगीकार की थी। आपश्री ने अपनी इस सुदीर्घ दीक्षा पर्याय को सेवा साधना और स्वाध्याय की त्रिधारा से पवित्र बनाया। साधना की अमर साधिका साध्वीजी उस दीप के समान है, जो स्व-पर को समान रूप से प्रकाशित करता है।

साध्वीजी की जीवन पौथी के प्रत्येक पत्रे में विनय, विवेक, क्षमता, मधुरता, पवित्रता के सूत्र संजोये हुए हैं।

साध्वीजी के देहावसान से चतुर्विध संघ की अपूरणीय क्षति हुई है। दिवंगत आत्मा को परम शान्ति प्राप्त हो, यह कामना करते हुए हार्दिक श्रद्धाजंलि अर्पित करते हैं।

* * * * *

शोक प्रस्ताव

कवर्धा (म.प्र.) श्रमणसंघीय सलाहकार पूज्य गुरुदेव श्रीरतनमुनि म.सा. आदि ठाणा ५ को तार द्वारा यह जानकारी कि वयोवृद्धा सरलमना पू. श्री कानकंवरजी म.सा. का देहावसान हो गया, अत्यन्त दुःख हुआ।

व्याख्यान बंद करके शोक सभा मनाई गई। पूज्य श्री गुरुदेव ने उनका पूरा परिचय कुचेरा, कटंगी और मद्रास से संबंधित दिया। आपने कहा कि दुर्ग और रायपुर में चातुर्मास और सिकन्दराबाद एवं दुर्ग में दीक्षाये आदि कराने का प्रसंग आया। आचार्य श्री जयमल सम्प्रदायस्थ होने के कारण निकट सम्बन्धों में रहे हैं। आपने कहा कि श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. के दुखद अभाव को भूले ही नहीं थे कि आपश्री का देहावसान हो गया। पीछे साध्वी समुदाय पर वियोग का यह दोहरा दुःख आ पड़ा है। संवेदना व्यक्त करते हुए चार लोगस्य का ध्यान कर दिवंगत आत्मा की शान्ति की कामना की गई।

कवर्धा में भी आपश्री का आगमन हुआ था। शोक प्रस्ताव के साथ सभा विसर्जित हुई।

* * * * *

आमेट में शोक सभा

दिनांक ७-८-९१ को सूचना मिली की मद्रास में विराजित पूज्य महासतियांजी श्री कानकुंवरजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया, यह सुनकर अत्र विराजित महासतियांजी श्री मनोहर कुंवरजी म.सा. को हार्दिक दुःख हुआ तथा संघ में शोक व्याप्त हो गया। महासतीजी के सान्निध्य में शोकसभा का आयोजन रखा गया। महासतीजी श्री मनोहरकुंवरजी एवं आनंद प्रभा जी तथा चन्दन बाला म.सा. ने संवेदना भरे स्वर में स्वर्गस्थ महासतीजी को श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए उनके आदर्श जीवन पर प्रकाश डाला एवं उनके बताये हुए मार्ग पर चलने की सद्प्रेरणा दी। साध्वी जी भी चन्द्रप्रभाजी एवं सविताजी ने गीतिका के माध्यम से श्रद्धाजंलि प्रदान की।

* * * * *

शोक प्रस्ताव

आज दिनांक ६-८-९१ मंगलवार को वीर भवन में प्रातः ८.३० बजे पंडित रत्न श्री शुभेन्दु मुनि सा. तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोद मुनि म.सा. के सान्निध्य में स्वर्गीय युवाचार्य आगमज्ञ श्री १००८ श्री मधुकर मुनि जी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी सुशिष्या शासनदीपिका महासतीजी श्री कानकुंवरजी म.सा. का दिनांक ४-८-९१ को मद्रास महानगर में महाप्रयाण हो जाने के कारण एक शोकसभा रखी गई।

सर्वप्रथम पंडित रत्न श्री शुभेन्दु मुनिजी म.सा. ने परमपूज्य १००८ श्री जयमल जी म.सा. एवं उनकी परम्परा के संबंध में विस्तृत जानकारी कराते हुए महासती जी श्री कानकुंवरजी म. सा. के जीवन पर प्रकाश डाला।

तत्पश्चात् श्रीमान् ताराचन्द सा. कोठारी, श्री पुखराज सा. मेहता, श्री नाथूसिंह जी छात्रावास अधीक्षक, हस्तीमल डोसी ने स्वर्गीया महासती जी म.सा. का जीवन परिचय देते हुए अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. शान्त एवं सरल स्वभावी थे। आपने अपने तप, जप, संयम, ज्ञान, ध्यान की आराधना करते हुए श्री संघ को मार्गदर्शन प्रदान किया एवं शासन की प्रभावना की। उनके स्वर्गवास से अपूरणीय क्षति हुई है। समस्त मेड़ता श्री संघ ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

आज व्याख्यान बन्द रखा गया तथा चार लोगस्स के ध्यान के पश्चात् सभा विसर्जित की गई।

• श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ, मेड़ता सिटी (राजस्थान)

* * * * *

हार्दिक श्रद्धांजलि

मद्रास विराजमान स्वर्गीय पूज्य युवाचार्य प्रवर श्री मधुकरमुनि जी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी वयोवृद्धा महान् साध्वी श्री कान कुंवर जी महाराज के स्वर्गारोही होने का संवाद पाकर पूरे संघ में शोक की लहर व्याप्त हो गई।

श्रद्धेय पूज्य प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनि जी महाराज 'कमल' के सान्निध्य में 'स्मृति सभा' का आयोजन किया गया। संघ मंत्री श्री माणकचंद्र जी सिंघवी ने स्व. महासती जी के दिव्य जीवन पर प्रकाश डाला।

श्रद्धेय प्रवर्तक श्री ने 'स्मृति सभा' में स्व. महासती जी श्री कानकुंवर जी के निर्मल संयमी जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि महासती जी की संयम साधना उत्कृष्ट थी-वे न केवल मरुधरो की अपितु संघ की शान थी। उनके स्वर्गवास से संघ में एक महान दिव्य साधिका की क्षति हुई है।

अन्त में सामूहिक ध्यान के बाद उनकी आत्मा को चिरशान्ति की प्राप्ति की कामना के साथ श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

मूलचन्द सुराणा
अध्यक्ष,
श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ,
नागौर (राज.)

* * * * *

महासती जी श्री कानकंवरजी म.सा. को श्रद्धांजलि

• श्री संघ बालाघाट (म.प्र.)

युवाचार्य स्व. श्री मधुकरमुनिजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी वयोवृद्धा महासतीजी श्री कानकंवर महाराज साहब के महाप्रयाण का समाचार मद्रास निवासी सिद्धेचंदजी लोढ़ा द्वारा टेलीफोन से प्राप्त होते ही बालाघाट जैन समाज स्तब्ध रह गया।

श्री बीजराजजी सुराणा कुचेरा (राज.) की सुपुत्री श्री कानकुंवरजी ने २२ वर्ष की यौवनावस्था में जैनश्वरी भगवती दीक्षा अंगीकार की। साधना काल के ६० वर्षों में आपने “तिष्णाणं-तारयाणं” के भाव को चरितार्थ करते हुए जनमानस में धर्महित के प्रति चेतना जागृत की। सरल स्वभाव, मृदुभाषी, सेवाभावी आदि अनेक मानवीय गुणों से सम्पन्न, दया, प्रेम व स्नेह की साक्षात् यह प्रतिमा, राजस्थान महाराष्ट्र म.प्र. आदि प्रदेश का विचरण कर अंत में मद्रास स्थित साहुकारपेठ जैन स्थानक भवन में शारीरिक अस्वस्थता के कारण पिछले ४-५ वर्षों से विराजमान थी। लगभग ५ माह पूर्व दिनांक १७-३-९१ को आपकी विदुषी सुशिष्या श्री चंपाकुंवरजी म.सा. के आकस्मिक देहावसान के दुख से आपकी सुशिष्यायें व जैन समाज उबर भी न पाया था कि ४-८-९१ को आपका महाप्रयाण हो गया।

दिनांक ६-८-९१ को संघ के प्रमुख ट्रस्टी श्री चंदनमल जी मोदी की अध्यक्षता में जैन स्थानक भवन में श्रद्धांजलि सभा हुई। जिसमें प्रकाश बागरेचा, सौ. तारादेवी कांकरिया ने सन् १९८३ में बालाघाट में सम्पन्न आपके चातुर्मास के संस्मरणों को याद कर श्रद्धांजलि व्यक्त की। हाल ही में मद्रास प्रवास के समय हुई आपसे वार्ता का जिक्र करते हुए ताराचंदजी लोढ़ा ने उनके विशाल व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए भावांजलि व्यक्त की। चंदनमलजी मोदी ने कहा कि आपका पितृपक्ष परिवार बालाघाट जिले (कटंगी) में होने से आपका विशेष लगाव बालाघाट के प्रति रहा है। सुभाष लोढ़ा ने श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए कहा कि आपके महाप्रयाण से जहां एक ओर श्री बसंतकुंवरजी आदि सुशिष्याओं को प्राप्त आपके वरदहस्त से वंचित होना पड़ा है वहीं जैन समाज ने करुणानिधि संत रत्न को खोया है। अंत में अनन्त में विलीन आपकी आत्मा को चिरशान्ति प्राप्ति की मंगलभावना के साथ चार सौगस्स का ध्यान कर सभा विसर्जित हुई।

* * * * *

अपूरणीय क्षति

• रीखबन्द लोढ़ा, मद्रास

राजस्थान त्याग और बलिदान की भूमि रही है। इसके कण-कण में यह विशेषता व्याप्त है। यहाँ अनेक धर्मवीर कर्मवीर, तपवीर, दानवीर और शूरवीर हुए हैं। इन वीरों की गौरव गाथाएँ आज भी घर-घर में गूँज रही हैं।

राजस्थान के नागौर जिले में भी ऐसी अनेक विभूतियाँ हुई हैं। कृष्ण भक्त कवयित्री मीराबाई की जन्म भूमि मेड़ता भी नागौर जिले में ही है। नागौर जिले में ही एक कस्बाई गाँव कुचेरा है। कुचेरा अपनी अनेक विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध है। कुचेरा में जैन धर्म की परम्परा काफी पुरानी है। इस गाँव का सम्बन्ध अनेक मुनि भगवंतों एवं साध्वियों जी महाराज से रहा है। अनेक की यह यह कर्मस्थली रहा है, तो यहाँ जन्म लेकर अनेक भव्यात्माओं ने संयम मार्ग अंगीकार कर स्व-कल्याण तो किया ही समाज को भी मार्गदर्शन प्रदान किया है।

प्रातः स्मरणीय, वज्रसंकल्प के स्वामी पूज्य आचार्य श्री जयमल जी म.सा. का तथा उनके उत्तरवर्ती आचार्यों, मुनिराजों का इस क्षेत्र में विशेष प्रभाव रहा है। उन्हीं की सम्प्रदाय की अनेक साध्वियों का कुचेरा से निकट सम्पर्क रहा है और अनेक साध्वियों ने यहीं जन्म लेकर जैन धर्म की ध्वजा पूरे भारत में फहराई है। ऐसी महान साध्वियों में अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कानकुंवर जी म.जा. एवं परमविदुषी, कुशल प्रवचनकर्त्री महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. का नाम पूर्ण श्रद्धा भक्ति के साथ लिया जाता है। दोनों ही महासतियाँ जी का जन्म कुचेरा में हुआ और दोनों ने संयमव्रत भी यहीं पर अंगीकार किया।

लगभग सात वर्ष पूर्व दानवीर सेठ सा. पद्मश्री श्री मोहनमलजी सा. चोरडिया ने पू. महासती श्री कानकुंवर जी म. के नाम से कुचेरा में एक स्थानक भवन का निर्माण करवाया था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्रीमान चोरडिया सा. कुचेरा की एक हस्ती थे औ सुप्रसिद्ध समाज सेवी भी थे।

मारवाड़ में धर्म प्रचार करते हुए दोनों ही महासतियाँ जी मेवाड़, मध्यप्रदेश में भी पधारी और मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में अच्छी प्रभावना कर गुरु गच्छ का नाम उज्ज्वल किया। मध्यप्रदेश से आपका विहार आंध्रप्रदेश की ओर हुआ। आंध्रप्रदेश में भी धर्म ध्यान का ठाट मच गया। जब आपका पदार्पण कर्नाटक में हुआ तो श्रद्धालु भक्तों में प्रसन्नता की लहर फैल गई। रायचूर, सिधनूर आदि स्थानों पर धर्म गंगा प्रवाहित हो गई।

कर्नाटक से महासतियाँ जी का आगमन साहुकार पेठ, मद्रास में हुआ। यहाँ यह स्मरणीय है कि जब महासतियाँ जी कर्नाटक में विचरण कर रही थी, तब साहुकार पेठ, मद्रास का श्रीसंघ बार-बार आपश्री की सेवा में उपस्थित होकर मद्रास पधारने की विनती करता आ रहा था। उसी विनती को ध्यान में रखकर आपका पदार्पण मद्रास में हुआ था। आपके मद्रास पदार्पण से श्रीसंघ में नई चेतना उत्पन्न हो गई। हमारे लिये तो यह और भी गौरव की बात थी। कारण कि हमारा परिवार भी कुचेरा का ही है। इस कारण अपनत्व की भावना में और अधिक वृद्धि होती है।

लगभग पांच वर्ष तक महासतियां जी का मद्रास में रहना हुआ। महासती श्री कान कुंवर जी म. सा. की अस्वस्थावस्था के कारण कहीं विहार नहीं हो पा रहा था। इस अवधि में मैंने देखा कि महासतीजी में अटूट धैर्य और सहिष्णुता है। अपनी अस्वस्थता की चिंता किये बिना वे अपनी दैनिक क्रियाओं के प्रति पूर्ण सजग रहती थी। अपनी शिष्याओं को मार्ग दर्शन प्रदान किया करती थी। संयम में जरासी भी शिथिलता नहीं आने पाई थी।

लगभग पांच वर्षों की अवधि तक महासतियांजी के सान्निध्य में रहकर धर्म ध्यान करने का अवसर तो मिला ही साथ ही इतने वर्षों तक सेवा करने का भी अवसर मिला, यह हमारा सौभाग्य है।

माह मार्च १९९१ हमारे लिये शुभ नहीं रहा। कुशल प्रवचनकर्त्री, परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. एकाएक अस्वस्थ हो गये। वे लगभग आठ बजे रात्रि में अस्वस्थ हुए और रात्रि ११.४५ बजे समाधि मरण को प्राप्त हो गये। इस अल्पावधि में हम विशेष कुछ भी उनके लिये नहीं कर पाये। समाज पर उनका असीम उपकार था। अस्वस्थ होते ही ऐसा लग रहा था मानो काल का आक्रमण प्रतिपल चालू है-**नत्थि कालस्स अणागमो**। काल के सम्मुख किसी की नहीं चलती है। टूटी की कोई बूटी नहीं है। अंततः क्रूर काल के पंजे अधिक कस गए और दिनांक १७-३-९१ को क्रूर काल ने महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. को अपना ग्रास बना लिया। शोक की लहर व्याप्त हो गई। जो नहीं सोचा था वह हो गया।

परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. के वियोग को अभी भुला भी नहीं पाये थे कि दि. ४-८-९१ को महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. को क्रूर काल ने हमसे छीन लिया और हम सब बेबस देखते रह गये। पू. गुरुवर्या महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. की अस्वस्थता को देखते हुए उनके उपचार की समुचित व्यवस्था की गई। एक से बढ़कर एक डाक्टर एवं विशेषज्ञ डाक्टरों को भी बताया। इस अवधि में डा. सुराणा ने पू. गुरुवर्या श्री की जो सेवा की वह सराहनीय है। वे अंत समय तक सेवा में जुटे रहे। किंतु विकराल काल के पंजों से वे महासतीजी को नहीं बचा सके।

अल्पावधि में दो वरिष्ठ महासतियां जी का वियोग एक बहुत बड़ी अपूरणीय क्षति होती है। मैं अपनी ओर से तथा अपने समस्त परिवार की ओर से दोनों महासतियांजी को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, और शासन देव से उनकी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना करता हूँ।

* * * * *

उनके बताये मार्ग का अनुसरण करें

परमपूज्य विदुषी महासतियां जी श्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने के समाचार तार द्वारा मिले। यह समाचार यहां विराजित घोर तपस्वी संघ सेवा भावी पूज्य गुरुदेव श्री मोहनमुनि महाराज साहब को जैसे ही मिले यहां सर्वत्र शोक की लहर फैल गई। यहां श्री संघ ने शोक संवेदना प्रकट की है।

पूज्य गुरुदेव ने शोक संदेश भेजा है एवं सभी महासतियां जी म.सा. को धर्म संदेश फरमाया है। महासतियां जी पूज्य गुरुदेव श्री हजारीमल जी म.सा. की बड़ी शिष्या थी और उन्होंने अपने जीवन में

त्याग जिस भावना से ली जीवन पर्यन्त उसी भावना से त्याग तप की पालना की। सभी सतियों जी को गुरुदेव की ओर से धैर्य बंधावे एवं आर्त्तध्यान नहीं करें सभी की सुखसाता पूछावे। जिस प्रकार उन्होंने त्याग तप से अपना दीर्घ जीवन बिताया उन्हीं के बताये हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवन का कल्याण करें।

• रामपुरा

* * * * *

शिवपुर में शोक सभा

आज प्रातः काल ब्यावर से सूचना मिली कि मद्रास में स्व. गुरुदेव युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री कान कंवरजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया।

सूचना मिलते ही श्री संघ में शोक की लहर छा गई, व्याख्यान बन्द रखा गया। ब्यावर निवासी श्रीमान हुक्मीचन्दजी साहब कोठारी की अध्यक्षता में शोक सभा हुई। शोक सभा में चार लोगस्स का ध्यान किया गया।

महासतीश्री के निधन पर गहरा दुःख व्यक्त किया। शोक सभा में उप प्रवर्तक श्रमण विनय कुमार 'भीम' ने महासती के जीवन पर प्रकाश डाला। श्रमण 'भीम' ने कहा कि महासती प्रवर का जीवन साधना मय था। लम्बे साधना काल में अपना यशस्वी जीवन जीकर नाम रोशन किया। पवित्र चरित्र आत्मा को मैं श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ। शिवपुर संघ ने दुःख व्यक्त किया। ऐसे विषम समय में हम सभी उन महासती जी की शिष्याओं कि साथ हैं। हमारे पास धैर्य धारण करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

श्री संघ शिवपुर, (भीड़वाड़ा)

* * * * *

हार्दिक श्रद्धांजलि

• प्रेषक - प्रकाश जैन, ताल, जिला उदयपुर (राज.)

आज हमारे यहाँ थाणा से विहार करके पूज्य गुरुदेव श्री विनय कुमार जी 'भीम' श्री निरंजन मुनिजी म.सा. आदि ठाणा महासती जी श्री उगमकुंवर जी म. सा. परम् विदुषी महासती जी मनोहरकुंवर जी म. सा. आदि ठाणा ५ यहाँ पधारे, महावीर जयन्ती यहीं मनायेंगे। अचानक जोधपुर, ब्यावर से पत्र मिले। जिसमें उल्लेख था, कि महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. का मद्रास में स्वर्गवास हो गया। कब हुआ किस अवस्था में हुआ, हमें कुछ भी जानकारी नहीं बहुत दुःख हुआ। इस विकट परिस्थिति में पूज्य महाराज श्री कानकुंवर जी म.सा. धैर्य रखावे छोटी साध्वियों को हिम्मत रखने का कहें। इधर गुरुदेवश्री

विहार में थे। किसी प्रकार की हमें कोई जानकारी नहीं मिली। गुरुदेव श्री युवाचार्य भगवन्त के साध्वी समाज में महासतीश्री जी का महत्वपूर्ण स्थान था। होनी को कौन रोक सकता है। इसी के आगे सभी मजबूर हैं। पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा है हिम्मत और साहस का परिचय दें। साध्वी जी के स्वर्गवास से श्रमप संघ एवं व्यक्तिगत रूप से जयमल समुदाय में भारी कमी पड़ी है। स्वर्गस्थ आत्मा को चिर शांति के लिये पूज्य गुरुदेव पूज्य महासती मण्डल की तरफ से हार्दिक श्रद्धांजलि।

* * * * *

श्रद्धा सुमन

• जतनराज मेहता, मेड़ता सिटी

पूज्य युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी महासतीजी श्री कानकंवर जी म.सा. वय स्थविर, संयम स्थविर, ज्ञान, स्थविर, चरित्र स्थविर सरल हृदया मृदुभाषी थे। आपने जीवन के अनेक वर्ष शासन सेवा में एवं जीवन के उत्कर्ष की साधना में बिताये। श्रावकों के हृदयाकाश में आपके प्रति अटूट श्रद्धा थी। पूज्य पिताजी श्री प्रेमराज जी मेहता के हृदय में भी आपके प्रति गहरी भक्ति थी। समय समय पर जब भी मैं आपकी सेवा में जाता तब पूज्य पिताजी अपनी भक्ति भावना व अर्न्तहृदय की गहरी संवेदना प्रकट करते।

आप श्री ने अनेक वर्षों तक मरुघरा की पावन धरा पर विचरण करने के पश्चात् महाराष्ट्र मद्रास जैसे सुदूर प्रान्तों में पधारकर वहाँ जयमल गणिवर की कीर्ति पता का फहराई।

आपके प्रति हमारे परिवार की अटूट श्रद्धा भक्ति रही है। आपका भी सहज स्नेह, सौहार्द्र प्रेम सदैव मिलता रहा है।

आज आप इस संसार में नहीं है किन्तु अनेकानेक श्रावकों के हृदय में आपकी ज्ञान ज्योति झलक रही है जिसका प्रकाश भौतिक युग में प्रेरणास्पद है। यह भी संयोग की बात है कि महासती जी श्री चम्पाकंवरजी म.सा. भी आपसे कुछ समय पूर्व ही स्वर्ग सिधार गये। आप भी अपनी गुरुवर्या श्री कानकंवर जी म.सा. की ही भांति मृदुभाषी, शासन सेवी, शान्त चित्त व सरल हृदया थे।

आपकी ज्ञानाश्रयना के प्रति रुचि थी। अनुशासन में कठोरता आपके जीवन का सहज गुण था।

सती द्वय के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

* * * * *

उपकारी गुरुवर्या

• वैराग्यवती शकुन्तला, मद्रास

जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु एक दिन अवश्य होती है। मृत्यु के बाद भी स्मरण उसी का किया जाता है जिसने संसार को अपने ज्ञान से प्रकाशित किया हो। परमविदुषी महासती श्री चम्पाकुर्वर जी

म.सा. संसार को ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान करने वाली गौरव शाली महान सतियों में से एक थी। आप का जीवन अनुपम था। आदर्श था। आप हर पल स्वाध्याय, थोकाड़े, माला, ध्यान आदि में व्यतीत करती थी।

आपका स्वभाव बहुत ही शांत एवं सरल था। आपका मुख मंडल सदैव ही गुलाब के फूल की भांति खिला-खिला रहता था। आपने अपना जीवन समाज सुधार के लिये अर्पित कर दिया था। आपने भूले भटके मानवों को सही मार्ग बताने में कभी भी प्रमाद नहीं किया। आपने अपनी साधना से जैन जगत को सत्य मार्ग दिखाया। मुझ पर उनका जो उपकार है, उसे तो मैं जीवन पर्यन्त नहीं भूल पाऊंगी। उनके नहीं रहने का दारुण समाचार सुनते ही मेरा रोम रोम कांप उठा और आंखों के सम्मुख अंधेरा छा गया। मैं उस समय अवाक रह गई। एक शब्द भी नहीं निकल पाया। सारा शरीर सुन्न हो गया।

यह जीवन बहती हुई एक धारा के समान है। धारा किस समय किस ओर प्रवाहित हो जावे कहना कठिन है। ठीक यही स्थिति जीवन की भी होती है। इसमें भी अनेक मोड़ आते हैं। पड़ाव आते हैं। तब क्या हो जावे कहना कठिन है।

शहरों में बड़े बड़े भवन बनाने वाले मिल जावेंगे किंतु जीवन रूपी भवन का निर्माण करने वालें कम ही मिलेंगे। आप वास्तव में जीवन निर्माण की कला में दक्ष थे।

उनके जीवन में सरलता, मधुरता और वात्सल्य था अद्भुत संगम था। मैं जब जब भी उनके सारल्य और माधुर्य से ओतप्रोत जीवन का स्मरण करती हूँ, उनके स्मरण मात्र से आँखें नम हो जाती हैं। वे कितने महान थे। उनके हृदय में हमारे प्रति कितना स्नेह था।

गुरुणीजी के अचानक स्वर्गवास हो जाने से हृदय को गहरा आघात लगा। किंतु क्या किया जा सकता है। विधि के विधान के सम्मुख, क्रूर काल की गति के सम्मुख सिवाय मौन रहने और धैर्य धारण करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

गुरुवर्या संयम के क्षेत्र में सदैव जागृत रहते थे। वे जहां भी हो, उनसे यही प्रार्थना है कि मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करने की कृपा करें जिससे मैं उनके बताये मार्ग पर चलकर आत्म कल्याण कर सकूँ, अपने जीवन को सार्थक कर सकूँ। मेरी ओर से कोटि कोटि वंदन के साथ हार्दिक श्रद्धांजलि।

* * * * *

हार्दिक श्रद्धांजलि

• ताराचंद लोढ़ा, बालाघाट

आज दि. ४-८-९१ को दोपहर फोन पर पू. श्री कानकुवंर जी म.सा. के देवलोक होने के समाचार सुनकर सभी स्तब्ध रह गये। सभी ने तत्काल चार चार लोगस्स का ध्यान कर श्रद्धा सुमन अर्पित किये। विधि की कैसी विडम्बना है, मैं दोनों बार मद्रास से आया और बाद में दोनों बार समाचार मिले, दोनों बार मेरी अंतराय बनी रही।

स्वामी जी श्री ब्रजलाल जी म. सा. तथा युवाचार्यजी में भी लगभग थोड़ा ही समय का विछोह रहा और यहां भी लगभग पुनरावृत्ति रही। परम श्रद्धेय, सरलमना, वयोवृद्धा महासतीजी के वे शब्द “ताराचंद अब ज्यादा समय नहीं निकल सकता।” अब बार-बार मानस पटल पर तैर रहे हैं। पू. महासती श्री चम्पाकुवर जी म. के विछोह ने उन्हें काफी कृश कर दिया था। कितनी आत्मीयता, कितना अपनत्व समेटे हुए थे। ऐसी विषम परिस्थिति में धैर्य धारण कर ज्ञान ध्यान में अभिवृद्धि करते हुए सभी को सान्त्वना दिलावें। पू. श्री बसंतकुवर जी म. सा. प-१. श्री कंचनकुवर जी म.सा. आप दोनों बड़े हैं। आप दोनों पर सभी छोटी सतियां जी को सम्हालने की अधिक जवाबदारी है। यद्यपि वे भी सभी ज्ञानवान हैं फिर भी सम्हालने की आवश्यकता है। इसके साथ ही पू. श्री के बताये मार्ग पर चलकर धर्मवृद्धि करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करना है। पू. श्रीचन्द्रप्रभाजी म. सा. आप पर और भी अधिक उत्तरदायित्व आ गया है, बड़ों की सेवा के साथ ज्ञान वृद्धि करें।

पू. श्री के प्रति हृदय से श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कामना है कि स्वर्गवासी आत्मा को शांति प्रदान हो।

* * * * *

दर्शन की इच्छा अधूरी रह गई

• नेमी चन्द मुराना, हैदराबाद

पू. श्री चम्पाकुवर जी म.सा. का आघात अभी भूल भी नहीं पाये थे कि अचानक एक और दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। ऐसी आशा कदापि नहीं थी कि पू. श्री कानकुवर जी म.सा. हमें छोड़ कर इतनी जल्दी चले जायेंगे। किंतु होनी को कोई रोक नहीं सकता। आप श्री महासतियां जी को जो आघात पहुंचा है, उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इस समय धैर्य रखने की बड़ी आवश्यकता है। और सभी छोटी सतियां जी को सान्त्वना देकर उन्हें आगे जन्म मरण के चक्र से मुक्त होने की प्रेरणा दें।

हम पू. महासती श्री कानकुवर जी म.सा. के दर्शनार्थ आने के लिये पूरी चेष्टा कर रहे थे किंतु हमारे भाग्य में उनके दर्शन नहीं होना लिखा था, तो नहीं हो पाये। हमारी इच्छा अधूरी ही रह गई।

दिवंगत महासतीजी श्री कानकुवरजी म.सा. की आत्मा की चिर शांति के लिये वीर प्रभु से प्रार्थना करते हुए उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

* * * * *

शांत स्वभावी महासती जी

• उगमचन्द मुराना, सिकंदराबाद

पू. महासती जी श्री कानकुवर जी म.सा. के स्वर्गवास के समाचार सुनकर हमारे पूरे परिवार को अत्यन्त दुःख हुआ। पू. महासती जी बहुत ही शांत स्वभाव के थे। हमारे परिवार पर उनकी पूरी कृपा

थी। उनकी मृत्यु के साथ एक युग समाप्त हो गया। आप सबके ऊपर से दोनों बड़े महासती जी का साया उठ गया। अब आप सब पर पूरी जवाबदारी आ गई है। इस जवाबदारी को निभाने के लिए वीर प्रभु आप सबको शक्ति प्रदान करें। पू. महासती जी की अस्वस्थता के कारण आप सभी को लम्बे समय तक मद्रास में ठहरना पड़ा था। साहस रखें। छोटी सतियां जी की शिक्षा का विशेष ध्यान रखें। पू. महासती जी के थोड़े समय में दो बार अंतिम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इससे मन को संतोष है। महासती जी को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

* * * * *

स्मृति ही शेष है

• माणकचन्द दुग्गड़ मुकटी (महा.)

इतिहास कांच के टुकड़ों का नहीं हीरों का बनता है।

इतिहास घास के तिनकों का नहीं तारों का बनता है।

जीवन के संग्राम में जीने वालों-

इतिहास कायरों का नहीं वीरों का बनता है॥

इस धरती पर वीर पुरुष ही नाम अमर कर जाते हैं, कायर नर तो जीवन भर बस रो रोकर मर जाते हैं।

श्रद्धांजलि उन्हें समर्पित की जाती है जो संसार में आकर कुछ कार्य करें। पाप के भयंकर दावानल से जलती हुई दुनिया को शांति प्रदान करने के लिए ही महान विभूतियों का जन्म इस अवनि पर होता है। संतों के रूप में संसार को सर्वोत्तम उपहार मिलता है। संतों की जगमगाती जीवन ज्योति जगत को नवजीवन प्रदान करती है। शांति की निर्मल मंदाकिनी प्रवाहित करने वाले महापुरुष विनाश की ओर तेजी से भागने वाली दुनिया को सावधान करने वाले लाल प्रकाश स्तम्भ हैं।

विश्व में प्रतिदिन अनेक व्यक्ति जन्म लेते हैं और मरते हैं। कौन किसको जानता है। यो ही आये कुछ दिन रहे, भोग वासना, सुख-दुःख की अंधेरी गलियों में ठोकरे खाकर एक दिन चले गये। जिनका हंसना, रोना प्रथम तो अपने तक ही रहा, यदि आगे बढ़ा तो गिने-चुने परिवार के लोगों तक, किन्तु महान विभूतियों का जन्म मरण सूर्य की तरह तेजस्वी होता है जो जन्म से लेकर अन्त तक संसार को अपने दिव्य प्रकाश से प्रकाशित करते हैं। ऐसे ही हमारे गुरुवर्या अध्यात्मयोगिनी स्व. श्री कानकुवंरजी म.सा. थे। भाद्र कृष्ण अष्टमी वि.स. १९६८ में इस अवनि पर आपने जन्म लेकर गुरु स्वामी श्री हजारीमल जी म.सा. तथा गुरुणी भैया महासती श्री सरदारकुवंरजी म.सा. के द्वारा बताये हुए पथ पर चल करके अपने सुमधुर प्रवचनों के द्वारा अनेक जीवों का उद्धार करते हुए आत्म लक्ष्मी विदुषी महासती जी ने इस लोक की जीवन यात्रा पूरी की। वे शरीर से भले ही हमारे बीच न हों परन्तु आज भी उनकी स्मृति हमारे बीच बनी हुई है। अब उनकी स्मृति ही शेष रह गई है।

हंस के मरा कोई, कोई रोके मरा।

जिंदगी पायी मगर उसने जो कुछ हो के मरा।

मैं परम विदुषी महासती जी की आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना करते हुए हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

* * * * *

हार्दिक श्रद्धांजलि

• अनोपचंद मोतीलाल पारख, ज्योत्स्ना (रायपुर) म.प्र.

स्वर्गीया परम पूजनीया महासतीजी श्री कानकुवंर जी म.सा. का जन्म भाद्र पद कृष्णा अष्टमी वि.सं. १९६८ को राजस्थान के ग्राम कुचेरा में हुआ था। आपकी माता का नाम अनछी बाई और पिता का नाम श्री बीजराज जी सुराणा था। आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति की रुचि आप में बाल्यकाल से ही थी। आपके माता-पिता भी धर्म शील श्रावक-श्राविका थे। आपका विवाह श्रीमान घासीलाल जी भण्डारी के साथ हुआ था। कुछ समयोपरान्त आपका झुकाव धर्म ध्यान की ओर अधिक हो गया। फलतः माघ शुक्ल दशमी दि. सं. १९८९ के दिन ग्राम कुचेरा में ही स्वामी श्री हजारीमल जी म.सा. के मुखारविंद से दीक्षा व्रत स्वीकार कर महासती श्री सरदार कुवंरजी म.सा. की शिष्या बन कर आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो गई।

दीक्षा प्राप्ति के पश्चात आपने अपनी गुरुणी जी की आज्ञा से आगमों का सम्यक अध्ययन किया। इसके साथ ही आप लोगों का पथ प्रदर्शन भी करते रहें। हमारी विनम्र विनती को स्वीकार का आपश्री अपने विहार काल में आठ-दस दिन तक रुके और अपनी अमृतवाणी से हमें लाभान्वित किया। भखार श्रीसंघ को आपश्री के सन्निध्य में महावीर जयंती मनाने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

आपश्री के विनम्र व्यवहार, शांत स्वभाव और गंभीर वाणी से हमारी छोटी बहन चंचल पारख (मुस्कानी) अत्यधिक प्रभावित हुई और अंततः उसने आपश्री के पावन सन्निध्य में संयम व्रत अंगीकार कर लिया। गुरुदेव श्री रतनचन्द्र जी म.सा. ने दीक्षा मंत्र प्रदान कर महासती श्री चन्द्रप्रभाजी म.सा. के नाम से परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवंर जी म.सा. की शिष्या घोषित किया। आपकी छत्र छाया में महासती श्री चन्द्रप्रभा उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर हो रही है।

वीर प्रभु से हमारी यही विनती है कि पू. श्री कानकुवंर जी म.सा. एवं श्री चम्पाकुवंर जी म.सा. की आत्मा को मोक्ष मार्ग की अमर ज्योति की ओर ले जावे और उनकी आत्मा को परम आनंद प्रदान करें। हमारी ओर से दोनों दिवंगत आत्माओं को हार्दिक श्रद्धांजलि।

* * * * *

तेजस्वी साध्वीरत्ना

• के.टी. शाह (मामा), मद्रास

इस धरा पर अनेक मनुष्य जन्म लेते हैं और मरते हैं। किंतु अनेक महापुरुष अपने कृतित्व की सौरभ से इसे सुरभित कर जाते हैं।

अपने स्थानकवासी सम्प्रदाय की परमविदुषी श्री कानकुंवरजी म.सा. की सुशिष्या शांत, दांत, सरल स्वभावी पू. श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. हमारे बीच से चले गए, यह बड़े दुःख की बात है।

आपश्री का जीवन प्रेरणास्पद आदर्शों का इतिहास, साधना का स्वर्णिम सोपान था। वीतरागप्रभु द्वारा बताये मार्ग के प्रति अटूट आस्था, साधक आत्मा की जीवन शुद्धि के द्वारा साधना की सीढ़ी पर चढ़ कर आपश्री मोक्ष मंजिल पर पहुंचे। सदा पुरुषार्थ रत गुरुणी भगवतं को मेरी ओर से कोटि कोटि वंदन।

आज वे हमारे मध्य नहीं हैं किंतु उनके आदर्श अमर हैं। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण मृत्यु की शिक्षा प्राप्त कर पंडित मरण के महोत्सव को आमंत्रित करता था। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम समय तक पू. गुरुणी जी श्री कानकुंवर जी म. की सेवा की। ऐसे समय में क्रूर काल ने उन्हें हमसे छीन कर अन्याय किया।

उनश्री की आत्मा जहाँ भी हो शासन देव चरम तीर्थकर वीर परमात्मा उन्हें चिर शांति प्रदान करें, यही प्रार्थना है।

* * * * *

अनमोल हीरा

• ललित महिला मंडल, मद्रास

मोक्ष मार्ग के मंगल यात्री, रत्नत्रय आराधिका, साधिका पू.श्री चम्पाकुंवरजी म.सा.

पू. महासती जी का जीवन सद्गुणों से सुवासित था। अरिहंत की आज्ञा आपका प्राण था। संयम पालन आपका श्वासोच्छ्वास था। जन्म मरण के चक्र से छुटकारा पाने के लिए आपने अपनी गुरुणी जी की सेवा अंत समय तक की। सेवा से आपने मुक्ति रूपी मेवा प्राप्त किया।

आपने संयम साधना के साथ साथ ग्रामनुग्राम जैन शासन की सुन्दर प्रभावना की।

पू. महासती जी के जीवन में वैदुष्य के साथ विनम्रता, सरलता, वात्सल्य देखने को मिलता था। ऐसे महासती जी को हमारी लाख लाख वंदना।

पू. श्री चम्पाकुंवरजी म. सा. की आत्मा शीघ्रातिशीघ्र कर्मों की निर्जरा कर शिवगति प्राप्त करे यही मंडल की आंतरिक श्रद्धांजलि है।

* * * * *

सरलता की प्रतिमूर्ति

• किशनलाल बेताला, 'काका' मद्रास

अध्यात्मयोगिनी, सरलमना, शांति और क्षमा की प्रतिमूर्ति, मेरी आस्था के केन्द्र श्रद्धेय गुरुवर्या श्री कानकुंवरजी म.सा., परम विदुषी, ओजस्वी व्याख्यात्री, महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. जिनसे मैं वर्षों से परिचित हूँ। काफी वर्षों के पश्चात् मुझे मद्रास में सेवा का अवसर प्राप्त हुआ।

मरुधरा की पावन भूमि में जिन्होंने जन्म लिया, मध्यप्रदेश की भरती पर पालन पोषण हुआ और मद्रास की धरा पर पाँच वर्ष तक अस्वस्थ रहने के कारण चातुर्मास का अवसर मिला। किंतु किसे मालूम था कि तमिलनाडु के प्रसिद्ध महानगर मद्रास में ही उनका अंतिम विचरण होगा। यहाँ आने पर जन-जन के मन में खुशियाँ छा गई थी कि पूज्या गुरुवर्याश्री सुदूरप्रांत से विहार कर पधारी हैं।

जब भी उनके निकट दर्शनार्थ जाता तो बड़ी शांति और प्रेम के साथ सभी के साथ वार्तालाप करते पाता। उनके लिए चाहे बच्चा हो युवा हो या वृद्ध सभी समान थे और सब को अपना मानते थे और सब के साथ मधुर-मधुर बातें करके उनका मन मोह लेते। जो भी व्यक्ति आपके एक बार दर्शन कर लेता, उसे स्वयं ही पुनः दर्शनार्थ आना पड़ता, ऐसा आकर्षण था उनके व्यक्तित्व में। वे शांति और सरलता की प्रतिमूर्ति थे। मुझ पर तो उनकी असीम कृपा थी। उनके गुणों का वर्णन करना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं है। न ही मेरे पास वे शब्द हैं जिनके द्वारा मैं गुरुवर्या के गुणों का वर्णन कर सकूँ।

आपश्री से हार्दिक प्रार्थना है कि आपकी आत्मा जहाँ भी हो, मुझे आशीर्वाद प्रदान करें। मैं अपनी ओर से एवं अपने समस्त परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ -

आज वे नहीं हैं उनकी याद रह गई है शेष।
जन जन को जगा रहे हैं आपके दिये उपदेश॥
रो रहा अन्तर्मन, सूख गये अश्रु सब
जगा रहा जगति को आपका पावन सन्देश॥

* * * * *

अविस्मरणीय जीवन: व्यक्तित्व

• (डॉ. मानमल सुराणा)

परम विदुषी महासतीजी श्री चम्पाकुंवरजी का जन्म नागौर (राज.) जिले के समृद्धिशाली ग्राम कुचेरा में हुआ था। वह दिव्य दिवस धन्य हुआ था हम सब के लिए। ओसवंश के सुराणा कुल में उत्पन्न इस कोमल कली का विकसित रूप किसने सोचा था उस समय। आप में अल्पकालीन समय में लघुवय में

ही धर्म संस्कार जागृत हुए और पौष कृष्ण दशमी सं. २००५ के पावन दिवस में जैन भगवती-दीक्षा अंगीकार कर ली। आपकी गुरुवर्या संसार पक्ष की ही आपकी भुआजी अध्यात्मयोगिनी सरलमना विदुषी महासतीजी श्री कानकंवरजी थीं। साध्वी जीवन के प्रारम्भिक काल में ही आपने अपनी विचक्षण बुद्धि का परिचय दिया और जैन शास्त्रों व सूत्रों का पठन-अध्ययन कर लिया। आप संस्कृत के साथ-साथ अर्ममागधी (प्राकृत) हिन्दी आदि भाषाओं की भी विदुषी व ज्ञाता महासती थीं।

आप का महान् व्यक्तित्व चमकते चाँद के सदृश जब भी हृदय पटल पर उभर आता है तो अपनी एक अमिट छाप छोड़ जाता है -हृदय प्रदेश में उसका जगमग प्रकाश चमत्कृत हो जाता है। आप का जीवन परोपकार का प्याला था अमृत का कटोरा था। आपकी मृदु वाणी हर मानस का मन मोह लेती थी। जो भी आपके सम्पर्क में आया उसी का जीवन सौरभ मय बन गया। आपकी सदा यही भावना रहती थी कि जन जन के जीवन में शान्ति व सुख के सुन्दर फूल खिलें और सदा धर्म पथ पर अग्रसर होते रहें।

गुलाब काटों के बीच खिलता है जब तक पौधे पर रहता है, अपनी सुवास से वायुमण्डल को सुवासित कर देता है और जब पौधे से विलग होकर बिछुड़ कर मिट्टी में मिल जाता है तो उस मिट्टी को भी सौरभ मय बना डालता है, उसी प्रकार महासतीजी ने अपने महाप्रयाण के पश्चात् भी अपनी महानता की महक वातावरण में बिखेर दी जिससे जन जन का जीवन सुखमय बन रहा है और बनता रहेगा। आपने सभी का जीवन ज्ञान-सलिल से पल्लवित व पुष्पित किया।

आपकी प्रवचन शैली माधुर्य से परिपूर्ण थी। भाषा सदा ही भावपूर्ण व संयत रहती थी। ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय व सेवाभाव सदा स्मरण रहेगा आने वाली पीढ़ी को। आपकी आत्मा सदा -सर्वदा धर्म पुष्प बरसाती हुई मोक्ष पथ पर बढ़े यही हार्दिक कामना है।

ऐसी महामहिम विदुषी महासती को शत-शत प्रणाम! एवं अनेकानेक भाव-भरी श्रद्धाँजलि!!

* * * * *

सागर सम गम्भीर

• सुरेन्द्र एम. मेहता प्रमुख, श्री गुज. स्वे. स्था. जैन एसोसियेशन, मद्रास

पू. शांत स्वभावी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. की सेवा में कोटि कोटि वंदन।

ज्ञानी, ध्यानी, गुणी, जैन धर्म प्रभावक पू. अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. क. सुशिष्या गुणगंभीरा प.पू. महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. के महाप्रयाण से हमारे श्रीसंघ में और जैन समाज में दुःख की गहरी छाया छाई हुई है।

पू. महासती जी का जीवन साधनामय, आराधनामय, ज्ञानमय और प्रसन्न वदन था। उन्होंने मृत्यु को महोत्सवरूप बनाया था। जैसे फूल खिलकर मुरझा जाता है और उसमें कोई विशेषता नहीं रहती है। पुष्प अपनी सौरभ से अपने परिवेश को सुरभित करता है, यही उसकी महता है। सूर्य उदय होता ही और संध्या को अस्त होता है, यह उसका दैनिक चक्र है, महत्व तो यह है कि वह जगत को प्रकाशित करता है। विश्व में जन्म लेकर मृत्यु की गोद में समा जाना कोई महत्व नहीं रखता। महत्व तो मानव जीवन को स्व-पर कल्याण में खपा देने पर है। जीवन की सुवास से जगत महक उठे, यह जीवन का महत्व है।

पू. महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. ने संयम की सुवास जगत में चारों ओर फैलाकर हम सबके बीच से महा प्रयाण कर दिया। वे चले गये किंतु उनके जीवन की सौरभ आज भी महक रही है।

पू. महासती जी का आचार स्वर्ण के समान था। विचार सागर के समान गम्भीर थे। वाणी मिश्री के समान मीठी थी। सेवा अवर्णनीय थी। उनका जीवन फूल के समान कोमल था। और साधना में अडिग थे। आप जहाँ जहाँ भी पधारे वहाँ वहाँ समाज में शांति और समाधान से धार्मिक वातावरण का निर्माण किया। सेवा आपके जीवन का महान ध्येय था।

ऐसे पू. महासती जी ने मद्रास में महाप्रयाण किया यह हम सबके लिये एक अपूरणीय क्षति है। निकट भविष्य में इसकी पूर्ति हो पाना सम्भव प्रतीत नहीं होता। वीर प्रभु आपकी आत्मा को शांति प्रदान करें, यह हार्दिक कामना करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

* * * * *

अनमोल रत्न

• तनमुख बेन एच. संथार ललित महिला मंडल, मद्रास

मोक्ष मार्ग के मंगलयात्री, साधनाशिला, रत्नत्रय आराधिका पू. महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. का जीवन सद्गुणों की सौरभ से सुरभित था। अरिहंत की आज्ञा ही आपका प्राण था। संयम का पालन आपका श्वासोच्छ्वास था। जन्म मरण के चक्कर का अंत करने के लिए आपने गुरुणी जी की सेवा दृढ़मन से की थी। सेवा से आपको मुक्ति का मेवा मिला। पू. महासती जी ने मनकी दृढ़ता से हृदय के उल्लास से, प्राणों की प्रसन्नता से संयम की सम्यक साधना के साथ ग्रामानुग्राम जैन शासन की सुन्दर प्रभावना की। आप जैन शासन की अनमोल रत्न थी।

पू. महासती जी के जीवन में वैदुष्य के साथ विनय, सरलता और वात्सल्य का प्रवाह देखने को मिलता था। सबके साथ शक्कर और पानी के समान एकमेक होकर रहते थे। आपश्री को हमारा लाख लाख वंदन।

अंत में पू. महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. की आत्मा परम शांति प्राप्त कर शीघ्रातिशीघ्र कर्म खपा कर मोक्ष गति पाए यही कामना करते हुए हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

* * * * *

श्रद्धा के दो पुष्प

• सौ. सुनीला नंदकुमार नाहर, मेहकर

पाँच महाव्रत पोषक, ज्ञान-दर्शन चारित्र की त्रिवेणी में अहर्निश स्नात प्रातःस्मरणीया कानकंवर जी म.सा. व चंपाकंवरजी म.सा. के जीवन को जैसे-जैसे गहराई से देखने का प्रयास करते हैं वैसे-वैसे उनकी थाह मिल पाना असंभव सा प्रतीत होता है शास्त्र में स्पष्ट भी है -

“जाए सद्भाए निवृत्तते, परियायद्वाणमुत्तमं।
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरिय समए॥”

श्री दसवै. अ. ८ गाथा ६१

साधु जिस श्रद्धा भावना से आपूरित होकर सांसारिक कीचड़ का त्याग करता है। गुणस्थान की ऊँचाई को प्राप्त करने व मोक्षमार्ग को पाने के लिए प्रयासशील होता है उसे संसार का आकर्षण क्षणभंगुर दृष्टिगोचर होने लगता है अतः वे यावज्जीवन उत्कृष्ट भावना ही आचरित व चरितार्थ करने हेतु प्रयासशील हो जाते हैं क्योंकि मोक्ष के राही के लिए तीन सीढ़ी की साधना करना अत्यावश्यक है अन्यथा जीवन में ज्ञान है दर्शन नहीं या दर्शन है तो चारित्र नहीं तो लक्ष्य तक पहुँच पाना नामुमकिन है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र का सारांश जीवन की दैनंदिनी दिनचर्या पर उतरता है। वह संकेत करता है उसकी साधना पद्धति की ओर। किसी कवि ने ठीक ही कहा है -

साध्य उसी को सधेगा, जो संयम में रमता हो।
आराध्य उसी को मिलेगा, जिसमें पूर्ण क्षमता हो॥
प्रशंसा को सुनकर, खुश कौन नहीं होता किंतु -
निंदा को वही सुन सकेगा, जिसके दिल में समता हो॥

आज इक्कीसवीं सदी की ओर पदार्पण करने वाले मानव के पास क्या नहीं है, ज्ञान है, गुण है, बुद्धि है, यश व ख्याति है, आलंकारों की भी कमी नहीं है, पद्धतियाँ हैं, तर्क है, जिज्ञासा है, चिंतन है इन सभी तत्वों के होते हुए भी उसके पास कुछ नहीं है क्योंकि समाधान नहीं है। प्रश्न उठता है समाधान क्यों नहीं है? चिंतन बिंदु के निष्कर्ष में यही निकलता है कि सहिष्णुता व समता का अभाव है या यों कहें समाधान की कमी संस्कारों के अभाव से है। इस समता को जीवन में उतारने के लिए पूजनीया महासती जी के प्रेरणादायी जीवन को दृष्टिपात करना अत्यावश्यक है। जीवन का अंतिम लक्ष्य मानवजीवन में सरलता से होना चाहिए। वह सरलता संस्कारों के अभाव में आ ही नहीं सकती। सरलता के जीवन में आ जाने से मानव की मानवीयता कोमलता से सुसज्जित हो जाती है। उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट है -

“धम्मो सुद्धस्स विट्ठइ।”

तात्पर्य नम्रता, शुद्धता तथा सरलता के निवास के अंतर्गत ही धर्म का वास स्वतः हो जाता है। महासतियाँ जी के संयमित जीवन के प्रत्येक अंश में धर्म के साथ सरलता टपकती रहती थी। उनके जीवन के किसी भी पहलु को लें, ज्ञान में, चारित्र में, विनम्रता में किसी भी बात में जागरूकता हरदम दिखाई देती रही। पूजनीया सतियाँ जी कानकंवर जी व चंपाकंवर जी के जीवन में क्षमा, दया, शांति, वीरता, धीरता जैसे अनेकों महत्वपूर्ण गुण विद्यमान थे। उनकी इच्छाशक्ति तो इतनी मजबूत थी कि उसी का परिणाम था कि उनका जीवन वर्षों से पूर्णरूपेण संयमित रहने में प्रयासशील रहा तथा उनका पार्थिव शरीर तो नहीं रहा लेकिन उनकी चारित्रिक चमक आज भी कौंध रही है। भविष्य में भी कौंधती रहेगी। चारित्र्य तपस्या से ही बलिष्ठ होता है।

युवाचार्य महाप्रज्ञ जी भिक्षु विचार दर्शन की भूमिका में लिखते हैं -“जैसे-जैसे काल की लंबाई बढ़ती है, वैसे-वैसे उसका आवरण सबको आवृत्त करता है किंतु उन्हें अनावृत्त करता है जिनका जीवन तपःपूत रहता है।”

हमारी भी हार्दिक शुभकामनाएं श्रद्धेया महासती कानकंवरजी व चंपाकंवर जी के लिए यही है कि उनका चारित्रिक बल व तपस्या का वलय हजारों हजारों वर्ष तक सुरक्षित रहे। भटके हुए या यों कहूं दिशा भ्रमियों को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा व प्रकाश दे। अंत में हम उनकी साधना के प्रकाश से प्रकाशित होते रहें। यही श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

* * * * *

श्रद्धांजलि

• प्रकाशचन्द्र, राजकुमारी मूथा, हरीशचन्द्र नीरू मूथा

किसी ने सत्य ही कहा है -

जब हम आए जगत में, जग हँसा तुम रोये।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हँसो जग रोये॥

बंधुओं, उपवन में फूल खिलते हैं, तथा मुरझा जाते हैं। परन्तु उन्हीं फूलों की सुगंध सबको मोहित करती है। जो अपनी महक से सारे जगत को सुगंधमय बना देते हैं। वह फूल भले ही मुरझा जाये, परन्तु उसकी सुगंध सभी की स्मृति पटल पर बनी रहती है। यह जगत का नियम है कि फूल खिलता है, और मुरझा जाता है। सूर्य उदय होता है? शाम को अस्त हो जाता है। इसी प्रकार यह मानव जीवन भी क्षण भंगुर है। न जाने कब समाप्त हो जाए। हमारे पूज्य महासतियाँ जी स्व. श्री कानकंवर जी म.सा. एवं स्व. श्री चंपाकंवर जी म.सा. जिनका जन्म कुचेरा की पावन धरती पर हुआ। आप अनेक ग्रामानुग्राम विचरण करती हुई भ. महावीर के बताये हुए मार्ग का अनुसरण करती हुई मद्रास की ओर चली आयी तथा स्वास्थ्य लाभ न होने से उन्हें यहाँ ५ चातुमास करने पड़े तथा वह स्वास्थ्य लाभ न होने पर भी हर पल अन्तरात्मा का चिन्तन करती रही तथा पंडित भरण द्वारा उन्होंने काल धर्म को प्राप्त किया। धन्य है ये दोनों महासतियाँ जिनके आध्यात्मिक उपदेशों को सुनकर ६ महासतियाँ अपनी आत्मा का कल्याण करती हुई जिनशासन की शोभा बढ़ा रही है। आध्यात्मिक साधना में लीन ऐसी महासतियाँ जी के प्रति हम सपरिवार अपनी भाव भरी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

* * * * *

हार्दिक श्रद्धांजलि

• व. शकुन्तला नाहर

सांसें का क्या ठिकाना, कब रुक जाए चलते चलते।

प्राणों का दीपक भी, कब बुझ जाए जलते जलते।

अष्ट कर्मों के विजेता अहिंसा के अवतार भगवान महावीर के श्रीचरणों में श्रद्धान्त वंदन। संसार रूपी समुद्र से पार उतारने में तिनके जैसा सहारा देने वाली पूज्या मेरा गुरुवर्या जी के चरणों में भाव भरा वंदन अर्पण हो। जिन्होंने हमारे जीवन में आध्यात्मिक विकास कैसे जागृत हो तथा विकसित हो भौतिकता के कीचड़ से हम कैसे ऊपर उठें। कैसे संसार रूपी पंक में हम कमलवत् बनें। इन बातों का हमारे जीवन में पूर्ण रूपेण समावेश करने में श्रद्धायुक्त वंदनीया गुरुवर्या श्री जी ने अधिकांश समय सजगता का परिचय दिया। इस क्रियाविधि के दरम्यान उन्होंने हमें ज्ञान, ध्यान सिखाना तथा जीवन में उतारने में रंचमात्र भी कंजूसी का परिचय नहीं दिया बल्कि उदारता का प्रयोग किया। क्योंकि महापुरुषों का जीवन ही निर्मल व स्वच्छ बहती हुई नदी की भांति सबके लिए खुला रहता है। उपयोग करने वाला उस अमूल्य नदी का उपयोग किस प्रकार करता है यह बात तो उपयोग करने वाले पर निर्भर होती है। वे स्वयं अपने जीवन में ज्ञान, ध्यान, तप व त्याग में इतने परिपक्व थे कि दर्शनार्थ आए श्रावक को उनके साधना कर्म का प्रकाश जरूर मिलता व वह उनसे अवश्य लाभान्वित होकर ही आगे बढ़ता। थोकड़े का ज्ञान तो इतना अधिक हो गया था कि जीवन के चप्पे-चप्पे में वह उतरने में सफल हो रहा था।

आज श्रमण परंपरा को प्रज्वलित करने वाली उनकी त्याग, तपस्या, करुणा, दया, सहृदयता, सरलता सेवाभावना, साधना की पराकाष्ठा हमें यह संदेश देती रहती है कि हमें उनके बताए व आचरित पद चिह्नों पर ही चलते रहना है। क्योंकि श्रद्धा व समर्पण ही जीवन के अंतिम बिंदु तक पहुँचाने में सफल हो सकती है। मैं अहर्निश उस अदृश्य सत्ता से यही अपेक्षा करती हूँ कि उनके गुण सौरभ की महक से हमारा जीवन हमेशा प्रभावित होता रहे। उनके जीवन के साधना क्षेत्र से हमारा जीवन प्रकाशित होता रहे। यही अपेक्षा करते हुए अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

* * * * *

kindly accept our deeply condolance on demise of Shri Kan kuvarji.

■ -Mahavir cloth store, Dabhol

* * * * *

Heartfelt condolance on sudden demise of Mahastiji Maharajashaib.

■ -Jain Shri Sangh, Rampura.

* * * * *

Heartfelt condolance on sudden demise of jain Mhasati Shri champa kuvarji.

■ Shri Sangh, Raichur.

* * * * *

We share brief may lord Mahavir provid power to bear loss.

■ Mahasati Manohar kanwar. 20.3.91

* * * * *

Our heartfelt candolance on sad demise of Mahasati kan kanwar

■ -jodhpur

* * * * *

आचार्य श्री जी ने महासती वृंद को सांत्वना दी है

■ परीक्षा बोर्ड अहमदनगर

* * * * *

महासती जी कानकुंवरजी के स्वर्गवास का समाचार सुनकर महासती मनोहर कुंवरजी को हार्दिक दुःख हुआ।

■ यन्नालाल हिरण, आमेट (चारमुनारोड़)

* * * * *

कानकुंवरजी महाराज साहब के स्वर्गवास के समाचार से हार्दिक दुःख हुआ। उनकी आत्मा को शांति मिले।

■ रतनलाल कोठारी, गोटन

* * * * *

पूज्या श्री कानकुंवरजी म.सा. के स्वर्गवास से अपने सम्प्रदाय में ही नहीं अपितु पूरे समाज में एक अपूरणीय क्षति हुई है।

यहाँ पू. गुरुणी जी म.सा. (परम विदुषी महासती श्री उमरावकुंवरजी म.सा.) को बहुत ही दुःख है कि एक ही गुरुणी की दो शिष्यायें थी, उनमें से भी एक चले गये हैं। लम्बे समय से मिलने की अंतराय रही। ऐसे समय में धैर्य रखने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

■ -श्री स्थानकवासी जैन वीर संघ, ब्यावर

* * * * *

कल अचानक सुना कि महासती श्री कानकुंवर जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया है। एकाएक विश्वास नहीं हुआ, पर अंततः विश्वास करना पड़ा। समाचार सुनकर हृदय को आघात लगा, किंतु किया ही क्या जा सकता है। विधि के विधान के सम्मुख किसी का जोर नहीं चलता है। ऐसे विकट समय में आप लोग धैर्य धारण करें एवं उनके पद चिन्हों पर चलकर उनकी यशः कीर्ति में चार चांद लगावें। जिनेश्वर प्रभु से यही प्रार्थना है कि स्वर्गस्थ आत्मा को चिरंशांति प्राप्त हो। गुरुणी जी महाराज सा. चले गए पर उनका यश, उनके द्वारा किये गए शुभ कार्य सदैव सदैव अमर रहेंगे। वे शरीर से गये हैं, पर गुणों से अभी भी हमारे बीच ही हैं और सदैव रहेंगे।

■ मुनिश्री अमृतचन्द्रजी म.सा. की आज्ञा से -प्रेषक अरविन्द त्रिपाठी, पाली

अभी-अभी तार द्वारा पू. महासतीजी की कानकुंवर जी म.सा. के नहीं रहने की सूचना पूज्य गुरुदेव श्री रतन मुनिजी म.सा. को अत्यन्त दुःखद लगी। व्याख्यान बन्द रखकर शोक सभा की गई। पू. गुरुदेव ने महासती जी का परिचय दिया और चार लोगस्स का ध्यान कर उनकी आत्मा की शांति प्राप्ति की कामना की गई। संघ द्वारा शोक प्रस्ताव पारित किया गया।

यह बहुत दुःखद घटना हुई है। पू. सती वृन्द को सान्त्वना देवें और धीरज धारण करने का पू. गुरुदेव श्री ने आत्मीय संदेश फरमाया है।

■ गुरुदेव की आज्ञा से, दिलीप, कवर्धा (म.प्र.)

पू. महासती श्री १००५ की कानकुंवरजी मा. दि. ३-८-९१ को देवलोक हुए, यह समाचार सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। भगवान् उनको देवगति दिलावें।

■ ताराचन्द कुशलचन्द बाफणा, ब्यावर

पू. अनासक्त योगिनी, परमविदुषी महासतीजी श्री कानकुंवरजी म.सा. ने संयारे सहित पंडित मरण प्राप्त कर पार्थिव शरीर को त्यागा। यह समाचार जानकर समस्त संघ में शोक छा गया। जैन समाज में एक तेजस्वी, ओजस्वी महासतीजी की कमी हो गई। परम कृपालु परमात्मा से प्रार्थना है कि आप सभी को यह आघात सहन करने की शक्ति प्रदान करें और गुरुणी जी के अधूरे कार्यों को पूरा करने की सामर्थ्य प्रदान करें। अंत में दिवंगत आत्मा की चिरंशांति के लिए प्रार्थना की गई।

■ बाबूलाल, अतुल कुमार एंड कम्पनी, कोचीन

महासतीश्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने के समाचार सुनते ही यहाँ शोक छा गया। शोक सभा आयोजित कर श्रद्धांजलि चार लोगस्स का ध्यान कर दी गई। गरीबों को भोजन करवाया गया। आप सभी धैर्य धारण करें।

■ श्री ओसवाल जैन समाज, रामपुरा (म.प्र.)

सरलमना पूजनीया महासती श्री कानकुंवर जी म.सा. के स्वर्गवासी होने के समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ। हमारे साध्वी समाज में जो क्षति हुई उसकी पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नहीं है।

कालस्य कुटिल गति :- काल की गति कुटिल है । सभी को इसके आगे हार मानना पड़ती है।

एक दुःख को तो अभी हम भूल भी नहीं पाये थे कि दूसरा आघात लगा। किंतु होनी को कौन टाल सकता है? यह समय धैर्य से काम लेने का है। यहां विराजित पू. महासती जी के सान्निध्य में शोक सभा आयोजित कर श्रद्धांजली अर्पित की गई और दिवंगत आत्मा की शांति के लिए परमात्मा से प्रार्थना की गई।

■ आदर्श ज्योति आदर्श ग्रुप, कुम्भकोणम्

दुःखद समाचार मिले कि वयोवृद्ध, सागरसम गंधीरा, सरल स्वभावी, महासती श्री १००८ श्री कानकुंवर जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया है। इस दुःखद समाचार से हृदय को गहरा आघात लगा। आपका सौम्य मुखड़ा और आपकी राजस्थानी कुचेरा की बोली आज भी हमारी आँखों के सम्मुख चल चित्र की भांति घूम रही है। कानों में गूँज रही है। थोड़े दिनों के अन्तराल में दो दो महान सतियों का इस संसार से बिदा हो जाना बहुत दुःख की बात है। मगर किया ही क्या जा सकता है। विश्व में जितने प्राणी जन्म लेते हैं उन सभी के साथ मरण भी निश्चित होता है। मगर महासती जी मर कर भी अजर अमर हैं। वीरप्रभु जी से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें तथा आप सभी महासतियाँ जी को इस दुःख को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करें।

सिकंदराबाद जैन स्थानक में भी शोक सभा का आयोजन रखा गया। व्याख्यान बन्द रख कर व्याख्यान में आए सभी भाई बहनों ने नवकार मंत्र का जाप किया व चार लोगस्स का ध्यान कर श्रद्धांजलि दी गई।

■ सौ. शांतिबाई मकाना, सिकन्दाबाद हांथी मकाना पुत्री उगमराज जी लोढ़ा

श्रद्धेया महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने के समाचार सुनकर हृदय को गहरा आघात लगा। अभी हम श्रद्धेया महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. के दुःख को भुला भी नहीं पाये थे कि यह वज्राघात हो गया। आप दोनों परम विदुषी सरलात्मा महासतियाँ जी के रिक्त स्थान की पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव प्रतीत नहीं होती। मैं दोनों महासतियाँ जी को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ विमलचंद्र भोदी, जगदलपुर

महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के स्वर्गवास के समाचारों से हृदय को बहुत दुःख हुआ। होनी के आगे किसी का वश नहीं चलता। ऐसे क्षणों में धैर्य धारण करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। वीर प्रभु से उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करते हुए उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ दौलतमल सुराणा, नागौर (राज.)

पू. महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. कालधर्म को प्राप्त हुए, समाचार जानकर दुःख हुआ। पू. महासतीजी महाराज अध्यात्म योगिनी, सरल मना एवं सौम्य स्वभावी थे। इनके महाप्रयाण से श्रमण संघ में महानक्षति हुई है। हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जिनेश्वर देव से प्रार्थना करते हैं कि वे दिवंगत आत्मा को, जहाँ भी हो चिर शांति प्रदान करें।

■ फतेहचंद बाफाना, भोपाल (म.प्र.)

पूजनीया गुरुणीजी महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के अचानक देहावसान का समाचार सुनकर अत्यधिक दुःख हुआ। अपने सम्प्रदाय में महासतीजी सबसे ज्येष्ठ थे। उन्होंने अपनी साधना के द्वारा अपना जीवन सफल बनाया। मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ मोदी निहालचन्द्र, ब्यावर (राज.)

दिनांक १९-३-९१ के समाचार पत्र में पू. महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. सा. के देवलोक होने का समाचार पढ़कर पूरे परिवार के हृदय को गहरा आघात लगा। महासती जी जैन समाज की एक महान तपस्विनी साध्वीजी थे। अब उनका स्थान रिक्त हो गया है। उन्होंने जैन समाज एवं जैनतर समाज के अनेक व्यक्तियों को धर्म एवं तपस्या की राह पर चलाया और चलने की प्रेरणा दी। मेरी ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि।

■ नेमनाथ जैन, मेरठशहर (उ.प्र.)

परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने के समाचार सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। पूजनीय महासती जी की दिवंगत आत्मा की शांति के लिए वीर प्रभु से प्रार्थना करते हुए हम अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

■ मांगीलाल कुचेरा (राज.)

महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने के समाचारों से अत्यधिक दुःख हुआ। जैन समाज के वरिष्ठ संत-सतियाँ जी एक एक करके हमसे बिछुड़ रहे हैं। विधि के विधान के आगे हम आप कर ही क्या सकते हैं। जिसने जन्म लिया, उसे एक दिन अवश्य ही जाना है। महासतीजी मिलन सार, स्पष्ट वक्ता और सेवा भावी व्यक्तित्व की धनी थी। इनकी विशेषता व सदगुण सदैव याद आते रहेगे। मैं स्वयं अपनी ओर से तथा अपने सम्पूर्ण परिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ बाबूलाल सुराणा, कुचेरा (राज.)

महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के निधन का समाचार सुनकर हार्दिक दुःख हुआ। आयुष्य के आगे किसी का जोर नहीं है। महासती जी की शिष्याओं और प्रशिष्याओं ने तथा मद्रास श्रीसंघ ने जो सेवा की वह प्रशंसनीय है। मैं दिवंगत आत्मा की शांति के लिए वीरप्रभु से प्रार्थना करते हुए हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ लोढ़ा, उगमचंद, बोलाराम बाजार

महासती श्री कानकुंवरजी म. के महाप्रयाण का समाचार सुनकर हृदय को आघात लगा। हम सबने दिवंगत आत्मा की शांति के लिए चार लोगस्स का ध्यान कर श्रद्धांजलि अर्पित की। परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. का महाप्रयाण सभी श्रद्धालु श्रावकों के लिए बड़ा आघात जनक था। उसे अभी भूल भी नहीं पाये थे कि यह दूसरा वज्राघात हो गया। ऐसे समय में हमारे पास धैर्य धारण करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

■ लूनकरण सोनी भिलाई (म.प्र.)

बड़े महाराज सा. श्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने का समाचार सुनकर हार्दिक दुःख हुआ। उनकी आत्मा की शांति के लिए वीर प्रभु से प्रार्थना करते हुए अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ हुकमीचन्द, कचेरा (राज.)

पू. महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने के समाचार सुनकर समाज में शोक व्याप्त हो गया। दिवंगत आत्मा को हमारी ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि।

■ प्रेमचंद बागमार, कुचेरा

पू. महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के काल धर्म प्राप्त करने का समाचार सुनकर गहरा आघात लगा। महासती जी म.सा. मद्रास में जितने वर्ष विराजमान रहे, मद्रास श्री संघ ने अच्छी सेवा की और उनके देवलोक होने पर अनेक शुभ कार्य किये तथा घोषणायें की यह अनुकरणीय आदर्श है। इसके लिये साहुकार पेठ के समस्त पदाधिकारी एवं सदस्य धन्यवाद के पात्र हैं। दिवंगत आत्मा को शांति प्राप्त हो, ऐसी वीर प्रभु से प्रार्थना करते हैं। स्थानीय स्थानक भवन में भी एक शोक सभा का आयोजन कर दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

■ चम्पालाल सिंघवी, कुचेरा (राज.)

साध्वी रत्ना परम विदुषी महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. एवं परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. के जीवन को परिलक्षित करते हुए समाज उनके महनीय कार्यों के प्रति अपना सम्मान स्मृतिग्रंथ के रूप में व्यक्त कर रहा है, यह बड़े हर्ष का विषय है। इस पवित्र तथा श्रेष्ठ कार्य के लिए मेरी तथा मेरे परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

■ डॉ. (श्रीमती) कुसुमलता जैन, इन्दौर (म.प्र.)

शासन प्रभाविका, अध्यात्म योगिनी, सरलस्वभावी वयोवृद्धा महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने की सूचना से बहुत दुःख हुआ। यहाँ आयोजित शोक सभा में दुःखद समाचार सुनाया गया और चार चार लोगसस का ध्यान कर श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

कुछ ही दिन पहले पू. महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. देवलोक हुए थे। उस दुःखद घटना को भूल भी नहीं पाये थे कि फिर यह वज्रघात हुआ। बालोद में पू. महासतियांजी म. का सं. २०३७ में वर्षावास हुआ था। उस समय महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के धार्मिक उपदेश से एक बालिका को वैराग्य उत्पन्न हुआ था। जिन्होंने बाद में दीक्षाव्रत अंगीकार कर लिया और आज महासती श्री चेतनप्रभा जी म. के नाम से परिचित है।

दोनों स्वर्गस्थ महासती जी म. के अधूरे कार्यों को पूरा करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

■ मोमराज खेतमल, श्री श्रीमाल

पू. महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के देवलोक होने का समाचार जैसे ही मिला, हृदय को बड़ा आघात लगा। वीर प्रभु से इस दुःख को सहन करने की आप सभी को क्षमता प्रदान करें। मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

■ प्रसन्नकुमार चोरड़िया, बालाघाट (म.प्र.)

परम पूजनीया बड़े म.सा. के देवलोक होने का समाचार जानकर गहरा दुःख हुआ है। विधि के विधान के आगे किसी का जोर नहीं है। वीर प्रभु महाराज साहब की आत्मा को शांति प्रदान करें।

■ हुकुमचंद जैन, रायपुर (म.प्र.)

पू. महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के महाप्रयाण का समाचार जानकर बहुत दुःख हुआ। परमात्मा परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

■ डॉ. गुलाब सिंह दाड़ा, आई.ए. एस., शासन उपसचिव (गृह), जयपुर (राजस्थान)

* * * * *

श्रद्धासुमनः महासतीद्वय के चरणों में

• ताराचंद लोढ़ा आनंद

लगभग ८० वर्ष पूर्व धर्म नगरी कुचेरा के सुराणा परिवार में एक भव्य आत्मा अवतरित हुई जिसमें बाल अवस्था से ही धर्म के बीजांकुर फूट पड़े थे। यौवन की देहली पर चढ़ते ही वैराग्य ने अपना रंग जमाया। संसार के दलदल में कमलवत रहने का अभ्यास करने लगे। अटवी में भटकने की बजाय अटकने की युक्ति अपनाई। अपूर्व साहस का परिचय दिया। दिनचर्या में नई बात आई। संयम की सौरभ से सारा चमन महक उठा। धर्म नगरी कुचेरा का नाम रोशन कर दिया। सुराणा परिवार को गरिमा प्रदान की। जन जन के मन में आनन्द की लहरे लहरा उठी। शूलों की चुभन गुलाब को खिलने से कब रोक पायी। दृढ़ मनोबली को रोकने की सामर्थ्य किसमें?

तत्कालीन मरुधरा मंत्री स्वामीजी परम श्रद्धेय पूज्य श्री हजारीमलजी मा.सा. के सांनिध्य में नवजीवन प्राप्त हुआ। संयम के सुमेरु पर अलख-जगाने के संकल्प ने स्वरूप साकार किया और राजस्थान की माटी ने शासन की सेवा में एक अदुभुत रत्न समाज को समर्पित कर दिया। जिसे महासती पू. श्री कानकुंवरजी म.सा. के नाम से जानने लगे।

पूज्य महासतीजी ने संयम जीवन में प्रवेश कर ज्ञान साधना में स्वयं को स्थापित कर दिया। स्वाध्याय के सम्बल से जीवन को तराश कर, अध्यात्मयोगिनी बन जन-जन को नव प्रकाश से आलोकित कर दिया। सरल और निश्छल मन भानव मात्र को आकर्षित करने लगा। मधुरिम वाणी से धर्म का अमृत पिलाने का अद्भुत प्रयास, आत्म बोध की प्रभावशाली शैली, जीवन का शोधन करने की ज्योति जागृत करती। साधना पथ के राही विनय और विवेक की ज्योति प्रज्वलित कर ले तो साधना में गति आ जाती है। मन के बिखरे मोतियों को माला में पिरोना अत्यन्त कठिन कार्य है किन्तु असंभव नहीं। अमावस की अंधियारी है तो दूज का चांद निकलने वाला है। रात्रि की कालिमा को धोने के लिए पौ फटने ही वाली है। दुःख की काली घटा छाई है तो सुख का सूरज निकलने ही वाला है। भव भ्रमण के अंतिम छोर पर मुक्ति हमारी प्रतीक्षा कर रही है अतः बढ़ो....और आगे बढ़ो....किसी कवि ने ठीक ही कहा है...

कष्टों का स्वागत करो, कसौटी जानों

दृढ़ता सहिष्णुता का महत्व पहचानों

यह कर्मवाद का स्रोत सदैव बहेगा

सुख नहीं रहा तो, दुःख भी नहीं रहेगा...

जगमगाते तारों से आकाश भरा हो किन्तु चन्द्रमा के बिना चांदनी रात नहीं कहलाती। सरोवर सजाया गया हो किन्तु कमल के अभाव में श्वेत परिधान सा लगता है। सुमनों के अभाव में उपवन भी वन प्रतीत होता है। हीरा साथ हो तो रत्नों की शोभा द्विगुणित हो जाती है। चमेली के फूलों से सारा आंगन सजा हो किन्तु चम्पा के पुष्प के बिना सभी फूल श्री विहिन लगते हैं कहावत है चम्पा बिना चमेली कैसी?

धर्म शासन को समर्पित कुचेरा के सुराणा परिवार के बगीचे में आकर्षक मनोरम चम्पा का एक फूल खिल उठा। सभी ओर खुशियों के नगारे बज उठे। अत्यन्त लुभावना तेजस्वी मुख मण्डल, दिव्य ललाट, किरणों की आभा बिखेरते नयन बरबस आकर्षित कर लेते। नन्हीं-सी बालिका ने अपनी किलकारियों से सूने महल को स्वर्ग बना दिया। घर का कोना कोना स्वर्णिम आभा से आलोकित हो उठा।

चन्द्रमा की भांति शीतलता बिखेरता बालपन किन्तु दिव्य प्रकाश को समेटे धार्मिक विचार उस समय पल्लवित हो उठे जब भुआजी पू. श्री कानकुंवरजी म.सा. ने भौतिकता से मुखड़ा मोड़ संयम पथ अपनाने का दृढ़ निश्चय किया। दीक्षा के प्रसंग पर छोटी सी बालिका ने निर्भयता से कह दिया कि मैं भी भुआजी के साथ दीक्षा लूंगी। अबोध बालिका ने परिवार वालों की भावी आशंकाओं से भर दिया। शिक्षा प्राप्त करने के बाद दीक्षा देने का प्रलोभन देकर मध्यप्रदेश के बालाघाट जिले के कटंगी ग्राम ले आये।

शिक्षा के साथ साथ यौवनावस्था ने भी प्रवेश पाया। सुराणा परिवार के प्रयास ने वैवाहिक बंधनों में बंधने के लिए मजबूर कर दिया। बालाघाट के श्री रामलाल जी कातेला के साथ शहनाइयों की मधुर स्वर लहरी के बीच विवाह सम्पन्न हो गया। दोनों पक्ष सुनहरे सपनों में खो गये। सुन्दर युगल को विधि की नजर लग गई। यमराज की जिस पर नजर पड़ जाये भला वह कभी विजय के नगारे बजा सकता है? क्षणिक सुख के संयोग, वियोग में बदल गये फूल-सी जोड़ी को शूलों ने असह्य चुभन दे दी। सुहागन को वैधव्य ने ग्रस लिया। चारों ओर उदासी ही उदासी, अंधेरा ही अंधेरा, पुष्प खिलते ही मुरझा गया। सहारा छूट गया। नाविक के बिना जीवन नैया तूफानों में डगमग डोलने लगी। निराशा ही निराशा छा गई। चन्द्रमा को ग्रहण लग गया। सुमनों की सौरभ लुप्त हो गई। जमाने को इन सब बातों से कोई मतलब नहीं, दुनिया तो दुःख के समय और दुःखित करती है। वैधव्य को उजागर करने वाले श्वेत वस्त्र पहनाये गये। मन में एक टीस उठी जिसने कोमल मन को छलनी कर दिया।

गहन अंधकार के बाद प्रातः की किरणें जन मन को जागृत करती हैं। दुःख के पहाड़ टूटते हैं तो नया मार्ग मिलता है। शोक की कालिमा में घेरने वाले शुभ वस्त्रों ने नया विश्वास, नई चेतना जागृत कर दी। बचपन के संस्कार पुनः पल्लवित हो उठे। उजड़े चमन में पुनः बहार आई। मन के कोने में संयम की शहनाई गूंज उठी। भुआजी महाराज की याद बेचैन करने लगी। दृढ़ संकल्प जागा। “मैं सफेद कपड़ों से मिले वैधव्य पर विजय प्राप्त कर संयम के श्वेत परिधान पहनूंगी।” संकल्प शक्ति ही इंसान को

भगवान बनने का मार्ग प्रशस्त करती है। दृढ़ प्रतिज्ञ को कौन रोक सकता है अंततः पुनः खुशी के नगाड़े बज उठे। कुचेरा नगरी ने पुनः दुल्हन का परिवेष धारण किया।

भगवान महावीर की दुकान के सजग प्रहरी जहाँ विराजमान थे उस ओर जन मानस का सैलाब उमड़ पड़ा। भक्त जनों ने अपरिमित खुशी में झूमकर जय घोषों से आकाश को गुंजायमान कर दिया। पू.श्री. कानकुंवरजी म.सा. की चिर अभिलाषा फली भूत हुई। एक भुआ को भतीजी मिली। एक साध्वी को शिष्या मिली। प्रभु के शासन में एक और शृंगार की अभिवृद्धि हुई। नियति ने अपना वादा पूरा किया। सतपथ के राही को सच्चा मार्ग मिला। जन जन को चरण वंदना के लिए नये चरण मिले। पू. महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. के नाम से विख्यात हुई।

संयम के सुमेरु, जन मन की ज्योति, आस्था के आयाम, श्रद्धा के केन्द्र अद्भुत साधक, प्रातः स्मरणीय पू. श्री जयमलजी मा.सा. के धर्म रथ के सारथी, संयमनिष्ठ, मरुधरा मंत्री पू.श्री हजारीमलजी म. सा., शासन सेवी स्वामीजी पू. श्री बजलालजी म. सा., मरुधर की मीठी मिश्री और मधुरस की अनुपम मिठास लिये आगम मनीषी श्रमण संघ के युवाचार्य परम श्रद्धेय पू.श्री मिश्रीमलजी म.सा. 'मधुरकर' के समुदाय की शान सतीरत्नों की माला में सम्मिलित होकर धर्म की प्रभावना के साध्वी द्वय ने अपने आपको समर्पित कर दिया।

बरगद के वृक्ष की छाया किसे नहीं मिलती। जो पथिक आता है वहीं शांति पाता है। ऐसे महान साधकों की छत्र छाया में पूज्य महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. को ज्ञानाराधना के भरपूर अवसर प्राप्त हुए। जैन आगमों का गहन अध्ययन कर जैन सिद्धान्ताचार्य बने। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती भाषा पर अधिकार प्राप्त किया।

ज्ञान दर्शन चारित्र की सम्यक साधना में रत रहते हुए भारत की हजारों मील भूमि को अपने पावन चरणों से पवित्र करती हुई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और अंत में तमिलनाडु के मद्रास को अंतिम यात्रा के रूप में स्थापित किया। आपकी ओजस्वी वाणी से प्रभावित हो सरलमना पू.श्री बसंतकुंवरजी म.सा., परम विदुषी पू. श्री कंचनकुंवरजी म.सा., आगम रसिक पू. श्री चेतन प्रभाजी म.सा., मधुर व्याख्यानी कवि हृदय, भावुक पू. श्री चन्द्रप्रभाजी म.सा., विद्याभिलाषी, कोकिल कंठी पू. श्री सुमन प्रभाजी म.सा., सदा प्रसन्न नव दीक्षिता पू. श्री अक्षय ज्योतिजी म.सा. ने संसार को तिलांजली दे आपका शिष्यत्व अंगीकार कर जीवन को सार्थकता प्रदान की।

जहाँ लक्ष्मी का निवास हो वहाँ सरस्वती नहीं रहती और जहाँ सरस्वती हो वहाँ लक्ष्मी का निवास सम्भव नहीं। ऐसी कहावत चरितार्थ है। तमिलनाडु का वैभवशाली क्षेत्र मद्रास संत सेवा में सदा गौरवांविता रहा है और यही कारण है कि उपरोक्त कहावत के दोनों पल छत्तीस के अंक से त्रैसठ के अंक के रूप में रहने का अभूतपूर्व निर्णय लेकर पुरानी कहावत को झूठी साबित कर दिखाया। जहाँ धर्म के प्रताप से धन की अटूट वर्षा होती है तो सरस्वती की गंगा भी प्रवाहित होती है। ऐसी पुण्यशाली नगरी को अंतिम पड़ाव ने गरिमा प्रदान की और जैन महिला स्थानक सतत साधना का केन्द्र बन गया।

अध्यात्मयोगिनी पू. श्री कानकुंवरजी म.सा. वृद्धावस्था के साथ-साथ शारीरिक अस्वस्थता से पीड़ित थे। कई बार लगता कि छत्र छाया से वंचित हो जायेंगे। परम विदुषी महा पू.श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. की सतत् सेवा में आयुवृद्धि कर दी। इस आयुवृद्धि ने मर्मन्तक पीड़ा का पुरस्कार प्रदान किया। माता के

सामने पुत्री प्रयाण कर दे तो असह्य दुःख होता है। ऐसे दुःख के घनघोर बादलों में पू. श्री कानकुंवरजी म.सा. को आच्छादित कर दिया जब आपकी परम सेवाभावी परम विदुषी शिष्या पू. श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. ने बिना किसी पूर्व सूचना, बिमारी के अचानक एक रात सबके सामने देखते ही देखते प्रस्थान का बिगुल बजा दिया जिसने समस्त दिशाओं में कष्टदायक कालिमा बिखेर दी। चारों ओर जहाँ भी निगाहें जाती सभी के नयनों ने अश्रुधारा बहाकर वेदना का इज़हार किया। इस वियोग ने मातृत्व को मर्माह कर दिया।

संयोग से दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया तो अंखियों की कोर सजल हो गई बस एक ही टीस, अब सहन शक्ति क्षीण हो गई। श्री चम्पाजी म. चले गये मेरे लिए दुःख का उपहरा दे गये, यह विच्छोह सहना दुष्कर है। मेरा भी समय निकट आ गया। मेरा भी बुलावा आ रहा है और पाँच महिने भी पूरे न हो पाये। एक शोक से अभी ऊपर भी नहीं पाये थे कि पू. श्री कानकुंवरजी म.सा. ने भी अपनी यात्रा पूर्ण कर प्रयाण की भेरी बजा दी। पुनः क्रूर काल के अट्टहास से सभी कम्पित हो गये। छोटी छोटी शिष्यायें बिलख कर रह गईं किन्तु यमराज को रहम नहीं आया।

काल तो कराल ठहरा जो तीर्थंकरों को भी अपने आगोश में ले लेता है। एक न एक दिन सभी की बारी आती है रिटर्न पासपोर्ट लेकर आये हैं। अवधि पूरी होने पर जाना ही पड़ता है। जो जीवन का मूल्यांकन करना जानता है वह महोत्सव मनाता है और जो मूल्यांकन नहीं करता उसे पश्चाताप की अग्नि भस्म कर देती है।

रेलगाड़ी कितनी भी लम्बी हो, इंजिन कितना भी शक्ति शाली हो किन्तु सुरक्षा की दृष्टि से गार्ड के डब्बे की कीमत होती है, उसी प्रकार मनुष्य जन्म भी ८४ लाखयोनि रूपी लम्बी गाड़ी में गार्ड के डिब्बे समान है। जिसने अपनी ताकत को पहचाना उसने जीवन की गाड़ी को हरी झण्डी बता दी, जीवन सार्थक कर लिया। चरम व परमपद को प्राप्त करने का सर्टीफिकेट पा लिया परन्तु जिसने अपना मूल्यांकन नहीं समझा और मोह की मदिरा पी उसे फिर से चौरासी के चक्कर में फँसना पड़ा।

धन्य है वे महापुरुष जिन्होंने राग द्वेष की बेड़ी को काटने का प्रयत्न करने, संयम की तलवार पर पैर रख कर बढ़ने का साहस किया। वे समस्त लोक में पूजनीय बन गये। साध्वी द्वय ने अपनी विदुषी शिष्याओं को संसार सागर में अपनी नाव के स्वयं खिवैय्या बनाने, सफल नाविक बनाने की दृष्टि से हाथों में चप्पू थमाकर स्वयम् प्रस्थान कर दिया।

अंत में दोनों पूज्य साध्वी रत्नों के पावन चरणों में श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए कामना करता हूँ कि उनके पद चिन्हों पर चलने का साहस जागे इसी भावना से चरणों में कोटिश वंदन, शतः शतः अभिवंदन.....!

* * * * *

काव्याँजलि

शोक पंचक

(समतारस स्वामिनी)

प्रवर्तक श्री रूपचंद म. 'रजत'

सटके स्वर्ग सिधारगी, कानकुंवर कल्याणि।
पत्यक्ष सती पारसमणि, भल मन रूप भवानि॥१॥
सरल मना पुनि सादगी, महिमावती मधु वानि।
सखरो संयम पाल ने, स्वर्गे सटक सिधानि॥२॥
वयोवृद्ध वरदायनि, सायनी संघ गुराणि।
कानकँवर कोमलमति, सति रूपमति राणि॥३॥
आगम ज्ञान अव्यग था, दच्छ रूप रस खानि॥४॥
आतम रूप आनन्द ले, मुक्ति मुक्ति पथठानि।
परम गति सति को भई, रही याद तव कहानि॥५॥

श्रद्धा सुमन

• प्रवर्तक श्री रूपचंद म. 'रजत'

दोहा

हरि वेधा सुर शारदा, किन्नर जच्छ मुनिन्द।
चंपा कानकँवर सती, भेट भेटत फन्द॥१॥
वन वनांत पख्खरवनी, धन कन इन्दरगाज।
ज्ञान ज्ञानाट खगवट सुर, सती प्रगटी धम्मकाज॥२॥
सोम सूर माधव शुक्ल, दशामि देव गुरुवार।
स्वातिम गोमुख समय, सती लियो तन धार॥३॥
बाल प्रोढ़ा वह रही, तन में उठी तरंग।

दीक्षा ले गुरुदेव से, झगड़ु कुरमो जंग॥४॥
विश्व में विरहनी भई, वाह त्याग चीतराग।
सती मद्रास स्वर्गोचढ़ी, तन भौलिक कर त्याग॥५॥
गुरु मधुकर गुनवान थे, थिर स्थानक के माय।
सती दोय सिद्ध वचन थी, गई सुरपुर के ताय॥६॥

श्री कानकंवर सवैया

देह विदेहन हंसवृति तुझ, क्षीर रुनीर सो न्याय नवीनो।
याजग मान की पाल कलवत, संयम साध सुधारस पीनो॥
कषायन को झकझोर कियो सती, कानकंवर सती मूल्य नगीनो।
रूप कहे जश आभ युग्यो तुझ, आज्ञाकार गुरु दोय सतीनो॥
आप विलोकित तोष के मीनन, दीनन गाव सदा धर्त मानो।
चम्पासती समयजग दुर्लभ, मुने मधु की दोय जानो॥
जाति रही नशवरजग छोड़ के, दया दमन दिल करती थी दानो।
रूप कहै दोनु सती शीतल, चम्पाकंवर व महासती कानो॥

* * * * *

कवित्ता

वयोवृद्ध विदुषी चंपा सती कानकंवर,
भंवर कमल जैसे मधुमद पाती थी
गुरु के संकेत साथे चालती थी हंस वृत्ति,
सुकोमल शान्त धृति-मोती वरसाती थी॥
अरिहन्त उपासिका, दासक मधुकर जी की,
मधुकरी धारण कर गौचरी कुँ लाती थी।
रूप कहै श्रद्धाज्जली, सुमन चद्राङ्ग सती,
जीवन की दाय दिव्य ज्योति जगमगाती थी॥

* * * * *

दुर्मिल सवैया

तन मन वचन दोय दस टारत, स्वार्थ नहीं उर माय सती।
अमल अक्रोध, अशुची सती मन लक्ष्य भेद अथाह बुद्धिमती॥
शिष्टाचार अनुपम मोहत आप जिनोत्तम सुरसती।
'रूप' कहै गुरु आज्ञा शिरोधर, गई देसा दोय स्वर्गगती॥
रूप श्रद्धांजली देवें सती तुझ, स्वर्ग में पामजो खूब आराम।
झट तन धार आजो मृत्यु लोक में, यम साधन करो जन काम॥
वार निहारत शील की सागर, तू रतनाकर जानि तमाम।
'रूप' कहे जिनधाम बसी सति, चुं पुकारत है जन आम॥
कानकंवर चंपा सती दो हुई हिन्दवान में।
शील संयम थंभा, देकर सती देखा दिया॥
मधुकर गुरु मुनीह, दुनियों में थोजो देवता।
आज्ञाकार सुनीह, रूप कहै मरु राज में॥

• पाली (मारवाड़)

श्रद्धा के सुमन भेंट चढ़ाये

• प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

धरती की गोद में
कितने ही नाम
मानसून की तरह जन्म लेकर
आषाढ़ के बादलों की तरह छूते हैं
कुछ नाम ऐसे होते हैं,
जो
मौसम के बाद भी
अंगुलियों पर गिने जाते हैं
श्रमणी श्रेष्ठा

सरल हृदया
कानकुंवर जी के लिये
कितना क्या कहूं
सद्गुणों की खान थी
न केवल मरुधरा की
वे तो
सम्पूर्ण
जिनशासन की शान थी
उनके जिह्वा और जीवन में

विचार और आचार में
अन्तर और बाह्य में
अद्भुत सामंजस्य था
आओ पूरे आदर से
उनके कार्यों को अपने

मानस पटल पर लाये
नई पीढ़ी सीख ले उनके सस्परणों से
हम सभी उनकी गौरव गरिमा गाये
श्रद्धा के सुमन भेंट चढ़ाये।

• नागौर (राजस्थान)

श्रद्धा के दो फूल

तक श्री महेंद्र मुनि "कमल"

जन्म कुचेरा में हुआ, जिन शासन की शान।
श्रमणी चम्पा कुंवर का, जीवन रहा महान॥
मृगसर शुक्ला की अहो, द्वितीया तिथि हुई धन्य।
मात किसन, फूसा पिता, छाया हर्ष अनन्य॥
पौष कृष्ण दशमी तिथि, पावनतम उत्कृष्ट।
शुभ संयम धारण किया, परिणाम प्रकृष्ट॥
ज्ञान-ध्यान में रत रही, जीवन भर ही आप।
कथनी करनी एक थी, सहज, सरल, निष्पाप॥
निज परहित नित अपने, किये अनेकों काम।
युगों युगों तक आपका, याद करेंगे नाम॥
मुनि 'कमल' अर्पित करें, श्रद्धा के दो फूल।
जहाँ कही भी आप हो, करिये इन्हें कबूल॥

• नागौर (राजस्थान)

महासती श्री कानकंवर जी म.

(षट दशी)

• उप प्रवर्तक श्री चन्दन मुनि म.सा. (पंजाबी)

[१]
कार्य धर्म के, नेक कर्म के
जिनसे ये दिन-रात हुये

'महासती श्री कानकंवरजी'
दुनिया में विख्यात हुये

(६९)

[२]

‘बीजराज जी’ पिता सुराना
माता ‘अनछीवाई’ थी
देख सुलक्षण कन्या के न
जाने खुशी समाई थी

[३]

उगनी सौ अड़ सठ सम्बत शुभ
जन्म अष्टमी थी सुखकार
झूम उठा था नगर ‘कुचेरा’
झूम उठा था सब परिवार

[४]

उगनीसौ नवासी, दशमी-
माघ शुक्ल जब आई थी
धूमधाम से नगर ‘कुचेरा’
दीक्षा जा अपनाई थी

[५]

मन्त्री हजारी मुनीश्वर
शास्त्रों के जो ज्ञाता थे
हर एक बात बता-समझाकर
दीक्षा सविधि प्रदाता थे

[६]

जिनके जपकी तप की महिमा
दूर-दूर तक छाई थी
महासती सरदारकंवर-सी
विदुषी गुरुणी पाई थी

[७]

लेकर संयम समय सुनहरी
क्षण न व्यर्थ गंवाया था

जैनागम का ज्ञान आपने
गहरा गहरा पाया था

[८]

किये अनेकों कण्ठ थोकड़े
निर्मलमति का था न पार
रक्खा याद हमेशा उनको
बारम्बार चितार-चितार

[९]

भाषण में भी भारी रस था
अणम अधिक सुनाते थे
इधर-उधर की बातें कर न
यों ही समय बिताते थे

[१०]

शिष्या और प्रशिष्याओं को
कहते-विद्यावती बनो
शान्त, सुशीला, विनयवती बन
इक नम्बर की सती बनो

[११]

‘चम्पाकंवर’ ‘बसन्त कंवरजी’
‘कंचन कंवर सती जी’ और
शीष्यायें ये तीनों समझो
श्रमणी मंडल की सिरमौर

[१२]

‘साध्वी चेतन प्रभा एम.ए.’
‘चन्द्रप्रभा साहित्यरत्न’
‘श्रमणी श्री अक्षय ज्योती जी’
‘सुमन सुधा जी’ सुधावचन

[१३]

विदुषी चार प्रशिष्यायें ये
यथा नाम है गुण की खान
जैनधर्म के 'श्रमण संघ' की
चारों भी हैं सच्ची शान

[१४]

जिस में भरा विवेक बहुत हो
भक्ति भावना, सेवा-भाव
सचमुच ही तो उस साधक की
लगी किनारे समझो नाव

[१५]

बहुत दियाया गुरुणी जी को
खुद को बहुत दियाया है
अन्त समय में अनशन करके
स्वर्गपुरी को पाया है

[१६]

निर्मल शम, दम, संयम का कुछ
पार नहीं पाया जाता
'चन्दन मुनि' पंजाबी उनकी
कैसे गाये यश-गाथा

* * * * *

महासती श्री चम्पाकंवर जी म.

(पंचदशी)

• उपप्रवर्तक श्री चन्दन मुनि म.सा. (पंजाबी)

[१]

अग्रगण्य थीं जिन शासन में
भाषन में भी आगे और
चतुरा 'चम्पाकंवर सती' थीं
श्रमणी-मण्डल में सिरमौर

[२]

'फूसालाल' पिता थे प्यारे
माता 'किसना बाई' थी
चम्पाकंवर चान्द का टुकड़ा
बेटी जिनने पाई थी

[३]

उगनीसौ तिरासी, मिगसर-
शुकल दूज जब आई थी
जन्म 'कुचेरा' में ले उसकी
किस्मत सुप्त जगाई थी

[४]

उसी 'कुचेरा' नगरी में ही
सादर दीक्षा धारी थी
दो हजार पर पांच पौष बदि-
दशमी तिथि सुखकारी थी

(७१)

[५]

विज्ञ हजारीमल्ल मुनीश्वर
मरुधर मन्त्री थे गुण-खान
दीक्षा-पाठ पढ़ाया उनसे
बहुत प्रेम से सह सम्मान

[६]

सचमुच हुई आपको जिससे
सच्ची खुशी सवाई थी
विदुषी साध्वी कानकंवर-सी
पूज्या गुरुणी पाई थी

[७]

बहुत मगन हो बड़ी लगन से
जैनागम का कर अभ्यास
'जैन सिद्धान्ताचार्य' परीक्षा
अच्छे अंकों की थी पास

[८]

ज्ञान-ध्यान-व्याख्यान-कला के
सुलझे थे इक साध्वीरत्न
खोल-खोल हर बात शास्त्र की
समझाने का किया प्रयत्न

[९]

'विदुषी सती बसन्तकंवरजी'
'साध्वी कंचनकंवर' अहो!
'अक्षयज्योति सती'-सी अच्छी
तीनों ही गुरुबहन कहो

[१०]

'विदुषी चेतनप्रभा सती' ह
चन्द्रप्रभा जी सुज्ञ सती

'सुमन सुधा जी' शिष्यायें ये
तीनों हैं अति विनयवती

[११]

जिनने जग तज बड़े हर्ष से
पांच महाव्रत धारे थे
'जीतमल आचार्य' आपके
मामा श्री जी प्यारे थे

[१२]

'कानकंवरजी' भुआ आपकी
नानी 'भीकमकंवर' तथा
चाची 'सुन्दरकंवर' और फिर
सती बनी थी जगत तजा

[१३]

ऐसे निकट स्नेही पहले
चुके जगत को जब हैं त्याग
अचरज क्या जो बसा आपके
मन में ही आकर वैराग

[१४]

परम प्रशंसित वंश बहुत है
त्याग तपस्या वाला जी
इनके जीवन में न क्यों फिर
होता ज्ञान-उजाला जी

[१५]

'गीदड़बाहा मण्डी' में जो,
पंजाबी 'मुनि चन्दन' है
इनके तप-जप-संयम का वह
करता शत अभिनन्दन है

* * * * *

कान त्याग संसार

• उप प्रवर्तक श्रमण संघीय सलाहकार श्री सुकनमल जी म.सा.

तात विजय की लाडली, अनची कूख उज्जाल।

भाद्र कृष्णा अष्टमी, जन्मी कुचेरा बाल ॥१॥

महासती सरदार से, शिक्षा दीक्षा धार।

आर्या बन गयी प्रेम से, कान त्याग संसार ॥२॥

निज गुरुणी की सेवना विनय बेल बन कीध।

काम क्रोध पतला किया, जग पावन जस लीध ॥३॥

श्रमणी गुण गहरा भरिया, कहाँ लग करु बखाण।

गुरु हजारी मिल गये, कान कैवर शुभ यान ॥४॥

समता रख खभता सदा, सह्या परिषह पूर।

श्रमण संघ में महासती, कानकैवर थी सूर ॥५॥

संयम जीवन मोटको, कान निभायो सार।

ज्ञान ध्यान उर में धरयो, जीनवाणी रो तार ॥६॥

प्रथम चेली चम्पा हुई, बसन्त, कन्चन जाण।

चेतन चन्द्र सुमन, अक्षय प्रशिष्या पहिचान ॥७॥

मरुधरा से चालकर, फरसे कई परदेश।

दक्षिण देह त्याग दी, जमा धरम की रेस ॥८॥

काल कुटिल करड़ी करी, लेगया कान उठाय।

सती समूह विलखो थयो, कारी लगी कछुनाय ॥९॥

तव आत्म आनन्द लहे मिले मनुष्य भव ओर।

‘सुकन’ साधना शिव मिले, अष्ट कर्म कूं तोर ॥१०॥

स्मृति ग्रन्थ श्रद्धाजंली, करे समर्पित तोय।

चऊ संघ आनन्द लेह, दिन-दिन उन्नति होय ॥११॥

• पाली (राजस्थान)

* * * * *

शोक पंचक

• उप प्रवर्तक श्री सुकनमल जी म.सा.

समता रस में लीन थी, सरलमना गुणवान।

कानकुंवर सटके कियो, स्वर्गों में परियाण॥१॥

सती चम्पा आगे कियो, स्वर्गा माँहि वास।

गुरुणी कानकुंवर जी, झट पहुँची है पास ॥२॥

वसन्त झूरे कंचन झूरे, चेतन चन्द्र विलखाय।

सुमन सुधा अक्षय सती, आँसू नयन दिखाय ॥३॥

मारवाड़, मद्रास में, लियो जस भरपूर।

जय मल्ल गच्छ (श्रमण संघ) में दिपती तप जप में थी सूर॥४॥

तब आत्म आनन्द लहे, वृज मधुकर की महैर।

‘सुकन’ धर्म में लीन बन, करो मुक्ति की शेर ॥५॥

• पाली (राजस्थान)

* * * * *

श्रद्धा पुष्पांजली भेंट

• -मुनि श्री उत्तम कुमार ‘मिश्री’ बैंगलोर।

(१)

जिन शासन वाटिका में,

खिले सुमन अनेक।

पूज्य साध्वी कानकंवर जी,

हैं उनमें से एक॥

(२)

जन्म पाया कुचेरा में,

वीर भूमि राजस्थान।

जहाँ पर पैदा हुए,

मीरा, राणा गुणखान॥

(३)

माता अनछी बाई जी,

पिता श्री वीजराज।

सौंपी पुत्री गुरुणी को,

जिन शासन के काज॥

(४)

गुरु पाये मधुकर जी,
मुनियों में सरदार।
ज्ञान ध्यान पाया उनसे,
और पाया जीवन सार॥

(५)

ज्ञान ध्यान में सदा,
रहती थी आप लीन।
रखती सबसे सम व्यवहार,
श्रेष्ठी हो या दीन॥

(६)

जैनागम अध्ययन किया,
बहु शोकड़ों में प्रवीण।
इतना उपकार किया तुमने,
एक-दो नहीं अनगिन॥

(७)

शिष्याएँ सब आपके,
हैं गुणों के खान।
स्वाध्याय तप जप में,
और रहे हरदम ध्यान॥

(८)

महासती चंपा कंवर जी,
थी शासन की शान।
दिव्य लोक में चली गयी,
बन वहां की मेहमान॥

(९)

वसन्त कंवर कंचन जी,
रहती संयम लीन।
चेतन चन्द्र प्रभा जी,
सुमन सुधा प्रवीण॥

(१०)

अक्षय जी रहती सदा,
संयम में अडोल।
सदा जीवन में धारती,
गुरुणी जी की बोल॥

(११)

धन्य तुम्हारे माता पिता
धन्य तुम्हारा कूल।
जिन शासन को जिन्होंने,
दिया सुन्दर फूल॥

(१२)

साध्वी रत्न द्वय को,
श्रद्धा पुष्प खास।
कृपा दृष्टि रखो सदा,
यही मन में आस।
उत्तम की स्वीकार करो,
श्रद्धाजंती तुम आज।
याद तुम्हें करें सदा,
सारा जैन समाज॥

* * * * *

(७५)

नारी का असली रूप: महावीर की दृष्टि में

• प्रखर वक्ता साधुरल श्री विनोद मुनिजी महाराज, अहमदनगर

अतीत का इतिहास
साक्षी है,
इस बात का
छीन लिया था अधिकार
जो था नारी का।
पुरुष को
पुरुषत्व के
अहं के भूत ने
था दबोचा।
विमूढ़ हो कर
अनाधिकार से
उठा लिया
नर ने कदम
बन गया सर्वेसर्वा।
नारी क्या है?
अबला है,
पुरुषाश्रित है,
मानव के
मनोविनोद का
मोहक एक खिलौना,
विलास का,
आमोद प्रमोद का
सिर्फ एक साधन
बस, यही नारी का रूप।
स्वतंत्रता से

सोच सके नहीं
विचार सके नहीं,
घर की चारदीवारी में
बन्दी बन कर
हर समय रहना
बस यही नारी का रूप।
कहा किसी ने-
पैर की जूती!
एक फटे
अन्य ले आये।
नागिन के तुल्य!
पशु समकक्ष।
और नरक की खान!
यों करी भर्त्सना।
करी तर्जना।
धर्मक्षेत्र में
वेद ज्ञान की
मुक्ति स्थान की
अनाधिकारिणी
जग में नारी।
मानो
ज्ञान और मुक्ति भी
पुरुष की ही है
बपौती

* * * * *

तापित-ताड़ित
 अभिशापित
 स्व. अधिकारों
 से भी वंचित
 यह देख अवस्था
 द्रवित हो गई
 फूट पड़ी
 वह चली
 मही मंडल पर
 करुणा प्रभु की।
 ओ नारी!
 तू है दया की प्रतिमा!
 करुणा की निधि!
 क्षमा की ज्योति!
 स्नेह की पावन
 स्रोतस्विनी।
 हे प्रज्ञा धुरीण!
 अमित शक्ति को
 धरने वाली
 भूल गई क्यों
 अपने पन को?
 अपने बल को?
 तेरे भीतर
 सतीत्व का है
 तेज निराला
 गिरते पुरुषों को
 देकर सम्बल
 सत्य संयम का
 क्या नहीं,
 किया उत्थान।
 किया कल्याण।
 धर्मग्रन्थों के
 इतिहासों के
 पृष्ठ अनेकों

त्याग वीरता
 बलिदानों की
 गाथाओं से
 सजे हुए हैं।
 रंगे हुए हैं।
 गौरव मंडित
 होकर कैसे
 चमक रहे हैं,
 दमक रहे हैं
 इसने ही तो
 धराधाम पर
 राम, कृष्ण, बुद्ध
 महावीर से,
 लाल दिये हैं।
 इसीलिए तो
 पाया पद था
 रत्नकुक्ष धारिणी का
 सीता, अंजना,
 चन्दनबाला
 महासतियां
 जगदम्बा
 सरस्वती
 देवी स्वरूपा
 ये ही बनी हैं।
 इसी काल में
 मुक्तिधाम में
 प्रथम प्रवेश का
 उद्घाटन भी
 विश्व वत्सला मरुदेवी के ही
 हाथों हुआ था।
 नर-नारी के
 जुदे-जुदे
 परिलक्षित होते

भेद जहाँ में
यह तो है
बाहर की दृष्टि
एक बार
अन्तर में झाँको,
दृश्यमान

जो जलती ज्योति
एक दिखेगी
चैतन्य स्वरूपी
ज्ञान स्वरूपी
शक्ति स्वरूपी

* * * * *

स्मृति के लिए

• श्री नमन मुनि (मल्लेच्छराम-३)

परम पावन, मन की राजा,
श्रमण संघ की शान।
साध्वी रत्न महासाध्वी
कान कुँवर गुणखान॥१॥
फूल चम्पा का सुगन्ध भरा है।
आया पास पाया सुवास
महासती श्री चम्पा कंवर जी
मद्रास नगर में आप विराजे।
जन-जन आप से लाभ लेता।
फूल सा सुवास प्रसारित
देख हृदय हिलोरे लेता॥३॥
मद्रास में चउमास-वास में
और शेखा काल के वास में।
आप के मधुर स्नेहिल भाव को
देखा जाना बैठ पास में॥४॥
ऐनावरम् रेल्वे क्वार्टर्स,
मैंने सुनी सूचना बुरी।
पुनः-पुनः दर्श लाभ की

रही कामना मेरी अधूरी॥५॥
चम्पाकंवर श्री महासती जी
गये लम्बे डगर पै सुना।
छोड़ गयी सृष्टि मध्य की
ऊर्ध्व सृष्टि में आनंदित अधुना॥६॥
उसी समय में कान कुँवर जी,
आदि ठाणा सात से
विराज रहे थे, हम भी पहुँचे
दुखी हृदय था, दुख भरी बात से॥७॥
कानकंवर जी महासती जी
बोले हम से मधुर बान में।
अनेक अनुभूत सत्य प्रकट कर
हमें पावन किया उस स्थान में॥८॥
किन्तु हाँ दैव! गजब तेरा आलम है।
बैंगलोर विदा लेकर हम आये
स्वर्गवास का समाचार सुन
हम भी भ्रमित, संभल न पाये॥९॥
छोटेकाल के अन्तराल में।
दो - दो रत्न अस्ताचल पर

नियति इस साध्वी समूह पर
 क्यों न किया ख्याल, जरा भर॥१०॥
 सेवाभावी 'वसंतकुंवर जी'
 'कंचनकँवरजी' मिले प्रवास में।
 'चेतनप्रभा' चन्द्रप्रभा 'मुस्कानी'
 मधुर- वृत्ति - व्यवहार इनके पास में॥११॥
 'सुमन सुधा जी' मधुर कंठ से
 भक्तिगान सुनाती जाती।
 'अक्षय ज्योति' मधुर व्यवहार से
 सब का मानस झट मोह जाती॥१२॥
 ये साध्वी मण्डल गुरनी-विहीन

कितना क्षोभ भरा है मन में।
 'मुस्कानी' के पत्र से प्रकट हो
 रहा, न रहा स्फूर्ति इस तन में॥१३॥
 शिष्या मण्डली सदा जहां में,
 पाती रहे सुयश- कामना।
 साध्वी-द्वय का अभिनन्दन
 कर, मेरी शुभ यही चाहना॥१४॥
 ढाढस लेना 'वसंत' - 'कंचन'
 'चेतन' चन्द्र मुस्कानी जी।
 'सुमन' 'अक्षय' अक्षत हो,
 'नमन' साध्वी गुण खानी जी॥१५॥

* * * * *

मरुधरा की महान सती

(तर्ज- दूर कोई गाए)

• साध्वी श्री तरुणप्रभा 'तारा'

मरुधरा की सति महान
 सतियों में थी बड़ी पुण्यवान॥टेर॥
 कान नाम प्यारा हो
 नमन हमारा हो॥१॥
 सरदारकंवर की शिष्या प्यारी।
 सेवागुण था अतिभारी॥
 सब मन भाया हो (नमन)॥२॥
 कुचेरा में जन्म लिया।
 बिजराज जी हरसाई जिया॥
 आच्छी मन हलसाई हो (नमन)॥३॥
 मरुधरा के मंत्री थे।
 हजारी गुणधारी थे॥

संयम आप लीनो हो (नमन)॥४॥
 बीस साल में दीक्षा लीनी।
 कुचेरा की थी पुण्यवानी॥
 ब्रज मधुकर की शिष्या नामी हो।
 (नमन)॥५॥
 आगम की ज्ञाता थी।
 मधुर व्याख्याता थी
 ज्ञान के भंडारी हो (नमन) ॥६॥
 महागुणधारी थी।
 शिष्यों की प्यारी थी॥
 संघ सहारा हो (नमन) ॥७॥
 मद्रास में स्वर्ग गयी।

नर नारी उदास भयी॥

शिष्या आसूं डारी हो (नमन)॥८॥

कान चम्पा प्यारी थी।

जोड़ी प्रिय कारी थी॥

हर्ष नर नारी हो (नमन)॥९॥

संसार असार का।

दिया उपदेश था॥

तरुण श्रद्धा बारी हो (नमन)॥१०॥

* * * * *

घणी दुःख भरी बात

(तर्ज- बटाऊड़ो आयो लेवाने)

• साध्वी श्री तरुण प्रभा 'तारा')

आ तो दुःख भरी है सारी बात

गुरुणी जी जग छोड़ गये ॥टेर॥

जिला नागौर ग्राम कुचेरा जन्म लियो सुविशाल।

पुखराज जी किशानीबाई घणा हुआ निहाल ॥१॥

कानकुंवर गुरुणी से संयम ले चले वीर के पंथ।

खूब दीपायो जिन शासन को, महासती गुणवंत॥२॥

जप तप संयम सेवा समता, करते नित स्वाध्याय।

मीठी वाणी सदा बोलते विनय भरा था रग रग माय॥३॥

सब चेलिया ने ज्ञान ध्यान तो घणो सिखायो नाथ।

रोता सबने छोड़ गया, अबकूण फेरला माथे हाथ॥४॥

क्षमा भाव विवेक ज्ञान का दिव्य तेज था पास।

आगम ज्ञान रमा अंतर में, जैसे फूलों में है सुवास॥५॥

युवाचार्य की शिष्या माही आप घणा व्याख्याता।

मेवाड़ मरुधरा देश विदेशे घणो कियो धर्मउद्याता॥६॥

सब चेलिया पर महर आपकी सदा रही सुखकार।

किधर गये अब छोड़ हमें, पर बहे आसूं धार ॥७॥

कंचन चेतनघणी लाइली रह गई थांसू दूर।

चन्द्र ज्योति घणी सुहाती रह गई कोसों दूर॥८॥

क्रूर काल के सम्मुख सारा हार गया संसार।

गुरुणीजी स्वर्ग सिधारे, दुःख हुआ अपरम्पार॥९॥

रो रो कर पुकार रही मैं कटे विराजा जाय।

तरुण प्रभा का श्रद्धा सुमन है चरणों के माय॥१०॥

* * * * *

श्रद्धा सुमन

• साध्वी श्री मणि प्रभा, आमेट

मरुधरा की महान सती गुण रत्नों की खान।

सरदार कुंवर की शिष्या, प्यारी कानकुंवर जी नाम॥

शिष्या थी आपकी चम्पाकुंवर जी श्रमण संघ की शान।

ज्ञानी ध्यानी मधुर वाणी, ओजस्वी व्याख्यान॥

कुचेरा में जन्म लियो, शिक्षा वहीं पर धारी।

दीक्षा लेकर नाम कमायो, कुचेरा की धरा प्यारी॥

मद्रास शहर में स्वर्ग गये, उदास भये नर नारी।

श्रद्धा सुमन चरणों में उनके अखियाँ आंसू डारी॥

* * * * *

श्रद्धा पुष्प

(तर्ज जय बोलो महावीर स्वामी की)

• साध्वी श्री सुदर्शनप्रभा, आमेट

जय बोलो ज्ञानी सतीवर की।

पूज्य कान चम्पा जोड़ी प्रियवर की ॥जय॥

दर्शन कर सब जन सुख पाया।

मधुर वाणी सुन हरसाया॥

मन मोहन भूरत गुण कर की॥जय॥

मिथ्यात्व को नित दूर किया।

जीवन में समकित बीज बोया॥

जिन धर्म दिपावन वाली की॥जय॥

तप तेज में आप महकती थी।

मधुर व्याख्यानी सतीवर थी॥

मधुकर शिष्या प्रियवर की॥ जय ॥

कुचेरा भूमि है पुण्यकारी।

जहां जन्म लिया द्वय सतीवर प्यारी॥

सुदर्शन प्रभा श्रद्धाजंली अर्पित की॥जय॥

* * * * *

धीरज कौन बंधाये

(तर्ज- जब तुम्हीं चले परदेश)

• महासती श्री कंचन कुंवर म., मद्रास

श्री चम्पा कुंवर जी महाराज छोड़कर साज स्वर्ग सिधाये।

अब धीरज कौन बंधाये॥

जिनवाणी सुधा वर्षति थे, सबको वंदन कर हषति थे।

संयम सौरभ महकाये॥

गागर में सागर भर लाते, नित नूतन बात सिखाते।

अंतरतम कौन भगाये॥

जन मन को राह बताते थे, भूलो को पथ पर लाते थे।

करुणा का स्रोत बताये।

शास्त्रों का मंथन करते, ज्ञान ज्योति प्रज्वलित करके।

दया प्रेम ममता के दीप जलाये॥

चरणों में शीश झुकाते हैं, श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हैं।

कंचन के हृदय समाये॥

* * * * *

चंपा महासङ्ग - सङ्ग पणमाभि

• -डॉ. उदयचन्द्र जैन

सम्भावया - धरणीसील वरा चरिता

मुत्ती सुसेविय- वरिष्ठ गुणानुधीरा।

गायव्व- पंचविह णाण पगास जुत्ता

चंपा -महासङ्ग सङ्ग पणमामि णिच्चं॥१॥

आणाणुवट्टिणि- स- पण्ण सुसत्थसीला

रत्तिं विणा ण करचंद- कला ण सोहा।

आणंदणं महुयरं पहगामिणीआ

चंपा-महासइ- सइं पणमामि णिच्चं॥२॥

णेहाहि सित्त जण- सम्म- सहाव जुत्ता

आसाइ पासहणणं चरणेसु रत्ता।

णिद्दोस- भाव धरणे सरणेसु तुम्हे

चंपा महासइ सइं पणमामि णिच्चं॥३॥

सिद्धंत सायर-णिमग्ग मिऊ सहावी

णाणस्स जोइ सरिसं हि जिणुत्त सत्यं।

णं आगमस्स गहणस्स तु जम्म जाया

चंपा महासइ- सइं पणमामि णिच्चं॥४॥

भासा विभास गुरजं सु-भावणाएं

णं पाड्यं सुरस- सक्कय अज्झणाणं।

ओजस्सि वाणि वयणेहि कलाहि तुम्हे

चंपा महासइ सइं पणमामि णिच्चं॥५॥

संसार सायर तरणे तरणी समा तुं

गंभीर धीर महुरा वयसील- जुत्ता।

दिच्चा सरस्सइ सपुत्ति तु णंददत्ती

चंपा महासइ सइं पणमामि णिच्चं॥६॥

णदं वणं महुयरं गमणाणुसीला

अज्झप्प- जोगिणि- जणाण परोपकारी।

तित्थं सुत्तिथ सु जिणागम रक्खणीया

चंपा महासइ सइं पणमामि णिच्चं॥७॥

अण्णाण णट्ट करणे समणी तु जाया

तं कंचणं अखय जोइ वसंत सोहा।

सिस्सा उ चेतण सुचंद सुमण्ण रूवा

चंपा महासइ सइं पणमामि णिच्चं॥८॥

विणा रयणत्तयेणं, सिद्धिपदं ण सिद्धए लोए।
उदयचंदो ण चंदो, जेण विगसेउ कमलणीउ॥९॥

पिक कुन्ज
अरविन्द नगर, उदयपुर (राज.) ३१३००१

* * * * *

चम्पा दशकं

• एप. आर. भावनारायणः

(१)

चम्पा साध्वी सुविख्याता,
शिष्टाचार धुरंधरा।
प्राज्ञी प्रकाण्ड विदुषी।
विद्वज्जन मनोहरा॥

(२)

लोक प्रिया धार्मिकी च,
शिष्याणां च मनोरमा।
नियमे नितराम रक्ता,
पावनी पाप नाशिनी॥

(३)

सत्यव्रता सत्य रूपा
तुष्टा सर्वजन प्रिया,
जैनधर्म प्रचारेतु
अपूर्वा पुण्यशालिनी

(४)

नित्य शुद्धा नित्य बुद्धा
निरवद्या निरन्तरा
आराधित महावीरा
श्वेताम्बर पथानुगा॥

(५)

नीरागा रागमथनी
निर्मदा मदनाशिनी
निश्चिंता निरहंकारा
निर्माहा मोहनाशिनी॥

(६)

निर्ममा ममता हन्ती
निष्पापा पाप नाशिनी
निष्क्रोधा क्रोधशमनी
निर्लोभा लोभनाशिनी॥

(७)

निसंशया संशयघनी
उपकार विचक्षणा
सम्राज्ञीयं भाषणेतु
निर्भया भयनाशिनी

(८)

पुण्यैः अनेकैः एषा तु
प्राप्तानु परमं पदं
मोहेमग्नाः वयंचैव
दुखिताः परमंखलु

(९)

याचामहे वयंचैव
पूतायाः परमांगतिं
निर्वाणं नित्यतां शान्तिं
क्षिप्रं मोक्षं च वाञ्छित

(१०)

जयतु जयतु चम्पा लोक विख्यात कीर्तिः
जयतु जयतु धर्मः स्थापितो जैनवर्यैः
जयतु जयतु सत्यं सर्वदा सर्वथातु
जयतु जयतु लोकः शोकनिमुक्त चेताः

* * * * *

धन्य धन्य हे महासती

• शशिकर 'खटका राजस्थानी'

राह बताई तुमने हमको हम उससे मंजिल पाते हैं।
धन्य धन्य है महासती। गुण गौरव तेरे गाते हैं॥
धन्य हुई मरुस्थल की माटी धन्य कुचेरा ग्राम हुआ,
मात पिता किसना फूला का तुमरे कारण नाम हुआ।
संवत् उन्नीसौ तैयासी मार्ग शीर्ष शुक्ला की दूज,
धरा गगन पर निकले चन्द्रा जन मन दोनों रहे थे पूज।
महक गई बगिया की डाली झूम झूम सब जाते हैं।
धन्य धन्य है महासती। गुण गौरव तेरे गाते हैं॥
अध्यात्म योगिनी कान्हकुंवर जी का तुमको सानिध्य मिला,
जैन जगत की बगिया में, फिर चम्पा का सुमन खिला।
दो हजार पांच का संवत् पोष कृष्णा दशमी आई,
ग्राम कुचेरा की मिट्टी ने मुस्करा कर ली अंगड़ाई।
सती चन्द्रा के पथ पर चम्पा जी पांच बढ़ाते हैं।
धन्य धन्य हे महासती! गुण गौरव तेरे गाते हैं॥
तेज देखकर महासती का मुनि हजारी धन्य हुए,
महासती चम्पा के कारण उदित सभी के पुण्य हुए।
संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी के संग पढ़ली तुमने गुजराती,
आज भरे स्वर के अन्दर तुम आगम वाणी समझाती।

(८५)

सेवाभाव तुम्हारा अनुपम हम भूले नहीं भुलाते हैं।
धन्य धन्य हे महासती! गुण गौरव तेरे गाते हैं॥
अक्षय ज्योति जले हमेशा हर पल कंचन बिखरे,
कान कुंवर जी की बगिया तो पा बसन्त को निखरे।
चेतन देख चन्द्र भी निकला सुधा सुमन से बरसी,
चम्पा की डाली तो झुकझुक देख सभी को हरसी।
'शशिकर' सौरभ देख तुम्हारी हम फूले नहीं समाते हैं।
धन्य धन्य हे महासती! गुण गौरव तेरे गाते हैं॥

कवि कुटीर
विजयनगर - अजमेर (राज.)

* * * * *

पू. श्री कान कुंवर जी म. श्रद्धांजलि

• संजय कटारिया बालाघाट (म.प्र.)

सतियां जी को श्रद्धा अर्पित हो,
ले लो शरण में अपने मुझको।
दया क्षमा की थी तुम ज्योति।
ज्ञान के सागर की अनमोल मोती॥
तपस्विनी गुरुणी में बिजली सी फुर्ती।
महासती चंदनबालाकी साक्षात् मूर्ति॥
पंच महाव्रत संयम धारी।
देवी सम थी दिव्य नारी॥
नींद में भी बस यही जपती।
धर्म सेवा की प्रभु दो शक्ति॥
नाम अमर कर मोक्ष पधारो।
कानकुंवर जी की महिमा भारी॥
स्मृति छंदों से यह श्रद्धा बखानी।
संयम जैन इतिहास की अमिट कहानी॥

* * * * *

‘बिखरे शूल हरो’

• ताराचंद लोढ़ा ‘आनंद’

कानकुंवर जी महासती की महिमा बड़ी निराली है।
चम्पा के सुमनों से सुरभित, फूली क्यारी-क्यारी है॥
धीर वीर गंभीर ज्ञान गुण, जो आये मन मोह लिया।
जन मन में नवदीप जलाकर, प्रभु चरण से जोड़ दिया॥
स्वाध्याय से शोधन कर, नवनीत निकाला करते थे।
विष का विष धो अमृत रस से, कुम्भ कलश को भरते थे॥
घर से नाता तोड़ जगत से, अपना नाता जोड़ लिया।
स्व- पर की कल्याण कामना, सृष्टि से मन मोड़ दिया॥
गांव-गांव और नगर-नगर में जाकर अलख जगाते थे।
उजड़े उपवन के माली बन, पौधे नये लगाते थे॥
जहां गये जिस ओर गये तो सारा उपवन महक उठा।
मुरझाई कलियाँ मुस्काई, घर घर आंगन चहक उठा॥
राजस्थान ने जन्म दिया और दक्षिण की माटी सोये।
शासन के अनमोल रत्न को, अपने ही घर में खोये॥
रे क्रूर काल क्या कभी किसी पर, रहम नहीं तुझको आता।
तीर्थकर चक्री भी कोई तुझसे कभी ना बच पाता॥
तुझको क्या मिल गया बोल यों साध्वी द्वय हर जाने से।
रोता बिलखता हमें छोड़कर, वरदहस्त ले जाने से॥
‘आनन्द’ श्रद्धा भाव पुण्य उन चरणों में अर्पण करता।
चरण शरण की सेवा पाऊं, यही भाव मन में धरता॥
वसंत, कंचन, चेतन, चन्द्रा, अक्षय सुमन सुवास भरो।
फूल फूल बरसाओ पथ पर, बिखरे सारे शूल हरो॥

* * * * *

किया जीवों का उद्धार है

(तर्ज- मेरे अंगना में तुम्हारा-)

• माणकचन्द दुगाड़, मुकटी (महा.)

महासतियों में कनककुंवरजी का बड़ा नाम है।

अनछीवाई की सुपुत्री, बीजराज के जाये

जिनके गुरु हजारी मल, उनका भी बड़ा नाम है

अध्यात्म योगिनी, दमियों के सिरताज हैं॥१॥

जिनके कुल में जन्मे, उनका भी बड़ा नाम है

सुराणा जैसे कुल का, किया बेड़ा पार हैं॥२॥

जिनकी गुरुणी सरदार कुंवरजी, उनका भी बड़ा नाम है।

आगमों का ज्ञान दिया, किया बेड़ा पार हैं॥३॥

राजस्थान मेवाड़ महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश

ग्राम ग्राम विचरण कर किया जीवों का उद्धार है ॥४॥

* * * * *

महासती चम्पा कुंवर जी म. की वन्दना

• प्रहलाद नारायण वाजपेयी, उदयपुर (राज.)

तप से तपाया तन, मन को किया है जय,

एक वैराग्य किया जिनका अधार है।

कर्म का विरक्तता से नित्य क्षय होता रहा,

श्वास श्वास साधना से सत्य का सिंगार है॥

दिव्यता में भव्यता निहारती अलेप रही

आत्म रूप आप का अपार आर पार है।

सतियों में महासती चम्पा है तपःस्वरूप

कवि का प्रणाम नित्य जिन्हें बार बार है॥

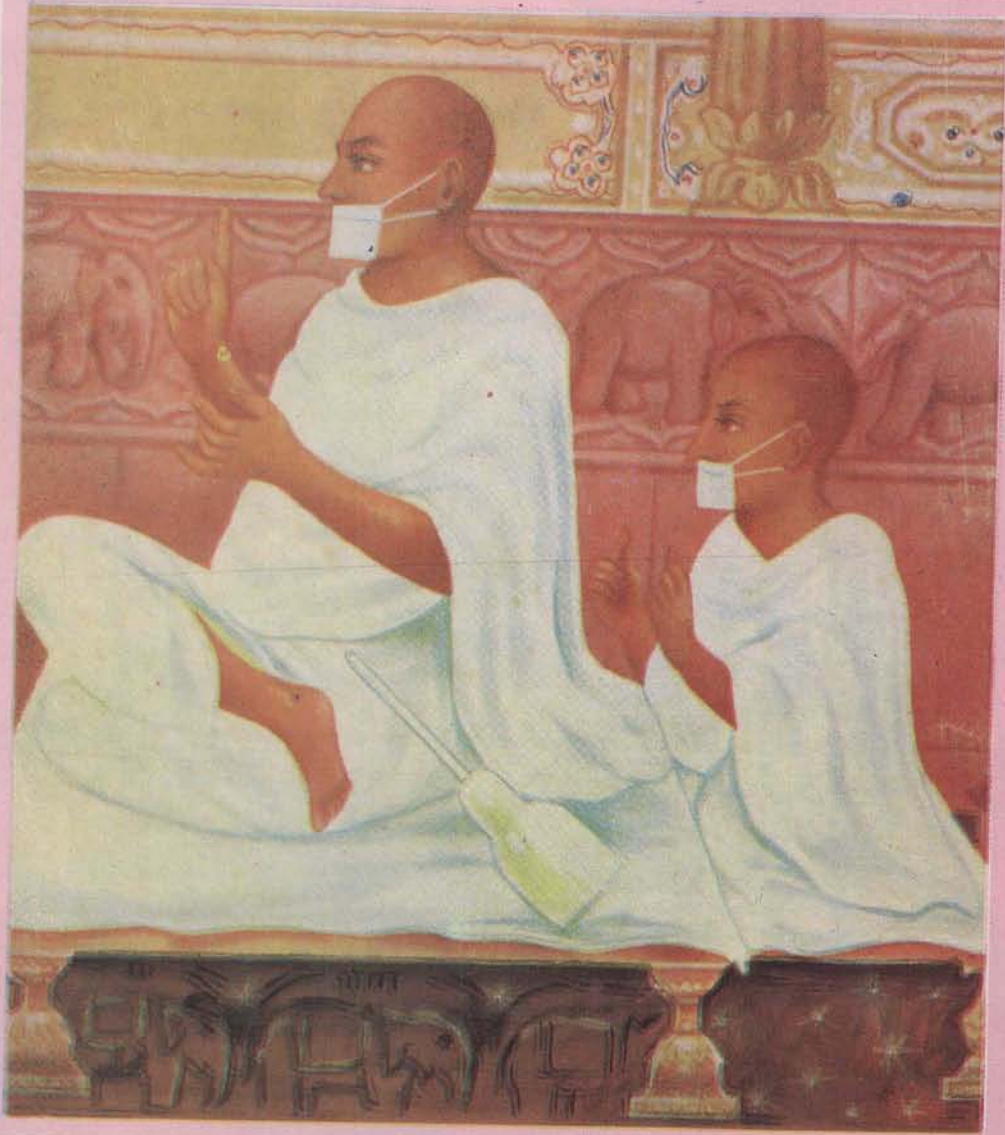
* * * * *

(८८)

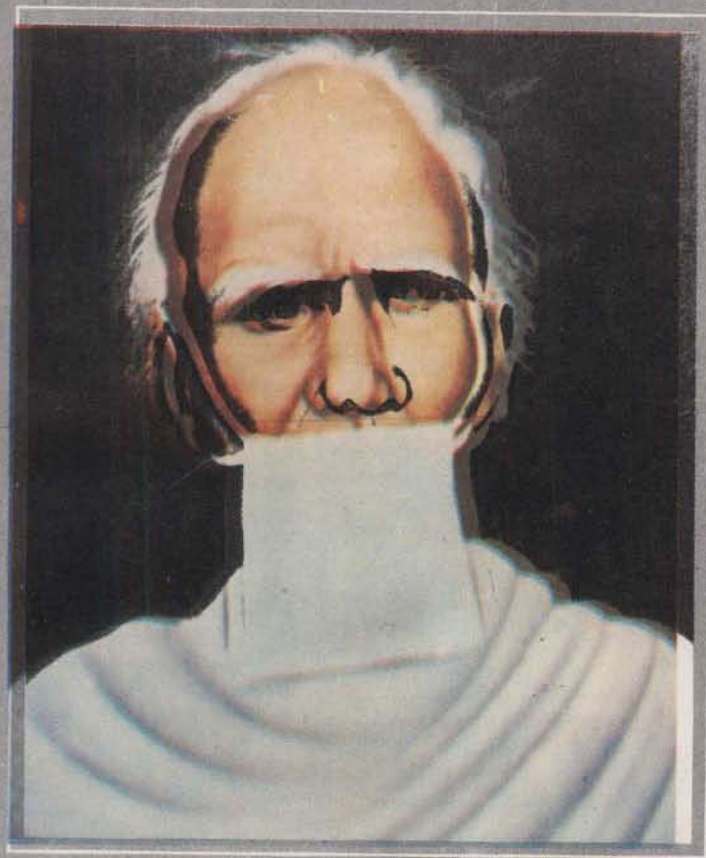
महासती द्वय स्मृति ग्रंथ



गुरु परम्परा



● आचार्य श्री जयमल जी म. सा. ● ● मुनि श्री रायचन्द्रजी म. सा. ●



उम पाचसक-स्वामीजी (जैनवास्तुजी) मंगलमा

मुयालाबां (अमिनीभावाजी) मंगलमा 'पधुसुके'

जन्म

दीक्षा

स्वयंसेवा

जसमा

दीक्षा

स्वयंसेवा

मंगलमा १९९९/९/१९/९९

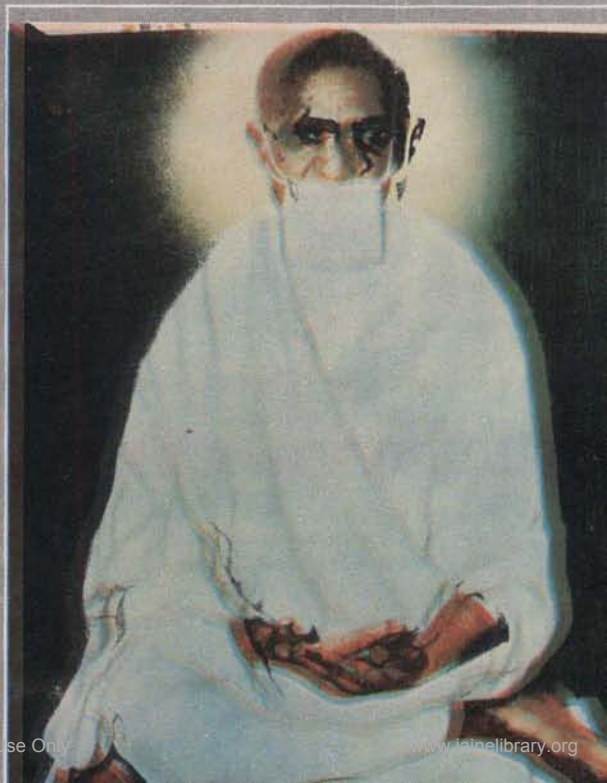
मंगलमा १९९९/९/१९/९९

मंगलमा १९९९/९/१९/९९

मंगलमा १९९९/९/१९/९९

मंगलमा १९९९/९/१९/९९

मंगलमा १९९९/९/१९/९९



गुरु परम्परा

(आचार्य श्री जयमलजी म. सा. की
परम्परा के सन्दर्भ में)

स्थानकवासी जैन आचार्य-परम्परा (जय गच्छ के परिप्रेक्ष्य में)

• डॉ. तेजसिंह गौड़

धर्मवीर लोकाशाह

पन्द्रहवीं शताब्दी का समय जैन धर्म के इतिहास में अत्यन्त उथल-पुथल पूर्ण रहा। इस समय तक संयम में शिथिलाचार व्याप्त हो चुका था। धर्म-ग्रन्थ (शास्त्र) भण्डारों में बन्द कर दिए गए थे और गृहस्थ के लिए शास्त्र-पठन निषिद्ध था। अतः शास्त्र सम्मत साध्वाचार की जानकारी का अभाव-सा हो गया था। यतियों ने अपने आपको सुविधा-भोगी बना लिया था और साधारण जैन-जन में यह बात प्रचारित कर दी गई थी कि भगवान महावीर के कथनानुसार इस समय (पंचम आरे में) शुद्ध संयम न तो हैं और न होगा। यह संयोग ही था कि लोकाशाह को आगम-ग्रंथों की प्रतिलिपियां उतारने का कार्य मिला, जिससे उन्हें मालूम हुआ कि साधुओं में कितना शिथिलाचार व्याप्त हैं? वास्तविक साध्वाचार का उन्हें बोध हुआ और उन्होंने शिथिलता के विरुद्ध क्रांति का बिगुल बजा दिया।

क्रांतिकारी वीर लोकाशाह के जीवन-वृत्त संबंधी सामग्री पर इतिहासकार एकमत नहीं हैं। इनका जन्म सिरौही से आठ मील दूर अणहट्टवाड़ा^१ में वि.सं. १४७२ (कहीं-कहीं वि.सं. १४८२ का भी उल्लेख मिलता है।) की कार्तिक पूर्णिमा के दिन हुआ। आपके पिता हेमाशाह दफ्तरी मेहता थे तथा माता का नाम केसरबाई था। बचपन में अपनी स्मरण शक्ति, विवेचन-शक्ति तथा मोती के समान सुन्दराक्षरों के लिए आप अपने अध्यापकों के अत्यन्त प्रिय रहे। युवा हुए तो अपने मधुर-व्यवहार से व्यापार में भी आपने वृद्धि की तथा व्यापारियों में लोकप्रिय बने। सिरौही के श्री ओधवजी शाह की सुपुत्री सुदर्शना से आपका गठबंधन हुआ। पूर्णचंद नामक पुत्र रत्न हुआ। थोड़े समय पश्चात् ही पहले आपकी मातुश्री फिर पिताश्री काल कवलित हुए।

सिरौही राज्य की राज्य-व्यवस्था बिगड़ने एवं वहां अकाल पड़ जाने पर आप अहमदाबाद चले आये। अहमदाबाद में जौहरी का व्यवसाय अपनाया एवं ख्याति प्राप्त की। एक ही समान रूप, रंग वर्ण के दो मोती अहमदाबाद के बादशाह मुहम्मदशाह के दरबार में आए। पहचान के लिए आप भी गए। सभी जौहरियों ने देख-परख कर दोनों को खरा बताया पर आपने उसमें से एक को खरा व एक को नकली (खोटा) बताया। परीक्षा करने पर आपकी बात सही निकली तब से आपकी विशेष प्रसिद्धि हुई एवं आप दरबारी जौहरी बन गए।

१. कहीं "अरहट्टवाड़ा" का उल्लेख भी मिलता है।

उन्हीं दिनों चांपानेर के रावलराजा ने मुहम्मदशाह पर आक्रमण किया। मुहम्मदशाह के पुत्र कुतुबशाह ने अवसर देखकर अपने पिता को जहर खिलाकर मरवा दिया। इसमें लोकाशाह के हृदय पर गहरा आघात लगा। संसार के प्रति उनमें उदासीनता आ गई और वे अहमदाबाद छोड़ पाटण चले आए। यहां वे अपना समय यतियों एवं साधुओं के साथ बिताने लगे। उन्हें जिज्ञासु देखकर पाटण के यति सुमति विजय जी ने धर्म के संबंध में बहुत-सी बातें बतानी प्रारंभ की। यति ज्ञानसुन्दर जी ने उनके अक्षरों की मन मुग्धकारी बनावट देखकर उन्हें दशवैकालिक सूत्र की नकल करने का कार्य सुपुर्द किया। वे नकल करने लगे। जैसे-जैसे उन्होंने सूत्र को पढ़ा उन्हें लगा कि वीर प्रभु की आज्ञा कुछ और है जबकि इस समय प्रचलित यति व श्रमण-जीवन कुछ और ही है। आवश्यकता थी सूत्र-प्रमाण की; सूत्र-शास्त्र सब यतियों के भण्डारों में पड़े थे।

उन्होंने दशवैकालिक सूत्र की दो प्रतियाँ नकल की। उसके बाद भी जो-जो सूत्र उन्हें प्रतिलिपि हेतु दिए गए, उनकी दो-दो प्रतियाँ तैयार कर, एक-एक प्रति अपने पास रखी। बहुत मनन-मंथन के बाद उन्होंने यह तय किया कि आज को कुछ जैनधर्म के नाम पर हो रहा है, उसमें पाखण्ड, द्वेष एवं आडम्बर ने घर कर लिया है। धर्म के नाम पर अधर्म का सेवन किया जा रहा है। उन्होंने उसका विरोध प्रारंभ कर दिया और अपने प्रचार के आधार में आगम-वाक्यों का प्रमाण देने लगे-“अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह रूप पंच महाव्रतों का पालन ही मुनिधर्म है। जड़-साधना एवं शिथिलाचार का धर्म में कोई स्थान नहीं है। अज्ञानी जीवों का अन्ध श्रद्धा के साथ खिलवाड़ करना धर्म नहीं है। आज के जो मतिहीन-मूढ़ मुनिवेषधारी होकर लोकारुढ़ बन हिंसा में धर्म बताते हैं, उनसे हमें बचना है।”

लोकाशाह के शास्त्र-सम्मत जिनधर्म के प्रचार-प्रसार का लोगों पर यथोचित प्रभाव पड़ा। उनके समर्थक बढ़ते गए। यति-समुदाय में खलबली मची। उन्होंने लोकाशाह के विरुद्ध अनर्गल प्रचार प्रारंभ कर दिया किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। यति ज्ञानसुन्दर जी को ज्ञात हुआ तो उन्होंने आगम की प्रतियाँ बनवाना बंद कर दिया पर तब तक लोकाशाह आगम रहस्य जान चुके थे। अहमदाबाद एवं पारण दोनों स्थानों पर लोकाशाह ने सत्य-आगम-धर्मप्रसार का कार्य बढ़ाया। अनेक दिग्गज यतियों, विद्वान-श्रावकों एवं साधुओं से वाद-विवाद हुए। सभी लोकाशाह के शास्त्र-सम्मत प्रमाणों एवं तर्कों से अत्यन्त प्रभावित हुए। उनके समर्थक निरन्तर बढ़ते ही गए। संवत् १५२८ में अणहिलपुर (पाटण) संघ के बड़े नेता लखमशी भाई आपको समझाने आए। कई घंटों की जैनधर्म संबंधी अनेक विषयों-पक्षों पर बहस हुई और अन्त में लोकाशाह को समझाने के स्थान पर वे स्वयं लोकाशाह से सत्यधर्म समझ कर, ग्रहण कर चले गए। सम्पूर्ण जैन समाज में इससे खलबली मच गई।

इस घटना के पश्चात् लोकाशाह ने साधु के समान जीवन बिताना प्रारंभ कर दिया।^२ उन्हीं दिनों सिरोही, अरहट्टवाड़ा, पाटणा व सूरत के चार संघ यात्रा को निकले। वर्षा की अधिकता से उन्हें अहमदाबाद रुकना पड़ा। यहां रहकर उन्होंने लोकाशाह से धर्म-चर्चा की एवं विचारों का आदान-प्रदान किया। चारों संघों के संघपतियों-नाग जी, दलीचंद जी, मोतीचंद जी और शंभुजी तथा उनके अन्य अनेक साथियों पर लोकाशाह के विचारों का ऐसा प्रभाव कायम हुआ कि इन चारों संघपतियों सहित कुल ४५

२. कुछेक विद्वानों के अनुसार साधु बन गए थे, ऐसा उल्लेख मिलता है पर यह किसी भी तरह से प्रमाणित नहीं हो पाता।

यात्रियों ने आगम सूत्र-परम्परा के अनुसार सत्य-श्रमण-धर्म को स्वीकार किया। ऐसे अनेक श्रमण बने और कालान्तर में लोकाशाह की मान्यता मानने वाले इस संघ का नाम लोकागच्छ पड़ा। संवत् १५३१ में कई साध्वियाँ जी भी दीक्षित हुईं। इस समय तक लोकागच्छ सम्प्रदाय में ४०० से अधिक साधु-सती तथा लाखों की संख्या में श्रावक-श्राविकाएं बन गए थे।

शिथिलाचारियों के लिए यह असह्य था। उन्होंने लोकाशाह के मतानुयायी संतों को तरह-तरह के कष्ट देने शुरू किए। कहीं-कहीं तो इन श्रमणों को गोचरी तक नहीं मिल पाती थी। वह जमाना ही यतियों के श्री-पूज्यों का था। लोकाशाह दिल्ली गए और वहां के श्री-पूज्यों को भी सच्चे-धर्म का बोध कराया। दिल्ली में भी अनेक शिष्य बने। विरोधियों का यह क्यों सुहाने लगा...? अलवर में तीन दिन (तेले) के पारणों में उनको विषाक्त आहार गोचरी में बहराया गया, उसी से उनके प्राण-पंखेरू उड़ गए। आपके स्वर्गवास की तिथि पर भी मतैक्य नहीं है? इस पर भी चैत्र शुक्ला एकादशी वि.सं. १५४६ को इनका देहावसान अधिक विश्वसनीय लगता है।

लोकाशाह की मृत्यु के पश्चात् लोकागच्छ स्थानकवासी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उनकी लगाई सत्यधर्म की ज्योति का प्रभाव लगभग एक सौ वर्ष तक चला। किन्तु फिर शिथिलाचार फैलने लगा। कालान्तर में पांच क्रियोद्धारक मुनिराजों ने समय-समय पर इस शिथिलाचार को मिटाया। श्री जीराज जी महाराज, श्री लवजी ऋषि जी महाराज, श्री धर्मसिंह जी महाराज, श्री धर्मदास जी महाराज तथा हरजी ऋषि जी महाराज; इन पांचों क्रियोद्धारकों की अलग-अलग परम्पराएं चलीं।^३ इन क्रियोद्धारकों में से श्री धर्मदास जी के पट्ट शिष्य श्री धन्ना जी महाराज प्रभावी आचार्य हुए। श्री धन्ना जी के पट्टघर श्री भूधर जी हुए और श्री भूधर जी महाराज के पट्ट शिष्य पूज्य श्री जयमल जी हुए। श्री जयमल जी अपने समय के क्रांतिकारी युगपुरुष थे। अतः आपके नाम से एक अलग संप्रदाय चला जो आज भी विद्यमान है।

क्रियोद्धारक श्री धर्मदास जी महाराज

आपका जन्म अहमदाबाद के पास सरखेज नाम के गांव में वि.सं. १७०१ की चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन हुआ था। जाति के आप भावसार थे। पिता का नाम था श्री जीवणभाई पटेल और माता का हीराबाई।^४

जाति के पटेल-भावसार होने पर भी आपकी श्रद्धा जैनधर्म में थी और वहां के सुप्रसिद्ध यति तेजसिंह के यहां आपका आना-जाना था। बालक भी इन्हीं यति के पास पढ़ने लगा। बचपन से आपकी रुचि धर्म में पड़ गई थी। अल्पायु में ही आपने अनेक धर्मशास्त्रों एवं दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। आपकी बुद्धि विकसित एवं तीव्र थी। कई बार यति लोग आपके तर्कों से चौंक पड़ते थे।

माँ-बाप चाहते थे, आपकी शादी करना पर आप पर कुछ और ही रंग छा रहा था। आपने अपने मन की बात पिताश्री से कही और सगाई-विवाह आदि न करने का आग्रह किया। एक बार आपका मिलन 'पात्रिया-पंथ' के अग्रणी नेता श्री कल्याण जी भाई से हुआ। आपने पात्रिया-पंथ स्वीकार कर लिया।

३. देखिए-जैन आचार्य चरितावली: आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज।

४. वि.सं. १६९० के आसपास श्री प्रेमचन्दजी श्रीश्रीमल के यति कुंवर जी से मतभेद होने पर इस पंथ की स्थापना हुई। ये शिथिलाचार के विरुद्ध थे तथा घर-घर जाकर भिक्षा लाने हेतु हाथ में एक पात्र रखते थे, अतः 'पात्रिया' कहलाए। ये लाल वस्त्र पहनते थे, तप-त्याग और संयम की आराधना करते थे पर इनकी मान्यता थी कि महावीर प्रभु के शासन में सच्चा साधु कोई हो ही नहीं सकता। चौदह पूर्व के और बारहवें अंग के विच्छेद के साथ साधुचर्या का भी लोप हो गया है।

दो वर्ष तक उनके साथ रहे किन्तु सत्यधर्म की झलक उन्हें नहीं मिल पाई। वि.सं. १७१६ में आप अहमदाबाद चले आए। यहीं आप लवजी ऋषि की परम्परा के श्री सोम जी ऋषि और कान जी ऋषि से भी मिले। व्याख्यान सुने आगम सुना प्रभावित भी हुए पर कुछ मान्यताओं में मतभेद होने से दीक्षा लेने की इच्छा होने पर भी वे उनसे दीक्षा नहीं ले सके।

उस समय शास्त्रज्ञाता, साहित्यरुष्टा एवं प्रखर पंडित क्रियोद्धारक श्री धर्मसिंह जी भी अहमदाबाद में थे। धर्मदास जी उनसे भी मिले, उनसे वे प्रभावित हुए पर कुछ मान्यता में भेद पड़ता था अतः बादशाहवाड़ी में आश्विन शुक्ला एकादशी सोमवार को स्वयं ही दीक्षित हो गए और अष्टम तप किया। पारणे की गोचरी में एक कुम्हार के घर उन्हें राख बहराई गई तथा एक अन्य घर से छाछ मिली। धर्मदास जी ने सम्भाव से छाछ में राख मिलाकर पारणा किया। दूसरे दिन उन्होंने यह वृत्तान्त महान् क्रियोद्धारक पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज को सुनाया। धर्मसिंह जी ने कहा-जिस प्रकार प्रत्येक घर में राख होती है, वैसे ही तुम्हारा श्रमणा-परिवार चारों ओर फैल जाएगा, हर गांव में तुम्हारे भक्त होंगे पर जैसे छाछ से दूध फट जाता है, वैसे ही तुम्हारे होने वाले भक्तों में आपस में फूट रहेगी, मतभेद रहेंगे, मनमुटाव रहेगा।

उज्जैन श्री संघ ने आपको वि.सं. १७२१ में बसन्त पंचमी (माघ शुक्ला पंचमी) के दिन आचार्य पद प्रदान किया। उस समय आप केवल २१ वर्ष के थे एवं तीनों आचार्यों (लवजी ऋषि जी की संप्रदाय के आचार्य श्री कान जी, श्री धर्मसिंह जी एवं श्री धर्मदास जी) में सबसे छोटी उम्र के थे। आपके शिष्यों की संख्या ९९ थी। इतना बड़ा-मण्डल उस समय किसी का नहीं था।

‘धार’ में आपके एक शिष्य ने आमरण संथारा ग्रहण कर लिया। कुछ समय बाद उस शिष्य का आत्मबल पीछे हटने लगा और धारणा बदल गई। वह अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने के लिए तैयार हो गया। जब धर्मदास जी को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो आपने कहलवाया कि मेरे आने तक प्रतिज्ञा पर स्थिर रहना।

उग्र विहार कर आप ‘धार’ पधारे। रास्ते में निर्दोष आहार-पानी भी नहीं मिला। धार पहुंच कर सभी तरह से शिष्य को समझाया, इस पर भी जब वह नहीं माना तो आपने स्वयं ने संथारा ग्रहण कर लिया^५। अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री मूलचंद जी महाराज को बुलाकर आपने साधु-व्यवस्था समझा दी।

आषाढ़ शुक्ला पंचमी संवत् १७७२ को आप स्वर्गवासी हुए^६। इस प्रकार बलिदान का एक नया आदर्श आपने समाज के सम्मुख रखा।

उनके पट्ट-शिष्य श्री मूलचंद जी महाराज ने सभी शिष्यों को एकत्र कर धर्मदास जी की इच्छानुसार बाईस टोलियों में विभक्त किया, सभी के प्रचार क्षेत्र नियत किये और आदेश दिया कि वे जाएं और अपने-अपने क्षेत्रों में अधिक से अधिक श्रमण बनाये एवं चरित्रवान् श्रावक-समाज का निर्माण करें। तभी से स्थानकवासी समाज में यह ‘बाईस-सम्प्रदाय’ नाम चला है। इस नई व्यवस्था के अनुसार मारवाड़, थली पट्टी तथा मेवाड़-मेरवाड़ा का क्षेत्र पूज्य आचार्य श्री धन्ना जी म.सा के हिस्से में आया।

५. हमारा इतिहास, १५९-६०

६. स्वर्णारोहण तिथि पर मतैक्य नहीं, पट्टवली प्रबन्ध-संग्रह-आ.हस्तीमल जी म.पु. १५० पर १७५९ बताया है।

आज इन बाईस-सम्प्रदायों में से कितनी और कौन-कौन सी सम्प्रदाएं विद्यमान हैं, यह कहना बड़ा कठिन है। अनेक पट्टवलियों में जिन पांच शिष्यों की परम्पराओं का उल्लेख मिलता है, उनके नाम हैं—(१) श्री धन्ना जी महाराज, (२) श्री मूलचंद जी महाराज, (३) श्री छोटे पृथ्वीराज जी महाराज, (४) श्री मनोहरदास जी महाराज और (५) श्री रायचंद जी महाराज। इनके अतिरिक्त दक्षिण एवं पंजाब की कई परम्पराएं भी विद्यमान हैं।

श्री धर्मदास जी के प्रमुख शिष्य श्री धन्ना जी ने मारवाड़ा में जिन-धर्म का खूब प्रभाव फैलाया। श्री धन्नाजी के प्रमुख शिष्य श्री भूधर जी हुए।

आचार्य श्री धन्ना जी महाराज

सांचोर के कामदार श्री बाघ जी मेहता के सुपुत्र थे, श्री धनराज जी। बचपन बीतने पर आपकी सगाई हुई पर वैराग्योत्पत्ति के कारण आप आत्म-ज्ञान की खोज में यतियों की एक शाखा “पोतिया बंद” के प्रभावी क्रियाधारी श्रावक श्री पूनमचंद जी गुरांसा के पास आए। धर्म अभ्यास चला पर उन्हें लगा कि जिस आत्मधर्म की खोज में वे हैं वह यह धर्म नहीं है। उस समय आचार्य धर्मदासजी गांव-गांव में धर्मप्रचार कर रहे थे। धनराज को जैसा सिखाया गया था, उसी के अनुरूप वे इन साधुओं के विरोधी थे और उन्हें ढोंगी-पांखड़ी मानते थे पर पोतियाबंद-पंथ की यह दलील कि ‘श्रावकाचार के आगे कुछ नहीं है’-उन्हें मान्य नहीं था। जब धर्मदास जी धनराज जी के गांव पहुंचे तो धनराज जी से नहीं रहा गया, वे भी व्याख्यान सुनने चले गए। व्याख्यान के पश्चात् उनका आचार्य जी से वार्तालाप हुआ। धनराज जी ने अपनी मान्यताएं जो उन्हें सिखाई गई थीं, आचार्य जी के सम्मुख रखीं। आचार्य जी ने उनको सत्यधर्म समझाया। आप समझ गए और आज्ञा लेकर आपके पास संवत् १७२७ में दीक्षित हुए। आपने तप पर अधिक बल दिया। एकान्तर तो चालू ही रखा; बेले, तेले और इससे भी अधिक कठिन तप किया।

वर्षों तक आप धर्मदास जी के साथ रहे फिर आपकी योग्यता, प्रतिभा एवं ज्ञान-दर्शन चारित्र की श्रेष्ठता देखकर आपको स्वतंत्र धर्म-प्रचार तथा शिष्य-परिवार करने की स्वीकृति प्रदान कर दी गई। पंजाब क्षेत्र के प्रभावी आचार्य श्री अमरसिंह जी से भी आपकी भावभीनी गहरी मुलाकात जोधपुर में आसोप की हवेली में हुई। दोनों की विचारणाओं का अंतर मिटा और दोनों ने एक साथ गोचरी कर भविष्य में एक ही गच्छ में रहने का निर्णय लिया। दोनों आचार्यों को मिलाने पर जोधपुर राज्य के दीवान भण्डारी खींवसी जी का बड़ा हाथ था। संवत् १७८४ की चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन आपने काल-धर्म समीप जानकर ‘समाधि-मरण’ की इच्छा प्रकट की। सभी शिष्यों ने कहा—“आप स्वस्थ हैं, ऐसा क्यों कहते हैं? आपने फरमाया—“तुम लोग नहीं जानते, मैं जान गया हूँ। अब तो यह धम्मा अन्न खाए तो धन्ना अन्न खाए।”

उन्होंने स्वयं ही संधारा ग्रहण किया। विरोधी भला उन्हें यहां भी क्यों छोड़ते? भड़का दिया राज्य-कर्मचारियों को कि यह तो आत्महत्या है। राज्य-कर्मचारी दौड़े हुए स्थानक आए। उनके पूछने पर सभी प्रश्नों का सन्तोषजनक समाधान कर दिया गया। आचार्य धन्ना जी ने कहा—“वैसे भी आज से मेरे बेले की तपस्या है, मुझे अब इस देह से कोई मोह नहीं है। मैं समाधि ले रहा हूँ। चैत्र शुक्ला दशमी को दूसरे प्रहर इस नश्वर-देह का त्याग कर मेरा आत्मा अन्यत्र चला जाएगा।”

संवत् १७८४ में चैत्र शुक्ला दशमी के दिन जैसा कि आचार्य श्री ने कहा, उनकी आत्मा का परलोक गमन हुआ। वस्तुतः वे एक तपोधनी एवं पहुंचे हुए सिद्ध-सन्त थे। आपने अनेक शिष्यों में श्री भूधर जी महाराज बड़े ही यशस्वी शिष्य हुए।

आचार्य श्री भूधर जी महाराज

नागौर निवासी श्री माणकचंद जी मुणोंत की धर्मपत्नी रूपादे की पावन-कुक्षि से १७१२ सं. की विजयादशमी (आश्विन शुक्ला दशमी) के दिन एक भाग्यवान बालक ने जन्म लिया। आप दिखने में अति सुन्दर, बुद्धि से प्रतिभा-सम्पन्न एवं शक्ति-शौर्य के भण्डार थे। भाग्य ने बचपन में ही आपके सिर से माँ-बाप का साया उठा लिया। आपने अपनी रुचि के अनुसार सैनिक शिक्षा प्राप्त कर उसमें निपुणता हासिल की एवं योग्यता के बल पर सेना में उच्च स्थान पाया। कुछ समय पश्चात् आज सोजत शहर में कोतवाल के पद पर नियुक्त हुए।

आपके सद्गुणों, आपकी योग्यता, प्रतिभा एवं आपके शौर्य से प्रभावित होकर सोजत निवासी शाह दल्ला जी रातड़िया ने अपनी सुन्दर, सुशील एवं गुणसम्पन्न कन्या का विवाह आपके साथ कर दिया। सोजत में कोतवाल-पद पर नियुक्त होते ही आपने डाकू-सफाया अभियान चलाया और अब तक डाकुओं से आंतकित सोजत की जनता को आंतक-मुक्त किया। इससे श्री भूधर जी सोजत शहर में अधिक लोकप्रिय हो गए तथा चोर-डाकुओं में श्री भूधर जी का भय छा गया। निकटस्थ ग्राम-नगर के ठाकुर, जमींदार आपकी बड़ी इज्जत करने लगे।

एक बार संवत् १७४० में कंटालिया ग्राम पर ८४ डाकुओं ने धावा बोल दिया। सभी डाकू ऊँट पर असवार थे। जैसे ही आपको इसकी सूचना मिली आप तुरन्त अपनी प्रिय ऊंटनी (सांडनी) पर सवार होकर फौजी टुकड़ी के साथ कंटालिया की ओर चल पड़े। तीव्र गति से चलते हुए ऊंटनी को दौड़ाते, हवा से बातें करते श्री भूधर जी शीघ्र कंटालिया के निकट पहुंच गए। डाकुओं को उनके आने की खबर मिली तो वे भय से भाग खड़े हुए। “भागो, भूधर आया।”-ये शब्द थे जो डाकुओं के मुख से उस समय निकले। श्री भूधर जी ने उनका पीछा किया। कुछ ही पलों में वे उनके बराबर पहुंच गए। उनके हाथ में तलवार चमक उठी। भूधर का मुकाबला डाकू क्या कर पाते? उन्होंने चाल चली और उनकी प्रिय सांडनी की गर्दन पर दूर से कटार फैकी, कटार आई और सांडनी की गर्दन में खुप गई।

कटी गर्दन लटक गई पर सांडनी दौड़ती रही। बड़ा मार्मिक दृश्य था। डाकुओं के तो होश ही गायब हो गए। कई डाकू घबरा कर, ऊंटों से गिर गए; उनके साथी उन्हें ऊंटों से कुचलते चले गए। अंत में उस सांडनी की गति धीमी हुई। वह रुकी, बैठी भूधर नीचे उतरे और सांडनी ने दम तोड़ दिया। अपने अत्यन्त प्रिय एवं वफादार पशु की मौत ने भूधर जी के हृदय में हाहाकार मचा दी। वे घर पहुंचे, पर मन को चैन कहाँ; नौकरी पर गए, वहां भी मन अशांत! रह-रहकर उनकी आंखों के समक्ष गर्दन कटी सांडनी, दम तोड़ती सांडनी खून से लथपथ सांडनी घूमने लगी। आपने जोधपुर नरेश की सेवा में अपने कोतवाल-पद का त्याग-पत्र भेज दिया और अपना अधिकांश समय आध्यात्मिक चिन्तन में बिताने लगे। संसार की असारता, नश्वरता, अवश्यंभावी मृत्यु आदि पर गहन चिन्तन-मनन होने लगा। वे अब धर्म-स्थानकों में फिरने लगे, योगी-यती एवं फकीरों की संगति करने लगे। सोजत में पोतियाबन्द यतियों का बड़ा प्रभाव था। भूधर जी की पत्नी उन्हें मानसिक शान्ति के लिए इन यतियों के पास ले गई। हवा का रुख देखकर उन्होंने कह दिया-“इन पर सांडनी की आत्मा का ओछाया है।”

भूधर जी इन पोतिया-बन्द गुरांसा की नेत्राय में रहने लगे। किन्तु वहां सच्चा तप, त्याग, चारित्र कहाँ था? वहां तो मंत्र-तंत्र की साधना, गादी प्राप्त करने के लिए षडयंत्र, धन-प्राप्ति एवं उसके उपभोग

के अनेक छलछंद तथा पैसों के लोभी मां-बापों से कच्ची उम्र के बच्चों की खरीदी आदि ऐसे-ऐसे घृणित कार्य उन्होंने देखे कि उनके मन की अशान्ति घटने के बजाय बढ़ने लगी। उनकी आत्मा सत्यधर्म की खोज में तड़पने लगी।

इन्हीं दिनों आचार्य श्री धन्ना जी ग्रामानुग्राम विचरण करते वहां पधारे। उनका तप-त्याग जबरदस्त था। बेल-बेलों की तपस्या, पारणे में चार विंगय का त्याग; अपवाद में घृत में तली पुड़ी के अतिरिक्त घृत का भी त्याग था। भूधर जी शान्ति की खोज में उनके पास भी गए। यहां गादी न थी, पैसों की मारामारी न थी, छल-प्रपंच नहीं था और किसी तरह का लोभ भी नहीं था। भूधर जी अत्यन्त प्रभावित हुए। कई दिन आपके साथ रहे। उनकी आत्मा को शान्ति मिली। आपने पूज्य धन्ना जी के पास सं. १७७७ में शुद्ध आर्हती दीक्षा अंगीकार की।^७ एक मान्यतानुसार इनकी दीक्षा सं. १७५१ फाल्गुन शुक्ला पंचमी को हुई।^८

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आप ज्ञान व संयम की आराधना में लीन हो गए। आगमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। अपने गुरु की सेवा भी मन लगाकर की। गुरुदेव ने इन्हें तपाराधना का महामंत्र सिखाया।

आयावयाही वयसोगुमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।

छिन्दाहि दोसं विणाएज्ज रांग, एवं सुही ही हिसि संपराए॥

“आतापना लो (तप करो) और सुकुमारता त्यागो; इच्छाओं का दमन करो ताकि दुःख का स्वयं दमन हो। द्वेष का छेद करो और राग का विनाश करो; इस प्रकार तुम संसार में सच्चे सुखी बन सकते हो।”

श्री भूधर जी महाराज ने उग्र तपाराधन किया। भंयकर गर्मी में वे सूर्य की आतापना लेते, कड़कड़ाती सर्दों में निर्वस्त्र (चदर रहित) रहते। उग्र तपस्वी के नाम से आप शीघ्र विख्यात हो गए। आचार्य श्री धन्ना जी ने आपको सुयोग्य जानकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

आचार्य-पद प्राप्ति के पश्चात् एकदा आप कालू ग्राम पधारे। साधुमार्गों, सरावगी एवं अन्य सम्प्रदायों के बीच समझौता करा कर एकता स्थापित की। सरावगियों (दिगम्बरों) के संशयों को सचोट तर्क-विधान से दूर किया।

पूज्य भूधर जी महाराज अत्यन्त क्षमाशील थे और अपकार के बदले भी उपकार करना ही धर्म समझते थे। कालू ग्राम में एक बार जब आप नदी की बालू-रेत में सूर्य-ताप एवं भंयकर ऊष्ण-बालू की आतापना ले रहे थे कि उनके एक विद्वेपी नारायण पंडित ने एक जाट के द्वारा मुनि श्री के सिर पर लकड़ी की जड़ी हुई मूठ से घातक प्रहार करवाया। संत भूधर जी लहुलुहान हो गिर गए, जाट भाग गया, पंडित पकड़ा गया। यह नारायण पंडित काशी से पंडित बन कालू आए थे। प्रारंभ में उनके आख्यान व व्याख्यान में लोगों की उपस्थिति अच्छी थी, भेंट-दक्षिणा भी भरपूर आती थी, मान-सम्मान भी था पर श्री भूधर जी के कालू आने के बाद यह समाप्त हो गया। जनता भूधर जी की ओर आकर्षित हो गई। पंडित तिलमला उठा, भूधर जी से शास्त्रार्थ करने गया पर अपनी हंसी उड़वाकर आया, तब से उसके मन में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। पूज्य भूधर जी पर प्रहार करवाने के पीछे यही प्रतिशोध था।

७. जयध्वज ७१९ पृष्ठ।

८. युवाचार्य मधुकरमुनि-स्मृति-ग्रंथ-१९ ।

उस समय दिल्ली सल्तनत का फरमान था कि किसी मुंहपति-धारी साधु को कहीं कोई कष्ट न हो; जो उन्हें कष्ट दें, उन्हें कड़ी सजा दी जाए। नारायण पंडित को भी भयंकर सजा दी, कालू के हवलदार ने। पूज्य भूधर जी महाराज जब होश में आए और उन्हें पता चला तो उनका दयालु हृदय द्रवित हो गया। आपने कहा-“नारायण पंडित को छुड़ाओं, अन्यथा मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा।” गांव वालों के दबाव से एवं उनकी सम्मिलित जिम्मेदारी पर नारायण पंडित को छोड़ दिया गया। यहीं से पंडित जी का हृदय-परिवर्तन हुआ और कालान्तर में यह काशी का पंडित पूज्य श्री भूधर जी म.सा. का प्रिय-शिष्य मुनि श्री नारायणदास बना।

पूज्य भूधर जी महाराज का एक चातुर्मास दिल्ली में हुआ था। आपके ज्ञान, प्रतिभा एवं प्रवचन-पटुता से दिल्ली में जैनधर्म की पताका फहराने लगी। जोधपुर, जयपुर आदि मारवाड़ के कई नरेश जब भी दिल्ली आते तो पूज्य भूधर जी के दर्शनार्थ जाते, व्याख्यान सुनते। इन्हीं नरेशों ने बादशाह मुहम्मदशाह को पूज्य भूधर जी का भक्त बनाया तथा शाहजादा तो कई बार व्याख्यान सुनने भी गया। दिल्ली के चातुर्मास में आपने सांवत्सरिक पर्व पर समस्त प्रकार की हिंसा बन्द करवाई, कत्लखाने बन्द रहे। यहीं श्रेष्ठीवर्य श्री सूरजमल जी ने दीक्षा धारण की।

आचार्य श्री के प्रवचन प्रभावशाली एवं सार्वभौम होते थे। इन प्रवचनों में जो रसानुभूति होती, उससे लोगों में धर्मभावना होती। जैन-समुदाय के अतिरिक्त जैनैतर समुदाय भी इन प्रवचनों में आते। बहुत से राजा, महाराजा, दीवान, श्रेष्ठीवान आते। शहजादा एवं बादशाह भी आते। अपने समुपदेशों से आपने अनेक ठाकुरों, जमींदारों, जागीरदारों, राजाओं व महाराजाओं को मांस-मदिरा से विरक्त किया, उनके नाच-मुजरे छुड़वाए, शिकार के त्याग करवाए और इस तरह जैनधर्म को दीप्तिमान किया।

आपके नव शिष्य थे। सभी शिष्य प्रतिभा-सम्पन्न तेजस्वी एवं धर्म प्रभावक थे। श्री नारायण दास जी, श्री रूपचन्द जी, श्री गोरधन जी, श्री जगरूप जी, श्री रतनचन्द जी, श्री रघुनाथ जी, श्री जेतसी जी, श्री जयमल जी, श्री कुशलो जी-इन नवशिष्यों में चार शिष्य अत्यन्त ही विख्यात एवं गरिमामय हुए। इन चारों का विवरण निम्न दोहे में इस प्रकार मिलता है-

धन रघुपति, धन जेतसी, धन जयमल, कुशलेश।

चारों शिष्य तणा, चात्रा देश-विदेश॥^९

विक्रम संवत् १८०४ विजयादशमी के दिन आपने नश्वर-देह से मोह-ममत्व त्याग कर समाधिपूर्वक पण्डितमरण से शरीर त्याग दिया। आप सही अर्थों में कर्मवीर, क्षमाशील एवं धर्मवीर थे। आपके बाद श्री रघुनाथ जी एवं श्री जयमल जी दोनों ही आचार्य रहे।

आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज

मारवाड़ के सोजतनगर में एक धर्म प्रेमी परिवार रहता था। परिवार के मुखिया शा.नथमल जी बल्लावत गौत्रीय बाफणा थे तथा एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम था सोमादेवी। मर्यादापुरूषोत्तम 'राम' को स्वप्न में देखकर सोमादे ने गर्भ धारण किया। माघ शुक्ला पंचमी संवत् १७६६ को इनके घर एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया। स्वप्नाधार पर शिशु का नाम रघुनाथमल रखा गया।

९. हमारा इतिहास-पृष्ठ १९९ ।

आप अत्यन्त मेधावी एवं विनयी थे। पहले होनहार विद्यार्थी के रूप में और फिर व्यवहार-पटु युवक के रूप में आपकी प्रशंसा सभी करने लगे। आप जब सतरह वर्ष के हुए तब आपकी प्रतिभा से प्रभावित सोजत के बड़े सेठ कुन्दनमल जी ने अपनी सुपुत्री रत्नकुंवर की सगाई आपके साथ कर दी।

एक दिन आपके एक अत्यन्त प्रिय मित्र का आकस्मिक निधन हो गया। आप अत्यन्त शोकाकुल हो विचार करने लगे-जीवन के इस आकस्मिक अंत को कैसे रोका जाए? आपकी चिन्तनधारा ही बदल गई। अब आप अमरत्व की प्राप्ति का उपाय पूछते हुए फिरने लगे। एक दिन किसी मित्र ने मजाक में कह दिया कि यदि तुम चामुण्डा के मंदिर में सिर काटकर चढ़ा दोगे तो अमर हो जाओगे।

बस आपके हृदय में यह बात बैठ गई। आप चामुण्डा माता के मंदिर में शीश चढ़ाने के लिए तैयार हुए। उनके पिता, माता, स्वजन, परिजन, बंधु-बान्धव सभी ने सुना तो कई तरह से उन्हें समझाया, पर वे नहीं माने। कई लोग उनके साथ हो गए, तमाशा देखने के लिए।

यह एक संयोग ही था कि उसी समय पूज्य भूधर जी महाराज उस रास्ते से निकले। उन्हें देख संस्कारवश रघुनाथमल वंदन करने के लिये आगे बढ़ा। पूज्य भूधर जी को जब घटना-चक्र का विवरण मिला तो आपने उन्हें अमरत्व-उपलब्धि का वास्तविक मार्ग समझाया। विस्तार से शरीर और आत्मा के भेद को समझाते हुए उन्हें धर्म के मर्म का ज्ञान दिया। आचार्य भूधर जी का आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। देवी-मंदिर में बलिदान का भूत उतर गया। तीन दिन तक आप अपनी शंकाओं का समाधान आचार्य श्री से पाते रहे। आचार्य श्री भूधर जी ने उन्हें आत्मा, परमात्मा, जीव, अजीव, संवर, निर्जरा, कर्म, बंध तथा मोक्ष के विषय में विस्तृत ज्ञान दिया। अमरत्व अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति के उपायों का भी सविस्तार वर्णन किया। अनेक अन्य दार्शनिक विषयों पर चर्चा हुई। अब रघुनाथ जी का मन आश्चस्त हुआ तो विरक्त भी हो गया। उन्होंने दीक्षा लेने का संकल्प कर लिया।

माता-पिता ने, श्वसुराल-पक्ष ने तथा उनकी वाग्दत्ता भावी पत्नी रत्नकुंवर ने भांति-भांति से उन्हें समझाया, उनके मन को संसार-आसक्ति की ओर मोड़ना चाहा पर वे दृढ़ रहे। चार वर्ष तक आपकी दीक्षा नहीं हो सकी। ये चार वर्ष उन्होंने धार्मिक-ग्रंथों, शास्त्रों के पठन-पाठन में व्यतीत किए। अपने पिता के स्वर्गारोहण उपरांत संवत् १७८७ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया, बुधवार के दिन जोधपुर में आपकी समारोहपूर्वक दीक्षा हुई।^{१०}

दीक्षा लेते समय आपने अपनी संसार-पक्ष की वाग्दत्ता रत्नकुंवर को कहलवा दिया था कि अब उनका संबंध (सगाई) छूट चुका है अतः उसका विवाह किसी अन्य जगह किया जा सकता है पर रत्नकुंवर ने इस संबंध में अपने माता-पिता एवं अन्य स्वजनों को स्पष्ट कर दिया कि वह अब अन्य किसी पुरुष से विवाह नहीं करेगी। रघुनाथ जी की दीक्षा के एक वर्ष बाद पूज्य श्री का चातुर्मास सोजत हुआ। इसी चातुर्मास में मुनि श्री रघुनाथ जी से प्रतिबोध पाकर रत्नकुंवर ने भी संयम का पथ स्वीकार किया, उनके साथ ग्यारह अन्य सत्रारियों ने भी दीक्षा-व्रत अंगीकार किया।

१०. कुछ विद्वज्जन मानते हैं कि उनकी दीक्षा जोधपुर राज्य के तत्कालीन दीवान खीवसी जी भण्डारी के प्रयत्नों से हुई थी और तब रघुनाथ जी के पिता विद्यामान थे।

रघुनाथ जी महाराज उग्र तपस्वी थे। साध्वी श्री उमशवकुंवर जी 'अर्चना' के अनुसार उन्होंने अपने साधनामय ६० वर्षों के जीवन में लगभग ३ वर्ष से भी कम आहार किया, ५७ वर्ष करीब तपस्या में बिताए।

संवत् १८४६ की माघ शुक्ला एकादशी के दिन मेड़ताशहर में देवलोकवासी हुए।

आचार्य भूधर जी म. के कालधर्म प्राप्त कर लेने पर उसी वर्ष (संवत् १८०४) सोजत श्री संघ ने श्री रघुनाथ जी म. को आचार्य-पद प्रदान किया।

आपके लघु 'गुरुभ्राता' थे-पूज्य श्री जयमल जी महाराज, जिनके उत्कृष्ट प्रभाव ने एक नए सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव किया, 'श्री जयमल जैन संप्रदाय'।

आचार्य श्री जयमल जी महाराज

विक्रम संवत् १७६५ भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी के दिन मेड़ताशहर के सन्निकट लाम्बिया गांव में समदड़िया मेहता गोत्रीय बीसा ओसवाल मोहनदास जी के घर उनकी पत्नी महिमादेवी ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। मेहता जी के इस पुत्र का नाम था-'जयमल'।

जयमल की का बाल्यकाल बड़े ही सुखद और शांत वातावरण में बीता। बाईसवें वर्ष में प्रवेश हो ही रहा था कि जयमल जी का विवाह 'शेरसिंह जी की रीयां' के प्रधान कामदार श्री शिवकरण जी मेहता की सुपुत्री लक्ष्मीदेवी (लाछां दे) के साथ कर दिया गया। सामाजिक विधानानुसार जयमल जी का विवाह तो हो गया था पर मुकलावा अभी होना था। दीपावली के बाद रीयां से शिवकरण जी का पत्र आया तो जयमल जी को मुकलावे पर रीयां भेजने की तैयारियां होने लगी। रिडमल जी ने कहा-'हो सकता है वहां जयमल को १५-२० दिन के लिए रोक भी लें, अतः दुकान के लिए आवश्यक वस्तुओं के स्टॉक की खरीदी पहले ही करवा ली जाए और रीयां बाद में भेजा जाए'।

यही हुआ। जयमलजी अपने कुछ साथियों के साथ व्यावसायिक कार्य हेतु मेड़ता गए। जिस दिन वे वहां पहुंचे, वह कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा का दिन था। उस वर्ष मेड़ता में आचार्य श्री भूधर जी महाराज का वर्षावास था कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा उतरती चौमासी कहलाती हैं। वर्षावास की समाप्ति का समय एकदम निकट आ गया, इसलिए जैन-जनता अपना कारोबार छोड़ कर उस दिन आचार्य श्री के अंतिम प्रवचन-संदेश को सुनने के लिए अधिकतम संख्या में जैन स्थानक में गई हुई थी। बाजार लगभग बंद-सा था। जयमल जी को जब यह जानकारी हुई तो समय के सदुपयोग की दृष्टि से वे भी अपने साथियों सहित आचार्य श्री भूधर जी महाराज का प्रवचन सुनने के लिए स्थानक में जा पहुंचे। प्रवचन का विषय था- ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य के प्रसंग पर सेठ सुदर्शन का इतिवृत्त चल रहा था। आचार्य श्री के कहने का अपना निराला ढंग था, शैली प्रभावोत्पादक थी। श्रोता मंत्र-मुग्ध हो सुन रहे थे। जयमल जी ने अथ से इति तक सेठ सुदर्शन की बात सुनी। वैराग्य से छलछलाते हुए पावन-प्रवचन को सुनकर जयमल जी के मन में वैराग्य भावना अठखेलियां करने लगी। उन्होंने उसी क्षण आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार कर एक महान् साधक का आदर्श उपस्थित किया। ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर लेने मात्र से ही उन्हें संतोष कहाँ था? उनका मन-पंछी तो साधना के अनन्त गगन में विचरण करना चाहता था। एक विशिष्ट अध्यात्म-योगी बनने का दृढ़ संकल्प उठ रहा था हृदय में परन्तु उसके लिए बाधक थी मां की ममता, पिता का प्यार,

भाई-भोजाई का अपार स्नेह और नवपरिणीता का प्रेम-बंधन। एक और पत्नी द्विरागमन (मुकलावे) की अपलक प्रतीक्षा कर रही थी, मन में रंग-बिरंगे सपने संजो रही थी तथा दूसरी और आचार्य श्री भूधर जी का प्रवचन सुन पति शिवमुन्दरी को वरण करने की तैयार करने लगा था, श्रमण बनने की इच्छा प्रकट करने लगा था।

अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार पारिवारिक जनों की आज्ञा लेकर विक्रम संवत् १७८७ की मार्ग-शीर्ष कृष्ण प्रतिपदा (एकम) के दिन जयमलजी दीक्षार्थी बन गए, प्रेयार्थी से श्रेयार्थी बन गए।

जयमल जी शीघ्रातिशीघ्र दीक्षित बनना चाहते थे। उन्होंने दूसरे दिन प्रातः ब्रह्मवेला में गुरुदेव से पूछा-भगवन् दीक्षा जल्दी से जल्दी अब कैसे आ सकती है?

“वैसे तो दीक्षार्थी को कुछ दिन हमारे साथ विचरण कर साधुचर्या के आवश्यक अंग एवं आवश्यक क्रियाओं को समझ लेना चाहिए, तभी छोटी दीक्षा दी जाती है परन्तु नियमानुसार कम से कम प्रतिक्रमण-सूत्र जब तक कंठस्थ नहीं हो जाता तब तक तो दीक्षा दी ही नहीं जा सकती”।-आचार्य श्री ने फरमाया।

“अच्छी बात है, जब तक प्रतिक्रमण सूत्र कंठस्थ न हो जाए तब तक मुझे खड़े रहने के पच्चक्खाण दिला दे”। - जयमल जी ने विनय-पूर्वक हाथ जोड़ कर प्रार्थना की।

पहले तो आचार्य श्री को आश्चर्य हुआ फिर दीक्षार्थी की तीव्र लगन देखकर पूज्यश्री ने अन्य संतो को प्रति-लेखना आदि कार्यों में संलग्न किया और स्वयं जयमल जी को प्रतिक्रमण-सूत्र के पाठ सिखाने लगे। अभी एक प्रहर ही बीता होगा, जयमलजी ने सम्पूर्ण प्रतिक्रमण कण्ठस्थ कर सुना दिया। सभी उनकी असाधारण ग्राहक-बुद्धि एवं धारणा-शक्ति से बहुत प्रभावित हुए। ऐसा शीघ्र-मति, प्रखर-बुद्धि व विलक्षण धारणा वाला दीक्षार्थी भूधर जी को आज तक नहीं मिला था। उन्होंने ऐसे दीक्षार्थी को तुरन्त ही दीक्षित करने का निश्चय कर अपनी इच्छा मेड़ता-श्रीसंघ के आगेवान श्रावकों के सम्मुख रखी। कार्यवशात् लांबिया के लोग भी मेड़ता ही रुके हुए थे। मेड़ता में दीक्षा-उत्सव की भव्य तैयारियां होने लगीं और संवत् १७८७ के मार्गशीर्ष मास में कृष्ण पक्ष की द्वितीया (मिंगसर वदी दूज) के दिन बहुत ही ठाट-बाट से जयमल जी पूज्य श्री भूधर जी महाराज के पास दीक्षित हो गए।

अभी जयमल जी मुनिवेष धारण कर दीक्षित बने ही थे कि वे आचार्य श्री के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। आचार्य श्री ने पूछा-क्या इच्छा है?

“आपका गुरु-छत्र जब तक मेरे सिर पर है तब तब में एकान्तर (एक दिन छोड़कर एक दिन) उपवास करना चाहता हूँ। उसमें भी दूज, पांचम, आठम, ग्यारस और चौदस-इन पांच तिथियों को पारणे में पांचों विगयों (घी, दूध, दही, तेल और मीठा) को भी छोड़ना चाहता हूँ। कृपा कर आज्ञा दीजिए”।-जयमल जी ने कहा।

अटल निश्चय की मुद्रा देख आचार्य श्री ने उन्हें पच्चक्खाण दिला दिए। दीक्षा-स्थल जैन धर्म, आचार्य श्री भूधर जी एवं नवदीक्षित मुनि जयमल जी की जय-जयकार से गूंज उठा। इनकी बड़ी दीक्षा सात दिन बाद गुरुवार, मिंगसर वद नवम को बिखरणिआ ग्राम में हुई। दीक्षा के बाद गुरु-सेवा, तप-त्याग और ज्ञानाभ्यास में मुनि जयमल जी लीन हो गए। इनके शिक्षा गुरु थे, किसी समय के काशी के पण्डित,

प्रकाण्ड विद्वान् मुनि श्री नारायणदास जी महाराज। मुनि जयमल जी प्रतिभा-सम्पन्न तो थे ही, लगन एवं धुन के भी पक्के थे। एक बार आपके एकान्तर-उपवास का पारणा था। प्रातःकाल आप कुछ पढ़े हुए सूत्र-पाठों को कंठस्थ करने बैठ गए। मन शायद एकाग्र नहीं बन पा रहा था, अतः सदैर पकड़ में नहीं आ रहे थे। अपने आप पर खीझते हुए इन्होंने मन ही मन दृढ़ संकल्प कर लिया कि जब तक सूत्र-पाठ कंठस्थ नहीं कर लूं, मैं गोचरी नहीं जाऊंगा, आहार-पानी ग्रहण नहीं करूंगा। एक प्रहर बीत गया। बस, इस एक प्रहर में मुनि श्री जयमल जी ने पांच सूत्र कंठस्थ कर डाले। ये पांच सूत्र थे-कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, फुप्फचूलिया और वण्हिदशा। यह देख कर आचार्य श्री भूधर जी, मुनि श्री नारायणदास जी एवं सभी संत आश्चर्यान्वित हुए।

बहुत ही कम समय में आपने जैन एवं जैनतर समाज में महान् तपस्वी, प्रकाण्ड विद्वान्, प्रखर, प्रतिभावान्, धर्म-प्रभावक एवं ओजस्वी व्याख्याता मुनि श्री के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली। धर्मोपदेश द्वारा प्रभावित हो लक्ष्मी देवी ने संसार का त्याग कर 'लाम्बिया' में ही आचार्य श्री भूधर जी महाराज के पास दीक्षा ली। और उग्र तपस्या कर छह माह के अल्प समय का संयमी जीवन बिता 'महासती लाछां दे' काल-धर्म को प्राप्त हुई।

पुष्कर के शांत एवं मनोरम वातावरण में आपके हृदय का कोमल कवि जगा और प्रथम बार काव्य-स्फुरणा हुई। रायपुर में गुरुवर के आदेश से प्रथम प्रवचन दिया और धीरे-धीरे प्रवचन देने में ऐसे निखरे कि जहां गए, वहीं हजारों जैन व जैनतर मतानुयायियों को प्रभावित किया। अमीर-उमराव, ठाकुर-जमींदार, राजा-महाराजा एवं शाहजादा-बादशाह भी आपके प्रवचनों से मुग्ध बने, प्रभावित हुए।

पीपाड़ शहर में आपने शिथिलाचारी "पोतियाबंधों" को सन्मार्ग दिखलाया। गए थे गोचरी लेने पर लौटे तो पातरे खाली थे और लोगों की भीड़ उनके साथ थी। पूज्य भूधर जी महाराज ने पूछा-ले आए गोचरी? मुनिवर ने कहा-"आज स्थूल आहार की गोचरी नहीं ला सका। आज तो धर्म के श्रद्धावानों की गोचरी लाया हूं।" पूरी बात आचार्य श्री को ज्ञात हुई तो वे बहुत प्रसन्न हुए। पीपाड़ के पोतियाबंध श्रावकों को भी आज सत्य-धर्म की पहचान हुई।

ये पोतियाबंध धर्म के नाम पर लोगों को ठगते, आड़म्बर फैलाते थे। अपने शिथिलाचार को छुपाने और अपनी महत्ता बनाए रखने के लिए धर्म-शास्त्रों को पोथियों में लिखते थे अतः पोथियाबंध कहलाए। बाद में ये लोग गृहस्थी की तरह वेशभूषा रखने लगे और सिर पर भी पोतिया (साफ़) बांधने लगे अतः पोतियाबंध कहलाए। इन लोगों ने पूजा-पाठ एवं देवद्रव्य-व्यवस्था में अपनी उपयोगिता बतानी प्रारंभ कर दी थी। गोचरी जाते हुए मुनि जयमलजी ने किसी पोतियाबंध की उल्टी-सीधी बातें जैनधर्म एवं उसके संतों के बारे में सुनी और बस करने लगे उससे चर्चा, पोतियाबंध के उपाश्रय में संत का आगमान देख सभी को आश्चर्य हुआ। कुछ श्रावक तो पहले से वहां थे ही, कुछ और इकट्ठे होने लगे। जयमल जी ने शास्त्र-निहित सत्य-तथ्यों का प्रमाण देकर सारी बात बताई तो उपस्थित जन-समुदाय को लगा कि वे अब तक गलत राह पर थे। पोतियाबंधों के शिथिलाचार का इसतरह भंडाफोड़ किया मुनि श्री जयमल जी ने और श्रद्धावान् भक्तों की भीड़ को अपने साथ ले आए, गुरुदेव भूधर जी की शरण में। मुनि श्री द्वारा की गई इस क्रांति की छाप आस-पास के क्षेत्रों पर भी पड़ने लगी।

मुनि श्री जयमलजी के इस धर्म-जादू की बात जोधपुर तक पहुँची। जोधपुर के तत्कालीन महाराजा श्री अभयसिंह जी ने अपने दीवान रतनसिंह जी को आचार्य श्री भूधर जी महाराज के पास भेजा तथा मुनि श्री जयमल जी सहित जोधपुर पधार कर दर्शन देने की विनती अर्ज करवाई। संतों के जोधपुर पहुंचने पर जोधपुर-नरेश ने राजकीय ठाट-बाट सहित बनाड़ पहुंच कर उनकी अगवानी की। जोधपुर में मुनि-श्री के ओजस्वी प्रवचनों की बड़ी धूम मची। स्वयं जोधपुर नरेश प्रतिदिन प्रवचन में जाते। उनका रनिवास भी प्रवचनों में रस लेने लगा। राज्य के कई उच्चाधिकारी भी नित्य प्रवचन सुनने लगे। साधारण जनता की तो बात क्या? जोधपुर से विहार के समय जोधपुर-नरेश ने, राज्याधिकारियों ने एवं बड़े-बड़े सेठ-श्रीमन्तों व भक्तों ने जोधपुर-चातुर्मास की आग्रहभरी, भावभीनी विनती पूज्य भूधर जी महाराज की सेवा में प्रस्तुत की।

बुचकला गांव के ठाकुर साहब ने आपके ही उपदेशों से प्रभावित होकर शिकार, भयपान एवं मांस-भक्षण का त्याग किया। सिरोही पहुंचने पर सिरोही-नरेश मानसिंह जी भी उनसे बहुत प्रभावित हुए। सिरोही-नरेश की पुत्री जोधपुर राज्य की महारानी थी और वे अभी वहीं आई हुई थी। पिता-पुत्री दोनों संत-दर्शनार्थ आये, प्रवचन सुन बहुत ही प्रभावित हुए। एक माह तक संत सिरोही विराजे। सिरोही-नरेश ने अधिक से अधिक लोग उनका व्याख्यान सुन सकें, इस हेतु विशाल-पंडाल बनवा दिया तथा अन्य अनेक सुविधाओं का भी प्रबन्ध करवाया। वे स्वयं भी नित्य प्रवचन सुनने आते। आचार्य श्री एवं मुनि श्री जयमल जी के वे अत्यंत श्रद्धालु भक्त बन गये।

पूज्य श्री भूधर जी महाराज जब दिल्ली पधारे तो वहां भी जयमल जी के प्रवचनों की धूम च गई। एक तो ऐसे निस्पृह संत फिर ऐसा ऊंचा ज्ञान। जोधपुर-नरेश दिल्ली पधारे तो गुरु-दर्शनार्थ आये। उनके साथ उनके मित्र सात रियासतों के ठाकुर भी पधारे। मुनि जयमल जी का प्रवचन सभी ने सुना और अनुपम शांति का अनुभव किया। प्रवचन के बाद मांगलिक सुनकर जब ये सभी दिल्ली-दरबार में पहुंचे तो बादशाह मुहम्मदशाह पूछ बैठे-“क्या नाराजगी है? आज आप सब इतनी देर से कैसे पधारे हैं?” जोधपुर-नरेश ने जब बताया कि वे सभी एक पहुंचे हुए जैन संत के दर्शनार्थ गये थे, वहां ऐसा जादूभरा प्रवचन चल रहा था कि उठकर आ ही न सके तो बादशाह ने उन संतों के बारे में कुछ और प्रश्न किये? उनके निस्पृह और अपरिग्रही जीवन एवं अगाध-ज्ञान की बातें सुनकर वह भी बड़ा प्रभावित हुआ और उनकी प्रशंसा किये बिना न रह सका। शाहजादा ने तो उन महापुरुषों के दर्शनों की इजाजत भी मांगी, जो उसे सहर्ष मिल गई।

शाहजादे ने अगले दिन संतों के दर्शन किए, मुनि श्री जयमल जी का प्रवचन सुना, उनसे अपने मन की कई शंकाओं का समाधान प्राप्त किया और अत्यंत सन्तुष्ट होकर सौगन्ध ली कि वह जीवन में कभी बेगुनाह जानवरों को स्वयं मारेगा नहीं, दीन-दुःखियों के साथ न्याय करेगा और सभी पर रहम करेगा। अपने शाहजादे को इस तरह प्रत्याख्यान करते देख साथ में आए हुए कितने ही राजा-महाराजाओं, अमीर-उमरावों, ठाकुर-जमींदारों ने यथाशक्ति भावनानुसार व्रत-प्रत्याख्यान लिये। इस तरह दिल्ली के राज्याधिकारियों में और साधारण भक्तजनों में दिन-ब-दिन मुनि श्री जयमल जी के प्रवचनों का प्रभाव बढ़ता गया, सत्यधर्म का प्रचार हुआ एवं जिन-धर्म की प्रभावना हुई। इसी चातुर्मास में दिल्ली-चातुर्मास के यश-कलश सेठ श्री सूरजमलजी को श्री भूधर जी महाराज के आदेश पर मुनि जयमल जी ने अपना शिष्य स्वीकार कर दीक्षित किया। उनका यह प्रथम शिष्य तपस्वी बना और अल्पकाल की संयम-साधना कर काल-धर्म को प्राप्त हुआ।

जैसलमेर-वासी जैन-बंधुओं में से कुछेक ने जोधपुर में मुनि श्री जयमल जी के प्रवचनों को सुना था। उन्होंने पूज्य भूधर जी महाराज से प्रार्थना की कि “जैसलमेर में यतियों का जोर है। तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, बाह्याडम्बर, शरीर-सुख, भौतिक-साधना ही उनका ध्येय है, ये ही उन्हें इष्ट हैं। सत्य-जिन-धर्म के प्रचारक वहां तक पहुंच ही नहीं पाते या कह दें कि उन्हें पहुंचने ही नहीं दिया जाता। भूले-भटके कोई पहुंच भी जाएं तो वे ऐसा वातावरण पैदा करवाते हैं कि सत्य-धर्मोपासक वहां टिक नहीं सकते। ऐसी हालत में यदि मुनि श्री जयमल जी जैसे प्रभावी संत वहां पधारे तो निश्चय की जैसलमेर में जिन-धर्म का उद्धार हो सकेगा।”

मुनि श्री जयमल जी ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। खीचन, फलौदी, पोकरण के रास्ते से वे जैसलमेर पहुंचे। बीच में पोकरण के ठाकुर श्री देवीसिंह जी ने उनके उपदेशों से प्रभावित हो मद्यपान, शिकार, मांस-भक्षण आदि दुर्व्यसनों का त्याग किया। कई स्थानों पर बीच का मार्ग अत्यन्त दुर्गम एवं बीहड़ था। दृढ़-साधक राह की बाधाओं, कठिनाइयों, आपत्तियों की भला कब परवाह करते हैं। सहज-समभाव से चलते, विहार करते मुनि श्री जैसलमेर पधार गए तो वहां यतियों ने उनके स्वागत का प्रबंध पहले से कर रखा था। मुनि श्री जयमल जी की एक मूर्ति, एक पुतला बनाया गया। उस पुतले का जुलूस निकाला गया और उस पर धूल, कीचड़, सड़ी वस्तुएं उछाली गईं, जूतों की माला पहनाई गई। कई न सुनने लाधूलनारे लगाए गए। मुनि श्री ने सुना तो मुस्कराए और कहा-बहुत भले आदमी हैं, मेरे कर्म बंधनों को काटने में सहयोगी बन रहे हैं पर नादान हैं, नहीं समझते कि उनके दुष्कर्म बंध रहे हैं।

यह बात जैसलमेर-नरेश तक भी पहुंची। उन्होंने वास्तविकता की जानकारी प्राप्त की। जब उन्हें मुनि श्री जयमलजी की प्रतिभा और प्रभाव के बारे में ज्ञात हुआ तो स्वयं दर्शनार्थ पधारे। प्रवचन सुना वार्ता हुई और सत्य-स्थिति अवगत कर राज्य-भर में आदेश जारी करवा दिया-“मुंहपति बांधे निस्पृह जैन साधुओं को जैसलमेर राज्य में सर्वत्र स्वतंत्रता-पूर्वक विचरण करने की सुविधाएं दी जाएं।” मुनि श्री जयमल जी ने जैसलमेर में रहकर दो कार्य किये। एक तो शिथिलाचार एवं ब्राह्माडम्बर का खण्डन तथा सत्य-धर्म का प्रचार और दूसरा जैसलमेर के विशाल जिनज्ञान-भंडारों का सतत अवलोकन एवं अध्ययन।

जैसलमेर में सत्य-धर्म का झण्डा फहराने के बाद आप पुनः गुरुदेव श्री भूधर जी महाराज की सेवा में पहुंचे। कुछ वर्ष उनके साथ रहकर सेवा का अवसर प्राप्त किया। संवत् १८०४, विजयादशमी के दिन, जिस मेड़ता शहर में सौलह वर्ष पहले मुनि श्री जयमल जी ने आचार्य भूधर जी महाराज जैसा संत श्रेष्ठ गुरु प्राप्त किया था, उसी मेड़ताशहर में उन्हें अपने गुरु से सदा-सदा के लिए बिछुड़ना पड़ा। आचार्य भूधर जी महाराज ने काल-धर्म को प्राप्त किया। मुनि श्री जयमल जी ने उस अवसर पर विगयादि का कई तरह से त्याग किया पर सबसे बड़ा जो त्याग था, वह था न लेटने का। उन्होंने भीष्म-प्रतिज्ञा की कि जीवन-पर्यंत लेटकर नहीं सोऊंगा।

गुरुदेव की छत्रछाया हटने पर आपका चिन्तन-मनन और बढ़ गया। जिस-जिस क्षेत्र को आपने स्पर्श किया, वह क्षेत्र-सत्य धर्म के आलोक से जगमगा उठा। श्रावक-श्राविकाओं में जागृति आई। आपके साधु-साधवियों की संख्या बढ़ने लगी। अनेक दीक्षार्थियों ने आपसे दीक्षा लेकर संयम-मार्ग को ग्रहण किया। जहाँ-जहाँ यतियों का प्रभाव था, वहाँ-वहाँ उनके झूठे भय और प्रभाव को अपने ज्ञानालोक से दूर भगाया। नागौर में भी यतियों का अड्डा था, जिसे मुनि श्री जयमल जी ने निष्प्रभ किया। नागौर-नरेश महाराज

बख्तसिंह जी जो जोधपुर-नरेश अभयसिंह जी के भाई थे, मुनि श्री के सम्पर्क में आकर सर्वथा बदल गए। आपने शिकार और पर-स्त्री-त्याग के आजीवन पचवस्त्राण लिए।

जोधपुर में रामकुंवर बाई ने बीकानेर क्षेत्र को स्पर्शनि के लिए निवेदन कर रखा था, अतः नागौर में सत्य-धर्म का डंका बजाकर मुनि श्री जयमल जी म.सा. की भावना बीकानेर की तरफ बढ़ने की हुई। महाराज बख्तसिंह जी को मालूम पड़ा तो उन्होंने कई शंकाएं मुनिवर के सम्मुख रखी। मार्ग बड़ा कठिन था, अन्यान्य सम्प्रदायों का वहां जोर था, यतियों का अड्डा था बीकानेर और सबसे बड़ा खतरा जोधपुर और बीकानेर की सीमा पर था। कुछ ही वर्ष पूर्व जोधपुर एवं बीकानेर के बीच युद्ध हुआ था जिसमें भंडारी रतनसिंह जी काम आ गये थे। अतः संभावना इस बात की भी थी कि किसी को इधर की सीमा से उधर जाने न दिया जाए।

मुनिवर ने इन बातों के होते हुए भी विहार कर दिया। वे अपने विचारों में दृढ़ थे और किसी भी आपत्ति-विपत्ति से जूझने के लिए कटिबद्ध थे। मन में उनके एक ही भावना थी, उस क्षेत्र में जहां सत्य-धर्म का और सत्यधर्मानुयायी साधुओं का विचरण बिल्कुल नहीं है, ऐसा प्रचार करना/ इस तरह का वातावरण बनाना कि सत्य-जिन-धर्म की प्रभावना हो सके। अत्यन्त दुर्गम पथों से विचरण कर शनैः शनैः आगे बढ़ते, विहार करते मुनिराज बीकानेर की सीमा पर जा पहुंचे। मार्ग में रास्ते दुर्गम होने के अतिरिक्त ठहरने के स्थान पर प्रासुक (ग्रहण करने योग्य) आहार का न मिलना ही सबसे बड़ी बाधा, तकलीफ थी। सीमा पर उनका स्वागत किया यतियों द्वारा तैनात किराये के लठैतों ने। लाठियों का भय दिखाकर उन्हें रोका और बताया कि इस क्षेत्र में या तो यति ही प्रवेश कर सकते हैं या उनसे अनुमति प्राप्त अन्य सम्प्रदाय के साधु। यतियों ने आपको रोकने के लिए हमें तैनात किया है। हमें हुक्म है कि यदि इस पर भी आप लोग न मानें तो आप लोगों के हाथ-पैर तोड़ दिए जाए।

मुनि श्री अहिंसक थे, वे हिंसा में विश्वास नहीं रखते थे। शांति के साथ उन्होंने पूछा—“क्या यह महाराजा का हुक्म है?” लठैत बोले—“यह महाराजा का हुक्म तो नहीं पर यहां यतियों का हुक्म महाराजा के हुक्म की तरह ही प्रभावशाली है। मुनि श्री जयमल जी ने वातावरण के अध्ययन तथा अगला कदम उठाने के लिए तालाब के किनारे बनी एक छतरी का आश्रय लिया। पास में कुछ कुम्हारों के घर थे, वहां से कुछ आटा और बर्तन आदि पकाते समय निकली राख का पानी आदि मिलता। कुछ संत गोचरी के नाम पर उसे उदरस्थ करते और कुछ उपवास करते।

क्षुधा और भीषण ठण्ड का परीषह आठ दिन तक मुनिजन समभाव-पूर्वक सहन करते रहे। संयोगवश नववें दिन रामकुंवर बाई को इस बात का पता लगा। इन्हीं रामकुंवर बाई ने मुनिवर को बीकानेर स्पर्शनि की विनती की थी। जब सारी बात का पता लगा तो बाई ने प्रतिज्ञा की कि जब तक गुरुवर बीकानेर में पधार कर गोचरी नहीं करेंगे, अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे, मैं भी मुंह में अन्न का दाना नहीं लूंगी। बाई के दो जवान बेटे बीकानेर महाराजा गजसिंह जी के दीवान थे। उन्हें मालूम हुआ तो वे महाराजा के पास गए। फिर क्या था? पलक झपकते ही राजकीय आज्ञा-पत्र निकला, पूज्य श्री का बीकानेर प्रवेश हुआ, धर्म का डंका बजा। आपके तप और ज्ञान का अद्भुत तेज, उसी के साथ ओजस्वी वाणी का जादूभरा प्रभाव। बीकानेर में भी आपके प्रवचनों का बड़ा अच्छा प्रभाव रहा। बीकानेर-नरेश भी प्रभावित हुए और शिकार न खेलने का व्रत लिया। आज तक जो मार्ग एवं क्षेत्र संतों के विहार के लिए बन्द था, मुनि

श्री जयमल जी महाराज ने उसे खेल दिया। बीकानेर से आप नागौर होते हुए जोधपुर पहुंचे। इस समय तक सोजत श्री संघ ने मुनि श्री रघुनाथ जी महाराज को आचार्य-पद की चादर दे दी थी पर नागौर, मेड़ता व जोधपुर आदि श्री संघों से कोई राय नहीं ली गई थी। मुनि श्री जयमल जी के जोधपुर पहुंचने से पहले पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज भी जोधपुर पहुंच गए थे। नागौर, मेड़ता व जोधपुर श्री संघ के आगेवान श्रावकों एवं मुनि श्री कुशलचन्द जी महाराज के बहुत आग्रह करने व समझाने पर भी संघ-एकता के लिए मुनि श्री जयमल जी ने आचार्य-पद लेने से बिल्कुल इन्कार कर दिया। वे एक मुनि के रूप में ही पूज्य रघुनाथ जी म.सा. को वंदन करने गए। पूज्य रघुनाथ जी महाराज ने उन्हें वंदन करने से पहले ही हृदय से लगा लिया, पाट पर ले गए और चतुर्विध संघ के समक्ष अपने हाथों से आचार्य-पद की चादर फैलाकर स्वयं ओढ़ते हुए उनको भी ओढ़ा दी। इस तरह संवत् १८०५ की अक्षय तृतीया के शुभ दिन आप पर भी आचार्य-पद का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व आ पड़ा, जिसे आपने यावज्जीवन पूर्ण निष्ठा से निभाया और संघैक्य एवं जिनधर्म का चरम विकास किया।

मेवाड़ में देवगढ़ नरेश यशवन्तसिंह जी आपके अनन्य भक्त बने तथा शिकार खेलने का त्याग किया। देलवाड़ा के राजा रघुनाथराय, जोधपुर-नरेश विजयसिंह जी (महाराजा अभयसिंह जी के बाद), इन्दौर-नरेश मल्हारराव, जयपुर नरेश, शाहपुर नरेश, रामस्नेही सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत श्री रामचरण जी महाराज आदि कई राजा-महाराजाओं एवं विद्वान साधुओं ने आपके ज्ञान का लाभ उठाया, आपसे प्रभावित हुए और आपके भक्त, अनुयायी बन गए।

आपने विभिन्न साधु-सम्मेलनों में सम्प्रदायों को मिटाकर संघैक्य के लिए भी अनेक प्रयत्न किए। आपके पास इक्यावन मुमुक्षुओं ने दीक्षा ली। आपका अन्तिम समय लगभग बारह वर्ष अस्वस्थता एवं अशक्तता के कारण स्थिरवास की स्थिति में नागौर में बीता। आप एक महान् संत ही नहीं, अच्छे कवि भी थे। आपकी सैकड़ों काव्य-रचनाएं इतस्ततः उलब्ध हैं। सोलह वर्ष तक आपने एकान्तर तप किया और पचास वर्षों तक आप लेटकर नहीं सोए।

विक्रम संवत् १८५३ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी (नृसिंह चौदस) के दिन एक माह के संधारे के बाद आपने नागौर में अट्ठासी वर्ष की आयु पाकर अपनी इस नश्वर देह का त्याग कर दिया। नागौर नगर तथा से जैनानुयायियों के लिए पवित्र तीर्थ-स्थल बन गया। आपके पट्टधर शिष्य पूज्य श्री रायचन्द्र जी भी प्रतिभासंपन्न एवं ऊर्जस्वल व्यक्तित्व के धनी थी।

आचार्य श्री रायचन्द्र जी महाराज

जोधपुर निवासी श्री विजयराज जी धाड़ीवाल की धर्म-पत्नी नंदादेवी की कुक्षि से आसोज शुक्ला एकादशी संवत् १७९६ को आपश्री का शुभ जन्म हुआ। आपको वैराग्योत्पत्ति उस समय हुई जब आप विवाह के लिए विवाह-पूर्व आयोजित बन्दोलों के जीमण जीम रहे थे। अठारह वर्ष की संधिवय में प्रवेश करते ही संवत् १८१४ तिथि आषाढ़ सुदी एकादशी के दिन आपकी दीक्षा स्वामी जी श्री गोवर्धनदास जी महाराज के पास पीपाड़ शहर में समारोहपूर्वक सम्पन्न हुई थी। आपके पिता श्री ने एवं आपकी बड़ी मातुश्री ने भी आपके दीक्षा-प्रसंग से प्रभावित होकर आपके साथ ही दीक्षा-व्रत स्वीकार कर लिया था। पूज्य श्री जयमल जी म. ने आपकी विद्वत्ता, प्रतिभा, संयम में दृढ़ता एवं तप में प्रवणता देखकर संवत् १८४९ की अक्षयतृतीया (वैशाख शुक्ला तृतीया) के शुभ दिन आपको अपना युवाचार्य घोषित कर दिया।

आप अपने समय के अत्यन्त ज्ञानवान् संत थे, सफलकवि एवं ओजस्वी प्रवचनकार थे। आपने कथात्मक, स्तुत्यात्मक, उपदेशात्मक एवं तत्त्वात्मक रूप से विशाल साहित्य की रचना की। आपकी समस्त रचनाओं को बड़े श्रम से एकत्र कर श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर में सुरक्षित रखा गया है। आपकी रचनाओं के समीक्षात्मक अध्ययन में प्रकाशन की अपेक्षा है।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपने ७ शिष्यों को दीक्षा दी पर अधिकृत रूप से पांच शिष्यों के नाम एवं विवरण ही प्राप्त हुए हैं। उनके नाम हैं-१. श्री आसकरण जी म., २. श्री दीपचन्द जी म., ३. श्री गुमानचन्द्र जी म., ४. श्री कुशलचन्द्र जी म. और ५. श्री धनरूप जी म.।

नागौर में संवत् १८५३ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को आप आचार्य पर सुशोभित हुए। लगभग ५४ वर्ष से कुछ अधिक आपकी दीक्षापर्याय थी। ७२ वर्ष की आयु में संवत् १८६८ की माघकृष्णा चतुर्दशी को जोधपुर में आप स्वर्गवासी हुए। आप आयु के अन्तिम भाग में लगभग १० वर्ष ठाणापति रहे।

आचार्य श्री आसकरण जी महाराज

आपका जन्म मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया, संवत् १८१२ को जोधपुर-मारवाड़ परगनान्तर्गत तिवरी ग्राम में रूपचन्द जी बोधरा के घर 'गीगां दे' की कुक्षि से हुआ। आपको अपनी सगाई के समय वैराग्योत्पत्ति हुई। आपने वि.सं. १८३० की वैशाख कृष्णा पंचमी के दिन तिवरी में पूज्य आचार्य श्री जयमल जी महाराज के पास दीक्षा धारण की। आचार्य श्री रायचन्द्र जी ने अपने जीवन-काल में संवत् १८५७ की आषाढ़ कृष्णा पंचमी को आपको युवाचार्य घोषित किया।

आचार्य श्री आसकरण जी अपने समय के एक अच्छे कवि माने जाते थे। आपने दस भव्यात्माओं को दीक्षा दी। जिनके नाम हैं-१. श्री सबलदास जी म., २. श्री हीराचंद जी म., ३. श्री ताराचंद जी म., ४. श्री कपूरचन्द जी म., ५. श्री बुधमल जी म., ६. श्री नगराज जी म., ७. श्री सूरतराम जी म., ८. श्री शिवबक्ष जी म., ९. श्री बच्छराज जी म. और १०. श्री टीमकचन्द जी म.।

आप संवत् १८६८ की माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन मेड़ताशहर में आचार्य-पद पर सुशोभित हुए। संयम का दृढ़ता से पालन करते एवं जिनधर्म की प्रभावना करते लगभग ७० वर्ष की आयु में संवत् १८८२ की कार्तिक कृष्णा पंचमी को आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री सबलदास जी महाराज

जन्म स्थान पोकरण। जन्म-तिथि भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, संवत् १८२८। पिताश्री आनन्दराज जी लूणिया, माता श्रीमती सुन्दरदेवी।

दीक्षा आपकी हुई बुचकला ग्राम में, संवत् १८४२ की मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया के दिन, आचार्य श्री रायचंद्र जी म.के पास।

युवाचार्य-पद मिला संवत् १८८१ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को तथा आचार्य-पद पर शोभित हुए संवत् १८८२ की माघशुक्ला त्रयोदशी को, जोधपुर में। शिष्य हुए पांच, जिनके नाम हैं-१. श्री विरदीचंद जी म., २. श्री पृथ्वीचन्द्र जी म., ३. श्री कर्मचन्द जी म., ४. श्री हिम्मतमल जी म., और ५. (नाम अनुपलब्ध)।

आचार्य श्री हीराचंदजी महाराज

आपका जन्म बिराई ग्राम (राजस्थान) कांकरिया गोत्रीय श्री नरसिंह जी की धर्मपत्नी गुमान-देवी की कुक्षि से सं. १८५४ की भाद्रपद शुक्ला पंचमी को हुआ।

संवत् १८६४ में आश्विन कृष्णा तृतीया को सोजतनगर में पूज्य श्री आसकरणजी म. ने आपको दीक्षित बनाकर संयम-पथ पर आरुढ़ किया।

जोधपुर में संवत् १९०३ की आषाढ़ शुक्ला नवमी के दिन आप आचार्य श्री सबलदास जी म. के पट्टधर बने और आचार्य-पद पर शोभित हुए।

आपने पांच योग्य विरक्तात्माओं को दीक्षा दी। जिनके नाम हैं-१. श्री किशना जी म., २. श्री कल्याण जी म., ३. श्री किस्तूरचंद जी म., ४. श्री मूलचंद जी म. और ५. श्री भीकमचंद जी म।

लगभग ६६ वर्ष की उम्र में संवत् १९२० की फाल्गुण कृष्णा सप्तमी के दिन आप स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री किस्तूरचंद जी महाराज

आपका जन्म हुआ था-विसलपुर में। पिता थे श्री नरसिंह जी मुणोत तथा माता का नाम कुन्दनादेवी था। जन्म-तिथि के बारे में मतभेद हैं। 'जयध्वज' ग्रंथ में छपी पट्टावली तथा स्वामी श्री चौथमल जी म. की 'पूज्य गुणमाला' नामक पुस्तक में आपकी जन्म तिथि संवत् १८८९ का फाल्गुण कृष्णा तृतीया है, जबकि 'मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रंथ' तथा ज्योतिर्धर जय (मु.मधुकर जी) में संवत् १८९८ का उल्लेख मिलता है। दीक्षा-तिथि में भी इतना ही अन्तर मिलता है। पूर्व मतानुयायी इनकी दीक्षा-तिथि मानते हैं संवत् १८९८ को जबकि पश्चात्कर्तृ मान्यतानुसार आपकी दीक्षा १९०७ में पाली में हुई थी।

आचार्य-पद पर आप शोभित हुए संवत् १९२० की फाल्गुण शुक्ला पंचमी को। आपके चार सुयोग्य शिष्य थे-१. श्री प्रतापमल जी म., २. श्री सोहनलाल जी म., ३. श्री मूलचंद जी म. और ४. श्री भीकमचंद जी म।

आपकी स्वर्गवास-तिथि के बारे में भी मतभेद हैं। प्रथम मान्यता है, संवत् १९६० की भाद्रपद शुक्ला पंचमी, जबकि दूसरी मान्यता में सं. १९६८ का उल्लेख मिलता है।^{११}

आचार्य श्री भीकमचंद जी महाराज

जन्मभूमि चौपड़ा ग्राम। गोत्र बरलोटा (मूथा)। पिता श्री रतनचंद्र जी, माता श्रीमती जीवादेवी। जन्म-तिथि का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। दीक्षा-तिथि भी अभी तक प्राप्त नहीं। हाँ, युवावस्था में दीक्षित हुए। दीक्षा के समय अविवाहित थे। आपके दीक्षा-गुरु थे पूज्य श्री किस्तूरचंद जी म। आचार्य-पद पर संवत् १९६० के भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा को जोधपुर में प्रतिष्ठित हुए। शिष्य थे दो- १. श्री कानमल जी म. २. श्री मनसुख जी म। श्री कानमल जी म. इनके बाद आचार्य बने।

११. चूंकि आचार्य श्री किस्तूरचंद जी म. के पद पर आचार्य श्री भीकमचंद्र जी म. आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित होने की तिथि सन् १९६० की भाद्रपद शुद्ध १५ है, अतः प्रथम मान्यता ही सही मालूम पड़ती है।

आपका स्वर्गवास हुआ संवत् १९६५ की वैशाख कृष्णा पंचमी को। कहीं-कहीं आपकी आयु का उल्लेख है-६१ वर्ष ६ माह। इस तरह आपका जन्म संवत् १९०४ माना जा सकता है।

आचार्य श्री कानमल जी महाराज

धवा ग्राम के श्री अंगराज की पारिख की धर्मपत्नी तीर्थादेवी की कुक्षि से संवत् १९४८ की माघ सुद पूर्णिमा को आपका जन्म हुआ। कार्तिक शुक्ला अष्टमी सं. १९६२ के दिन चौदह वर्ष की अवस्था में आपने महामन्दिर (जोधपुर) में पूज्य श्री भीकमचंद जी म. के सान्निध्य में दीक्षा स्वीकार की।

आप आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित किए गए कुचेरा में ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी, संवत् १९६५ को। आपमें असाधारण प्रतिभा थी, आपका व्यक्तित्व प्रभावशाली था, आप संयम-निष्ठ थे तथा आप में अनुशासित रहने एवं अनुशासन में रखने की अनुपम क्षमता थी। संवत् १९८५ की माघ कृष्णा पंचमी को आप स्वर्गवासी हुए।

वि.सं. १९८५ में आचार्य श्री कानमल जी म.सा. का स्वर्गवास होने के तीन वर्ष पश्चात् वि.सं. १९८९ में पाली में छः सम्प्रदायों का एक मुनि सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में मुनि श्री हजारीमल जी म.सा. को प्रवर्तक और मुनि श्री चौधमल जी म. सा. को मंत्री पद पर नियुक्त किया गया। वि.सं. २००४ तक इन्हीं को नेतृत्व में सम्प्रदाय की व्यवस्था चलती रही और आचार्य पद रिक्त ही रखा। अंततः कुछ विचारशील सज्जनों के प्रयासों से वि.सं. २००४ में मुनि श्री मिश्रीमल जी म.सा. 'मधुकर' को आचार्य पद पर समारोह पूर्वक प्रतिष्ठित किया गया और आपको आचार्य श्री जसवन्तमल जी म. सा. के नाम से अभिहित किया गया।

कुछ समय पश्चात् ही आपने अपनी प्रकृति के कारण आचार्य पद का त्याग करने का निर्णय कर लिया और अंततः आपने आचार्य पद का त्याग कर त्याग का एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। आपका विस्तृत जीवन परिचय इसी ग्रंथ में आगे दिया जा रहा है।

* * * * *

विशिष्ट वैरागी ज्ञानाभ्यासी

स्वामीजी श्री जोरावरमलजी महाराज

• साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

- जन्म-स्थान- सिंहू गांव (नागौर राजस्थान)
- जन्म-दिवस- वि.सं. १९३६, अक्षय तृतीया
- दीक्षा-दिवस- वि.सं. १९४४ अक्षय तृतीया (नागौर)
- स्वर्गवास-दिवस- वि.सं. १९८६ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी (भुवाल)

यह भारत-भूमि अवतारों की जन्मभूमि, वीरों की कर्मभूमि, साधकों की साधना-भूमि और दार्शनिकों की चिन्तन-भूमि रही है।

इस भूमि में अनेक अनेक समाज-रत्न और सन्त-रत्न उत्पन्न हुए हैं।

इन महापुरुषों ने विश्वभर में सात्विक स्नेह की सुनिर्मल सरस सरिता बहाई, अपने तपःपूत जीवन से जन-मानस को जागृत किया और अपने सदाचरणों से सर्वत्र सद्गुणों की सौरभ फैलाई। ऐसे नर-रत्नों के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं, उनमें एक नाम मेरे पूज्य दादागुरु स्वामीजी श्री जोरावरमलजी महाराज का भी है-इनका जीवन-इतिवृत्त इस प्रकार है।

• बचपन में वैराग्य

मेड़ता के पास गोठन स्टेशन के अति-निकट एक लघुतम ग्राम है, 'सिंहू'। वहां इस समय तो सिर्फ प्रमुख बस्ती है चारणों की, परन्तु पहले वहां ओसवाल जाति की भी काफी अच्छी बस्ती थी।

इस 'सिंहू' गांव में स्वामीजी श्री जोरावरमलजी महाराज का जन्म हुआ था। श्रीरिद्धकरणजी बोथरा उनके पिताजी थे और मगनकुंवर बाई उनकी माताजी थी।

स्वामीजी के बचपन में ही उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। उसके बाद शीघ्र ही उन्होंने तथा उनकी माताजी ने संयम ग्रहण करलिया।

बालक जोरावर तथा उनकी माताजी जी की दीक्षा बड़ी कठिनाइयों के बीच हुई थी। अनेक परिषदों को सहन करने के पश्चात् दोनों माता और पुत्र दीक्षित हो सके थे।

दोनों की दीक्षा का घटनाक्रम यह है कि एक बार मेरी दादागुरुणीजी श्रीचौथांजी महाराज अपनी शिष्या-मण्डली के साथ 'सिंहू' पधारी थी। सतीजी श्रीचौथांजी अपने समय की एक सुप्रसिद्ध ख्याति-प्राप्त

साध्वीरान थी। सतीजी के प्रतिभा-पूर्ण प्रवचनों का प्रभाव मगनकुंवर बाई पर ऐसा पड़ा कि उनके हृदय में वैराग्य की भावना हिलोरें लेने लगी।

जब सतीजी श्री चोथांजी ने 'सिहू' से प्रस्थान किया तो मगनकुंवर बाई भी अपने पुत्र जोरावर को लेकर सतीजी के साथ सिहू से रवाना हो गईं।

जब सतीजी पारसनाथजी की फलोदी (मेड़तारोड़) पहुंची तो मगनकुंवर बाई ने अपना निर्णय सतीजी के सामने रख दिया और स्वयं ने श्वेतवस्त्र धारण कर लिए।

मगनकुंवर बाई ने अपने ससुराल भी यह सूचना भेज दी कि "मुझे व जोरावर को दीक्षा लेना है अतः- आप हमारे लिए अनुमति भेज दीजिए, जिससे इस दीक्षा व्रत को सुलभता के साथ ग्रहण कर सकें।" इस सूचना के पाते ही बाईजी के जेठजी मेड़तारोड़ पहुंचे और क्रोध से आग-बबुला होकर उन्होंने श्वेतवस्त्र धारिणी मगनाजी को लट्टियों से पीटना प्रारंभ कर दिया।

लगभग बीस बार लट्टियों का प्रहार जेठजी ने मगनाजी पर कर दिया। इतना होने पर भी मगनाजी अपने विचारों से विचलित नहीं हुई। अंकषभाव से मगनाजी ने अपने जेठजी से कहा कि आपकी ओर से बीस बार लट्टियों का प्रहार हो गया है। अब इक्कीसवां प्रहार आपके ऊपर मेरा रहेगा-अर्थात् मुझे अवश्यमेव संयम ग्रहण करना है।

मगनाजी की यह बात सुनकर उनके जेठ के मुख से यह बात फूट पड़ी-"तुम खुशी से दीक्षा ग्रहण कर सकती हो पर जोरावर को मेरे साथ भेज दो।"

अपने जेठ के मुख से इतना सुनते ही मगनादेवी ने कहा कि बस हो गया मेरा कार्य सिद्ध। आपने मुझे तो दीक्षा लेने की अनुमति प्रदान कर ही दी और जोरावर पर तो एकमात्र मेरा ही स्वाधिकार है, अतः मैं स्वयं आज्ञा देकर उसे दीक्षित कर दूंगी।

इस प्रकार मगनकुंवरबाई स्वयं ने तो भागवती दीक्षा ग्रहण की ही साथ में अपने होनहार प्रिय पुत्र जोरावर को दीक्षा दिलवाकर श्रमणसंघ को एक अमूल्य रत्न भेंट किया।

वि.सं. १९२६ की अक्षय्य तृतीया स्वामीजी श्रीजोरावरमलजी महाराज का जन्म दिवस था और वि.सं. १९४४ की लक्ष्य तृतीया उनकी दीक्षा-दिवस था।

नागौर उनकी दीक्षाभूमि थी। स्वामीजी उस समय के सुप्रसिद्ध वैयाकरण और चर्चावादी सन्त परम श्रेष्ठ स्वामीजी श्रीफकीरचन्दजी महाराज के शिष्य-रत्न बने।

स्वामीजी श्री फकीरचन्दजी महाराज के सोलह शिष्य थे, उनमें स्वामीजी उनके सबसे छोटे शिष्य थे।

• योग्य गुरु: योग्य शिष्य:

बचपन से ही स्वामीजी में सर्वतोमुखी प्रतिभा थी। अतः उनका अध्ययन अतीव उच्चतम रहा। योग्यतम गुरुदेव की सेवा में रहकर शिष्य योग्यतम बने-इसमें अतिशयोक्ति भी क्या?

स्वामीजी ने संस्कृत, प्राकृत, आगम, चूणो, टीका, भाष्य, काव्य, छन्दःशास्त्र व ज्योतिष आदि का गंभीर अध्ययन किया। अपने समय में वे आगमों के एक तलस्पर्शी विज्ञाता, विचक्षण विद्वान माने जाते थे। वे उग्रक्रियावादी नहीं थे तो कोरे ज्ञानवादी भी नहीं थे। उनमें ज्ञान-क्रिया का सुन्दरतम संगम था।

स्वामीजी श्री जोरावरमलजी महाराज “यथानाम तथागुण” इस उक्ति के अनुसार सचमुच जोरावर थे। उनके चेहरे पर चमकता हुआ ओज था। किसी भी व्यक्ति की हिम्मत एकदम उनके सामने बोलने की नहीं होती थी।

यद्यपि उनका विचरण राजस्थान में ही हुआ था फिर भी उनका वर्चस्व जैन व जैनतर समाज में सर्वत्र छाया हुआ था। स्वामीजी सही बात को ही पकड़ते थे, पर उनकी पकड़ बहुत सुदृढ़ होती थी। आगम के आधार पर तर्क की कसौटी पर कसकर वे विरोधियों को ऐसा करारा जबाब देते कि विरोधी व्यक्ति स्वयमेव उपशान्त हो जाते।

स्वामीजी सुधारवादी भी थी। अनेक स्थानों पर उन्होंने परम्परा से प्रचलित अनेक कुप्रथाओं का निवारण किया। बारात में रात्रि-भोजन, ढोल पर कुलीन औरतों का नाचना, विवाह शादियों में औरतों का गन्दे गीत गाना आदि कुप्रथाएं स्वामीजी को बहुत अखरती थी। अछूत जाति के प्रति भी स्वामीजी की बड़ी हमदर्दी थी। हरिजनों को उच्छिष्ट भोजन देने का भी वे सख्त विरोध करते थे।

साधु-समाज में क्रिया की ढिलाई स्वामीजी को बिल्कुल नहीं सुहाती थी। चाहे अपनी सम्प्रदाय के ही, साधु क्यों न हो, जिनमें वे क्रिया की ढिलाई देखते तो उन से वे अपना सम्पर्क कभी नहीं रखते थे। इस बात को लेकर स्वामीजी साधु-समाज में कुछ कठोर प्रकृतिवाले भी माने जाते थे।

स्वामीजी में एक खास विशेषता यह थी कि यदि साधु समाज की गलत प्रवृत्तियों को देखकर श्रावक समाज में उन साधुओं के प्रति श्रद्धा का वातावरण बन जाता तो वे समाज में पुनः उनकी जाजम जमाने में भी कभी नहीं चुकते थे।

स्वामीजी जैन आगमों के गहन अभ्यासी थे। आगम ज्ञान के प्रसार हेतु उनके मन में बड़ी तीव्र उत्कंठा थी। अनेक बार कहते थे-आगम ज्ञान ही आत्म-ज्ञान की कुंजी है। उनके सुयोग्य शिष्य युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी उनकी इस अन्तर भावना को सफल बना दिया हैं। जैन आगमों का सरल हिन्दी अनुवाद विवेचन सर्वसाधारण को सुलभ करा दिया हैं।

स्वामीजी के तीन शिष्य हुए-स्वर्गीय स्वामीजी श्री हजारीमलजी महाराज, पूज्यगुरुदेव उपप्रवर्तक स्व. स्वामीजी श्री ब्रजलालजी महाराज व पण्डित रत्न युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी महाराज।

स्वामीजी का ४२ वर्ष का संयमी जीवन रहा। अन्त में उन्होंने भंवाल में समाधिमरण प्राप्ति किया।

- श्री ‘जोरावर’ सन्मूर्ति गुरुवर् वन्दे सदा भावतः।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जीवन के सच्चे कलाकार:

मुनि श्री हजारीमलजी महाराज

• -मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'दिनकर' शास्त्री

जीवन सभी जीते है, किन्तु जीने की कला कोई विरला ही जानता है। जिसे हम 'जीवन कला' कहते है वह और कुछ नहीं, मनुष्य के जीने की एक शैली, एक उद्देश्य और एक तरीका है कि वह अपने आपको, जनहित में कितना खपाता है, अपने लिए स्वयं को कितना खपाता है, अपने परिपार्श्व में किस प्रकार की भावना और विचारों की छाप छोड़ता है। इस दृष्टि से देखने पर स्व. मुनि श्री हजारीमल जी महाराज जीवन के सच्चे कलाकार सिद्ध होंगे।

उनके जीवन में भगवान महावीर का यह जीवन दर्शन पूर्णतः साकार हुआ था-

सदा सच्चेण संपन्ने मेति भूएसु कप्पए

सदा सत्य से युक्त रहो!

अपने प्रति भी, समाज के प्रति भी सच्चे रहो और सभी प्राणियों के साथ मित्रवत् व्यवहार करो।

स्वामीजी सत्य के कट्टर समर्थक थे। सत्य के लिए वे अपने गुरु और शिष्य की भी परवाह नहीं करते, यहां तक कि सत्य के लिए उन्होंने प्राणों की परवाह नहीं की। सत्य की साधना से वे 'अभय' हो गये थे। सत्य के साथ अहिंसा की साधना में इतने गहरे उतर गये थे कि जीवन के प्रति कोई ममत्व उनमें नहीं रहा। इसलिए वे किसी से भयभीत नहीं होते थे।

• खरे थे, खारे नहीं

कभी-कभी यह देखा जाता है कि सत्य का कट्टर समर्थक कहलाने वाला एकान्त आग्रही बन जाता है। उसकी दृष्टि में समन्वय, उदारता और समता रस की कमी आने लगती है वह 'खरा' तो होता है, पर धीरे-धीरे समाज में खारा भी बन जाता है। स्वामी श्री हजारीमल जी महाराज के जीवन में यह दोष नहीं आया था।

एक घटना है। स्वामी जी एक बार वर्षावास हेतु तिंवरी पधारे। चातुर्मास से कुछ पूर्व ही वहां पधार गये। वहां पर मारवाड़ के अल्हड़ संत बाबा के नाम से प्रसिद्ध श्री पूर्णमलजी महाराज विराजमान थे।

तिंवरी में प्रायः श्रावक स्वामीजी संप्रदाय के अनुयायी थे तथा उनके प्रति गहरी भक्ति भावना रखते थे। अतः सहज ही था कि श्रोता अधिक से अधिक संख्या में स्वामीजी के प्रवचन सुनने आते। परन्तु स्वामीजी ठहरे समतायोगी, शान्ति, समन्वय और उदारता की प्रतिमूर्ति! बाबाजी पूर्णमलजी महाराज की साधना व चर्या, उनकी विभिन्न योग्यता आदि को देखते हुए उनको नाराज करना या किसी प्रकार उनका अपमान जैसा व्यवहार होना स्वामीजी को कतई पसन्द नहीं था।

स्वामीजी ने तिंवरी निवासियों को सम्बोधित करके कहा-“श्रावको! धर्म समता में है, कलह में नहीं। जब तक बाबाजी तिंवरी में विराजेगे उन्हीं का व्याख्यान होगा और आप सब उनका व्याख्यान सुनने प्रतिदिन जायेंगे।”

कुछ लोगों ने एक तुनका भी छोड़ दिया था-“एक गुफा में दो सिंह नहीं रह सकते।”

उदारमना स्वामीजी ने सहज भाषा में उत्तर दिया-“एक गुफा में भले ही दो सिंह नहीं रह सकें, पर समभाव के साधक अनेक मत एक क्षेत्र में रह सकते हैं क्योंकि उनका लक्ष्य व जीवन ध्येय एक होता है।”

इतनी कटु उक्ति का कितना मीठा उत्तर था।

बाबाजी जब तक तिंवरी में रहे, आपके स्नेह, सद्भाव और सौमनस्य से इतने गद्गद होकर रहे कि उन्हें यह अनुभव भी नहीं होने पाया कि वे अपने भक्तों के क्षेत्र में नहीं हैं।

उदारता: समयज्ञता

स्वामीजी सत्य के प्रति जितने एकनिष्ठ व अविचल थे उतने ही समयज्ञ भी थे। आचार्य सोमदेव सूरि ने कहा-

समयज्ञो हि सर्वज्ञः अन्यथा विज्ञोपि अवज्ञायते

जो समय को जानता है, पहचानता है, वह वास्तव में सब कुछ जानता है। जो समयज्ञ नहीं है, वह विज्ञ भी है तो भी लोगों में अवज्ञा व अपमान को प्राप्त होता है।

स्वामी श्री हजारीलाल जी म. लोक-व्यवहारज्ञ व समयज्ञ थे। समय की नाड़ी को पहचानने में बड़े चतुर व उचित व्यवहार करने में कुशल थे।

वि.सं. २०१४ का प्रसंग है। आपश्री का चातुर्मास जोधपुर सिंहपोल में था। देश में हरिजन मंदिर प्रवेश की हलचलें जोरों पर थीं। कुछ विध्वंस-सन्तोषी सज्जनों ने दो हरिजन बन्धुओं को उकसाया, कि देखो ये मुनि, तुमको स्थानक में प्रवेश नहीं करने देते हैं।

उकसाये हुए भोले हरिजन बन्धु विग्रह बढ़ाने या विवाद को सार्वजनिक रूप देने के इरादे से सिंहपोल स्थानक के बाहर आकर खड़े हो गये। कक्षा तक भीतर गये, पर आगे जाने से स्वयं ही ठिठक गये।

स्वामीजी ने उनकी मुख-मुद्रा व रहन-सहन देखकर समझ लिया, हाथ के संकेत से उनको अन्दर आने की सूचना दी। दोनों ही हरिजन सहमे-सहमे स्वामीजी के पास आये, और बोले-“महाराज! हम हरिजन हैं, हमें मंदिर-प्रवेश करने से रोका जाता है। हम आपके दर्शन करने भी यहां आना चाहते हैं, किन्तु हमें लोग रोक-टोक करते हैं।”

स्वामीजी ने नपा-तुला उत्तर दिया-“तुम धर्म में श्रद्धा रखते हो तो तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं, देखो किसी ने रोका तुम्हें?”

आगत बन्धुओं का मनोरथ पिघल गया। स्वामीजी ने स्नेहपूर्वक धार्मिक पुस्तकें उनको दिलाते हुए कहा-“तुम्हारी धर्म के प्रति श्रद्धा है, बड़ी अच्छी बात है, इनको पढ़ो।” हरिजन बन्धु गद्-गद् होकर नमस्कार करके चले गये।

यह थी आपकी उदारता, समता और समयज्ञता।

उत्कट सहिष्णुता

स्वामीजी श्री हजारीलाल जी महाराज के जीवन में ज्ञान का आलोक जगमगाता रहता था। आगमों के गम्भीर अनुशीलन व अध्ययन की रसानुभूति से उनके जीवन में धीरता, गम्भीरता और सहिष्णुता का अवतरण हो गया था। आचारांग सूत्र में बताया है कि साधक जब आत्मा व कर्म का भेदविज्ञान कर लेता है तो बाहरी कष्ट वेदना उसको व्यथित तथा त्रस्त नहीं कर सकते। वह उन वेदनाओं की पीड़ा मात्र शरीर तक ही भोगता है, उसकी आत्मा तो घोर वेदना के समय भी शान्त प्रसन्न और स्वरूप में रमण करती रहती है।

स्वामीजी श्री हजारीलाल जी महाराज के जीवन में ऐसी ही उत्कट सहिष्णुता व समता के दर्शन होते हैं। एक बार स्वामीजी के वक्ष पर एक बड़ी गाँठ हो गयी। गाँठ कुछ तकलीफ देने लगी तो डॉ. कुंजबिहारीलाल जी को बताया गया। डॉ. साहब ने देखकर निदान किया-“इसका आपरेशन करना पड़ेगा वरना आगे तकलीफ बढ़ सकती है।” सब की सलाह के बाद आपरेशन का निश्चय हुआ। आपरेशन करने से पूर्व डॉक्टर ने पूछा-“क्लोरोफार्म सुंघाया जाय या इन्जेक्शन?”

स्वामी जी ने बड़ी सादगी के साथ उत्तर दिया-“किसी का भी प्रयोग नहीं। आप अपनी सुविधा के अनुसार जैसा चाहें, जितना चाहें काट लीजिए, मैं सब तरह से तैयार हूँ।”

उत्तर सुनकर डॉक्टर चकित रह गया। आज तक किसी मरीज से उसने ऐसा उत्तर नहीं सुना था। इतना धैर्य! इतनी अद्भुत सहिष्णुता! ४५ मिनट के आपरेशन के बाद करीब ६ तोला (७० ग्राम लगभग) की गाँठ निकाल कर टेबल पर रखी। मुनि श्री पूरे होश में थे। डॉक्टर ने कहा-“तीन दिन तक आपको यहीं आराम करना होगा।”

धीरे व गम्भीर संत का उत्तर था-“इसकी भी कोई ज़रूरत नहीं, मैं धीरे-धीरे चलकर अपने स्थान तक पहुंच जाऊंगा।” और करीब ४ फर्लांग दूर पीपलिया बाजार स्थानक में मुनिश्री चलकर आ गये।

फूलों-सा कोमल मन

सत्पुरुषों के लिए कहा जाता है-“अपनी पीड़ा सहते समय वे वज्र के समान कठोर होते हैं, और दूसरों के दुःख के समय फूल से भी अधिक कोमल।”

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि

स्वामी जी श्री हजारीलाल जी महाराज के जीवन में यह वृत्ति साकार हो गयी थी। उनकी अद्भुत धीरता, सहिष्णुता का एक उदाहरण हम दे चुके हैं, अब उनकी कुसुम-सम कोमलता का भी उदाहरण देखिए-

वि.सं. १९९६ में देश में भयंकर दुष्काल पड़ा था। काल की विकराल छाया से पूरा देश अन्न के दानों के लिए त्राहि-त्राहि कर रहा था। यद्यपि दुष्काल के समय सभी को कुछ न कुछ कष्ट व परेशानी होती है, पर सम्पन्न वर्ग को वह कम होती हैं, फिर साधु संत तो भिक्षा-जीवी ठहरे, अनेक घरों से भिक्षा प्राप्त करने में उसकी कष्टानुभूति विशेष नहीं होती। पर आपश्री के संवेदनशील हृदय को तो जनता जनार्दन की पीड़ा ही व्यथित कर रही थी। आपश्री ने संकल्प किया-“जब तक देश में दुष्काल है, मैं धृत, दूध, दही आदि का उपयोग नहीं करूंगा।”

आपश्री की दयार्द्रवृत्ति ने असर किया, साथी मुनिवरो ने भी त्याग किया। दुष्काल की स्थिति सुधरी तब कहीं जाकर आपश्री ने उक्त वस्तुओं का सेवन किया।

जीवन-रेखा

पूज्य स्वामी जी महाराज वास्तव में एक सतयुगी सन्त थे। उनका अन्तःकरण शिशु-सा सरल-तरल था, तो मन ओलिया फकीर जैसा वासना-कषाय आदि से मुक्त-विरक्त।

आपका जन्म वि.सं. १९४३ में डांसरिया ग्राम (मेवाड़) में हुआ। मेवाड़ की वीरता-भक्ति और तेजस् संस्कार उनके रक्त में घुलमिल गया था। बसन्त पंचमी को आपश्री का जन्म हुआ, और जीवन में सदा ही बसन्ती बहार की तरह प्रसन्न, प्रफुल्ल रहे। आपके पिता श्री मोतीलाल जी मुणोत (मोतीजी) बड़े ही भद्रपरिणामी थे। माता श्रीमती नन्दूबाई बड़ी धर्मशीला, तेजस्वी महिला थीं। माता की सत्प्रेरणा के कारण ही आपने बचपन में विद्याभ्यास किया, साधु-सन्तों की संगति में पहुंचे और धीरे-धीरे पूर्व जन्म के सद्संस्कारों से प्रेरित होकर एक दिन गुरु चरणों में प्रव्रजित हो गये।

स्वामी जी ने वि.सं. १९५४ ज्येष्ठ कृष्ण कृष्ण १० को नागौर में पूज्य गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज के श्रीचरणों में प्रव्रज्या ग्रहण की।

यह एक अद्भुत संयोग की बात है कि आपके गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज की दीक्षा भी स्वामी श्री फकीरचन्दजी महाराज के हाथों नागौर में ही सम्पन्न हुई थी, और स्वामी जी श्री फकीरचन्द जी महाराज को भी नागौर में स्वामी श्री बुधमलजी महाराज ने दीक्षा प्रदान की थी।

आपकी प्रतिभा बड़ी सुतीक्ष्ण तथा ग्रहणशील थी। किसी भी विषय को बड़ी सरलता से व समग्र रूप से ग्रहण करने में आप दक्ष थे। सर्वप्रथम आपश्री ने थोकड़ों का अध्ययन प्रारंभ किया। थोकड़ा-एक प्रकार से गंभीर जैन तत्वज्ञान की सुगम कुंजी है। आपश्री ने बड़ी निपुणता के साथ थोकड़ों का ज्ञान प्राप्त कर फिर आगमों का साक्षात् अध्ययन करने के लिए प्राकृत भाषा का अध्ययन प्रारंभ किया। अनेक सूत्र कण्ठाग्र किये। सिद्धान्त-चन्द्रिका व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर संस्कृत-प्राकृत भाषा के अधिकारी विज्ञ बन गये। जैन आगमों के व्याख्या ग्रन्थ, टीकाएं आदि आप श्री ने पूर्ण मनोयोग से पढ़ी।

शिक्षा क्रम पूर्ण करके भी आपश्री अपने आप में संतुष्ट नहीं हुए। अपने लघु गुरु भ्राता- श्री मधुकर मुनि जी के अध्यय-अध्यापन में भी आप श्री बड़ी गहरी रुचि रखते थे। गुरुदेव श्री जोरावरमलजी महाराज भी आपकी सूझ-बूझ व परामर्श का आदर करते व लघु शिष्य श्री मधुकर मुनि जी के विद्याध्ययन की पूर्ण जिम्मेदारी जैसे आपके हाथों में ही सौंप दी थी। आपने बड़ी जागरूकता व दूरदृष्टि से उनके अध्यापन को मार्गदर्शन दिया व एक सुयोग्य साथी के रूप में आपका निर्माण किया।

श्रमण संघ के संगठन में तो स्वामीजी श्री का योगदान अनन्यतम कहा जा सकता है। आपकी सूझ-बूझ, उदारता व प्रतिष्ठा की भावना से निर्लिप्तता और सभी मुनिवरो के साथ मिलनसारिता ने श्रमण संघ की ऐतिहासिक एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

• महाप्रयाण

वि.सं. २०१८ का वर्षावास आपश्री ने कुचेरा में सम्पन्न किया था। चातुर्मास के बाद नागौर के श्री संघ ने आगामी (वि.सं. २०१९ का) चातुर्मास के लिए भावभीनी प्रार्थना की। आपने कहा-“सूखे समाधे काया ने साथ दिया तो आगामी चातुर्मास नागौर में करने के भाव हैं।”

इस घोषणा में छिपे अनिश्चय को उस समय किसी ने नहीं समझा। पर आपश्री स्वयं जैसे अपने अंतिम समय को अनुभव करने लग गये। चैत्र मास में आप श्री, मुनि श्री ब्रजलाल जी एवं श्री मधुकर मुनिजी महाराज तीनों ही श्रमण (गुरुभाई) चांदावतों का नोखा पधारे। कुछ अस्वस्थता के बाद आपश्री को अनुभूति हो गयी थी कि अब यह माटी की देह माटी में मिलने वाली है। आपने पंच महाव्रतों का आरोपण किया, अन्तःकरण को शुद्ध, शान्त, प्रसन्न व निर्मल भावों से भावित करते हुए चैत्र कृष्ण १० (वि.सं. २०१८) की रात्रि को समाधिपूर्वक देह-त्याग किया।

समता, सत्य-निष्ठा, सहिष्णुता और उदारता का एक जीवन्त प्रतीक इस धरा से विलय हो गया।

शिष्य प्रशिष्य

स्वामीजी के दो शिष्य हुए- (१) श्री मांगीलालजी म.सा., (२) श्री मोहन मुनि जी म.सा.। श्री मोहन मुनि जी म.सा. के शिष्य श्री अजित मुनि, श्री प्रदीप मुनि, सा. तपस्वी, श्री सोहन मुनि एवं स्व. सेवाभावी श्री भेरु मुनि हुए। श्री सोहन मुनि के शिष्य श्री श्रवण मुनि हुए।

तपस्वी श्री मोहन मुनिजी म.सा. श्री अजित मुनिजी म.सा. एवं श्री प्रदीप मुनिजी म.सा. अभी विद्यमान हैं।

* * * * *

समतायोगी स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.

• -श्रमण श्री विनय कुमार 'भीम'

- जन्म- वि.सं. १९५८ माघ शुक्ला ५ (बसंत पंचमी)
- जन्म स्थान- तिवरी (राजस्थान)
- पालन पोषणा- गढाई पंढरिया (म.प्र.)
- माता- श्री चम्पाबाई (बाद में श्रमणी दीक्षा)
- पिता- श्री अमोलक चन्द जी श्रीश्रीमाल
- दीक्षा- स्वामी श्रीजोरावरमल जी म.सा. के पास वि.सं. १९७१, वैशाख शुक्ला १२, स्थान ब्यावर (राज.)
- गुरुभ्राता- मुनि श्री हजारीमल जी म.सा. एवं युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म. 'मधुकर'
- स्वर्गवास- वि.सं. २०४० आषाढ़ कृष्णा ८, २ जुलाई १९८६, धूलिया (महाराष्ट्र)
- वैशिष्ट्य- निष्काम सेवाभावना, वृद्ध रूग्ण, असहाय की सेवा के लिए तन-मन- से सर्वात्मना समर्पित रहे हैं, नाम और पथ की भावना से सर्वथा दूर। सरलतापूर्वक साधना के पथ पर अडिगता से डटना।

हस्तलिपि की अद्भूत कला, जैन आगमों का सुन्दर शुद्ध लिपि में विशिष्ट हस्तलेखन।

ठोस अनुभव की धरती पर पल्लवित ज्योतिष विद्या का गहन ज्ञान।

स्वाध्याय के विशिष्ट अभ्यासी।

मधुर स्वर, निश्छल व्यवहार, मधुर गायन।

परमसेवा भावी, संत पुरुष स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.सा. उच्चकोटि के साधक थे। वे निरन्तर सेवा साधना करते हुए, कर्तव्य की कठोर असिंधारा पर चलते हुए आजन्म उसके गर्व में अछूते रहे। अपनी साधना और सेवानिष्ठा के विषय में वे सदैव मौन रहे। उन्हें अपने कर्तव्य का अहंकार स्पर्श भी नहीं कर पाया था।

स्वामीजी अपने संत-समुदाय में एक महान कर्तव्य सम्पन्न, सेवाभावी, सतत जागरूक संत रहे। उनकी सहज सरल बालक-सी निर्मल आंखों में झांकने पर, मन्द मुस्कान से युक्त उनकी मुखमुद्रा को पढ़ने पर उनके स्वाभाविक रहन-सहन व बोलचाल का निरीक्षण करने पर भी अहंकार की गंध कहीं नहीं आई।

स्वामीजी का हृदय बहुत ही सरल था। उनके मन में कहीं घुमाव-फिराव नहीं, दुख-छिपाव नहीं था। जैसे भीतर मन में भाव, कहीं बाहर वचन में भी थे। स्वामीजी के मन-वचन की सरलता देखकर आश्चर्य तो नहीं होता किन्तु उनके प्रति आदर होता है, श्रद्धा भाव उमड़ पड़ता है।

स्वामी जी की सहनशीलता भी गजब थी। उनके साहस और सहिष्णुता की अनेक घटनाएं हैं। उनका कहना था-“तुम्हारा मन यदि साहस से भरा है, दुःख और कष्ट से जुझने को तैयार है, तो तुम्हारा दुःख आधा हो जाता है और भय चौगुना।”

सहिष्णुता, धैर्य और परीषह के विषय में उनका कहना था-पत्थर हजारों टांकी सहता है तब महादेव बनता है। आदमी अगर कष्ट नहीं सहे तो वह आदमी कैसे बनेगा। फिर साधु तो सहनशीलता से ही साधु होता है। मन में धीरज न हो, सहनशीलता न हो, परिस्थिति से घबराता हो, वह आदमी साधु नहीं बन सकता। मौत का मार्ग तो सिर पर कफन बांधने चलने का है-मौत हमारे साथ-साधु जीवन में कष्ट आये, इसमें कोई खास बात नहीं, खास बात तो यह समझनी चाहिये कि जो साधु जीवन धारण करके भी कष्ट नहीं उठाते। गृहस्थ को कष्ट सहे बिना धन नहीं मिलता, साधु को कष्ट सहे बिना मोक्ष कैसे मिलेगा?”

स्वामी जी पर दुःख कातर थे। अपने गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमल जी म. की रुग्णता के समय आपने दिन-रात सेवा की। इस सेवा में आपको खाना-पीना, बोलना, सोना आदि किसी भी प्रवृत्ति में रस नहीं आया। आपको दूसरों की पीड़ा स्व-पीड़ा जैसी लगती थी। स्वामी श्री हजारीमल जी म. की अस्वस्थता के समय भी स्वामीजी की सेवाभावना उल्लेखनीय रही। इसके अतिरिक्त जो भी मुनि उनके पास रहते और जब उनकी सेवा का प्रसंग आता तो रुग्ण मुनि की वेदना की अनुभूति उन्हें कुरेदती रती। वे अन्य की बीमारी अपनी समझते।

स्वामी जी का स्वर बहुत मीठा था। जब वे भजन स्तवन आदि गाते थे तो स्वयं तो तन्मय हो ही जाते, श्रोताओं को भी तन्मय बना देते थे। अवकाश के क्षणों में या तो वे माला फेरा करते या भजन स्तवन, स्त्रोत आदि गुनगुनाया करते थे। उन्हें आलसी की भांति पड़ा रहना स्वीकार नहीं था।

अध्ययन की दृष्टि से स्वामी जी सदैव जागरूक रहे। दीक्षोपरांत प्रारंभिक अध्ययन समाप्त कर आपने आगमों का गहन अध्ययन किया। स्वामी जी ने ज्योतिष विद्या का भी गहन अध्ययन किया। आपका ज्योतिष ज्ञान अनुभव पूर्ण था। वे प्रथम तो फटाफट बताते नहीं, किन्तु उसका विचार कर लेते, यदि बताते तो सिर्फ ग्रह गति कुण्डली के आधार पर ही नहीं, किन्तु उसे व्यावहारिक बुद्धि से सोचकर बताते, ज्योतिष को वे जीवन में उपयोगी विद्या मानते थे किन्तु विश्वास और विवेक के साथ।

भाषा ज्ञान की अपेक्षा कला में आपकी रुचि अधिक थी। बाल्यकाल से ही जब आपने अक्षर ज्ञान प्राप्त किया तो उनमें कुछ सहज सुघड़ता और सौष्ठव था। आगे जाकर आपने अक्षर लिपि और अच्छी सुधार ली। आपकी लिपि कला में सौन्दर्य के साथ शुद्धता का मीठा कांचन संयोग था।

स्वामी जी का जीवन मधुरता से ओतप्रोत सर्वतोभद्र था। आपके जीवन का कोई भी कोना ऐसा नहीं जो किसी दोष से स्पष्ट हो। आपके साधु जीवन की सौरभ दूर दूर तक महक रही है। आपका जीवन समस्त साधकों के लिए प्रेरणादायक है।

जिस समय मारवाड़ से दक्षिण की ओर विहार हुआ उस समय भी स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था किन्तु अपने आत्मबल के सहारे वे सतत विहार रहे। मैंने गुरुदेव को बहुत निकट से देखा है। उनके असंख्य गुणों को मैं अपनी लेखनी में बांधने में अपने आपको असमर्थ पा रहा हूँ। समस्या यही है कि क्या छोड़ूँ और क्या लिखूँ। भावना में भी बह जाता हूँ और जो लिखना चाहता हूँ, वह लिख नहीं पाता हूँ।

जब विहार करते हुए हम धूलियां पहुंचे तो भी स्वामी जी कोई विशेष अस्वस्थ नहीं थे। २६-जून ८३ को धूलियां में स्वामीजी का जोरदार स्वागत हुआ। २९ जून को धूलियां से विहार की घोषणा की गई किन्तु उस दिन जोरदार वर्षा होने से विहार न हो सका। ३० जून को स्वामी जी की अस्वस्थता बढ़ने लगी। सभी प्रकार के उपचार किये गये किंतु होनी को कौन टाल सकता था। अंततः २ जुलाई १९८३ को स्वामी जी सबको रोता बिलखता छोड़कर इस संसार से सदा सदा के लिए महाप्रयाण कर गए। स्वामीजी के देवलोक होने के समाचार तत्काल पूरे देश में प्रसारित हो गए और चारों ओर शोक की लहर छा गई।

लगभग ७० वर्ष की सुदीर्घ दीक्षा पर्याय में स्थविरवर स्वामी जी म. ने अखण्ड चरित्र साधना की, सेवा की अखण्ड लौ जलाई विनय एवं सरलता की जो दिव्यता प्राप्त की, आत्मा को निर्मल एवं संयमनिष्ठ बनाने में जो सतत जागरूकता बरती, वह हम सबके लिए आदर्श हैं।

* * * * *

मन के साथ ही वचन से भी संयम रखने की आवश्यकता होती है। अशुभ तथा किसी को भी चोट पहुंचाने वाले शब्दों का त्याग करना साधक के लिए अनिवार्य है। शस्त्र के द्वारा शरीर को जो चोट पहुंचती है वह तो अल्प समय में ही ठीक हो जाती है किंतु कटुवचनों के द्वारा मन को जो चोट पहुंचती है वह कभी भी मिट नहीं सकती।

* * * * *

कितनी अज्ञानता है आज मानव के मन में? वह यह नहीं सोच पाता कि भिन्न-भिन्न प्रदेश के मनुष्यों का पहनावा अलग प्रकार का है तो क्या, उनके रीति-रिवाज भिन्न हैं तो क्या? आत्मा तो सभी की एक तरह की है। अगर आत्मा में निर्मलता है तो मनुष्य उच्च है। आत्मिक निर्मलता के अभाव में देश, जाति, सम्प्रदाय आदि से सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

युवाचार्य श्री मधुकर मुनिः जीवन दर्शन

• मधुकर झणकार चरणोपासिका साध्वी श्री आनंद प्रभा 'आशा' आमेट

भारतवर्ष की धरती रत्नगर्भा वसुंधरा हैं। इस धरा पर अनेकानेक महान विभूतियों ने अवतरित होकर इसके गौरव में चार चांद लगाये हैं। इसी भारतवर्ष के राजस्थान में अनेक शूरवीर, धर्मवीर, कर्मवीर, दानवीर, तपवीर भी हुए हैं जिनकी गौरव गाथायें आज भी जन जन में प्रचलित हैं और बड़े गौरव के साथ सुनी और सुनाई जाती हैं।

इसी राजस्थान में स्वतंत्रता के पूर्व जोधपुर राज्य था जिसमें ओसिया नामक नगर था और आज भी है। ओसिया इतिहास प्रसिद्ध नगर है। प्राचीनकाल में इस नगर का अपना विशिष्ट महत्व था। इसी नगर से जैन धर्मावलम्बियों की सुविख्यात ओसवाल जाति की उत्पत्ति हुई। इसी ओसया के समीप तिवरी नामक ग्राम हैं। कहा जाता है कि तिवरी किसी समय ओसिया का ही एक भाग था। कभी यहां ओसवालों के पांच सौ सुखी परिवार रहा करते थे। समय की बात है। आज कई स्थान ऐसे हैं कि पहले जहां जंगल थे वे अब आबाद हैं और जो आबाद थे, वहां अब जंगल हैं। इसी तिवरी ग्राम में श्रीमान जमनालाल जी धाड़ीवाल (कोठारी) अपनी पत्नी धर्मपरायण, पतिपरायणा, सौभाग्यवती तुलसीबाई के साथ रहा करते थे।

जन्म:- दि. १२ दिसम्बर १९१६, वि.सं. १९७० मार्गशीर्ष शुक्ला १४ के शुभ दिन माता तुलसीबाई की पावन कुक्षि से एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ। परिवार में हर्षोल्लास छा गया। माता-पिता ने अपने इस पुत्र का नाम रखा 'मिश्रीमल'। श्रीमान जमनालाल जी के कुल तीन पुत्र थे-धनराज जु फूलचंद जी एवं मिश्रीमल जी। श्रीमान जमनालाल जी के ज्येष्ठ भ्राता निःसंतान थे, इस कारण उन्होंने धनराजजी को गोद ले लिया था। फूलचंद जी बाल्यावस्था में ही कालकवलित हो गये थे, इस कारण माता-पिता का समस्त दुलार बालक मिश्रीमल पर ही केन्द्रित हो गया।

होनहार बिरवान के... महापुरुषों के लक्षण उनके बाल्यकाल में ही प्रकट हो जाते हैं। इसीलिये कहावत प्रचलित हुई कि होनहार बिरवान के होत चिकने पात अधवा पूत के पांव पालने में दिखाई देते हैं। ऐसे ही कुछ विलक्षण लक्षण बालक मिश्रीमल में भी विद्यमान थे। आपकी श्रद्धा आरंभ से ही धर्म के प्रति रही। अपनी माताजी के साथ मुनियों एवं महासतियों के दर्शन करने और प्रवचन पीयूष का लाभ लेने के लिये आप भी जाते थे।

इस क्षेत्र में आचार्य श्री जयमल जी म.सा. के सम्प्रदाय के मुनियों का आगमन प्रायः होता रहता था। उन दिनों स्वामी श्री जोरावरमल जी म.सा. एवं स्वामी श्री हजारीमल जी म.सा. का आगमन तिवरी में समय समय पर होता रहता था। बालक मिश्रीमल स्वामी श्री हजारीमल म.सा. के समीप बैठा रहता और उनसे कहानियां सुना करता। बालक मिश्रीमल की स्थिति यह हो गई कि यदि माता तुलसीबाई उसे घर चलने के लिए कहती तो वह मना कर देता और कह देता कि वह तो महाराज सा.के पास ही रहेगा।

एक बार की बात है कि स्वामी श्री जोरावरमल जी म.सा. स्थानक भवन में प्रवचन फरमा रहे थे। बालक मिश्रीमल ने स्थानक के बाहर कुछ समय के बालकों को एकत्र किया। स्वयं एक चबूतरे पर बैठ गए और बालकों से कहा-“मैं तुम्हारा गुरु हूँ। तुम सब मेरे चेले हो। मैं बखाण दे रहा हूँ, तुम खमा बापजी बोलना।”

बालकों का यह धार्मिक खेल चल ही रहा था कि माता तुलसीबाई ने आकर बालक मिश्रीमल को घर चलने का कहा। इस बालक मिश्रीमल ने उत्तर दिया -“मैं अभी बखाण दे रहा हूँ। घर नहीं जाऊंगा।” बातों बातों में मिश्रीमल ने यहां तक कह दिया कि वह गुरु महाराज के पास जायेगा तो फिर घर नहीं आयेगा। माता तुलसीबाई ने अपने पुत्र की बातों का और बखाण का विवरण स्वामी श्री जोरावरमल जी म.सा. को कह सुनाया। स्वामी जी सब कुछ सुनकर और बालक मिश्रीमल को देखकर केवल मुस्करा कर रह गए। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनकी अनुभवी आंखों ने बालक का भविष्य पढ़ लिया हो। बालक मिश्रीमल के गुणों को देखकर यह कहावत सहसा स्मरण हो आती है कि होनहार बिरवान के होत चिकने पात अथवा पूते के पांव पालने में नजर आते हैं।

धीरे धीरे बालक मिश्रीमल में धर्म के प्रति और अधिक रुचि जागृत हुई और संस्कार दीक्षा की तैयारी के होने लगे।

माता व पुत्र का वैराग्य:- प्रायः ऐसा होता है कि जब पुत्र दीक्षा लेने की बात करता है तो माता उसे समझाती है, दुःख प्रकट करती है आंसू बहाती है। ऐसे उदाहरण जैन परम्परा में अनेकों मिल जावेंगे किंतु ऐसा उदाहरण शायद ही मिले कि माता पुत्र को दीक्षा के लिए प्रेरित करें।

महासती श्री सरदार कुंवर जी म.सा. बड़ीशान्त विलक्षण और व्यवहार कुशल थी। महासती जी के पावन सात्त्विक में माता तुलसीबाई के हृदय में वैराग्य के भाव अंकुरित हुए। किंतु उन्होंने विचार किया कि स्वयं संयमव्रत अंगीकार करने के पूर्व यदि पुत्र मिश्रीमल को इस पथ पर अग्रसर कर सकूँ तो उसका जीवन संवर जावेगा माता ने जिस पथ का अपने लिए चुनाव किया उसी पथ पर अपने पुत्र को भी चलने के लिये प्रेरित किया।

जिस समय माता ने स्वयं द्वारा दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त करते हुए अपने पुत्र से उसकी इच्छा प्रकट करने के लिए कहा तो मिश्रीमल ने उत्तर दिया “माता जी! आप तो मेरे ही मन की बात कर रही हैं। मेरा भी मन होता है कि गुरुदेव के चरणों के निकट ही बैठा रहूँ। एक क्षण के लिए भी उनसे अलग होना नहीं चाहता। गुरुदेव के पास जाने के पश्चात् वहां से हटने के लिए मेरा मन नहीं करता।”

अपने पुत्र की बात सुनकर माता तुलसीबाई का मन प्रसन्न हो गया। जैसा वे चाहती थी, वैसा होना दिखाई देने लगा। यथासमय माता तुलसीबाई ने गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमलजी म.से अपने पुत्र को दीक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की।

दीक्षा में विघ्न:- बालक मिश्रीमल की दीक्षा की बात परिवार के सदस्यों को मिली तो वे विचलित होकर दीक्षा में विघ्न उत्पन्न करने लगे। बात जोधपुर राज्य तक पहुंची। इस विषयक आदेश मेड़ता के मजिस्ट्रेट श्री बादरमल जी गदैया के पास भी पहुंचे। आदेश में कहा गया था कि बालक अवयस्क हैं, इसकी दीक्षा रोक दी जाय। मजिस्ट्रेट ने बालक मिश्रीमल की परीक्षा ली, उसकी मानसिक

तैयारी देखी। मिश्रीमल की भावनाएं और ज्ञान को देखकर मजिस्ट्रेट स्वयं आश्चर्यचकित रह गये। मजिस्ट्रेट पर मिश्रीमल की बौद्धिक प्रतिभा का प्रभाव पड़ा। अंततः उसने दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी।

चूंकि पिता श्री जमनालाल जी धाड़ीवाल का देहावसान हो चुका था, इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार के सदस्य नहीं चाहते हों कि मिश्रीमल दीक्षा ले। उसके दीक्षा ले लेने के पश्चात् श्री जमनालाल जी धाड़ीवाल के वंश का क्या होगा? कारण कुछ भी रहे हो, विध्व उत्पन्न करने वाले दीक्षा नहीं रोक सके।

दीक्षा की अनुमति मिल जाने के पश्चात् भी कुछ परिस्थितियों को ध्यान में रखकर गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमल जी म.सा. ने निर्णय कर लिया कि मिश्रीमल की दीक्षा किसी अन्य क्षेत्र में होना चाहिए। सभी प्रकार से विचार करने के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि दीक्षोत्सव अजमेर राज्य की 'भिणाय' ग्राम में आयोजित किया जाय।

डाकू नहीं रक्षक:- शुभ मुहूर्त के अनुसार वैसाख शुक्ला दशमी वि.सं. १९८०, तदानुसार २६ अप्रैल, १९२३ को भिणाय ग्राम में दीक्षा की तैयारियां आरंभ हो गईं। इस छोटे से ग्राम में दूर दूर से दीक्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिए हजारों की संख्या में धर्मप्रेमी नर-नारियों का आगमन आरंभ होने लगा। यहां होने वाले दीक्षोत्सव के समाचार भी आसपास ही नहीं दूरस्थ क्षेत्रों तक फैल गए। उन दिनों इस क्षेत्र में डाकू मोड़सिंह सक्रिय था। उसका उन दिनों लोगों पर काफी आतंक भी था। उससे क्षेत्र की जनता भयभीत भी थी। भिणाय ग्राम में हजारों की संख्या में लोग आयेगे। ऐसे में कुछ भी अनहोनी घटना हो सकती है। इस आशंका से लगभग सभी भयभीत थे।

एक दिन पांच बर्दीधारी व्यक्ति सिहू ग्राम से भिणाय आये। इन्हें देखकर उपस्थित जनसमूदाय भयभीत हो गया। गांव में कुछ भी अनहोनी की आशंका से आतंक छा गया तभी वे पांचों व्यक्ति गुरुदेव श्री जोरावरमल जी म.सा. की सेवा में पहुंचे और पूरी श्रद्धा भक्ति पूर्वक वंदन नमस्कार किया। गुरुदेव ने इन्हें देखा, मुस्कराये और लोगों को सम्बोधित कर कहा-"आप किसी प्रकार की भी आशंका न रखें। ये लुटेरे नहीं आपके रक्षक हैं।"

गुरुदेव के वचनों को सुनकर लोगों ने राहत की सांस ली। इसके पश्चात् लोगों को बताया गया कि ये सिहू के ठाकुर रुद्रदान जी, ठा. गोररुदान जी आदि हैं, ठाकुर रुद्रदान जी के लोगों में भयभीत होने का कारण पूछने पर उन्हें डाकू मोड़सिंह का आतंक बताया।

डाकू मोड़सिंह ठाकुर रुद्रदान जी का बालसखा था। ठाकुर रुद्रदान सिंह जी गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर डाकू मोड़सिंह से मिले, गुरुदेव के प्रभाव की चर्चा भी की। डाकू मोड़सिंह ने कहा-"मैं तो ऐसे ही अवसर की खोज में था। किंतु अब तुम्हारे आने से स्थिति बदल गई है तुम मेरे मित्र हो। तुम्हारे गुरु मेरे गुरु समझो। जाकर गुरुदेव से कह दो कि किसी भी प्रकार की चिंता न करें। दीक्षा के दूसरे दिन तक इस क्षेत्र में किसी को भी कोई क्षति नहीं होगी। यदि ऐसा होगा तो उसका उत्तरदायित्व मोड़सिंह का होगा।

इस अवसर पर पुलिस का भी कड़ा प्रबंध था। दीक्षा में डाकू मोड़सिंह ऊंट पर सवार होकर आया। उसने गुरुदेव के दर्शन किये और दीक्षोत्सव में सम्मिलित होकर चला गया। उसके जाने के पश्चात् ही पुलिस को उसके आने का पता चला। यह सब धर्म का प्रभाव था और था गुरुदेव के पुण्य का चमत्कार।

श्री मिश्रीमल की दीक्षा विधि सानंदनिर्विघ्न सम्पन्न हुई और बालक मिश्रीमल, मुनि मिश्रीमल जी म.सा. के रूप में जन जन के सम्मुख आये।

अध्ययन:- अल्पवय में संयममार्ग ग्रहण किया, इसलिये विद्यालयीन शिक्षा के सम्बन्ध में विचार भी नहीं किया जा सकता। बाल्यकाल में माता द्वारा जो धार्मिक संस्कार दिये गये वहीं बाल मुनि मिश्रीमल जी की प्रारंभिक शिक्षा थी। संभव है, कुछ अक्षर ज्ञान भी प्राप्त किया हो। दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त स्वामी श्री जोरावरमलजी म.सा. एवं स्वामी जी हजारीमल जी म.सा. ने बाल मुनि श्री मिश्रीमल जी म.सा. के लिये अध्ययन की समुचित व्यवस्था करवाई। आप भी दत्तचित्त होकर अध्ययन की दिशा में प्रगति पथ पर अग्रसर होने लगे। आपके अध्यापन के लिये संस्कृत-प्राकृत के लब्धप्रतिष्ठित विद्वानों को बुलाया गया। भाषा ज्ञान के साथ ही आप संस्कृत व्याकरण, कोश, प्राकृत व्याकरण, जैन आगम, उनकी टीकाएं, न्याय-दर्शन आदि का ज्ञान भी आप प्राप्त करने लगे। व्याकरण और नव्य-न्याय की शिक्षा के लिए अनेक मैथिल विद्वानों को आमंत्रित किया गया। सुविख्यात विद्वान प.बेचरदास जी जोशी, डा. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, पं. शोभाचन्द्र जी भारिल्ल आदि की देखरेख में आपकी यह ज्ञान-यात्रा गतिमान होती रही और लगभग दस बारह वर्ष की अवधि तक आपने कठोर परिश्रम, दृढ़ अध्यवसाय और एकाग्र चित्त के साथ ज्ञानार्जन किया। इस अवधि में आपने अध्ययन, भाषण और लेखन तीनों में प्रौढ़ता प्राप्त कर ली। इसके साथ ही आपने विविध विषयों के ग्रंथों का भी अनुशीलन किया। कुल मिलाकर आपने तीस वर्ष की आयु में स्थानकवासी जैन धर्मावलम्बियों के एक विद्वान, कुशल प्रवचनकार और सिंहस्थ लेखक के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित कर ली। यह सब आपकी लगन, निष्ठा और कठोर परिश्रम का ही परिणाम था।

आचार्य पद: प्राप्ति व त्याग:- जय गच्छ के अष्टम आचार्य श्री कानमल जी म.सा. का स्वर्गवास वि.सं. १९८५ में हो जाने से आचार्य का पद रिक्त था। कुछ वर्षों तक जय गच्छ की सम्पूर्ण व्यवस्था स्वामीजी जोरावरमल जी म.सा. सम्भालते रहे। उनके स्वर्गवास के पश्चात स्वामी श्री हजारीमल म.सा. ने जयगच्छ की व्यवस्था सम्भाल ली। दोनों ने पद ग्रहण नहीं किया। यद्यपि दोनों का प्रभाव किसी आचार्य से कम नहीं था। वि.सं. १९८९ में छः सम्प्रदायों के मुनि सम्मेलन में मुनि श्री हजारीमल जी म.सा. को प्रवर्तक और मुनिश्री चौथमल जी म.सा. को मंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इस प्रकार जयगच्छ के आचार्य का पद रिक्त ही रहा।

इसी बीच मुनिश्री मिश्रीमल जी म.सा. एक सुयोग्य विद्वान, आगमज्ञ, कुशल प्रवचनकार के रूप में समाज के सम्मुख आये। चारों ओर से उन्हें आचार्य पद प्रदान करने की मांग उठने लगी। किंतु आपको किसी पद की लालसा नहीं थी, इस कारण आपने इस प्रस्ताव को निर्लिप्त भाव से अस्वीकार कर दिया। किंतु इस संबंध में, आप पर पद ग्रहण करने के लिये दबाव बढ़ता ही गया और अंततः वि.सं. २००४ में अपने स्वभाव के विपरीत समाज का दबाव बढ़ने पर आचार्य पद स्वीकार करना ही पड़ा। अब आप आचार्य श्री जसवंतमल जी म.सा. के रूप में जयगच्छ का नेतृत्व करने लगे।

आपका नाम बदल गया, पद बदल गया किंतु स्वभाव, जो मिश्री सहशथा, नहीं बदला। आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के उपरान्त वे बेचैनी का अनुभव करने लगे। सम्प्रदायों की आपसी खींचातानी से वे क्षुब्ध थे। ऐसी विषम परिस्थितियों में उन्हें शांति कैसे मिलती। अंततः आपने आचार्य पद का त्याग करने का निर्णय कर लिया। आपके इस निर्णय से कुछ लोग नाराज भी हुए। अंततः आपने अपने निर्णय की मूर्त रूप प्रदान कर दिया। आचार्य पद का त्याग कर दिया। आपका यह अद्भुत त्याग वैसे तो सभी के

लिये आदर्श उपस्थित करता हैं किंतु पद लोलुप व्यक्तियों के लिये विशेष शिक्षाप्रदान करता हैं। वे भी महापुरुष का अनुसरण करे और पद के पीछे न भाग कर अपनी साधना में लीन बने रहे।

आपके पद त्यागने से श्रमण संघ के संगठन को शक्ति मिली और श्रमण संघ की एकता और संगठन के प्रयास और तेज हो गये और अंततः वि.सं. २००९ ये प्रयत्न फलीभूत हुए।

आघात:- वैसे अध्ययन/ज्ञानार्जन कभी समाप्त नहीं होता किंतु बहुधा यही कहा जाता है कि अध्ययन के पश्चात् आपने यह किया... आदि आदि। तो मुनि श्री मिश्रीमल जी म.सा. ने भी अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् लेखन की ओर अपने कदम बढ़ाये। जैन आगमों के प्रति आरंभ से ही आपके मन में विशेष आकर्षण था। आप सरल भाषा और बौध्गम्य शैली में आगम साहित्य जन जन तक पहुंचाने की भावना रखते थे। इस दिशा में आपने कुछ लेखन कर अपना प्रयास प्रारंभ भी किया। पाठकों से आपको भरपूर सराहना भी मिली।

आपकी साहित्यिक यात्रा का अभी प्रारंभ ही हुआ था कि आपके जीवन निर्माता गुरुभ्राता स्वामी श्री हजारीमल जी म.सा. का चैत्र कृष्ण १०, वि.सं. २०१८ में समाधिपूर्वक देहावसान हो गया। गुरुभ्राता के देहावसान से आपके अंतर्मन को गहरा आघात लगा। गुरुभ्राता के न रहने से आप पर समाज के उत्तरदायित्व का भार आ गया, जिसे आपने कुशलता पूर्व निभाया।

स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन:- मुनि श्री मिश्रीमल जी म.सा. के साहित्यिक व्यक्तित्व निर्माण में स्वामी श्री हजारीमल जी म.सा. का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। जब स्वामी जी का निधन हो गया, तो आपश्री ने उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने की दिशा में प्रयास प्रारंभ किया। इस दिशा में आपने सर्वप्रथम मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन करवाया। इस स्मृति ग्रंथ में अनेक शोध निबंध उच्चकोटि की गवेषणात्मक सामग्री आदि संग्रहीत हैं। यह ग्रंथ बेजोड़ है एक ऐतिहासिक योगदान हैं।

वि.सं. २०२२, ईस्वी सन् १९६५ के अप्रैल माह में आपकी प्रेरणा से अपने गुरुभ्राता की स्मृति में मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन नामक संस्था की स्थापना हुई। इस संस्था के माध्यम से साहित्य प्रकाशित करवाकर जन जन तक पहुंचाने का कार्य आज भी अबाधगति से चल रहा हैं।

आज इस संस्था के माध्यम से सैकड़ों पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है तथा आगे भी होता रहेगा ऐसा विश्वास हैं।

आगम प्रकाशन का संकल्प:- जैसा कि पूर्व में ही संकेत दिया जा चुका हैं कि अपने अध्ययन काल में ही मुनिश्री की आगम साहित्य के प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी और जब कभी भी वे अपने प्रवचन में आगम-अंश का उद्धरण प्रस्तुत करते तो अपनी विशिष्ट विवेचनात्मक शैली अपनाते थे। उनके द्वारा दिया गया अर्थ बोधगम्य होता था। श्रोता उसे आत्मसात कर लेता था। इसी अनुक्रम में मुनिश्री के मानस पटल पर ये विचार उत्पन्न हुए कि आगम-साहित्य, विशेषकर आगम बत्तीसी का हिन्दी भाषा में सरल सुबोध विवेचन कर जनहित में प्रकाशन करवाया जावे।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि मुनिश्री के गुरुदेव स्वामी श्री जोरावरमलजी म.सा. आगमों के गंभीर ज्ञाता और व्याख्याता थे। उनके मन में भी ऐसी ही भावना थी कि आगमों का सुबोध भाषा शैली में प्रकाशन होना चाहिए। ऐसा होने से समाज आगम ज्ञान से वंचित नहीं

हो पायेगा। स्व. स्वामी श्री जोरावरमल जी म.सा. ने अपनी जीवन काल में आपको अनेक बार आगमों का सरल एवंसुबोध भाषा शैली में अनुवाद एवं विवेचना कर प्रस्तुत करने की प्रेरणा भी दी थी। ऐसी ही भावना स्वामी श्री हजारीमलजी म.सा. के हृदय में भी उत्पन्न हुई थी। ऐसी ही भावना स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.सा.की भी रही कि आगमों का सुव्यवस्थित सम्पादन, अनुवाद, विवेचन व प्रकाश न होना चाहिए।

अपने गुरुदेव एवं गुरुभ्राताओं की भावनाओं के साथ ही स्वयं की भी प्रबल भावना आगम प्रकाशन की रही। यही कारण था कि आपकी प्रेरणा से आगम प्रकाशन समिति की स्थापना हुई। जैन आगम प्रकाशन समिति की योजना आपके ब्यावर वर्षावास वि.सं. २०३५ में हुई। यह एक भगीरथी प्रयास था। इस योजना को मूर्तरूप देने के लिये समाज के प्रतिष्ठित समाजसेवी, देश के लब्धप्रतिष्ठित विद्वानों के सहयोग की अपेक्षा थी। यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आपकी के कठिन प्रयासों से देश के मूर्धन्य मुनि भगवंतों और सुविख्यात विद्वानों के सहयोग से जैन आगमों के सम्पादन-विवेचन-प्रकाशन का कार्य आरंभ हुआ। अनेकानेक कठिनाइयाँ और बाधाओं के बावजूद आपकी उपस्थिति में अधिकांश आगम ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका था। क्रूर काल ने इतनी भी प्रतीक्षा नहीं की कि वे इस योजना को अपनी आंखों से पूरा होता देख सके। वर्ष १९८३ ई.में नासिक में उनके देवलोक हो जाने के उपरान्त यद्यपि उनके अनुयायियों में नैराश्य का वातावरण छा गया था तथापि उनके द्वारा छोड़े गये अधूरे कार्यों को पूरा करने के प्रति पूरा उत्साह था। इसी का परिणाम है कि आज आगम बत्तीसी का प्रकाशन हो चुका है और उनके द्वारा प्रारंभ की गई योजना पूर्ण हो चुकी है। आज इस संस्था द्वारा प्रकाशित जैन आगम न केवल भारत में वरन विदेशों में भी पहुंच चुके हैं। विद्वानों ने इन आगम ग्रंथों की खुले हृदय से प्रशंसा की है।

अन्य संस्थाये:- मुनिश्री मिश्रीमल जी म.सा. द्वारा स्थापित कुछ अन्य संस्थाओं का परिचय विस्तार भय मे न देते हुए केवल नामोल्लेख किया जा रहा है। यथा-श्री जैन सिद्धात शाला, मुनिश्री ब्रज मधुकर जैन पुस्तकालय, मुनि श्री हजारीमल जी स्मृति प्रकाशन, बुक बैंक। ये सभी संस्थाये सुव्यवस्थित रूप से चल रही हैं और उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो रही हैं।

युवाचार्य-पद:- आपका वि.सं. २०३६ का वर्षावास सिंहपोल जोधपुर में था। आचार्य सम्राट श्री आनंद ऋषि जी म.सा. का वर्षावास हैदराबाद में था। आचार्य सम्राट श्री आनंद ऋषि जी म.सा. ने लम्बे समय तक अपने उत्तराधिकारी के सम्वन्ध में चिंतन करते हुए अपनी ८० वीं जन्म जयंती के सुअवसर पर दि. २५.७.७९ को आपको युवाचार्य के पद पर नियुक्त कर आपका उत्तराधिकारी बनाया। आचार्य सम्राट की इस ऐतिहासिक घोषणा का सर्वत्र स्वागत हुआ। जोधपुर श्री संघने इस घोषणा से अत्यधिक हर्ष प्रकट किया और युवाचार्य मुनिश्री मिश्रीमल जी म.सा. का सार्वजनिक अभिनंदन कर अपनी भावना अभिव्यक्त की। इसी अनुक्रम में श्रमण सूर्य श्री मरुधर केसरी जी म.सा. के परामर्श से चैत्र शुक्ला, १० वि.सं. २०३६ तदनुसार २६ मार्च १९८० को जोधपुर श्रीसंघ द्वारा एक महोत्सव का आयोजन कर आपको युवाचार्य पद की चादर ओढ़ाई गई। इसे चादर महोत्सव भी कहा गया। इस महोत्सव में अनेक सुविख्यात मुनिगण, महासतियांजी तथा हजारों की संख्या में श्रावक-श्राविकायें उपस्थित हुए थे तथा अपना श्रद्धाभाव प्रकट किया था।

दक्षिण की ओर:- आपका विहार क्षेत्र अभी तक मारवाड़ या समीपवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित था। युवाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के उपरान्त सीमित क्षेत्र में रहना कुछ असंभव लगने लगा। उत्तरदायित्व में भी वृद्धि हुई। कांग्रेस के अधिकारी, श्रमण संघ के शुभ चिंतक और प्रमुख श्रावकों का यह

प्रयास रहा कि युवाचार्य का एक बार आचार्य भगवंत के साथ मिलकर विचार विमर्श करना अति आवश्यक है। श्रमण संघ की समस्याएँ दोनों के प्रत्यक्ष मिलन और चर्चा से सुलझ सकती है। संघ की एकता, अखंडता की बात बार बार उठती और युवाचार्य श्री को राजस्थान छोड़कर आचार्य सम्राट के पास महाराष्ट्र की ओर विहार करने के लिये प्रेरित करती।

वि.सं. २०३९ का अपना मदनगंज का यशस्वी वर्षावास समाप्त होने पर आपने वहां से विहार कर दिया और ग्रामानुग्राम विहार करते हुए सोजत रोड़ पधारे। यहां श्री मरुधर केसरी जी म.सा. एवं श्री कन्हैयालालजी म.सा. 'कमल' आदि मुनिराजों के साथ कुछ दिन ठहरे। फिर सोजत रोड़ से महाराष्ट्र की ओर विहार कर दिया।

गर्मी का मौसम और दस-पन्द्रह किलोमीटर का प्रतिदिन का विहार, उसके साथ ही उपप्रवर्तक स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.सा. की अस्वस्थता। स्वामीजी म.सा. का स्वास्थ्य काफी क्षीण हो चुका था, फिर भी एक संकल्प था, आचार्य सम्राट की सेवा में पहुंचने का, तो विहार यात्रा असुविधाओं के होते हुए भी सतत चल रही थी। जहां कहीं भी आप पहुंचते श्रद्धालु भक्त अपने भावी आचार्य के दर्शनलाभ के लिए उमड़ पड़ते। मारवाड़, मेवाड़ की भूमि से आपके चरण मालवा की ओर बढ़े। मालवा में आपका पदार्पण प्रथम बार ही हो रहा था। आपके पदार्पण से पूर्व ही आपके व्यक्तित्व की सौरभ से यहां के निवासी परिचित थे। जब मालवा के ग्राम नगरों में आपका आगमन होता तो श्रद्धालु भक्त आपके दर्शन करने और प्रवचन पीयूष का पान करने उमड़ पड़ते। मालवा के ग्राम नगरों में जहां भी आपका पदार्पण हुआ वहीं हर्षोल्लास का वातावरण निर्मित हो गया। आपका लक्ष्य आचार्य सम्राट की सेवामें पहुंचना था। दूरी काफी थी। इधर गर्मी का प्रकोप बढ़ता ही जा रहा था। ऐसे में उग्र विहार हो पाना भी कठिन था। ऐसी स्थिति में आप कहीं पर भी अधिक ठहर नहीं सकते थे। ग्रामानुग्राम धर्मध्वजा फहराते हुए मालवा की भूमि से आपके कदम महाराष्ट्र की ओर बढ़ गये। गर्मी में सतत विहार में रहने के कारण स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.सा. के स्वास्थ्य पर कुछ विपरीत प्रभाव पड़ा। वैसे भी इंदु शरीर व्याधि मंदिरम के अनुसार यह शरीर व्याधियों का घर है। स्वामी जी म.सा. का स्वास्थ्य पहले से ही नरम था। गर्मी और विहार के कारण उनका स्वास्थ्य और अधिक गिर गया। स्वामी जी के गिरते स्वास्थ्य से युवाचार्य श्री के अंतर में उथल पुथल भले ही मची हुई होगी किंतु ऊपर से वे शांत और गंभीर ही बने रहते थे। सतत विहार करते हुए आपका पदार्पण धूलिया हुआ।

स्वामीजी का स्वर्गवास:- युवाचार्य श्री का जैसे ही धूलिया पदार्पण हुआ, वैसे ही धूलिया में हर्षोल्लास की लहर फैल गयी। धूलिया में आपका पदार्पण २६ जून १९८३ को हुआ था। २९ जून १९८३ को आगे की ओर विहार करने की घोषणा की जा चुकी थी किंतु उस दिन घनघोर वर्षा होने से विहार न हो सका। ३० जून १९८३ को स्वामीजी की अस्वस्थता बढ़ने लगी। इससे भी विहार न हो सका। डाक्टरों ने स्वास्थ्य परीक्षण के पश्चात पूर्ण विश्राम की सलाह दी। स्वामीजी म. के शरीर में रक्त की कमी को देखते हुए रक्त चढ़ाने की बात आई तो एक रोमांचक दृश्य उपस्थित हो गया। धूलिया के सैकड़ों युवक अपना रक्त देने के लिए चिकित्सालय पहुंच गये और अपना रक्त देने के लिए कतारबद्ध खड़े हो गये। स्वामीजी को रक्त भी चढ़ाया गया किंतु इसका भी कोई असर नहीं हुआ। डाक्टरों ने स्वामी जी को बम्बई या नासिक ले जाने का आग्रह किया। युवाचार्य श्री डाक्टरों की भाषा समझ गये। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए युवाचार्यश्री ने फरमाया-“स्वामी जी को इस स्थिति में अब आपके उपचार की

जो, हमारे उपचार की आवश्यकता है, हम इनको समाधि जाप और आराधना कराके इनकी आत्मा को स्वर्ग पहुंचाना चाहते हैं, ७० वर्ष की सुदीर्घ और निर्मल संयम साधना पर अब कलश चढ़ाने का समय है, इस समय प्राण बचाने के बजाय आत्म-समाधि पहुंचाने का महत्व है।”

युवाचार्य श्री के इस कथन का प्रभाव सभी पर हुआ। स्वामीजी को युवाचार्य श्री ने तिविहार संथारा करा दिया। कुछ देर के बाद चौ-विहार संथारा भी पचखा दिया। समय अपनी गति से बीत रहा था। घड़ी को सुइयां खिसकती जा रही थी। दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ रही थी। चौबीसी, आलोचना आदि सुनाई जा रही थी। युवाचार्य श्री स्वयं ने स्वामीजी का प्रिय पाठ उवसगहर सुनाया। उवसगहर सुनते समय कई बार बीच बीच में स्वामीजी ने आंखें भी खोली। किंतु टूटी की बूटी नहीं हैं। अंततः बारह बजकर बीस मिनट पर वह ज्योति मृण्मय देह का आवरण तोड़कर अनन्त अंतरिक्ष में विलीन हो गये। श्रमण संघ में एक समतायोगी, तेजस्वी संत का अभाव छा गया। उत्तरकार्य की औपचारिकता पूरी कर युवाचार्य श्री अपने लक्ष्य की ओर बढ़ गए किंतु अंतर में क्या रहा होगा, इसका अहसास किसी को नहीं होने दिया।

नासिक वर्षावास:- युवाचार्य श्री नासिक पहुंचे और आचार्य सम्राट श्री आनंद ऋषिजी म.सा. के साथ विभिन्न कार्यक्रमों के साथ वर्षावास व्यतीत किया। कई अर्थों में नासिक का यह वर्षावास महत्वपूर्ण रहा। श्रमण संघ के सम्बन्ध में भी यहां विचार विमर्श हुआ। श्रमण संघ की समाचारी में एकरूपता लाने के लिये अनेक योजनायें बनी, पत्राचार चला और सभी को आशा बंधने लगी कि आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री के संयुक्त प्रयासों से अनेक उलझी हुई समस्यायें सुलझ जायेगी।

वज्राघात:- नासिक में विचार विमर्श चल ही रहा था कि एकाएक वज्राघात हो गया। वर्षावास के चार माह बड़े ही आनंद, उल्लास और बहुविध कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुए। श्रमण संघ की सुदृढ़ता के लिए अनेक नवीन योजनाओं पर गंभीर विचार विमर्श हुआ। इस प्रकार हर्षोल्लासमय वातावरण में वर्षावास समाप्त हुआ। वर्षावास की समाप्ति के पश्चात् आचार्य सम्राट, युवाचार्यश्री आदि अन्य मुनि गण पंचवटी, नासिक से विहार कर रविवार पेठ कारंजा स्थित स्थानक में पधारे। अचानक दि. २६ नवम्बर १९८३ को वज्राघात हुआ। अल्प अस्वस्थता के पश्चात् युवाचार्यश्री का आकस्मिक निधन सम्पूर्ण स्थानकवासी जैन समाज के लिए वज्रपात के समान था। युवाचार्यश्री के निधन का समाचार आकाशवाणी से भी प्रसारित हुआ। जिसने भी आपके आकस्मिक निधन का समाचार सुना वही हतप्रभ रह गया। श्रद्धालु भक्तों का सेलाब नासिक शहर की ओर उमड़ पड़ा।

भारतवर्ष के कोने-कोने से आये श्रद्धालुओं की उपस्थिति में अश्रुपूरित नेत्रों से गोदावरी नदी के पावन तट पर उन्हें अंतिम श्रद्धांजलि दी गई। स्थानकवासी जैन समाज का एक महान प्रतिभा सम्पन्न युग पुरुष सदा के लिये चला गया।

व्यक्तित्व की सौरभ:- युवाचार्यश्री, जो सर्वत्र श्रीमधुकर मुनिजी के नाम से सुविख्यात थे, में अनेकानेक गुण थे। अनेक गुणों में सरलता और विनय गुण तो उनमें इस सीमा तक थे कि उन्हें मैं शब्दों में अभिव्यक्त करने की स्थिति में नहीं हूँ। युवाचार्य श्री के गुणों के सम्बन्ध में जो लिखा गया है, मैं वही उद्धरित करना उचित समझती हूँ। यथा-

“विद्या के साथ विनय, अधिकार के साथ विवेक; प्रतिष्ठा और लोक श्रद्धा के साथ सरलता ~~आदि~~ ऐसी अदभुत बातें हैं जो किसी विरले में ही पायी जाती हैं। श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के महान संत श्रमण संघ के युवाचार्य मुनि श्री मिश्रीमल जी म. में ये विरल विशेषताएं देखकर मन श्रद्धा और आश्चर्य से पुलक-पुलक हो जाता है। उनके जीवन में गहरे पेठकर देखने पर भी कहीं कटुता, विषमता, छलछिद्र, अहंकार आदि के कांटे नहीं मिलेंगे। वे बहुत ही सरल (पर, चतुर), बहुत ही विनम्र (पर, स्वाभिमानी), बहुत ही मधुर (पर, निश्चल) और अनुशासन प्रिय (पर, कोमल हृदय) श्रमण हैं जिन्हें देखकर सहसा यह कहना पड़ेगा, यह बिना कांटे का गुलाब है। एक ऐसा गुलाब का फूल जिसमें सुगन्ध और सौन्दर्य है, मगर उसमें कांटे नहीं हैं।”

“शरीर से कृश, दुबले-पतले, मझला कद गौरवर्ण भव्य तेजस्वी ललाट, चमकदार बड़ी बड़ी आंखें, मुख पर स्मित की खिलती आभा और स्नेह तथा सौजन्य वर्षाती कोमलवाणी, प्रथम परिचय में ही अपना अमिट प्रभाव डाल देती है, उनसे बातचीत करो, तो ध्यानपूर्वक, मंदस्मित के साथ सुनते रहेंगे, जैसे प्रश्नकर्ता के प्रति उनकी गहरी दिलचस्पी है और फिर नपे-तुले शब्दों में ऐसा सटीक उत्तर देंगे कि प्रश्नकर्ता निरुत्तर नहीं, संतुष्ट हो जाता है। आत्मा से आत्मा का स्पर्श होने जैसे अनुभूति उनके कुछ ही क्षणों के सहवास में होने लगती है।” (युवाचार्य श्री मधुकर मुनि: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ ४७)

युवाचार्य श्री विनम्रता की साक्षात् मूर्ति थे। अहंकार और साधुता का परस्पर वैर है। धर्म का मूल ही विनय है। युवाचार्य श्री नम्र ही नहीं, विनम्र थे। उनके जीवन के कण-कण में और अणु-अणु में विनय का महान गुण समाया हुआ था। युवाचार्य श्री का जीवन बहुआयामी था। वे गुणी भी थे और गुणानुरागी भी थे। ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं। उनके गुणों के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाये कम है।

साहित्य सृजन:- युवाचार्य श्री मधुकर मुनि एक उच्चकोटि के साहित्यकार भी थे। उन्होंने अपने आपको केवल अध्ययन तक ही सीमित नहीं रखा। (अपने अध्ययन से उन्होंने जो प्राप्त किया उसे जन जन तक पहुंचाने के लिये उन्होंने लेखन भी किया और अपने लेखन को पुस्तकाकार स्वरूप में प्रस्तुत कर जन-जन के लिए सुलभ भी बनाया।

आगम साहित्य के प्रति उनकी रुचि सर्वविदित है। वे आगमों को हिन्दी अनुवाद के साथ ही विषय विवेचना के साथ सामान्य जनता के लिये प्रस्तुत करना चाहते थे। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये आपने जैन आगम प्रकाशन संस्था की स्थापना की और एक महान कार्य का आरंभ करवाया। उनके जीवनकाल में अधिकांश आगम प्रकाशित हो चुके थे। क्रूरकाल ने उनका स्वप्न पूरा नहीं होने दिया, किंतु उनके अनुयायी वर्ग ने उनके इस अधूरे कार्य को पूरा कर दिया है। जैन आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से आगम बत्तीसी का प्रकाशन पूर्ण हो चुका है और सम्पूर्ण भारत में इस आगम बत्तीसी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की जा रही है। आज स्थिति यह है कि आगमों के नये नये संस्करण छपवाने पड़ रहे हैं। यही इनकी लोकप्रियता है।

जैनधर्म और दर्शन से संबंधित भी आपने अनेक पुस्तकें सुबोध भाषा शैली में लिखकर जैनधर्म के प्रचार और प्रसार के लिये महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जैन कथाओं को नये ढंग से प्रस्तुत कर आपने कथायें लिखीं। इस प्रकार की कथाओं के आपके इक्कावन भाग जैन कथामाला के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

आप एक सिंहस्थ उपन्यासकार भी थे। पौराणिक कथावस्तु के आधार पर आपने पांच उपन्यास लिखकर प्रकाशित करवाये। पुराणाधारित कथावस्तु को आपने अपनी विशेष चिन्तन-प्रवणता एवं उपन्यास कला वैदुष्य से प्राचीनता के परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता से संपृक्त कर दिया है। इन उपन्यासों को पढ़ते समय पाठक ऐसा अनुभव करने लगता है कि कथावस्तु पुरातन नहीं है अपितु वर्तमान की समस्याओं से ओपप्रोत है।

युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. एक सफल प्रवचनकार थे। आपके प्रवचनों में उनका चिंतन स्पष्ट दृग्गोचर होता है। आपके चार पांच प्रवचन संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। आपका प्रवचन साहित्य, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गरिमा से मंडित है। इसमें व्यक्ति और समाज, गृहस्थ और साधु, धर्म और अर्थ, शाश्वत मूल्य और युगीन मूल्य से सम्बद्ध विवेचन-विश्लेषण हैं।

युवाचार्य श्री उच्चकोटि के कवि भी थे। आपने संस्कृत में काव्य रचना की है, जो अद्यावधि अप्रकाशित है। जिसके प्रकाशन की अपेक्षा है।

युवाचार्य श्री साधक होने के साथ साथ संवेदनशील कवि, सरस कथाकार, ओजस्वी प्रवचनकार और गूढ़ आगमवेत्ता थे। इन सभी दिशाओं में आपने उपयोगी और ज्ञानवर्धक साहित्य की रचना की है। आपके कृतित्व पर शोध परक लेखन की आवश्यकता है।

शिष्य-प्रशिष्य: पू.युवाचार्यश्री के दो शिष्य हुए। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:-

उपप्रवर्तक मुनिश्री विनय कुमार 'धीम'

जन्म:- वि.सं. २०१२ ज्येष्ठ शुक्ला १५, दि. ५ जून १९५५

स्थान:- गाजू (कुचेरा) जि. नागौर (राजस्थान)

माता:- श्रीमती सजनीबाई

पिता:- श्री रामचन्द्र जी रावणा राजपूत

दीक्षा:- वि.सं. २०३८ माघ शुक्ला ११, २६ जनवरी १९७२ नोखा चांदावतों का जिला नागौर (राजस्थान)

गुरुदेव:- उप प्रवर्तक स्वामीजी श्री ब्रजलाल जी म.सा. एवं युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म.सा. 'मधुकर'

अध्ययन:- हिन्दी, जैन सूत्र व काव्य आदि

विशेष रुचि:- स्वर मधुर, गायन का शौक, कविता, उपन्यास में रुचि। सेवाभावी तथा सदैव प्रसन्न मुख।

मुनि श्री महेन्द्र कुमार 'दिनकर':-

जन्म:- वि.सं. २०१६ पौष कृष्ण ३०, व्यावर

माता:- श्रीमती पदमाबाई

पिता:- श्रीमाणकचन्द जी डोसी

दीक्षा:- वि.सं. २०३१ मार्गशीर्ष कृष्ण ११, ९-१२-१९७४ महामंदिर, जोधपुर (राजस्थान)

गुरुदेव:- उपप्रवर्तक स्वामीजी श्री ब्रजलाल जी म.सा. एवं युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म.सा.

'मधुकर'

अध्ययन:- संस्कृत-हिन्दी

विशेष रुचि:- मौन साधना की रुचि, कविता, मुक्तक आदि में भी रुचि।

मुनि श्री नन्दरत्न कुमार 'निरंजन':-

जन्म:- पीपाड़ सिटी जिवा जोधपुर (राजस्थान)

माता:- श्रीमती भीकीबाई

पिता:- श्रीमान् केवलचन्द जी

दीक्षा स्थान:- लाम्बा जाटान

गुरुदेव:- उप प्रवर्तक मुनिश्री विनय कुमार जी म.सा. 'भीम'

विशेष रुचि:- सेवाभावी, तपस्वी, मिलनसार, बालकों में सुसंस्कार उत्पन्न करने की भावना।

* * * * *

मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही उसके जीवन का निर्माण होता है। अगर मनुष्य को हृदय सुविचारों से परिपूर्ण नहीं है तो उसका कुलीन होना अथवा उच्च वंशीय होना भी कोई अर्थ नहीं रखता। क्योंकि कुर्विचार अन्तःकरण पर कुठाराघात करते हैं और आत्मा को अवतति की ओर ले जाते हैं। इसलिये किसी भी मनुष्य का अपने उच्च वंशीय होने का गर्व करना निरर्थक है और निम्न कुल में जन्म लेने के कारण हीनता का अनुभव करना भी व्यर्थ है। अगर मनुष्य को वास्तव में ही आत्मा का कल्याण करना है, संसार के जन्म-मरण से मुक्त होना चाहता है तो उसे प्रत्येक स्थिति में अपने विचारों को और कार्यों को उच्च बनाना चाहिये। यही उन्नति का मूलमंत्र है और सच्चा आर्यत्व है।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

अद्भुत देह और मन के सौन्दर्य की प्रतिमा

• जैन आर्या डॉ. सुप्रभा कुमारी 'सुधा'

ज्योतिर्मय पथ की अमर साधिका परम पूज्या महासतीजी श्री सरदार कुंवरजी म.सा. अपनी स्थूल देह त्याग कर सूक्ष्म रूप में परिणत हो चुकी है। यद्यपि मुझे इस महान विभूति के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन मेरी पूज्या गुरुवर्या, अनन्त आस्था की केन्द्र, काश्मीर प्रचारिका, ध्यात्मयोगिनी, मालवज्योति महासतीजी श्री उमरावकुंवरजी म.सा. 'अर्चना', दिवंगत साध्वी के पथ की साथी थी। दोनों ने संयम के पथ पर साथ विहार किया। आज जब मैंने गुरुवर्या से महासतीजी के विषय में लेख के संदर्भ में चर्चा की तो उनकी जिज्ञासु आंखें अत्यन्त-गहन-नीलाम्बर की ओर उठी और वह स्मृतियों में खो गयी। पूज्या गुरुवर्या ने अतीत की खिड़की से जिन स्मृतियों की धूप छाया का वर्णन किया उन्हें ही मैंने इस लेख में शब्द बद्ध करने का विनम्र प्रयास किया है।

देव विहारिणी मरुधरा के अंचल में नराधना ग्राम, जहां अन्नादिक उपजाऊ चौधरी जाति के लोगों की अधिक बस्ती है, वहां के निवासी श्रीयुत् वृद्धिचन्द चौधरी की धर्मपत्नी श्री भूरी देवी की कुक्षि से बालिका गवरादे का संवत् १९४७ माह वदि सप्तमी को जन्म हुआ। पिता वृद्धिचन्दजी का कारोबार बम्बई में था। उस समय बाल विवाह की प्रथा थी। नौ वर्ष की अल्पायु में कुमारी गवरादेवी का पाणिग्रहण खजवाना निवासी श्री डूंगरमलजी चौधरी के साथ कर दिया। डूंगरमलजी की मां का स्वभाव बहुत ही उग्र था। बालिका गवरादे सहन नहीं कर सकी और एक दिन बिना किसी को कुछ कहे चुपचाप ग्रामीण महिलाओं के साथ कुचेरा पहुंच गयी। कुचेरा में किसी से भी परिचय नहीं था और न कोई आश्रयदाता ही था।

रह-रहकर बिछुड़ गये सहयात्री की स्मृतियां आंखों में अश्रु बनकर छलकने लगी। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे संसार में कोई भी अपना नहीं है। चारों तरफ एक अन्तहीन सन्नाटे में गूंजती हुई चीखें सुनाई दी। वह चारों तरफ भीड़ के बीच बिल्कुल एकाकी थी।

“भीड़ में भी हूं किसी विरान के सहारे। जैसे कोई मंदिर किरी गांव के किनारे॥”

गवरादे इधर-उधर गलियों में डोलती हुई स्थानक के द्वार पर पहुंच गई। अन्दर विराजित मरुधरा की महान् विदुषी एवं सिंहनी के समान साहसिका श्रद्धेया महासतीजी श्री चौथांजी महाराज की दृष्टि, बाहर खड़ी बालिका की तरफ पड़ी। उसका भव्य भाल, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, निर्मल झील की तरह गहरी आंखें, तिखी नाक आदि दिव्य देहयष्टि को देखकर महासतीजी ने बालिका को अन्दर बुलाया और उससे प्रेमपूर्वक सारी जानकारी ली। बालिका किसी भी स्थिति में घर जाने को तैयार नहीं हुई। उसके लिये वह घर श्मशान से अधिक नहीं था, जहां न कोई साथी, न साया, न प्यार न सहानुभूति। उसका दृढ़ निश्चय देखकर सुश्रावक श्री बापनाजी के घर भिजवा दिया गया। अपनी प्रखर बुद्धि के द्वारा अत्यल्प समय में अच्छा ज्ञानाभ्यास कर लिया। चार वर्ष तक विरक्त भाव से अध्ययन करती रही। वैराग्य की परिपक्वता देखकर संवत् १९६१ माह सुदि सप्तमी को किशनगढ़ में भागवती दीक्षा प्रदान की गई।

आगम निष्णात महासती श्री चौथांजी महाराज द्वारा प्रतिबोधित स्वामीजी श्री जोरावरमल जी म.सा. पूज्य श्री कानमलजी म.सा. श्री स्वामी जी श्री हजारीमल जी म.सा. जिन्होंने जिन-शासन का प्रखर उद्योत किया। पूज्य महासतीजी आगमों के गूढ़ रहस्यों की इतनी मर्मज्ञा थी कि न केवल अनेकानेक साध्वियों को वरन् अनेक साधुओं को भी उन्होंने आगमों का अध्ययन कराया। आपके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी-दोनों हाथों एवं दोनों पैरों से बराबर एक सी लिखाई करना। ऐसी महान गुरुवर्या के सान्निध्य में नवदीक्षिता आर्या श्री सरदारकुंवरजी म.सा. ने आगमों का गहन अध्ययन किया। एक दिन में ८०-९० आगम की गाथाएं कंठस्थ कर लेते थे। शास्त्रानुशीलन मानों उनका व्यसन था। जिसके बिना वह रह ही नहीं सकती थी। वे हलुकर्मा थी। उनकी वृत्ति पाप भीरुतामय थी। वास्तव में आपका जीवन धार्मिक जगत् के लिये आदर्श था। उनकी स्मरण शक्ति को फोटो आफिक मेमोरी की संज्ञा दी जा सकती है।

दीक्षा के शोड़े समय पश्चात् ही जब उनकी आयु कुल १८ वर्ष की ही थी। कि अपने गुरुवर्या श्री एवं अग्रज दो गुरु बहिनों का वियोग सहना पड़ा। घटना इस प्रकार बनी-पूज्य महासतीजी श्री चौथांजी म.सा. आदि जब तिवरी में विराजित थे, तब आहार करते समय श्री चुना जी म.सा. की आंखों से खून के अश्रु टपकने लगे। उन्होंने तत्काल संथारा कर लिया, कुछ समय बाद ही समाधि मरण के साथ देह त्याग दी। वहां से पूज्य महासतीजी श्री चौथांजी म.सा. ने अपनी शिष्याओं के साथ जोधपुर के लिये विहार किया। रास्ते में जब किसी गांव में ठहरे हुए थे, तब अचानक महासती श्री कस्तूराजी म.सा. ने पिछली रात्रि में बहुत ऊंचे स्वर में भगवान् सुपाशर्वनाथ का जाप करना प्रारंभ कर दिया और तब तक जाप करते रहे जब तक कि उनकी आत्मा ने शरीर नहीं छोड़ा। इस प्रकार महासतीजी श्री चौथांजी म.सा. को अपनी शिष्याओं का वियोग सहना पड़ा।

इससे पूर्व कि जब आप महासती भगनकुंवरजी म.सा. आदि अन्य साध्वियों के साथ विहार करते हुए दौराई पहुंची तो किसी अनाम व्याधि के कारण उनको चक्कर आ गए और वह स्वयं नियंत्रित न रह सके, परिणामतः वहां गिरते ही अचेत हो गई। अनन्य प्रयासों के बाद भी उनकी चेतना नहीं लौटी और उनकी मूर्च्छा चिर निद्रा में विलीन हो गई। इस प्रघटना से महासतीजी श्री चौथांजी म.सा. खिन्न हो गई तभी छः पीढ़ी पूर्व में हुए पूज्य चम्पाजी म. आपके मानस पटल पर उभरे और कहा-“चौथांजी! अश्रु पोछ लो, जिस मिट्टी में तुमने हीरा खोया है, वहां से रत्न प्राप्त होगा (समय इस कथन का साक्षी है कि पूज्या गुरुवर्या श्री उमरावकुंवरजी म.सा. के रूप में जो रत्न जिन माला की शोभा बढ़ा रहा है। आपकी कान्ति किसी ज्योतिर्मय नक्षत्र से कम नहीं है)

इस प्रकार विहार करते हुए महासतीजी म.सा. एवं गुरु बहिन महासतीजी श्री सोनकुंवरजी म.सा. आदि ठाणा-३ से महामन्दिर पधारे। वहां कुछ दिन विराजकर किशनगढ़ की तरफ विहार किया उस वक्त एक बहिन ने कहा आप कुछ दिन और रुक जाइये मेरी दीक्षा की भावना है।” वह भी देवाधिन थी, बहुत मना किया कि अभी विहार मत करिये, किन्तु महासतीजी भी अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार रुके नहीं और विहार कर दिया, लेकिन उसी दिन से महासतीजी के पेट में दर्द शुरू हो गया और अंतिम सांस तक बना रहा। यह कष्ट उनको बराबर बारह महीनों तक रहा। किन्तु समभाव अंतिम सांस तक सहते हुए समाधि मरण को प्राप्त हुए। पूज्य सरदार कुंवरजी म.सा. को असह्य आघात लगा क्योंकि इससे पूर्व आपकी दो गुरु बहिनों श्री चुनाजी म. एवं श्री कस्तूराजी म. का छः महीने के अंतराल में निधन हो गया था।

इन दुर्घटनाओं ने जहां उनके भावुक मन को झकझोर कर रख दिया था। वहां परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता भी प्रदान की। मन का यह विरोधाभास ही उनके लिए प्रगति का सोपान बना। अपना अध्ययन, विचरण जारी रखा।

वस्तुतः महासतीजी श्री चौथाजी म.सा. की अन्तेवासिनी महासतीजी श्री सरदारकुंवरजी म.सा., जिन्होंने अपनी पूजनीया गुरुणीजी से उत्तराधिकार में प्राप्त श्रुत चारित्रमय अभियान को वृद्धिगत किया, विकसित किया। उस वक्त किशनगढ़ में अपनी गुरु बहन सोनकुंवरजी म.सा. के साथ तत्त्वज्ञान एवं धर्मप्रभावना के विराट् अभियान में समर्पित थी। आप से प्रेरणा प्राप्त कर किशनगढ़ में मुणोत परिवार से श्रीमती सुन्दरकुंवरजी ने संयमव्रत अंगीकार किया।

फिर ठाणा-३ से पाली पधारे। वहां पोरवाल परिवार से श्रीमती पानकुंवर की दीक्षा हुई। कुछ दिन पाली विराजकर पुनः तिवरी पधारे वहां श्रीमती जभनाजी, श्रीमती इमकुंवरजी एवं श्रीमती तुलछाकुंवरजी ने पूज्य महासतीजी के पास शिष्यत्व स्वीकार किया। वहां से विहार कर आप कुचेरा पधारी जहां श्रीमती कानकुंवरजी ने भगवती दीक्षा ग्रहण की। आपकी दीक्षा के बाद परिस्थितियों ने करवटें लीं जिनका उल्लेख करना अपेक्षणीय नहीं हैं, वस्तुतः लेखनी एक सीमा पर जाकर विराम पाना चाहती हैं, जबकि परीषहों का समभाव से सहन करने की अदम्य शक्ति शब्दातीत है।

सन्त रत्न, धर्म शासन के महान सेवी स्वामीजी श्री ब्रजलाल म.बहुश्रुत पण्डित रत्न महान्, ज्ञानयोगी युवाचार्य प्रवर श्री मिश्रीमल जी म.सा. 'मधुकर' साधकवर्य, आत्माथी मुनिश्री मांगीलाल जी म. जैसी महान् आत्माओं को उद्बोधित, उत्प्रेरित करने का श्रेय भी महासतीजी श्री सरदारकुंवरजी म.सा. को है।

आपका विहार क्षेत्र राजस्थान ही रहा। राजस्थान की धरती जहाँ तपती हुई रेत की गिरि है, वहीं पूज्य महासती श्री सरदारकुंवरजी म.सा. इसमें किसी शीतल एवं निर्मल जलकी झील की तरह थी। उन्होंने जिस मार्ग से विहार किया यदि उन्हें वाणी मिली होती तो उनके तप की अमर गाथा सुनाती। जिनका जीवन विकार शून्य और सहज आत्मीय होता है, उनका कोई शत्रु नहीं। आपके यश नाम कर्म का उदय बहुत प्रबल था। आप अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी तो थी ही, आपका व्यवहार भी मानों देहयष्टि के सौन्दर्य की पीछे छोड़ देना चाहता था। यही कारण है कि उनका कोई निन्दक नहीं था, सभी सहज ही उनके श्रीचरणों में नतमस्तक होकर उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे।

सबसे बड़ी उपलब्धि थी-सात पीढ़ी से पूर्व की स्वर्गस्थ श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. जिन्हें विचित्र दिव्य दैविक शक्तियां, विभूतियां प्राप्त थी, जिनका उल्लेख पूर्व में हो चुका है। प्रसंगानुसार जहां पुनः उल्लेखनीय है घटना इस प्रका है-

जब पूज्य महासतीजी श्री सरदारकुंवरजी म.सा. के जीवन में कोई असहनीय कष्ट होता, तो तत्काल श्री चम्पाकुंवरजी म. उनके शरीर में आकर सान्त्वना प्रदान करते थे। प्रत्यक्षदर्शियों ने मेरे पूज्य गुरुवर्या श्री को बताया कि जब उनकी आत्मा शरीर में प्रवेश करती तब जोर से एक आवाज निकलती थी जो कि घण्टों तक गुंजती रहती थी। जिस समय पूज्य दादागुरुणी म. श्री सरदारकुंवरजी म.सा. मदनगंज चातुर्मासार्थ विराज रहे थे, तब की घटना है। कल्प अभाव के कारण पूज्य महासती जी का मन बड़ा खिन्न था, उसी वक्त श्री चम्पाजी म. की आत्मा ने प्रवेश कर कहा सरदारजी! चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं

हैं। मैंने पूर्व में भी कहा था और आज भी कह रही हूँ कि तुम्हें एक ऐसी सुयोग्य शिष्या मिलेगी और एक वर्ष में सभी कार्य सिद्ध हो जायेंगे, और वही हुआ। वि.सं. १९९४ अगहन बदी ग्यारस-रविवार को नोखा ग्राम में पूज्य गुरुवर्या महासतीजी श्री उमरावकुंवरजी म.सा. “अर्चना” की दीक्षा हुई। महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. आपकी बड़ी गुरु बहन थी।

पूज्य महासतीजी श्री सरदारकुंवरजी म.सा. ने न केवल जगत् को, वरन समय अध्यात्मजगत् को पूज्य गुरुवर्या श्री उमरावकुंवरजी म.सा. “अर्चना” के रूप में एक ऐसा परम भास्वर, उज्ज्वल, अखण्ड दीप्तिमय रत्न दिया, जिसके दिव्य आलोक में से श्रमण संस्कृति निःसंदेह विभासित प्रकाशित है। आप श्री को गुरुवर्या श्री का साया केवल आठ वर्ष तक ही मिला। लेकिन ये आठ वर्ष गुरुवर्या श्री के मन और जीवन पर अमिट छाप छोड़ गए। एक-एक पल की स्मृतियाँ हृदय की मञ्जूषा में रत्न बनकर जगमगा रही हैं। मैंने उन स्मृतियों में खोई आँखों में आर्द्रता प्रत्यक्ष देखी है। महासती श्री सरदारकुंवरजी म. चरित्रनायिका संवत् २००३ मिंगसर सुदि तीज को संथारे के साथ डेह ग्राम में स्वर्गस्थ हुई। उन्होंने अपनी देह भले ही मिट्टी को सौंप दी, लेकिन सद्गुणों की महक आस-पास आज भी महसूस होती है। मैंने उस अद्भुत देह और मन के सौन्दर्य की स्वामीनी महासती श्री सरदारकुंवरजी म.सा. को नहीं देखा लेकिन उनकी महानता को पूज्य गुरुवर्या श्री के मुखारविन्द से सुने एक-एक शब्द में अनुभव अवश्य किया है।

डेह ग्राम में आखिरी घटना बहुत ही आश्चर्यजनक घटी थी। जिस स्थान पर अग्नि संस्कार हुआ, संघ के कुछ सदस्य यह देखकर हैरान हो गए कि जहाँ पर संस्कार किया गया था, वहीं पर एक अखबार के नीचे कीड़ी नगर चल रहा। अंगारों से न कागज जला और न ही कीड़ी। इस दिव्य घटना को देखकर अनेक लोगों ने दांतों तले अंगुली दबा दी।

आज भी अनेक लोग मनौति मनाते हैं। उनकी कामनाएं जब पूर्ण होती है तो उनके अंतिम संस्कार से जुड़ी दैविक घटना सहज विश्वसनीय बन जाती है। महान् आत्माओं के सम्बन्ध में पूर्ण रूपेण लिखा जाय यह संभव नहीं है। उनकी विनम्रता, सहज धैर्य, निर्मल दृष्टि और संयम निष्ठा के सम्बन्ध में पूज्य गुरुवर्या श्री समय समय पर अनेक प्रसंग बताते हैं, जिन्हें सुनकर मन में आश्चर्य के साथ आह्लाद होता है। उनके जैसी दिव्य देहयष्टि और मन दुर्लभ है। जब वे गाते थे तो ऐसा लगता था मानों कोयल कुहक रही हैं।

अन्ततः उनकी तुलना संगमरमर की एक ऐसी प्रतिमा से की जा सकती है, जिसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का अद्भुत और जीवन्त तेज था। वह आज भी अपनी परम्परा की प्रत्येक साध्वी में प्रतीक रूप में विद्यमान है।

* * * * *

मधुकर वाणी

- शुभ कर्म करने के लिए उच्चकुल अथवा उच्च जाति का होना मनुष्य के लिए आवश्यक नहीं है। हरिकेशी मुनि जाति के चाण्डाल थे और भगवान् महावीर उच्चकुलीन। किन्तु जिस प्रकार महावीर ने आत्मकल्याण किया उसी प्रकार हरिकेशी मुनि ने भी। दोनों में क्या फर्क रहा? शास्त्र कहता है जाति से कोई पतित नहीं होता। पतित वह है जो चोरी, व्यभिचार, ब्रह्म हत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान इत्यादि दुष्ट कृत्यों को करता है और उनको गुप्त रखने के लिए बार-बार असत्य भाषण करता है।
- धर्म का जाति और कुल से कोई सम्बंध नहीं होता। सच्चा धर्म तो शुद्ध हृदय में पाया जाता है। धर्म अन्तरात्मा में पनपता और विकसित होता है अतः धर्म आन्तरिक है। सच्चे धर्म का आधार उदारता, विश्वस्तता, मानवता तथा दयालुता की भावनाएँ ही हैं। धर्म संसार के प्रत्येक जीव पर करुणा करना सिखाता है, चाहे वह अमीर हो, गरीब हो, अधूत हो या मनुष्य न होकर कुत्ता, बिल्ली अथवा अन्य प्राणी क्यों न हो।
- जिस व्यक्ति की अपनी जिह्वा-इन्द्रिय पर नियंत्रण नहीं होता उसमें तथा पशु में कोई अन्तर नहीं होता। पशु के सामने जब कोई वस्तु रख दी जाए वह फौरन उसमें मुँह डाल देता है। इसी प्रकार अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जो खाद्य-अखाद्य का विचार किये बिना रात्रि में भी जब तक निद्राधीन नहीं हो जाते कुछ न कुछ खाते रहते हैं और प्रातःकाल शय्या त्याग ने से पूर्व ही चाय आदि से खाना-पीन प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसी स्थिति में पशुओं में और उनमें क्या फर्क मनना चाहिए?
- शारीरिक बल कितना भी क्यों न हो पर उसके साथ मनोबल अत्यन्त उच्च होना चाहिए। मनुष्य को संसार भ्रमण से विमुक्ति दिलाने वाला मनोबल ही होता है। मन की न्यूनतम दुर्बलता भी सहस्रशः अशुभ फलों को उत्पन्न कर देती है। अशुभ भावना से अनन्तानन्त अशुभ कर्म परमाणुओं का तथा शुभ भावनाओं से शुभ परमाणुओं का बंध होता है और इन भावनाओं की उत्पत्ति का मुख्य कारण हमारा मन ही है।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

● महासती द्वय स्मृति ग्रंथ ●

महासती द्वयः जीवन दर्शन

- अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कानकुंवर जी म. सा.
- साध्वी रत्न परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवंरजी म. सा.



अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कानकुंवर जी म. सा.

● जन्म ●

सं. १९६८ भाद्रपद कृष्णा अष्टमी

● दीक्षा ●

सं. १९८९ माघ शुक्ला दशमी

● महाप्रयाण ●

सं. २०४८ श्रावण कृष्णा, ९

महासती श्री कानकुवंर जी म. : जीवन दर्शन

• - साध्वी - श्री कंचन कुवंर

यह भारत भूमि रत्नगर्भा वसुंधरा है। इस पावन भूमि पर अनेकानेक भव्य आत्माओं ने जन्म लेकर अपना जन्म तो सफल बनाया ही है, साथ ही उन आत्माओं ने अपने उपदेशों से अन्य लोगों का जीवन भी प्रशस्त बनाया है। वर्तमान समय में भी उन महान विभूतियों की शिक्षाएँ समाज का मार्गदर्शन कर रही हैं। उनकी शिक्षाओं में आध्यात्मिक संदेश के साथ ही सामाजिक मूल्यों का अखूट खजाना सुरक्षित है।

भारत वर्ष का ही एक भाग है/प्रांत है राजस्थान, जो किसी समय राजपूताना के नाम से जाना जाता था। राजस्थान की धरती त्याग और बलिदान की धरती है। यहां अनेक महापुरुषों ने जन्म लेकर अपने कर्तृत्व से इसकी कीर्ति में चार चांद लगाये हैं।

ऐसी ही महान विभूतियों में एक नाम अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुवंरजी म.सा. का भी लिया जाता है। महासतीजी का जीवन जहां एक ओर सरल था, वहीं दूसरी ओर साधना से ओतप्रोत था।

जन्म: जन्मभूमि: परिवार

राजस्थान धीरों और संतों की भूमि रही है। यहां अनेक धर्मवीर, तपवीर, कर्मवीर, दानवीर और शूरवीर हुए हैं। उनकी कीर्ति गाथाएँ आज भी चारों ओर सुनाई जाती है। इन वीरों का जीवन विद्यमान समाज को नित्य नई प्रेरणा देता रहता है, मार्गदर्शन करता रहता है।

पश्चिमी राजस्थान में एक जिला है नागौर। इसी नागौर जिले में एक कस्बाई गांव है, कुचेरा। कृष्ण भक्त कवयित्री मीराबाई की जन्म भूमि मेड़ता सिटी और नागौर के मध्य है यह कुचेरा। कुचेरा एक ऐसी पुण्यभूमि है जहां अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया है एवं अनेक महापुरुषों तथा तपस्वियों ने यहां साधना कर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया है। इस पुण्य भूमि में धर्म की गंगा निरंतर प्रवाहित होती रही है।

इसी पुण्य भूमि कुचेरा में श्रीमान सिंभूमलजी सुराणा हुए। वे समाज के प्रत्येक कार्य में सहयोग करने वाले एक निष्ठावान श्रावक थे। सदैव सामायिक, प्रतिक्रमण करने के साथ तिथियों में पौषधोषवास किया करते थे। आपके पुत्र श्रीमान बींजराज जी सुराणा अपने पिता के अनुरूप ही गुणवान थे। आपकी पत्नी श्रीमती अणची बाई, पतिपरायणा और धर्मपरायणा नारी थी।

श्रीमान बींजराज जी के दो पुत्र और तीन पुत्रियां थी। बड़े पुत्र का नाम स्व. श्रीमान फूसालाल जी सुराणा है, जो कटंगी (मध्य प्रदेश) में निवास करते थे। दूसरे पुत्र श्रीमान कालूरामजी बीस वर्ष की अल्पायु में ही परलोक पधार गये। बड़ी पुत्री सुगनबाई का भी स्वर्गवास हो गया।

दूसरी पुत्री कानीबाई का शुभ सूचक स्वप्न के पश्चात वि.सं. १९६८, भाद्रपद कृष्ण - अष्टमी को जन्म हुआ। भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को जन्माष्टमी का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन योगीराज श्री कृष्ण

का जन्म हुआ था। श्रीकृष्ण का एक नाम कन्हैया अथवा कान्हा भी है। इस बात पर विचार कर माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों ने आपका नाम कानीबाई रखा। सर्वांग पूर्ण एवं गौर वर्ण वाली कानीबाई की किलकारियों से सुराणा परिवार का घर आंगन गूंज उठा। चंद्रमा की कला की भांति बढ़ते हुए कानीबाई अपनी आयुष्य के छठे वर्ष में प्रवेश कर गई।

आघात

जिस समय बालिका कानीबाई की आयु छः वर्ष हुई, उस समय प्लेग की बीमारी फैली। प्लेग की यह बीमारी सुराणा परिवार के लिए बहुत बड़ा संकट लेकर आई। अबोध बालिका न जन्म का अर्थ समझती थी और न मृत्यु का। इस बीमारी के कारण कानीबाई के माता-पिता दोनों ही काल कवलित हो गए। आपकी माताजी का स्वर्गवास अष्टमी की सांयकाल हुआ और नवमी को प्रातःकाल पिताश्री भी परलोकवासी हो गए। इसे आश्चर्य कहें, भाग्य की लीला कहें या युगलियों का घटनाक्रम कहें। कुछ भी, यह घटना कुचेरा वासियों के लिये विस्मयकारी अवश्य थी। अबोध बालिका के लिये माता-पिता दोनों का एक साथ परलोक गमन कर जाना बहुत बड़ा आघात था। किंतु वह कुछ समझ नहीं पायी। सूनी सूनी आंखों से वह केवल देखती रही। इस संबंध में पूछे तो क्या और किससे?

दुःखद वियोग की इस घड़ी में ज्येष्ठ भ्राता श्री फूसालालजी सुराणा ने कानीबाई और परिवार को सम्भाला, अब इस परिवार का समस्त उत्तरदायित्व ज्येष्ठ होने के नाते श्री फूसालालजी के कंधों पर आ गया था। उन्होने असमय आये इस उत्तरदायित्व से मुहं नहीं मोड़ा वरन अपना कर्तव्य समझ कर इसका पालन किया। समय व्यतीत होता गया और कानीबाई का आयुष्य भी बढ़ता गया।

विवाह

धीरे धीरे कानीबाई ने किशोरावस्था में प्रवेश किया। उन दिनों लड़की का विवाह कम आयु में ही कर दिया जाता था। किशोर अवस्था में आते ही ज्येष्ठ भ्राता श्री फूसालालजी को अपनी बहन के विवाह की चिंता हुई और थोड़े ही परिश्रम से विवाह संबंध निश्चित हो गया तथा शुभ मुहूर्त में कानीबाई का विवाह श्रीमान घासीलालजी भंडारी के साथ कर दिया। दोनों की जोड़ी बहुत ही सुंदर थी। देखने वाले भी अंतरमन से प्रशंसा करते थे। विवाह सूत्र में बंधने के पश्चात् आपका समय सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा। नये परिवार में कानीबाई को भरपूर स्नेह एवं प्यार मिला। इस परिवार में आकर आप अपने माता-पिता के समान वात्सल्य एवं स्नेह पाकर प्रसन्न हो गई। किंतु कहा गया है कि सुख के दिन क्रूर काल को अच्छे नहीं लगते हैं। यही कानीबाई के साथ भी घटित हुआ।

वज्राघात

कानीबाई के विवाह को लगभग दो वर्ष ही बीते होंगे कि क्रूर काल ने अपने पंजे फैला दिए। क्रूर काल कानीबाई का सुख सह नहीं पाया। लगभग दो वर्ष के वैवाहिक जीवन के पश्चात् श्रीमान घासीलालजी भंडारी अचानक काल कवलित हो गए। कानीबाई का अभी पूर्ण यौवन खिल भी नहीं पाया था कि उनका सौभाग्य उजड़ गया। वैधव्य क्रूर अट्टहास करता हुआ उनके सम्मुख आकर खड़ा हो गया। वे इस अप्रत्याशित घटना से हक्की बक्की रह गईं। निरंतर अश्रु बहाने के अतिरिक्त कानीबाई को कुछ समझ ही नहीं आ रहा था। अल्पवय में ही वैधव्य का मुहं देखना पड़ा। वह रे काल तुझे तनिक भी दया

नहीं आई। कानीबाई पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। दुःख की इस घड़ी में अपने मन की बात किस से कहे। मन मस्तिष्क में एक उथल पुथल मची हुई थी। यह उथल पुथल क्या थी? यह स्वयं कानीबाई भी समझ नहीं पा रही थी।

पावन सान्निध्य

धीरे धीरे समय बीतता गया और दुःख कम होता गया। पहले माता-पिता के वियोग का दुःख था। विवाह के पश्चात् ससुराल में आकर कानीबाई का वह दुःख कम हो गया किंतु पति के वियोग ने कानीबाई को एक बार पुनः झकझोर दिया। उनके मानस पटल पर अनेक अनुत्तरित प्रश्न मंडराने लगे थे। समय के प्रवाह के साथ दुःख भी कम होता गया। कहा भी गया है कि समय सबसे बड़ी औषधि है। ऐसे समय में कुछ संयोग भी मिल जाते हैं। कुचेरा एक ऐसा क्षेत्र है, जहां मुनिराजों और महासतियों का आगमन सतत बना रहता था। यद्यपि इस क्षेत्र में सभी सम्प्रदाय और समुदाय के मुनिराज और महासतियों का आगमन होता था किंतु आचार्य भगवंत श्री जयमलजी म.सा. की समुदाय का इधर विशेष प्रभाव था, उस समय शासन प्रभाविका साध्वीरत्ना महासती श्री सरदार कुवंरजी म.सा. एक उच्च कोटि की परम विदुषी और प्रभावशाली व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। महासती मंडल के कुचेरा आगमन से धर्म की गंगा प्रवाहित होने लगी। आबाल वृद्ध उनके प्रवचन पीयूष का पान करने के लिये जाने लगे। अपने परिवार की सदस्याओं के साथ प्रवचन श्रवण एवं महासतीजी के दर्शनों का लाभ लेने के लिये कानीबाई भी जाने लगी। महासतीजी के प्रवचनों का प्रभाव कानीबाई पर विशेष हुआ। संपर्क में वृद्धि होने लगी और कानीबाई के जीवन में परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगे।

वैराग्य की ओर

पू. महासतीजी के प्रवचन बहुत ही सटीक और प्रभावशाली होते थे। समसामयिक विषयों पर उनका प्रस्तुतीकरण अद्वितीय होता था। अपने प्रवचनों में विषयों का प्रस्तुतीकरण वे कुछ इस प्रकार करती थीं। कि विषय वस्तु श्रोता के अंतर को झकझोर देती थी। एक दिन उनका प्रवचन मानव जीवन पर चल रहा था। इसी प्रवचन में उन्होंने फरमाया कि मनुष्य जन्म ही एक ऐसा जन्म है जिसमें वह अपना कल्याण कर जीवन मरण के चक्कर से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। समय रहते भव्य जीवों को जाग्रत हो जाना चाहिये। इन नश्वर संसार में कुछ भी स्थाई नहीं हैं। केवल आत्मा ही एक ऐसा है जो अजर अमर है। यदि हमने इस मानव देह को सांसारिक कार्यों में/मोहों में फंसा दिया तो फिर इसके उद्धार का कोई मार्ग नहीं है। शास्त्रों में कहा गया है कि कि नत्थि कालस्स अणागमों। काल का आक्रमण प्रतिपल चालू है। वह कब आ जाये और इस देह को अपना ग्रास बना ले। इसलिये जो कुछ करना है, उसमें संकल्प विकल्प को स्थान नहीं है। एक एक पल मूल्यवान है। इसे व्यर्थ नहीं गवांना चाहिये।

महासतीजी की इस मंगल वाणी का कानीबाई के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके चिंतन की दिशा बदल गई। शोक में डूबी रहने वाली कानीबाई अब ध्यान मग्न रहने लगी और जैसे ही समय मिलता वे महासतीजी के पावन सान्निध्य में जा बैठती। वहां वे महासतीजी से विभिन्न प्रश्नों के द्वारा अपने मन की शंकाओं का समाधान पाती। महासतीजी का सान्निध्य मिलने से ज्ञान प्राप्ति का मार्ग तो प्रशस्त हुआ ही साथ ही कानीबाई के सम्मुख संसार की असारता का भाव भी प्रकट हो गया। गृह कार्यों के प्रति कानीबाई की उदासीनता बढ़ने लगी और उनका मन वैराग्य की ओर उन्मुख हो गया।

महासती श्री सरदार कुवंरजी म.सा. का विहार और आगमन का क्रम चलता रहता था। इधर कानीबाई का चिंतन भी चल रहा था। ऐसे ही एक बार जब महासतीजी ने अपनी शिष्याओं के साथ कुचेरा से विहार किया तो परम्परानुसार कुछ श्रावक-श्राविकायें उन्हें विदा करने के लिये साथ साथ चले। इन श्राविकाओं में कानीबाई भी थी। महासतीजी के साथ चलते चलते कानीबाई खजवाना तक चली गई। तब इस अवसर पर किसी ने कह दिया की कानीबाई तो दीक्षा लेगी। यह बात सहज में कहीं गई थी किंतु इसका प्रभाव कानीबाई पर गहरा हुआ। उनका वैराग्य भाव अभी तक उन तक ही सीमित था। अंदर रहे हुए वैराग्य भाव बाहर भी प्रकट होने लगे। किंतु कानीबाई ने अपने भावों को फिर भी प्रकट नहीं होने दिया। उन्होंने अपना मन ज्ञान-ध्यान की ओर केंद्रित कर दिया। अब उनके सम्मुख संसार की असारता प्रकट हो गयी थी। इसीलिये अब वे उस ओर से उदासीन रहने लगी थी। उनके जीवन में अब एक नया मोड़ आ गया था। आपका वैराग्य प्रस्फुटित हो चुका था और ज्ञानाराधना के साथ ही तपाराधना भी प्रारंभ हो चुकी थी। आपका वैराग्य काल लगभग ढाई वर्ष का रहा। इस अवधि की उल्लेखनीय बात यह है कि आप एक माह में दो दो अष्टादश्या करते थे।

ज्येष्ठ भ्राता श्री फूसालालजी को कटंगी में अपनी बहन की वैराग्य भावना का पता चला तो वे कुचेरा आए और कानीबाई को काफी समझाया कि जिस पथ की ओर वे अग्रसर हो रही हैं, उस पथ पर चलना खांडे की धार पर चलने के समान है जितना सरल अभी वह मानकर चल रही है, वह पथ उतना सरल नहीं है। अच्छा तो यही है कि यह सब छोड़कर वह अपने घर के कार्यों में मन लगाये। फूसालालजी की इस समझाइश का कानीबाई पर कोई असर नहीं हुआ। इस पर फूसालालजी ने विचार किया कि बहन को कुचेरा से कटंगी ले जाया जाय। वहां के वातावरण में और कुचेरा के वातावरण में बहुत अंतर है। कटंगी जाने पर वैराग्य का रंग उतर जायगा और फिर यह सामान्य रूप से घर के काम काज में लग जावेगी। ऐसा विचार कर वे अपनी बहन कानीबाई को अपने साथ लेकर कटंगी आ गए। उनका विचार था की कुचेरा और कटंगी के वातावरण में काफी अंतर है। कटंगी में मुनिराजों और महासितियों का आवागमन भी नहीं के समान है। जब इनका सम्पर्क नहीं रहेगा तो जो धार्मिक रंग बहन पर चढ़ रहा है, वह उतर जायेगा और सब कुछ सामान्य हो जायेगा। किंतु उनकी ऐसी धारणा मिथ्या ही रही। भव्य जीवों पर किसी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ज्येष्ठ भ्राता ने आपको कटंगी में लाकर संसार में बनाये रखने का प्रयास किया किंतु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। कानीबाई के त्याग और तपाराधना में कटंगी आकर भी कोई अंतर नहीं पड़ा। बल्कि कटंगी में आकर उनकी वैराग्य भावना और अधिक प्रबल हो गई। कटंगी आकर उन्होंने हरी साग सब्जी और कच्चे पानी का भी त्याग कर दिया। आपके त्याग, तपस्या और वैराग्य भावना को देखकर ज्येष्ठ भ्राता श्री फूसालालजी ने विचार किया कि कानीबाई अब संसारावस्था में रहने वाली नहीं है, और जबरन उन्हें रोकने का प्रयास करना भी उचित नहीं है ऐसा विचार कर एक दिन उन्होंने अपनी बहन को दीक्षा व्रत अंगीकर करने के लिये परिवार की ओर से अनुमति लिखित रूप में दे दी।

वैराग्य के कारण

दीक्षा लेने के लिये वैराग्य आवश्यक है। जब तक वैराग्योत्पत्ति नहीं होती, प्रव्रज्या ग्रहण करना संभव नहीं होता। जैन शास्त्रों में वैराग्योत्पत्ति के दस कारण निम्नानुसार बताये गये हैं।

- (१) छन्दा :- स्वयं की या दूसरों की इच्छा से ली जाने वाली प्रव्रज्या।
 - (२) रोषा :- क्रोध में ली जाने वाली दीक्षा।
 - (३) परिधुना :- दरिद्रता के कारण ली जाने वाली दीक्षा।
 - (४) स्वप्ना :- स्वप्न के निमित्त ली जाने वाली दीक्षा।
 - (५) प्रतिश्रुता :- पहले की गई प्रतिज्ञा के कारण ली जाने वाली दीक्षा।
 - (६) स्मारणिका :- जन्मान्तरों की स्मृति हो जाने पर ली जाने वाली दीक्षा।
 - (७) रोगिणिका :- रोग का निमित्त मिलने पर ली जाने वाली दीक्षा।
 - (८) अनादृत :- अनादर होने पर ली जाने वाली दीक्षा।
 - (९) देव संज्ञप्ति :- देव के द्वारा प्रतिबुद्ध होकर ली जाने वाली दीक्षा।
 - (१०) यत्सानुबंधिका :- पुत्र के अनुबंध से ली जाने वाली दीक्षा।
- इसके अतिरिक्त दीक्षा ग्रहण करने के अन्य कारण भी बताये गये हैं। यथा :-
- (१) इहलोक प्रतिबद्धा :- इहलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिये ली जाने वाली दीक्षा।
 - (२) परलोक प्रतिबद्धा :- पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिये ली जाने वाली दीक्षा।
 - (३) उभयतः प्रतिबद्धा :- दोनों लोकों के सुखों की प्राप्ति के लिये ली जाने वाली दीक्षा।

तीन अन्य कारण

- (१) पुरताः प्रतिबद्धा :- दीक्षा लेने पर मेरे शिष्य आदि होंगे, इस आशा से ली जाने वाली दीक्षा।
- (२) पृष्ठतः प्रतिबद्धा :- स्वजन आदि से स्नेह का विच्छेद न हो, इस भावना से ली जाने वाली दीक्षा।
- (३) उभयतः प्रतिबद्धा :- उपर्युक्त दोनों कारणों से ली जानी वाली दीक्षा।

तीन अन्य कारण

- (१) तोदयित्वा :- कष्ट देकर ली जाने वाली दीक्षा।
- (२) प्लावयित्वा :- दूसरे स्थान में ली जाने वाली दीक्षा।
- (३) बाचयित्वा :- बातचीत करके ली जाने वाली दीक्षा।

प्रकारान्तर से तीन और प्रकार -

- (१) अवपात प्रव्रज्या :- गुरु सेवा से प्राप्त।
- (२) आख्यात प्रव्रज्या :- उपदेश से प्राप्त।

(३) संगार प्रव्रज्या :- परस्पर प्रतिज्ञा बद्ध होकर ली जाने वाली दीक्षा।

एक जैनाचार्य ने वैराग्योत्पत्ति के तीन कारण निम्नानुसार बताये हैं।

(१) दुःखगर्भित वैराग्य :- दुःख संकट या पीड़ा से वैराग्य की उत्पत्ति हो, वह दुःख गर्भित वैराग्य है। दुःख दूर होने पर यह वैराग्य जा भी सकता है।

(२) मोहगर्भित वैराग्य :- माता-पिता, पुत्र, स्त्री आदि परिजनों के वियोग होने पर मोहवश जो विरक्ति होती है, ऐसी विरक्ति के भाव को मोहगर्भित वैराग्य कहते हैं। यह मध्यम वैराग्य है।

(३) ज्ञानगर्भित वैराग्य :- शुभ क्रायों के उदय से गुरु के उपदेश के कारण अध्ययन से संसार के प्रति विरक्ति के भाव उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसे विरक्ति के भाव से उत्पन्न वैराग्य ज्ञानगर्भित वैराग्य कहलाता है। यह वैराग्य श्रेष्ठ और स्थायी होता है।

वैराग्योत्पत्ति के कारण देखने से स्पष्ट है कि दीक्षा ग्रहण करने के लिये कोई एक कारण नहीं है। इन सब कारणों में सर्वश्रेष्ठ कारण कौन सा हो सकता है? यह प्रश्न भी स्वाभाविक है। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि विवेक पूर्वक ली जाने वाली दीक्षा श्रेष्ठ है। दूसरे शब्दों में इसे ज्ञानगर्भित कारण भी कह सकते हैं। यही वैराग्य सर्वश्रेष्ठ है, स्थायी है।

वैराग्योत्पत्ति के प्रकारों को देखने से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कानीबाई का वैराग्य ज्ञानगर्भित था। प्रत्येक परिस्थिति में उनका त्याग तपस्या आदि का कार्यक्रम सतत् चल रहा था। दिन प्रतिदिन उनका वैराग्य बढ़ता जा रहा था।

दीक्षा की अनुमति :-

मुमुक्षु को भले ही ज्ञानगर्भित वैराग्य हो जावे, वह प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये कितनी ही जल्दी करें, किंतु उसे तब तक दीक्षा नहीं दी जा सकती जब तक कि उसके परिवार की ओर से दीक्षा ग्रहण करने के लिये अनुमति नहीं मिल गई हो। अनुमति मिलने के पश्चात् कभी भी शुभ मुहूर्त में दीक्षा प्रदान कर दी जाती है। जैन आगम साहित्य में एक भी व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं देता, जिसने बिना अनुमति दीक्षा ली हो।

कानीबाई का वैराग्य तो परिपक्व हो चुका था किंतु ज्येष्ठ भ्राता की भावना यह थी कि वे गृह-स्थावस्था में ही रहे। किंतु जब उन्होंने कानीबाई की त्याग-तपस्या देखी, विरक्त भावना देखी और देखी उनकी दृढ़ता तो वे इन सब बातों पर विचार करने के लिये विवश हो गये और एक दिन उन्हें अपनी बहन की वैराग्य भावना को स्वीकार कर दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति देनी पड़ी। दीक्षा का आज्ञा पत्र श्री फूसालाल सुराणा ने लिखकर दे दिया।

दीक्षा :-

दीक्षा एक आध्यात्मिक साधना है। इसका स्थान शिक्षा से कहीं अधिक ऊँचा है। दीक्षा के महत्व के विषय में श्रमण संघीय आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने लिखा है कि आर्हती दीक्षा साधक के उस अटकने भटकने को रोकने का एक उपक्रम है। वह ऐसी अखंड ज्योतिर्मय यात्रा है जिससे साधक अंशत् से सत की ओर तमस् से आलोक की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर अग्रसर होता है। वह

ऐसी अदभुत आध्यात्मिक साधना है जिससे साधक बाहर से अंदर सिमटता है। वह अशुभ का बहिष्कार कर शुभ संस्कारों से जीवन यापन करता है और शुद्धत्व की ओर अपने दृढ़ कदम बढ़ाता है। दीक्षा में साधक अपने आप पर शासन करता है।

आचार्य हेमचंद्र ने दीक्षा की परिभाषा करते हुए लिखा है -

दीयते ज्ञानसद्भावः क्षीयते पशुबन्धनाः।

दानाक्ष परमसंयुक्तः दीक्षा तेनेह कीर्तिता॥

दीक्षा एक रासायनिक परिवर्तन है। सात्विक जीवन जीने की अपूर्व कला है। आत्म साधना के परम और चरम बिन्दु तक पहुँचाने वाले सोपान का नाम दीक्षा है। दीक्षा में पाँचों महाव्रतों का जीवन पर्यन्त पालन करना होता है। 'सर्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खाणि' के सुदृढ़ कवच को पहनकर ही साधक सद्गुरु देव के पथ प्रदर्शन में साधना के पथ पर आगे बढ़ता है तथा अपने पर नियंत्रण करता है।

दीक्षा अन्तर्मुखी साधना है। मानव मस्तिष्क सुदीर्घ काल से सत्य की अन्वेषणा कर रहा है। उसने जड़ तत्व देखा परखा और गहराई में पढ़कर परमाणु जैसे सूक्ष्म तत्व में निहित विराट शक्ति की अन्वेषणा की। मानव सभ्यता ने विज्ञान पर विजय फहराकर जन मानस को मुग्ध किया है, पर यह जड़ की अन्वेषणा वास्तविक शांति प्रदान नहीं कर सकी। किंतु जब मानव ने अपने अंदर निहारा तो अपनी अनंत आत्मशक्ति के दर्शन किये और परम शांति का अनुभव किया।

दीक्षार्थी अपने विशुद्ध परमतत्व की खोज के लिये निकलने वाला एक अंतर्यात्री है। वह अंतर में प्रवेश करता है। निरंतर आने वाले आवरणों को तोड़ कर परम चैतन्य चिदानंद स्वरूप परमात्म तत्व को प्रकट करने का, उसको अनुभव करने का प्रयास करता है।

आर्हती दीक्षा वही व्यक्ति ग्रहण करता है। जिसके मन में वैराग्य का पयोधि उछाले मारता हो। जिसमें जितनी अधिक वैराग्य भावना बलवती होती है। वह उतना ही अधिक द्रुतगति से आगे बढ़ता है। आगम साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि किसी भी जाति पांति तथा वर्ण का व्यक्ति श्रमणधर्म को स्वीकार सकता है। केवल सामान्य स्त्री-पुरुष ही संसार का परित्याग नहीं करते थे अपितु जिनके पास अपार वैभव के अंवार लगे हुए होते, सत्ता और सम्पत्ति जिनके चरण चूमते वे भी साधना के पथ पर सहर्ष कदम बढ़ाते। ऐसे हजारों श्रेष्ठीपुत्र, राजा सम्राट और सामंत, राजनीति विशारद, षड्दर्शन के ज्ञाता, मूर्धन्य मनीषीगण वीर योद्धा तथा अत्यन्त सुकुमार राज-रानियां, राजपुत्रियाँ और भोगों में डूबे हुए व्यक्ति भी भोगों की निस्सारता को समझ कर त्याग मार्ग को अपनाते रहे हैं।

दीक्षा ग्रहण करने वाला साधक संसार एवं संसारी जनों के प्रति आसक्ति एवं मोह को त्याग देता है।

कानीबाई को दीक्षा की अनुमति मिल गई। अब मार्ग प्रशस्त हो गया। दीक्षा के लिये माघ शुक्ला दशमी वि.सं. १९८९ का शुभ मुहूर्त निकला। शुभ-मुहूर्त ज्ञात होने पर दीक्षोत्सव की तैयारियां आरम्भ होने लगीं। दीक्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिये आसपास के ग्राम नगरों से तथा दूरस्थ नगरों से भी श्रद्धालुओं का आगमन होने लगा। कुचेरा को विभिन्न प्रकार से सजाया भी गया। और फिर वह दिन भी आ गया जिसकी कानीबाई और अन्य सभी प्रतीक्षा कर रहे थे। माघ शुक्ला दशमी, वि.सं. १९८९ के

शुभ दिन स्वामी श्री हजारीमलजी म.सा. के द्वारा कानीबाई को पू. स्वामीजी श्री ब्रजलाल म.सा. बहुश्रुत युवाचार्य श्री मिश्रीमल म.सा. 'मधुकर' एवं वहां उपस्थित हजारों नर-नारियों की साक्षी में दीक्षा व्रत प्रदान कर आपको महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के नाम से परम विदुषी महासती श्री सरदार कुंवरजी म.सा. की शिष्या के रूप में घोषित किया। दीक्षाव्रत अंगीकार करने के पश्चात् महासती श्रीकान कुंवरजी म.सा. अपनी गुरुणीजी के साथ ग्राम-ग्राम, नगर-नगर विचरण कर जैनधर्म के प्रचार प्रसार में लग गए।

सेवाभावना :-

आप में सेवा भावना के गुण कूट कूट कर भरे हुए थे। आपकी सेवाभावना का इस बात से चलता है कि महासती श्री तुलछाजी म.सा. कुचेरा में बारह वर्ष तक स्थिरवास में विराजमान रहीं। इस अवधि में आपने उनकी तन मन से सेवा की। महासती श्री पान कुंवरजी म.सा. को कैंसर हो गया था। तब ब्यावर में दोचातुर्मास में आपने उनकी समर्पण भाव से सेवा की। आपकी यह सेवाभावना ब्यावर में श्रावकों को आज भी याद है। महासती श्रीजमनाजी म.सा. संग्रहणी नामक रोग से ग्रस्त हो गये थे। उस समय आपने हर्ष पूर्वक अम्लान मन से उनकी सेवा की। आपकी यह सेवाभावना अपनों से ज्येष्ठ साध्वियों तक ही सीमित नहीं थी, वरन् छोटी साध्वियों तक की निःसंकोच भाव से आप सेवा करने के लिये तत्पर रहते थे। वृद्धावस्था में भी आप अपनी शिष्याओं की आवश्यकतानुसार प्रसन्नतापूर्वक सेवा करने के लिए तत्पर रहते थे। यदि कोई छोटी महासतीजी आपसे ऐसा न करने के लिये निवेदन भी करती तो आप स्नेह पूर्वक उन्हें समझा दिया करते थे। सेवा क्या है और कैसे की जाती है? यह आपसे सहज ही सीखा जा सकता था।

आपकी प्रथम शिष्या स्व. पंडिता परमविदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. विलक्षण बुद्धि की स्वामिनी थी। वे ज्ञान-ध्यान में रत रहती थी और मौन साधना भी करती थी। इसलिये आप उनकी सेवा करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। आपकी द्वितीय शिष्या महासती श्री बसंत कुंवरजी म.सा. वेदनीय कार्यों के उदय से बहुत दुःखी रही। यह बात ब्यावर की है। उस समय आपने इनकी सेवा अपनी पुत्री के समान की। इस प्रकार आपकी सेवा भावना उच्च कौटि की थी।

स्वावलम्बी :-

गुरुणीजी म.सा. स्वावलम्बी थी। आप अपना समस्त कार्य अपने हाथों से ही किया करती थीं। अस्सी वर्ष की आयु में भी आप अपना कार्य स्वयं ही करती थी। यदि हम में से कोई आपका कार्य करने लगती तो आप स्पष्ट रूप से मना कर दिया करती थी। आपका कहना था कि जब तक हाथ पांव चल रहे हैं तब तक अपना कार्य स्वयं करना चाहिये। इस वय में भी आप अपना कार्य जैसे सिलाई, पातरा रंगना, पातरा धोना आदि स्वयं ही करती थी। आप अपना यह सब कार्य अपने रोगों को भूल कर किया करती थी।

इसके अतिरिक्त आपकी सेवा भावना की एक और बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि आप बिना किसी भेदभाव के सेवा करती थी। सेवा करते समय आपके मन में यह भावना नहीं रहती थी कि यह साध्वी अपने समुदाय की है अथवा अन्य समुदाय या सम्प्रदाय की है। साध्वी चाहे स्थानकवासी हो चाहे मंदिरमार्गी हो या तेरापंथी हो। यदि वे आपसे केश लोच करने के लिये कहते तो, आप तत्काल स्वीकृति दे देती और केश लोच कर दिया करती। वे कहा करती थी कि केश लोच का कार्य लाभ का कार्य है।

इस कार्य के लिये कभी मना नहीं करना चाहिये। आप केश लोच इतनी सरलता और सुगमता से किया करती थी कि केश लोच करवाने वाली साध्वी को पता ही चल नहीं पाता था। उल्टे केश लोच करवाने वाली साध्वी को नींद सी आने लगती थी। आपने अनेक साध्वियों का केश लोच किया। एक बार की बात है कि आप गौचरी करके उठे भी नहीं थे कि एक सतीजी ने कहा “महाराज सा. क्या आप मेरा लोच कर देगे?” सतीजी के इन शब्दों को सुनकर आप उसी समय गौचरी करके उठ गए और लोच किया। इस प्रकार आपकी सेवा भावना पर जितना भी लिखा जावे कम है। सेवा करने के अवसर की खोज में आप सदैव रहती थी। सेवा कार्य का अवसर आने पर आप सेवा करने में चूकती नहीं थी। सेवा में आप छोटे बड़े सभी को समान समझती थी और पूरे स्नेह भाव/प्रेमभाव से सेवाकार्य करती थी।

स्वाध्याय में जागृति :-

स्वाध्याय मन को विशुद्ध, निर्मल बनाने का एक श्रेष्ठ उपाय है। अपना अपने ही भीतर अध्ययन, आत्मचिंतन मन ही स्वाध्याय है। सतशास्त्रों का मर्यादापूर्वक पढ़ना विधि सहित श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन करना स्वाध्याय है। आचार्यों ने स्वाध्याय शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। यथा -

अध्ययनं अध्यायः शोभनो अध्यायः स्वाध्यायः-

सु-अध्याय अर्थात् श्रेष्ठ अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। कहने का अर्थ यह है कि अन्य कल्याणकारी पठन पाठन रूप श्रेष्ठ अध्ययन का नाम ही स्वाध्याय है।

आचार्य अभयदेव ने ‘सु’ ‘आइ’ और अध्याय ‘सु’ का अर्थ सुष्ठु-भलीभांति ‘आइ’ मर्यादा के साथ तथा अध्याय, अध्ययन करने को स्वाध्याय कहा है।

स्वयं द्वारा स्वयं का अध्ययन करना भी स्वाध्याय है। **स्वेन स्वस्य अध्ययनं :-**

वैदिन विद्वान के अनुसार किसी अन्य की सहायता के बिना स्वयं ही अध्ययन करना अध्ययन किये हुए का मनन और निदिध्यासन करना। अन्य प्रकार से “अपने आपका का अध्ययन करना, साथ ही यह चिंतन करना कि स्वयं का जीवन उन्नत हो रहा है या नहीं।”

स्वाध्याय के प्रकार :- स्वाध्याय के पांच प्रकार इस प्रकार बताये गये हैं।

वाचना :- संदगुरुवर्य से सूत्र पाठ लेना और जैसा उसका उच्चारण करना चाहिये उसी प्रकार उच्चारण करना वाचना है। वाचना में सूत्र के शब्दों पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है। हीनाक्षर, अत्यक्षर, पदहीन, घोष-हीन आदि दोषों से पूर्ण रूप से बचने का प्रयास होता है।

पृच्छना :- सूत्र और उसके अर्थ पर भलीभांति खूब तर्क वितर्क चिंतन मनन करना चाहिये और जहां पर शंका हो उसका समाधान गुरुदेव से पूछकर करना चाहिये। यही पृच्छना है।

परिवर्तना :- एक ही सूत्र को बार बार गिनना परिवर्तना है। इससे पढा हुआ ज्ञान विस्मृत नहीं होता है।

अनुप्रेक्षा :- जिस सूत्र की वाचना ग्रहण की है, उस पर तात्त्विक दृष्टि से गंभीर चिंतन करना। अनुप्रेक्षा से ज्ञान में चमक दमक उत्पन्न होती है।

2

धर्मकथा :- सूत्र-वाचना पृच्छना, परिवर्तना और अनुप्रेक्षा से जब तत्व का रहस्य हृदयंगम हो जाये तब उस पर प्रवचन करना धर्मकथा है।

स्वाध्याय के नियम :- स्वाध्याय के संबंध में कुछ नियम भी हैं यहां उन नियमों के केवल नामोल्लेख करना ही पर्याप्त समझा जा रहा है। यथा - (१) एकाग्रता, (२) नैरन्तर्य, (३) विषयोपरति, (४) प्रकाश की उत्कंठा और (५) स्वाध्याय का स्थान।

स्वाध्याय के संबंध में आगे और भी विचार विस्तार से किया गया है स्वाध्याय योग्य ग्रंथ स्वाध्याय के लिये उपयुक्त समय, अस्वाध्याय। अस्वाध्याय की स्थिति पर भी विस्तार से विचार किया गया है। स्वाध्याय के परिणाम या लाभों पर भी चिंतन किया गया है। स्थानांग में कहा गया है।

- (१) स्वाध्याय से श्रुत का संग्रह होता है।
- (२) शिष्य श्रुत ज्ञान से उपकृत होता है, वह प्रेम से श्रुत की सेवा करता है।
- (३) स्वाध्याय से ज्ञान के प्रतिबंधक कर्म निर्जीरित होते हैं।
- (४) अभ्यस्त श्रुत विशेष रूप से स्थिर होता है।
- (५) निरंतर स्वाध्याय किया जाय तो सूत्र विच्छिन्न भी नहीं होते।

आचार्य अकलंक ने तत्त्वार्थ राजवार्तिक में स्वाध्याय के निम्नांकित लाभ बताये हैं :-

- (१) स्वाध्याय से बुद्धि निर्मल होती है।
- (२) प्रशस्त अध्यवसाय की प्राप्ति होती है।
- (३) शासन की रक्षा होती है।
- (४) संशय की निवृत्ति होती है।
- (५) परवादियों की शंकाओं के निरसन की शक्ति प्राप्त होती है।
- (६) तप-त्याग की वृद्धि होती है।
- (७) अतिचारों की शुद्धि होती है।

इस प्रकार स्वाध्याय का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है। फिर साधक के लिये तो यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। गुरुणीजी महासती श्री कान कुंवरजी म.सा. स्वाध्याय के महत्व को भली भांति समझती थीं। यही कारण था कि वे सदैव स्वाध्याय में निरत रहा करती थीं। समय को व्यर्थ गवाना उन्हें पसंद नहीं था। इसके साथ ही आपको अनेक थोकाड़े की कंठस्थ थे। यदि आपसे कोई साध्वीजी स्वाध्याय के लिये निवेदन करते तो आप बिना किसी विलम्ब के स्व-अर्जित ज्ञान के द्वारा उन्हें लाभ प्रदान करते। दस रानियों का लेखा, तीर्थकर चरित्र आदि का पारायण आप प्रातः जल्दी उठकर कर लिया करते थे। आपके ज्ञान ध्यान का कार्यक्रम प्रातः तीन बजे से ही प्रारंभ हो जाता था। आपका यह कार्यक्रम नियमित रूप से प्रतिदिन चलता रहता था। स्वाध्याय के लिये आप अन्य साध्वियों को भी प्रेरणा प्रदान करती रहती थीं। स्वाध्याय के संबंध में आपका जो ध्येय था, उसे निम्नांकित पंक्तियों में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

पूजने के लिये नहीं, शास्त्र पढ़ने के लिये है।
 पूजने के लिये नहीं, मंजिल चढ़ने के लिये है॥
 पूजने के लिये नहीं, मानव आगे बढ़ने के लिये है।
 पूजने के लिये नहीं, ये मोक्षकी ओर बढ़ने के लिये है॥

आपने अपने जीवन का प्रत्येक पल साधना और स्वाध्याय में व्यतीत किया और अंतिम समय भी आपने स्वाध्याय में ही बिताया।

संयम यात्रा :- किसी कवि ने कहा है -

न घबराये आँधी और तूफान से।
 न घबराये अज्ञान - अंधकार से॥
 न घबराये संयम में तिरस्कार से।
 न घबराये संयम में परिषहों की झंकार से॥

गुरुवर्या महासती श्री कानकुवंरजी महाराज का जीवन भी ऐसा ही था। अपनी संयम यात्रा में आगे बढ़ने से आप कभी घबराये नहीं। आपने संयम यात्रा में आने वाली किसी भी कठिनाई की चिंता नहीं की और सतत आगे बढ़ते ही रहे। आप जहां भी पधारे वहीं आपने धर्म ध्वजा फहराई। जिस प्रकार माली अपने उद्यान के पौधों के एक-एक पत्ते का ध्यान रखता है और उनकी रक्षा करता है, उन्हें हरा भरा बनाये रखने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है, ठीक उसी प्रकार गुरुणी मैया भी अपने संयम के प्रति सतत जगरूक रहती थी। समिति गुप्तियों का पालन करती थी। दीक्षोपरंत आपका विचरण भी बहुत हुआ। मारवाड़ में विचरण करते हुए आपने धर्मोपदेश की पावन गंगा प्रवाहित की। अनेक चातुर्मासों में अपनी प्रवचन कला से आपने भव्य आत्माओं को जागृत कर अपने गुरुदेव का नाम उज्ज्वल किया।

एक समय की बात है कि गुरुदेव की सेवायें ब्यावर श्री संघ की विनती हुईं। गुरुदेव ने गुरुणी मैया की प्रशंसा करते हुए फरमाया कि ब्यावर के लिये मैं महासती श्री कानकुवंरजी म.सा. की स्वीकृति देता हूँ और इसके साथ ही गुरुदेव ने गुरुणी मैया को भी आज्ञा प्रदान कर दी। गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए गुरुणी मैया का चातुर्मास हेतु ब्यावर पदार्पण हुआ। ब्यावर श्री संघ ने उत्साहपूर्वक समारोह के साथ धूमधाम से आपका नगर प्रवेश करवाया। चातुर्मास में धर्म ध्यान का ठाट लग गया। इस वर्षावास में आपकी प्रतिभा संपन्न सुयोग्य परम विदुषी शिष्या महासती श्री चम्पाकुवंरजी म.सा. के सारगर्भित प्रवचन होने लगे। प्रवचन पीयूष का पान करने के लिये श्रोताओं का समूह उमड़ पड़ता था। प्रवचन में लगभग दो हजार श्रोताओं की उपस्थिति प्रायः प्रतिदिन रहती थी। परम विदुषी महासतीजी बड़े ओज और बिना लाउड स्पीकर की सहायता के प्रवचन फरमाते थे। आपके प्रवचन के समय श्रोता पूर्ण तन्मय होकर प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त करते थे। कहीं भी जरा सी भी हलचल इस अवधि के दिखाई नहीं देती थी प्रवचन लगभग दो घंटे तक चलता था भगवान् महावीर के सिद्धांतों का अपने प्रवचनों के माध्यम से परमविदुषी, कुशल प्रवचन कर्त्री महासती श्री चंपाकुवंरजी ने कुछ इस प्रकार प्रचार किया कि उसकी सौरभ आज भी अनुभव की जाती है।

4 गुरुणी मैया अपने सुरीले कंठ से चौपाई सुनाया करती थीं। जिस समय गुरुणी मैया चौपाई का सस्वर पाठ करती थी, उस समय ऐसा प्रतीत होता कि मानो कहीं कोयल कुहूक रही है या वीणा के तार झंकृत हो रहे हैं। गुरुणी मैया चौपाई भी भिन्न भिन्न रागों में सुनाया करती थी, जिससे श्रोता बहान भाई मंत्र-मुग्ध हो जाया करते थे। आपकी मधुर वाणी की श्रोताओं पर गहरी छाप पड़ती थी। शुद्ध मारवाड़ी भाषा में जब आप चौपाई या किसी काव्य को सस्वर सुनाती थी तो श्रोताओं का मन मयूर नाच उठता था। श्रोता उस समय अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति करते थे। यहां उल्लेखनीय बात यह है कि गुरुणी मैया अपनी बात मारवाड़ी भाषा में कहना अधिक पसंद करती थी। चौपाई काव्य के अतिरिक्त वे मारवाड़ी भाषा में कहानियां भी सुनाया करती थीं। उस समय श्रोता कहानी सुनने में तन्मय होकर अपना अस्तित्व भी भूल जाया करता था।

आपका ब्यावर चातुर्मास बहुत धूमधाम के साथ विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम के साथ सानंद सफल हुआ और चातुर्मास के पश्चात जब ब्यावर से विहार करने का समय आ गया तो सभी आश्चर्य से भर गए कि चातुर्मास इतनी जल्दी समाप्त हो गया। ब्यावर श्री संघ ने चातुर्मास के पश्चात् आपको भावभीनी बिदाई दी।

पाली वर्षावास :- मैं गुरुणी मैया की सेवा में दीक्षित हो चुकी थी। वर्षावास मेरे लिए पहला ही था। वर्षावास पाली में होना निश्चित हो चुका था। पाली में स्व. स्वामी श्रीब्रजलालजी म.सा. स्व. युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म.सा. 'मधुकर' जो उस समय उपाध्याय के पद पर सुशोभित थे का वर्षावास भी था। प्रतिदिन प्रवचन गंगा प्रवाहित होती और श्रोता उसका लाभ उठाते। प्रवचन सुन सुनकर श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते थे। बड़े ही ठाट-बाट से वर्षावास के कार्यक्रम चल रहे थे।

पाली वर्षावास की अवधि में ही गुरुणी मैया के संसारपक्षीय ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान फूसालालजी और भतीजे श्री कस्तूरचंदजी का चार पांच बार पाली गुरुदेवों के दर्शनार्थ एवं जिनवाणी श्रवणार्थ आगमन हुआ और उन्होंने गुरुदेव की सेवा में बार बार विनती प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया कि महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. एवं उनकी शिष्याओं को कटंगी (मध्य प्रदेश) को पावन करने की आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें। गुरुदेव ने श्रीमान फूसालालजी की भावना को ध्यान में रखते हुए गुरुणी मैया को कटंगी की ओर विहार करने की आज्ञा प्रदान कर दी। गुरुदेव की आज्ञा सुनकर गुरुणी मैया कुछ क्षण तो मौन ही रही। संभवतः विचार कर रही हो कि इतने वर्षों तक तो मारवाड़ में ही विचरण किया। गुरुदेव का सान्निध्य भी बराबर बना रहा। अब गुरुदेव की वृद्धावस्था भी है और ऐसे में इतनी दूर विहार करने की आज्ञा। आपने गुरुदेव की सेवा में निवेदन किया - "गुरुदेव ! आपश्री की वृद्धावस्था आपश्री की सेवा छोड़कर इतना लम्बा विहार ! कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"आयुष्य की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। इधर की चिंता छोड़ दो और सुराणाजी की बात पर ध्यान दें। उनकी भावना को स्वीकार कर लें।" गुरुदेव ने फरमाया।

इससे आगे गुरुदेव से कोई अन्य बात नहीं हुई। गुरुणी मैया ने जान लिया कि गुरुदेव का आदेश अंतिम है। उसका पालन करना ही है। गुरुणी मैया अपनी दीक्षा से लेकर अभी तक मारवाड़ में ही विचरण करती रही थी। गुरुदेव का सान्निध्य भी बना रहा था। अब एकाएक सुदूर क्षेत्र की ओर विहार होगा। यह अब अटपटा तो लग रहा था किंतु नये क्षेत्र की ओर धर्म प्रचार के लिये जाने का एक अच्छा अवसर था।

वर्षावास सानंद सम्पन्न हुआ और श्रीमान फूसालालजी पुनः आ गए। विहार की तैयारियाँ होनी लगी और फिर एक दिन गुरुदेव की आज्ञा से उनके मंगल वचन सुनकर कटंगी (मध्य प्रदेश) की ओर विहार कर दिया।

राजस्थान से मध्य प्रदेश की ओर विहार हो गया। छोटे बड़े ग्राम नगरों में धर्म प्रचार कर विहार यात्रा आगे की ओर बढ़ती रही। मार्ग में गुरुणी मैया ज्वर से पीड़ित हो गई। उचित उपचार से उनका स्वास्थ्य ठीक हुआ तो अन्य साध्वियों को ज्वर हो गया। औषधि आदि के सेवन से स्वास्थ्य लाभ हुआ। अस्वस्थता होते हुए भी यात्रा में रुकावट नहीं आई और सभी साहस और उत्साह के साथ आगे बढ़ती रही। विहार में खट्टे मीठे सभी प्रकार के अनुभव होते हैं। बाधा और कठिनाइयाँ भी आती हैं। उनका धैर्य और साहस के साथ मुकाबला करना पड़ता है। हम कुल चार ठाणा थे। पाली से विहार किया उस समय हमारे साथ दाऊजी थे। वे जावरा (मध्य प्रदेश) तक हमारे साथ रहे। उसके पश्चात्, एक वृद्ध व्यक्ति ही हमारे साथ रहा। एक गृहस्थ बहन तारा जो वर्तमान में साध्वी तरुण प्रभा है, भी हमारे साथ थी। हमारा विहार निरंतर चल रहा था। कहीं भी अधिक रुकने का अवसर नहीं था। इसका कारण यह था कि विहार लंबा था। श्रद्धालुओं की ओर से कुछ दिन रुक कर प्रवचन का एवं सेवा का लाभ देने का आग्रह तो बहुत हुआ किंतु हमारी अपनी समस्याएँ भी थी, इस कारण कहीं अधिक नहीं रुके और सतत् विहाररत रहे। इसी विहार क्रम में एक घटना घटित हुई। इस समय गुरुणी मैया का साहस देखने योग्य था।

विषम परिस्थिति :- ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए गुरुणी मैया के साथ हम पीपरिया पहुंचे। यहां दिगम्बर जैन मतावलम्बियों के घर हैं। पीपरिया वालों ने कहा कि आप फूलचंदजी सोनी के घर में रुक जाना। श्री सोनी का घर मार्ग पर ही था। मैं सबसे आगे थी। घर में उतरने के लिये अनुमति मांगी। घर में ठहरने के लिये स्पष्ट रूप से इंकार कर दिया और एक स्कूल भवन में ठहराने को कहा। हम सब स्कूल भवन में ठहर गये। स्कूल भवन में एक ही कमरा था। खिड़कियाँ आदि भी टूटी हुई थी। फिर भी हम इस विषम परिस्थिति को स्वीकार कर उसमें ठहर गये। इसके पश्चात् गवेषणा के लिये गए। तब न तो प्रासुक जल ही मिला और न कुछ आहार ही मिला। कुछ समय के लिये हम सभी ने धैर्य धारण कर समय व्यतीत करना उचित समझा। लगभग एक बजे सोनीजी के यहां सूचना आई और तब तत्काल सोनी जी का लड़का हमारे पास आया और गोचरी के लिये प्रार्थना की। हम दो साध्वियाँ आहार पानी के लिये गयी और आहार लेकर वापस आ गयी। स्कूल भवन के इस कमरे का दरवाजा टूटा हुआ था और खिड़कियाँ भी नहीं थी। गांव के लड़के बहुत ही उदण्ड थे। उनमें विवेक नाम मात्र का भी नहीं था। उनकी उदण्डता इतनी अधिक थी कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। ये लड़के खिड़की में से निम्बोली, बोर, एवं आम की गुठलियाँ आदि फेकने लगे। हमारा आहार पानी करना कठिन हो गया। ऐसी विषम परिस्थिति को देखकर हमारे साथ वाले भाई ने पहले तो उन लड़कों समझाने का प्रयास किया, किंतु जब इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ तो उसने लड़कों को डराया धमकाया। इस पर लड़के अपने काका को बुला लाये। उसने आकर भी कुछ असभ्यता दिखाई। इस पर गुरुणी मैया ने उसे बड़े ही प्रेम से समझाया। उस पर भी इस समझाइश का कोई असर नहीं हुआ। इस प्रकार उस दिन तीन बजे तक हमारी गोचरी नहीं हो पाई। इसी समय कटंगी वाले मूलचंदजी चोरड़िया के दामाद श्री अशोकचंद्रजी गाडरवाड़ा से यहां आये। उन्होंने दर्शन किये। साथ वाले भाई से उन्हें यहां की स्थिति का पता चला। गुरुणी मैया से

उन्होंने निवेदन किया कि आप लाया हुआ आहार वापर लें। मैं बाहर खड़ा हूँ। आप किसी प्रकार की चिंता न करें। इसके पश्चात् हम चारों साध्वियों ने आहार किया। थोड़ी देर रुक कर श्री अशोकचंद्रजी वहां से चले गये।

हम सभी साध्वियां गुरुणी मैया के समीप बैठकर प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाओं से निवृत्त हुईं। इसके पश्चात् हम सब तो सो गईं किंतु गुरुणी मैया अर्धरात्रि तक माला फेरती रही।

साध्वीजी श्री बसंत कुंवरजी म.सा. ने अर्धरात्रि में निवेदन किया “गुरुणी जी ! अब आप थोड़ा विश्राम कर लें। मैं बैठी रहूंगी।”

गुरुणी मैया ने सुना और लेटे ही थे कि वही व्यक्ति जिसका नाम पालीवाल था, आकर खड़ा हो गया। वह माचिस जलाते जलाते कमरे के अंदर तक आ गया। सभी साध्वियां जाग रही थी तत्काल उठकर बैठ गयीं। हमारे साथ वाली बहन ने अपने पास रखी टार्च जलाई। उस व्यक्ति ने कहा ‘टार्च नहीं जलाना’ उसके इतना कहते ही हम सभी बाहर छत के नीचे आकर खड़ी हो गईं। वह व्यक्ति भी बाहर आकर गपशप करने लगा। उसने कहा - “तुम डरती हो। डर किस बात का है, बताओ तो।”

“यह तुम्हारा भ्रम है। हमें किसी से डर नहीं लगता है फिर हम डरें भी तो क्यों?” गुरुणीजी ने कहा।

“आप मुझे जानती नहीं हो। मैं आदमी को मार कर हाथ भी नहीं धोता हूँ और खाना खा लेता हूँ।” उस आदमी ने कहा। ऐसा कहकर वह व्यक्ति हमारे साथ वाले भाई को, जो सोया हुआ था, जगाने लगा। गुरुणी मैया ने कहा “उस भाई को सोने दो, उसे उठाने की आवश्यकता नहीं है।” इसके पश्चात् गुरुणी मैया ने उसे बड़े ही प्रेम से समझाकर रवाना कर दिया। वह चला तो गया किंतु हमारे मन में यह आशंका बनी रही कि वह व्यक्ति पुनः लौटकर आयेगा। हम में से कोई भी सोया नहीं, सभी जाग रहे थे। कुछ विचार कर भी नहीं पाये थे कि वह व्यक्ति लौटकर आ गया। हमारी आशंका सत्य निकली। आते ही उस व्यक्ति ने कहा - “आप सोये नहीं अभी तक बाहर क्यों बैठे हैं?”

गुरुणी मैया ने दृढ़तापूर्वक कहा - “तुम्हें इससे क्या लेना देना। हमारी तो यह आदत में है हम माला फेरने के लिये बैठे हैं।” हमें उस व्यक्ति का आचरण गलत लग रहा था। मन ही मन आने वाले समय में होने वाली संभावित घटना पर विचार भी चल रहा था। हमें तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें? गुरुणी मैया साहस के साथ उस व्यक्ति से बात करती जा रही थी और समझाती भी जा रही थी। इसी बीच हमारे साथ वाली बहन ने स्कूल भवन के पास वाले मकान में रहने वालों को आवाज लगाई। आश्चर्य तब हुआ, जब बार बार पुकारने पर भी उस मकान से कोई भी व्यक्ति न तो निकल कर बाहर आया और न ही वहां से कोई आवाज सुनाई दी। इधर गुरुणी मैया उस व्यक्ति से दृढ़तापूर्वक बात करती रही और उसे समझाती भी रही। हम सब श्री नमस्कार महामंय का स्मरण करने लगीं। समय व्यतीत होता गया और सूर्योदय के लक्षण प्रकट होने लगे। पक्षियों की चहचहाहट सुनाई देने लगी। किसान अपने पशुओं को लेकर वन की ओर जाने लगे। अनायास वह व्यक्ति बात करते करते पलटा और जिधर से आया था उधर चला गया। थोड़ी देर में सूर्योदय हो गया और गुरुणी मैया के आदेश से हमने वहां से विहार कर दिया। वनखेड़ी नामक ग्राम पहुंचे। वहां एक दिगम्बर जैन भाई के यहां मुकाम किया। जब उसे

गत रात वाली घटना की जानकारी मिली तो उसने गुरुणी मैया के समक्ष निवेदन किया कि आपकी आयुष्य प्रबल थी, इसीलिये बच गये। वह व्यक्ति डाकू से भी बढ़कर है। धर्म के प्रभाव से आपका किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं हुआ।

वर्षावास हेतु कटंगी में प्रवेश :-

वर्षावास का समय निकट आ रहा था। इसलिये कटंगी पहुंचने की शीघ्रता भी थी। जहां भी पहुंचते, वहीं कुछ रुकने की प्रार्थना होती, किंतु हमारी अपनी मजबूरी थी। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वर्षावास हेतु कटंगी में प्रवेश किया। श्री संघ कटंगी ने समारोह पूर्वक बड़े ही हर्षोल्लास पूर्वक प्रवेश करवाया। प्रवेश के समय नगर की छटा दर्शनीय थी। वर्षों की विनती के पश्चात् श्री संघ कटंगी की इच्छा की पूर्ति हो पाई थी।

वर्षावास काल में प्रवचनों में श्रोताओं की उपस्थिति काफी रहती थी। धर्मध्यान की ओर श्रावक-श्राविकाओं में अच्छा उत्साह रहा। तपस्यायें भी हुईं। इस प्रकार गुरुणी मैया का यह वर्षावास धर्म ध्वजा फहराने में पूर्ण सफल रहा। अनेक ग्राम नगरों के श्री संघ भी वर्षावास की अवधि में कटंगी में उपस्थित हुए, और अपने अपने क्षेत्र में पधारने की विनती करने लगे। दर्शनार्थियों का तो तांता लगा रहता था। एक दिन दुर्ग श्री संघ सेवा में उपस्थित हुआ और गुरुणी मैया की सेवा में अपनी भाव भरी विनती बड़े ही प्रभावी ढंग से रखी। गुरुणी मैया ने साधु भाषा में अपना उत्तर दिया। दुर्ग श्री संघ इससे कुछ आश्चस्त अवश्य हुआ। कुछ दिन व्यतीत हो जाने के उपरान्त पुनः बसें लेकर दुर्ग श्री संघ सेवा में उपस्थित हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि श्री संघ दुर्ग की विनती को टालना संभव नहीं हैं किंतु अभी वर्षावास समाप्त नहीं हुआ था। निश्चित रूप से कहा भी नहीं जा सकता था फिर भी गुरुणी मैया ने उन्हें अपने ढंग से आश्चस्त कर दिया। श्री संघ दुर्ग को अब विश्वास हो गया कि वर्षावास के पश्चात् गुरुणी जी दुर्ग को अपनी चरणरज से अवश्य पावन करेंगी। श्री संघ दुर्ग जैन धर्म की जय, महावीर स्वामी की जय गुरुदेव की जय और गुरुणी मैया की जय जय कार कर वापस लौट गया।

वर्षावास समाप्त हुआ और विहार का समय आ गया। श्री संघ दुर्ग की विनती का ध्यान रख कर गुरुणी मैया ने दुर्ग की ओर विहार कर दिया। दुर्ग श्री संघ को जब यह समाचार मिले तो वहां खुशियां छा गईं। विभिन्न ग्राम नगरों में धर्म प्रचार करते हुए दुर्ग पधारना हुआ। इस अवसर पर श्री संघ दुर्ग का उत्साह देखने योग्य था। कुछ दिन यहां ठहर कर आसपास के ग्राम नगरों की ओर विहार कर दिया। आगामी वर्षावास की घोषणा दुर्ग के लिये कर दी गई। इससे दुर्ग श्री संघ का उत्साह द्विगुणित हो गया।

दुर्ग में वर्षावास :- वर्षावास का समय निकट आने पर शुभ मुहूर्त में वर्षावास हेतु दुर्ग में प्रवेश किया। श्री संघ दुर्ग ने धूमधाम से आपका प्रवेश करवाया। आपके दुर्ग प्रवेश के साथ ही दुर्ग में धर्म गंगा प्रवाहित होने लगी। धर्मध्यान का ठाट लग गया। दर्शनार्थियों की भीड़ पूरे वर्षावास की अवधि में बनी रही। वर्षावास के चार माह किधर निकल गये कुछ पता ही नहीं चल पाया।

दुर्ग का वर्षावास सानंद संपन्न हुआ, और गुरुणी मैया ने ठाणा चार से बालोद की ओर विहार कर दिया।

सतत् विहार :- गुरुणी मैया का बालोद आगमन हुआ और आपके प्रभाव से यहां कु. ललिता को विरक्ति हो गई। कु. ललिता ने संसार की असारता को समझ कर आपके सान्निध्य में संयम व्रत अंगीकर करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

बालोद से गुरुणी मैया धमतरी पधारी। यहां भी आपके प्रभाव के परिणाम स्वरूप एक वैरागन बहन की उपलब्धि हुई। धमतरी से विहार कर गुरुणी मैया आदि ठाणा का पदार्पण भखारा हुआ। भखारा में श्रीमान अनोपचंदजी की सुपुत्री कुमारी चंचल आत्मकल्याण के मार्ग पर चलने के लिये उत्सुक थी। गुरुणी मैया का सान्निध्य पाकर कुमारी चंचल का वैराग्य भाव जाग उठा और उसने दीक्षा लेने का मानस बना लिया। इस प्रकार छत्तीसगढ़ में गुरुणी मैया ने धर्म ध्वजा फहरा दी और अच्छी धार्मिक जागृति उत्पन्न कर दी।

कु. ललिता की दीक्षा दुर्ग में हुई और उन्हें साध्वी श्री चेतनप्रभाजी म. के नाम से प्रसिद्ध किया। दीक्षोत्सव के पश्चात् बालोद पधारे। बालोद से विहार कर अछोली नामक एक छोटे से ग्राम में पधारना हुआ। यहां गुरुणी मैया अस्वस्थ हो गई। आपको यूरिन की तकलीफ थी। कष्ट बहुत अधिक होने लगा। लेकिन गुरुणी मैया ने काफी कष्ट सहिष्णुता का परिचय दिया। धैर्यपूर्वक आपने कष्ट सहन किया। गुरुणी मैया की अस्वस्थता के समाचार तत्काल ही आसपास के ग्राम नगरों में फैल गए। इससे आपकी सेवा में दर्शनार्थियों का तांता लग गया।

उपचार :- वैसे तो कहावत है कि इदं शरीरं व्याधि मंदिरम्। किंतु जब व्याधि अधिक बढ़ जाती है तो वह असह्य हो जाती है। महापुरुष इस पर भी बीमारी को समभाव से सहन कर लेते हैं। गुरुणी मैया से श्री संघों ने डोली अथवा ठेलागाड़ी से आगे की ओर बढ़ने का आग्रह किया। आत्मबली गुरुणी मैया ने कोई उत्तर नहीं दिया। इस छोटे से गांव में चिकित्सा सुविधायें जुटा पाना संभव नहीं हो पा रहा था, इधर रोग बढ़ता ही जा रहा था। अंततः संघ वालों ने निर्णय कर ही लिया और गुरुणी मैया के लिये ठेलागाड़ी की व्यवस्था कर साध्वियों ने वहां से विहार कर गुरुणी मैया को लेकर राजनांदगांव के स्थानक में प्रवेश किया। गुरुणी मैया के राजनांदगांव पधार जाने से सभी ने राहत का अनुभव किया। यहां चिकित्सा की उचित व्यवस्था हो गई। आपके आगमन के साथ ही चिकित्सा आरंभ हो गई। लेडी डाक्टर गुरुणी मैया को देखने दिन में चार बार आती। किंतु वे फीस आदि नहीं लेती थी। उनके उपचार से गुरुणी मैया को लाभ हुआ और शीघ्र ही स्वस्थ हो गई।

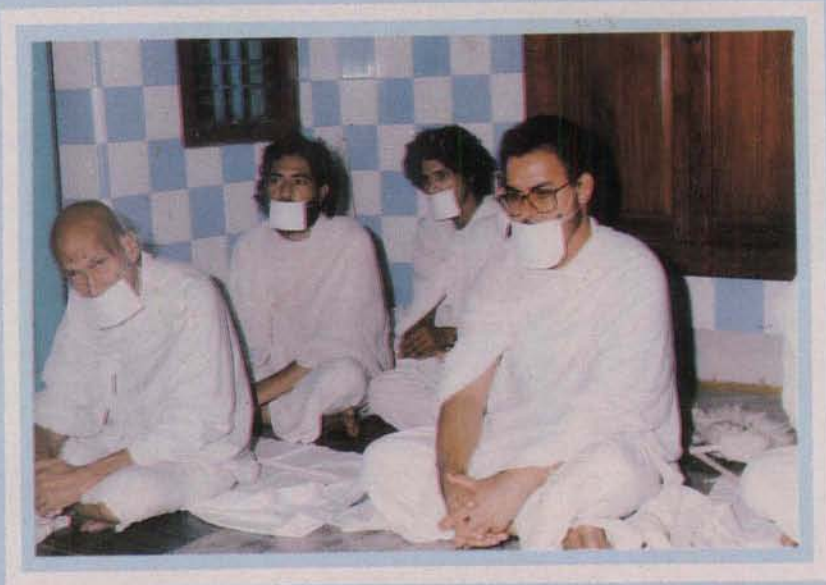
स्वास्थ्य लाभ हो जाने के कुछ दिन बाद में राजनांदगांव से विहार कर दिया। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए गुरुणी मैया बालाघाट पधारी। यहाँ अच्छी जागृति रही। प्रवचनों की धूम मच गई। दर्शनार्थियों का तांता लगा रहा। यहीं चांगाटोला से गुरुणी मैया के सांसारिक व ननिहाल पक्ष से कुछ व्यक्ति आए और सेवा में चांगाटोला पधारने की विनती की। गुरुणी मैया ने देश काल परिस्थिति पर विचार करते हुए चांगाटोला वालों की विनती स्वीकार कर ली। चांगाटोला में श्रीमान पत्रालालजी बोथरा, श्रीमान उत्तमचंदजी कटारिया आदि गुरुणी मैया के संसार पक्षीय भतीजी जवाईं हैं। चांगाटोला पधारने पर भावभीना स्वागत हुआ। श्री संघ ने उत्साह और जागृति का संचार हुआ। चांगाटोला में कुछ दिनों तक स्थिरता रही। धर्म ध्यान की गंगा प्रवहमान हो चली। महावीर जयंती हर्षोल्लासपूर्वक मनाई गई। ओली तप भी हुआ। श्रावक श्राविकाओं में नयी जागृति आई। चांगाटोला में निम्नांकित जयघोष काफी प्रचारित रहा -



चिर निद्रा में लीन महासती श्री कान कुँवर जी म.सा. ।



महासती श्री कानकुँवरजी म. के देवलोक होने के तत्काल पश्चात् काउसग करते हुए उनकी शिष्या/प्रशिष्याएं ।



महासती श्री कानकुंवर जी म. के देवलोक होने का समाचार सुनते ही संवेदना प्रकट करने आए
उपाध्याय श्री केवल मुनि जी म. एवं उपाध्याय श्री विशाल मुनि जी म. अपने शिष्यों के साथ ।



सांत्वना प्रकट करने के लिए पेरम्बूर से पधारी साध्वीजी,
महासती श्री कानकुंवर जी म. की शिष्याओं के साथ ।



स्व. महासतीजी की तन, मन और धन से सेवा करने वाले
डॉ. पी.सी. सुराणा एवं उनकी माता जी, महासतीजी की शिष्याओं के साथ।



श्रद्धालु भक्तों के कंधों पर अंतिम यात्रा का एक दृश्य।



स्व. महासती श्री कानकुंवर जी म. के पार्थिव देह के अग्नि संस्कार की तैयारी ।



अग्नि की ज्वाला में भस्मीभूत होती स्व. महासतीजी की पार्थिव देह ।



महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. चिर निद्रा में लीन ।



स्व. महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए
पं. र. श्री आशीष मुनिजी एवं श्री नमन मुनि जी म. तथा अन्य ।



श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए महासती मण्डल।



श्रद्धांजलि सभा का एक अन्य दृश्य।



महासती श्री चम्पा कुंवर जी म.सा. की अंतिम यात्रा के दो दृश्य ।





चिता पर महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. सा. की पार्थिव देह : अंतिम दर्शन



महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. के अग्नि संस्कार का एक दृश्य ।

कान कुवरंजी आये हैं
नई रोशनी लाये हैं।

चम्पाकुवरंजी आयी हैं
शास्त्रों की ज्योति जगायी है।

आघात :- चांगाटोला से विहार हुआ। विभिन्न ग्रामों में धर्म प्रचार करते हुए कटंगी पर्दापण हुआ। कटंगी में समाचार मिला कि श्रद्धेय उपप्रवर्तक स्वामी ब्रजलालजी म.सा. का धूलिया में आषाढ़ कृष्णा अष्टमी को स्वर्गवास हो गया है। इस दुःख समाचार से सभी को गहरा आघात लगा। गुरुदेवश्री आचार्य सम्राट श्री आनंद ऋषिजी म.सा. की सेवा में नासिक पधार रहे थे। विधि की विडम्बना भी विचित्र है। अभी गुरुदेव आचार्य सम्राट की सेवा में पहुंच भी नहीं पाये थे कि सभी को रोता बिलखता छोड़कर सदा सदा के लिये बिदा हो गये। समाचार मिलते ही चार चार लोगस्स का ध्यान किया। शोक सभा का आयोजन कर गुरुदेव की आत्मा को शांति प्रदान करने के लिये श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शासन देव से प्रार्थन की गई।

बालाघाट वर्षावास :- बालाघाट में वर्षावास करने की घोषणा हो चुकी थी। वर्षावास का समय निकट आ रहा था। इस कारण विहार बालाघाट की ओर हो गया। शुभ मुहूर्त में वर्षावास हेतु बालाघाट में धूमधाम से प्रवेश हुआ। वर्षावास प्रारंभ हुआ और इसी के साथ प्रवचन भी प्रारंभ हुए। यहाँ जिनवाणी की अच्छी प्रभावना हुई। व्याख्यान बहुत ही प्रभावशाली होते थे। व्याख्यान में शास्त्रीय उद्धरणों के साथ साथ कथाओं के दृष्टांत भी होते थे। इससे श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते थे। विभिन्न त्याग-तपस्यायें भी खूब हुई। इस प्रकार बालाघाट का वर्षावास धर्म ध्यान की दृष्टि से काफी सफल रहा। वर्षावास सानंद संपन्न हुआ और बिदाई का क्षण भी आ गया। बालाघाट श्री संघ ने अश्रुपूरित नेत्रों से गुरुणी मैया को बिदा किया। स्थानक से समारोहपूर्वक बिदा होकर गुरुणी मैया अपनी शिष्याओं के साथ विहार कर नगर के बाहर एक स्थान पर मुकाम हुआ। यहाँ से आगे किस ओर विहार करना है? इस बात पर योजना बन रही थी। इसी समय श्रीमान मोहनलालजी ललवानी बदहवासी की स्थिति में गुरुणी मैया की सेवा में आये।

वज्राघात :- श्रीमान मोहनलालजी ललवानी आर्तध्यान में थे। वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे। क्या कहूँ? कैसे कहूँ? विधि ने हमारे साथ बड़ा ही क्रूर व्यवहार किया है। हम सब श्री ललवानी जी के ऐसे व्यवहार से हतप्रभ थी। हमारे भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो गया है। गुरुणी मैया ने पूछा “ललवानी जी क्या बात है। आप ऐसे घबराये हुए क्यों हैं?”

“महाराज सा., गुरुदेव नहीं रहे। नासिक से ऐसी सूचना मिली है कि क्रूर काल ने गुरुदेव को अपना ग्रास बना लिया है।” इतना कहते कहते उनका कंठ अवरुद्ध हो गया और आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। हम सब अवाक, हतप्रभ, सूनी सूनी आँखों से एक दूसरे की ओर देखती रही। विधि ने कितना क्रूर उपहास किया है। अभी कुछ दिनों पूर्व धूलिया में स्वामीजी के देवलोक होने का आघात सहन भी नहीं कर पाये थे कि आज फिर यह वज्राघात हो गया। हमारे श्रद्धेय युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म.सा. ‘मधुकर’ अब हमारे बीच नहीं रहे। इस समाचार से सभी शोक से भर गये। ऐसे में ही चार चार लोगस्स का ध्यान किया और शोक सभा का आयोजन कर श्रद्धांजलि प्रदान की गई।

समाचार प्राप्त होते ही बालाघाट से कुछ श्रावक तत्काल नासिक के लिये रवाना हो गये, ताकि गुरुदेव के अंतिम दर्शन कर सकें और उनके अंतिम संस्कार में सम्मिलित हो सकें। गुरुदेव के अंतिम संस्कार वाले दिन पूरे भारतवर्ष से दर्शनार्थियों और श्रद्धालु भक्तों का सैलाब नासिक की ओर उमड़ पड़ा था। गुरुदेव के परलोकगमन से एक ऐसी रिक्तता हो गई जिसका भरना असंभव प्रतीत होता है। गुरुदेव के आज्ञानुवर्ती मुनिराजों, महासतियों एवं श्रद्धालु श्रावकों के लिये तो यह एक अपूरणीय क्षति थी। उन्हें तो ऐसा लग रहा था, मानों उनका सब कुछ लुट गया हो।

दक्षिण की ओर :- आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडू की ओर से काफी दिनों से विनती आ रही थी। गुरुदेव के देवलोक हो जाने से मन भी अशांत था। विहार तो होना ही था। इस कारण गुरुवर्या ने आंध्र प्रदेश की ओर विहार करने का संकेत दिया। तदनुसार विभिन्न ग्राम नगरों में धर्म प्रचार करते हुए असीफाबाद पधारना हुआ। इस समय मेरा वर्षांतर चल रहा था। असीफाबाद में प्रत्याख्यान के साथ वर्षा तप का पारणा हुआ। यहां से लक्षादिपेट पदार्पण हुआ। यहां आते आते कमजोरी इतनी बढ़ गई थी कि चलना फिरना तो ठीक उठना बैठना तक बंद हो गया। ये समाचार आसपास के ग्राम नगरों तक फैल गये थे। इससे दर्शनार्थियों का आवागमन अधिक होने लगा। बोलाराम से सुराणा परिवार का आगमन हुआ। वे अपने साथ व्हील चेअर भी लेकर आए थे। लक्षादिपेट से बोलाराम आगमन हुआ। इस अवधि में सेवा का लाभ बोलाराम वालों ने ही लिया। इसी बीच वर्षावास का समय भी आ रहा था। बोलाराम वालों की भावना को ध्यान में रखते हुए वर्षावास बोलाराम में किया। यह वर्षावास भी धर्मसाधना की दृष्टि से काफी सफल रहा। वर्षावास की समाप्ति के पश्चात् आसपास के क्षेत्रों में विचरण करते हुए गुरुणी मैया का सिकंद्राबाद पदार्पण हुआ। वर्षावास भी यहीं हुआ। सिकंद्राबाद में भाखारा निवासी श्रीमान अनोपचंद पारख की सुपुत्री कु. चंचल का दीक्षोत्सव धूमधाम से हुआ और नवदीक्षिता साध्वी का नामकरण साध्वी श्री चंद्रप्रभाजी म.सा. करके उन्हें परमविदुषी महासतीश्री चंपाकुवरजी म.सा. की शिष्या के रूप में घोषित किया।

वर्षावास की अवधि में कर्नाटक प्रांत से श्रद्धालु भक्तों की विनती हो चुकी थी कि आपका वर्षावास के पश्चात् कर्नाटक की ओर पधारना है। एक बार तो लगभग नब्बे श्रावक/श्राविकायें विनती लेकर उपस्थित हुए थे।

वर्षावास समाप्त हुआ और कर्नाटक के भक्तों की विनती को ध्यान में रखकर गुरुणी मैया ने कर्नाटक की ओर विहार कर दिया। विभिन्न ग्राम-नगरों में धर्म प्रचार करते हुए आपका पदार्पण रायचूर में हुआ। रायचूर आगमन से श्री संघ में उत्साह का संचार हुआ। जिनवाणी की पावनधारा प्रवाहित हो चली। प्रवचनों की धूम मच गई। रायचूर में आपका प्रभाव सभी पर समान रूप से पड़ा। महावीर जयंती हर्षोल्लासपूर्वक रायचूर में मनाई गई। इधर वर्षावास के लिये भी स्थान स्थान से विनतियां आ रही थी। सिधनूर श्री संघ की भावभरी आग्रहपूर्ण विनती को देखते हुए गुरुणी मैया ने सिधनूर श्री संघ को आगामी वर्षावास के लिये स्वीकृति प्रदान कर दी। समयानुकूल रायचूर से विहार हुआ। अभी वर्षावास प्रारंभ होने कुछ समय शेष था। अतः आसपास के ग्राम नगरों में धर्मप्रचार करते हुए गुरुणी मैया का सिधनूर में पदार्पण हुआ। सिधनूर कर्नाटक में एक छोटा क्षेत्र है किंतु श्री संघ में अच्छा उत्साह है। समारोहपूर्वक वर्षावास हेतु सिधनूर में प्रवेश किया। वर्षावास काल में अच्छी धार्मिक जागृति रही। साहुकार पेठ, मद्रास से लगभग प्रतिदिन श्रावक-श्राविकाओं का दर्शनार्थ आना बना रहा। सिधनूर वर्षावास में गुरुणी मैया का

स्वास्थ्य भी नरम ही रहा। पाचन क्रिया ठीक नहीं रही और यूरिन के कष्ट के कारण स्वास्थ्य में गिरावट आ गई। इतना होने पर भी आत्मबली गुरुणी मैया ने अपने संयम में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी। धार्मिक क्रियायें नियमित रूप से चलती रही। शोलापुर से उपचारार्थ डाक्टर को भी बुलवाया था। डाक्टर ने गुरुणी मैया का परीक्षण करके योग्य उपचार भी आरंभ कर दिया था। औषधि बराबर चल रही थी। गुरुणी मैया की अस्वस्थता को देखते हुए श्री संघ साहुकार पेठ, मद्रास ने मद्रास की ओर विहार करने की भावभरी विनती की। वैसे इनकी विनती काफी दिनों से गुरुणी मैया की सेवा में होती आ रही थी। अनुकूलता के अभाव में मद्रास की ओर विहार नहीं हो पा रहा था। वर्षावास समाप्त हुआ और विहार मद्रास की ओर हो गया।

सिधनूर से मद्रास के लिये विहार हो गया। यह समाचार साहुकार पेठ, मद्रास श्रीसंघ को मिल गया। वहां प्रसन्नता की लहर फैल गई। अंततः उनकी वर्षों की साध पूरी होने जा रही थी। गुरुणी मैया विभिन्न ग्रामों नगरों में धर्मज्योति प्रज्वलित करते हुए मद्रास की ओर बढ़ रही थी। जिस ग्राम या नगर में गुरुणी मैया का प्रवेश होता वहीं मद्रास के श्रद्धालु श्रावक उपस्थित हो जाते। सिधनूर से मद्रास तक के विहार में जितने स्थानों पर भी मुकाम हुआ प्रत्येक स्थान पर मद्रास वालों की उपस्थिति रही। इस प्रकार ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए गुरुणी मैया मद्रास पधारे और अक्षय तृतीया के पूर्व वैशाख शुक्ला प्रतिपदा को साहुकार पेठ, मद्रास की भावभरी विनती को ध्यान में रखते हुए महिला स्थानक, साहुकार पेठ, मद्रास में प्रवेश किया। मेरे वर्षों तप का धरणा भी यहीं हुआ।

श्री संघ की विनती को ध्यान में रखते हुए यही वर्षावास भी किया। यह वर्षावास धर्म ध्यान के साथ सानंद संपन्न हुआ। इसी बीच गुरुणी मैया का स्वास्थ्य बिगड़ता गया। उपचार से आपके स्वास्थ्य में सुधार भी होता किंतु विहार योग्य स्थिति नहीं बन पा रही थी। इस कारण एक के पश्चात् एक कुल पांच वर्षावास यहीं किये। ये वर्षावास सकारण हुए।

वज्रपात :- गुरुणी मैया की अस्वस्थता के कारण लगभग पांच वर्षों तक साहुकार पेठ, मद्रास में स्थिरता रही। अस्वस्थता की अवधि में भी आपश्री की संयम के प्रति दृढ़ता रही। माह मार्च १९९१ हमारे लिए अशुभ रहा। आपकी प्रथम शिष्या परमविदुषी महासती श्रीचम्पाकुवरजी म.सा. अचानक अस्वस्थ हो गए। उनके लिये तत्काल उचित उपचार की व्यवस्था की गई। उपचार चलता रहा किंतु किसी प्रकार का लाभ होता दिखाई नहीं दे रहा था। विशेष डाक्टरों को भी बुलाकर परीक्षण करवाया गया। उनके परामर्श से भी औषधियां दी गई। किंतु कोई आशाजनक परिणाम नहीं निकला। डाक्टरों के अनुसार उन्हें ब्रेनहेमरेज हो गया था। अंततः दिनांक १७ मार्च १९९१ को क्रूर काल ने उन्हें अपना ग्राम बना लिया। परमविदुषी महासती श्रीचम्पाकुवरजी म.सा. के असमय देवलोक हो जाने से सभी को गहरा आघात लगा। समाज को आपसे बहुत आशायें थी। गुरुणी मैया का तो बुरा हाल था। गुरुणी मैया ने अपनी प्रिय शिष्या के दिवंगत होने पर कहा था “जाना मुझे चाहिए था, चम्पा तू चली गई। काल ने न्याय नहीं किया।” गुरुणी मैया के मन मस्तिष्क पर गहरा आघात लगा।

महाप्रयाण :- गुरुणी मैया पिछले कई वर्षों से अस्वस्थ थी। उपचार से उन्हें लाभ तो होता किंतु स्थाई लाभ नहीं हो रहा था। परमविदुषी महासती श्री चंपाकुवरजी म.सा. के अचानक स्वर्गवास हो जाने का गुरुणी मैया पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी अस्वस्थता बढ़ने लगी। वर्षावास प्रारंभ हो चुका था। सभी धार्मिक क्रियाएं यथावत चल रही थी। एक दिन एकाएक गुरुणी मैया का स्वास्थ्य एकदम अधिक बिगड़

गया। तत्काल डाक्टरों को बुलाया गया। हम सभी साध्वियां गुरुणी मैया की सेवा में सदैव तत्पर थी। श्री संघ के सदस्यों ने भी तन मन और धन से गुरुणी मैया की सेवा-चिकित्सा की। किंतु कहा गया है कि टूटी की बूटी नहीं है। काफी उपचार करवाया गया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ और ४ अगस्त १९९१ को गुरुणी मैया हम सबको रोता बिलखता छोड़कर महाप्रयाण कर गये। प्राण पखेरु उड़ गये, शेष रह गई पार्थिव देह और स्मृतियां। गुरुणी मैया के देह त्याग के पश्चात् की समस्त औपचारिकताएं भी पूरी की गई।

यहां उल्लेखनीय बात यह है कि अस्वस्थावस्था में गुरुणी मैया ने अपने संयम में शिथिलता नहीं आने दी। अंतिम समय तक माला फेरते रहे। आपमें सहनशक्ति अद्वितीय थी।

महासती श्री चंपाकुंवरजी म.सा. के वियोग को तो अभी हम भुला भी नहीं पाई थी कि गुरुणी मैया का साया भी उठ गया। इस स्थिति में हमें ऐसा लग रहा है कि हमारी मैया बीच भंवर में फंस गई है। गुरुदेव की कृपा से सब कुछ ठीक होगा, यही एक विश्वास है।

स्वभाव :- गुरुणी मैया का स्वभाव सरल एवं सहज था। वे करुणा की साक्षात्मूर्ति थी। वे किसी को दुःखी नहीं देख सकती थीं। दया, क्षमा, विनय, सेवा, जैसे गुण उनमें कूट कूट कर भरे थे। संयम के प्रति जागृति सदा बनी रहती थी। अपनी शिष्याओं और प्रशिष्याओं को भी संयम में दृढ़ रहने की सदैव प्रेरणा देती रहती थी। अपनी शिष्याओं और प्रशिष्याओं के प्रति उनका व्यवहार मातृवत था।

पारिवारिक वैशिष्ट्य :- गुरुणी मैया के परिवार में भी धार्मिक जागृति थी। आपके संसार पक्षीय ज्येष्ठ अर्थात् आपके पति के ज्येष्ठ भ्राता ने श्री जवाहरलालजी म.सा. के सान्निध्य में दीक्षाव्रत अंगीकार किया था। उन्होंने दृढ़ता से संयम का पालन किया था और जप तप में सदैव रत रहते थे। वे पहले गोटा का व्यापार करते थे। व्यापार में उनकी प्रामाणिकता प्रसिद्ध थी। उनके अंतिम समय में उन्हें निमोनिया हो गया था। द्वितीय शिष्या महासती श्री बसंत कुंवरजी म.सा. आपके भंडारी परिवार की ही हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भंडारी परिवार में धर्म ध्यान के प्रति विशेष रुचि है।

शिष्याएं :- आपकी शिष्याओं का संक्षिप्त जीवन परिचय निम्नानुसार दिया जा रहा है।

१. महासती श्री चम्पकुंवरजी म. :-



जन्म :- वि.सं. १९८१ मार्गशीर्ष शुक्ल-प्रतिपदा।

जन्म स्थान :- कुचेरा जिला नागौर (राजस्थान)।

माता :- श्रीमती कृष्णाबाई सुराना।

पिता :- स्व. श्रीमान फूसालालजी सुराना, व्यवसायी कटंगी बालाघाट (मध्य प्रदेश)।

स्वसुराल पक्ष :- कायेला परिवार, बालाघाट (मध्य प्रदेश)।

दीक्षा :- पति वियोग के बाद वि.सं. २००५ माघ शुक्ला दशमी।

दीक्षा स्थान :- कुचेरा जिला नागौर (राज.)।

गुरुदेव :- मरुधरा मंत्री स्व. स्वामीजी श्री हजारीमलजी महाराज।

गुरुणी :- महासती श्री कान कुवंर जी म.सा।

अध्ययन एवं भाषा ज्ञान :- जैन सिद्धांताचार्य, जैन आगमों का गहन अध्ययन। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एवं गुजराती।

विशेषता :- ओजस्वी प्रवचनकर्त्री, सतत अध्ययनशीला, सेवाभावी, समाजोत्थान की दिशा में निरंतर प्रयास।

विहार क्षेत्र :- राजस्थान, मध्य-प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु।

स्वर्गवास :- १७ मार्च १९९१, मद्रास।

आपका विस्तृत परिचय आगामी पृष्ठों में दिया जा रहा है।

२. महासती श्री बसंत कुवंरजी म.



जन्म :- वि.सं. २००२ मार्गशीर्ष।

जन्म स्थान :- कुचेरा जिला नागौर (राजस्थान)।

माता :- श्रीमती सोहनबाई।

पिता :- श्रीमान रतनचंद्रजी बेताला।

पति :- श्रीमान महावीरचंदजी भंडारी, कुचेरा।

दीक्षा तिथि :- वि.सं. २०२४ वैशाख कृष्ण २।

दीक्षा स्थान :- कुचेरा जिला नागौर (राजस्थान)।

गुरुदेव :- स्वामीश्री हजारी मलजी महाराज।

गुरुणी :- महासती श्री कानकुवंरजी महाराज।

अध्ययन :- जैन शास्त्र, थोकड़े आदि।

विशेष :- सेवा भावी।

३. महासती श्री कंचन कुवंरजी महाराज



जन्म :- वि.सं. २०१० मार्गशीर्ष शुक्ला ४।

जन्म स्थान :- राजलदेसर (गंगा शहर, बीकानेर)।

माता :- श्रीमती केसर बाई सेठिया।

पिता :- स्व. श्रीमान हीरालाल जी सेठिया।

पति :- स्व. श्रीमान बुधराजजी नाहर, कुचेरा।

दीक्षा तिथि :- वि.सं. २०३४ वैशाख शुक्ला १।

दीक्षा स्थान :- चांदावतों का नौखा जिला नागौर (राजस्थान)।

गुरुदेव :- स्वामी श्री ब्रजलालजी म.सा. एवं युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा.।

गुरुणी :- स्व. महासती श्री कानकुंवरजी म.सा.।

विशेष :- बी.ए. दो सौ से अधिक थोकड़े कंठस्थ। दशवैकालिक कंठस्थ। बीस पच्चीस आगमों की जानकारी। मधुर प्रवचनकर्त्री, तप में विशेष रुचि मास खमण तक की अनेक तपस्याएं की। संस्कृत प्राकृत हिन्दी की ज्ञाता। आपकी शैली में ओज एवं तेज का प्रभाव है।

४ महासती श्री अक्षय ज्योतिजी महाराज



जन्म :- दिनांक २७ अप्रैल १९७४।

जन्म स्थान :- मद्रास (तमिलनाडु)।

माता :- श्रीमती चंद्राबाई कोठारी।

पिता :- श्रीमान चांदमल जी कोठारी।

दीक्षा तिथि :- विजयादशमी वि.सं. २०४७।

दीक्षा स्थान :- अइनावरम दादावाड़ी, मद्रास।

दीक्षा गुरु :- कविरत्न उपाध्याय पं. श्री केवल मुनिजी म.।

गुरुणी :- स्व. महासती श्री कानकुंवरजी म.सा.।

वैराग्य का कारण :- पूज्य गुरुवर्याश्री के उपदेश से।

अध्ययन :- लघु सिद्धांत कौमुदी, पाथर्डी बोर्ड की परीक्षाएं एवं दक्षिण भारतीय प्रचार सभा की परीक्षाएं।

विशेष :- गायन, कविता आदि में विशेष रुचि।

अध्यात्मयोगिनी (स्व.) महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. के वर्षावास की सूची

स्थान	विक्रम संवत्
१ तिंवरी (राज.)	१९९०
२ पाली (राज.)	१९९१
३ डेह (राज.)	१९९२
४ महामंदिर जोधपुर (राज.)	१९९३

५	जोधपुर (राज.)	१९९४
६	फलौदी (राज.)	१९९५
७	मेड़ता (राज.)	१९९६
८	तिंवरी (राज.)	१९९७
९	डेह (राज.)	१९९८
१०	जोधपुर (राज.)	१९९९
११	उदयमंदिर (राज.)	२०००
१२	ब्यावर (राज.)	२००१
१३ - २४	कुचेरा (राज.) (महासती श्री तुलाछाजी म.सा. की अस्वस्थता के कारण)	२००२ से २०१३
२५	खेतपाली चौतरा (जोधपुर)	२०१४
२६	ब्यावर (राज.)	२०१५
२७	ब्यावर (राज.)	२०१६ सकारण
२८	मेड़ता (राज.)	२०१७
२९	कुचेरा (राज.)	२०१८
३०	मेड़ता (राज.)	२०१९
३१	महामंदिर (जोधपुर)	२०२०
३२	कुशालपुरा (राज.)	२०२१
३३ - ३४	कुचेरा (राज.)	२०२२ से २०२३ सकारण
३५	डेह (राज.)	२०२४
३६	केकीद (राज.)	२०२५
३७	ब्यावर (राज.)	२०२६
३८ पीपाड़ (राज.)		२०२७
३९	पाली (राज.)	२०२८
४०	कुचेरा (राज.)	२०२९
४१	मसुदा (राज.)	२०३०
४२	कुचेरा (राज.)	२०३१
४३	ऊपरलावास (राज.)	२०३२
४४	मेड़ता (राज.)	२०३३
४५	पाली (राज.)	२०३४
४६	कंटगी (म.प्र.)	२०३५
४७	दुर्ग (म.प्र.)	२०३६
४८	बालोद (म.प्र.)	२०३७
४९	रायपुर (म.प्र.)	२०३८
५०	दुर्ग (म.प्र.)	२०३९

५१	बालाघाट (म.प्र.)	२०४०
५२	बोलराम (म.प्र.)	२०४१
५३	सिकन्द्राबाद (आं.प्र.)	२०४२
५४	सिधनूर (कर्नाटक)	२०४३
५५	साहुकार पेठ मद्रास	२०४४ से २०४८

(अस्वस्थता के कारण)

वि.सं. २०४८ के वर्षावास के आठ दिन ही व्यतीत हुए थे कि क्रूरकाल ने आपको अपना ग्रास बना लिया।

* * * * *

स्व. युवाचार्यश्री मिश्रीमलजी म. 'मधुकर' की आज्ञानुवर्ती महासतियों के अन्य संघाड़े। ये महासतियांजी देश के विभिन्न भागों में विचरण करते हुए जैन धर्म की अच्छी प्रभा-वना कर रही है।

- १ महासती श्री गवरांजी म.सा. ठाणा २
- २ महासती श्री उमरावकुंवरजी म.सा. 'अर्चना' ठाणा ११
- ३ महासती श्री उगमकुंवरजी म.सा. आदि ठाणा
- ४ महासती श्री सोहनकुंवरजी म.सा. ठाणा ५
- ५ महासती श्री मनोहरकुंवरजी म.सा. ठाणा ७

अध्यात्मयोगिनी महासतीश्री कानकुवंर जी म.सा. की

पाँच कहानियाँ

- संकलन :- विदुषी महासती श्री कंचन कुवंरजी म.सा.

अध्यात्मयोगिनी (स्व.) महासती श्री कानकुवंरजी म.सा. अपने श्रोताओं को मारवाड़ी भाषा में कुछ कहानियाँ अपनी विशिष्ट शैली में सुनाया करते थे। श्रोतागण इन कहानियों का रसास्वदन लेते लेते मंत्र मुग्ध हो जाया करते थे। जिन्होंने स्व. महासतीजी के श्रीमुख से ये कहानियाँ सुनी हैं, वे इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं। स्व. महासतीजी की विदुषी सुशिष्या श्री कंचनकुवंरजी म.सा. ने बड़ा प्रयास करके पाँच कहानियाँ हिन्दी, मारवाड़ी मिश्रित भाषा में लिखकर तैयार की। हम इन्हें यहाँ वैसी की वैसी ही प्रकाशित कर रहे हैं।

सम्पादक

सांची श्रद्धा

एक जाट और एक जाटनी की दोनुं खेता में काम करन जावता और जाटनी रोज भातो लेर ज़ावती। एक बार मंदर मां भजन कीर्तन हो रह्या हा। लोग क्यो, अरे जाट! खेत री कमाई तो रोज ही कर पण मंदर मां भगवान को नाम तो लियां कर, तो थारों कल्याण हुजई। लोग घणो क्यो। जणा एक दिन जाट और जाटनी भी भजन करवा ने बैठ गया। मन माइने भगवान रे माथे भावना रेवे तो एक दिन में ही श्रद्धा बैठ जावे। अब घरे आवे और खेतां जावे, रात दिन जाट के के भज राम भज राम और जाटनी के के भज सीता सीता। इण तरह बार बार रटन लगायोड़ी राखे और भगवान ने ध्यावे। ए कर जाटनी भैंस दुह ही तो पाड़ो सरकियो कोनी। जणा भज सीता, भज सीता करती करती भज पाड़ा, भज पाड़ा इण तरह रटन और मन में सोच के खेत जाऊं। जणा जाट ने पूछ लेई। पण वठि ने जाट खेत खडे हो जणा खड़ता खड़ता एक लकड़ी रो ठंठों आड़ो आयग्यो। दूठो निकाल्यो कोनी, जणा जाट भज राम भज राम करतो करतो भज दूठा, भज दूठा करण लाग्यो। वो भी मन में जाण्योंक जाटनी आई जणा पूछ लेऊं। अठि ने भाता री टेम हुताई जाटनी आयगी। और दोनूं मूंडा देख, दोनों ने ही नाम आवे कोणी। जणा नेम ले लियो क जठताई सही नाम याद नहीं आवे जिते रोटी ही खांवा कोनी। भातो छीका पर रख दियो और दोनूं जणा रट लगाई। जाट केवे भज दूठा, भज दूठा। जाटनी केवे भज पाड़ा, भज पाड़ा। दोनूं रटे और रटतां रटतां तीन दिन हुग्या। अठिने राम सीता आपरे विमानू कठई जावता। जावता जावता बात करे क देख्यो। सीता जी म्हारा भक्त कित्ता श्रद्धालु है। सीता कियो - दिखायो सरी। रोज केवो म्हारा भक्त म्हारा भक्त। आज दिखाओं जणा रामचंद्रजी कियो में अठी ही खड़े में हूं और थे जावों जणा सीता आगे गई और जाट जाटनी रे कने जायने केवे के किने जपो। जणा वो बोल्ह्यो जपां थारा मांटी ने गुस्सा में तो हाई। जणा पूछो के मारो माटी कठे। केवे वो पड़्यो पोड़ा में जणा खड़ाऊ निकाल ने रामचंद्र जी आया और दर्शन करने कियो अब म्हारो नाम थे कोणी भूलो। सांची श्रद्धा ही जणा रामचंद्रजी और सीता सेन रूप प्रकट हुईग्या और अब वे दोनों तीन दिन रा भूखा तो ही हो। घर आयने खाणों खायो और भगवान को नाम रोजीना ही लेवे। केण को मतलब ओ ही है कि श्रद्धा बिना भगवान मिले कोणी। तो सांची श्रद्धा राखो तो सब काम ठीक हु जावे।

* * * * *

बुढ़ापो दुःखकारी है

एक सेठजी आपसी जवानी रे माय घणों ही कमायो। आखा दिन लाबूजी लाबूजी करता रेता। नी रात रो बैरो न नी दिन रो बलद रे जियान आरधे दिन करटा रेता। ईश्वर की कृपा सुं चार छोकरा ने पोता पोती मोकला ही हा। पण कियों करे है कि उगतोड़ा सूरज न सब जणा नमो करें, आतीयोड़ा के कोनी। बुढ़ापो को किणी बाप रो कोनी। सेठजी अवस्था रे मुजब गोड़ाना दे दिया।

हां, भाया बुढ़ापो बुरो घणो है किया करे है, “बुढ़ापो सबने बुरों, जिणों बुरो है नरा बारे तो छोरा हंसे से ढोड़ नहीं है धरा।”

सेठजी रे माय आ बात सांची रैगे सारो दिन खे खे करता रेता, न आ आ करता रेता। सेठजी रे बेटा दी भुआड़िया कांठी दरान रेगी। मन ही मन में बोलती रेती के ओ बूढ़ो कद मरे ने कद माथो छोड़े। बेटा री लुगाया एक तरकीब। सोची अर आपरा भरता ने कैवण लागी के आने पोल रे मायने बैठाये दो।

आपरी घर वाली रे केणा में मुजब सेठजी ने पोल रे मायने बैठाये ने हाथ रे माय एक घंटी दे दी। और सेठजी ने बताय दियो के आपरे जीमण री मन में आवे जणे घंटी बजाय दी जो। सेठजी कियों मुजब करने लाग़ा काई करें, जोर कोनी चाले।

पण एक दिन जोग की बात, सेठजी रो पोतो रमता - खेलता घंटी लेकर चाली गयो। छोरा रो बाप पूछ्यो के आ घंटी क्यां सुं लायो। छोकरों बोल्यो दादों सा कनासूं लायो। अरे गेला दादो सा. ने भूखलागी तो वे घंटी बिना आपरो काम की कर चलाय।

छोरो छट बोल्यो आ तो ठीक है बापू पर मैं थाणो बेटो हूं। जद थें बूढ़ा हो जावेला जणे आ घंटी थाणे काम आ जाती। अर बिना पईसा काम पईसा काम बण जासी। सेठजी री आँख्या खुलगी।

* * * * *

कर्कशा स्त्री

एक आदमी रे तकदीर घणों लिखियोड़ो होवे, मेहनत कम करे तो विने ज्यादा मिल जावे। पर एक आदमी बिचारों मेहनत तो करे घणी तो फल मिले थोड़ा। ओ ही ज कारण है तकदीर रे जको मन एक बात याद आयगी। क एक छोटे सक गांव में ब्राह्मण और ब्राह्मणी हा। ब्राह्मण बिचारों दिन उगतो रे बिचारो आटो लेवण ने जावतो तो ब्राह्मण एक गांव सू दूसरे गांव में जावतो पण वो सुबहू शिष्या तई धूमतो फिरतो पण विणे कर्मा में तो सरे बेकाड़ी ही लिखियोड़ी ही तो ब्राह्मणी पर आवंता ही लड़ाई झगडा करने लाग जावती। पण ब्राह्मण बिचारों करे तो कांई करे। घणो ब्राह्मणी केवती तो बिचारो ब्राह्मण करें तो कांई करें। घणों ब्राह्मणी केवती तो बिचारो ब्राह्मण चार पांच गांव जार आ जाव तो। तोई ब्राह्मण रे तो झगड़ो अएगो हुतों ही कोनी वा तो रोज री लड़ाई करती। थें तो फिरो ही कोनी, थाणों फिरणों खारो ही लागे। फिर बिना धाणें कूण टुकड़ा घाली, आय बैठग्या खावण ने। फिरणो लागे दोरो। बिचारो ब्राह्मण तो दुखी हुयों, पण करें तो कांई करे। यू करतां करतां वी ही गांव रे मायने राजा रे पुत्र राज कुमार रे गलेर गांठ हुईगी। तो राजा दुःखी हुयो। डाक्टर वैद्य रा तांता लाग्या तो ही राजकुमार री गांठ में शांति नहीं आई। जणा राजा बिड़लो फिरयो क राजकुमार री गांठ से कोई इलाज करे जिने मन मानयोधन दियो जाई। ओ बिड़लो वा ब्राह्मणी सुण्यो, सुणताई दौड़ बारे आई और बिड़लो फेरण वाला ने हे को मारयो केवे ओ ब्राह्मण तो घणोई जाणकार है। इण ने ले जावो और राज कुमार रे जाडो दिखावों। यू केवता ही बिचारो ब्राह्मण कांपने लाग्यो। ब्राह्मणी तो बस बिड़लो फेर जका रे लारे ही वी ब्राह्मणी ने कर दियो। बिचारों ब्राह्मण राज में पूग्यो। महला में राजकुमार सोयो जठे, ब्राह्मण पूग्यो और अब कोई उपाय सोच्यो। सोचने ब्राह्मणसगला ने महला माहू निकाल दियो। और अग्नि घी लेप दूप करियो और माचा रे आरे-बारे धूमण लाग्यो, ने जोर-जोर नी बोलने लाग्यो। जाणू नहीं पिचाणू नहीं कर्कशा ने पूगूं नहीं। (बिचारो ब्राह्मण जाणे तो की है कोनी तो ओ ही उपाय हाथ में आयो)। यू राजकुमार विचार करे क रोज झाड़ा जादू मंत्रा, डोरा तो घणाई कराया पण इस्या तो कोई नी बोल्या, पणओ तो अजब-गजब रे ही झाड़ो लगा रहयो है। यू राज-कुमार विचार करे। गांठ भी चाकीगी, वो राजकुमार जोर यू हास्यो। हंसता ही गांठ फूटी, गांठ फूटता ही सबने कांई करियो बुला लियो। मलम पाटी कराई और राजकुमार ने कांई क शांति आयगी, जणा राजा और अनुचर वीरो मान घणाई बढ़ाय रियो।

अबे वो ब्राह्मण राजी खुशी राज में रेवे। खाणो पीणो करे, आनन्द में रेवे, तो एक दिन ब्राह्मण राजा के केवे- अब आप छुट्टी करो। मणे कांई म्हारें घरे जाणो है। जणा राजा खूब ठाट यू हाथी पर बैठाण, जय जय कार करता हंता ब्राह्मण री गली में आवण लाग्यो। ब्राह्मणी चोंक ने उठी क देखू तो सही कियो मेलो आ रहयो है। बारे आई ब्राह्मणी देख्यो क कांई यारो हल्लो हुई रयो है। आगे बारे देख्यो, देखता ही सोच्यो ऐ तो म्हारा ही भरतार है। जाऊं मायके। थाली कर कलयाऔर चावल आदि सब सामग्री लेयन आई और बंधावण करया और घर में बंधाया ने लीपा पेछे के वे बस अब तो ज्यो करने घालू बैठा रही खावो। जणा ब्राह्मण विचार करे कल राज में भेज तैयार हुयगी थी। पर आज जणा धन दियो तो ब्राह्मण रा बारणा हुण लाग्या और घर बुरो नहीं हो जणा ब्राह्मण खारो लागतो हो बस ओ ही तो कर्कशा लुगाया रो काम रे। लुगाया रे खातिर विचार मनख मजबूर होय जावे। पण करे तो कांई

करे। इस तरह की मनख कने पइसो होवे तो लुगाई भी खूब सुख दे ही होवे। और खाने को नहीं है तो वा ही दुख देवे। तो थे सगला जाणो ही हो क कर्म किम कारण नाच नचावे। बस सगला खेल तकदीर का है ब्राह्मण री अकल ठिकाणे आय गयी।

* * * * *

त्याग को फल

एक जाट हो एक जाटनी ही। दोन रे ही आपस में प्रेम घणो ही थो। एक दिन जाट खेत जावतो हो। रस्ता में पब्लिक भरी ही सामने जैनिया रा साधु आयोड़ा हा। साधुजी को व्याख्याण चाल हो, जाट देखो वाणिया का माराज ही है। चालो आज तो व्याख्याण सुणलेवा पाछ खेता जावे। जणा जाट सभा में बैठगयो। व्याख्याण पूरो हुयो। जणा लोग सगला सोगन लिया। जणा जाट मन में जाण्यो, अबे मैं कांई भेटण देवूं। जाट विचार में पड़ गयो। जणा पाटेरे लारे जाय ने मुनि राज के केवे -मारी पागड़ी में एक रुपयो ही है आज इसो ही लेव लेवो। मैं गरीब आदमी हूं। तो मुनिराज केवे के भाई मने थारा रुपया पइसा कोनी चहिये, त्याग कर जाट त्याग। जणा जाट कियो और तो कांई त्याग करूं। कोक लारा त्याग करा दो। जणा साधु जी कोक लारा त्याग करा दिया। त्याग करने घर आयो। जाट आवता ही जाटणी के वे आज चौधरी मोड़ो धणो आयो। इतो कांई करियो। जणा जाट तो आनाकानी करी पण जाटणी तो आपरो जोर बतावणे लागी। पछे आखिर जाट कियो कांई-कांई करियो। वाणिया रा माराज आया, जको व्याख्याण सुणणे बैठ गयो। जाटनी के वे जणा तोथे कि सौगंध करी हो। सांची बात बताओ। जणा जाट केई देर विचारो, चुपचाप रहियो। आखिर घणी तंग करी जाटणी, जणा जाट केवे और तो कि कोनी करियो खाली कोकला ए सौगंध लिया हूं। जणा जाटणी केवे मैं तो आज ही कोकला बणाया हूं। कोकला ही घालू तो जाट केवे कोकला तो मती घाल, जोल घाल दे। जणा जोल घालने लागी तो केव गुड़तार पड़ तो पड़ने दे। जणा जाटनी केवे इस्या त्याग में कोई तिलक काढ़ो, त्याग करणो है तो सांचा मन सूं करनो। जणा जाट अब जोल ही खाण छोड़ दियो। जाटनी जिद् कर बैठी, आज तो कोकला ही बणाया है, ऐही खावण पड़ी। जाट के वे मैं खावू को नी। जाटनी के वे खावण पड़ी। यू करता करता आपस में हुग्यो झगड़ो। झगड़ो इस्यो हुओ जको जाटनी बलती लकड़ी लेया लाए फिरी। जाट तो जीव बचावण खातिर दौड़तो दौड़तो एक मंदिर में जार ठरग्यो। रात पड़ी और करीब बारह बजे और बारह बजता ही चार चोर आया धन लेर। मंदिर की देवी का बोल्वा बोलोड़ी ही जणा अब चोरान कोई नारियल फोड़णो हो। अठी ने बठी ने देख्यो तो जाट को माथो हो। मोड़ो मोड़ के माथे नारेल फोड़णे लाग्यो चोर। इते में जाट नींदू जाग ने केवे खालेवू-खालेवू। क चोर तो डर ने भाग्या। भागता ही जाट उठ्यो, उठने देख्यो तो धन का गांठा पड़ी। गांठा उठावने ले आयो। और हेलो भारयो-अब तो आडो खोल। आडो खोल्या हूं पेली देख्यो तो धन की गांठा देखी, देखदेख झट आडो खोल्यो खोल आ वो अब तो थे के वो तो सीरो तो सारो ही घाल दूं। धन के कारण मिनख आदर पा होवे। अब जाट ने आदर मिल ग्यो। जाट-जाटणी अब आराम हूं रेवे। धन तो है ही। खावे पीवे आराम सू रेवे। थोड़ा दिन पछे एक बेटो हुयो। बेटो पढ़ लिख ने मोटो हुयो। जाट-जाटणी हो सेवा सारे और आपरे आराम सू रेवे। चोखी लागे तो राख जो नहीं तो मारी पाछी दे दी जो सा।

* * * * *

दान रो महत्त्व

एक सेठ जी हा। वारे चार बेटा हा। चारा रे ही आपस में प्रेम घणो ही हो। सेठ-सेठाणी रे हमेशा से नियम हो कि पाँच सामायिक करने पछे मुंह में पाणी घालता हा। सेठ जी रोज दान करता हा। एक आवला जितो रोज करीब बाद में ही मुंह में कि लेवता हा। सेठाणी का बड़ा बेटा लगाए छोटा बेटा तक चारो रा ही ब्याव हुग्यो। चारों देवराणियां-जेठाणियां में प्रेम घणओई हो। सेठ सेठाणी ने भी बेटा-बहुआ ही खानी संतोष हो। कदई भी दान देवण के खातिर बहुआ बेटा कि भी कियो कोनी। पण संगत ऐसी चीज है जिणु मिनख चोखक चोखो भी सीख मान लेवे। एक दिन छोटी बहू बारे निकली कोई कामू। जणा पाड़ोसण हेलो मायों। बहू बिचारी छोटी हीज और पाड़ोसण तो सिखावणे ताकती ही। एक छोटा टाबरिया खेलण के वास्ते बारे गयोड़ा हा। जणा छोटी बहू टाबरा ने बुलावण रे बारे आयी। टाबरा ने हेलो मायों। जिते तो पाड़ोसन ताकती तो हीज। इते में देखने के वे आ वो अठा ने आ को बहू पाड़ोसण देखने बिला बाता करने लागी। वा ही वाह तू तो गेलीज है। थने ठा कोनी ए सासू-सुसरा तो थारे ध्यान नहीं राखेला और दान देवण को बहानों राखे। सारे धन यू गंवा देवे वा तू तो यू कर मोरा रखियोड़ी है जिके कमरा रे तालो लगा बस जा बहू तो पाड़ोसण रे केवे में आयगी और सुबह उठी वेगी और तालो लगा दियो। सासूजी उठिया। पाँच सामायिक पाली, पाल ने नीचे आया। आवला ही कमरा रे तालो देखियो, देखता ही खिम्पा धार ने सासू जी ऊपर चढ़ गया। सुसरा जी सेठाणी आया जाण ने दोनो जणा उपवास पच्यविस्ख्या। तीन दिन रे बाद रात को सेठाणी ने विचार कियो कि आप अठहू चालो। दोनो ही रातों रात निकल गया। आगे जाता जाता एक झाड़ी में जार पहुंच्या औरपाँव रखता ही जंगल में बहुत बड़ा झाड़ झंकारा के बीच मायने एक वेली बणगी और नौकर चाकर वाह वाह करण ला गया। सेठ-सेठाणी नवकार सी सू पारणो कियो, दान दियो और सुखे सुखे रेवे। अठि ने चारणारो घर हो जिको अंदेवो हुग्यो। लारे बेटा बहुआ भूखा क मरणे लाग्या। आपस के मायने केवे मैं तो कि भी कोनी करयो जिता में छोटी बहू प्रकट हुई और केवे मैं काई करू पाड़ोसण ने मन सिखादी जकू मैं तालो लगा दियो। अबे काई करा। सोचणे लाग्या। सोचता सोचता सुणिया के एक गांव के बाहर दानी सेठ है। तलाब खुदावे जको आद जका ने ही धपाय देवे। जण आ सगला घरा रा व्यक्ति पहुँच गया। सेठ-सेठाणी घर का बेटा बहुआ ने पहचान लिया। जणा घरे बुलाया। सगला ने घर धन्धा पर लगाय दिया। सेठाणी स्नान करने बैठी तो एक बहू कियो मा सा थारा मोर धोऊं। सेठाणी के वे नहीं, मारे तो कोई जरूरी नहीं है। पण ना केता केता बहू मोर धोवणा बैठ गयी। सेठाणी के मोरा रे लार ए मसो हो। मसो देखने बहू की आख्या में पाणी आय ग्यो। तो सेठाणी के वे भला क्यो रेवे। बहू के वे नहीं माँ सा म्हारा ही सासूजी के चिह्न हो। जिक्सा रोज आयग्यो। मांसा और कोई बात नहीं है जणा सेठ-सेठाणी विचार करयों या जीव दुख पावे। अरे आया प्रकट हुय जावा। जणा सासू-सुसरा के वे में ही थारा मां-बाप-सासू-सुसरा हा। तो यू सुण ने सारा जणा पग पकड़ लिया और रात रे रात पछा आया। थोड़ी दूर चाल्या। पाछा लारे देख्यो तो लारे सूनो हुग्यो, जंगल । सगलो परिवार घरे आ ग्यो। और पछी पेला जैसी ही दान देवण ला गया। घर को गौरव बणणे लाग्यो और सगलो परिवार दान रे लारे जीवन में लोग सुधार लेवे इण वास्ते कोई किंरी सीख में आयने दान देवण में आड़ा मती आयज्यो।

श्री कान शतक

● साध्वी श्री चन्द्रप्रभा

हे राजस्थान ! तुझे है मेरा वन्दन ।

तेरी रजकण मेरे माथे का चन्दन ॥

है सनी वीरता के पानी में माटी ।

अनुपम साहस से लांघी दुर्गम घाटी ॥

हे वीर, प्रसविनी ! धरा तुझे है वन्दन ।

मैं शीश झुकाती तुम्हें वीर वर चंदन ॥

जब कवि वीरो की यश गाथाएं गातें ।

सोये वीणा के तारों को झनकाते ॥

राणा प्रताप से हुए वीर बलशाली ।

भारत जननी थी जिससे गौरवशाली ॥

इतिहास वीर गाथाओं को दोहराता ।

मानी का मान भरा मन भी झुक जाता ॥

नागौर गौर से अपना रूप निहारो ।

दीवारों को फिर आज संवारो ॥

नागौर आज भी अपना शीश उठाये ।

है खड़ा अडिग पावन इतिहास छिपाये ॥

तेरी प्रचीरों में लिखी कहानी ।

वीरों की अब तक निश्चल यहां निशानी ॥

वीरों ने तेरे पावन यश को सींचा ।

अम्बर तक बढ़ गया रहा नहीं नीचा ॥

जन्मे सेनानी वीर धर्म के सृष्टा ।

तेरी गोदी से उठे सन्त युग दृष्टा ॥

लहराता तेरा आंचल भी पावन है

संतप्त धरा को तू जैसे सावन है ।

तेरे आंचल में पावन ग्राम कुचेरा

होता आया सन्तो का जहां बसेरा ।

परिवार सुराणा यहां अतिथि सेवक हैं ।

है धर्माधिक स्वयं धर्मप्रेरक हैं ॥

इस कुल में सम्भूमलजी सेठ सुराणा

थे सेवाभावी सेवामय था बाना ।

थे गुणी गुणों से वे पहिचाने जाते ।

उनकी गुण गरिमा के स्वर लोग सुनाते

वह प्रतिक्रमण पौषध के थे अभ्यासी

जिनके घर में लक्ष्मी थी जैसे दासी ॥

श्री बीजराज से पुत्र रत्न को पाकर

हर्षित थे सम्भू पुत्रवधू को पाकर

अंजनी अंजना सी ही थी गुणशाली

जिसके आनन पर थी संयम की लाली

शुचि, शील, सत्य, सन्तोष जिसे थे प्यारे

थे लाज भरे दोनों नयनों के तारे

दो पुत्र, पुत्रियां तीन इन्होंने पायी

जैसे वे सब उनकी ही थी परछाई

थे फूसालाल कटंगी के अधिवासी

पर कालूराम हो गये स्वर्ग निवासी

जेष्ठापुत्री सुन्दर श्री सुगना बाई ।

लोक छोड़ सुरपुर की राह बनाई ॥

संवत् उन्नीस सौ अड़सठ थी मनभावन

था मास भाद्रपद कृष्ण अष्टमी पावन

कान्हाबाई शुभ काल लब्धि ले आई

श्री बीजराज के घर में बजी बधाई

गूँजे खुशियों के गीत हृदय बौराये
 घर घर में मंगल गीत मधुर लहराये
 लावण्यमयी वह सुन्दर स्वर्ण लतासी
 कमनीय कान्त कुसुमित स्वर्ण उषासी ॥
 दिन बीते रात गई मधु ऋतु मुस्काई
 वह नहीं कली बढ़ी सबके मन भाई
 मन मोह मोह लेती थी मोहक वाणी
 उसकी सब पर छाई थी मधुर निशानी
 वह ठुमक-ठुमक कर आंगन में चलती थी ।
 बाहर भीतर वह दीपक सी जलती थी ॥
 अपनी क्रीड़ा से सब का मन हर्षाया ।
 संतप्त हृदय में शीतल नीर बहाया ॥
 जिस ओर देखती सबको वश कर लेती ।
 जन-जन के मन की पीड़ा भी हर लेती ॥
 माया ममता से उसने सबको जीता ।
 सबके मानस में बैठ गई वह गीता ॥
 सुन्दरता सुषमा की वह प्रतिमा पावन ।
 प्यासे नयनों में बनकर छाई सावन ॥
 माता मोहित थी उसकी छवि पर भोली ।
 वह नाच नचाती बना बना कर टोली ॥
 वह सुता जन के तन मन को थी प्यारी ।
 जैसे सूने घर की थी वह उजियारी ॥
 अब उसके जीवन के बसंत छह बीते ।
 जो भरे कूप में घड़े वही अब रीते ॥
 वचपन खुशियों में नहीं बीतने पाया ।
 पड़ गई अचानक क्रूर प्लेग की छाया ॥
 अब मौत नाचने लगी वहां घर घर में ।
 पत्ते से उड़ने लगे प्राण क्षण भर में ॥
 था ऐसा कौन बली जो आकर टोके ।
 उस नरभक्षी को प्राण हरण से रोके ॥

कलियां मुझाती फूल सुखते जाते ।
 सुरभित कानन पल-पल में उजड़े जाते ॥
 मरघट ताली दे देकर मुस्काता था ।
 मुर्दों की छाती पर चढ़कर गाता था ॥
 है मेरा राज्य यहां सब आते जाओ ।
 जलती ज्वाला में देह जलाते जाओ ॥
 सौन्दर्य धूल के मोल यहां बिकता है ।
 अभिमान मान सम्मान सभी चुकता है ॥
 दिनकर सा तपकर जो अम्बर में आया ।
 वह ढलकर अन्त समय में मेरे घर आया ॥
 ओ मानव ! तू ने जीवन अपना खोया ।
 तू हाथ पसारे चला जगत तब रोया ॥
 तन में रहते कुछ ऐसा कर्म कमाले
 भटकन मिट जाये पड़े न पग में छाले ॥
 अमरत्व मिले नश्वरता सब मिट जाये ।
 तो इस घट पर आने का क्रम छट जाये ॥
 प्यारी कान्हों को छोड़ बिलखती माता ।
 बन गई काल की अतिथि तोड़ सब नाता ॥
 रह गये बिलखते जनक न कुछ कर पाये ।
 माता के पथ पर उनने कदम बढ़ाये ॥
 आगे-पीछे दोनों ने निज तन छोड़ा ।
 निर्मोही इस दुनिया से नाता तोड़ा ॥
 वह एक कली केवल घर में रोती थी ।
 जो माता पिता के आंखों की मोती थी ॥
 अब फूसालाल ही थे इस कुल की आशा
 जो दे सकता था नीर स्वयं था प्यासा ॥
 छाती पर पत्थर रख फूसा अकुलाया ।
 कान्हों को बढ़कर उसने गले लगाया ॥
 बहते तिनके को केवल एक सहारा ।
 फूसा थे जिनने सब परिवार सम्हारा ॥

वह अंगुली पर जैसे हर दिन गिनता था ।

मन भटक-भटक कर कोई वर चुनता था ॥
एक दिन उसकी यह आशा हो गई पूरी ।

बचपन की गुड़िया बनी किसी की गोरी ॥
एक ओर दृगों में था वियोग का पानी ।

था वही छिपा आनंद कि वह थी रानी ॥
राजा-रानी दोनों हंसते मुस्काते ।

कुछ गीत खुशी के गाते शर्मा जाते ॥
भण्डारी घासीलाल बने थे दुल्हा ।

दुलहिन कान्हों का हृदय खुशी से फूला ॥
दुल्हा दुलहिन की जोड़ी मधुर सुहाई ।

सबके आंखों की पूतली बन कर छाई ॥
खुशियां आंगन में आकर नाची छमछम ।

दो हृदयों का यह मिलन मधुरता का क्रम ॥
विधि को यह मिलन न फूटी आंखों भाया ।

लुक छिप करके अवसाद कहीं से आया ॥
है जहां उजेला तिमिर वहां पलता है ।

जलती बाती निशंक नेह का हृदय वहां
जलता है ॥

है भरी मिलन में विरहानल सी ज्वाला ।

हिमने विनाश को अपने भीतर पाला ॥
आशा की छाती में छलना की पीड़ा ।

क्रीड़ा के पीछे दौड़ रही है क्रीड़ा ॥
दो दिल नूतन स्वप्निल संसार बसाने

पथ पर आये गाते से प्रेम तराने ॥
मद माते पग पग में ऐसे पड़ते थे

दो दिवाने मंजिल खुद ही गढ़ते थे ॥
था पता न बढ़ना ही पीछे हटना है ।

बूंद-बूंद का जीवन ही उसका मिटना है ॥
सन्ध्या जीवन की सहसा कैसे आई ।

विरही पंछी ने विरह रागिनी गाई ॥

सब कुछ पल भर में बदल गया अनहोना ।

हो गया शून्य सा मन का कोना-कोना ॥
जीवन साथी को पथ में छोड़ अकेला ।

भण्डारी, दूर चला तज नाग का मेला ॥
अनचाहे सुख मिलते दुःख भी मिलते हैं ।
कण्टको कित डाल पर फूल मधुर खिलते हैं ॥
कान्हा का जीवन बना जलन की छाया ।

सब ओर निराशा ने साम्राज्य जमाया ॥
वह हुई सजग जैसे कोई जागा हो ।

भ्रम, तन, मन अम्बर से जैसे भागा हो ॥
शाश्वत जीवन की ज्योति अमर होती है ।

पथ को जग-मग करती तम को खोती है ॥
मेरा शाश्वत स्वाधीन स्वयं है ज्ञानी ।

मुझ में अन्तर्हित मेरा अन्तरायामी ॥
देखूं न नयन से उसे ज्ञान से तोलूं ।

इस जन्म मरण के सारे कल्मष धोलू ॥
है क्षणिक सभी संयोग बिछुड़ जाते हैं ।

मिलते हपति जाते कलपाते हैं ।
आखिर ये पर है, पर ही सदा रहेंगे ।

मेरे अनुशासन में ये नहीं रहेंगे ॥
ये माता-पिता सुत सारे झूठे बन्धन

ये बिछुड़ हृदय में भर देते हैं क्रन्दन
कौन मरण के बाद साथ जाता है ।

कोई पग दो पग, मरघट पहुंचाता है ॥
घर वाली घर के द्वार खड़ी हो रोती ।

आंखों के मोती शून्य घटा में बोती ॥
मरघट तक भाई बन्धु साथ हैं जाते ।

रच चिता लगाकर आग फूंक कर आते ॥
मिट्टी का पुतला मिट्टी में मिल जाता ।

ॐ अवशेष राख को पवन उड़ा ले आता ॥
अवसाद हास में शीघ्र बदल जाता है ।

जाने वाला ही विधि का फल पाता है ॥
रम गया चित्त चिंतन और मनन में ।

अध्ययन गहन करने में श्रुत मंथन में ॥
मन में न रहा लवलेश कहीं भी भ्रम तम ।

है चिदानंद चैतन्य स्वरूपी आत्म ॥
यह अरस अरूपी अस्पर्शी अविनाशी ।
चित पिण्ड चण्ड गुण गण निधान तप वासी ॥
अध्ययन लगन से किया ज्ञान रवि जागा ।

अज्ञान हृदय से जान बचाकर भागा ।
तुम सती नहीं हो महासती गुण मण्डित ।

आदर्श ज्ञान संयम से पूरित पण्डित ॥
श्री सन्त हजारीमल जी का निर्देशन ।

पाकर जागा निश्चेतन में भी चेतन ॥
तुम गुरु हो गुरु से भी गुरुतर है वाणी ।

है महासती की वाणी जग कल्याणी ॥
तुमने पग-पग चल-चल कर अलख जगाया ।

जन-जन को अपने पन का पाठ पढ़ाया ॥
है मधुर साधना गुरु सेवा मन भावन ।

सेवा से तन-मन हुए तुम्हारे पावन ॥

तप तेज तुम्हारे मन में चमक रहा था :

अन्तर आत्मिक आभा से दमक रहा था ॥
थक गई देह पग-पग पथ चलते-चलते ।

चुक गया नेह दृग दीपक जलते-जलते ॥
तुलछा जी की उलझन तुमने सुलझाई ।

समता से निर्ममता की राह बताई ॥
तुम सेवा की प्रतिमूर्ति न तुमसा कोई ।

सब कुछ खोकर भी ज्ञान निधि नहीं खोई ॥
तन पर जितनी रेखायें हैं उतने गुण ।

चन्द्र करे तुम्हारे गुण का कैसे वर्णन ॥
सत्य संयम की सौरभ महका निज जीवन
निखारे ।

मद्रास की धरा पर आकर स्वर्गधाम पधारे ॥
श्रद्धापुष्प अर्जित करती हूं कर लेना स्वीकार ।

‘चन्द्रा’ तव चरणों की चेरी कर देना भव ;
पार ॥

आँखों देखा यथार्थ

◆ साध्वी श्री तरुणप्रभा 'तारा', आमेट

वि. सं. २०३३ में महासती श्री कानकुंवर जी म.सा., परमविदुषी महासती श्री चम्पा कुंवर जी म.सा. एवं महासती श्री बसंतकुंवरजी म.सा. ठाणा तीन चातुर्मासार्थ मेड़ता सिटी में विराजमान थे। मेड़ता सिटी भक्त शिरोमणी मीराबाई की नगरी के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसी नगरी में सुप्रसिद्ध योगीराज श्री आनन्दधन ने आध्यात्मिक रस की धारा प्रवाहित की और काव्य रचना भी की।

उस समय मैं जैन धर्म से अनभिज्ञ थी। जैन धर्म के प्रति मेरी कोई रुचि भी नहीं थी। मैंने तब तक जैन मुनियों और महासतियों के दर्शन भी नहीं किये थे। जिस समय मैं अध्यापन के लिये घर से स्कूल के लिये निकल रही थी। ठीक उसी समय एक जैन साध्वी जी का मेरे यहां आहार लेने के लिए आगमन हुआ। मैं उन दिनों शिक्षिका के रूप में नौकरी कर रही थी। महासती ने मुझे स्थानक में आने के लिये कहा। मैं दूसरे दिन उनके दर्शन करने के लिए स्थानक जा पहुंची। उस समय महासती जी ध्यान में बैठे हुए थे। जैसे ही मैंने उनके दर्शन किये और उनकी ध्यान साधना, तप, जप आदि की जानकारी मिली वैसे ही मेरा हृदय उनकी ओर आकर्षित हो गया। वहीं मुझे इन तीनों महासतियांजी से व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे हार्दिक खेद हुआ कि जिन धर्म पुरुषों के प्रति मैं जितने घृणा के भाव रखती थी। उनमें तो अनेक विशेषताएं हैं। गुरुणी जी श्री कानकुंवर जी म. सा. के चुम्बकीय व्यक्तित्व ने मुझे उनकी ओर आकर्षित कर लिया। उसी समय से आपकी सेवा में रहने की मेरे मन में भावना उत्पन्न हुई। अपनी इसी भावना के अनुकूल मैं लगभग दो तीन वर्ष तक आपके साथ रही। मैंने इस अवधि में आपके जीवन को बहुत ही निकट से देखा। उन्होंने मुझ अज्ञानी के जीवन में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित की। मुझ भूली भटकी आत्मा को सही मार्ग बताया, मुझे सम्बल प्रदान किया। उनके सान्निध्य में रहते हुए उनके विषय में जो मैं जान सकी वहीं, यहां लिखने का प्रयास कर रही हूँ।

स्वभाव- आपके स्वभाव में जो सरलता मैंने निकटता से देखी है, वैसी सरलता अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। उनके जीवन में छल कपट या असत्य किसी भी प्रकार से देखने को नहीं मिलता। किसी के भी प्रति द्वेष या रोष तो आपको छू तक नहीं पाया था। महापुरुषों से मिलना और उनके सद्गुणों को ग्रहण करना ही आपका प्रथम धर्म था।

वाणी की मधुरता- आपकी वाणी में मधुरता अपना विशिष्ट स्थान रखती थी। जिस समय आप प्रवचन फरमाते थे, उस समय आप उद्धरण रूप में चौपाई आदि भी सुनाया करते थे। तब आपकी वाणी की मिठाई का सहज ही आभास हो जाता था। आपकी वाणी का सुनकर श्रोता भाई, बहन मंत्र मुग्ध हो जाते थे। आपकी वाणी का प्रभाव ही कुछ ऐसा था कि अनपढ़ व्यक्ति भी उनके प्रवचन को आसानी से समझ लेता था। आपकी वाणी में कोयल की वाणी का मिश्रण प्रतीत होता था।



विनयशीलता- आपकी विनम्रता मुझे अभी तक स्मरण है। जब वर्ष वि. सं. २०३४ का चातुर्मास पूर्ण कर आप रतलाम पधारे, उस समय उपाध्याय श्री कस्तूरचंद जी म.सा. अपनी शिष्य मंडली सहित वहां विराजमान थे। गुरुवर्या प्रवचन और सेवा में प्रतिदिन जाते थे। गुरुवर्या वहां उपस्थित सभी मुनिवरों को एक ही समान वंदना करती थी। और सेवा कार्य के लिये पूछती थी। उस समय वहां और भी महासतियाँ जी पू. उपाध्याय श्री जी की सेवामें विराज रही थी। आपकी विनम्रता और सेवा भावना को देखकर पू. उपाध्याय श्री जी ने अपनी मधुरवाणी में कहा था कि जितनी विनम्रता, सेवाभावना, सरलता मारवाड़ की सतियों में देखी उतनी अन्य में नहीं।

सेवा भावना- आपकी सेवा भावना अद्वितीय थी। सेवा के क्षेत्र में आपका योगदान पारिवारिक साध्वी वृन्द के अतिरिक्त अन्य साध्वियों के लिए भी उसी अपनत्व की भावना के साथ रहता था। किसी भी प्रकार के रोग से ग्रसित साध्वी के प्रति आपके मुख मंडल पर कभी भी घृणा या उपेक्षा के भाव देखने को नहीं मिला। आप पूरे तन मन से रुग्ण साध्वियों की सेवा करते थे। आप अपनी जन्म और दीक्षा भूमि में स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी की माता महासती श्री तुलछा जी म. सा. की सेवा में चौदह वर्ष तक रही। महासती श्री तुलछा जी रोगग्रस्त थी और एक लम्बे समय तक उनकी सेवा में रहकर सेवार्थ का निर्वाह किया। इस अवधि में आपने न तो महासती जी की उपेक्षा ही की और न आपने उकताहट का ही अनुभव किया। सदैव समभाव से सेवा करते रहे। मैंने स्वयं देखा है कि अपनी छोटी सतियाँ जी के अस्वस्थ होने पर आप तत्काल उनकी सेवा में जुट जाया करते थे। आपकी यह सेवा भावना अन्यो के लिये प्रेरणा स्रोत है।

करुणा भावना- करुणा का स्रोत तो आपके हृदय में सदा ही प्रवाहित होता रहता था। एक बार पाली से विहार कर काली घाटी आये। वहां रात्रि विश्राम कर प्रातः वहां से विहार कर रेलवे स्टेशन पहुंचे। वहां श्री भंवरलालजी जैन के मकान में रुक गये। रात्रि में एक असामाजिक व्यक्ति गुरुवर्या के पास आकर बैठ गया। गुरुवर्या ने उससे पूछा- “तुम कौन हो? यहां कैसे आना हुआ?” वह व्यक्ति कुछ बोला नहीं। चुपचाप वहीं बैठा रहा। उसका इरादा कुछ कुत्सित लग रहा था। वह वहीं बैठा रहा। गुरुवर्या ने अपनी मधुरवाणी में पुनः पूछा “भाई! तू कौन है? कहां से आया है?” इस पर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया और वहीं बैठा रहा। उस समय मकान के बरामदे में मकान मालिक श्री भंवरलाल जी बैठे हुए थे। वे सब वार्तालाप सुन रहे थे। वे वहां आये और उस व्यक्ति को पकड़ कर बाहर ले गये। उनका क्रोध भड़क उठा था। उन्होंने उस व्यक्ति को पीटना आरम्भ कर दिया और कुछ कहते भी जा रहे थे। ये आवाजें गुरुवर्या ने सुनी। गुरुवर्या ने द्वार पर आकर सब कुछ अपनी आंखों से देखा। कुछ अन्य श्रावक भी वहां आ गये। देवगढ़ के श्रावक को सूचना दी गई कि तुम पुलिस लेकर पहुंचो। श्रावक पुलिस लेकर भी आ गये। उस व्यक्ति के साथ काफी मारपीट की गई। फिर गुरुवर्या से चर्चा की गई। पुलिस उस व्यक्ति को पकड़ कर थाने में ले गई। दूसरे दिन गुरुवर्या देवगढ़ पहुंच गये। उन्होंने थानेदार को बुलवाकर कहा कि उस व्यक्ति के साथ मारपीट न करें और उसे छोड़ दिया जावे। थानेदार ने कहा कि एक बदमाश पर आप दया न करें। किन्तु गुरुवर्या तो पर-दुःख कातर थी। उन्होंने करुणा कर उस व्यक्ति को मुक्त करवा दिया।

स्वाध्याय प्रेमी- मैं जब भी आपके दर्शन करने गई उन्हें स्वाध्याय करते पाया। आपके सम्मुख बैठ कर आपकी मधुर वाणी सुनने में अनुपम आनंद की प्राप्ति होती। जब कभी आपकी सेवा में रात्रि विश्राम करने का अवसर आया और रात्रि में जागती तो देखती कि गुरुवर्या स्वाध्याय, ध्यान, माला में तल्लीन हैं।

दर्शनार्थ आए श्रावक-श्राविका से आप शास्त्र संबंधी, स्वाध्याय सम्बन्धी चर्चा ही करते। इधर उधर की फालतू बात करते मैंने आपको कभी नहीं देखा।

अनुशासन- आपका अनुशासन सराहनीय था। न कटुता न कठोरता, आपकी कथनी करनी में कोई अंतर नहीं होता था। आप बनावटी बातों से दूर रहते थे। आपको व्यावहारिकता पसंद थी। जीभ और जीवन की समानता में आपने अपना जीवन व्यतीत किया और इसके अनुरूप जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा आपने अपनी शिष्याओं को भी दी।

चमत्कार- मुझे एक घटना का स्मरण हो रहा है। जिस समय भोपाल (म.प्र.) से विहार कर आगे की ओर कदम बढ़ रहे थे, मार्ग में भयानक जंगल था, चारों ओर क्रूर पशुओं की डरावनी आवाजें सुनाई दे रही थी। एक स्थान पर जहां आदिवासियों के कुछ मकान थे। वहीं रात्रि विश्राम करने का विचार किया। कारण कि आगे का मार्ग और भी लम्बा था और समय रहते वहां तक पहुंचना सम्भव नहीं था।

अचानक अर्द्धरात्रि के समय एक व्यक्ति वहां पहुंचा। उस व्यक्ति के कंधे पर बन्दूक और हाथ में तलवार थी। वह आकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा- तुम कौन हो? कहां से आये हो? मैं और सभी सतियां जी घबरा गई कि अब क्या होगा? हमारे पांव तले की धरती खिसकने लगी। अब इस भयानक जंगल में हमारी रक्षा कौन करेगा? गुरुवर्या की ओर देखा तो पाया कि वे अपने आसन पर बैठे निश्चित भाव से माला जप रहे हैं। अचानक हमारे मानस पटल पर गुरुवर्या को देखते ही विश्वास के भाव आ गए और लगा कि अब हमारे पास ऐसी शक्ति है कि जिसके प्रभाव से वह व्यक्ति जिस प्रकार आया है उसी प्रकार चला भी जायगा। और आश्चर्य! ऐसा ही हुआ। वह व्यक्ति किसी दुःखिनी को लेकर आया था किन्तु कुछ देर चिल्लाकर शांत हो गया। उसकी शरारत शराफत में परिवर्तित हो गई और वह शांत मन से वापस लौट गया।

विहार यात्रा- आपने अपने आपको केवल मारवाड़ तक ही सीमित नहीं रखा। आपने राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु जैसे दूरस्थ प्रदेशों की यात्रा कर जैनधर्म की प्रभावना कर गुरु गच्छ का नाम उज्ज्वल किया है।

अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि आपके सम्पर्क में जो भी आया वह आपके गुणों से प्रभावित हुए बिना न रह सका। आपके सद्गुणों का ही परिणाम है कि आज आपके सिंघाड़े में विदुषी शिष्या एवं प्रशिष्यायें हैं।

मैंने आपके मुखमंडल पर कभी भी क्रोध की रेखा नहीं देखी। आपको सदैव, हर परिस्थिति में मुस्कराते ही देखा है। अस्वस्थता के क्षणों में भी आपका मुखमंडल शांत और सौम्य रहता। किसी प्रकार की वेदना के भाव आपके मुख मंडल पर प्रकट नहीं होते थे।

मेरे जीवन को सुसंस्कार आपसे ही मिले। आपने एक अनघड़ को घड़ दिया। मुझे इस बात का दुःख सदैव रहेगा कि मैं आपके अंतिम दर्शनों से वंचित रही। असीम वेदना के साथ मैं अपनी भावांजली/श्रद्धाजलि अर्पित करती हूँ।

* * * * *

परम विदुषी गुरुवर्या महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. : जीवन दर्शन

● साध्वी श्री चन्द्रप्रभा

सर्जन और विसर्जन संसार का अटूट नियम है। इस वसुन्धरा पर नित्य अनेक प्राणी जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। फिर भी संसार के किसी कार्य में गतिरोध उत्पन्न नहीं होता। अस्तव्यस्तता नहीं आती। कतिपय व्यक्तियों के सिवाय उनके जन्म मरण से उनका कुछ बनता बिगड़ता नहीं है।

कभी-कभी प्रकृति की महान कृपा से संसार को ऐसी दुर्लभ विभूतियाँ उपलब्ध होती हैं। जिन्हें पाकर धरा धन्य हो जाती है, गगन आनंद से गर्जन करता है, दिशायेँ झूम उठती हैं और प्रकृति सौरभ सुषमा बिखेर कर उनका स्वागत करती है।

ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति ही संसार में पूजे जाते हैं। आदर, सत्कार, सम्मान के योग्य माने जाते हैं। उन्हीं का जीवन इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हो सदियाँ बीत जाने पर भी देदीप्यमान रहता है। उनका भव्य व्यक्तित्व, अकृत्रिम, सहज जीवन चित्र मानव हृदय पटल पर अंकित रहता है। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रकाश स्तम्भ बनकर युगों-युगों तक भूली भटकी जनता का पथ प्रदर्शन करता है। समाज की उलझी गुत्थियों को सुलझाने में सहायक होता है। अपने अनुभव ज्ञान की अमर ज्योति से अध्यात्म रसिक मानवों को नेतृत्व प्रदान करता है।

भारतभूमि का यह परम सौभाग्य रहा है कि इसके रजकणों में ऐसी एक नहीं अनेक महान आत्माओं का आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने अपने ज्ञानालोक से समस्त विश्व को प्रकाश दिया है। धर्मप्राण, अध्यात्म से निमज्जित नाना विभूतियों ने सत्य तत्व का साक्षात्कार कर अपने पवित्र, अलौकिक प्रवचनों से अध्यात्म रस की अजस्र धारायें प्रवाहित करते हुए सृष्टि का शोक, संताप, क्लेश दूर कर अनिर्वचनीय आनंद सुधा से जन मानस को अभिसिक्त कर प्राणिमात्र को विपत्तियों से बचाने के लिए अपने समस्त जीवन को समर्पित कर दिया है।

आज भी श्रमण एवं श्रमणियों से वसुन्धरा का आंचल रिक्त नहीं है। नारी होकर आदर्श श्रमणी पथ का अनुगमन इनकी विशेषता है। पूजनीया गुरुवर्या श्री का जीवन भारतीय संत परम्परा की अविच्छिन्न कड़ी है। यद्यपि संतों के वर्चस्व के कारण भारतभूमि विख्यात रही है तथापि श्रमणियों के वर्चस्व से भी यह धरा रिक्त नहीं रही। यही कारण है कि कंटकाकीर्ण संयम मार्ग हमारी चरित्र नायिका के लिये कोमल फूलों की सेज के समान है।

उत्कृष्ट त्याग, निरभिमान, शुद्ध आचार, परिष्कृत विचार, शांत स्वभावी, सरलमना, मृदु मधुर, ओजस्वी वाणी, आत्म साधना में सतत् जागरूकता अद्भुत गम्भीरता, सहनशीलता की प्रतिमूर्ति, अनुपम क्षमाशीला, विनय, विनम्रता आदि अनेक गुण आपके श्रमणी जीवन के उज्ज्वल अलंकार थे।

जब भी कोई दर्शन करने के लिए आते श्रावक-श्राविका एवं जैनेतर समाज के मध्य शंका का समाधान करते, साक्षात् सरस्वती जी विराजमान मिलते। कोई परिचित अपरिचित हो। वही स्वागत भरी मुस्कान, वही वात्सल्य बिखेरती वाणी। न कोई विशिष्ट न कोई साधारण, न अपना, न पराया। न खाने की सुध न पाने की चिन्ता, घंटों एक ही आसन पर धर्मचर्चा, स्वाध्याय में बीत जाते थे। केवल स्वाध्याय। स्वाध्याय॥ स्वाध्याय॥। व्यर्थ की बात नहीं, निरर्थक बकवास नहीं, समय की बर्बादी नहीं, आपश्री के सान्निध्य में बैठने वाला उठता नहीं। बोलते थे तो मन करता था बोलते ही रहे, मौन करते तो नयन उस प्रभावशाली मुखड़े की सौम्य मुद्रा को निहारते हुए तृप्त नहीं होते। दीक्षा लेकर सात वर्ष तक लगातार मौन धारण किया था। आपके सान्निध्य से विलग होना जीवन की भारी विवशता है।

कोई भी वृद्ध, तरुण, किशोर, बालक, पुरुष, नारी, गरीब, अमीर, शिक्षित, अशिक्षित आपके द्वार से निराश असंतुष्ट अथवा उपेक्षित हो। अपने को हीन मान कर नहीं लौटा। अपनत्व की तो यहां नदियां बहती थी। वात्सल्य तो बिखरा पड़ा था। शत्रुता का तो नामोनिशान नहीं, मानो विश्व प्रेम मूर्तिमान हो उठा है। कभी भी किसी को निंदा सुनने को नहीं मिलती। मिलेगा पर गुण प्रमोद भाव। पराये छिद्रों का अन्वेषण नहीं। दूसरों के दोष दर्शन के लिए आपके अन्तरचक्षु बन्द मिलते। घृणा और तिरस्कार तो आप जानते ही नहीं थे।

प्रवचन शैली जितनी रोचक मनोहारी थी उतनी ही आकर्षक प्रभावशाली भी थी। श्रोता भले ही विद्वान हो या सामान्य जड़मति वाला हो, आपकी वाणी सबके हृदय में सीधी उतर जाती थी। अध्यात्म रस भरी रोचक प्रवचन शैली इतनी सरल, मधुर, मनोज्ञ थी कि अध्यात्म जैसे विषय में भी उपन्यासों जैसी सजीवता मिलती थी। सभी धर्मों का समन्वय करते हुए आपकी ओजस्वी वाणी अपने आप में परिपूर्ण वातावरण आज्ञानुसार सर्वदर्शन समन्वय सागर में स्वतः ही विलीन हो जाती है। मुझे याद है सन् १९८५ का चातुर्मास आंध्रप्रदेश के सिकंदराबाद नगर में था। उस समय वहां आपश्री के पावन सान्निध्य में जैन स्थानक के विशाल प्रांगण में सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन रखा गया था। सभी धर्मों के गुरुजन आये सभी ने अपने अपने विचार रखे, उसके पश्चात् आपके विचार को सुना। सभी धर्मगुरु कहने लगे कि एक साध्वी होकर प्रभावशाली वाणी में सर्वधर्म समन्वय की चर्चा कितने सुन्दर ढंग से की है। इनकी ज्ञान गरिमा धन्य है। कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद वे आपको एक सुन्दर लेम्प भेंट करने लगे, किन्तु पू. गुरुवर्या श्री ने कहा- “हम जैन साध्वी हैं। हम इसका प्रयोग नहीं करते हैं। अतः आप इसे अपने ही पास रखें।” सभी ने शुभकामना व्यक्त की और मंगल पाठ श्रवण कर सभी अपने अपने स्थान पर चले गए। आपके प्रवचन में जो सरलता थी। वह प्रशंसनीय थी। आपने अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया था।

ऐसी दिव्य विभूति, महान आत्मा कौन है? किस घर-कुटुम्ब, माता-पिता को ऐसी अनुपम संतान प्राप्त करने का परम सांभाग्य प्राप्त हुआ? किन और कैसी परिस्थिति का सामना कर किस प्रकार यह दीपिका घर की अमूल्य रत्न मानव हृदयों की ज्ञान/प्रकाश पुंज व कोहिनूर बनी। यह जिज्ञासा अस्वाभाविक नहीं है।

जन्म एवं बचपन:- राजस्थान का नाम लेते ही मन हर्ष से नाच उठता है। उस भूमि में जहाँ एक ओर संत युग दृष्टाओं का जन्म हुआ है तो दूसरी ओर वीरों की भी खान है। एक कवि की पंक्तियां याद आ जाती हैं-

वीर भूमि वह राजस्थान, जननी हमारी सब गुण खान ।

जननी के उर के अभिमान, हम हैं सिंहों की सन्तान ॥

राजस्थान सिर्फ वीरता में ही नहीं, त्याग-बलिदान, कला-कौशल, वैराग्य में भी सदा अग्रणी रहा है। वीरों और संतों की पवित्र धरा रही है राजस्थान। राजस्थान के नागौर जिले में कुचरा ग्राम एक ऐसी पावन भूमि है जिसने अनेक महान आत्माओं को जन्म देने का सद्सौभाग्य प्राप्त किया है एवं अनेक महापुरुषों एवं त्यागी वैरागियों ने साधना कर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया।

इस परम पावन धरा में औसवाल जैन समाज रत्न श्रीमान् सिंभूमलजी सुराणा हुए। वे समाज के हर कार्य में अपना सहयोग प्रदान करने वाले धर्मनिष्ठ सेवाभावी उदारमना श्रावक थे। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण के साथ पांचों तिथि पौषधोषवास किया करते थे। आपके पुत्र श्री बींजरज जी सुराणा अपने पिता के गुणों का अनुसरण करने वाले थे। आपकी धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती अनचीवाई धर्म के गहरे रंग में रंग चुकी थी। आपके दो पुत्र और तीन पुत्रियां थी। बड़े पुत्र का नाम धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्रीमान् फूसालालजी सुराणा, जो कटंगी (म.प्र.) में निवास करते थे। जिनका सन् १९८४ में देहावसान हुआ। आपका परिवार अभी भी कटंगी में ही निवास कर रहा है। दूसरे पुत्र श्रीमान् कालूराम जी बीस वर्ष की अल्पायु में काल के गाल में समा गए। बड़ी पुत्री सुगनवाई परलोक वासी बन गई।

दूसरी पुत्री कान्ही बाई का शुभ स्वप्न के बाद वि. सं. १९६८ के भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को जन्म हुआ। जन्माष्टमी को जन्म होने के कारण कान्हीबाई नाम रखा गया। सर्वांगपूर्ण एवं प्रतिभाशाली कान्हीबाई जब आठ वर्ष की थी। तब माता-पिता ने प्लेग की भयंकर बीमारी से स्वर्गपुरी की राह पकड़ ली। आपकी माता का देहान्त अष्टमी की सायंकाल व पिताजी का देहान्त नवमी के प्रातःकाल हुआ। इसे महान आश्चर्य कहे या संयोग। कुछ भी हो यह घटना सभी के लिये विस्मयकारी थी। महादुःख की बेला में बड़े भाई श्रीमान् फूसालाल जी सुराणा ने परिवार को सम्भाला।

किशोरावस्था में कान्हीबाई का पाणिग्रहण श्री घासीलाल जी भंडारी के साथ हुआ। विवाह सूत्र में बंधने के बाद सुखपूर्वक दिन व्यतीत हो रहे थे कि क्रूर काल ने श्री घासीलाल जी को अपना ग्रास बना लिया। अल्पायु में ही आपका सौभाग्य लुट गया। संकट की इस बेला में आपने बड़े धैर्य से आगे कदम बढ़ाये। राजस्थान में ही शासन प्रभाविका विदुषी महासती (स्व.) श्री सरदारकुंवर जी म.सा., सरलमना श्री पानकुंवरजी म.सा., आगम रसिका मधुर व्याख्यानी श्री जमना कुंवर जी म.सा., मधुर भाषिणी विदुषी श्री तुलछाकुंवरजी म.सा. (स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म. के माता जी) का सान्निध्य पाकर आपने ज्ञान ध्यान में मन लगाया। ज्ञान प्राप्ति के साथ ही संसार की असरता का भाव प्रकट हो गया, जिसके पथ प्रदर्शक थे राजस्थान के महान संत स्वामीजी श्री जोरावरमल जी म.सा.। आप श्री फरमाते थे- “जब मैं कुचरा से कटंगी जा रही थी तो स्वामी जी म.सा. से मैंने काफी चीजों का त्याग लिया था। स्वामी जी म. ने फरमाया था कि तुम वहां जा रही हो, वह तो ठीक है किन्तु अपने त्याग में मजबूत रहना।” और आप श्री मध्यप्रदेश आकर भी वैराग्य से पीछे नहीं हटे, बल्कि आपका त्याग-वैराग्य बढ़ता ही गया। बुद्धि प्रखर होने के कारण कुछ समय में ही ज्ञानार्जन काफी कर लिया। इस प्रकार आपने अपने जीवन को नई दिशा में मोड़ लिया।

बड़े भाई से आज्ञा मिल जाने के परिणामस्वरूप वि. सं. १९८९ माघ शुक्ला दशमी को कुचेरा में मरुधरामंत्री स्वामी श्री हजारीमल जी म.सा. के मुखारविंद से भागवती दीक्षा ग्रहण की। आपश्री का नाम महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. रखा गया। दीक्षाव्रत अंगीकार करके आप श्री चन्दनवाला श्रमणी संघ में मिल गई। आपश्री सेवा में अग्रणी थीं। महासती श्री तुलछा जी म.सा. की अस्वस्थता के कारण आपश्री बारह वर्ष तक उनकी सेवा में स्थिरवास रही। तन मन से आपश्री ने उनकी सेवा की। श्रीपानकुंवरजी म.सा. को कैसर हो गया था, तब ब्यावर में आपने दो चातुर्मास में उनकी सेवा की। आपश्री की वह सेवाभावना ब्यावर के निवासियों को आज भी याद है?

पूजनीया श्री जमना जी म.सा. को भी जब संग्रहणी रोग हो गया, तब आपश्री ने हर्षपूर्वक उनकी अम्लान मन से सेवा की। अंतिम समय तक आपकी सेवा की भावना बनी हुई थी। अपनी शिष्या-प्रशिष्या तक की सेवा में सहर्ष लग जाते थे। आपश्री की सेवा भावना को नन्दीसेन मुनि की सेवा की उपमा दी जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सेवा की विधि सीखे तो कोई आपश्री से सीखे। ऐसे साध्वी रत्न थे श्रीमान् फूसालालजी सुराणा की बहन महासती श्री कानकुंवरजी म.सा.।

सुराणा परिवार में बालिका का जन्म- इसी कुचेरा में श्रीमान् फूसालालजी सुराणा की धर्मपरायणा, पतिपरायणा धर्मपत्नी श्रीमती किसनाबाई की पावन कुक्षि से वि.सं. १९८३ मिंगसर शुक्ला द्वितीया के दिन बाल रवि की प्रथम किरण के साथ-साथ ही एक सुन्दर मनोरम बालिका ने जन्म लिया। जन्म बालिका का हुआ था, प्रचलित भारतीय प्रथा के अनुसार यह हर्ष का विषय नहीं था, किन्तु महान् आत्माओं का आगमन सहज ही आनन्द हर्षोल्लास का वातावरण बना लेता है। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति बालिका के जन्म के अवसर पर हर्ष से नाच उठा। क्योंकि चिरकाल से किलकारियों से सूना घर का आंगन आज सुन्दर, सलोनी, मासूम बच्ची के मीठे रुदन से गूँज उठा था। घर खुशियों की सौरभ से महकने लगा। फूल जैसी कोमल बालिका का पदार्पण हुआ था। फूल सभी को प्रिय होते हैं, उसकी सुगंध चारों ओर महक उठती है। यही कारण है पुष्प की सर्वप्रियता का।

परिवार की परम्परा के अनुसार ज्योतिषी को बुलाकर जन्म पत्रिका बनवाई गई। ग्रह गोचर भी पृष्ठे गए। जन्म पत्रिका में पड़े ग्रहों की स्थिति को देख कर तब ज्योतिषी कुछ असमंजस में पड़ गया था। उसे ऐसी स्थिति में देख कर परिवार के एक सदस्य ने धड़कते दिल से पूछा- “क्या बात है पंडित जी? आप असमंजस की स्थिति में दिखाई पड़ रहे हैं। क्या ग्रह कुछ उलझन में डालने वाले हैं?” मानव हृदय अनिष्ट कल्पना से शीघ्र कांप उठता है। ज्योतिषी ने सिर हिलाते हुए कहा “नहीं, नहीं, सेठ साहब! धवराने जैसी कोई बात नहीं है। यह कन्या आपके घर में कैसे आ गई? यही मेरे आश्चर्य का विषय है। इसका जन्म तो किसी क्षत्रिय परिवार में होना चाहिए, तभी इसका राजयोग सफल होता। संभव है इसका ग्रह बल इसे परम प्रभावशाली सन्यासिनी बना दें। किन्तु यह भी तो निश्चित रूप से प्रतीत नहीं हो पा रहा है। मेरे आश्चर्य का दूसरा कारण यह भी है। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि यह पुण्य शालिनी कन्या कौनसी असाधारणता को प्राप्त करेगी।

भला इसकी प्रतिभा के विस्तार को कौन रोक सकेगा? इसकी अलौकिक शक्ति से विश्व का कोना-कोना चमकेगा।

8

बारहवें दिन जब नामकरण किया जाने लगा तो परिवार के सदस्यों के परामर्श से एवं बालिका फूल के समान सुकोमल होने के कारण बालिका का नाम चम्पाकुमारी रखा गया। नामकरण के अवसर पर पधारे पंडितजी को मनोवांछित दक्षिणा भी दी गई।

बाल्यकाल- उज्ज्वल गोरा रंग, सुधड़, गोल चेहरा, सुडौल नासिका, तेजस्वी नयन, सुगठित देह, सुसंस्कृत चपलता, मुख पर फैली हुई प्रसन्नता की स्निग्ध छाया। कोई भी संवेदनशील हृदय ऐसा नहीं कि जिसे प्रथम दर्शन में ही यह बाला आकर्षित नहीं कर लें। ऐसी सद्भाग्यशालिनी बाला अपने माता-पिता व परिवार के सब ही सदस्यों की लाइली हो इसमें आश्चर्य ही क्या? शिशु की बाल चेष्टाएं, स्वाभाविक झुकाव, खेलने का ढंग, रहन-सहन आदि प्रायः भावी जीवन का संकेत कर देते हैं। कहावत भी है कि पूत के पांव पालने में दिख जाते हैं।

बालिका चम्पाकुमारी फूल जैसी सुकोमल थी। अतः नामकरण उसके अनुरूप ही रहा- चम्पाकुमारी। समय के प्रवाह के साथ-साथ बालिका बढ़ने लगी। पूर्व जन्म के संस्कार भी विकसित होने लगे। शैशवावस्था में ही उसकी चपलता, भावुकता, विनयशीलता एवं तीव्रमेधा शक्ति प्रकट होने लगी।

दीन दुखियों को देख कर आपका हृदय रो उठता था। विषद ग्रस्तों का कष्ट आपके हृदय पर आघात लगता। उदारता का तो पार ही नहीं था। भूख से विलखते हुए भिखारी बच्चों को आप अपनी स्वयं की थाली का भोजन दे देते और तृप्ति का अनुभव करती। कभी अपने कपड़े भी दे दिया करते थे। आपके ऐसा करने से आपको डांट भी सहनी पड़ती थी। इस पर भी आप दुखियों के दुःख को दूर करने के लिये सदैव तत्पर रहती थी।

मीठी-मीठी मनमोहक बातों में भी आप कुशल थीं। विनय विनम्रता एवं बड़ों की सम्मान सेवा में भी आप सदैव आगे रहती थीं। परिवार के सदस्य जो भी कार्य करते, आप सभी का काम में हाथ बंटाया करतीं। मां, ताई, भुआ में कहीं कोई भेद नहीं। मानो सभी आपकी माताएं थीं। आप भी सबके वात्सल्य का केन्द्र बिन्दु थीं। परिवार में सबकी दुलारी, सबकी लाइली थीं।

जहाँ पाँच वर्ष की आयु में बालक-बालिका को अपने शरीर को सम्हालने का भी होश नहीं रहता, वहाँ आप गृहकार्य के अतिरिक्त सामायिक प्रतिक्रमण में भी सबके साथ होतीं। प्रातः बड़ों को प्रणाम करना आपका नित्य नियम बन गया था। आपके बाद एक भाई तथा तीन बहनों ने जन्म लिया। उन सभी पर आपका बड़ा स्नेह था किन्तु मोह नहीं।

जिस प्रकार चम्पा पुष्प की सौरभ से आसपास का समूचा वातावरण सुरभित हो जाता है, उसी प्रकार बालिका चम्पा का सौरभ सुषमा विखेरती, भोली-भाली सूरत, मधुर मीठी क्लृप्तकारियों से भरा बचपन का अनूठा आकर्षण, मनोहारी छटा, फुदक-फुदक कर इधर से उधर दौड़ना, सुराणा दम्पती एवं परिवार के सदस्यों के हृदयों को आनन्द से सराबोर कर देता था। नहीं बालिका की बाल क्रीड़ाएँ सबके हृदयों को असीम आनन्द से भर देती थीं।

पाणिग्रहण- उस समय बाल विवाह का प्रचलन था। जिसका जितनी कम आयु में विवाह हो जाता समाज में उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा होती। कभी कभी तो चार वर्ष के बालक-बालिकाओं को ही परिणय बंधन में बाँध दिया जाता था। यहाँ तक कि गर्भकाल में ही वाग्दान हो जाया करता था। प्रचलित परम्परा के अनुसार चम्पाकुमारी का विवाह अल्पवय में ही बालाघाट के श्रीमंत परिवार के बालक रामलालजी

काजेला के साथ सम्पन्न कर दिया गया। वर वधु दोनों की ही आयु इतनी थी कि वे विवाह का अर्थ भी नहीं जानते थे। वे तो बस केवल इतना जानते थे कि बाजे बज रहे हैं, महिलाएं गीत गा रही हैं और खाने को विविध प्रकार के पकवान मिल रहे हैं, नये-नये वस्त्राभूषण भी पहनने को मिल रहे हैं। दोनों की प्रसन्नता बस इसी में थी।

श्रीमंत कुटुम्ब मालदार पितृपक्ष शुभ लक्षिणी सुरूपा कन्या, सुयोग्य वर सोने में सुहागे का कार्य कर रहा था। खुशी और धूमधाम का क्या कहना। नन्हीं सी बालिका चम्पा को विभिन्न आभूषणों व नवीन वस्त्रों से लाद दिया गया। परम्परानुसार विवाह का कार्यक्रम धूमधाम के साथ सम्पन्न हो गया।

वज्राघात- अल्पायु में ही चम्पाकुमारी वैवाहिक बंधन में बंध तो गई। किन्तु विवाह क्या होता है? पति का सुख क्या होता है? ससुराल कैसा होता है? इसका अहसास चम्पाकुमारी को नहीं हो पाया। विवाह होने के पश्चात् एक वर्ष का समय हंसी-खुशी में ही बीत गया। क्रूरकाल को दोनों परिवारों की यह प्रसन्नता देखी नहीं गई। उसने अपना क्रूर पंजा फैलाया और कुछ ही समय में उसने चम्पाकुमारी के सौभाग्य श्रीमान् रामलाल जी काजेला को हमेशा के लिये उनसे छीन लिया। अजीब है विधि का विधान और क्रूर काल का आतंक। हंसते खेलते परिवारों में मातम का साम्राज्य छा गया। परिवार के सदस्यों ने क्या सोचा था और क्या हो गया। परिवार के सभी सदस्यों की आंखों से अश्रुधारा रुक नहीं पा रही थी। ऐसी विषम परिस्थिति में चम्पाकुमारी की स्थिति भी बड़ी विचित्र ही थी। वह किंकर्तव्यविमूढ़ सी, अपलक नेत्रों से टुकूर-टुकूर देखा करती। यह सब क्यों और कैसे हो गया, यह उसकी समझ के बाहर की बात थी।

विधि का विधान हमारे समझ के बाहर हैं। उसे जो करवाना होता है, वह करवा लेता है। कार्य कैसे हो, यह उसकी अपनी शैली के अनुसार होता है। हाँ, उसके विधान में लिखे को टालना मानव के सामर्थ्य के बाहर की बात है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने चम्पाकुमारी को शायद किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिये तैयार किया था। जन्म के समय ज्योतिषी द्वारा कही गई बात भी कुछ ऐसा ही संकेत दे रही थी कि यह एक महान् पुण्यात्मा है। संभव है विधाता ने इस पवित्र देवी स्वरूपा चम्पाकुमारी को त्याग वैराग्यमय श्वेत वस्त्र एवं अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह रूपी आवरणों से सजाने का निश्चय कर रखा है। जिस आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य रूप रत्नत्रयी चमक थी। उस पुण्यात्मा की शोभा ये मिट्टी के अलंकार कब बढ़ाते। अतः मार्ग में आने वाली बाधाएँ विधि के विधानानुसार हटने लगीं और चम्पाकुमारी का मार्ग प्रशस्त होता गया। इस बात को सांसारिक प्राणी नहीं समझ सकते।

वैराग्य के अंकुर- घात-प्रतिघात न हो तो मानव जीवन ही कैसा? इसमें सुख-दुःख की आँख मिचौनी का खेल धूप-छाया की तरह आता रहता है। अभी अभी हंसने वाले नयन रोने और रोने वाले नयन मुस्कराने लगते हैं। कभी मन पीड़ित तो कभी तन पीड़ित। कभी पारिवारिक व्याधियाँ तो कभी सामाजिक रूढ़ियाँ मानव को व्यथित करती ही रहती हैं। ऐसा कोई नेत्र नहीं जिसने दुःख के आँसू गिराये हो, ऐसा कोई हृदय जो नहीं संयोग-वियोग से आंदोलित नहीं हुआ हो। ऐसा कोई मन नहीं जिसे अभावों ने नहीं सताया अथवा जिसमें असंतोष का भूचाल नहीं आया हो। संसार में ऐसा कोई घर या स्थान नहीं जिस पर मृत्यु की छाया पड़ी नहीं। फिर हमारी चरित्रनायिका भी इसका अपवाद क्यों होती? किन्तु कभी-कभी आकस्मिक लगने वाला आघात मानव हृदय की समस्त आशा आकांक्षाओं का वेग रोक कर जीवन की दिशा ही बदल देता है। जीवन की भोग विलासपूर्ण गतिशीलता जीवन के सत्य तथ्य की खोज में तत्पर होकर त्याग वैराग्य की ओर मुड़ जाती है। जिसमें महापुरुषों के जीवन की बात ही क्या?

संस्तरणात्मक संसार की क्रियाशीलता ने चम्पाकुमारी के जीवन साथी की सुखद छाया अकस्मात् ही सदा सदा के लिये समेट ली। श्री रामलाल जी काजेलाल का अल्पकालीन व्याधि कैंसर के कारण बीकानेर में स्वर्गवास हो गया। इस आकस्मिक आघात ने परिवार और नगर को शोकाकुल बना दिया। जहाँ आठों पहर आनंद अटखेलियाँ करता था वहाँ आज दुःख का अट्टहास गूँज रहा था। वातावरण निष्पाण प्रतीत होने लगा।

अपनी ही आँखों के सामने अपने ही तरुण होनहार सुयोग्य पुत्र की मृत्यु! इससे अधिक और क्या वज्रपात होता। ससुरजी का हृदय टूट गया। अरमान बिखर गये। किशोरी पुत्र वधु का का वैधव्य उनके कलेजे को चीर गया। वे जीवन से हताश हो गये, आयुष्य की लम्बी घड़िया व्यतीत करना भारी हो गई। जीना विवशता हो गई थी।

श्री नेमीचन्द जी के लिये यह आघात असह्य निकला। सांसारिक दृष्टि से इससे बढ़कर और दुःख का विषय क्या था? चम्पाकुमारी की वेदना असीम थी। उनका तो संसार ही उजड़ गया था। संचित सपनों का भंडार लुट गया था। मधुर कल्पनाओं से भरा भविष्य नियति के क्रूर हाथों से छिन्न भिन्न हो सदा सदा के लिये मिट गया था। उनके भाल का सौभाग्य सिन्दूर धुल गया। संसार शून्य हो गया था।

महापुरुषों ने सदैव विष में ही अमृत, अनिष्ट में इष्ट और अमंगल में मंगल खोज निकाला है। पति की मृत्यु ने चम्पाकुमारी को विचारमग्न बना दिया। तेरह वर्ष की अल्पायु में इस आघात ने उनके चिंतन की दिशा ही बदल दी। उनके अपरिषक्व मानस पटल पर प्रति क्षण मृत्यु क्या? मृत्यु क्यों? जैसे गूढ़ प्रश्न उठने लगे। जितना चिंतन होता, होता ही रहता किन्तु कोई समाधान नहीं मिलता। सूनी आँखों से वह इधर उधर देखा करती किन्तु मात्र देखने से क्या कभी ऐसे प्रश्नों का समाधान मिला है? जैसे-जैसे चिंतन बढ़ता, जिज्ञासा में भी वृद्धि होती। अपनी बात किससे पूछे। चारों ओर तो गम्भीर उदासीनता छाई हुई थी। यह आघात इतना क्रूर था कि उसे सहज में ही भुला देना मानव के लिये सम्भव नहीं था।

कहा गया है कि ऐसे दुःख की सबसे अच्छी दवा समय है। समय के बीतने के साथ-साथ शोक भी कम होता जाता है। यही बात यहां भी लागू होती है। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे परिवार के सदस्य सामान्य होने लगे। घर का कामकाज की व्यवस्था भी धीरे-धीरे जमने लगी। आनन्दहीन सामान्य वातावरण बन गया। सही तो यह है कि मरने वाले के लिए कोई मरता नहीं, जाने वाला चला जाता है, रहने वालों को सभी कुछ करना पड़ता है। इधर परिवार का वातावरण सामान्य होने लगा तो चम्पाकुमारी का चैन दुर्लभ हो गया। वे विचारों के सागर में डूबने तैरने लगी। उनके चिंतन की गहराई बढ़ने लगी। संसार की नश्वरता का कुछ-कुछ आभास होने लगा।

परिवर्तित परिस्थितियों में उनके मानस पटल पर विचार उभरते- 'अब इन झंकारों से मेरा क्या मतलब? जिसको लेकर संसार था वही जब चला गया तो इन सांसारिक राग रंगों से मेरा क्या नाता है? किसी सुयोग्य गुरुवर्या का सान्निध्य मिले तो मेरा यह निरर्थक जीवन सार्थक बन जाय। जीवन का क्या भरोसा है, आज है कल नहीं। कुछ आत्म-कल्याणकारी कार्य, ही क्यों न कर लिया जाय। किन्तु यह सब हो कैसे?' यह विचार मंथन चलता रहा। समस्या ज्यों की त्यों ही रही। भावना बढ़ती गई। जब देखो तब मौन, निरीह विचारों में खोई दिखाई पड़ती। यदि उनके विचारों को शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो उनके मानस पटल पर वैराग्य के अंकुर फूट रहे थे। वैराग्य उदय हो रहा था। वैराग्योत्पत्ति के कई कारण शास्त्रों में दिये

गये है। यहां उनकी चर्चा करना अप्रासंगिक प्रतीत अवश्य हो रहा है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके मानस पटल पर अंकुरित होने वाले वैराग्य पूरित विचार ज्ञानगर्भित थे।

मानव जीवन की मंजिल विचारों में ही छिपी रहती है। चम्पाकुमारी को विचार मंथन में मंजिल के मार्ग की झलक मिल गई। परन्तु इस मार्ग पर चलने के लिए जो विघ्न बाधाएं थी, उन्हें देख कर मन कांप जाता। साध्वी जीवन की मधुर कल्पनाओं में उनका मन रम जाता। वे अपने भविष्य के अदृश्य निर्माण में तल्लीन हो जाती। भौतिक रूप से उन्हें लगभग सभी प्रकार के सुख उपलब्ध थे। यों कहा जा सकता है कि पति के वियोग के पश्चात भी वे एक प्रकार से पूर्ण सुखी जीवन जी रही थीं, किन्तु महान आत्माओं को ये भौतिक सुख कब तक सुखी बनाने में समर्थ रहे हैं। चैतन्य सुख के अभिलाषियों, मनीषियों को इन जड़ सुखों में आनन्द उपलब्ध नहीं होता। सभी सुख सम्पन्नता के मध्य उनके हृदय में एक अभाव बना रहता। वे एक प्रकार की रिक्तता का अनुभव करती। ये भौतिक सुख उन्हें रुचिकर नहीं लगते। उनके व्यवहार में उदासीनता की झलक स्पष्ट दिखाई देती थी। इतना सब होने पर भी अपनी कर्तव्यनिष्ठा में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने देती थी। उनका हृदय वैराग्य से पूरित था किन्तु फिर भी सांसारिक जीवन में निमग्न थी।

सास का प्यार उन्हें माता के प्यार दुलार से भी बढ़कर मिला। सास सुन्दर, सुशील, विनयमूर्ति बहू को पाकर फूली न समाती थी। इतने प्यार दुलार को पाकर भी चम्पाकुमारी को इस अवस्था में संतोष नहीं था। प्रसन्नता नहीं थी। इसका कारण उनका वैरागी मन था। उन्हें संसार असार लगता। इस असार संसार से निकलने के लिए उनका मन छटपटा रहा था किन्तु कोई राह नहीं मिल पा रही थी। वे करें तो क्या करें, कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

कहा गया है कि जहां चाह होती है वहां राह भी निकल आती है। महापुरुषों के मनोरथ कभी भी निष्फल नहीं होते। चम्पाकुमारी की मनोकामनाएं पूर्ण होने का भी समय आ गया, ऐसा संकेत मिलने लगा।

महासती जी का सात्रिध्व- वर्षावास प्रारम्भ हो चुका था। जैन मुनिराज एवं महासतियांजी वर्षावास हेतु अपने अपने घोषित क्षेत्रों में पधार चुके थे। इसी अनुक्रम में बालाघाट श्रीसंघ की विनती स्वीकार कर महासती श्री हगामकुंवर जी म.सा. भी वर्षावास हेतु बालाघाट में पधार चुके थे। वर्षावास की सम्पूर्ण अवधि में प्रवचन होते हैं। धर्म ध्यान की भी धूम मच जाती है। बालाघाट में भी महासतीजी के प्रवचन आरम्भ हो गये थे। चम्पाकुमारी को सुखद संयोग मिल गया। वे प्रतिदिन प्रवचन पीयूष का पान करने जाती। दिन में अध्ययन करने के लिए भी महासती जी की सेवा में चली जाती। इस प्रकार लगभग पूरा दिन ही स्थानक में बीतता। इसमें आपका मन भी रमा रहता। एक दिन एकान्त पाकर चम्पाकुमारी ने महासती जी के समक्ष अपने मन की गठड़ी की गांठ खोल कर पसार दी और कहने लगी-

“महासती जी अब तो संसार नहीं सुहाता। ये भोग, यह ऐश्वर्य, धन, परिवार नहीं भाता। यों देखने में मुझे कोई अभाव नहीं है। अपने परिवार में भी मुझे कोई कष्ट नहीं है। मुझे पूरे परिवार का स्नेह, दुलार पूरी तरह मिल रहा है किन्तु फिर भी आनन्दानुभूति नहीं हो रही है। मेरा मन बार बार कहता है कि आनन्द की उपलब्धि संयम में ही होगी। मेरा विचार दीक्षाव्रत अंगीकार करने का है।”

अपने सामने बैठी सुन्दर सलोनी किशोरी की बात सुनकर महासती जी विचारमग्न हो गई। महासती जी उस किशोरी की बात पर आश्चर्यचकित भी हो गई। कुछ क्षणोपरांत महासती जी ने कहा- “तुम कैसी बातें कर रही हो। तुम्हें क्या कष्ट हैं?”

7 “महासती जी ! क्या कष्ट हो तभी दीक्षा लेनी चाहिए ?” प्रति प्रश्न करते हुए चम्पाकुमारी ने आगे पूछा- “क्या ये सांसारिक भोग कष्टप्रद नहीं हैं ? इससे बढ़कर संसार में और क्या दुःख हो सकता है ?”

महासती जी विस्मयाभिभूत होकर यथार्थ बात को सुन रही थी। बात सत्य थी किन्तु इसका विवेचन ऐसे मुख से हो रहा था जिस मुख से ऐसी अपेक्षा कोई कर ही नहीं सकता था। यौवनवय की ओर कदम रखा ही था, सम्पत्तिशाली की बेटी, श्रीमंत परिवार की बहू, सभी की प्यारी ऐसी चम्पाकुमारी के मुख से निकले दीक्षा के ये शब्द क्या आश्चर्यजनक नहीं थे ?

“महासतीजी ! आप मौन क्यों हैं ? क्या मैं इस मार्ग के योग्य नहीं हूँ ?” महासती जी को विचारमग्न देख कर चम्पाकुमारी ने पुनः प्रश्न किया।

“ऐसी बात नहीं है। हमारा लक्ष्य आत्म साधना है। इस साधना में असीम और सच्चा आनन्द भरा है। कोई भी मुमुक्षु यदि मार्गदर्शन मांगे तो इस मार्ग का यथार्थ दर्शन कराना हमारा कर्तव्य है। तुम भी यदि इस मार्ग पर आना चाहो तो हमें क्या आपत्ति हो सकती है। पर जानती हो खांडे की धार पर चलना सरल है किन्तु संयम मार्ग पर चलना कठिन है। जो मुमुक्षु संसार के बंधन काटना चाहता है तो ये बंधन उसे दुगुनी शक्ति से जकड़ते हैं। यह एक प्रकार की बला है जिसकी पकड़ से छूट पाना जितना सरल तुम समझ रही हो उतना सरल नहीं है। समाज में अनावश्यक रूप से विद्रोह की स्थिति उत्पन्न होगी। तुम्हारी परेशानी बढ़ेगी और हमारी निंदा होगी। इतना सब कुछ होने पर भी कुछ सार्थक परिणाम नहीं निकलेगे। इससे तो अच्छा यही है कि तुम अपने घर में रह कर ही आत्म साधना करो।” महासती जी ने चम्पाकुमारी को समझाते हुए कहा।

“आपका फरमाना ठीक है। मैं साध्वी बनकर आत्म साधना करना चाहती हूँ। आप तो केवल इतना बताने की कृपा करें कि मैं इसके लिये योग्य हूँ अथवा नहीं। आगे आने वाली कठिनाइयों की चिंता आप नहीं करें। परिस्थिति के अनुसार मैं स्वयं उनको संभाल लूंगी। कृपा कर मैं आपसे जो जानना चाह रही हूँ वह बताने की कृपा करें।” चम्पाकुमारी ने पूछा।

“यदि तुम्हारे परिवार वाले तुम्हें संयम ग्रहण करने के लिये अनुमति प्रदान कर देते हैं तो मैं सहर्ष तुम्हें संयम प्रदान करूंगी। उनसे कहना, अनुमति लेना आदि कार्य तुम्हें ही सम्पन्न करना है। यह हमारा कार्य नहीं है।” महासती जी ने मार्गदर्शन प्रदान कर दिया।

“संयम ग्रहण करने के लिये पारिवारिक आज्ञा के लिये मैं आपसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मांगूंगी। मुझे अपनी योग्यता के संबंध में आपसे अपना अभिमत चाहिए था, जो मुझे मिल गया। शेष कार्य तो मैं स्वयं ही पूरा कर लूंगी।” चम्पाकुमारी ने कहा और वंदन कर जाने लगी।

“जाओ, गुरुदेव तुम्हें अपने लक्ष्य-प्राप्ति में सफलता प्रदान करें। स्मरण रहे कि परिवार से आज्ञा इस रीति से मांगना कि समाज में तुम्हारी अथवा हमारी निंदा का प्रसंग उपस्थित न हो।” महासती जी ने कहा।

“आपसे समागम से पूर्व ही मेरे विचार ऐसे थे। आपके प्रवचनों से आपसे विचार विमर्श करने से मेरे पूर्व विचारों में और अधिक दृढ़ता आई है। मेरी भावना में प्रकाश भरा है, जो अब अंधकार नहीं बन सकता।” चम्पाकुमारी ने कहा।

चम्पाकुमारी के वैराग्य से परिपूरित शब्दों को सुनकर महासती जी ने कहा- “बहन ! दीर्घदृष्टि से कार्य करना ऐसा कोई कार्य मत करना जिससे भविष्य में पश्चाताप करना पड़े। आवेश में आकर कोई कार्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि आवेश में आकर किया गया कार्य आवेश समाप्त होने पर मानव को बड़ी विकट स्थिति में डाल देता है। अभी तुम युवा हो, यौवन बहुत शेष है। पूरी तरह विचार विमर्श करके विवेक के साथ ही आगे कदम बढ़ाना।”

इस वार्तालाप के पश्चात् चम्पाकुमारी अपने आवास की ओर चली गई।

दीक्षा मार्ग की बाधा- परिवार के किसी भी सदस्य को अभी तक यह कल्पना भी नहीं थी कि चम्पाकुमारी संयम के मार्ग पर चलने का संकल्प ले चुकी है। इसका कारण भी यही था कि अपनी भावना को उन्होंने किसी के भी समक्ष प्रकट नहीं किया था। एक दिन चम्पाकुमारी ने अपने मन की भावना को परिवार के समक्ष प्रकट कर ही दिया। चम्पाकुमारी की भावना को जानकर परिवार के सदस्यों में से कोई भी व्यक्ति उनकी दीक्षा लेने की बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। उनको किसी का भी समर्थन नहीं मिला। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दीक्षा की अनुमति प्राप्त करने के लिए उन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा होगा। उनका वैराग्य कोई श्मशान वैराग्य नहीं था। सच्चे ज्ञानगर्भित वैराग्य की अदम्य शक्ति उनके पास थी। अन्ततः उनके वैराग्य का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। सबको अपने अनुकूल बनाने के लिए उन्हें काफी कठिनाइयां भी उठानी पड़ी।

जहाँ चाह होती है, वहाँ राह होती है। महापुरुषों का मनोरथ कभी भी निष्फल नहीं होता। राजस्थान एवं अन्यत्र आज भी ऐसी प्रथा है कि विधवा होने के पश्चात् बेटी को उसके पितृपक्ष वाले ही सर्वप्रथम अपने यहाँ ले जाते हैं। उसके पश्चात् ही अन्यत्र आना जाना सम्भव होता है। इसे ‘देहलीज छुड़ाने’ की प्रथा कहते हैं। अस्तु परम्परानुसार चम्पाकुमारी के समक्ष भी यह प्रसंग उपस्थित हुआ और आप अपने पिता के यहाँ चली गई। पितृगृह में पहुँचने के पश्चात् एक दिन अवसर देख कर आपने अपने पिताश्री के समक्ष निवेदन किया- “मेरी इच्छा अपनी पूजनीया भुआ जी साध्वी रत्न श्री कानकुंवरजी म.सा. के दर्शनार्थ कुचेरा जाने की है” अपनी पुत्री की बात सुनकर अनुभवी पिता का माथा ठनका। उनके मन में संकल्प विकल्पों का संघर्ष मचा कि यह क्या कह रही है। जिसने आज तक जिनका नाम ही नहीं लिया उनके दर्शन करने की इतनी उत्सुकता? यह उत्सुकता निष्प्रयोजन तो हो नहीं सकती। कहीं इसके मन में दीक्षा लेने की भावना तो नहीं है? दामाद को क्रूर काल ने छीन लिया। क्या यह जीवित ही छोड़ जाने को उद्यत है। इस प्रकार आपके पिताजी के मन में शंकाओं का अम्बार लग गया। मन बेटी को कुचेरा भेजने के लिये तैयार नहीं था। यदि जाने से मना कर दिया तो यह अपने आपको सर्वथा निराधार या असहाय समझ कर दुःखी होगी। यदि जाने दिया तो संभव है, लौट कर न आये, यदि लौट भी आई और दीक्षा का बखेड़ा लेकर आयी तब क्या होगा? समस्या बड़ी विकट थी। इसका समाधान कठिन था। विचार करते करते काफी देर हो गई फिर भी समस्या अपने स्थान पर यथावत बनी रही। अन्य कोई भी मार्ग न मिलने पर विवश होकर पिता ने शीघ्र ही लौट आने की बात कह कर चम्पाकुमारी को कुचेरा जाने की अनुमति दे दी। कर्तव्य के मजबूत बंधन में आवद्ध मानव कभी-कभी अपने अन्तर की आवाज व मन के विपरीत आचरण करने के लिये बाध्य हो जाता है।

भावी अपने पैर पसार रही थी। भावी के प्रभाव से विवश बना अनुभवी मानव बहा जा रहा था। उसे क्या पता था कि उनका कुचेरा गमन सन्यास मार्ग पर आरूढ़ कर देगा। उनकी लाइली चम्पा बेटी

सन्ध्यासिनी बनेगी ऐसी तो उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी। उन्हें बेटी की चिन्ता थी और भावी बेटी चम्पा को छीनने के प्रयत्न में थी। बेटी को कुचेरा के लिये विदा कर दिया किन्तु पिताजी को घर काटने को दौड़ रहा था।

कुचेरा में नया जीवन- चम्पाकुमारी अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर कुचेरा ग्राम में पहुँच गई। इन दिनों कुचेरा में परम विदुषी महासती श्री जमना जी म.सा. अपनी शिष्याओं के साथ विराजमान थीं। चम्पाकुमारी भी कुचेरा में महासती जी के पावन चरणों में जा पहुँची। चम्पाकुमारी प्रतिदिन प्रवचन-पीयूष का पान करने स्थानक जा पहुँचती और एकाग्रचित्त से प्रवचन श्रवण करती। मेघ से अनवरत अमृत बरसता और ज्ञान-प्यासी चातकी सी चम्पाकुमारी पीयूष-पान कर भाव विभोर हो जाती। जिन प्रश्नों का समाधान करने के लिये चम्पाकुमारी दिन रात चिंतन किया करती थी, फिर भी उसे उनका समाधान नहीं मिलता था। कुचेरा में महासती जी के प्रवचनों से चम्पाकुमारी को अपने प्रश्नों का समाधान मिलने लगा। जैसे-जैसे उसे समाधान मिलता, वैसे-वैसे उसकी वैराग्य भावना और भी दृढ़ से दृढ़तर होती जा रही थी।

साध्वी समुदाय की वैराग्यपूर्ण पवित्र दिनचर्या, निर्मल संयम साधना, अध्यात्ममय वैराग्य से परिपूर्ण प्रवचन धारा चम्पाकुमारी की हृदय भूमि को काम, क्रोधादि कंकर कांटों से मुक्त कर कोमल बनाने में सचेष्ट थी। जिस प्रकार बीज की वृद्धि में हवा, पानी, धूप, मिट्टी आदि सहायक होते हैं, उसी प्रकार संत-सतियों का पावन सान्निध्य, उनकी साधना, दिनचर्या, उनका उपदेश, उनका भव्य व्यक्तित्व आराधक जीवों के लिए जीवन निर्माण में बड़े ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। चम्पाकुमारी पर भी इस विशुद्ध वातावरण का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। “मुझे तो दीक्षाव्रत अंगीकार करके आत्म कल्याण करना है।” उनके ये विचार और अधिक परिपक्व हो गए।

पारस जैसे निर्जीव पाषाण के स्पर्श से यदि लोहे जैसी कठोर धातु सोना बन सकती हैं, तो सत्संग के प्रभाव से मानव महात्मा बने इसमें कौनसी विशेष बात है। चम्पाकुमारी की, प्रतिभा का बहुमुखी विकास हो रहा था। वे चिंतन मनन के अमूल्य क्षणों से गुजर रही थी। चम्पाकुमारी ने अपनी सेवा भावना, व्यवहार और स्वाध्याय प्रियता के द्वारा पू. महासती श्री जमना जी म.सा. का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। दोनों के मध्य जो प्रसंग बना उसका विवरण प्रस्तुत करना मेरे लिए कुछ असम्भव है। हाँ, इतना अवश्य लिखा जा सकता है कि उक्त प्रसंग के पश्चात् चारों ओर से आपको प्रोत्साहन मिलने लगा। आप भी अहर्निश स्वाध्यायरत रहने लगी। विश्राम के क्षणों में आप शय्या पर अपने आपको आत्म तुला पर तोलती, संयम सुख कर है अथवा दुःखकर, यह आपका मुख्य विचार बिन्दु होता था। ज्यों ज्यों आप चिंतन करती त्यों त्यों आपका हृदय उल्लास ही उल्लास से भर जाता। संयम सुखकर फूलों की शैय्या सा कोमल एवं सुरभित प्रतीत होता। हृदय में एक लहर उत्पन्न हो जाती और विचार उत्पन्न होता कि वह कब साध्वी बनेगी? साध्वी जीवन जीना आरम्भ कब से करूँगी? संयम का अंतरंग एवं बाह्य रूप आकर्षित कर रहा था। जहाँ निर्वचनीय, निर्विकल्प शाश्वत सुख भरा हुआ था।

आत्मानन्द में निमग्न संतों को संयम के बाह्य कष्टों का अनुभव नहीं होता। इसी कारण वे अपने ध्येय के प्रति निराकुल बढ़ते जाते हैं। चम्पाकुमारी का समय बड़े ही आनन्द से व्यतीत हो रहा था। चम्पाकुमारी के हृदय में संयम का बल था और इसी शक्ति के आधार पर उसने अपने माता-पिता से दीक्षाव्रत अंगीकार करने की अनुमति मांगी। किन्तु मोह का बंधन बड़ा कठोर होता है। मोह के कारण माता-पिता ने अपनी पुत्री को संयम मार्ग पर चलने की अनुमति नहीं दी। किन्तु वैराग्य के अनवरत प्रवाह को रोकने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है।



परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवेंरजी म. सा.

● जन्म ●

सं. १९८३ मिंगसर शुक्ला द्वितीया

● दीक्षा ●

सं. २००५ पौष कृष्णा दशमी

● महाप्रयाण ●

सं. २०४८ चैत्र शुक्ला

For Private & Personal Use Only

www.jagadgururambhadracharya.org

यह सत्य है कि मृत्यु के सम्मुख विवश होकर मानव अपने प्यारे से प्यारे व्यक्ति को रोक नहीं पाता, गर घर से जीवित विदा करते समय मानव का मोह इस सीमा तक जोर लगाता है कि वह हर संभव प्रयास करके उसे ममत्व के बंधन से जकड़ने का प्रयास करता है। गुजराती में एक कहावत है। कहावत अपने पुत्र-पुत्री के संबंध में है- “डिकरो जम ने देवाय पण जति ने न देवाय।” अर्थात् यमराज के समक्ष आने पर अपने प्रिय से प्रिय व्यक्ति को भी नहीं रोक सकते, यम को देने के लिये तैयार हो जाते हैं परन्तु जब कोई साधु बनना चाहता है तो उसे जति अथवा मुनिराज को नहीं देते। यमराज के समक्ष व्यक्ति विवश हो जाता है और मुनिराज के समक्ष वैसी विवशता नहीं होती। संसार की बड़ी विचित्र दशा है।

दीक्षा की अनुमति- मनुष्य संकल्प-विकल्पो का पुतला है। किन्तु अर्धैय की अधिकता से वह कृत संकल्पी नहीं बन सकता। थोड़ी सी कठिनाई उसके संकल्पों के महल को गिरा कर लक्ष्य तक पहुंचने में सफल नहीं होने देती। जबकि दृढ़ संकल्प से एक दिन असाध्य कार्य भी साध्य बन जाता है। सत्संकल्पों पर दृढ़तापूर्वक डटे रहने वाले व्यक्ति के मानस से एक प्रकार की विद्युत तरंगें निकलती हैं, जिसका प्रभाव आसपास के वातावरण पर पड़े बिना नहीं रहता। ऐसे दृढ़ चेता मनस्वी की सहायता प्रकृति स्वयं करती है।

सत्संकल्पों के समक्ष मिथ्या मोह टिक न सका। मुक्ति मार्ग से संसार परास्त हो गया। यह थी असंयम पर संयम की विजय, असत्य पर सत्य का वर्चस्व। चम्पाकुमारी की तीव्र भावना को देखकर अंत में माता-पिता ने उसे संयमव्रत अंगीकार करने की अनुमति दे ही दी। जैसे ही अनुमति मिली चम्पाकुमारी का मन मयूर असीम आनन्द से भर गया। अनुमति के अभाव में उदास रहने वाला चेहरा खिल उठा। आनंद ही आनंद भर गया वातावरण में।

दीक्षोत्सव- आध्यात्मिक जीवनोत्थान का प्रथम सोपान दीक्षा है। यही वह यात्रारम्भ है जिसका चरण लक्ष्य मोक्ष है, जिससे घोर चिन्ताओं और क्लेश से मुक्ति और उद्वेगहीन परमशान्ति का लाभ संभव होता है। यह गुरुजनों का वह प्रसादपूर्ण आशीर्वाद है जो पारलौकिक पहचान ही नहीं दिलाता वरन् इहलौकिक बंधनों, व्यवधानों को भी निर्मूल कर देता है। दीक्षा है जीवन का परिवर्तन।

जिसके अन्तरमन में मोक्ष की कामना का तीव्रतम स्वरूप हो और उसी की प्राप्ति हेतु साधनारत होने के संकल्प के साथ वीतरागी हो जाने की दृढ़ अभिलाषा का वहन करने वाला ही यथार्थ में दीक्षार्थी हो सकता है। दीक्षा का प्रयोजन है अचंचल मन से मुक्ति मार्ग पर सतत् गतिशीलता का शुभारम्भ। यही यात्रा प्रव्रजन है और यही यात्री परिव्राजक। संयम इस यात्रा का पाथेय है और संयमशील वही हो सकता है जिसके मन में आधि-व्याधि-उपाधि के भावों ने स्वयं हट कर समाधि को अपना स्थान दे दिया हो।

दीक्षा की सार्थकता इसी में है कि वह साधना के पथ को ज्योतिर्मय कर दे। दीक्षा दीप प्रज्वलित होकर इस महती भूमिका निर्वाह में सक्षम तभी हो सकता है जब उसमें वैराग्य की वर्तिका और विवेक का तोल होगा। दीक्षा दीप अपनी इस सार्थकता के अभाव में उपेक्षणीय और क्रांतिहीन लघुमृत्तिका पात्र के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

जब वैराग्यवती चम्पाकुमारी की दीक्षाव्रत अंगीकार करने की बात कुचेरा वासियों को विदित हुई। तो वहाँ का जनमानस आनंदित हो उठा। एक नवीन उत्साह का संचार हो गया कुचेरा में। दीक्षोत्सव का शुभ मुहूर्त निश्चित हो गया और उसके साथ ही दीक्षोत्सव की तैयारियां भी खुले दिल से होने लगी। वैराग्यवती चम्पाकुमारी की प्रशंसा चारों ओर होने लगी। आस पास के ग्राम नगरी में भी इस दीक्षोत्सव के समाचार कानों-कान प्रसारित हो गए। वाद्य यंत्र गूंज उठे और मंगल गीतों की स्वर लहरियां भी फूट पड़ी।

चम्पाकुमारी के संसार त्याग की बात चारों ओर गूँज रही थी। अब सभी ने जान लिया था कि कुचेरा की एक होनहार सरस्वती सी अद्भुत युवती साध्वी बनने जा रही है। निकटस्थ एवं दूरस्थ जोधपुर, नागौर, पाली, बालाघाट, कटंगी, दुर्ग, पीपाड़ आदि शहरों एवं अनेक गांवों से बड़ी संख्या में लोग कुचेरा की ओर दौड़े आ रहे थे। सभी का हृदय चम्पाकुमारी के प्रति सम्मान से भरा था। जनमानस उत्साह से ओतप्रोत था। चम्पाकुमारी को नित्य नये वस्त्राभूषणों से सजाया जाता। जिसके मन में जो आता वह करता, किसी प्रकार का किसी पर प्रतिबंध नहीं था।

आत्म कल्याण के पथिक का इन भार रूप आभरणों से क्या ममत्व ! जिनका धन विशुद्ध संयम, जिनके अलंकार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह है। उनकी शोभा ये जड़े अलंकार क्या बढ़ाते। उसके लिए तो मात्र भार रूप ही थे। विधि ने तो चम्पाकुमारी को शाश्वत अलंकारों से सजाने का निश्चय किया था। उसे इन मानवीय दुर्बलता के प्रतीक मिट्टी के आभरणों से सजाना एकमात्र मानवीय अप्रशस्त मोह की संतुष्टि ही था। किन्तु जिसे इस भार से जीवन पर्यन्त के लिए मुक्त होना था, वह इस थोड़ी देर के भार से क्यों घबराती ? व्यर्थ किसी के आनन्द में विघ्न भी क्यों बनती ? चम्पाकुमारी ने अपने मन में ठान ली थी कि ये लोग जो पहनाएंगे पहन लेना है, खिलायेगें वह खा लेना है। थोड़े समय के आनन्द में विघ्न डालने के स्थान पर इन लोगों का आदेश मान लेना अधिक श्रेयस्कर है।

दीक्षा के लिये संवत् २००५ मिंगसर शुक्ला दशमी का शुभ मुहूर्त था। यथा समय सर्व संघों, समाज के अग्रगण्य नागरिकों तथा विशाल जन समूह के सान्निध्य में चम्पाकुमारी का वरघोड़ा दीक्षा स्थल पर पहुंचा। सारे मार्ग में दान की महत्ता एवं श्रीमंतों को धन का उपयोग बताते हुए दोनों हाथों से धन उछालते हुए चम्पाकुमारी ने दीक्षा स्थल पर प्रवेश किया। सभी की स्नेह सुधा बरसाती हुई दृष्टि के मध्य चम्पाकुमारी ने पूज्य गुरु भगवंत मरुधरा मंत्री श्री १००८ श्री स्वामी जी श्री हजारीमल जी म.सा. पू. उप प्रवर्तक स्वामी जी श्री ब्रजलाल जी म.सा., पूज्य युवाचार्य प्रवर श्री मधुकर मुनि जी म.सा. एवं पूजनीया महासती मंडल के चरणों में वंदन किया। जनता आनन्द से जय जयकार करने लगी। हर्षोल्लास एवं उत्साह असीम था।

निश्चित समय पर हजारों की उपस्थिति में एवं श्री संघ तथा श्री मोहनमल जी चोरड़िया पद्मश्री की अध्यक्षता में सेठ श्री बीजराजजी सुराणा की पौत्री एवं श्री फूसालाल जी सुराणा की पुत्री, श्रीमती किसना बाई की लाइली बेटा परिवारजनों की दुलारी चम्पाकुमारी वेश परिवर्तन कर आई और फिर मरुधरा मंत्री स्वामी श्री हजारीमलजी म.सा. ने परिवार की अनुमति लेकर चम्पाकुमारी को जैन भागवती दीक्षा विधिवत प्रदान की। दीक्षा के उपरान्त आपका नाम महासती श्री चम्पाकुंवर कर अध्यात्मयोगिनी महासती श्री कानकुंवर जी म.सा. की शिष्या घोषित किया। अब चम्पाकुमारी साध्वी श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. बन गई।

शुभ्र श्वेत वस्त्र, मुंडित मस्तक, हाथों में अहिंसा का प्रतीक रजोहरण एवं मुंहपत्ती साध्वी वेश से सुशोभित यह रूप आज अद्भुत दर्शनीय बना था। जो भी देखता देखता ही रह जाता था। लोग श्रद्धावश आपके चरणों में नतमस्तक हो रहे थे। इस समय कुचेरा की छटा देखने योग्य थी। वे अपने असीम साहस और दृढ़ संकल्प के बल पर अपनी मनोकामना पूर्ण करने में सफल रही। सातवें दिन बड़ी दीक्षा प्रदान कर दी गई। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् नवदीक्षिता महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. सात वर्ष तक लगातार मौन साधना एवं ज्ञान ध्यान में लग गई। दीक्षा के पश्चात् आपको कुचेरा में ही रहना पड़ा। यहां एक महासती जी स्थिरवास में विराजमान थे। इसके अतिरिक्त महासती श्री तुलछा जी म.सा. भी अस्वस्थ थीं।

स्व-पर कल्याण की भावना से निरन्तर गतिशील मुनि का जीवन ही प्रतिपल आत्म विश्वास की ओर बढ़ता है और यही मुनि का उत्तम जीवन है।

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आपने अपना सारा ध्यान सेवा, स्वाध्याय, ज्ञानार्जन, ध्यान साधना में लगा दिया।

अध्ययन- ज्ञान, ध्यान, संयम साधना ही आपके जीवन का लक्ष्य था। और अब आप उसमें लीन रहने लगी। जैन साधु-साध्वी के लिए आचार एवं विचार दोनों ही पक्ष सामान्य रूप से मान्य होते हैं। आचारहीन विचारों का जहाँ कोई महत्व नहीं वहाँ विचार शून्य आचार भी काय क्लेश है। आचार व विचार का सामंजस्य ही पूर्णता की प्राप्ति के लिए हित कर है। जैन मुनि का निर्दोष संयमी जीवन ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पवित्र उपासना का प्रतीक है। वह सभी सांसारिक उपाधियों का त्याग कर ज्ञानाराधना में संलग्न हो जाता है। ज्यों-ज्यों सम्यग्ज्ञान द्वारा वस्तु का वास्तविक रूप ज्ञात होता है, त्यों-त्यों रत्नत्रयी निर्मल बनती जाती है। ज्ञान बिना आत्म धर्म की सुन्दरतम आराधना संभव नहीं होती। अतः दीक्षाव्रत अंगीकार कर आप ज्ञानाराधना में तल्लीन हो गई।

आप प्रारम्भ से ही प्रखर बुद्धि की स्वामिनी थी। अल्प समय में ही आपने व्याकरण, काव्य, कोश, छंद, अलंकार, न्याय आदि का अध्ययन कर लिया। इसके साथ ही आपने आगमों का भी तलस्पर्शी अध्ययन कर लिया। कई शास्त्र आपने कंठस्थ किये। जैन सिद्धांत व आचार्य की परीक्षा भी आपने अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। जिसके पास बुद्धि वैभव होता है। उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं होता। बुद्धि का धनी कलम के बल पर लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित कर लेता है। बुद्धिहीन व्यक्ति दिन भर हथोड़े चलाकर भी अपना पूरा पेट भर पाने योग्य अर्जित नहीं कर पाता है।

आपकी अध्ययन में अत्यधिक रुचि थी। णठ कंठस्थ करने का समय प्रायः पूरा हो चुका था। अब पठन-पाठन, चिंतन-मनन का समय था। आपके हाथ में जो भी अच्छी पुस्तक आ जाती, उसे समाप्त किये बिना आपको चैन नहीं मिलता। आपकी ग्राह्यशक्ति अद्भुत थी। आप जिस भी पुस्तक का अध्ययन एक बार कर लेती, उसका सार संक्षेप आपके मानस पटल पर सुरक्षित हो जाता और उसका उपयोग अवसरानुकूल कर लिया करती।

जैन धर्म से संबंधित ग्रंथों का पर्यावलोकन तो आपके लिए अनिवार्य था ही, इतर साहित्य का भी आपने पर्याप्त अध्ययन किया। उसका आपने अध्ययन ही नहीं किया वरन् उसे आत्मसात भी किया। हर समय आप अध्ययन में तल्लीन रहती। थोड़ा सा भी समय आप व्यर्थ गंवाना स्वीकार नहीं करती। आपके पास बुद्धिबल और गुरुकृपा का अक्षय खजाना था इसके परिणामस्वरूप विशेष परिश्रम किये बिना ही आप पण्डिता हो गई।

गुरु के रोम रोम में शिष्य के लिये कल्याण कामना, शिष्य के जीवन विकास की पवित्र भावना बसी रहती है। ऐसे गुरु की सेवा उनके कटु मधुर शब्द शिष्य के जीवन निर्माण की आधारशिला बनते हैं। लगातार सात वर्ष का समय ज्ञानार्जन के साथ-साथ गुरु सेवा एवं गुरु कृपा प्राप्ति में ही व्यतीत हुआ।

आघात- मृत्यु नागिन प्राणिमात्र के भौतिक शरीर को डसने के लिए प्रतिपल सचेष्ट है। क्या धनी, क्या निर्धन, क्या ज्ञानी, क्या अज्ञानी आबाल वृद्ध सभी के जीवन की शिखा इस पिशाचिनी के हाथों आबद्ध है। नगर, जंगल, पर्वत, डाल-डाल, पत्ते-पत्ते से इस नागिन की क्रूरता का मर्मभेदी हाहाकार सुनाई दे रहा है। मानव की समस्त शक्तियां इसके सामने कुण्ठित हो गई। हवा-पानी, धूप-छांव जैसी नैसर्गिक शक्तियों पर

विजय पाने वाले शक्तिशाली वैज्ञानिक एक ही बम विस्फोट से बड़े-बड़े शहरों को श्मशान बनाने की शक्ति रखने वाले महारथियों की गर्दन पर इसकी तलवार लटकती रहती है। इसके सामने अद्यपर्यंत सभी शक्तियां लाचार हैं। जगत के सभी पदार्थों का गत्यावरोध संभव है, पर इसका चक्र तो अबाध गति से प्राणिमात्र के सिर पर निरन्तर घूम रहा है। पू.श्री तुलछा जी म.सा. कुचेरा में स्थिरवास थी। आपकी सेवा में रहकर पू. गुरुवर्या श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. ज्ञानार्जन में लगी रही। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि पू. महासती श्री तुलछा जी म.सा. स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.सा. की माताजी थीं। गुरुवर्याश्री उनकी सेवा में सदैव तत्पर बनी रहतीं। गुरुणी जी की सेवा में कब दिन बीतता, कब रात व्यतीत होती कुछ पता ही नहीं चल पाता। पू. महासती श्री तुलछाजी म. की अस्वस्थता एकाएक बढ़ गई। सभी प्रकार की उपचार सुविधायें उपलब्ध करवाई गईं। किन्तु सब कुछ व्यर्थ रहा। कोई भी शक्ति सबके आराध्य, परमोपास्य गुरुणी जी म.सा. श्री तुलछा जी को नहीं बचा सकी। अंतिम घड़ी आ ही गई। कहा भी गया है कि टूटी की बूटी नहीं है। जैन शासन की श्रृंगार महासती श्री तुलछा जी म.सा. ने नश्वर देह का त्याग कर स्वर्गभूमि की ओर प्रयाण किया। कुचेरा संघ में अंधकार हो गया। बच्चा-बच्चा शोकाकुल हो गया। गुरुवर्या श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. के शोक की तो सीमा ही नहीं थी। जिनके सान्निध्य में रहकर बहुत कुछ सीखा, आज उनकी ही कृपा से वंचित हो गई। आपके हृदय पर गहरा आघात लगा।

इस आघात को अभी गुरुवर्याश्री भूल भी नहीं पाई थी कि कुछ ही समय पश्चात् ज्ञानदात्री गुरुणी जी पू. महासती श्री जमना जी म.सा. का भी स्वर्गवास हो गया। यह आपके लिये आघात पर आघात था, वज्राघात था। उस समय आपके हृदय में हाहाकार मच गया। दोनों वरिष्ठ गुरुणी के पावन सान्निध्य में आप केवल सात-आठ वर्ष ही रह पाई। अभी आप संयमी जीवन की शैशवावस्था में ही थी। शिशु सम्भल भी नहीं पाया था कि विधि कहे या कर्मगति ने वात्सल्य भरा मां का हाथ सिर से उठा लिया। दीक्षा के अवसर पर स्वजनों का त्याग, माता-पिता का वात्सल्य जिसे विचलित नहीं कर पाया, वही दृढ़ मानसी आज अपनी गुरुणी जी के वियोग से मोम की भांति पिघल रही थी। आत्म कल्याण की भावना से प्रेरित होकर घर स्वजन सभी से मुंह मोड़कर गुरु चरणों का सहारा पकड़ा था और अल्प समय के पश्चात् गुरुणी जी का स्वर्गवास, ठीक वैसा ही था जैसे कोई नाविक नाव को मझधार में छोड़ कर चला गया हो। यह परिस्थिति बड़ी निराशाजनक थी। पर विवशता थी। मृत्यु के सम्मुख सबको हारना पड़ता है। अब धैर्य धारण करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था।

वीतराग वाणी से इस वज्राघात को गुरुवर्या ने सहन किया। साध्वी संघ में आपको सिर आंखों पर रखने वाली अनेकों साध्वियां थी। पू. श्रीकानकुंवर जी म.सा. आपकी गुरुणी जी तो थी ही, संसार पक्ष से आपके भुआजी भी थे। फिर भी महासती श्री जमना जी म.सा. का स्वर्गवास आपके जीवन की सर्वोपरि दुःखद घटना थी।

इस अविस्मरणीय घटना के पश्चात् आपने साध्वी संघ के साथ कुचेरा से विहार कर दिया। जिनके लिये कुचेरा में रहना पड़ रहा था, अब जब वे ही नहीं रही तो फिर कुचेरा में रहने का लाभ ही क्या। अब आपका विचरण होने लगा। आपका यह विचरण राजस्थान ही सीमा तक ही हो रहा था।

पाली वर्षावास- पू. उपप्रवर्तक स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.सा. एवं पू. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.सा. का वि. सं. २०३४ का वर्षावास पाली माखाड़ में था। आपके सान्निध्य में ही दाद गुरुवर्या महासती श्री कानकुंवर जी म.सा. एवं गुरुवर्या महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. आदि टाणा का वर्षावास भी पाली में

ही था। वर्षों से गुरुवर्या के पिताश्री एवं समस्त परिवार की प्रबल भावना थी कि आपका वर्षावास कटंगी मध्यप्रदेश में हो। वे प्रतिवर्ष दर्शनार्थ आते और अपनी भाव भरी विनती प्रस्तुत करते। पाली वर्षावास के समय श्रीसंघ, कटंगी दर्शन करने के लिये पाली मारवाड़ आया पाली पहुंचकर श्री संघ, कटंगी ने पू. उपप्रवर्तक स्वामी जी म.सा. एवं पू. श्री युवाचार्य श्री जी की सेवा में अपनी विनती रखी कि कृपा कर महासती जी को कटंगी की ओर विहार करने की आज्ञा प्रदान कर हमारी वर्षों पुरानी भावना की पूर्ति करने की कृपा करें। पू. गुरुवर्या के पिताश्री एवं श्रीसंघ कटंगी की भावना को ध्यान में रखते हुए गुरु भगवंतों ने वर्षावास के पश्चात् महासतियां जी को कटंगी की ओर विहार करने की आज्ञा प्रदान कर दी। इस आज्ञा से श्रीसंघ कटंगी की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उसी समय जय जयकारों से गगन गुंजा दिया।

वर्षावास समाप्त हुआ और दाद गुरुवर्या एवं गुरुवर्या आदि महासतियां जी ने पाली से कटंगी के लिये विहार कर दिया। जब राणावास पधारी तो वहां पू. मरुधर केशरी श्री मिश्रीलालजी म.सा. से मांगलिक श्रवण कर वहां से आगे कदम बढ़ाये। मारवाड़, मेवाड़, मालवा तथा मध्यप्रदेश के विभिन्न ग्राम नगरों में धर्म प्रचार करते हुए आपश्री का कटंगी में पदार्पण हुआ। आपके कटंगी पदार्पण से यहां के जन जन के मन आनन्द एवं खुशी से नाच उठे। दीक्षा के पश्चात् आप उस भूमि पर पधारी जहां खेली, पत्नी और बड़ी हुई। सब कुछ तो जाना पहचाना था। श्रीसंघ कटंगी के आग्रह को स्वीकार कर वि. सं. २०३५ का वर्षावास कटंगी में किया।

कटंगी वर्षावास- दाद गुरुवर्या महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. गुरुवर्या महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. आदि का वर्षावास कटंगी में होने से कटंगी में हर्ष और उत्साह का अच्छा वातावरण बन गया। वर्षावास की अवधि में धर्मध्यान का ठाट लग गया। कटंगी वासियों ने अपने नगर में पत्नी और बड़ी हुई बालिका को एक होनहार साध्वी के रूप में देखा तो उनका यह आनंद असीम हो गया।

कली जब प्रस्फुटित होने लगती है। तब उसकी मन्द-मन्द सुगन्ध पवन के साथ फैलने लगती है। जैन शासन की महकती कली अपनी पंखुड़ियां पसार कर सुरभित पुष्प का रूप प्राप्त कर रही थी। इस समय आपका यशोगान अनेक स्थानों में होने लगा था। आध्यात्मिक शक्तियां विकसित होकर जगत में ज्ञानालोक फैलाने लगी थी। जीवन का मध्याह्न, तरुणार्ध, ज्ञान, तप, ध्यान, त्याग के प्रतीक आनन पर वैराग्य की अरुणार्ध परम पवित्र, अलौकिक तेजस्विता दर्शक के हृदय को सात्विक श्रद्धा से ओतप्रोत कर चरणों में नतमस्तक होने के लिए विवश करती थी। जनता आपश्री के प्रवचन सुनकर मंत्र मुग्ध हो आपके शब्द लालित्य में खो जाती थी।

व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करने के वैसे तो कई साधन हो सकते हैं किन्तु दो साधन महत्वपूर्ण हैं- (१) लेखन व (२) वक्तृत्वकला। लेखनी भावों को स्थायित्व प्रदान करती है। वाणी में तात्कालिक जादू के समान असर चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न करता है। आपकी वाणी का जादू चलना शुरू हुआ तो वह जनता को मंत्र मुग्ध कर देता था। आप जन सामान्य की भाषा में सरल एवं नये तुले शब्दों में जनता के मन की बातें करने में कुशल थी। शब्दों में कही क्लिष्टता नहीं, थोथे पांडित्य का प्रदर्शन नहीं। जैसी सभा वैसी बात आपकी विशेषता थी। गाँवों में रुकती थी तो कहानियों का खजाना खोल कर रख देती थी। अपनी इन कहानियों के माध्यम से ग्रामीणों को व्यसन मुक्त बना देती थी। पांडित्यों की सभा में पांडिताई में पीछे नहीं रहती। आपके सदुपदेश से अनेक व्यक्ति तम्बाखू, मद्य, मांस पर-स्त्रीगमन, द्यूत आदि व्यसनो का त्याग कर सन्मार्ग पर आये। यह आपके उपदेश का सकारात्मक पक्ष था।

स्व-पर कल्याण की भावना से निरुत्तर अन्तर बाह्य गतिशील मुनि का जीवन ही प्रतिफल आत्म विश्वास की ओर बढ़ता है और यही उत्तम मुनि जीवन है। अतः भगवान महावीर ने क्षेत्र अप्रतिबद्ध होकर ही सतत विचरण करने की आज्ञा मुनि को दी है। किसी भी क्षेत्र में अधिक निवास राग या बंधन का अनादर अवहेलना का कारण होता है। इससे साधक के संयम में शिथिल होने की अत्यधिक संभावना रहती है।

“बहता पानी निर्मल कभी न गन्दला होय” प्रवाहित नीर निर्मल, स्वच्छ और शुद्ध होता है। उसी प्रकार घूमता फिरता मुनि ही शुद्ध, पवित्र, निष्कलंक रह सकता है। रुके हुए जल में जिस प्रकार विकार आ जाते हैं, उसी प्रकार एक ही स्थान में निवास करने वाले मुनि का मन मोह में बंध जाता है। संयम मलिन हो जाता है। अतः मुनि को स्थिरवास की आज्ञा भगवान ने बहुत ही विशेष कारण अर्थात् शरीर अशक्त होने पर ही करने की दी है।

विभिन्न धार्मिक कार्यक्रमों, प्रवचनों आदि के साथ वर्षावास की अवधि कब समाप्त हो गई। यह कटंगी के निवासियों को पता ही नहीं चला और वर्षावास के पश्चात् कटंगी से विहार करने का समय आ गया। कटंगी की जनात आज उदास खड़ी अपने प्रकाश का गमन पथ निहार रही थी। उनका सीमित प्रकाश आज असीम की ओर अग्रसर हो रहा था। फुदकती हुई पुलकित गात नहीं सी चम्पा आज महान साध्वी श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. बनकर चली जा रही थीं। अपने संयम की पगडंडी पर। यो तो आपकी जन्मभूमि कुचेरा ही है, पर आपका परिवार कटंगीवासी होने से आप कटंगी की भी है

कटंगी के हर्ष की क्या कहें। जिस बालिका को धूल में खेलते हुए देखा, आंखों के सामने बढ़ते हुए देखा, अपने हाथों साध्वी वेश से सजा कर जिसे भगवान महावीर के शासन को भेंट किया। आज वहीं छोटी सी सबकी प्यारी चम्पा, वीतराग भगवान की ज्ञान प्रदीप्त मशाल लेकर, अज्ञानांधकाराच्छादित हृदयों में ज्ञान की रोशनी भरने के लिए देवी के समान शोभित हो कर आयी है। कटंगी की भूमि खिल उठी। वहां का कण कण नाचने लगा, बच्चा-बच्चा उल्लास एवं उत्साह से थिरक उठा। सारा नगर हर्ष विभोर हो अपने यहां की परम पावन साधिका के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। चारों ओर विस्मय की ध्वनियां सुनाई देने लगी।

चम्पा कौनसी है? क्या यही चम्पा है? इतनी बड़ी हो गई। धूल में खेलने वाली चम्पा यही है? वाह! नगर का नाम उज्ज्वल कर दिया। हम धन्य हो गये, नगर का नाम भी इनके नाम के साथ अमर हो गया। नगर के लोग प्रसन्न हो रहे थे। सुराणा परिवार की प्रसन्नता का क्या पूछना? पिता श्री फूसालाल जी अपनी लाइली बेटी को निहार रहे थे। आज उनकी बेटी महान विभूति के रूप में पधारी थी। परन्तु माताजी आज अपनी पुत्री चम्पा की शोभा वैदुष्य और प्रभाव देखने के लिये इस संसार में नहीं थी। वे होती तो कितनी प्रसन्न होती। कहा नहीं जा सकता।

किशोर वय की चम्पा के प्रखर तेज, प्रतापी पराक्रम का अवलोकन तो वे कर चुके थे। आज वही बाला विचक्षणता की साक्षात् प्रतिमा सौम्य ज्ञान की सरिता बनकर औजस्वी प्रभा से देदीप्यमान सामने खड़ी थी। बाल, वृद्ध, तरुण सभी हर्ष मिश्रित आश्चर्य से स्तब्ध बने सामने खड़े थे। परम पावन जिन शासन को दी गई उनकी भेंट आज जिन वाणी का अमृत बरसा रही थी। कटंगी का हृदय भक्ति भावनाओं से ओत प्रोत था। फिर भी उनके मन के अरमान अधूरे ही थे। अंत तक वे यही कहते रहे कि हम कुछ भी नहीं कर पाये। अपनी प्यारी चम्पा के स्वागत में हमसे कुछ भी नहीं बन पाया। सभी के हृदय स्नेहपूर्ण भावनाओं से

भरे थे। दीक्षा में बाधा डालने वाले भी आश्चर्यचकित थे। उन्हें आज अपनी भूल का अहसास हो रहा था। सभी के कानों में पंडित जी के शब्द गूँज रहे थे। यह बाला महासती बनकर विश्व को प्रकाश देगी। प्रवचन के समय तो जनता उमड़ पड़ती थी। विशाल उपाश्रय का प्रवचन कक्ष खचाखच भर जाता। अनेक श्रद्धालु प्रवचन कक्ष के बाहर खड़े रहकर ही प्रवचन श्रवण का लाभ लेते थे। सम्पूर्ण प्रवचनावधि में पूर्ण शांति रहा करती थी।

आपके प्रवचन यथार्थ सटीक होते थे, जिन्हें सुनकर स्थानकवासी, मंदिर मार्गी तथा जैनतर समाज के व्यक्ति भी प्रभावित होते थे। सभी धर्मावलम्बी एक ही भवन में एक ही साथ बैठकर प्रवचन पीयूष का पान करते थे। आपके प्रेम भाव ने सबके अस्त हृदय दीपों में स्नेह का तेल डालकर उन्हें प्रज्ज्वलित कर दिया था। कटंगी में प्रेम की स्नेह की सरिता सम्पूर्ण वर्षावास काल में बहती रही। वर्षावास के समय कटंगी वासी अपने सद्भाग्य पर फूले नहीं समा रहे थे। समय समय कटंगी में जय जयकारों से गगन गूँजता रहता था। जब आप कटंगी के मार्गों पर चलती तो कटंगी की जनता अपने हाथों में खिलाई चम्पा को इस अद्भुत रूप में देखकर हर्षित हो जाती थी। उनकी प्रसन्नता असीम हो जाती थी।

ऐसे भावभीने वातावरण में चार मास का समय पलक झपकते समाप्त हो गया। प्यास बुझी नहीं थी, और अमृत वर्षा करने वाला मेघ प्रस्थान करने की तैयारी में था। जनता में बड़ी आकुलता-व्याकुलता से आंचल पकड़ने का प्रयास किया, किन्तु मेघ को कब और कौन पकड़ने में समर्थ हो सका है।

संयोग वियोग की मधुर अभिव्यक्तियों के बीच आपने कटंगी से विहार की तैयारियाँ कर दी। सभी का हृदय विव्हल हो उठे। आँसुओं की बाढ़ आ गई। पर श्रमण मर्यादा में बंधी माया ममता में अलिप्त उनकी यह धरोहर अब किसी भी प्रकार रूक नहीं सकती थी। सभी उदास मन भीगी पलकों से आपका गमन पथ विवश होकर निहारने लगे। आपके चरण छूतीसगढ़ की ओर बढ़ गए।

दुर्ग वर्षावास- कटंगी वर्षावास के समय आपकी सेवा में दुर्ग श्री संघ उपस्थित हुआ था और दुर्ग पधारने की अपनी आग्रह भरी विनती प्रस्तुत की थी। दुर्ग श्री संघ की ऐसी विनती काफी वर्षों से होती आ रही थी। यह भावना भी आपके ध्यान में थी। कटंगी से विहार कर आप बालाघाट, चांगटोला, गोदिया तथा अनेक छोटे-छोटे ग्रामों को अपनी चरण रज से पावन करते हुए और जैन धर्म का प्रचार करते हुए आपका पदार्पण राजनांदगांव में हुआ। विचरणकाल में विभिन्न ग्राम नगरों में श्रीसंघ, दुर्ग आपकी सेवा में दर्शन करने और प्रवचन श्रवण हेतु उपस्थित होता रहा तथा दुर्ग पधारने के लिये भी बराबर विनती करता रहा। श्री संघ, दुर्ग की प्रबल भावना को देखकर उसे वर्षावास करवाने की स्वीकृति मिल गई। अपनी वर्षों पुरानी भावना की पूर्ति होते देख श्री संघ, दुर्ग की प्रसन्नता असीम हो गई। इस स्वीकृति के मिलते ही जैनधर्म की जय, भगवान महावीर की जय, युवाचार्य श्री मधुकर मुनि की जय, महासतियां जी की जय के निनादों से श्री संघ, दुर्ग ने गगन गुंजा दिया। दुर्ग की जनता ने भी जब यह समाचार सुना तो वहां भी हर्षोल्लास की लहर फैल गई।

वर्षावास के लिए दुर्ग में आपका प्रवेश धूमधाम के साथ हुआ। इसके साथ ही दुर्ग में धर्म ध्यान के कार्यक्रम आरम्भ हो गए। चातुर्मास काल में प्रातः नित्य प्रवचन होते, दोपहर में भाई-बहनों के साथ तत्व चर्चा होती। दुर्ग की जनता धार्मिक संस्कारों वाली होने के कारण धर्म क्रियाओं में सभी वय के व्यक्ति सम्मिलित होते थे। इस वर्षावास की एक उपलब्धि यह रही कि इसमें तपस्यायें अच्छी हुई। महासती श्री

कंचनकुंवरजी म.सा. एवं सात अन्य बहनों ने एक साथ मासखमण की तपस्या की। महासतीजी एवं तपस्विनी बहनों का श्रीसंघ दुर्ग ने अभिनंदन किया। मासखमण का प्रत्याख्यान वाणी भूषण श्री रतनमुनि जी म.सा. के मुखारविंद से हुआ। इस प्रकार आपका दुर्ग का वर्षावास सानन्द सम्पन्न हुआ।

वर्षावास समाप्त होने पर दुर्ग से आपका विहार हो गया। श्रीसंघ, दुर्ग ने उदास मन से आपको विदाई दी। मार्ग में आने वाले छोटे-छोटे गांवों में आप धर्म की गंगा प्रवाहित करती हुई आगे बढ़ने लगी। सरल, सरस, रोचक प्रवचनों से अनपढ़ किसान आपके भक्त बन जाते। भावविभोर होकर सप्त व्यसनों का त्याग करते। इस प्रकार गाँव-गाँव में आप सदाचार सत्य अहिंसा के बीच वपन करती हुई बालोद पधारी। आपके प्रवचन की यहां भी धूम मच गई। श्रीसंघ बालोद आपका वर्षावास अपने यहां करवाने के लिए आग्रह भरी विनती करने लगा। श्रीसंघ की विनती का इस समय आपने साधु भाषा में उत्तर दे दिया। कुछ दिन आपका यहाँ विराजना हुआ। यहां आपके प्रवचनों का अत्यधिक प्रभाव हुआ। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर रायपुर निवासी बहन लता को संसार असार लगने लगा और वह आपके चरणों में रहकर अध्ययन करने लग गई। बालोद से आपका विहार धमतरी की ओर हुआ। छत्तीसगढ़ में आचार्य प्रवर श्री जयमल जी साके संघ की साध्वी जी का नाम छत्तीसगढ़ में गूंज रहा था। इसी समय मेरे सांसारिक पिता श्री अनोपचंद जी पारख आपके दर्शन करने के लिये आपकी सेवा में पहुंचे। पू. गुरुवर्या ने उन्हें पहचानते हुए कहा- “हमारे पुराने भक्त हो! कहाँ रहते हो?”

“मैं भखारा रहता हूँ। आप हमारे गुरुवर्या हैं। कृपा करके भखारा पधारे। हमारी भावना यह है कि महावीर जयंती आपके पावन सान्निध्य में मनावें।” अनोपचंद जी पारख ने निवेदन किया।

आपने विनती स्वीकार कर भखारा आकर महावीर जयंती मनाने की स्वीकृति प्रदान कर दी। इस स्वीकृति की सूचना जब मेरे परिवार में और भखारा के लोगों को मिली तो सब का हृदय हर्ष और उल्लास से भर गया। सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात तो यह थी कि जय गच्छ की कोई भी साध्वी प्रथम बार भखारा पधार रही थी। इस सूचना से मेरा हृदय गद्गद हो गया। रोम-रोम पुलकित हो गया। इस सूचना मात्र से मुझे जो प्रसन्नता का अहसास हुआ उसे मैं शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर सकती। इसका कारण यह था कि विगत दो तीन वर्षों से मेरी भावना दीक्षाव्रत अंगीकार करने की हो रही थी। किन्तु परिवार की ओर से अनुमति नहीं मिल पा रही थी। मानस पटल पर विचार उत्पन्न होने लगे कि महासती जी कुछ दिन तो यहां ठहरेंगे ही। उस अवधि में उनका पावन सान्निध्य भी मिलेगा और उनकी सेवा करने का सौभाग्य भी मिलेगा। मैं अपनी दीक्षा के लिये मन ही मन योजना भी बनाती रही थी किन्तु उसमें मुझे सफलता अभी तक नहीं मिल पाई थी। अब ऐसा आभास होने लगा कि महासती जी के आगमन से कुछ न कुछ मार्ग अवश्य निकल आवेगा। मैं बड़ी उत्सुकता से महासती जी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

प्रतीक्षा की घड़ियां समाप्त हुई और वह दिन भी आ गया। गुरुवर्याश्री भखारा पधारी। भखारा की जनता ने आपका पूरे उत्साह से साथ स्वागत किया। प्रवचन गंगा प्रवाहित होने लगी। ज्ञान पिपासु जनता अपनी प्यास बुझाने लगी। महावीर जयंती बड़े उल्लास के साथ मनाई गई। इस अवसर पर अनेक ग्राम नगरों से काफी बड़ी संख्या में भक्तगण पधारे। महासती जी के पावन सान्निध्य से समारोह में चार चांद लग गए।

गुरुवर्याश्री का तेरह दिन तक भखारा में विराजना हुआ। इस अवधि में धर्म ध्यान का अनुपम ठाट रहा। इसी अवधि में मुझे अपने मन की बात कहने का भी अवसर मिल गया। एक दिन मैंने आपके सम्मुख निवेदन किया- “महाराज सा, मुझे भी आप जैसी साध्वी बना दीजिये। मैं बचपन से ही साध्वी बनना चाहती हूँ।” मेरी बात सुनकर गुरुवर्याश्री शांत रही। कुछ पलों तक वे मेरी ओर देखती रही। मानों वे मेरे चेहरे पर उभरे भावों को गहराई से पढ़ रही हो। उन्होंने कहा- “अभी तुम बहुत छोटी हो। मात्र बारह वर्ष की हो। तुम अभी साध्वी जीवन को समझ नहीं पाई हो। यह मार्ग बड़ा कठिन है। पहले अपना अध्ययन समाप्त कर लो। उसके पश्चात् साधक जीवन और उसकी कठिनाइयों को समझो।”

उनकी इन बातों का मैं क्या उत्तर देती। मेरा मन तो उनके श्री चरणों में रहकर आगे बढ़ने और ज्ञानाभ्यास करने के लिए लालयित था। किन्तु परिवार की ओर से अनुमति नहीं थी। मुझे अधर में झूलती छोड़ कर आपने भखारा से रायपुर की ओर विहार कर दिया।

वार्षिक परीक्षा समाप्त हुई और ग्रीष्मावकाश आरम्भ हुआ। इस समय महासती जी रायपुर में विराजमान थी। मैंने पिता जी से निवेदन किया- मेरी दो महीने की छुट्टी है। मेरी इच्छा है कि मैं इस अवधि में महासती जीन के पास रहकर कुछ ज्ञानार्जन करूँ। मुझे उस समय प्रसन्नता हुई जब पिताजी ने अनुमति दे दी। मैं महासती जी की सेवा में दर्शनार्थ पहुंच गई और उनकी सेवा में दत्तचित्त हो गई। गुरुवर्या के सान्निध्य में रहते हुए संयमव्रत अंगीकार करने की मेरी भावना बढ़ने लगी। परिवार के सदस्यों ने मुझे समझाने का बहुत प्रयास किया। उन्होंने कुछ उपाय भी किये किन्तु मैं अटल/अडिग बनी रही। इस पर भी मुझे दीक्षा लेने की अनुमति नहीं मिली। किन्तु गुरुवर्या का सान्निध्य बराबर बना रहा। संवत् २०३८ का वर्षावास रायपुर में चल रहा था। इस अवधि में वैराग्यवती बहन लता को परिवार की ओर से दीक्षाव्रत अंगीकार करने की अनुमति मिल गई। अनुमति मिलने पर दीक्षा का मुहुर्त मिगसर शुक्ला तृतीया को दुर्ग में दीक्षोत्सव का आयोजन कर दीक्षा प्रदान करना निश्चित हो गया।

रायपुर से दुर्ग की ओर विहार हुआ मिगसर शुक्ला तृतीया को दुर्ग में विशाल जन समूह की साक्षी में वाणीभूषण श्री रतन मुनि जी म.सा. के मुखारविंद से दीक्षाव्रत अंगीकार कर वैराग्यवती लता बहन महासती श्री चेतनप्रभा जी म.सा. बन गयी और उन्हें परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. की शिष्या घोषित किया गया।

वि. सं. २०३९ का वर्षावास आपने दुर्ग में सम्पन्न किया। इस अवधि में दुर्ग में धर्म ध्यान का ठाट लग गया। प्रवचनों की धूम मच गई। यहां आपके प्रवचनों में जैन और जैनोतर सभी धर्मों के लोग आते और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त करते। आपके प्रवचनों का अच्छा प्रभाव रहा। वर्षावास की समाप्ति पर आपने दुर्ग से विहार कर दिया। दुर्ग वर्षावास के समय बालाघाट का श्रीसंघ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ था और अपने यहां आगामी वर्षावास की स्वीकृति प्रदान करने के लिए निवेदन किया था। उस समय आपने अपनी मर्यादित भाषा में उत्तर दे दिया था। वर्षावास समाप्ति के पश्चात् जब आप विभिन्न ग्राम-नगरों में विचरण कर रहे थे तब भी आपकी सेवा में बालाघाट श्रीसंघ ने उपस्थित होकर अपनी भावना बता दी थी। बालाघाट की ओर से काफी वर्षों से वर्षावास की विनती हो रही थी। यहां यह स्मरणीय है कि बालाघाट में परमविदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. का ससुराल था। जब श्रीसंघ, बालाघाट का आग्रह अधिक होने लगा तो ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आप बालाघाट पधारे। आपके इस विहार में मैं आपके साथ ही थी। बालाघाट में वर्षावास करने की भी स्वीकृति हो चुकी थी। जिस समय आपका

पदार्पण बालाघाट में हुआ, उस समय वर्षावास भी आरम्भ होने वाला था, इस प्रकार वर्षावास हेतु बालाघाट की जनता ने समारोह पूर्वक हर्षोल्लास भरे वातावरण में आपका बालाघाट में प्रवेश करवाया।

बालाघाट वर्षावास- वर्षावास हेतु बालाघाट में प्रवेश होने के साथ ही धार्मिक क्रियाएं प्रारम्भ हो गईं। बालाघाट की जनता धार्मिक संस्कारों से संस्कारित होने से बालक/बालिकाएं भी धार्मिक क्रियाओं में सम्मिलित हुए। स्वयं अध्ययन करना जितना सहज है, उतना अध्यापन कार्य नहीं। अध्ययन में जहाँ निज के लिए निज को खपाना पड़ता है, वहाँ अध्यापन में पर के लिए निज को खपाना पड़ता है। धर्यपूर्वक लगन के साथ समझाने में रुचि रखना, अपनी समझ सूझ-बूझ को नियंत्रित रखकर विद्यार्थी पर प्रेमपूर्ण ढंग से अनुशासन बनाए रखना कोई सामान्य बात नहीं है। पू. गुरुवर्याजी में वक्तव्य कला के साथ साथ अध्यापन कला भी विकसित थी। पाण्डित्य के बल पर नहीं, प्रत्युत दूसरों में घुल मिल कर जीवन निर्माण करने की कला से एवं अन्यो को अपनाने के प्रमुख गुण के कारण ही आप जन-जन की श्रद्धा की पात्र बन सकी। वर्षावास बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुआ। वर्षावास के पश्चात् आपकी भावना नासिक की ओर विहार करने की थी। बालाघाट में आपका यह वर्षावास वि.सं. २०४० में सम्पन्न हुआ था।

नासिक की ओर विहार का कारण यह था कि पू. गुरुदेव युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.सा. के दर्शन करने की प्रबल भावना थी। वर्षावास पाली (सं. २०३४) के पश्चात् उनके दर्शन नहीं हो पाये थे। दूसरे नासिक से भी पू. युवाचार्य श्री का ऐसा संदेश भी मिला था। बालाघाट से वर्षावास समाप्त होते ही विहार कर दिया और नगर के बाहर श्री ललवानी जी के मकान में पू. गुरुवर्या ठहरी हुई थी। पू. गुरुवर्या स्वाध्याय में तल्लीन थी।

असह्य आघात- विहार की तैयारी भी हो रही थी। उसी समय श्री मोहनलालजी ललवानी तथा चार पांच अन्य भाई उदास उदास से आए। उन सबकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। वे पू. गुरुवर्या के समीप दर्शनार्थ आए। गुरुवर्याश्री ने कहा- “बंधुओं, आप सभी की आँखों आँसू क्यों हैं? क्या हुआ? कुछ समय पूर्व तो आप सब प्रसन्न चित्त थे। अब एकाएक ऐसा क्या हो गया जिससे आपकी यह हालत हो रही है?”

“महाराज सा. ! हमारा सब कुछ लुट गया। हमारे मन में जो प्रसन्नता थी, वह सब मिट्टी में मिल गई। हम जिनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वे महान गुरुदेव अब इस संसार में नहीं रहे। अभी अभी आकाशवाणी से समाचार प्रसारित हुआ जिसे हमने सुना है। उसके अनुसार नासिक सिटी में गुरु भगवंत हमेशा के लिए हमसे दूर हो गये हैं। गुरुदेव युवाचार्य श्री अब इस दुनिया में नहीं रहे।” श्री ललवानी जी ने जैसे तैसे पू. गुरुवर्याश्री को बताया। इस अनापेक्षित समाचार को सुनकर दाद गुरुवर्या, गुरुवर्या एवं अन्य महासतियां जी सभी स्तब्ध रह गये। उनसे कुछ बोलते नहीं बना। वाणी मूक हो गई। सांस रूकती सी प्रतीत हुई। कुछ क्षणोपरांत गुरुवर्याश्री ने कहा- “नहीं... नहीं ऐसा नहीं हो सकता। यह समाचार असत्य प्रतीत होता है। आप लोग जाइये और वास्तविकता का पता लगाकर सूचना दें।”

“हमने पूरी जानकारी प्राप्त कर ली है। उसके पश्चात् ही आपको सूचना देने आए हैं” भाइयों में से एक ने बताया। इस हृदय विदारक समाचार से गुरुवर्या को जबरदस्त आघात लगा। गुरुदेव के दर्शन की भावना थी, किन्तु अब वह पूरी नहीं हो सकती। यह कैसी विडम्बना है कि अभी २ जुलाई १९८३ तदानुसार वि. सं. २०४० आपाड़ कृष्ण अष्टमी को धूलिया (महाराष्ट्र) में पू. उपप्रवर्तक स्वामी श्री ब्रजलाल जी म.सा. के वियोग को भुला भी नहीं पाये थे कि पुनः यह वज्राघात हो गया। गुरुदेव के वियोग को

आपश्री अपने जीवन भर तक भूल नहीं पाये। गुरु की महिमा निराली है। गुरु ही सच्चे पथ प्रदर्शक होते हैं। उनका उपकार असीम है। पू. गुरुवर्याश्री के सान्निध्य में बालाघाट में श्रद्धाजंलि सभा का आयोजन किया गया। गुरुवर्याश्री ने एवं अन्य अनेक श्रद्धालू गुरु भक्तों ने हार्दिक श्रद्धाजंलि अर्पित की। चार-चार लोगस्स का ध्यान करने के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

आंध्रप्रदेश की ओर- गुरुदेव के देवलोक होने के कारण गुरुवर्या जी ने अपने विहार की दिशा बदल दी। बालाघाट से विहार कर आप सौंदड़ पधारी। वहां अग्रवाल भाइयों के पन्द्रह बीस घर हैं। वहां के लोगों के मन में पू. गुरुवर्याश्री के प्रति असीम आस्था थी। आपके वहां पहुंचने पर सबके हृदय खिल उठे। उनकी भक्ति भावना गजब थी। उन्होंने आग्रह पूर्वक गुरुवर्याश्री को रोक लिया। अचानक बोलाराम से श्री संघ आपकी सेवा में उपस्थित हो गया। और अपनी विनम्र भावना आपके चरणों में रखी। गुरुवर्याश्री ने फरमाया- “आपकी नगरी बहुत दूर है। गुरुवर्या श्री की वृद्धावस्था है। आपकी भावना सराहनीय है। जैसा हो पायेगा, समय पर होगा।” आपके इस उत्तर को सुनकर बोलाराम श्री संघ हठ करने लगा कि वि. सं. २०४१ का वर्षावास आपको हमारे वहां करना ही होगा। जब तक आप आश्वासन नहीं देगी हम यहां से जाने वाले नहीं हैं।

श्री संघ की प्रबल भावना को देखते हुए गुरुवर्या श्री ने पुनः कहा- “आपकी भावना का ध्यान रखेंगे।” साधु भाषा में इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता था। इसके पश्चात् गुरुवर्याश्री का विहार आगे की ओर हुआ। हिंगनघाट, चन्द्रपुर, आसीफाबाद, कागजनगर आदि नगरों में बोलाराम श्रीसंघ के सदस्य बराबर आपकी सेवा में आते रहे और मार्ग में भी साथ रहकर सेवा का लाभ भी लेते रहे। अंततः बोलाराम श्रीसंघ की दृढ़ भावना और सेवाभावना को देखकर महावीर जयंती के अवसर पर आगामी वर्षावास बोलाराम करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। इस स्वीकृति से श्रीसंघ बोलाराम में हर्ष की लहर फैल गई। जन जन का मन मयूर प्रसन्नता से झूम उठा।

बोलाराम वर्षावास- विभिन्न ग्राम नगरों में धर्मप्रचार करती हुई पू. गुरुवर्या ने वर्षावास के लिये बोलाराम पदार्पण किया। आपश्री की अगवानी करने के लिये हजारों की संख्या में श्रद्धालू भक्त आगे आए। सबका मन मयूर नाच रहा था। बड़े ही धूमधाम के साथ हर्षोल्लास मय वातावरण में बोलाराम में वर्षावास हेतु प्रवेश हुआ। गुरुवर्या के बोलाराम प्रवेशोत्सव के समय मैं भी साथ थी। यहाँ मैंने सबसे बड़ी विशेषता यह देखी की बालिका मंडल के साथ ही बच्चों में भी बड़ा उत्साह था। ऐसा प्रतीत हो रहा था। मानों उनके लिये आज दीपावली जैसा त्यौहार हो। घर घर में प्रसन्नता छा गई।

प्रवचन प्रारम्भ हुए। आपश्री के प्रवचन पीयूष का पान करने के लिए बोलाराम में जैन जैनैत्तर सभी धर्म के व्यक्ति आने लगे। प्रवचन का सभी नियमित रूप से लाभ ले रहे थे। मैं इस समय वैराग्यवस्था में थी। बोलाराम श्रीसंघ की दृष्टि मेरी ओर पड़ी। एक समय श्रीसंघ के सदस्यों ने गुरुवर्या श्री के समक्ष निवेदन किया- “कु. चंचल की दीक्षा का लाभ हमें मिलना चाहिये।”

इसी समय अनुकूल अवसर देखकर मैंने भी निवेदन किया- “अब आप मुझे अपने श्री चरणों में स्थान देने की कृपा करें।”

“तुम्हारी दीक्षा के लिये अभी अनुकूल समय नहीं है। फिर तुम्हारे परिवार की ओर से अनुमति भी तो नहीं मिली है।” गुरुवर्या ने कहा और मौन हो गयी। यह सत्य है कि बिना परिवार की अनुमति के

कोई भी जैन साधु-साध्वी किसी को दीक्षाव्रत अंगीकार करने की अनुमति नहीं देते। बिना अनुमति के जैनों के सभी सम्प्रदायों में दीक्षा देना, अपराध माना जाता है। श्रमण जीवन में आने वाली बाधाओं व परिषहों का ज्ञान आवश्यक है। मुनि जीवन की पाठशाला में जब दीक्षार्थी उत्तीर्ण होता है तभी उसे परम पावन प्रव्रज्या देने का विधान है। अपने परिवार की अनुमति प्राप्त करने के लिए मैंने प्रयास किया और शीघ्र ही मुझे सफलता भी मिल गई। मेरे परिवार की ओर से अनुमति मिल गई।

बोलाराम वालों की भावना दीक्षोत्सव का आयोजन बोलाराम में करने की थी। इस समय गुरुवर्य्या का सर्वतोमुखी प्रभाव बोलाराम में फैल चुका था। इधर सिकन्दराबाद श्रीसंघ ने गुरुवर्य्या की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया- “दीक्षोत्सव आयोजन का लाभ हमें मिलना चाहिए। हमारी भी इस आयोजन को करने की प्रबल भावना है।”

गुरुवर्य्याश्री ने दोनों श्रीसंघों की भावना को ध्यान में रखते हुए समाधानात्मक उत्तर दिया- “छोटी दीक्षा का लाभ सिकन्दराबाद को तथा बड़ी दीक्षा का लाभ बोलाराम वालों को दिया जाता है।” गुरुवर्य्याश्री की इस घोषणा से दोनों श्रीसंघों में हर्ष की लहर फैल गई। आसोज शुक्ला पंचमी वि.सं. २०४१ को सिकन्दराबाद में वाणी भूषण श्री रतनमुनि जी के मुखारविंद से मेरी दीक्षा विधि समारोह पूर्वक सम्पन्न हुई। मुझे नया नाम मिला साध्वी चन्द्रप्रभा और मैं परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म.सा. की शिष्या के रूप में घोषित की गई। साध्वी बनकर मेरा मन मयूर नाच उठा। मेरी वर्षों की साध आज पूरी हुई। बड़ी दीक्षा निर्धारित समय पर बोलाराम में सम्पन्न हुई।

बोलाराम का यशस्वी वर्षावास सानंद सम्पन्न हुआ। और वर्षावास के पश्चात् बोलाराम से विहार हुआ। बोलाराम से पू. गुरुवर्य्याश्री हैदराबाद पधारे और यहीं के उपनगरों में विचरण करने लगे। कारण यह था कि छोटे साध्वीजी की परीक्षा थी। जब परीक्षा सम्पन्न हो गयी तो यहां से विहार कर आपश्री शमशेर गंज पधारी।

बेंगलौर श्रीसंघ वर्षों से आपश्री की सेवा में वर्षावास हेतु विनती करता आ रहा था। इस समय भी जब श्रीसंघ बेंगलौर आपश्री की सेवा में उपस्थित हुआ तो अपनी पुरानी विनती आग्रह के साथ आपश्री के समक्ष रखी। इसी समय सिकन्दराबाद श्रीसंघ ने भी अपनी ओर से वर्षावास हेतु भाव भरी विनती रखी। देशकाल परिस्थिति के अनुसार आपश्री में सिकन्दराबाद श्रीसंघ को वर्षावास की स्वीकृति प्रदान कर दी। इस घोषणा से सिकन्दराबाद श्रीसंघ में आनन्द की लहर फैल गई।

सिकन्दराबाद वर्षावास- धूमधाम के साथ वर्षावास प्रारम्भ हुआ। जैसा श्रीसंघ में उल्लास था। वैसा ही त्याग, तपः पूरित आपका प्रवचन होता था। प्रवचन सुनकर श्रोता भाव विक्ल हो जाते थे। प्रवचन में प्रतिदिन जन समूह समुद्र की भांति उमड़ पड़ता। संयमी वाणी का जो प्रभाव होता है। वैसा प्रभाव आचरणहीन वागाडम्बर का नहीं होता। आपके उपदेश ने कइयों के जीवन की दिशा ही बदल दी।

जैनतर समाज के साथ-साथ जैन समाज की सभी शाखाओं वाले जैसे तेरापंथी, स्थानकवासी, श्वेताम्बर जैन मूर्ति पूजक, दिगम्बर आदि सभी से संबंधित भाई बहन भी बड़ी संख्या में प्रवचन में सम्मिलित होकर जिनवाणी श्रवण का लाभ प्राप्त करते। आपके प्रवचन सुनकर सभी के मन में यही भाव उत्पन्न होता कि काश यहाँ स्थित उनके सम्प्रदाय के मुनि भगवंतों, आर्याओं आदि के प्रवचन एक साथ हों तो अद्भुत आनंद आए। भले ही मानव अपने अहंभाववश अपने ही घरों में भाई भाई के बीच विभेद की

दिवारें खड़ी कर ले, पर इस अविचारपूर्ण कार्य में उसका अन्तर संतोष का अनुभव नहीं करता। जो आनन्द प्रेम में है, जो प्रसन्नता हवादार विशाल भवनों में निवास करने वालों को मिलती है, वह आनन्द संकीर्ण, कोलाहल पूर्ण कोठरियों में रहने वालों के भाग्य में कहाँ है।

साम्प्रदायिकता की खोखली दिवारें जैन समाज के हृदय को कचोट रही हैं। समाज के सत्व को दीमक की तरह चाट रही हैं। जैन समाज आज एक होने के लिए बीच में खड़ी इन साम्प्रदायिक दिवारों को गिराने के लिए तड़प रहा है। परन्तु मार्गदर्शकों की अहं भावना इस तड़प को मिटने दे तब न? कभी कभी इन दिवारों को तोड़ने का भी प्रयास किया जाता है। तो वहां बड़े छोटे का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। बड़े छोटों की बराबरी में कैसे बैठेंगे? ऐसी सामान्य बात बीच में व्यवधान बन जाती है। अतः जब कभी भी समाज के समक्ष सार्वजनिक सम्मेलन, सर्वधर्म सम्मेलन जैसे कार्यक्रमों का आयोजन करने का अवसर उपलब्ध होता है तो जन-जन के हृदय में हर्ष एवं आनन्द की लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। जनता ऐसे समय में भाव विभोर हो जाती है।

सर्वधर्म सम्मेलन- सिकन्दराबाद में एक विशाल प्रागण में सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन में सभी धर्मों के धर्मगुरुओं के प्रवचन हुए। इस अवसर पर पू. गुरुवर्या का भी सारगर्भित प्रवचन हुआ। एकता और समन्वय की भावना से ओतप्रोत आपके प्रवचन की सभी उपस्थित धर्मगुरुओं और प्रबुद्ध श्रोताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

पू. गुरुवर्या के हृदय में प्रेम का सागर हिलोरे ले रहा था। अतः आप जहां भी पधारती, जनता पर आपकी अमिट छाप अंकित हो जाती थी। कोई राम को मानने वाला हो, या रहीम को। भले ही महावीर का भक्त हो या बुद्ध का। ईसा का उपासक हो अथवा कृष्ण का पुजारी। आपके हृदय में सभी के प्रति समान भाव थे। किसी के प्रति लेशमात्र भी द्वेष नहीं था। आप सभी धर्मों का परस्पर समन्वय अनिवार्य मानती थी। समन्वय ही आपका जीवन का लक्ष्य था। एकान्त पक्ष, विरोध, आलोचना, दुराग्रह, कदाग्रह आदि भावना आपमें बिल्कुल नहीं थी। आप कभी भी किसी का विरोध नहीं करते थे। सर्वधर्म सम्मेलन में जो प्रशंसा आपको मिली उसका कारण आपमें इन्हीं गुणों का होना है।

कर्नाटक की ओर :- वर्षावास समाप्त हुआ तो सिकन्दराबाद श्रीसंघ ने बिदाई समारोह का आयोजन किया। इस अवसर पर जितने भी वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये उनके हृदय भर आये। यहां तक कि अनेक श्रोताओं के हृदय भी बिदाई समारोह में भर आये। इस अवसर पू. गुरुवर्याश्री ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फरमाया कि सभी को प्रेम की डोर में बांधकर एकता से रहते हुए धर्म की उन्नति करना है। आपस के भेदभाव को त्याग कर सभी को समान भाव से सेवा करना है। आपके इस सारगर्भित प्रवचन का जनता पर अनुकूल प्रभाव हुआ।

सिकन्दराबाद से आपका विहार कर्नाटक की ओर हुआ। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, धर्म का दीप प्रज्वलित करती हुए आप रायचूर पधारी। यहां पर आपकी सेवा में होली चातुर्मास के लिये आग्रह भरी विनती हुई। यही श्रीसंघ बेगलौर, श्रीसंघ मद्रास आदि अनेक स्थानों के श्रीसंघ भी अपने अपने यहां वर्षावास करने की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये उपस्थित हुए। इस समय पू. दादगुरुवर्या महासतीश्री कानकुवंरजी म.सा. अस्वस्थ थी साथ ही एक छोटी महासतीजी का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। स्वास्थ्य तथा अन्य बातों का ध्यान रखते हुए पू. गुरुवर्याश्री ने श्रीसंघ सिधनूर को वर्षावास की स्वीकृति प्रदान कर दी। श्रीसंघ, सिधनूर में इस स्वीकृति से प्रसन्नता की लहर फैल गई।

सिंधनूर वर्षावास :- विभिन्न ग्राम नगरों में धर्म प्रचार करते हुए यथासमय वर्षावास हेतु सिंधनूर में प्रवेश किया। आपके पदार्पण से सिंधनूर का जनमानस हर्षोउल्लास, से भर गया। बहनें मंगल कलश लेकर स्वागतार्थ, अगवानी हेतु आई। सभी भाई बहन जय जयकार के निनादों से सिंधनूर के गगन मंडल को गुंजाते हुए अगवानी हेतु उपस्थित हुए और बड़े ही ठाट बाट के साथ वर्षावास हेतु सिंधनूर में आपका प्रवेश करवाया। इस अवसर पर आसपास तथा दूरस्थ स्थानों से भी काफी श्रीसंघ उपस्थित हुए थे।

प्रवचन के माध्यम से ज्ञान की गंगा प्रवाहित होने लगी। बालक, वृद्ध, युवा सभी वय के नर नारी पू.गुरुवर्या के प्रवचन श्रवण कर प्रसन्नता का अनुभव करते। धार्मिक शिक्षण, संगीत प्रतियोगिता, नाटक आदि विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का सिलसिला सम्पूर्ण वर्षावास काल में चलता रहा। वर्षावास की अवधि में विभिन्न ग्राम नगरों के श्रीसंघों का आवागमन भी नियमित रूप से होता रहा। मद्रास से तो कोई न कोई नियमित रूप से सम्पूर्ण वर्षावास काल में आता ही रहा। श्रीसंघ मद्रास की ओर से इस अवधि में आगामी वर्षावास हेतु आग्रह भरी विनती बराबर होती रही। वर्षावास का एक भी दिन ऐसा नहीं बीता कि जिस दिन बाहर से कहीं का श्रीसंघ न आया हो। स्थानक में प्रतिदिन भीड़ लगी रहती थी।

मद्रास श्रीसंघ की वर्षावास करवाने की भावना के प्रबलता को देखते हुए पू.गुरुवर्या ने आगामी वर्षावास अर्थात् वि.सं. २०४४ के वर्षावास हेतु स्वीकृति प्रदान कर दी। वर्षावास की स्वीकृति मिलते ही श्रीसंघ मद्रास ने जय जयकारों से गगन मंडल गुंजा दिया। उनकी प्रसन्नता असीम हो गई। वर्षों की उनकी भावना की पूर्ति हो गई।

अनेक प्रकार के धार्मिक आयोजनों के साथ वि.सं. २०४३ का सिंधनूर का वर्षावास आनंदपूर्वक समाप्त हुआ। श्रीसंघ सिंधनूर ने अश्रुपूरित नेत्रों से आपको भावभीनी विदाई दी। सिंधनूर से विहार कर आपश्री गंगावती पधारी। गंगावती में पू.स्व. युवाचार्यश्री की पुण्य तिथि तप-त्याग से साथ मनाई गई। इस अवसर पर वर्षावास जैसा ठाट लग गया। पच्चीस घरों की बस्ती में ९० आयम्बिल, २४ उपवास, १३ उपवास, ९-८ आदि के साथ लगभग २५ तेले की तपश्चर्या स्मृति दिवस के उपलक्ष्य में हुई।

पू.गुरुवर्याश्री ने एवं मूर्ति पूजक साध्वीजी ने पू.युवाचार्यश्री के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला। पुण्यतिथि धूमधाम से मनाकर आपश्री ने यहां से विहार कर दिया। बल्लारी, गुन्तकल, कडप्पा, कनका, तिरुपति, तिरुवल्लूर आदि विभिन्न ग्राम नगरों में धर्म का दीप प्रज्वलित करते हुए आपका पदार्पण मद्रास हुआ। आवड़ी में महावीर जयंती मनाई गई। बाहर से हजारों की संख्या में श्रद्धालु भक्तों की उपस्थिति रही। श्रीसंघ साहुकार पेठ मद्रास, की भावभरी विनती को स्वीकार कर वर्षावास साहुकार पेठ में करने की स्वीकृति प्रदान की। इससे श्रीसंघ साहुकार पेठ में हर्ष छा गया।

साहुकारपेठ, मद्रास वर्षावास :- वि.सं. २०४४ के वर्षावास हेतु यथासमय हर्षोउल्लास-मय वातावरण में साहुकार पेठ श्रीसंघ ने प्रवेशोत्सव करवाया। इस अवसर पर हजारों की संख्या में पूजनीया महासती जी की आगवानी के लिये श्रद्धालुभक्त उपस्थित हुए। भगवान महावीर स्वामी की जय, आचार्य सम्राट श्री आनंद ऋषिजी म. की जय, युवाचार्यश्री की जय, महासतियां जी की जय के उद्घोषों से आकाश मंडल गूँज उठा। इस प्रकार पू.गुरुवर्याश्री ने समारोहपूर्वक महिला स्थानक साहुकारपेठ मद्रास में प्रवेश किया।

यहां आपश्री ने सुखविपाक सूत्र एवं श्रेणिक चरित्र पर अपने प्रवचन प्रारंभ किये। प्रभु महावीर का पवित्र संदेश महावीर शासन की आप जैसी सुयोग्य साध्वीरत्न पू गुरुवर्या द्वारा विस्तार से सरल, सुबोध भाषा में सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो रहे थे। आपकी प्रवचन शैली सोने में सुहागे का काम कर रही थी। स्थानक भवन के प्रवचन सभागार में प्रतिदिन आपके प्रवचन हो रहे थे। जब पर्युषण पर्व आरंभ हुआ तो श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी और प्रवचन के लिये स्थानक भवन छोटा पड़ने लगा। इसलिये प्रवचन स्थल परिवर्तित करना पड़ा और अब प्रवचन स्थानक भवन में स्थान पर जैन भवन में हजारों श्रोताओं की उपस्थिति में होने लगे। आठ दिनों तक अंतगङ्गसूत्र का वाचन किया। अलग अलग विषयों पर बहुत ही सुंदर ढंग से जन जन को आपने प्रभु महावीर का संदेश भी सुनाया। संवत्सरी के पश्चात् जैन भवन में ही सामूहिक क्षमापना का कार्यक्रम रखा गया। इस कार्यक्रम में श्वेताम्बर मूर्ति पूजक, तेरा पंथी, गुजराती-स्थानक वासी सम्प्रदाय की महासतियाजी के साथ ही आपश्री सभी एक ही पाटे पर बराबरी में बैठे। आज सभी के मुंह पर प्रेम और एकता की ही बातें थी। पू गुरुवर्या श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. ने इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए फरमाया -

“उपस्थित धर्म प्रेमी सज्जनों! आज परस्पर की फूट से हम बरबाद हो गये हैं, गौरवहीन हो गए हैं, प्रतिभा शून्य हो गए हैं, आज इस युग में हमारा कोई मूल्य नहीं रहा, क्योंकि हम परस्पर अपने घर में ही झगड़कर अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हैं। हमारा स्नेह भाव समाप्त हो गया है। हम जोर से आवाज लगाकर विश्व को संदेश सुनाने की चेष्टा करते हैं किंतु जोश के साथ बोल नहीं पाते। कारण अपराधबोध से हमारी आवाज कुंठित है। सभी धर्मों की आवाज सरकार के कानों तक टकराती है हमारी आवाज वहां तक क्यों नहीं पहुँचती ?

आपने उत्तर से पुकारा मैंने दक्षिण से आवाज दी, किसी ने पूर्व से नारा लगाया और कोई पश्चिम से बोला। न आवाज गूँजी न जोश आया, न अपनी बात में शक्ति आ पाई कि उसे मानने के लिये कोई मजबूर हो जाता। सरकार ने समझा यों ही व्यर्थ की बकवास है। यह किसी एक समूह की संगठित आवाज नहीं है।

बंधुओं, बिखरे हुए मोती किसी के गले की शोभा नहीं बन सकते। छितरे हुए तिनकों से किसी का घर साफ नहीं होता। इधर उधर पड़ी हुई ईंटों से किसी के मकान का निर्माण नहीं होता। धागों के अलग अलग तारों से लज्जा का आवरण नहीं बनता निवारण नहीं होता। हम भी जब तक बिखरे हुए हैं, अपनी ढपली अपना अपना राग अलापने में लगे हुए हैं, तब तक हमारा समाज उन्नति के शिखर पर नहीं पहुंच सकता। हम किसी कार्य के नहीं। भले ही हम अपनी कुटिया में अपने भक्तों के बीच गुड़ शक्कर बांटकर वाहवाही लूट लें। पर यह धन्यवाद का कार्य नहीं हो सकता। यह भगवान महावीर के शासन के प्रति भी ईमानदारी नहीं है।

विचार कीजिये कि हमने भगवान महावीर के शासन की शोभा कितनी बढ़ाई। विश सज्जनों अधिक हो गया, भगवान महावीर के केसरिया झंडे के नीचे आकर अपने हृदयों के बीच खड़ी दिवारों को धराशयी कर दीजिये। अब संकुचित कोठरियों का जमाना गया। दिवारों को गिराकर विशाल हाल बनाने की की आवश्यकता है। बिना हाल के भवन की शोभा नहीं है। सजावट भी नहीं हो सकती है। क्या कारण है कि हम भेद डालने वाली दिवारें गिराकर विशाल रूप में एक नहीं हो पाते। जरा सोचिये विवाह

आदि में एक होने वाले कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले, रोटी, बेटी व्यवहार निःसंकोच कर लेते हैं। तो फिर धर्म के मामले में पीठ क्यों फेर लेते हैं। साथ साथ खाना, साथ साथ रहना, घूमना फिरना, सोना बैठना आदि सभी व्यवहार साथ-साथ होते हैं। और जहां धर्म की बात आई कि तेरा मेरा कहकर अलग अलग हो जाते हैं।

बंधुओ ! आज से प्रतिज्ञा कीजिये एक दूसरे की निन्दा न करने की, एक दूसरे की जड़े न काटने की। वर्षों से नहीं सदियों से हम एक दूसरे को मिटाने का प्रयास करते आ रहे हैं। पर क्या कोई किसी को मिटा सका ? नहीं, सब सीना तानकर खड़े हैं। हमारी शक्ति, हमारा समय हमारा विवेक बेकार हो गया। ऐसे प्रयासों से क्या लाभ। याद रखो हम महावीर की संतान हैं, हम सौतेले नहीं, सगे भाई बहन हैं। इसलिये भेदभाव को सदा के लिये मिटा देना है।”

पू.गुरुवर्यश्री की प्रवचन धारा बहती रही और श्रोतागण मंत्रमुग्ध होकर उसका पान करते रहे। इस सभा में अनेक वक्ताओं ने भी अपने विचार व्यक्त किये थे। सभी महासतियों के साथ जैन भवन से बाहर पधारे जन जन की जिह्वा पर एक ही बात थी यह तो साक्षात् सरस्वती का रूप है। मानों एक शब्द अनुभव तुला पर तुलकर विस्तृत रूप लेता जा रहा था।

दीक्षोत्सव :- इस वर्ष पूज्य प्रवर्तक श्री रूपचंदजी म.सा. ‘रजत’ के मुखाबिन्द के कांग्रेस ग्राउंड पर अपार जन मेदिनी की उपस्थिति में चौदह वर्षीया बालिका कुमारी सुनीता पींचा निवासी कटंगी मध्य प्रदेश को आर्हती दीक्षा प्रदान की गई। इस दीक्षा महोत्सव के अवसर पर पूज्य मरुधरकेशरी जी म.सा. के शिष्य तथा आज्ञानुवर्ती मुनिभगवंतों के अतिरिक्त स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. के शिष्य श्री महेन्द्र मुनिजी म.सा. ‘दिनकर’ अध्यात्म योगिनी, महासती श्री कानकुंवरजी म.सा. परम विदुषी कुशल प्रवचनकर्त्री महासतीश्री चम्पाकुंवर जी म.सा. आदि ठाणा, लिम्बड़ी सम्प्रदाय की साध्वीजीश्री रश्मिनाकुमारी जी म.सा. आदि ठाणा, साध्वीजी श्री शांताकुंवरजी म.सा. आदि ठाणा एवं साध्वीजी श्री निर्मलकुंवरजी म.सा. आदि ठाणा ३ की विशेष रूप से उपस्थिति रही। दीक्षा महोत्सव में पधारकर सभी मुनि भगवंतों तथा महासतियों जी ने दीक्षोत्सव की शोभा में चार चांद लगाये।

इस अवसर पर सभी वक्ताओं ने दीक्षार्थी बहन को संयम की गरिमा बढ़ाने के लिये अपने आशीर्वाद तथा शुभकामनाएं दी। इस समय दीक्षार्थी बहन की प्रसन्नता असीम थी। क्योंकि वह अनमोल जीवन जीने के लिये संयम के पथ पर अग्रसर हो रही थी। वह आज जिन शासन के प्रति समर्पित हो गयी। यह दीक्षोत्सव दिनांक १४-१०-८८ को संपन्न हुआ। नवदीक्षिता साध्वीजी का नाम महासती श्री सुमनसुधाजी म.सा. घोषित कर उन्हें परमविदुषी महासती श्री चंपाकुंवरजी म.सा. की शिष्या घोषित किया।

पूज्य दाद गुरुवर्यश्री की अस्वस्थता के कारण मद्रास में ही आपश्री ने चार वर्षावास व्यतीत किये। वि.सं. २०४७ का वर्षावास समाप्त हुआ कि मद्रास के आस पास के क्षेत्रों में विनती आने लगी। पू. गुरुवर्यश्री के समक्ष महासतीश्री कंचनकुंवरजी, महासती श्रीचेतनाजी एवं मैंने निवेदन किया कि एक स्थान पर रहते काफी समय व्यतीत हो गया है। श्रमण संधीय सलाहकार पू. तपस्वीरत्न श्री सुमति प्रकाश जी म.सा. पू.उपाध्यायश्री विशाल मुनिजी म.सा. आदि मुनि मंडल का विहार कन्याकुमारी की ओर हो रहा है। आपश्री की आज्ञा हो तो हम भी कन्याकुमारी तक विचरण कर आवें। हमारी भी भावना उन क्षेत्रों में विचरण करने की हो रही है। पू.गुरुवर्यश्री ने फरमाया “विचार करेंगे। जैसा अवसर होगा” कुछ दिनों के पश्चात् आपश्री ने फरमाया “बड़े म.सा.(महासती श्री कानकुंवरजी म.) अस्वस्थ रहते हैं। तुम जाओ। किन्तु ध्यान

रखना। मार्ग कठिन ही नहीं, बड़ा कठिन है। संभलकर संभलकर चलना।” पू. गुरुवर्याश्री की आज्ञा मिलते ही हमने ठाणा चार से कन्याकुमारी के लिये विहार कर दिया। अनेक अनजान ग्राम नगरों में विचरण करते हुए हमें आनंद का अनुभव हो रहा था। इसका एक कारण यह भी था कि चार वर्षावास एक ही स्थान साहुकारपेठ मद्रास में होने से लगातार चार वर्षों से एक ही स्थान पर रहना हो रहा था। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए हम कन्याकुमारी पहुंची। उपाध्यायश्री जी के सान्निध्य में कन्याकुमारी होली चौमासा बड़े आनंद मंगल एवं हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। पू.श्री सुमतिप्रकाशजी म.सा. एवं उपाध्याय श्री विशाल मुनिजी म.सा. के दर्शनार्थ हजारों की संख्या में भक्तों का आगमन हुआ। कन्याकुमारी की गली-गली में मतावलम्बियों का आवागमन हो रहा था। लग रहा था जैसे यह जैन मतावलम्बियों का ही स्थान हो। उपाध्यायश्री जी के प्रवचन श्रवण कर जनता मुग्ध हो रही थी। टी. नगर वालों की ओर से सभी के लिये भोजन की सुंदर व्यवस्था थी। साहुकार पेठ, मद्राह से भी काफी संख्या में भाइयों और बहनों का आगमन हुआ। पू. गुरुवर्याश्री का पत्र आया कि कन्याकुमारी से तत्काल मद्रास के लिये विहार कर दो यहां से सब व्यवस्था हो जायेगी पू.गुरुवर्याश्री का आदेश मिलने पर पू. श्री सुमतिप्रकाश जी म.सा. एवं उपाध्याय श्री विशाल मुनिजी म.सा. से मंगल वचन सुनकर नागरकोयल की ओर से मद्रास के लिये विहार कर दिया। अब हमारा लक्ष्य शीघ्रताशीघ्र पू. गुरुवर्याश्री की सेवा में पहुंचना था। इसलिये प्रतिदिन २०-२५ कि.मी. का लगातार विहार होने लगा। हमारी भी पू.गुरुवर्याश्री के दर्शन करने की तीव्र भावना थी। इसलिये जितनी जल्दी पहुंच सके उतना ही अच्छा है। इसलिये निरंतर तीव्र गति से कदम आगे की ओर बढ़ते जा रहे थे। मंजिल काफी दूर है किन्तु उसे प्राप्त करने के लिये कदम भी तीव्र गति से आगे की ओर बढ़ रहे थे। मानों पैरों में पंख लग गये हो। लम्बे-लम्बे विहार होने पर भी कभी थकावट का अनुभव नहीं हुआ। पू.गुरुवर्याश्री के दर्शनों के लिये हृदय तड़प रहा था। बालक कुछ समय के लिये अपनी माता से दूर रह सकता है, वह खेल कूद में सब कुछ भूल जाता है किन्तु जैसे ही खेल समाप्त होता है वह अपनी माता से मिलने के लिये तड़प उठता है और वह दौड़ कर अपनी माता की गोद में जाकर समा जाता है इस समय हमारी भी ठीक ऐसी ही दशा हो रही थी। हम भी अपनी गुरुवर्याश्री के सान्निध्य में जल्दी जल्दी पहुंचना चाह रही थी।

हम लगभग तीन सौ किलोमीटर का विहार कर चुकी थी। प्रातः विहार कर वन में स्थित एक गेस्ट हाउस में मुकाम किया। आसपास कहीं किसी के मकान का पता नहीं था। चारों ओर जंगल ही जंगल था। चैत्र शुक्ला प्रतिपदा का दिन था। न जाने मेरा मन कुछ अनहोनी घटना से कांप उठा। उस दिन मैंने गौचरी भी नहीं की। संध्या को चाय पीकर पच्चक्खान कर ली थी। जब सभी साध्वीजी आहार कर करने के लिये बैठी तो मुझे भी कहा गया। मैंने कह दिया कि भूख नहीं है। इस पर कंचनकुवरजी कहने लगी कि कल २५ किलोमीटर का विहार है। आहार करना जरूरी है। अभी इच्छा नहीं है तो कुछ देर से आहार कर लेना। हम छोड़ देंगे। मैंने कहा कि आहार बचाने की आवश्यकता नहीं है। मेरी इच्छा आहार करने की बिल्कुल नहीं है। गुरुकृपा से विहार आनंद के साथ होगा। प्रतिक्रमण के पश्चात् सभी सो गये। मैं दस बजे तक बाहर बैठी रही। आँखों में नींद का नाम नहीं थी। मुझे थकावट का भी अहसास नहीं हो रहा था। किन्तु पेट में जलन होने लगी। मन बेचैन होने लगा और इसी समय ऐसा लगा कि मैंने अपनी प्रिय गुरुवर्या से दूर होती जा रही हूँ। जैसे मेरा खजाना कोई लूट रहा है। लगभग ग्यारह बजे मैं जाकर लेटी, किन्तु नींद कहाँ? खिड़की से मैं आकाश की ओर देख रही थी। कि अचानक कहीं से आवाज आई। लगभग ११-४५ बजे का समय होगा। लगातार तीन आवाजे आई - चंद्रा मैं जा रही हूँ... चंद्रा मैं जा रही

हूँ-चंद्रा मैं जा रही हूँ।” कुछ समय के लिये प्रकाश हुआ, मैं कुछ समझ नहीं पाई। मैं उठी और दरवाजा खोलने लगी। श्री कंचनकुंवरजी म.सा. जाग रही थी। उन्होंने कहा “रात्रि के समय जंगल में दरवाजा नहीं खोलना” मैंने अपनी अनुभूति जिस की तस उसी समय उन्हें बता दी। रातभर आँखों में ही व्यतीत हो गई। नींद बिलकुल नहीं आई। मन उदास हो गया। बड़ी कठिनाई से जैसे तैसे रात्रि बीती। विहार का समय आ गया, किंतु आज पैरों में २५ कि.मी. विहार करने की शक्ति का अभाव महसूस कर रही थी। विहार कैसे होगा? क्या करूँ? कुछ क्षणों तक विचार करती रही। मैंने उसी क्षण पू.गुरुवर्य्याश्री का स्मरण किया। मार्ग में आज विश्राम नहीं करना है। आज सीधे मेलूर जाकर ही उसी स्थान पर रुकना है जहां मुकान करना है। गुरु कृपा से पैरों में शक्ति आ गई। विहार कर दिया और लगातार चलती रही। अपने गंतव्य की और अपने संकल्प के अनुसार मेलूर गेस्ट हाऊस में पहुंचकर ही विश्राम किया। लगभग ग्यारह बजे मेलूर पहुंचे थे। सभी आहार पानी कर चुके थे। मेरा मन कुछ भी ग्रहण करने को नहीं कर रहा था। इसलिये मना कर दिया। इस पर श्री कंचनकुंवरजी म.सा. ने कहा कि तुमने कल भी कुछ नहीं लिया था। जोभी इच्छा हो, जिनता भी ग्रहण कर सको ले लो। कुछ नहीं खाने से शरीर की शक्ति क्षीण होती है। मैं गौचरी करने बैठी। कुछ भी खाने का मन नहीं हो रहा था। बड़ी कठिनाई से आधी रोटी खा पाई और उठ गई। मैंने महासती जी से कहा कि मैं वृक्ष के नीचे वहीं जाकर लेटना चाहती हूँ, कल रात्रि में भी बिलकुल भी नींद नहीं आ पाई थी। सिर में भी दर्द हो रहा है। इतना कह कर मैं वृक्ष के नीचे जाकर लेट गई। पर यहाँ भी नींद कहाँ। विचार प्रवाह में गोते लगने लगे। पू. गुरुवर्य्या श्री की स्मृति आने लगी। एकाएक आँखों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी। इस समय पू. गुरुवर्य्या से मैं काफी दूर थी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हुआ है और क्या करना है।

लगभग तीन बजे मदुरै से रमणिक भाई गुजराती दर्शन करने के लिए आये। वंदना करने के पश्चात् उन्होंने पूछा “आपके गुरुजी कौन हैं? उनका नाम क्या है?” हमने एक स्वर में कहा कि आप ऐसा क्यों पूछ रहे हैं? इस पर उन्होंने कहा कि मद्रास से फोन आया है कि वहाँ एक महासती जी काल धर्म को प्राप्त हो गये हैं। हमने कहा कि बड़े महासती जी श्री कानकुंवर जी म.सा. हैं। रमणिक भाई को इस नाम से समाधान नहीं मिला। उन्होंने पुनः पूछा कि और क्या नाम है? मैंने कहा “हमारे गुरुवर्य्या पू. महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. हैं” रमणिक भाई ने तत्काल कहा “बस, वे ही काल कर गये।” सभी ने एक साथ कहा कि नहीं ऐसा नहीं हो सकता। आपने गलत सुना होगा। पू. गुरुवर्य्या तो स्वस्थ थे। हाँ, बड़े म.सा. अवश्य अस्वस्थ रहते हैं। हमारी बात सुनकर रमणिक भाई ने कहा कि वे अभी मद्रास के लिए ट्रंक काल बुक कराकर आए हैं। थोड़ी देर के बात पुनः समाचार देने का कह कर वे चले गए। हम चारों स्तब्ध थीं। समय बीत नहीं रहा था। एक-एक मिनिट व्यतीत करना कठिन हो रहा था। मन की बेचैनी और अधिक बढ़ गई थी। कुछ देर बाद रमणिक भाई आए और बोले कि मद्रास में बाजार बंद है। किसी के घर में कोई नहीं है। सभी महासतीजी के अंतिम दर्शन करने में लिए गए हुए हैं और उनका अंतिम संस्कार भी आज ही किया जा रहा है।

इस समाचार को सुनते ही मन व्यथित हो गया। हमारे आराध्य गुरुवर्य्या श्री हम से दूर हो गये। दूर क्या हो गये, सदा-सदा के लिए हम से अलग चले गये। अब हमारा सहारा नहीं रहा। वेदना से हम सब विचलित हो गये। मेरा हृदय हाहाकार करने लगा। क्या सोचा था और क्या हो गया। स्वप्न में भी किसी को ऐसी कल्पना नहीं थी कि पू. गुरुवर्य्या श्री का स्वर्गवास इतनी जल्दी हो जायगा। उनका शरीर

पूर्ण स्वस्थ था। किसी प्रकार की रुग्णता का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता था न ही किसी प्रकार की शिथिलता प्रकट हुई थी। यथार्थ तो यथार्थ ही था। कल्पना की कोमल धरा किस काम की। पू. परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. काल धर्म को प्राप्त हो गये। क्रूर काल ने उन्हें असमय ही अपना ग्रास बना लिया। इस कठोर सत्य को तो मानना ही पड़ा। मानव अपने मन की चाहता है पर भावी अपने मन की करके मानती है।

हमारी जिज्ञासा यह थी कि यह अनहोनी कैसे हो गई? पू. गुरुवर्या श्री तो एकदम स्वस्थ थी। फिर एकाएक ऐसा कौनसा रोग हो गया कि वे अचानक काल कवलित हो गयी। इस सम्बन्ध में मद्रास से जो जानकारी मिली उसके अनुसार पू. गुरुवर्या श्री ने सायंकाल प्रतिक्रमण किया बहनों को भजन, चौबीसी, स्वाध्याय आदि सुनाया। लगभग आठ साढ़े आठ बजे वे बड़े म.सा. के पेशाब पराटने गये और तभी अचानक उनके सिर में दर्द होने लगा बड़ी मुश्किल से आकर पाट पर बैठ गये। उन्होंने साध्वी श्री सुमन सुधा जी से कहा कि उनके सिर में दर्द हो रहा है। साध्वी श्री सुमन सुधा जी म. पू. गुरुवर्याश्री का सिर दबाने लगी, किन्तु इससे कोई आराम नहीं मिला कुछ ही क्षणोपरांत उन्हें उल्टियाँ होने लगी। आपकी ऐसी हालत को देखकर महासती श्री बंसत कुंवर जी म.सा. ने वहाँ उपस्थित बहनों को पुकारा और उन्हें पू. गुरुवर्याश्री की अस्वस्थावस्था की जानकारी दी। कुछ ही समय में आपकी अस्वस्थता का समाचार साहुकार पेठ में फैल गया और लोढ़ा परिवार सुराणा परिवार, गेलड़ा परिवार आदि सभी तत्काल आ गये और डॉ. पी.सी. सुराणा को भी बुला लिया गया। डॉ. सुराणा ने देखा, इंजेक्शन लगाये और बताया कि महासतीजी को ब्रेन हेमरेज हो गया है। पू. गुरुवर्या की हालत गंभीर थी। उपस्थित व्यक्ति कहने लगे कि अस्पताल ले जाये। इस पर डॉ. सुराणा ने कहा कि ऐसी स्थिति में अस्पताल ले जाना बड़ा कठिन है। गुरुवर्याश्री के मुख से अरिहंत देव, अरिहंत देव की ध्वनि निकल रही थी। इसके साथ ही आपने फरमाया कि उन्हें संथारा करवा दिया जावे। गुरुवर्याश्री के ये शब्द सुनते ही पू. दाद गुरुवर्याश्री कानकुंवर जी म. सा. की आँखों में अश्रु आ गए। मेरे ही समक्ष मेरी शिष्या जा रही है। ऐसा विचार आते ही वे भावविभोर हो गई। अंततः पू. गुरुवर्या श्री को संथारा करवा दिया गया। स्थानक के नीचे आचार्यश्री की आज्ञानुवर्ती साध्वीजी श्री अजित कुंवरजी म.सा. ठहरी हुई थी। वे भी ऊपर आ गयी और आपश्री को स्वाध्याय-आलोचना आदि सुनाने लगे। सभी बहनें भी अश्रुपूरित नेत्रों से रो रही थी कि जिनके साथ चार वर्षों से रहकर धर्म ध्यान कर रही थी और कई इनके साथ बाल्यकाल में साथ-साथ खेली थी, पढ़ी थी आज वे ही हमें छोड़ कर जा रही है। यह कैसी अनहोनी हो रही है। डॉ. सुराणा ने बहुत प्रयास किये। सेवा की वह अत्यंत सराहनीय है। डॉ. सुराणा भी गुरुवर्याश्री को काल के क्रूर पंजों से बचाने में असमर्थ रहे। उनके अंतिम समय में दाद गुरुवर्याश्री ने पूछा- चम्पा। तुम्हें कैसा लग रहा है। अब स्वास्थ्य कैसा है?"

पू. गुरुवर्याश्री ने अपने सिर की ओर संकेत कर बताया कि दर्ज असदृश है। उन्होंने में अपने अंतिम समय में पाँच बार जोर-जोर से अरिहंता का शरणा अरिहंता का शरणा कहा। जब अंतिम श्वास निकली तब भी उनके मुख से अरिहंता का शरणा की ध्वनि निकली। इसके साथ ही प्राण पखेरु उड़ गए। दिव्य ज्योति अनन्त में विलीन हो गई और रह गई मात्र उनकी पार्थिक देह गुरुवर्याश्री सबसे मुख मोड़ कर सबको बिलखता छोड़कर चले गये। ज्योति बुझ चुकी थी। रात्रि के ग्यारह बजकर पैता मिनिट पर पू. गुरुवर्याश्री चिर निद्रा में लीन हो गयी। वे ममत्व के समस्त बंधन तोड़ चुकी थी। अपने अंतिम समय में

भी उन्होंने अपनी शिष्याओं तक को याद नहीं किया और न ही उनके लिये कोई अंतिम संदेश ही छोड़ा। स्वर्गवास होने के एक दिन पूर्व प्रातः का लिखा उनका अंतिम पत्र अवश्य था। इस पत्र में उन्होंने बहुत ही हितावह बातें लिखी थी। उनका यह अंतिम पत्र और उसमें अंकित शिक्षाये ही अब मेरे पास उनकी अनमोल धरोहर है। जब उन्होंने यह पत्र लिखा था, तब वे भी नहीं जानती थी कि यह उनका अंतिम पत्र होगा।

पू. गुरुवर्य्याश्री के उपचार के लिए डॉ. सुराणा ने कोई प्रयत्न शेष नहीं छोड़ा। किन्तु टूटी की बूटी नहीं है। सभी प्रयास निष्फल हो गये और गुरुवर्य्याश्री सबको रोता-बिलखता छोड़कर महाप्रयाण कर गये। बिना आत्मा की देह मिट्टी है। मिट्टी में प्राणों का संचार करना मानव के सामर्थ्य के बाहर है। उपस्थित जन समूह अश्रुपूरित नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखकर कह रहे थे कि यह क्या हो गया। दाद गुरुवर्य्याश्री का मुख भी अन्तर व्यथा से श्याम हो गया था। नयन शून्यता से भरे बरस रहे थे। विचार कीजिये उस माता की स्थिति का जिसकी आँखों के सामने उसके पुत्र का देहांत हो जाए तो उसको कितना दुख होगा। आज दाद गुरुवर्य्याश्री की भी ठीक वैसी ही स्थिति हो रही थी। पू. गुरुवर्य्याश्री उनकी प्रथम शिष्या थी और सर्व प्रकार से विदुषी थी। उनका दुखी होना स्वाभाविक था। सभी साध्वी विकलता से बेचैनी खड़ी थी। मृत्यु के डंक से बचने-बचाने की शक्ति सामर्थ्य किसी भी संसारी व्यक्ति में नहीं है। नये वर्ष की आनंदमयी मंगल बेला में विषाद के बादल बरसने लगे। समीपस्थ एवं दूरस्थ सभी स्थानों पर तत्काल तार-टेलीफोन आदि से समाचार कर दिये गये। आकाशवाणी द्वारा भी समाचार प्रसारित किये गये। आपश्री के दिवंगत होने के समाचार मिलते ही दर्शनार्थी समूह के रूप में उमड़ पड़े।

विधि का विधान निश्चित है, वह किसी भी स्थिति में टलता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के जन्म के साथ ही उसकी मृत्यु, मृत्यु का समय और स्थान निश्चित हो जाता है। विधि ने गुरुवर्य्याश्री के स्वर्गवास की तिथि और स्थान नियत कर रखा था किंतु हम इससे अनभिज्ञ होते हैं। इसी अज्ञानता के परिणाम स्वरूप आज रंग में भंग हुआ। हजारों लोगों के बीच गुरुवर्य्याश्री की पार्थिक देह को चंदन की चिता पर लिटा कर उनका अग्नि संस्कार किया गया। पंचमहाभूतों से बनी देह उसी में विलीन हो गई।

दिनांक १७.३.९१ तदनुसार चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सं. २०४८ को रात्रि ग्यारह बज कर पैतालीस मिनट पर गुरुवर्य्याश्री का देहावसान हुआ। दि. १८.३.९१ को उनका अंतिम संस्कार किया गया। इसी दिन पंडितरत्न, आगम मनीषी पू. आशीष मुनिजी म.सा अपने शिष्यों के साथ महासती जी को सांत्वना देने के लिए पधारे। साध्वी जी श्री शांता कुंवर जी म. की शिष्या एवं श्री पुष्पावती जी म. आदि भी संवेदना प्रकट करने के लिए पधारी।

बुधवार को प्रातः जैन स्थानक में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। इस श्रद्धांजलि सभा में पंडितरत्न श्री आशीष मुनिजी म.सा ने बहुत ही सुन्दर ढंग से सारगर्भित शब्दों में पू. गुरुवर्य्याश्री को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। दाद गुरुवर्य्याश्री महाराजश्री कानकुंवर जी म. एवं उनकी सुयोग्य शिष्याओं के अतिरिक्त श्री अजित कुंवर जी म. श्री दिव्यसाधना जी म. श्री आचार्य तुलसी की शिष्या श्रमणी ने पू. गुरुवर्य्याश्री को अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इनके अतिरिक्त अन्य विभिन्न श्रद्धालु भक्तों ने भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। पू. गुरुवर्य्याश्री के महाप्रयाण की जितनी वेदना, दाद गुरुवर्य्याश्री को हो रही थी, उसका वर्णन करने में मेरी लेखनी असमर्थ है।

मुनि का जीवन व मरण दोनों ही महोत्सव होते हैं। जो संसार त्याग कर त्यागी जीवन जीते हैं, उनका मरण भी धन्य होता है। पू.श्री आशीष मुनिजी म.सा. दस कि.मी. का विहार कर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने आए थे, इससे उन्होंने अपनी महानता का ही परिचय दिया। अंत में चार लोगस्स का ध्यान करने के पश्चात् पू. श्री आशीष मुनि जी म.सा. के मंगल पाठ के साथ ही सभा विसर्जित कर दी गई। सभी की आँखों में आँसू थे सभी का हृदय रो रहा था, सभी कह रहे थे कि कल तक जो हमारे बीच थे, हमारे समक्ष थे, उन्हें ही आज श्रद्धांजलि अर्पित करनी पड़ी।

पू. गुरुवर्याश्री के अनन्त अनन्त गुणों का वर्णन करने का सामर्थ्य मेरी लेखनी में नहीं है। जो कुछ भी स्मृति में था। वरिष्ठ महासतियों जी से जो ज्ञात किया और उनके पावन सान्निध्य में रहते हुए जो देखा, उसी के अनुसार मैं यह लेखन कर सकी हूँ। अपनी जीवन निर्मात्री भी पू. गुरुवर्याश्री को मैं अपनी ओर से सादर सभक्ति हृदय की गहराई से श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ। जहाँ भी गुरुवर्याश्री की आत्मा है, वहाँ से मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें कि मैं आपके पदचिह्नों पर चल सकूँ।

परिवारिक वैशिष्ट्य:- पू. गुरुवर्याश्री के परिवार में धर्म के प्रति रुचि थी। न केवल आपका पितृपक्ष धार्मिक रूप से जागृत था वरन् आपका ननिहाल भी धार्मिक जागृति में किसी से पीछे नहीं था। आपके दोनों कुलों से जिन भव्य आत्माओं ने संयम मार्ग अपनाकर जैन शासन की सेवा की उनके नाम इस प्रकार हैं। - (१) स्व. आचार्य प्रवरश्री जीतमल जी म.सा. (मामा), (२) स्व. सरलमना पू. श्री भीम कुंवर जी म.सा. (नानीजी), (३) स्व. अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुंवर जी म.सा. (भुआजी), एवं (४) मृदुभाषी पू. श्री सुन्दर कुंवर जी म.सा. (काकीजी)। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आपके परिवार में कितनी धार्मिक जागृति है।

शिष्याएँ- आपकी शिष्याओं का संक्षिप्त जीवन परिचय निम्नानुसार दिया जा रहा है।-

(१) महासती श्री चेतन प्रभाजी म.सा-

जन्म नाम- कु. लता



जन्म स्थान- रायपुर (म.प्र.)

माता- श्रीमान् सावित्री देवी

पिता- श्रीमान् बलदेवप्रसाद जी सोनी

दीक्षा तिथि- दि २९.११.१९८१

दीक्षा स्थान- दुर्ग (म.प्र.)

दीक्षा प्रदाता- वाणी भूषण श्री रतन मुनिजी म.सा.

गुरुदेव- श्रमण संघीय (स्व.) युवाचार्यश्री मधुकर मुनिजी म.सा

गुरुणी- परम विदुषी सिद्धांताचार्य स्व. महासती श्री चम्पाकुंवरजी. म.सा

अध्ययन- मैसूर विश्वविद्यालय से एम.ए तथा इलाहाबाद से साहित्यरत्न। धार्मिक शास्त्रों का अध्ययन

विशेष रुचि- तत्वचिंतन, मौन साधना, स्वाध्याय आदि

(२) महासती श्री चन्द्रप्रभा जी म.सा



जन्म नाम- कु. मुस्कानी उर्फ कु. चंचल

जन्म स्थान- भखारा जिला रायपुर (म.प्र.)

जन्म तिथि- दिनांक ९ दिसम्बर १९६८

माता- सौभाग्यवती श्री अनछी बाई

पिता- श्रीमान् अनोपचंदजी पारख

दीक्षा तिथि- आसोज शुक्ला पंचमी दि २९.९.१९८४

दीक्षा स्थान- सिकंद्राबाद (आंध्र प्रदेश)

दीक्षा प्रदाता- श्रमण संघीय सलाहकार पू. श्री रतनमुनिजी म.

गुरुदेव- स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा.

गुरुणी जी- परम विदुषी स्व. महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा.

अध्ययन- सुखविपाकसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, नंदीसूत्र उत्तराध्ययनसूत्र, समवायांगसूत्र, स्थानांगसूत्र आदि का अध्ययन।

शिक्षा- एम. ए., साहित्यरत्न

रुचि- अध्ययनशील एवं शोधकार्य

विशेष- आपके काकाजी ने संयमव्रत अंगीकार किया और त. र. श्री चम्पालाल जी म.सा के शिष्य पू. श्री जोगराज जी म. सा. के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(३) महासती श्री सुमन सुधाजी म. सा



जन्म नाम- कु. सुनीता पींचा

जन्म तिथि- दिनांक ३०.९.१९७४

जन्म स्थान- कटंगी (म.प्र.)

माता- श्रीमती सुशीलादेवी पींचा

पिता- श्रीमान् (स्व.) लक्ष्मी चंदजी पींचा

दीक्षा तिथि- दिनांक १४-१०-१९८८

दीक्षा स्थान- कांग्रेस ग्राउण्ड, मद्रास

दीक्षा प्रदाता- प्रवर्तक श्री रूपचंद्र जी म.सा 'रजत'

गुरुदेव- स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा.

गुरुणीजी- परम विदुषी, सिद्धांताचार्य स्व. महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा.

अध्ययन- थोकड़े, स्तोत्र, शास्त्र आदि का अध्ययन एवं दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा से विशारद तथा अहमदनगर से धार्मिक विशारद ।

रुचि- गायन में विशेष रुचि ।

वैराग्यवती बा.ब्र. कुमारी शोभा पारख जैन

(वैराग्यवती बा. ब्र. कुमारी शोभा पारख जैन की दीक्षा का कार्यक्रम निश्चित हो चुका है । उसी आधार पर उनकी जीवन रेखा दी जा रही है । सं.)



जन्म स्थान- भखारा (रायपुर) म.प्र ।

माता- सौभाग्यवती श्रीमती अनछी बाई ।

पिता- श्रीमान् अनोपचंदजी पारख

दीक्षा तिथि- आषाढ़ शुक्ला द्वितीय सं २०४९ दि २-७-९२

दीक्षा स्थान- यादवल स्ट्रीट, पाड़ी, मद्रास (तमिलनाडु)

दीक्षा प्रदाता- युवाचार्य डॉ. शिवमुनि जी म.सा

गुरु देव- स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा

गुरुणी- परम विदुषी (स्व.) श्री चम्पाकुंवर जी म. सा. की शिष्या साध्वी श्री चन्द्रप्रभा जी म.सा., एम.ए., साहित्यरत्न

अध्ययन- दोनों प्रतिक्रमण, भक्तामर, कल्याणमंदिर स्तोत्र चिंतामणि स्तोत्र, महावीराष्टक, रत्नाकर पच्चीसी, नव तत्व गाथाएँ, दशवैकालिक पाँच अध्ययन, वीरत्युई आदि ।

स्तोक- पच्चीस बोल, पाँच समिति, तीन गुप्ति, छः काय समकित के ६७ बोल, तैंतीस बोल आदि ।

रुचि- गायन में ।

विशेष- आपके काकाजी ने संयम व्रत अंगीकार किया । पू. तपस्वी श्री चम्पालाल जी म.सा के सुशिष्य श्री जोगराज जी म.सा के नाम से विख्यात हैं ।

विदुषी महासती श्री चन्द्रप्रभा जी म.सा. आपकी संसार पक्षीय ज्येष्ठ बहिन हैं और संयमव्रत ग्रहण करने के उपरांत गुरु बहिन ।

* * * * *

वर्षावास-सूची

स्थान	विक्रम संवत्	वि.से. २००५ से २०१३ साकरण
१-९.	कुचेरा (राज.)	२०१४
१०.	खेतरपाली (जोधपुर राज.)	२०१५
११.	ब्यावर (राज.)	२०१६
१२.	ब्यावर (राज.)	२०१७
१३.	मेड़तासिटी (राज.)	२०१८
१४.	कुचेरा (रा.)	२०१९
१५.	मेड़ता सिटी (रा.)	२०२०
१६.	महामंदिर (जोधपुर)	२०२१
१७.	कुशालपुरा (पाली-राज.)	२०२२
१८.	कुचेरा (राज.)	२०२३
१९.	कुचेरा (राज.)	२०२४
२०.	डेह (नागौर-राज.)	२०२५
२१.	केकींद	२०२६
२२.	ब्यावर (राज.)	२०२७
२३.	पीपाड़ शहर (राज.)	२०२८
२४.	पाली (भारवाड़)	२०२९
२५.	कुचेरा (राज.)	२०३०
२६.	मसुदा (राज.)	२०३१
२७.	कुचेरा (राज.)	२०३२
२८.	ऊपर लावास (राज.)	२०३३
२९.	मेड़ता सिटी (राज.)	२०३४
३०.	पाली (भारवाड़)	२०३५
३१.	कटंगी (म.प्र.)	२०३६
३२.	दुर्ग (म.प्र.)	२०३७
३३.	बालोद (म.प्र.)	२०३८
३४.	रायपुर (म.प्र.)	२०३९
३५.	दुर्ग (म.प्र.)	२०४०
३६.	बालाघाट (म.प्र.)	२०४१
३७.	बोलाराम (आं.प्र.)	२०४२
३८.	सिकन्द्राबाद (आं.प्र.)	२०४३
३९.	सिन्धनूर (कर्नाटक)	२०४४ से २०४७ सकारण
४० से ४४.	साहुकार पेट, भद्रास	

* * * * *

जो पाया उनसे पाया

● साध्वी श्री तरुण प्रभा 'तारा' आमेट

मेरे ज्ञान के दाता, आस्था के केन्द्र, सहिष्णुता की त्रिवेणी, जन-जन की आराध्या, यथानाम -तथा गुण, यशस्वी व्यक्तित्व की धनी, शासन प्रभाविका, पूज्यनीया सद्गुरुवर्या का पावन जीवन अज्ञानांधकार में भटकते प्राणी के लिये प्रेरणा का प्रकाश स्तम्भ था। आपके गुणों का संकीर्तन करना मेरे सामर्थ्य के परे है। आपकी गुणगरिमा को अभिव्यक्त करते समय मेरी स्थिति वैसी ही हो रही है जैसी कि महाकवि तुलसीदास ने कहा-सौ-मैं कहो कवन विधि बरनी, भमिनागु सिर धरई कि धरनी।

आपके गुणों को अभिव्यक्त करने के लिए शब्दों की सीमा नहीं है। हिमालय के समान ऊंचाई और सागर के समान गहराई जिनके व्यक्तित्व में हो, उनके गुणों का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है। फिर आस्था/श्रद्धा को शब्दों का रूप किस प्रकार दिया जा सकता है, यह मेरे समझ में नहीं आ पा रहा है।

गुरु की महिमा अपरम्पार है। उनकी महिमा को शब्दों में किस प्रकार अंकित किया जावे। वे मेरे जीवन के शिल्पकार थे। जैसे शिल्पी पाँवों में टकराते अनघड़ किन्तु योग्य पाषाण को अपनी छैनी से सुन्दर मूर्ति का आकार दे देता है उसे अर्चनीय बना देता है यह क्षमता शिल्पकार में ही है।

मुझे जैसी अबोध, अनघड़ पत्थर को सद्गुणों की खान महान शिल्पी मिली थी सद्गुरुवर्याश्री चम्पाकुंवर जी म.सा। जिन्होंने अपने सद्गुणदेश एवं सदाचार रूपी छैनी से मेरे जीवन को निखारा है। क्योंकि अज्ञान प्रस्त मोहमुग्ध, सांसारिक प्राणी के जीवन को उचित मार्ग दर्शन प्रदान करने की क्षमता तो सद्गुरु में ही निहित है। गुरु की महिमा अपरम्पार है। जिनका संयमनिष्ठ, तपपूत जीवन सघन अंधकारा च्च प्राणी के लिये सर्चलाईट है। सद्गुरु के बिना कभी भी ज्ञान की किरणें नहीं मिल सकती।

वि. स. २०३३ में सरलात्मा महासती श्री कानकुंवर जी म.सा का वर्षावास अपनी शिष्याओं सहित मेड़ता सिटी में हुआ था। तभी मुझे उनकी अन्तेवासिनी परम विदुषी साध्वी रत्न महासती श्री चम्पा कुंवर जी म.सा. के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके प्रथम दर्शन से ही मेरे मन में जो आल्हाद उत्पन्न हुआ, उसकी स्मृति मात्र से आज भी मन पुलकित हो उठता है और हृदय उनके प्रति आदर भाव से भर जाता है। प्रथम दर्शन में ही मैंने पाया कि महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा सरल चित्त, प्रसन्नवदन और मिलनसार स्वभाव की एक मनस्वी यशस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी साधिका है। आपके सरल निश्छल और आत्मीय व्यवहार से मेरा मन भावविभोर हो जाता था। मुझे लगा कि आप सहृदयता शालीनता और सौम्यता की एक जीवंत प्रतीक है। आपसे ज्ञान-ध्यान सीखने में मुझे गौरव व आनन्द की अनुभूति होती थी। अनेक बार लम्बे समय तक वैराग्य काल में आपसे मिलने एवं साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था।

नौखा में बहन कंचन की दीक्षा के प्रसंग पर दूसरी बार आपके दर्शन करने व चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस दिन आपके महिमा मंडित व्यक्तित्व से मुझे दिव्य आकर्षण की अनुभूति हुई और मैंने निश्चय कर लिया कि मुझे भी सांसारिक आसक्ति से विरक्त होकर आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होना है।

जैसे एक कुशल माली छोटे-छोटे पौधों को जल से सींच कर और रात-दिन उनका संरक्षण कर विशाल वृक्षों के रूप में परिवर्तित कर देता है; वैसे ही श्रद्धेया सद्गुरुणी रूपी माली ने मेरे भावों का सिंचन कर मेरी वैराग्य भावना को विकसित एवं सुदृढ़ किया।

आपके द्वारा ही मैंने ज्ञान का प्रकाश पाया। आपके इस उपकार के प्रति मैं आपकी ऋणी हूँ। आपने मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान की थी। आपका सान्निध्य पाकर मेरे जीवन की काया पलट हो गई। अन्यथा मैं जीवन भर अंधेरी गलियों में भटकती रहती।

परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. सा. स्थानथवासी जैन समाज की ही नहीं समस्त जैन समाज की एक ज्योतिर्मय निधि थी। आपके ओजस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व से समाज भली भाँति सुपरिचित था।

आप विलक्षण प्रतिभा की धनी उत्कृष्ट साधिका थी। आपमें विनय, सरलता, सहज स्नेह कूट-कूट कर भरा हुआ था। मैंने आपके इन गुणों का काफी निकटता से रहते हुए अनुभव किया है। जहाँ अन्तो तहा बाहि, जहा बाहिक वहा अन्तो के। अनुसार आप जैसे अन्दर थे वैसे ही बाहर भी थे। आपके जीवन में बनावटोपन बिल्कुल नहीं था। आप स्नेह सौजन्य की साक्षात् प्रतिमा थी। आप विदुषी थी किन्तु अपने वैदुष्य का उन्हे किंचित मात्र भी अभिमान नहीं था।

आपने अपने कठोर श्रम से शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत प्रगति की थी। आप हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि अनेक भाषाओं की प्रकाण्ड पण्डिता थी। न्याय व दर्शन शास्त्र का उन्होंने गहन एवं गंभीर अध्ययन किया था। जैन सिद्धांताचार्य जैसी उच्च परीक्षाएँ भी आपने उत्तीर्ण की थी।

सामान्यतः यह देखा जाता है कि जो विद्वान होते हैं, उनमें सेवा का गुण कम ही होता है। लेकिन आप इस बात के अपवाद थे। आपने अपनी गुरुवर्या महासती श्री कानकुंवर जी म.सा की रुग्णावस्था में अथक अनवरत सेवा कर अपनी सेवा भावना का उदाहरण प्रस्तुत किया था। साहुकार पेट मद्रास में पाँच-छ वर्ष तक महासती जी रुग्णावस्था में रहे, इस अवधि में चिकित्सार्थ चिकित्सालय में भी रहे। उन दिनों आपने दिन या रात की कोई चिन्ता नहीं की और अपनी गुरुवर्या की सेवा में सतत लगी रही। आपने दिनरात जो सेवा की उसे लेखनी से प्रकट करना कुछ असम्भव प्रतीत होता है। इन्तहा ही कहा जा सकता है कि आप उस अवधि में छाया की भाँति हर समय अपनी गुरुवर्या के साथ लगे रहते थे।

धर्म की प्रभावना हेतु आपकी विशेष रुचि रही। यही कारण रहा कि आपने परम्परागत क्षेत्रों का त्याग कर दूरस्थ क्षेत्रों में विहार किया। जिसके फलस्वरूप मेवाड़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि क्षेत्रों को आपकी ओजस्वी वाणी का लाभ मिला और धर्म के प्रति विशेष रुचि जाग्रत की। आप में अनन्त-अनन्त गुण थे। उन सबका वर्णन मैं नहीं कर सकती। आज भौतिक रूप से वे हमारी बीच में नहीं हैं। उनकी भौतिक देह भले ही हमारी आँखों से ओझल हो गया किन्तु उनका यश, गौरव युग-युग तक अमर रहेगा। किसी कवि के शब्दों में तो यही कहेंगे।

तू चुप है लेकिन सदियों तक गूजेंगी सदा साज तेरी।

दुनिया को अंधेरी रातों में ढाँढस देगी आवाज तेरी।

* * * * *

महान विदुषी श्रमणी

● चाँदमल बाबेल, भीलवाड़ा

करोड़ों रोज आते हैं, धरा का भार बनने को ।
अनेकों जन्म लेते हैं, जनों के पाश बनने का ॥

कई है जन्मते हैं पंडित, जवां से बह्म बनने को
उपजते हैं यहाँ कितने, शरीर सन्त बनने को ॥

भारत विश्व में अध्यात्म स्थली रहा है। यहाँ पर अनेक महापुरुषों ने अवतरित होकर इस अध्यात्म ज्योति को जलये रखा है। राम कृष्ण बुद्ध महावीर ने अपने अध्यात्म ज्ञान से एवं धर्मोपदेश से इस देश के धर्ममयी स्वरूप को बनाये रख कर इसे विश्व में विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। तथा श्रेष्ठ आदर्शों की स्थापना कर इसे ओर भी निखारा है। भगवान् ऋषभ देव से लेकर अब तक सभी तीर्थकरों के सांनिध्य में लाखों संयमी आत्म मुमुक्षुओं ने धर्म पथ पर चल कर आत्म कल्याण किया तथा मानव को सद्बोध देते रहे हैं। पावन धर्म सलिला निरन्तर प्रवाहित करते रहे हैं। यह क्रम आज तक चला आ रहा है।

आज इस भौतिकवादी आधुनिक युग में भी प्रेम, त्याग, सदाचार, संयम की धारा बह रही है तथा अध्यात्मवाद कायम है। प्रेम, करुणा अपनापन, भाईचारे की बेल हरी भरी दिखाई दे रही है इन सब का आधार श्रमण-श्रमणी वर्ग का अथक प्रयास है। इन साधकों की अनुपम देन है। इन महापुरुषों की समाज पर कृपा है।

इन साधकों की सुदीर्घ पंक्ति में जहाँ पुरुषों का महान योगदान रहा है। वहाँ नारी भी पीछे नहीं रही है सत्य पूछा जाय तो श्रमणी वर्ग ने अपने तप, त्याग, समता सरलता, नम्रता, स्नेह, समर्पण एवं सद्भावना से समाज में अपनी मिसाल कायम की है। यह उपरोक्त गुणों की प्रतिमूर्ति है जिससे पुरुष वर्ग ने प्रेरणा ली है। आगम कथा साहित्य इतिहास इसका साक्षी रहा है कि जितना तप एवं त्याग श्रमणी वर्ग का रहा है उतना श्रमण वर्ग का नहीं रहा है। सीता, अजंता, सुभद्रा, द्रोपदी, चन्दना, सुलसा जयन्ति आदि की दिव्य साधना बोलती तस्वीरें हैं।

ये दिव्य मणियाँ चिरकाल से अपनी साधना एवं सद्प्रवचनों से अनेक आत्माओं का पथ प्रदर्शन करती रही हैं तथा कर रही हैं। इसी श्रृंखला में एक विलक्षण साधिका परम् विदुषी श्री चम्पा कुंवर जी म.सा भी रही हैं।

मीरा जैसी प्रभु भक्ति की अमर साधिका ने जिस क्षेत्र में जन्म लेकर जिस क्षेत्र को पावन किया उसी क्षेत्र के इर्द गिर्द कुचेरा में इस साधिका ने जन्म लेकर परिवार एवं समाज को धन्य किया है। जिस प्रकार भक्ति मति मीरा को अपने परिवार जनों के संसर्ग में भक्ति रंग लगा था उसी प्रकार इस महान साधिका को भी परिवार एवं ननिहाल से सहज ही अवसर मिल पाया जिनकी प्रेरणा से मार्ग प्रदर्शन में सहज ही सुलभता मिगयी एवं उसी मार्ग पर चल पड़ी। अन्यथा ऐसा कौन होगा जो कि इस भर यौवन में

२२ वर्ष की अवस्था में संसार के वैभव तथा सुखों को तिलांजलि दे ? किन्तु इन्होंने संसार की असारता को समझ कर संयम के मार्ग को अपनाया प्रभु भक्ति में लीन मीरा की तरह संसार के इन बन्धनों को कच्चे धागे की तरह झटके से तोड़कर मुक्ति के महापथ पर निकल पड़ी। प्रभावी गुरु एवं गुरुणीजी का सहज ही सांनिध्य प्राप्त हो गया। उन्ही के निर्देशन में आपकी निरन्तर साधना चलती रही। जिससे आप भी एक प्रभावी साधक के रूप में विख्यात हो पायी। यही वजह रही कि आपका अध्ययन सुचारु रूप से चल सका अनेक भाषाओं का ज्ञान हो सका। तथा आपकी व्याख्यान शैली प्रभावी बन सकी।

राजस्थान में जन्म लेकर आपने अपना कार्य क्षेत्र सीमित नहीं रखा बल्कि सुदूर क्षेत्रों में जाकर आपने अपने ज्ञान को निरन्तर प्रवाहित किया। आपने दर्शन एवं पीयूष वाणी से श्रोताओं को मंत्र मुग्ध किया। जिसको सुनकर श्रोता आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रहते थे।

आपकी प्रवचन शैली, सरल, सरस, स्पष्ट, प्रभावोत्पादक सारगर्भित तथा मार्मिकी। जनमानस की क्लृप्तता को दूर कर शान्ति और आनन्द प्रदान करती थी। सतत अध्ययनशीलता आपके जीवन का क्रमशः “स्वाध्याय परमतप” को चरितार्थ करने में आप सफल रही है। एक साधिका का परम लक्ष्य भी यही है कि निरन्तर स्वाध्याय करते रहो तभी तो भगवान महावीर ने फरमाया कि आहार भले ही त्याग दिया जाए किन्तु स्वाध्याय को कभी भी न छोड़ा जाए इस परम् उद्देश्य को आपने अपने जीवन में आत्मसात किया था। जो कि सभी के लिये प्रेरणादायी रहेगा।

सेवा भावना में भी आप पीछे न ही रही है “सेवाधर्मो परम् गहनो” आप श्री के जीवन का सहज ही लक्ष्य था अपनी श्रद्धेया गुरुणी जी की ही नहीं अपितु सब के प्रति आपका तन मन समर्पित था। क्योंकि सेवा निष्ठा अपने और पराये का भेद नहीं रखती है। जिसे आपने-अपने जीवन में अपना रखा था।

आप समासज की विषमता से पूर्ण परिचित थी। समाज कितना पतन की ओर जा रहा है इस समाज के उत्कर्ष के लिये आप सदैव प्रयत्नशील रही। आपका निरन्तर यही प्रयास रहा कि समाज में जो भी कुरीतियाँ कुरुद्वियाँ व्याप्त है शीघ्र ही समाप्त हो। ताकि समाज में पूर्व अध्यात्मवाद का प्रसार हो। नैतिकता का विकास हो। आपका यह सतत प्रयास प्रेरणास्पद रहेगा वास्तव में ऐसी ही महान साधिका समाज में परिवर्तन ला सकती है। कार्य करने की क्षमता आप में अद्भुत थी। अथक परिश्रम से आप अपनी योजना को साकार रूप देती रही थी।

आपमें तप, त्याग पुष्प में सुगन्ध, मिश्री में ठास, दुग्ध में नवनीत की तरह समाया हुआ था। आपका जीवन अनेक सदकृतियों से ओत प्रोत था। आप के तेजस्वी व्यक्तित्व से सभी प्रभावित हो जाया करते थे। आपके व्यक्तित्व का कहाँ तक वर्णन किया जाए? आप की स्मृति चिर स्थायी है जो कि जन मानस के पटल पर उभरती रहेगी युगो-युगों तक आपकी यशो गाथा चलती रहेगी जोकि जैन इतिहास में स्थायी स्थान बनायेगी।

है समय नदी की धार, कि जिसमें सब बह जाया करते है
है समय बड़ा तूफान, प्रबल पर्वत हिल जाया करते है।

अक्सर दुनिया के लोग, समय में चक्कर खाया करते है
लेकिन कुछ ऐसे होते जो इतिहास बनाया करते है ॥

* * * * *

सी. ४६ डॉ. राधा कृष्णन् नगर
भोलवाड़ा ३११००१

(७६)

१८

महासती द्वय स्मृति ग्रंथ

नारी

मूल्य और महत्व



विश्व चेतना में नारी का गौरव

• युवाचार्य डॉ. शिवमुनि

नारी समाज का केन्द्र बिन्दु है, बाल संस्कार और व्यक्तित्व निर्माण का बीज समाहित है, नारी के आचार विचार और व्यक्तित्व में। उन्हीं बीजों का प्रत्यारोपण होता है, उन बाल जीवों के कोमल हृदय पर जो नारी को मातृत्व का स्थान प्रदान करते हैं। समाज ने नारी को अनेक दृष्टियों से देखा है, कभी देवी, कभी माँ, कभी पत्नी, कभी बहन कभी केवल एक भोग्य वस्तु के रूप में उसे स्वीकार किया है। समाज की संस्कारिता और उसके आदर्शों की उच्चता की झलक, उसकी नारी के प्रति हुई दृष्टि से ही मिलती है। इस तरह नारी के पतन और उत्थान का इतिहास समाज में धर्म और नीति की उन्नति और अवनति का प्रत्यारोपण कराता है।

तो आइये, इतिहास के गर्त में जरा झांक कर देखें कि जिस समय २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ, तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ और नारी का उसमें स्थान और वहाँ से लेकर समय समय पर आए नारी के गौरव में परिवर्तन।

सामान्य जन जीवन जकड़ा हुआ है। झूठे जड़ रीति रिवाजों में सड़ी गली परम्पराओं में १ दृष्टि धुंधली हुई है, अन्ध विश्वासों की धूल से। मिथ्यात्व की अति प्रबलता है। लाखों मूक पशुओं की लारों बलि वेदी पर चढ़ रही है। शूद्र जाति सामान्य मानवीय अधिकारों से वंचित है। समाज आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। इस विषम, सतधर्म के अधःपतन के काल में भावी तीर्थंकर राजकुमार वर्धमान का इस धरा पर पदार्पण हुआ।

सतधर्म का ऐसा अधःपतन क्यों हुआ? मिथ्यात्व की ऐसी आँधी क्यों चली? इसका प्रमुख कारण नारी जाति की करुण दशा है। जैसे मनु ने कहा है - “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता” अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है। वहाँ देवता रमण करते हैं। अर्थात् वहाँ मंगल का वास होता है। इसके विपरीत जहाँ नारीत्व का शोषण होगा, अपमान होगा, वहाँ अधर्म का साम्राज्य होगा। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में कितनी सत्यता झलक रही है- “स्त्रियों की पूजा करके ही सब जातियाँ बड़ी हुई हैं। जिस देश, जिस जाति में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वह देश, वह जाति कभी बड़ी न हुई और न हो सकेगी। तुम्हारी जाति का जो अधःपतन हुआ है, उसका प्रधान कारण इन्हीं सब शक्ति मूर्तियों की अवहेलना। जिस समय राजकुमार वर्धमान का जन्म हुआ, वह नारी के जीवन का पतन का काल था। नारी का जीवन तमस् से धिरा हुआ व दासता से परिपूर्ण था। नारी को पैर की जूती से अधिक या भोग की वस्तु से अधिक और कुछ नहीं समझा जाता था। युद्धों में हारी हुई सुन्दर सुकुमारी स्त्रियों को किस प्रकार बाजारों में पशुओं की तरह बोली लगा कर बेच दिया जाता था। राजकुमारी चन्दनवाला उसका ज्वलंत उदाहरण है। कौमार्य में लड़की पिता पर, यौवन में पति तो वृद्धावस्था में पुत्रों पर आश्रित रहे ऐसा सोचना था। धार्मिक

कार्यों में भाग लेने का उन्हें कोई अधिकार न था। स्त्री कभी मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सकती, ऐसी मान्यता थी। इसी तरह विवश नारी अपना तिरस्कृत जीवन सिसक-सिसक कर काट देती थी। तुलसी दास के शब्दों में -

ढोर गवारें शूद्र पशु नारी।
यह सब ताड़न के अधिकारी॥

यानि इतना तिरस्कृत जीवन जीने को बाध्य थी -

मैथिली शरण गुप्त ने भी कहा है -

अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

दुर्भाग्य से यदि छोटी उम्र में पति का वियोग हो जाए तो उसे अपने मृत पति के साथ जीवित ही जल जाना पड़ता, अर्थात् 'सती प्रथा'। उस समय यह धारणा थी कि पति के साथ मरने पर मुक्ति मिलती है। इस कारण उसे सती बनने के लिए बाध्य किया जाता। न चाहते हुए भी लोगों के अपवाद के भय से उसे सती होना ही पड़ता। जीने की आशा में यदि कोई सती न भी होती तो एक विधवा के रूप में अमानवीय जीवन जीने के लिए उसे तत्पर रहना पड़ता। बाल मुंडवाकर सफेद वस्त्रों में लिपटी वह विधवा रूखा-सूखा भोजन कर दिन स्थिति में सारा जीवन व्यतीत करती थी। शुभ प्रसंगों में व धार्मिक कार्यों में विधवा स्त्री को अमांगलिक समझा जाता था।

साधना काल के बारहवें वर्ष में भगवान ने एक कठोर तप किया, जिसमें १३ अभिग्रह समाविष्ट थे।

“एक राजकुमारी दासी बनकर जी रही हो, हाथ पाँव बंधे हो, मुंडित हो, तीन दिन की भूखी प्यासी हो, एक पैर देहली के बाहर और एक पैर अन्दर हो, आँखे सजल हो, इत्यादि।

उनका यह अभिग्रह था तो आत्मशुद्धि के लिए, स्वयं के उत्थान के लिए परन्तु इस अभिग्रह ने नारी उत्थान को भी अत्यधिक संबल दिया, एक लाचार दीन दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई नारी का उत्थान हुआ।

भगवान महावीर की दृष्टि में स्त्री और पुरुष दोनों का स्थान समान था। क्योंकि उन्होंने इस नश्वर शरीर के भीतर विराजमान अनश्वर आत्म तत्व को पहचान लिया था। उन्होंने देखा कि चाहे देह स्त्री का हो या पुरुष का वही आत्म तत्व सभी में विराजमान है। और देह भिन्नता से आत्म तत्व की शक्ति में भी कोई अन्तर नहीं आता सभी, आत्माओं में समान बलवीर्य और शक्ति है। इसीलिए भगवान फरमाते हैं - “पुरुष के समान ही स्त्री को भी प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में बराबर अधिकार है। स्त्री जाति को हीन पतित समझना निरी भ्रान्ति है।

इसीलिए भगवान ने श्रमण संघ के समान ही श्रमणियों का संघ बनाया, जिसकी सारणा-वारणा साध्वी प्रमुखा चन्दनवाला स्वयं स्वतन्त्र रूप से करती थी। भगवान के संघ में श्रमणों की संख्या १४००० थी तो, श्रमणियों की संख्या ३६००० थी। जहाँ श्रावकों की संख्या १५१००० थी, वहाँ श्राविकाओं की

संख्या १.१८००० थी, इसमें, हम अन्दाज लगा सकते हैं कि जहाँ समाज नारी को धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में अशुभ व अमांगलिक मानता था। वहाँ भगवान ने स्त्री जाति को किन उच्च स्थानों पर स्थापित किया व उनके व्यक्तित्व को स्वाभिमानी व गौरवांवित्र किया।

पुरुष बलवीर्य का प्रतीक होते हुए भी नारी के बिना अधूरा है। राधा बिना कृष्ण, सीता बिना राम, और बिना गौरी के शंकर अर्द्धांग है। नारी वास्तव में एक महान शक्ति है। भारतवर्ष ने तो नारी में परमात्मा के दर्शन किए हैं। और जगद् जननी भगवती के रूपों में पूजा है।

नारी का असीम प्रेम और सहानुभूति नर के लिए सदा ही प्रेरणा का स्रोत रहा है। एक कवि के शब्द में -

सेवा प्यार दुलार दया की जो है मूर्ति।

पालन पोषण करत स्वजन होवे हर्षित अति॥

नारी परोपकार, सेवा, क्षमा की मूर्ति है। माँ के रूप में बच्चे के, पत्नी के रूप में पति के और बहन के रूप में भाई के सुख दुःख में ही स्वयं का सुख दुःख मानती है। नारी का सुख व्यक्तिगत नहीं वरन् पारिवारिक होता है। वह परिवार के सुख से सुखी और परिवार के दुःख से दुःखी होती है। उसके लिए पति, पुत्र, परिवार प्रथम है। और फिर है स्वयं का व्यक्तित्व। इसलिए वास्तव में नारी ही परिवार समाज और राष्ट्र की आत्मा है। एक नारी के उत्थान का अर्थ है एक परिवार का उत्थान और यही समाज व राष्ट्र के विकास की जड़ है।

जब नारी पुत्र वधु बनकर आती है तो दो कुलों को अपनी सहज सरसता से मिला कर एक कर देती है। बहन के रूप में भाई को राखी बान्धते हुए भाई की रक्षा, विकास की अमृत कामना करती है। अर्द्धांगिनी के रूप में अवतरित होती है, तथा जननी बनकर बच्चों के लिए संजीवनी समान सह वात्सल्य पावन सस्कारों का जीवन संचित कर उसके व्यक्तित्व को उन्नत शिखरों का स्पर्श कराती है। इस तरह नारी का प्रत्येक रूप स्वयं के अस्तित्व को मिटा कर अन्य के व्यक्तित्व को विकसित करने, वृक्षों की तरह स्वयं सब कुछ सह कर अन्य को शीतल छाया, रूप और दीपक की तरह, स्वयं जल कर अन्य के जीवनपथ को उजागर करने के रूप में क्रियान्वित होता है।

ऐसा व्यक्ति जो संसार में रहते हुए भी कर्तव्य पथ पर अग्रसर होते हुए तपस्विनी सा जीवन व्यतीत करता है। जिसके सम्मान, सत्कार व पूजा से व्यक्ति के भाव पवित्र हो जाते हैं। जबकि उसकी अवहेलना, अपमान करने वाला व्यक्ति स्वयं नरक के दुःखों का भागी बन जाता है।

कवि की निम्न पक्तियाँ कितनी सार्थक सिद्ध होती है -

जननी भगिनी कामिनी

बहु रुपनी, बन देह सुख

उस नारी की निन्दा करे

ते स्वपन पावें नरक दुःख

राष्ट्रों के उत्थान पतन के इतिहास में नारी का योगदान पुरुषों की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम नहीं है। इतिहास के पन्नों पर दृष्टव्य है -

उन महान नारियों के त्याग और बिलदान। नारी शान्ति और क्रान्ति, ज्योति और ज्वाला दोनों रूपों में समाज के रंग मंच पर अभिनय करती आयी है।

यह शताब्दियों का सत्य है “नारी नर की खान” इस लोक के सर्वोत्कृष्ट तीर्थकर पद पर आसीन महान आत्माओं को जन्म देने वाली स्त्री ही होती है। देवता ही सर्वप्रथम उन्हें ही वन्दन करते हैं। इसलिए जैन दर्शन में कहा भी है कि नारी कभी सातवें नरक में नहीं जा सकती, क्योंकि उसके हृदय में ऐसी कठोरता, क्रूरता आ ही नहीं सकती जो उसे सातवें नरक के बंधन में बांधे।

नारी का सर्वोत्कृष्ट रूप माँ है। मातृत्व ही नारी का चरम विकास है। यही नारी की अंतस्चेतना है। मातृत्व ही नारी हृदय का सार है। वात्सल्य का निर्र्झर झरना प्रत्येक नारी हृदय का आविर्भूतगान है। नारी प्रतीक है प्रेम की, नारी प्रतीक है श्रद्धा की, भक्ति की, कोमलता की। प्रत्येक मानव के भीतर एक अटूट अभीप्सा है। प्रेम की, नारी हृदय इस प्रेम की पूर्ति के लिए सदा ही प्रवाहमान रहा है। नारी का यही प्रेम और वात्सल्य मानव जाति को हरा भरा रखता है। मनुष्य हृदय को जीवित रखा है, वरन मनुष्य शायद जड़ हो जाए। उसके भीतर रही हुई संवेदनशीलता शायद लुप्त हो जाय। जो स्नेह और सहानुभूति एक स्त्री दे सकती है, वह पुरुष नहीं दे सकता क्योंकि प्रेम मांगता है समर्पण और नारी प्रतीक है समर्पण की।

रूस के एक वैज्ञानिक ने नवजात शिशु बन्दरों को लेकर एक प्रयोग किया, उसने एक बड़ा यन्त्र बनाया। उसमें तार लगाए गये बन्दरों के उछलने-कूदने के सभी उपाय रखे गये। कुछ कृत्रिम बन्दरियों को भी उस यन्त्र में रखा गया, छोटे बन्दर उछलते कूदते हैं। कृत्रिम बन्दरियों को माता समझकर उनके साथ चिपकते हैं। उन्हें दूध पिलाने एवं खिलाने के सभी प्रकार के साधन रखे गये। समय बीतने पर वैज्ञानिक ने देखा कि बन्दर बड़े हो गये हैं, किन्तु सभी विक्षिप्त हो गये हैं, पागल हो गये हैं। कारण खोजा गया तो पता चला कि उन्हें उनकी माँ का प्रेम नहीं मिला। प्रेम के बिना वे विक्षिप्त हो गये। इसीलिए प्राचीन युग में जो गुरु कुल होते थे, उनमें ऋषि प्रवर तो शिष्यों को शिक्षा प्रदान कर उनकी बुद्धि को विकसित करते थे। जब कि ऋषि पत्नी, गुरुमाता अपनी वात्सल्यमय धारा से उनके हृदय को विकसित करती थी। वह माता मंदालसा ही थी जिसके संस्कारों ने सात भव्य माताओं को महापथ पर लगा दिया।

मंदालसा वाच्य मुवाच पुनम्।

शुद्धोऽस बुद्धोऽस निरन्जनों ऽसि।

माता जीजाबाई की प्रेरक कहानियों से ही बाल शिवाजी छत्रपति शिवाजी बने, वह राजमति जिसने रथनेमि की वासना पर अंकुश लगाया। वह मदन रेखा ही थी जिसके गोद में पड़ी है पति की खून से लथपथ देह, लेकिन उसने अद्भुत धैर्य से क्षमता से उसके मन को मैत्री करुणा में स्थिर कर उच्चगति प्रदान की। वह रानी कैकयी जिसने देवासुर संग्राम में दशरथ के रथ की खूंटो खिसकने पर उस स्थान पर अपनी अंगुली लगा दी। साधुमार्ग से च्युत होने वाले भवदेव को स्थिर करने वाली नागिला ही थी। तुलसी से महाकवि तुलसीदास बनने के पीछे नारी का ही मर्मस्पर्शी वचन था।

वर्तमान में नारी किसी भी बात में पीछे नहीं है, पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तैयार है। सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा, विजय लक्ष्मी पंडित, मदर टैरेसा, इन्दिरा गाँधी जैसी महान नारियाँ जागृत नारी शक्ति की परिचायक हैं।

देश भक्तिनी झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई की वीरता तथा मेवाड की पद्मिनी इत्यादि, सुकुमार नारियों का जौहर याद करें तो रोगटें खड़े हो जाते हैं। पन्ना धौब के अपूर्व त्याग ने ही महाराणा उदयसिंह को मेवाड का सिंहासन दिलाया, जिससे इतिहास ने नया मोड़ लिया। इसी तरह अनेक नारी रत्नों ने अपने त्याग व बलिदान एवं सतीत्व के तेज से भारतवर्ष की संस्कृति को समुज्ज्वल बनाया।

वर्तमान में नारी पूर्व से अधिक स्वतन्त्र है। तथा झूठी परम्पराओं से बंधी हुई न होते हुए उसके जीवन में अनेक समस्याएँ, अनेक उलझनें लगी हैं। इन समस्याओं और उलझनों की मूलजड़ है, शिक्षा का अभाव। इस ओर कुछ समाज का भी दुर्लभ्य रहा तो कुछ नारी की अपनी परिस्थितियों ने भी उसे शिक्षा से वंचित रखा। शिक्षा के अभाव में उसका बौद्धिक विकास पूर्ण रूपेण नहीं हो पाया, जिस कारण अनेक क्षेत्रों में वह पुरुष पर आश्रित भी रही।

नारी को अपनी समस्याओं का हल स्वयं करना होगा। कोई किसी की समस्या का हल नहीं कर सकता, प्रत्येक को स्वयं ही अपने प्रश्नों का उत्तर ढूँढना होगा। दूसरा तो उत्तर ढूँढने में केवल मार्गदर्शन कर सकता है। उत्तर नहीं दे सकता। अतः नारी को स्वयं ही इन उलझनों को सुलझाना होगा। और इसके लिए आवश्यक है कि वह शिक्षित हो। यहाँ पर शिक्षा का अर्थ शब्दों को रटना मात्र नहीं है। किताबों को पढ़ लेना मात्र नहीं है। शिक्षा का अर्थ है “मानसिक शक्तियों का विकास” नारी की मानसिक शक्तियाँ इस प्रकार विकसित हो जाए कि वह स्वयंमेव स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन के विविध पहलुओं पर आत्मविश्वास पूर्वक निर्णय ले सके, उन्हें सुलझा सके।

शिक्षा से नारी विकास संभव है, लेकिन तब जब वह उसके पवित्र जीवन और सतीत्व को अखण्डित रखता हो। पाश्चात्य स्त्री शिक्षित तो है, किन्तु भारतीय स्त्रियों के आचार विचार कहीं अधिक पवित्र है। केवल बौद्धिक विकास से ही मानव का परमकल्याण सिद्ध नहीं हो सकता, उसके लिए आवश्यक है कि बौद्धिक विकास के साथ साथ आचार विकार का पावित्र्य भी बना रहे।

वर्तमान में नारी शिक्षा की ओर तो अतिद्रुत गति से अग्रसर हो रही है, किन्तु उसकी पवित्रता, उसका सतीत्व उसकी लज्जा और मर्यादा में काफी अन्तर आया है। जिससे नारी की बुद्धि का तो विकास हुआ, किन्तु आत्मा का पतन। अतः नारी व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास अपेक्षित है। न केवल शिक्षा में वरन शिक्षा और आचार के पावन क्षेत्र में और वह तब होगा, जब भौतिक शिक्षा के साथ आध्यात्मिक शिक्षा का समन्वय होगा, और अध्यात्म ही समग्र शिक्षा का मेरुदण्ड होगा।

* * * * *

विश्वशान्ति के सन्दर्भ में नारी की भूमिका

• पं. मुनिश्री नेमीचन्द्र

विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव की उत्तरदायित्वहीनता

विश्व के समस्त प्राणियों में मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। उसका कारण यह है कि एकमात्र मनुष्य जाति ही मोक्ष की या परमात्मपद-प्राप्ति की अधिकारिणी है। अन्य किसी भी गति या जाति का प्राणी मोक्ष का अधिकारी नहीं है। सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के नाते मानव पर सबसे अधिक उत्तरदायित्व है कि वह दूसरे प्राणियों के प्रति सहानुभूति, हृदयता, मैत्री, बन्धुता, करुणा और आत्मीयता रखे। परन्तु वर्तमान युग के अधिकांश मानव ज्ञान और विज्ञान में, बल और बुद्धि में आगे बढ़े हुए होने पर भी उपर्युक्त गुणों से प्रायः कोसों दूर होते जा रहे हैं। इसके कारण क्या परिवार में, क्या समाज में, क्या प्रान्त और राष्ट्र में और क्या जाति और धर्मसंघ में संघर्ष, वैमनस्य, अहंकारवृद्धि, तनातनी एवं अशान्ति फैली हुई। किसी भी प्रान्त या राष्ट्र में शान्ति के दर्शन दुर्लभ होते जा रहे हैं। एक दृष्टि से यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि विश्व के समस्त राष्ट्र या छोटे-बड़े देश, उपनिवेश या द्वीप, अथवा महाद्वीप अशान्ति की ज्वाला में धधक रहे हैं। सभी राष्ट्र या महाद्वीप, उपमहाद्वीप आदि एक दूसरे के प्रति साशंक एवं भयभीत बने हुए हैं। विश्व में प्रायः सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है। बड़े-बड़े राष्ट्रों के मान्यताओं को एक दूसरे पर विश्वास नहीं रह गया है।

विश्व में अशान्ति के कारण

वर्तमान विश्व में अशान्ति के कारणों को खोजा जाए तो मोटे तौर पर निम्नलिखित कारण प्रतीत होंगे -

- (१) युद्ध और आतंक की विभीषिका, तथा परिवार, समाज और राष्ट्र आदि में स्वार्थों को लेकर आन्तरिक कलह एवं वैमनस्य।
- (२) शस्त्रास्त्रवृद्धि, सेना वृद्धि, अणुबम इत्यादि का खतरा।
- (३) रंगभेद, जाति-वर्ण-भेद, राष्ट्रभेद, धर्म-सम्प्रदाय-भेद, राजनैतिक पद और सत्ता के लिए कशमकश, स्वार्थ और अहं की टकराहट आदि विषमताएँ।
- (४) जुआ, चोरी, डकैती, तस्करी, मांसाहार, मद्यपान, शिकार, वैश्यागमन (या वेश्याकर्म), परस्त्री गमन (बलात्कार आदि), दहेज के नाम पर नारी हत्या, निर्दोष पशुवध, निर्दोष मानववध, दंगाफसाद, तोड़फोड़, आगजनी, राहजनी, लूटपाट, आदि दुर्व्यसनों की वृद्धि, उपद्रवों और आपसी झगड़ों में वृद्धि, प्राकृतिक प्रकोप, दुःसाध्य रोगों का प्रकोप इत्यादि।
- (५) सह अस्तित्व आदि राष्ट्रीय पंचशील के पालन में शिथिलता एवं स्वार्थत्याग की कमी।

ये और ऐसे ही कुछ कारण हैं, जिनके कारण विश्व में अशान्ति की आग भड़कती है। आज तो विश्व के सभी राष्ट्र, अथवा एक राष्ट्र के सभी गाँव-नगर टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र आदि के कारण अत्यन्त निकट हो गए हैं। एक छोटे-से गाँव, नगर या राष्ट्र में हुई घटना का प्रभाव फौरन सारे विश्व पर पड़ता है। एक गाँव, नगर या राष्ट्र के माध्यम से, किसी भी निमित्त से हुई अशान्ति की चिनगारी बहुत शीघ्र सारे विश्व में फैल जाती है, अशान्ति की वह छोटी-सी चिनगारी व्यापक अग्निकाण्ड बन कर सारे विश्व को महायुद्ध की ज्वाला में झोंक सकती है। अशान्ति बढ़ती है तो मानवजाति सुखशान्ति पूर्वक जी नहीं सकती।

अशान्ति के कारणों को दूर करने के उपाय

यह सत्य है कि विश्वभर में फैली हुई अशान्ति की आग को बुझाने और शान्ति स्थापित करने के लिये अशान्ति के उपर्युक्त कारणों को दूर करने चाहिए। किन्तु इन में से अधिकांश कारण ऐसे हैं जिन्हें दूर करने के लिए तथा विविध विषयताओं के निवारण के लिए सामूहिक पुरुषार्थ, एवं परिस्थिति - परिवर्तन अपेक्षित है।

साथ ही अशान्ति मिटाने और शान्ति तथा समता स्थापित करने के लिये प्रशमभाव, धैर्य, गाम्भीर्य, सहिष्णुता, क्षमा, तितिक्षा, वात्सल्य, विश्वमैत्री, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, मानवता, राष्ट्रीय पंचशील पालन में दृढ़ता, व्यसनमुक्ति, व्रतपालन में दृढ़ता, सिद्धान्तनिष्ठा, आत्मीयता आदि गुणों को अपनाना, तथा ऐसे गुणसम्पन्न व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा रख कर चलना भी आवश्यक है।

ये गुण पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में विशेषरूप से विकसित

यद्यपि पुरुषों में ऐसे महान् पुरुष हुए हैं अथवा हैं, जिन्होंने समाज, राष्ट्र एवं विश्व की शान्ति में योगदान दिया है, किन्तु पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में ये गुण अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं। देखा गया है कि पुरुषों की अपेक्षा मातृजाति में प्रायः कोमलता, क्षमा, दया, स्नेहशीलता, वात्सल्य, धैर्य, गाम्भीर्य, व्रत-नियम-पालन-दृढ़ता, व्यसनत्याग, तपस्या, तितिक्षा आदि गुण प्रचुरमात्रा में पाये जाते हैं, जिनकी विश्वशान्ति के लिए आवश्यकता है। प्राचीन काल में भी कई महिलाओं, विशेषतः जैन साध्वियों ने पुरुषों को युद्ध से विरत किया है। दुराचारी, अत्याचारी एवं दुर्व्यसनी पुरुषों को दुर्गुणों से मुक्त करा कर परिवार, समाज एवं राष्ट्र में उन्होंने शान्ति की शीतल गंगा बहाई है। कतिपय साध्वियों की अहिंसामयी प्रेरणा से पुरुषों का युद्धप्रवृत्त मानस बदला है।

साध्वी मदनरेखा ने दो भाइयों को युद्धविरत कर शान्ति स्थापित की

मिथिलानरेश नमिराज और चन्द्रयश दोनों सहोदरभाई थे। परन्तु उनकी माता मदनरेखा के बिछुड़ जाने से दोनों को यह रहस्य ज्ञात नहीं था। एक बार नमिराज और चन्द्रयश दोनों में एक हाथी को लेकर विवाद बढ़ गया और दोनों में गर्मागर्मी होते-होते परस्पर युद्ध की नौबत आ पहुँची। दोनों ओर से सेनाएँ युद्ध के मैदान में आ डटीं।

महासती मदनरेखा ने जब चन्द्रयश और नमिराज के बीच युद्ध का संवाद सुना तो उनका सुषुप्त मातृहृदय बिलख उठा। वात्सल्यमयी साध्वी ने सोचा-अगर इस युद्ध को न रोका गया तो अज्ञान और मोह के कारण धरती पर रक्त की नदियाँ बह जाएँगी। यह पवित्रभूमि नरमुण्डों से श्मशान बन जाएगी। लाखों

के प्राण चले जाएँगे। साध्वीजी का करुणाशील हृदय पसीज उठा। वह युद्धाग्नि को शान्त करने तथा दोनों राज्यों में शान्ति की शीतल हवा फैलाने के लिए अपनी गुरुणीजी की आज्ञा लेकर दो साध्वियों के साथ चल पड़ी युद्धभूमि के निकटवर्ती चन्द्रयश राजा के खेमे की ओर।

युद्धभूमि में साध्वियों का आगमन जान कर पहले तो चौंका, फिर अपनी वात्सल्यमयी माँ को श्वेतवस्त्रधारिणी तेजस्वी साध्वी के वेष में देखा तो उसने श्रद्धापूर्वक सविनय प्रणाम किया और कुशलमंगल पूछा। साध्वी मदनरेखा ने सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा - 'वत्स! लाखों निरपराध मानवों के संहार से इस पवित्र भूमि को बचाओ। परस्पर शान्ति और सौहार्द स्थापित करो। नमिराज कोई पराया नहीं, तुम्हारा ही सहोदय छोटा भाई है। मैं तुम दोनों की गृहस्थपक्षीया माँ हूँ।'

यह सुनते ही चन्द्रयश के मन का रोष भ्रातृस्नेह में बदल गया। वह अपने सहोदय छोटे भाई नमिराज से मिलने के लिये मचल पड़ा। साध्वी मदनरेखा वहाँ से नमिराज के निकट पहुँची। उसे भी सारा रहस्य खोल कर समझाया। जब नमिराज को ज्ञात हुआ कि यह उसकी जन्मदात्री माँ है और जिससे वह युद्ध करने को उद्यत हो रहा है, वह उसका सहोदय बड़ा भाई है। बस, नमिराज भी भाई से मिलने को आतुर हो उठा। चन्द्रयश ने ज्यों ही नमिराज को आते देखा, भ्रातृवात्सल्यवश दौड़ कर बाहों में उठा लिया। फिर छाती से चिपका लिया। दोनों का रोष वात्सल्यभाव में परिणत हो गया।

महासती मदनरेखा की प्रेरणा से युद्ध रुक गया। दोनों ओर की सेना में स्नेह और शान्ति के बादल उमड़ पड़े। युद्धभूमि शान्तिभूमि बन गई। यह था-युद्ध से विरत करने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करने का एक वात्सल्यमयी साध्वी का पुरुषार्थ।

महासती पद्मावती ने पिता-पुत्र को युद्ध से विरत किया

दूसरा प्रसंग है- महासती पद्मावती का जो चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की रानी थी। उसका अंगजात पुत्र था -करकण्डू। वह एक चाण्डाल के यहाँ पल रहा था। पद्मावती साध्वी बन गई थी। कालान्तर में कंचनपुर के राज्य का कोई उत्तराधिकारी न होने से करकण्डू को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया। राजा करकण्डू और महाराजा दधिवाहन दोनों में एक ब्राह्मण को एक गाँव इनाम में देने को लेकर विवाद खड़ा हो गया। महाराज दधिवाहन ने अहंकारवश कंचनपुर पर चढ़ाई कर दी। करकण्डूराजा भी अपनी सेना लेकर युद्ध के मैदान में आ डटा। साध्वी पद्मावती को पता लगा कि एक मामूली-सी बात को लेकर पिता-पुत्र में युद्ध ठनने वाला है। उसका करुणाशील एवं अहिंसापरायण हृदय कांप उठा।

वह अपनी गुरुणीजी की आज्ञा लेकर तुरंत ही करकण्डू के खेमे में पहुँच गई। एक श्वेतवसना तेजस्वी साध्वी को युद्धक्षेत्र में देख कर करकण्डू को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने श्रद्धावश नतमस्तक होकर युद्धभूमि में आगमन का कारण पूछा तो साध्वीजी ने वात्सल्यपूर्ण वाणी में कहा - 'वत्स! मैं तुम्हारी गृहस्थपक्षीया माता पद्मावती हूँ।' फिर पद्मावती ने उसके जन्म तथा चाण्डाल के यहाँ पलने की सारी घटना सुनाई तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् साध्वी पद्मावती ने कहा - 'वत्स! महाराज दधिवाहन तुम्हारे पिता हैं। पिता और पुत्र के बीच अज्ञात रहस्य का पर्दा था, इसलिए तुम दोनों एक दूसरे के शत्रु बन कर युद्ध करने पर उतारु हो गए हो। पिता-पुत्र में परस्पर युद्ध होना एक भयंकर बात होगी! युद्ध से अशान्ति ही बढ़ेगी, किसी का भी कल्याण नहीं होगा।'

यह सुन कर करकण्डू राजा का हृदय पिता के प्रति श्रद्धावन्त हो गया। उसने श्रद्धावश कहा -“मैं अभी जाता हूँ, पिताजी के चरणों में पड़ कर उनसे क्षमा मांगता हूँ।”

उधर पद्मावती महासती भी शीघ्रातिशीघ्र राजा दधिवाहन के खेमे में पहुँची और बात-बात में उसने कहा “करकण्डू चाण्डालपुत्र नहीं, वह आपका ही पुत्र है। मैं ही उसकी माँ हूँ।” यह कह कर रानी ने सारा रहस्योद्घाटन कर दिया। राजा दधिवाहन का हृदय पुत्र वात्सल्य से छलछला उठा। वह भी पुत्र-मिलन के लिए दौड़ पड़ा। उधर करकण्डू भी पिता से मिलने के लिये दौड़ा हुआ आ रहा था। पिता-पुत्र दोनों हार्दिक स्नेहपूर्वक मिले। पिता ने पुत्र को चरणों में पड़े देख हृदय से आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार महासती पद्मावती की सत्प्रेरणा से दोनों जनपदों (देशों) में होने जा रहे भयंकर युद्ध का संकट भी टला और पिता-पुत्र दोनों के बीच स्नेह और शान्ति की रसधारा बह चली।

इस शान्ति और स्नेह की सूत्रधार थी, महासती पद्मावती।

शान्ति की अग्रदूत सीता महासती

इसी प्रकार महासती सीता ने जब देखा कि पिता (राम) और उनके दोनों पुत्रों (लव और कुश) में भयंकर युद्ध की नौबत आ गई है। अगर मैंने बीच बचाव नहीं किया तो ये दोनों वीरपुत्र अपने पिता पर ही शस्त्रप्रहार कर बैठेंगे। तब यह दोनों पक्षों की अशान्ति की आग व्यापक रूप धारण करके सारे कुल को भस्म कर देगी। अतः सीता झटपट अपने पुत्रों के पास पहुँची और समझाया कि बेटे! क्या कर रहे हो? जरा सोचो, किस पर शस्त्र प्रहार कर रहे हो? ये तुम्हारे पिता हैं! पहले तो वे दोनों झुंझलाये, परन्तु बाद में माता के कहने से रुक गए। उधर सीता ने रामचन्द्रजी से भी कहा-‘नाथ! ये आपके ही पुत्र हैं। इन पर वात्सल्य बरसाने के बदले आप शस्त्र बरसा रहे हैं? इन्हें हृदय से लगाइए, आशीर्वाद दीजिए।’ इस प्रकार कहने पर श्रीराम ने अपने दोनों पुत्रों को छाती से लगाया और आशीर्वाद दिया। युद्ध बंद हो गया।

यह था सीता महासती द्वारा युद्धबन्दी द्वारा शान्ति का समयोचित उपक्रम।

सती द्रौपदी की क्षमा ने दोनों कुलों का संघर्ष रोका

कौरवों और पाण्डवों का युद्ध चल रहा था। कभी वह किसी निमित्त को लेकर उग्र हो जाता, कभी मन्द। इसी दौरान एक दिन अश्वत्थामा ने रात्रि को जब पाँचों पाण्डव तथा उनके पाँचों नन्हें शिशु सोये हुए थे, उन्हें पाण्डव शमझ कर वध कर डाला। द्रौपदी को जब पता लगा तो वह चित्कार उठी। सभी पाण्डव जग गए और अपराधी को खोजने लगे। भीम उसे पकड़ कर लाया। सबने कहा इसे द्रौपदी ही दण्ड देगी, क्योंकि इसने उसके हृदय के टुकड़ों का वध किया है। द्रौपदी के सम्मुख अपराधी को प्रस्तुत करते हुए भीम ने कहा - “इस दुष्ट ने तुम्हारा भयंकर अपराध किया है, बोलो, इसे क्या दण्ड देना चाहिए।” द्रौपदी ने धीरत गम्भीरता पूर्वक विचार करके कहा -“इसे क्षमा कर दो। इसको मारने से इसकी माँ को भी उसी प्रकार का दुःख होगा, जैसा मुझे अपने पुत्रों को इसके द्वारा मारने का दुःख है। अतः इसे छोड़ दो। अन्यथा, यह वैर की परम्परा आगे बढ़ेगी। इसके पक्षवाले आप से वैर का बदला लेंगे, फिर आपके पक्ष के लोग उनसे बदला लेंगे। इस प्रकार की हिंसा-प्रति हिंसा से अशान्ति की आग बढ़ेगी। दोनों पक्षों को शान्ति नहीं मिलेगी। इसलिए क्षमा से ही इस वैर का अन्त और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।”

यह थी सती द्रौपदी के द्वारा अशान्ति को रोकने की अमृतमय विचार छाया।

पारिवारिक एवं सामाजिक शान्ति की अग्रणी: सती मदनरेखा

महासती मदनरेखा ने अपने पति यगबाह पर उसके बड़े भाई मणिरथ द्वारा विषाक्त तलवार के प्रहार करने से मरणासन्न अवस्था में उसकी मानसिक शान्ति और शुभलेश्या के लिए चार शरणों का स्वरूप समझाया तथा बड़े भाई के प्रति लेशमात्र भी क्रोध, द्वेष, बैरभाव आदि तथा अपनी पत्नी एवं सन्तान के प्रति मोहभाव मन से निकलवा दिया। उसके कारण परिवार में, राज्य में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं हुई, न ही महासती मदनरेखा के पुत्र में किसी प्रकार से बैर का बदला लेने की भावना जगी।

इस प्रकार सती मदनरेखा ने आत्मशान्ति, मानसिक शान्ति एवं पारिवारिक शान्ति रखने का प्रयत्न किया। यह अद्भुत पुरुषार्थ विश्व शान्ति का प्रेरक था।

शासनसूत्र महिला के हाथ में हो तो युद्ध की विभीषिका मिट जाए

आज भी विश्व में कई जगह युद्ध, आतंक, कलह एवं संघर्ष के बादल मंडरा रहे हैं, वे कब कहर बरसा दें कुछ कहा नहीं जा सकता। ताजा खाड़ी युद्ध कितनी अशान्ति का कारण बना? ईरान और अमेरीका के राष्ट्राध्यक्षों ने इस युद्ध में लाखों मनुष्यों का संहार एवं अरबों डालरों का व्यय किया, इसके उपरान्त भी जान-माल की बेहद क्षति हुई सो अलग! परिणाम में अशान्ति ही मिली, क्योंकि यह दो व्यक्तियों के अहंकार की लड़ाई थी! अगर कोई महिला राष्ट्रेनेत्री होती तो निःसन्देह यह सब नहीं करती! उसकी करुणा, वत्सलता और मानवता ही उसे ऐसा अशान्तिजनक कार्य न करने देती।

विश्व के राष्ट्रों में परस्पर भ्रातृत्वभाव, सह-अस्तित्व, सौहार्द एवं इन सबके द्वारा विश्वशान्ति स्थापित करने के लिए पहले 'लीग ऑफ नेशन्स' बना, तत्पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) इसी उद्देश्य से स्थापित हुआ था। परन्तु उसका नेतृत्व पुरुष के बजाय किसी करुणाशील वात्सल्यमयी महिला के हाथ में होता तो आज विश्व-राष्ट्रों में जो अशान्ति है, वह नहीं दिखाई देती। दुर्भाग्य से, इस संस्था पर भी वर्चस्व प्रायः पुरुषों का ही रहा। अगर पुरुष के बदले कोई वात्सल्यमयी महिला इसकी सूत्रधार होती तो परिवार, समाज एवं राष्ट्रों के बीच होने वाले मनमुटाव, संघर्ष, आन्तरिक कलह, अकार्य अशांति अवश्य ही मिट जाते।

विश्व के कई राष्ट्रों के आपसी तनाव, रस्साकस्सी और आन्तरिक विग्रह को देखकर सर्वोदयी सन्त विनोबा ने एक बार ये उद्गार निकाले थे- पुरुषों की अपेक्षा किन्हीं योग्य महिलाओं के हाथों में राष्ट्रों का शासन सूत्र सौंपना चाहिए, क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में प्रायः नम्रता, सहनशीलता, निरहंकारता, वत्सलता एवं अहिंसा की शक्ति आदि गुण अधिक मात्रा में विकसित होते हैं। महिला के हाथ में शासनसूत्र आने पर युद्ध, संघर्ष और तनाव की विभीषिका अत्यन्त कम हो सकती है, क्योंकि महिलाओं का करुणाशील हृदय युद्ध और संघर्ष नहीं चाहता। वह विश्व में शान्ति चाहता है।

इसी दृष्टि से एक बार स्व. विजयलक्ष्मी पण्डित संयुक्त राष्ट्रसंघ की अध्यक्ष चुनी गई थी। यह बात दूसरी है कि उन्हें राष्ट्र-राष्ट्र के बीच शान्ति स्थापित करने का अधिक अवसर नहीं मिल सका। यदि वह अधिक वर्षों तक इस पद पर रहती तो हमारा अनुमान है कि वह विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में शान्ति का वातावरण बना देती।

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो प्रतीत होगा कि विश्व में शान्ति के लिए तथा विभिन्न स्तर की शान्त क्रान्तियों में नारी की असाधारण भूमिका रही है। जब भी शासनसूत्र उसके हाथ में आया है, उन्होंने पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता निष्पक्षता, एवं ईमानदारी के साथ उसमें अधिक सफलता प्राप्त की है।

इन्दौर की रानी अहिल्याबाई, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कर्णाटक की रानी चेत्रफा, महाराष्ट्र की चांदीबीबी सुल्ताना, इंग्लैण्ड की साम्राज्ञी विक्टोरिया, इजराइल की गोल्डा मेयर, श्रीलंका की श्रीमती बदरनायके ब्रिटेन की एलिजाबेथ, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी आदि महानारियाँ इसकी ज्वलन्त उदाहरण हैं। पुरुष शासकों की अपेक्षा स्त्री शासिकाओं की सूझबूझ, करुणापूर्ण दृष्टि, सादगी, सहिष्णुता, मितव्ययिता, अविलासिता, तथा शान्ति स्थापित करने की कार्यक्षमता इत्यादि विशेषताएँ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं।

विश्व शान्ति के कार्यक्रम में महिला द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका

यही कारण है कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी को कई देश के मान्धाताओं ने मिल कर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रमुखा बनाई थी। उनकी योग्यता से सभी प्रभावित थे। इन्दिरा गाँधी ने जब गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के समक्ष शस्त्रास्त्र घटाने, अणुयुद्ध न करने तथा आणविक अस्त्रों का विस्फोट बन्द करने का प्रस्ताव रखा तो प्रायः सभी राष्ट्रों ने विश्वशान्ति के सन्दर्भ में प्रस्तुत इन प्रस्तावों का समर्थन एवं स्वागत किया। ऐसा करके स्व. इन्दिरा गाँधी ने सिद्ध कर दिया कि एक महिला विश्वशान्ति के कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

इतना ही नहीं, जब भी किसी निर्बल राष्ट्र पर दबाव डालकर कोई सबल राष्ट्र उसे अपना गुलाम बनाना चाहता, तब वे निर्बलराष्ट्र के पक्ष में डटी रहतीं, खुलकर बोलती थीं। हालाँकि इस के लिए उनके अपने राष्ट्र को सबल राष्ट्रों की नाराजी और असहयोग का शिकार होना पड़ा। बंगलादेश (उस समय के पूर्वी पाकिस्तान) पर जब (पश्चिमी) पाकिस्तान द्वारा अमेरिका के सहयोग से अत्याचार दहाया जाने लगा, तथा वहाँ के निरपराध नागरिकों, बुद्धिजीवियों और महिलाओं पर हत्या, लूटपाट, बलात्कार और दमन का चक्र चलाया जाने लगा तब करुणामयी इन्दिरा गाँधी का मातृहृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने तुरन्त संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपनी आवाज उठाई। उसकी उपेक्षा होते देख भारत की आर्थिक क्षति उठा कर भी यहाँ के कुशल योद्धाओं को वहाँ के नागरिकों और नेताओं की पुकार पर भेजा और कुछ ही दिनों में बंगलादेश को पाकिस्तान के चंगुल से छुड़ा कर स्वतंत्र कराया।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि विश्वशान्ति के कार्य में एक महिला अवश्य ही कार्यक्षम हो सकती है।

भारतीय स्वतंत्रता के लिए जब महात्मा गाँधी जी ने अहिंसक संग्राम छेड़ा तब कस्तूरबा गाँधी आदि हजारों नारियाँ उस आन्दोलन में अपने धन-जन की परवाह किये बिना कूद पड़ी थीं। उन्होंने जेल की यातनाएँ भी सहीँ, सत्याग्रह में भी भाग लिया।

फ्रांसीसी स्वतंत्रता-संग्राम की संचालिका 'जोन ऑफ आर्क' भी इसी प्रकार की महिला थी, जिसने राष्ट्रभक्ति से प्रेरित होकर अपनी सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देकर भी राष्ट्र की शान्ति और अमनचैन के लिए कार्य किया।

सेवा और सहानुभूति के क्षेत्र में नारी का योगदान

सेवा और सहानुभूति भी विश्वशान्ति के दो फेफड़े हैं। इन दोनों क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा विश्वभर की महिलाएँ आगे हैं। उन्होंने अपने शरीर की सुख-सुविधाओं तथा ऐश-आराम की परवाह किये बिना सेवा के विभिन्न कार्यक्रमों में अपना योगदान दिया है, दे रही हैं। हॉस्पिटलों में घायलों, दुःसाध्य रोगियों, कुष्ठरोगियों तथा विभिन्न चेपी रोगों से पीड़ित रोगियों विशेषतः प्रसवकाल की पीड़ा से पीड़ित महिलाओं की सेवा के लिए विश्वभर में सर्वत्र नर्सों तो कार्य करती ही हैं, उनके अलावा भी ऐसी महिलाएँ भी हैं, जो सर्दियों, गर्मियों, वर्षा आदि की परवाह किये बिना निःस्वार्थ भाव से चिकित्सालयों में अपनी सेवाएँ देती रहती हैं। गुजरात में कु. काशीबहन मेहता (जैन) तथा महाराष्ट्र में श्रीमती मनोरमाबहन, ब. खण्डेरिया (जैन) प्रभृति कई महिलाएँ वर्तमान में चिकित्सा-सेवा के क्षेत्र में निःस्वार्थरूप से पूर्णरूपेण सेवा दे रही हैं। कई महिलाएँ शिक्षा के क्षेत्र में, कई महिलाएँ उदाहरणार्थ-बम्बई में ललिताबहन, अहमदाबाद में लीलाबहन मु-शाह, कलकत्ता में प्राणकुंवर बहन आदि बहनें महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने वाली संस्थाओं में अपनी सेवाएँ दे रही हैं।

मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि आँखों के ऑपरेशन के समय नेत्ररोगी की सेवा सुश्रुषा में सैकड़ों महिलाएँ (जो पेशे से नर्स नहीं हैं) अपना योगदान देती हैं।

पशु-पक्षियों की सेवा और रक्षा करना भी विश्व शान्ति का अंग है। महात्मा गाँधी जी की शिष्या मीराबहन (मिस स्लेड) ने हिमालय की गोद में रह कर 'पशुलोक' संस्था के द्वारा वहाँ के मानवों और पशुपक्षियों की सेवा में अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया था।

अनाथ, असहाय, एवं अभावपीड़ित बालकों, मनुष्यों तथा भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक प्रकोपों से पीड़ित मानवों की सेवा में मातृहृदय मदरटेरेसा ने अपना समग्र जीवन समर्पित कर दिया है।

बंगाल के सतीशचन्द्र विद्याभूषण, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि भारतीयजनों की माताओं ने भूकम्प, बाढ़ दुष्काल तथा अन्य प्राकृतिक प्रकोपों से पीड़ित नरनारियों की सेवा के लिए अपने हाथों से दान की अजस्र धारा प्रवाहित की।

रेड क्रॉस आन्दोलन को जन्म देने वाली 'फ्लोरेस नाइटिंगेल' को कौन नहीं जानता? जिसने युद्ध में घायलों तथा अन्यान्य प्रकार से पीड़ितों की सेवा के लिए महिलाओं की टीम विभिन्न देशों में तैयार की थी। अनेक रोगों को मिटाने में अचूक 'रेडियम' की आविष्कारक 'मैडम क्यूरी' का नाम विश्व शान्ति के इतिहास में अमर है।

प्लेग, मलेरिया, कैसर, टी.बी. आदि दुःसाध्य व्याधियाँ, भूकम्प, बाढ़, दुष्काल आदि प्राकृतिक प्रकोप, तथा अन्य उपद्रव भी मानवजाति की अशान्ति के कारण हैं। इन और ऐसी ही अन्य प्रकोपों या उपद्रवों के समय पीड़ित जनता की सेवा सुश्रुषा करना तथा रोग-निवारण में सहयोग देना इत्यादि कार्य भी शान्तिदायक हैं, इन सेवाकार्यों में भी पुरुषों के अनुपात में महिलाएँ बहुसंख्यक रही हैं।

दुर्व्यसनों से बचाने में महिलाओं का हाथ

जुआ, चोरी (डकैती, तुस्करी ठगी, लूटपाट आदि), मांसाहार, शिकार, मद्यपान, वैश्यामन, परस्त्रीगमन सिगरेट, बीड़ी, अफीम, हिरोइन ब्राउनशुगर आदि नशीली चीजों में से किसी भी प्रकार का

दुर्व्यसन हो, वह मानजीवन को अशान्त एवं पराधीन बना देता है। जो देश दुर्व्यसनों का जितना अधिक शिकार हो जाता है, वहाँ उतना ही अधिक परतंत्रता, गुलामी, आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन, शोषण, अन्नादि की कमी, स्वार्थान्धता, ठगी, भ्रष्टाचार, तस्करी आदि का दौरा चलता है, जो शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक अशान्ति पैदा करता है। इन दुर्व्यसनों के शिकार महिलाओं की अपेक्षा पुरुष ही अधिक है। पुरुषों को, खासतौर से अपने पति तथा पुत्रों को इन दुर्व्यसनों से बचाने में अथवा दुर्व्यसन छुड़ाने में पुरुषों की अपेक्षा महिलावर्ग का हाथ अधिक रहा है। जैन साध्वियाँ तो गाँव-गाँव में पैदल भ्रमण (विहार) करके इन दुर्व्यसनों का त्याग कराती ही हैं, सामाजिक कार्यकर्त्री, जनसेविका बहनों ने भी इस क्षेत्र में काफ़ी कार्य किया है, और इन दुर्व्यसनों से परिवार समाज और राष्ट्र में बढ़ती हुई अशान्ति निवारण किया है। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान शराब छुड़ाने आदि आन्दोलनों में पिकेटिंग करके तथा अपमान, कष्ट आदि सहकर भी कई, प्रबुद्ध महिलाओं ने शान्ति स्थापित की है। छत्तीसगढ़, मयूरभंज इत्यादि आदिवासी क्षेत्रों में जनता में बढ़ती हुई शराब खोरी, तथा नशेबाजी को रोकने के लिए वहाँ की एक आदिवासी महिला-विन्ध्येश्वरी देवी ने जी जान से कार्य किया है। वह जहाँ-जहाँ भी जाती, लोगों को पुकार-पुकार कर कहती - 'शराब तथा नशीली चीजें छोड़ो। हमारा भगवान शराब आदि का सेवन नहीं करता। इससे तन, मन, धन और जन की भयंकर हानि होती है और अशान्ति बढ़ती है।' उसके इन सीधे सादे, किन्तु असरकारक शब्दों को सुनकर उस क्षेत्र के लाखों लोगों ने शराब तथा अन्य नशीली चीजें छोड़ दीं।

परस्त्री-गमन एवं वेश्यागमन (अथवा वेश्याकर्म) ये दो सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में अशान्ति के बहुत बड़े कारण हैं। इन दोनों महापापों के कारण प्राचीनकाल में भी और वर्तमान काल में भी राष्ट्र के धन-जन की बहुत-बड़ी हानि हुई है। सुरा और सुन्दरी के चक्कर में पड़कर बड़े-बड़े राजाओं, बादशाहों, शासनकर्ताओं, पदाधिकारियों, भ्रष्टाचारियों, ने अपना जीवन बर्बाद किया, और पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में संघर्ष अशान्ति और वैमनस्य के बीज बोये। परन्तु अशान्ति के कारणभूत इन दोनों महापापों से बचाने का अधिकांश श्रेय महिलाओं को है। भारतीय सती-साध्वियों तथा पतिव्रता महिलाओं ने कई पुरुषों को इन दोनों दुर्व्यसनों के चंगुल से छुड़ाया है। कई शीलवती महिलाओं ने तो अपनी जान पर खेल कर अनेक भ्रष्ट शासकों, सत्ताधीशों, धनाधीशों तथा भ्रष्ट अधिकारियों को इन दोनों कुव्यसनों के चंगुल से छुड़ाया है। कई शीलवती नारियों से परस्त्री सेवनरत कामुक पुरुषों का हृदयपरिवर्तन एवं जीवन-परिवर्तन भी किया है। कई महान् नारियों ने विधवा एवं वयस्क नारियों को कुमार्ग पर भटकने से रोक कर शिक्षा और समाजसेवा के कार्यों में लगा दिया। महासती राजीमति ने रथनेमि को पथभ्रष्ट होने से रोक कर पुनः संयम के पवित्र पथ पर आरुढ़ किया था। भक्त मीरा बाई ने गुसाईंजी की परस्त्री के प्रति कुदृष्टि की वृत्ति बदली है। इसी प्रकार शीलवती मदनरेखा, महासती सीता, द्रौपदी आदि महान् सतियों ने परस्त्रीगामी पुरुषों को सत्यपथ पर लाने का पुरुषार्थ किया।

अन्धविश्वास और कुरुद्वियों के पालन से बढ़ने वाली अशान्ति का निवारण

अन्धविश्वास और कुरुद्वियों तथा कुप्रथाओं (पशुबलि, नरबलि, मद्यार्पण आदि) के पालन से मानव जीवन में अशान्ति बढ़ती है। परन्तु ऐसी कई साहसी और निर्भीक महिलाएँ हुई हैं, जिन्होंने समाज में प्रचलित निरक्षरता, अशिक्षा, देहेज, पर्दाप्रथा, मृत्युभोज, तथा विविध अन्धपरम्पराएँ, अन्धविश्वास एवं कुरुद्वियों को स्वयं तोड़ा है और समाज एवं जाति को ऐसी कुप्रथाओं तथा कुरुद्वियों से बचाया है। वात्सल्यमयी माताएँ ही इस प्रकार की अशान्तिवर्द्धक प्रवृत्तियों से समाज को बचा सकती हैं।

तप, जप, त्याग, व्रत, नियम में नारी पुरुषों से आगे

सभी धर्मों के धर्मस्थानों को टटोला जाए तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ श्रद्धा-भक्ति, तप, जप, व्रत-नियम, त्याग-प्रत्याख्यान आदि धर्म क्रियाओं में आगे रही हैं। वैसे देखा जाए तो तप, जप, ध्यान, त्याग, नियम, व्रत, प्रत्याख्यान आदि से आत्मा की शक्तियाँ तो विकसित होती हैं, किन्तु इनसे भूकम्प, बाढ़, दुष्काल, कलह, युद्ध, आतंक, उपद्रव, आदि परम्परा से अशान्ति के कारण भी दूर हो जाते हैं, अथवा अशान्ति कम हो जाती है। 'यदि तप, जप आयम्बिल के सहित समूहिक रूप से व्यवस्थित ढंग से किये जाएँ तो निःसन्देह अशान्ति के बीज नष्ट हो सकते हैं। तप, जप, त्याग आदि पूरी समझदारी और सूझबूझ से किये जाएँ तो शारीरिक और मानसिक बल एवं स्वास्थ्य आदि में वृद्धि हो सकती है।

महिलाओं को अवसर मिलना चाहिये -

आज भी जीवन के हर क्षेत्र की प्रतियोगिता में नारी अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही है, दे सकती है। उत्तर दायित्व का जो भी कार्य महिलाओं को सौंपा जाता है, उसे वे सफलता के साथ सम्पन्न करती हैं। भारतीय धर्मग्रन्थ भी एक स्वर से कहते हैं -

‘यत्र नार्यस्त पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।’

‘जहाँ नारियों की पूजा-भक्ति होती है, वहाँ देवता (दिव्य पुरुष) क्रोड़ा करते हैं।’ यह प्रतिपादन अक्षरशः सत्य है।

वस्तुतः नारी शान्ति और भावना की मूर्ति है -

नारी समाज का भावपक्ष है और नर है -कर्मपक्ष। कर्म को उत्कृष्टता और प्रखरता भर देने का श्रेय भावना को है। नारी का भाव-वर्चस्व जिन परिस्थितियों एवं सामाजिक आध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में बढ़ेगा, उन्हीं में सुखशान्ति की अजख धारा बहेगी। माता, भगिनी, धर्मपत्नी और पुत्री के रूप में नारी सुख शान्ति की आधारशिला बन सकती है, बशर्ते कि उसके प्रति सम्मानपूर्ण एवं श्रद्धासिक्त व्यवहार रखा जाए। यदि नारी को दबाया-सताया न जाए तथा उसे विकास का पूर्व अवसर दिया जाए तो वह ज्ञान में, साधना में, तप-जप में, त्याग-वैराग्य में, शील और दान में, प्रतिभा, बुद्धि और शक्ति में, तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में पिछड़ी नहीं रह सकती। साथ ही वह दिव्य भावना वाले व्यक्तियों के निर्माण एवं संस्कार प्रदान में तथा परिवार समाज, एवं राष्ट्र की चिरस्थायी शान्ति और प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। परम्परा से विश्वशान्ति के लिए वह महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। नारी मंगलमूर्ति है, वात्सल्यमयी है, दिव्य शक्ति है। उसे वात्सल्य, कोमलता, नम्रता, क्षमा, दया सेवा आदि गुणों के समुचित विकास का अवसर देना ही उसका पूजन है, उसकी मंगलमयी भावना को साकार होने देना, विश्वशान्ति के महत्वपूर्ण कार्यों में उसे योग्य समझ कर नियुक्त करना ही उसका सत्कार-सम्मान है। तभी वह विश्वशान्ति को साकार कर सकती है।

* * * * *

अतीत की प्रमुख जैन साध्वियाँ

• प्रवर्तक श्री रमेश मुनि

सुधारस से सराबोर सम्यक् साधना-उपासना की स्रोतस्विनी को अन्तर्मुखी आराधना कहा गया है। सिद्धालय तक पहुँचने का स्पष्ट-स्वच्छ-सरल-सुगम सोपान है। मृत्युंजयी बनने का सबल-उपाय एवं परमात्मा-भाव को प्राप्त करने का उत्तम सत्यथ है।

जिस तरह लोक की अनादिता स्वयं सिद्ध है। उसी तरह साधना महापथ की भी अनादिता अपने आप में सन्निहित है। जिसके लिए शपथ की या किसी उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं तीर्थकारों की अभिव्यक्ति रही है साधना मार्ग के लिए -

जे के वि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति जे गमिस्संति।

ते सव्वे सामाइय प्वंमावेणं मुणेयव्वं॥

अर्थात् जो साधक भूतकाल में मोक्ष गये हैं। वर्तमान काल में जाते हैं और भविष्य काल में जायेगे। यह सामायिक साधना का ही प्रभाव है। ऐसा जानना चाहिये। वस्तुतः मुमुक्षु आत्माओं के लिए साधना का मार्ग सदा सर्वदा उपादेय एवं आचरणीय रहा है।

माना कि साधना के मंगल-पथ पर हर राही नहीं चल पाता, न इसका आचरण ही कर पाता है न इसके गूढ़तम (मोक्ष मार्ग) स्वरूप को सुन समझ पाता है और यह भी आवश्यक नहीं कि प्रत्येक नर-नारी साधना में लगे या साधक बने। क्योंकि साधक बनने के लिए योग्यता की महत्वपूर्ण भूमिका का होना जरूरी है। योग्यता के बिना सम्यक् साधना अभीष्ट फलदायिनी नहीं बन पाती है।

यत्किञ्चित् आत्माएँ ही ऐसी होती हैं- जिनकी अन्तरात्मा तीव्रतम-काषायी भावों से उपरत हो जाती हैं। वे अपने आप में जग जाती हैं। उनके सोचने का तरीका अध्यात्म यथ गामी बन जाता है। जैसे -

“मैं आत्मा हूँ। अनादि अस्तित्व वाला हूँ। जड़ से पृथक हूँ। शाश्वत सिद्ध स्वरूप मेरा निज रूप है। मैं भव्य हूँ। भव्यता मेरा स्वभाव है। सामायिक साधना, साम्यत्व आराधना का कर्तव्य परक अंग है। मुझे चरम सिद्धि के लिए उपासना से जुड़ जाना चाहिये।”

इस तरह जिनका चेतना-उपयोग जागृत हो चुका है। शुभाशुभ कर्म-विपाक के जो विज्ञ बन चुके हैं। “पुनरपि जनं पुनरपि मरणं।” के चक्रव्यूह से मुक्त होने की उत्कृष्ट लालक - तमन्ना जिनके अन्तरंग में उछाले भर रही है साथ ही जो सद्बोध से बोधित हो गये हैं। जो संसार की आश्रममय प्रवृत्ति को विषवत अनुभव करते हैं।

ऐसी आत्माएँ जो अत्यन्त सम्यक्. तत्व के साथ संलग्न होने को तत्पर हैं, के भले ही किसी जाति-कुल-परिवार हो, किसी भी मत-पंथ-सम्प्रदाय की, किसी भी देश-प्रांत शहर-गाँव की हो और किसी

भी वेश-परिधान में हो। सभी को समीचीन रूप में रत्नत्रय (मोक्ष मार्ग) साधना की आराधना का अधिकार है। वे जीव स्त्री रूप (लिंग) में हो चाहे पुरुष, बालक, युवक-युवती हों सभी मार्गानुसारी बन सकते हैं। उन्हें इसका अधिकार है। यहाँ यह जरूर निश्चित है कि भव्यता गुण वाला जीव ही सिद्धत्व पायेगा। क्योंकि वे आत्माएँ सम्यक् तत्व बोध रूप मोक्ष मार्ग साधना वीथी का ठीक तरह से श्रद्धान करती है। वाणी द्वारा यथा स्वरूप का प्ररूपण प्रकथन करते हैं। मन-वाक्-काय द्वारा स्पर्शन करते हैं। इसी कारण इन आत्माओं को मोक्षाभिलाषी या मोक्षाभिमुख कहा गया है।

साधना का महापथ न कोई छुई-मुई का पौधा है और न संकीर्ण जटिलता से पार किया जाये ऐसा पथ, न भाई-भतीजावाद के दलदल से लिप्त। साधना का राज-पथ (द्वार) सभी सम्यक् दृष्टि आत्माओं के लिए अतीत में खुला था। वर्तमान में है और भविष्य में खुला रहेगा अनंत काल पर्यंत।

इस संदर्भ में साधना के सुरम्य-सुभव्य उपवन में जिस तरह श्रमण-मुनि संघ रूप वृक्षों का अक्षय भण्डार देदीप्यमान रहा है। उसी तरह श्रमण उपवन संघ शासनोद्यान में श्रमणी-संघ रूप लताएँ भी अपने आप में गरिमा-महिमावान रही है। श्रमणी-समूह का प्रखर इतिहास सत्य - अहिंसा - संयम - शील - समता-सहिष्णुता-तप-त्याग की सौरभ से सुवासित रहा है। तीर्थकरों द्वारा प्रस्थापित चतुर्विध संघोद्यान को यशस्वी (सुरम्य) बनाने में साध्वी-समाज का अपूर्व योगदान अतीत के अनंत काल से रहा है। आगम निगम के पावन पृष्ठों पर ही नहीं, अपितु जन-जीवन के हृदय पटल पर अमिट रेखा के रूप में अंकित रहा है।

श्रमणी जगत् का साधना मय जीवन जितना उपासना के क्षेत्र में अचल अकम्प रहा है उतना ही परीषहोपसर्ग विजेता भी। जितना स्वयं के लिए जागृत रहा है, उतना ही पर-कल्याण प्रेरक भी। संयम-वैराग्य में जितना अग्रगण्य रहा है उतना ही बहिरंग अंतरंग तप विधि में भी तेजस्वी तपोमय। जितना निर्मल-निर्ममत्व-निरहंकार निर्लेप रहा है उतना ही विनय विवेक आत्म-विज्ञान में उन्नायक ऊर्ध्वमुखी भी। जितना पठन-पाठन से सक्रिय रहा है उतना ही चिंतन मनन-मंथन में तत्पर भी। जितना मृदु-मधुर वृत्तिवाला रहा है षट् काया के लिए उतना ही संयम स्व मर्यादा में कठोर भी। आचार-विचार व्यवहार की पावन गंगा में विशुद्ध होता रहा है, उतना ही ज्ञान-क्रिया का संगम स्थल-तीर्थ स्थल भी और जितना अपने उत्तर-दायित्व और कर्तव्यों के प्रति निर्वाही व कुशल रहा है उतना ही संघ के प्रति समर्पित भी।

वस्तुतः श्रमण संस्कृति के अणु-अणु और कण-कण में जो प्रभाव मुनि-श्रमण संघ का रहा है वैसा ही अद्वितीय अनूठा प्रभाव गौरव श्रमणी जगत् का भी बरकरार रहा है। जिनवाणी के प्रचार-प्रसार-प्रभावना में अतीत की महान श्रमणियों का श्लाघनीय योगदान रहा है। विधि-निषेध का कार्य क्षेत्र जो श्रमणों का रहा है वही श्रमणी जगत् का। विविध प्रकार के तप-त्यागमय प्रवृत्ति में साध्वी-समूह ने अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित किया है। लोमहर्षक-प्राणघातक परिषह-उपसर्गों के प्रहार जितने श्रमणी जगत् ने सहे हैं। प्राणों की कुर्बानी देकर भी धर्म को बचाया। शील-संयम की रक्षा की ओर इतनी सुदृढ़ रही कि आततायियों को घुटने टेकने पड़े हैं। यहाँ तक कि मनुष्य ही नहीं, पशु-दैविक जगत् भी श्रमणी जीवन (चरणों में) के सम्मुख नत मस्तक हो गया।

भगवान् ऋषभदेव के संघ में तप-त्याग की अमर ज्योति स्वरूप प्रमुखा श्रमणी रत्ना ब्राह्मी-सुन्दरी ने अपने कर्तव्यों की बेजोड़ भूमिका निभाई है। वह कार्य-कुशलता किसी अधिकारी साधक-श्रमण के समान ही महत्व पूर्ण रही है।

मुनिपुंगव बाहुबली आत्म-साधना में लगे हुए थे। अन्तर्मन में मान का गज तूफान मचा रहा था। स्थिर खड़े थे ध्यान मुद्रा में। फिर केवल ज्ञान-दर्शन से दूर थे। भ. ऋषभदेव द्वारा आज्ञापित ब्राह्मी-सुंदरी महाश्रमणी बाहुबली मुनि को प्रबोधित करने आई। बाहुबली मुनि की सेवा में पहुँचकर सविनय निवेदन किया -

आज्ञापयाति तात स्वां ज्येष्ठार्य! भगवनिदम्।
हस्ती स्कन्ध रुढानाम् कृत्स्नं न उत्पद्यते॥

(त्रिषष्ठी श.च.)

हे ज्येष्ठार्य! भ. ऋषभदेव का सामयिक उपदेश है कि हाथी पर बैठे साधक को केवल ज्ञान-दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है।

राजस्थानी भाषा में -

वीरा मारा गज थकी उतरो,
गज चढ़िया केवल न होसी ओ....।

बाहुबली मुनि के कर्ण कुहरों में दोनों श्रमणियों की मधुर हितावही स्वर लहरी पहुँची। तत्काल मुनिवर सावधान होकर चिंतन करने लगे -

“यह स्वर बहिन श्रमणियों का है। इनकी वाणी में भावात्मक यथार्थता है। मैं अभिमान-रूप हाथी पर बैठा हूँ। मस्तक मूंडन जरूर हुआ पर अभी तक मान का मूंडन नहीं किया। मुझे लघुभूत बनना चाहिये। अपने से पूर्व दीक्षित आत्माओं का मैंने अविनय किया है। मैं अपराधी हूँ। मुझे उनके चरणों में जाकर सवन्दन क्षमापना करना चाहिये।”

इस तरह विचारों को क्रियान्वित करने हेतु कदम बढ़ाया। बस देर नहीं लगी। केवल ज्ञान-केवल दर्शन पा लिया बाहुबली मुनि ने। श्रमणियों द्वारा किया गया श्रमसार्थक हुआ।

साध्वी राजमति अपने शरीर व वस्त्रों का संगोपन कर गंभीर-गर्जना युक्त वाणी से ललकारती हुई बोली-

“हे मुने रथनेमि! इस तरह असंयमी जीवन जीने की कामना के लिए तुम्हें धिक्कार है। इस तरह अपयश पूर्वक जीने की अपेक्षा तुम्हारा मरण श्रेयस्कर है। अगन्धक कुल का सर्प वमन किये हुए विष का पुनः वरण नहीं करता उसी तरह वमन की हुई मुझे तुम स्वीकार करना चाहते हो। तो तुम्हारी गति नदी के किनारे पर खड़े हड़ (एरण्ड) नामक वृक्ष की तरह होगी।”

महाश्रमणी के शिक्षाप्रद ओजस्वी यशस्वी वचन रूप अंकुश से साधक रथनेमि का विकारी मन नियंत्रित हो गया। जैसे-अंकुश लगने पर हाथी वश में होता है।

महाशक्ति -शौर्य-साम्य भाव सम्पन्न सम्राट् श्री कृष्ण वासुदेव की महारानियाँ पद्मावती - गौरी-गान्धारी-लक्ष्मणा सुसीमा-जाम्बवती-सत्यभामा-रुक्मिणी-मूलश्री और मूलदत्ता और भी अनेकों रानियाँ, पुत्रवधुएँ, प्रपौत्र वधुएँ यादव वंश की ज्योत्स्नाएँ दीक्षित होकर श्रमणी-तपस्विनी बनी। कठोर तप-जप आराधना करके निर्वाण को प्राप्त हुई है।

भगवान् महावीर के शासन में श्रमणी प्रमुखा, सत्य शील-समता प्राण चन्दनबाला का साधना मय जीवन बाल्यकाल से ही बड़ा संघर्ष पूर्ण रहा है। चतुर्विध संघ के लिए प्रकाश स्तंभ व पल-पल प्रेरक। श्रमणी संघ का महासाध्वी चंदन बाला ने बड़ी विशिष्ट सूझबूझ से सफलता पूर्वक निर्वाह किया एवं आचार-विचार की परम्परा को गतिशील रखा। उत्कृष्ट त्याग-वैराग्य की साक्षात् जीवन्त प्रतीक श्रमणी प्रमुखा चन्दनबाला का संयोग पाकर अनेक राजा-महाराजाओं-श्रेष्ठियों-धनपतियों-पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ-मृगावती जयंती जैसी श्रद्धा-शील निष्ठा विद्वद् भव्यात्माएँ अपार वैभव शारीरिक सुख-साधनों को तिलांजलि देकर भगवान् महावीर के शासन में भिक्षुणी (श्रमणी) बनकर कृत कृत्य हो गई। तप-जप-साधना में अपने को समर्पित कर एक योद्धा, वीरांगना की भांति मोहकर्म से लोहा लिया। अन्ततः विजयी बन सिद्धत्व को प्राप्त किया।

इसी श्रृंखला में मगधाधिपति सम्राट् श्रेणिक की पट्टरानियाँ काली-सुकाली-महाकाली-कृष्णा-सुकृष्णा-महाकृष्णा-वीरकृष्णा-रामकृष्णा-पितृसेन-महासेन कृष्णा तथा नंदादि तेरह और प्रमुख रानियों ने भी महा श्रमणी चंदनबाला का सुखद सहवास-शरण पाया। अर्हन् प्ररूपित धर्म-दर्शन का आवश्यक अध्ययन पूर्ण कर गुरुणी वर्या चंदनबाला के नेतृत्व में क्रमशः -

रत्नावली तप, कनकावली, लघुसिंह निष्क्रिडित, महासिंह निष्क्रिडित, सप्त-सप्तमिका, अष्टम-अष्टमिका नवम-नवमिका, दशम-दशमिका, लघुसर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, मद्रोतर तप, मुक्तावलि स्थापना इस तरह तप साधना क्रम को पूरा किया। भगवान् महावीर के धर्मसाधना संघ को चार चांद लगाये। तपाचार में अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया।

भ. महावीर की माता देवानंदा (जिनकी कुक्षि में भ. की आत्मा बयासी (८२) रात्रि रही) पुत्री तथा बहिन ने भी भगवान् के शासन में जैन आर्हती दीक्षा स्वीकार की। तप-जप-संयम-साधना आराधना की गरिमा-महिमा-मंडित पावन परम्परा में वे ज्योतिर्मान साधिकाएँ हो गई।

इसके पश्चात् भी समय-समय पर अनेकानेक संयम-निधि श्रमणियाँ हुई जिन्होंने जिन शासन की महती प्रभावना की।

साधना के क्षेत्र में श्रमणी-संघ वस्तुतः सफल रहा है। कहीं पर भी असफल होकर (बेरंग-चिड्डी की तरह) नहीं लौटा। अपने आराध्य तीर्थपति-आचार्य-गुरु के साथ ही गुरुणी वर्या के शासन संघ (अनुशासन-आज्ञा) में सदैव समर्पित रहा है श्रमणी संघ। देश कालानुसार अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का प्रतिरोध-प्रतिकार किया है श्रमणी संघ ने, किंतु संघ के प्रति विद्रोह किया हो या प्रतिकूल श्रद्धा-प्ररूपणा स्पर्शना का नारा बुलंद किया हो ऐसा कहीं पर आगम के पृष्ठों पर उल्लेख नहीं मिलता है। हाँ मुनि संघ ने तो कई बार अर्हन्-शासन-संघ के विपरीत आचार-विचार धारा का उपयोग किया है। उन भिक्षु आत्माओं को निहव के रूप में पुकारा गया। श्रमणी-संघ ने ऐसा कभी नहीं किया। इस कारण मुनि-संघ की अपेक्षा साध्वी -संघ अधिक विश्वसनीय भूमिका निभाने वाला सिद्ध हुआ है।

यद्यपि संस्थाओं की दृष्टि में आज का श्रमणी-संघ उतना विशाल नहीं है। छोटे-छोटे विभागों में विभक्त है। तथापि यह वर्तमान का श्रमणी-समूह महासाध्वी चन्दनबाला का ही शिष्यानुशिष्या परिवार है। क्योंकि श्रमणी नायिका चन्दनबाला थी। देश-कालानुसार भले ही कुछ आचार-संहिता में परिवर्तन हुआ है। फिर भी मूलरूपेण उसी आचार प्रणाली का अनुगामी होकर चल रहा है।

कई शताब्दियाँ बीत गई। चन्दनबाला के संघ-शासन में एक से एक जिन धर्म प्रभाविक श्रमणियाँ (वर्तमान दृष्टि से पृथक-पृथक सम्प्रदायों में) हुई। वर्तमान में कुछ वर्षों पूर्व से भी अनेकानेक जिन शासन रश्मियाँ जैन जगत् में विद्यमान हैं। कोई विद्याध्ययनाध्यापन, पठन-पाठन, लेखन-धर्म प्रवचन करने में दक्ष है। कई सफल लेखिका, तपस्विनी हैं। कई तपोपूत साध्वियाँ हिंसकों को अहिंसक व व्यसनियों को अव्यसनी बनाने में कटिबद्ध रही हैं। कई महाभागा श्रमणियों ने धर्म के नाम पर पशु बलियाँ होती थी उसे बन्द करवाई। ऐसे कार्यों में भी वे सदैव तत्पर रही, तथा हैं।

जैनाचार्य महान आदर्श पूज्य प्रवर जयमल जी भ. की आज्ञानुशासन में विचरने वाली श्रमण संघ में आस्था रखने वाली, मरुधरा मंत्री स्व. स्वामी श्री हजारो मलजी द्वारा दीक्षिता व अध्यात्मयोगिनी महा. श्री कानकुंवर जी म. व उनकी शिष्या श्री चम्पाकुंवर जी म. भी इसी श्रमणी-संघ-श्रृंखला में हो गई। जिनका जीवन तप-त्याग मय रहा है। करीब ६०/४३ वर्ष संयम पर्याय में रहकर व लगभग ८०/६४ वर्ष की वय पर्यंत अनेकों भाषाओं जैनागम-सिद्धान्तों से समन्वित होकर धर्म-संघ शासन, श्रमणसंघ की सेवा की है। समाजोत्थान में जो सदैव अग्रसर रही हैं। उन्हीं की पावन स्मृति में प्रकाशित होने वाले स्मृति ग्रंथ के प्रति मेरी शुभ कामना।

अतीत की प्रमुख जैन साध्वियाँ महान प्रभाविका रही हैं। वैसे ही वर्तमान में हैं और भविष्य में भी रहेंगीं।

* * * * *

सामायिक

- सामायिक का एक मुहूर्त (४८ मिनट) काल सिर्फ एक व्यावहारिक सीमा है, वास्तव में तो समभाव में जब तक आत्मा स्थिर रहे तब तक सामायिक की जा सकती है।
- समभाव की अनुभूति करना सामायिक है। मन, वचन और कर्म तीनों योगों को समस्थिति में लाना / रखना सामायिक है।
- जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपराध करके उसके कटु परिणामों से बचने के लिए ईश्वर की शरण में जाती है। उसकी प्रकार मनुष्य पाप करने के बाद यदि शुद्ध मन से सामायिक की शरण ग्रहण करके (सामायिक - साधना करले) तो पापों से अवश्य ही उसकी मुक्ति (विशुद्धि) हो जाती है।

• स्व. युवाचार्य श्री मधुकरमुनि

श्रमण संस्कृति में नारी : एक मूल्यांकन

• उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. के शिष्य श्री रमेश मुनि शास्त्री

मानव सर्वश्रेष्ठ और सर्वज्येष्ठ प्राणी है, और वह देवत्व एवं दानवत्व का समन्वय होता है। कभी उस का एक लक्षण जाग्रत रहता है और अन्य लक्षण प्रसुप्त रहता है। यह क्रम भी विलोम हो जाता है। इसी महत्वपूर्ण आधार शिला पर मानव मात्र का यथार्थ रूपेण मूल्यांकन होता है कि वह भला है अथवा बुरा है? देवत्व की कमनीय-कल्पना उच्चस्तरीय मानवीय विलक्षण-विशेषताओं के समन्वित रूप में की जा सकती है, गणनातीत सद्गुणों के समुच्चय के रूप में की जा सकती है। इसके विपरीत मानव की कुप्रवृत्तियाँ ही दानवत्व का परिचायक है। श्रमण संस्कृति व्यक्ति-व्यक्ति के इसी प्रकार के व्यक्तित्व को संवारती है। वह मानव की यथार्थ-अर्थ में मनुष्यता से सम्पन्न करती है। मनुष्य का जो संस्कार करना है, वह संस्कृति के माध्यम से पूर्ण होता है। उक्त संस्कृति मानव के जीवन को ज्योतिर्मय रूप देने का कार्य भी सम्पन्न करती है।

श्रमण-संस्कृति के विपुल विशाल वाङ्मय में नारी की महिमा और गरिमा की जो गौरवपूर्ण गाथा गाई गई है, वह वस्तुतः अपूर्व है। प्राचीन काल में नारी श्रमण संस्कृति की सजग प्रहरी थी, वह एक ज्योति-स्तम्भ के रूप में रही थी। इतना ही नहीं वह अध्यात्म चेतना और बौद्धिक उन्मेष की परम-पुनीत प्रतिमा थी। अध्यात्म शक्ति का चरम उत्कर्ष 'मुक्ति' स्त्री वाचक शब्द ही हैं। पौरुष एवं शक्ति एक ही शक्ति के दो रूप हैं, पक्ष हैं, पहलू हैं, वह शान्ति की शीतल सूरिता प्रवाहित करने वाली है और आध्यात्मिक क्रान्ति की ज्योति को जगमगाने वाली भी है। वास्तविकता यह है कि वह शान्ति और क्रान्ति की पृष्ठभूमि निर्मित करती है।

जैन साहित्य का सर्वेक्षण करने पर स्पष्टतः प्रतीत होता है कि अतीत काल में श्रमणियों का संगठन सुव्यवस्थित एवं अद्वितीय था। जिस युग में जो तीर्थंकर होते थे, वे केवल ज्ञान के पश्चात् चतुर्विध संघ श्रमण-श्रमणी-श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका की संस्थापना करते हैं। जिसे आगमिक भाषा में तीर्थ कहा जाता है।^१ जिन धर्म का मूलभूत महास्तम्भ तीर्थ है। तीर्थंकर का तीर्थंकर्य तीर्थ पर आधारित है। तीर्थंकर जब समवसरण में धर्म देशना देते हैं, उस समय वे तीर्थ को नमस्कार करते हैं।^२ उक्त कथन से अति स्पष्ट है कि तीर्थंकर के द्वारा तीर्थ वन्दनीय है। चतुर्विध तीर्थ में आत्मा की दृष्टि से नारी और पुरुष इन दोनों में तात्त्विक विभेद नहीं है, आध्यात्मिक जगत् में नर और नारी का समान रूप से मूल्यांकन हुआ है। जो व्यक्ति स्त्री हो या पुरुष, रागद्वेष का आत्यन्तिक क्षय कर देता है, वही परम लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। अनन्त अक्षय आनन्द का साक्षात्कार कर सकता है।

१- भगवती सूत्र २०/८!

२ - आवश्यक नियुक्ति गाथा -५६७!

“नारी के बहुविध पर्यायार्थक

नाम उस के कार्यों और स्थितियों के अनुसार व्यवहृत है। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से “नारी” शब्द का सन्धि विच्छेद इस प्रकार है - न + अरि इतिनारी जिस का कोई शत्रु नहीं है, वह नारी है। उस ने आध्यात्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति कर पुरुषों को गौरवान्वित किया है। अतएव वह “योषा” कहलाई।^३ वह गृह नीति की संचालिका है। अतएव वह “गृहिणी” है। पूजनीय होने के कारण वह “महिला” शब्द से अभिहित है। नारी जीवन के उच्चतम आदर्श का शुभारम्भ और समापन “मातृत्व” में हुआ है। “माता” नाम से अधिक पावन आध्यात्मिक नाम नारी का दूसरा नहीं है। वह मानवता की रक्षा, आत्मा की संरक्षा माता के रूप में ही कर सकती है। माता निर्मात्री है। वह देव और गुरु के समान वन्दनीय है।^४ मानव में जो कमनीय और कोमल भावनाएँ हैं, वे माता की देन हैं। माता के द्वारा मस्तिष्क, मांस और रक्त इन तीन महत्वपूर्ण अंगों की प्राप्ति होती है।^५ माता अगाध-अपार वात्सल्य की साक्षात् अमर प्रतिमूर्ति है। उस की असीम ममता सचमुच में निराली है। पुत्र माता का कलेजा है। तीर्थ कर रूप बनने वाली उस भव्यात्मा को पुरुष रूप में जन्म देने वाली “माता” है, नारी है। नारी तीर्थकर को जन्म देती है। उस माता के विशिष्ट महत्व का यथातथ्य मूल्यांकन कौन कर सकता है? जिस माता के पावन उदर में तीर्थकर ने अवतरण किया। उस की पावनता वचनातीत है। माता की स्तुति इस रूप में की गई है -संसार में सैकड़ों स्त्रियाँ पुत्रों को जन्म देती हैं। किन्तु हे भगवन्! आप जैसे अद्वितीय, अनुपम पुत्ररत्न को जन्म देने वाली विलक्षण स्त्री ही होती है। नक्षत्रों को सर्व दिशाएँ धारण करती हैं, परन्तु अन्धकार-विनाशक सूर्य को पूर्व दिशा पैदा करती हैं।^६ नारी की कुक्षि से तीन लोक के स्वामीतीर्थकर का जन्म होता है। तीर्थकर के पावन-प्रवचन से चतुर्विध धर्म-तीर्थ की स्थापना होती है। जिससे भव्य प्राणी सन्मार्ग पर बढ़कर आत्म कल्याण करते हैं। ऐसे तीर्थकर की जननी किसी एक के द्वारा पूजनीय है, अर्चनीय है।^७ तीर्थकर जैसे पुत्ररत्न को जन्म देती है। अतएव उस के अनेक नामों में “जनिः” नाम सर्वथा सार्थक है। कोमल और मधुर भावनाओं से समाविष्ट जानित्व अर्थात् मातृत्व का यह गौरवमय रूप सार्वदेशिक एवं सार्वयुगीन है, शाश्वत है। जननी अपने रोम-रोम से अपनी सलौनी सन्तान का आत्म-कल्याण साधन करती है। वह जगज्जननी के विशिष्ट रूप में सृष्टि करती है। सरस्वती के रूप में विद्या प्रदान करती है, असुरनाशिनी के रूप में सुरक्षा करती है, लक्ष्मी के रूप में अपार-वैभव सौंपती है, और शान्ति के रूप में बल का अभिसंचार करती है। माता को और उस के बहुविध अनन्त उपकारों को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

नारी पर्याय का परमोत्कर्ष आर्यिका के महनीय रूप को धारण करने में है। आर्या का काव्युत्पत्तिलभ्य अर्थ इस प्रकार है -सज्जनों, के द्वारा जो अर्चनीय पूजनीय होती है, जो निर्मल चारित्र को धारण करती है, वह आर्या कहलाती है। आर्या का अपर नाम “साध्वी” है। जो अध्यात्म साधना का यथाशक्ति परिपालन करती है, उसे “साध्वी” कहा जाता है। शम, शील, श्रुत और संयम ही साध्वी का

३ - वाचस्पत्य शब्द कल्पद्रुम -३/५१/१/

४ - उपासक दशरंग अध्ययन ३/ सूत्र -१३७!

५ - क - भगवती सूत्र शतक -१ उद्देशक -७!

ख - स्थानांग सूत्र स्थान -३ उद्देशक -४ सूत्र २० ए!

६ - भक्ताभर स्तोत्र, श्लोक - २२!

यथार्थ स्वरूप है।^८ साध्वियों ने उत्कृष्ट रूप से संयम साधना के अमृत से भव्य चातकों के असंयम ताप को दूर किया, संसार रूपी सागर के भंवरो में गोते खाने वाले भव्य जीवों को व्रतों का हस्तावलम्बन देकर बाहर निकाला। भव्यआत्माओं के अज्ञानान्धकार से परिव्याप्त चक्षुओं को ज्ञान-शलाका से खोला। वास्तविकता यह है कि सत्य शील की अमर साधिकाओं की उज्ज्वल-परम्परा का प्रवहमान प्रवाह वस्तुतः विलक्षण प्रवाह है। उनकी आध्यात्मिक जगत् में गरिमामयी भूमिका रही है। वह उदण्डता को प्रबाधित करती है। कठोरता को सात्विक अनुराग के द्रव में घोल कर समाप्त कर देती है। पाशविकता पर चल्ता लगाती है। यथार्थ में उज्ज्वल तारिका साध्वीरत्नों ने जहाँ निजी जीवन में अध्यात्म का आलोक फैला कर पारलौकिक जीवन के सुधार की महती और व्यापक भूमिका का कुशलता एवं समर्थता के साथ निर्वाह किया है। वहाँ धर्म प्रचार के गौरवपूर्ण अभियान में भी एक अद्भुत उदाहरण उपस्थित करने में सक्षम रही है। अतएव वे नारी के गौरवमय अतीत को अभिव्यक्त करती है। जिन साध्वीरत्नों ने सत्य और शील की विशिष्ट साधना की वे सचमुच में अजर-अमर हो गईं। उन का जीवन ज्योतिर्मय एवं परमकृतार्थ हुआ और उन के समुज्ज्वल जीवन की सप्राण प्रेरणाओं से समूची मानवता कृतार्थ होती रही है।

जैन साहित्य का गहराई से परिशीलन करने पर विदित होगा कि अनेक साध्वियों का ज्योतिर्मय जीवन सविस्तृत रूपेण प्राप्त होता है। मैं यहाँ पर केवल उनके नामों का निर्देश कर रहा हूँ, जिससे साध्वियों की एक प्रलम्ब स्वर्णिम श्रृंखला का परिबोध हो सकेगा।

भगवती ब्राह्मी- साध्वीरत्न ब्राह्मी प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव की ज्येष्ठ पुत्री और चक्रवर्ती भरत की बहन थी। इन का जीवन विलक्षण विशेषताओं का अक्षय कोष था। इन्होंने मोक्ष पद को प्राप्त कर अपना जीवन सार्थक किया, सफल किया।

वैराग्य मूर्ति सुन्दरी-श्रमणी श्रेष्ठा सुन्दरी भी भगवान् ऋषभदेव की ही कन्यारत्न थीं, जिन के पावन नाम का श्रवण मात्र से भव्य जीवों का कल्याण हो जाता है। ब्राह्मी और सुन्दरी सौतेली बहनें थीं। और ये दोनों अविवाहित थीं। साध्वीरत्न सुन्दरी भगवती ब्राह्मी के साथ विचरण शील रहीं। जन-मानस को प्रभावित करने में स्वयं के त्याग-वैराग्य और साधनामय जीवन का दृष्टान्त एक अतीव समर्थ साधन रहा। अन्ततः महासती सुन्दरी ने समग्र कर्मों का समूलतः नाश कर निर्वाण पद की प्राप्ति की।

महासती दमयन्ती-साध्वीरत्न दमयन्ती वस्तुतः धैर्यमूर्ति थी। विशिष्ट साध्वियों की अग्रपंक्ति में साध्वी श्री दमयन्ती का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। वे सप्राण-प्रेरणा स्रोत हैं। इन्होंने सुदीर्घकालीन पति वियोग जन्य पीड़ा को जिस धैर्य के साथ सहन किया, वह नारी संस्कृति का एक श्रेष्ठ तम आदर्श है। राजा नल और रानी दमयन्ती ने दृढ़ता के साथ आत्म कल्याण के मार्ग पर कदम बढ़ाया।^९ वास्तव में साध्वी शिरोमणि दमयन्ती का जीवन एक ज्योतिर्मय जीवन था।

महासती कौशल्या-श्रमणी कौशल्या एक आदर्श जननी थी। माता कौशल्या का आदर्श जननी के रूप में उज्ज्वल रूप अमर रहेगा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील और औदार्य का वर्णन करना लेखनी से परे है। आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श स्वामी आदि गुणों की व्याख्या के लिये श्री रामचन्द्र का

७ - सुभाषित रत्न सन्दोह ६-११ आचार्य अमित गति!

८ - क - हरिवंश पुराण सर्ग -ए पृष्ठ १८३!

ख - आदि पुराण भाग १ पर्व २४!

९ - क - भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति गाथा है!

आदर्श चरित्र दृष्टान्त रूप में प्रयुक्त होता है। वे वास्तव में माता कौशल्या को ही देन थे। राम जैसे सुपुत्र की जननी होकर ही वह धन्य हो गयी। यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि माता कौशल्या की मनः सृष्टि की साकार दिव्य छवि ही मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के रूप में आविर्भूत हुई थी।

श्रद्धेया श्री कौशल्या वास्तव में आदर्श जननी थी और उन के उज्ज्वल चरित्र का प्रदीप प्रकाशमान है। उन्होंने भागवती दीक्षा अंगीकृत की एवं आत्म कल्याणार्थ साधनारत हो गयी थी।^{१०}

महासती सीता-साध्वी शिरोमणि सीता जी की जीवन-गाथा स्वतः ही इतनी अधिक पावन है कि पवन प्रवाह के समान कितनी ही शताब्दियाँ लहराती निकल गयी हैं, किन्तु उन का जीवन आलोक-स्तम्भ के रूप में जगमगाता रहा है।

राजकुमार श्रीरामचन्द्र और राजकुमारी सीता का पाणिग्रहण हुआ। राम सीता का दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने अपने पति देव से निवेदन किया मेरा अन्तर्मन आप के प्रति निर्मल है, शुद्धतम है। किन्तु सांसारिक वासनाओं से मेरा मन ऊब गया है। आर्यवर! मुझे दीक्षा ग्रहण करने के लिये आज्ञा प्रदान कीजिये। अन्ततः श्रीराम को अनुमति देने हेतु विवश होना पड़ा। सीताजी ने दीक्षा ग्रहण की और साधनारत हो गई।^{११} सतीत्व धर्म की धारिका साध्वी रत्न सीता जी का जीवन-वृत्त जगत्वन्य के रूप में सर्वदा अमर रहेगा।

महासती कुन्ती-सुदूर प्राचीन काल में अंधक वृष्णि नामक नरेश शौरिपुर नगर में शासन करते थे। इन की गुण शीलवती कन्या थी -कुन्ती! माता का नाम रानी सुभद्रा था। इनकी माद्री नामक एक बहन थी। कुन्ती और माद्री दोनों का परिणय हस्तिनापुर नरेश पाण्डु के साथ सम्पन्न हो गया। कुन्ती राजपरिवार में जन्मी, पोषित हुई, राजघराने में ही विवाह सम्पन्न हुआ। पर कुन्ती का मन विरक्त हो उठा। अन्ततः समस्त वैभव, सुख अधिकारों का सर्वथा त्याग कर साध्वी हो गयीं। और आत्म कल्याण के भव्य मार्ग पर अग्रसर हुईं। अध्यात्म साधना और अत्युग्रतप के फलस्वरूप उन्हें शारवत आनन्द उपलब्ध हुआ।^{१२} साध्वीरत्न कुन्ती जी का जीवन नारी जगत के लिये संप्रेरक बना रहेगा।

महासती द्रौपदी- साध्वी रत्न द्रौपदी का परम निर्मल चरित्र, सत्य और शील का साकार रूप है। उस ने शील एवं सत्य के संरक्षण हेतु जिस तेजोमय-स्वरूप का परिचय दिया था, वह अपने आप में अद्भुत है। जब दुर्योधन ने भरी सभा में अपनी जांघ निर्वस्त्र करते हुए द्रौपदी को उस पर आसीन हो जाने का आदेश दिया। महासती इस क्रूरतम अपमान से अतिशय रूप से तिलमिला उठी। उस सिंहनी ने दुःशासन एवं दुर्योधन को उन की दुष्टता के लिये करारी लताड़ लगायी। उसने कठोर शब्दों में इन की और इनके दुष्कृत्यों की घोर निन्दा की। सती जी का अति तेज प्रत्यक्ष रूप में प्रगट हुआ। और महासतियों के स्वर्णिम इतिहास में वह क्षण सदा-सदा के लिये अमर हो गया।

श्री द्रौपदी जी ने युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव इन पाँचों पाण्डव पतियों सहित सानन्द जीवन यापन आरम्भ किया। यहीं उस ने पाण्डुसेन नामक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसने आजीवन विधन-बाधाएँ सहन कीं। किन्तु सतीत्व का अनमोलरत्न हस्तगत रखा, उसे सुरक्षित रखा। द्रौपदी

ख - त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व - ८ सर्ग - ३।

१० - त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व - ७।

११ - त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व - ७।

जी ने सांसारिक सुखों का त्याग कर संयम पथ स्वीकार किया और अध्यात्म साधना में लीन हो गई। अन्ततः उस को पाँचवें स्वर्ग की प्राप्ति हुई। द्रोपदी की विरक्ति से पाण्डव भी प्रेरित हुए और वे आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो गये। पाण्डव बन्धुओं ने मोक्ष पद को प्राप्त किया। महासती द्रौपदी का जीवन एक प्रकाशमान जीवन था।

महासती राजीमति-श्रमणीरत्न राजमति का समुज्ज्वल जीवन भी उत्कृष्ट संयम का अनुपम गान है। वह अलौकिक दृढ़व्रता थी। जिस ने केवल वाग्दत्ता होते हुए भी, तोरण से अपने वर के लौट जाने पर आजीवन अविवाहिता रहने का प्रण कर दृढ़ता के साथ महाव्रतों का पालन किया।^{१३} ऐसी गौरवशालिनी नारी के आधार पर ही नारी आदर्श का भव्यतम आदर्श अवस्थित है। उस का जीवन वासना-विहीन और आत्मोत्सर्ग का एक अद्भुत चित्र है।

महासती पुष्पचूला-श्रमणी-मणि पुष्पचूला का महासतियों की उज्ज्वल-परम्परा में विशिष्ट स्थान है। निर्मल स्नेह, ब्रह्मचर्यनिष्ठा, अविचल साधना आदि विविध रंगों से साध्वी पुष्पचूला का जीवन चित्र संवरा हुआ है। इन के चरित्र की गौरव-गाथा के स्मरण मात्र से कलुषित मानस में निर्मलता का संचार हो जाता है। महासती पुष्पचूला संसार में रहकर भी विरक्त रही।^{१४} विवाहिता रह कर भी ब्रह्मचर्य साधना में लीन रही। बाहर से राजरानी थी, पर वह भीतर में सदा साध्वी बनी रही, इस दृष्टि से इस का जीवन अनुकरणीय है, अभिनन्दनीय है।

महासती प्रभावती-साध्वी रत्न श्री प्रभावती जी का साध्वी परम्परा में मौलिक स्थान है, परम विशिष्ट स्थान है। इस श्रमणी रत्न ने अपने आदर्श जीवन दृष्टान्त के द्वारा नारी जगत् के लिये पत्नी का गौरव स्वरूप प्रतिष्ठित किया। उस के उज्ज्वल जीवन पर से यह स्पष्ट होता है कि पत्नी के लिये पति का आमन्त्रण स्वीकार करना तो अनिवार्य है, किन्तु साथ ही पति देव को सन्मार्ग पर लाने का उतर-दायित्व भी उसे वहन करना चाहिये। पत्नी पति की धर्म सहायिका होती है। वह पति के जीवन को धर्ममय बनाये रखने के लिये सतत रूप से सहायता करती है और उस का यही स्वरूप प्रमुख है। महासती प्रभावती महाराज चेटक की यशस्विनी कन्या थी और भगवान् महावीर की अनन्य उपासिका थी। उस का जीवन विलास-रहित, संयमित और निष्कलुष था। वह आदर्श ज्योति कभी भी घूमिल नहीं हो सकती, प्रभाव विहीन नहीं हो सकती, उसका जो महत्व है, वह शाश्वत है।

महासती मृगावती-साध्वीरत्न मृगावती यशस्विनी प्रतिमामूर्ति महासती प्रभावती की बहिन थी। ज्योतिर्मय प्रभु महावीर की माता त्रिशला भी साध्वी मृगावती की मौसी थी। साध्वीरत्न का शील ही उस के लिये सर्वस्व हैं। हजार हजार बाधाएँ उस के मार्ग में आती हैं, किन्तु वह निस्तेज होकर इन विलोम तत्वों के प्रति समर्पिता नहीं होती है, अपितु वह शक्तिभर इन से संघर्ष करती है। अन्ततः सतीत्व शक्ति की ही विजय होती है और बाधाएँ ध्वस्त हो जाती हैं। मृगावती जी प्रभु महावीर के श्री चरणों में दीक्षित होकर आर्या चन्दन बाला के संरक्षण में धर्म साधना करने लगी। एक समय का पावन प्रसंग है कि प्रभु महावीर विचरण करते हुए कौशाम्बी पधारे। चन्दन बाला उनके दर्शनार्थ पहुँची। उनके साथ मृगावती भी थी। उस समय सूर्य प्रभु की सेवा में उपस्थित था। सूर्य के प्रकाश में मृगावती को दिन के समाप्त हो जाने का

१३ - दशवैकालिक निर्युक्ति अध्ययन २ गाथा - ८ !

१४ - आवश्यक निर्युक्ति गाथा १२८४!

आभास नहीं हुआ और वह काफी समय तक प्रभु की सेवा में बैठी रही। जब वह विलम्ब से लौटी तो उसे साध्वी मर्यादा के उत्लंघन हो जाने का खेद था। आर्या चन्दना ने भी उसे उपालम्भ देते हुए कहा- साध्वियों को सूर्यास्त के बाद बाहर नहीं रहना चाहिये। मृगावती ने क्षमायाचना के साथ सारी स्थिति स्पष्ट कर दी। किन्तु फिर भी उसे अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ और परिणामतः उसे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। अब वह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हो गई थी। इसी केवल ज्ञान की रात्रि में जब मृगावती जगी हुई थी। और समीप ही साध्वी चन्दना सोई हुई थी। उस ने एक सर्प को आर्या के समीप से निकलते हुए देख लिया। साहस के साथ आर्या के हाथ को पकड़ कर उसने भूमि से ऊपर उठा लिया और सर्प वहाँ से निकल गया। आर्या सहसा जाग उठी। उसने मृगावती जी को कर स्पर्श का कारण पूछा और सर्वदर्शी मृगावती जी ने सर्प वाली घटना बता दी।

साध्वी प्रमुखा चन्दन बाला को अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ कि इस को सपन अन्धकार में इसके काला नाग कैसे दृष्टिगोचर हो गया? उन्होंने मृगावती से इसी आशय का प्रश्न किया। मृगावती ने उत्तर में कहा- अब मैं सर्वत्र कुछ देख पा रही हूँ और ज्ञानालोक में विहार कर पा रही हूँ। आर्या चन्दन बाला को यह समझने में विलम्ब नहीं हुआ कि मृगावती को केवल ज्ञान की उपलब्धि हो गई।

आर्या चन्दना ने केवली मृगावती की वन्दना की और स्वयं भी ध्यान साधना में लीन हो गई। उन्होंने क्षपक श्रेणी में आरुढ़ होकर चार घनघाती कर्मों का क्षय कर लिया। इसी रात्रि में चन्दनबाला को केवल ज्ञान हो गया। महासती मृगावती भी यथासमय अघाती कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।

महासती पद्मावती-साध्वी रत्न पद्मावती भी वैशाली गणराज्य के अधिपति महाराज चेटक की यशस्विनी पुत्रियों में से एक थी। अन्य बहनों की तरह यह भी धर्मानुरागिणी और प्रतिभाशालिनी थी। चम्पानगरी के धर्मनिष्ठ नरेश दधिवाहन के साथ पद्मावती का विवाह हुआ। पद्मावती सांसारिक सुखों से सर्वथा विरक्त हुई और उस ने प्रव्रज्या ग्रहण की। संयम साधना में लीन हो गई। और उस ने पिता तथा करकण्डू पुत्र के मध्य युद्ध के घोर दुष्कर्मों को पूर्णतः रोक दिया। हिंसा को उन्मूलित कर अहिंसा की स्थापना की। और वह अपने जीवन को सफल कर देती है।

महासती शिवा- शिवादेवी वैशाली नरेश चेटक की चतुर्थ राजकुमारी थी। पतिव्रत में अविचल रही, सत्य प्रिया एवं विवेक शीला थी। सतीत्व की तेजस्विता उस की अन्यतम विशेषता थी। रानी शिवा देवी अपने पतिदेव अवन्ति के अधिपति चण्डप्रद्योतन के प्रति निर्मल भावना रखती थी। अधिकार की गरिमा से पूर्ण वातावरण में रहती हुई भी इन से कोसों दूर थी। भगवान् महावीर के चरणों में महारानी शिवादेवी ने दीक्षा ग्रहण की। साध्वी शिवा ने आर्यारत्न चन्दनबाला के सान्निध्य में उत्कृष्ट साधनाएं की, कर्मों का सर्वथा क्षय कर सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

महासती सुलसा-महासती सुलसा का समूचा जीवन धर्ममय था। उस का जीवन इस तथ्य का परिपुष्ट उदाहरण है कि पत्नी अपने मृदुल-मधुर उद्बोधन द्वारा पतिदेव को भी श्रद्धावान् बनाने में सफल हो सकती है। सुलसा का जन्म राज्यवंश में नहीं हुआ। नाग नामक राजगृही के एक सामान्य सारथी की पत्नी सुलसा एक सामान्य गृहस्थ थी। किन्तु यह सत्य है कि वह धर्म परायण थी। सम्यग्दर्शन में अविचल रहने वाली सुलसा ने श्रद्धा और साधना के बल पर ही तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया उस का जीव ही आगामी चौबीसी में पन्द्रहवें तीर्थंकर के रूप में अवतरित होगा।

महासती सुभद्रा -साध्वीरत्न सुभद्रा का समूचा जीवन धार्मिक दृढ़ता का जीवन्त प्रतीक था। विजय सत्य की होती है। सुभद्रा का जीवन इसी विजय का उद्घोषक है। सुभद्रा जिनदास की यशस्विनी पुत्री थी। जिनदास वसन्तपुर का प्रतिष्ठित श्रेष्ठी था। चम्पानगरी में एक घनादय युवक निवास करता था। जिस का नाम बुद्धदास था। सुभद्रा का पाणिग्रहण बुद्धदास के साथ हुआ। सुभद्रा ने बुद्धदास के समूचे परिवार को “नमो अरिहन्ताणं” का मंगलमय महामन्त्र दिया। उक्त महामन्त्र की शीतल लहरों से समूचा परिवार प्रक्षालित हो गया।

महासती चन्दनवाला-साध्वीरत्न श्री चन्दनवाला प्रभु महावीर की प्रथम शिष्या थी। श्रमणी संघ की प्रवर्तिनी एवं धर्मशासिका थी। जिस के नेतृत्व में छत्तीस हजार साध्वियों ने अपने आप को मोक्ष-मार्ग पर गतिशील रखा। महाराजा चेटक की राजकुमारी धारिणी चम्पानरेश दधिवाहन की धर्मनिष्ठा रानी थी। रानी धारिणी त्रिशला की बहन अर्थात् भगवान् महावीर की मौसी थी। चम्पानगरी का यह राज दम्पती उज्ज्वल कीर्ति के कारण विश्रुत है। ये राजरानी एक अतीव सलौनी राजकुमारी के माता-पिता थे। जिस का नाम था -वसुमती। यही वसुमती चन्दना या चन्दनवाला नाम से विश्रुत हुई।

साध्वीरत्न चन्दनवाला का समूचा जीवन अद्भुत गरिमाओं का मूल्यवान् कोष था। वह विशिष्ट साध्वी प्रतिकूल-परिवेश में भी गम्भीर और सहिष्णु बनी रही। धर्मपथ से विचलित न हुई। मूला और शतानीक जैसे क्रूर कर्मियों का भी उस ने माधुर्यपूर्ण व्यवहार से हृदय-परिवर्तन किया। कौशम्बी एवं चम्पा के मध्य भीषण शत्रुता को भी उसने सदा के लिये समाप्त कर दिया। उसने ऐसी विलक्षण विशेषताओं के आधार पर साध्वियों की उज्ज्वल परम्परा में गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त किया।

सारपूर्ण भाषा में यही कहा जा सकता है कि श्रमण संस्कृति में नारी का जो मूल्यांकन हुआ है, वह यथार्थपूर्ण है। नारी के व्यापक व्यक्तित्व को सर्वांगीण रूप से चित्रित करने का उपक्रम अनन्त असीम आकाश को अपने लघीयान् बाहुपाश में परिवद्ध कर लेने के समान हास्यास्पद प्रयास है। और मेरा यह लेखन कार्य यथार्थ अर्थ में अगाध-अपार महासागर की अपरिमित जलराशि को एक गागर में भर लेने के समान है, तथापि इस दिशा में अत्यल्प सा प्रयत्न किया। यथार्थ से आदर्श की ओर ऐसे में यदि यह लघु काय निबन्ध-बिन्दु पाथेय स्वरूप सिद्ध हुआ तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा।

* * * * *

महिमामयी नारी

• -महासती श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।”

इस छोटे से श्लोकांश से हमारी आज की बात शुरू होती है। इसमें कहा गया है कि जहाँ स्त्रियाँ पूजनीय दृष्टि से देखी जाती हैं, वहाँ देवता भी आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते हैं।

इतिहास भी इस बात की साक्षी देता है कि नारी नर की सबसे बड़ी शक्ति रही है। नारी के बल पर ही वह अपने निर्दिष्ट पथ पर बढ़ता चला गया है और अनेकानेक विपत्तियों का मुकाबिला करता रहा है। मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने का श्रेय नारी जाति को ही है। अनेकानेक महापुरुष हुए हैं जो नारी के सहज व स्वाभाविक गुणों से प्रेरणा पाकर अपने पथ पर अग्रसर हो सके हैं। इसलिये सदा से मानव नारी का कृतज्ञ रहा है और उसे श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखता रहा है। जयशंकर प्रसाद ने इस युग में भी यही कहा है -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रचत नग पगल में।

पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥

नारी ने त्याग, प्रेम, उदारता, सहिष्णुता, वीरता तथा सेवा आदि अपने अनेक गुणों से मानव को अभिभूत किया है, उसे विनाश के मार्ग पर जाने से रोका है। वह छाया की तरह पुरुष के जीवन में संगिनी बनकर रही है। पुत्री, बहन, पत्नी तथा माता बनकर उसने अपने पावन कर्तव्यों को निभाया है। इसलिये बड़े आदर युक्त शब्दों में उसके लिये कहा है -

कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी,

भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा।

धर्मानुकूला, क्षमया धरित्री,

भार्या च षड्गुण्यवती सु दुर्लभा॥

अर्थात् प्रत्येक कार्य में मन्त्री के समान सलाह देने वाली, सेवादि में दासी के समान कार्य करने वाली, भोजन कराने में माता के समान, शयन के समय रम्भा के सदृश सुख देने वाली, धर्म के अनुकूल तथा क्षमा गुण को धारण करने में पृथ्वी के समान, इन छह गुणों से युक्त पत्नी दुर्लभ होती है। जो नारी इन गुणों से अलंकृत होती है वह अपने पितृकुल तथा श्वसुरकुल दोनों को ही स्वर्गतुल्य बना देती है। आनन्द व वैभव का उस गृह में साम्राज्य होता है। ऐसे ही गृहों में देवताओं का निवास माना जाता है।

प्राचीनक काल में, जिसे हम वैदिक काल भी कहते हैं, नारियों का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण तथा आदरयुक्त था। गार्गी, मैत्रेयी तथा लोपामुद्रा जैसी अनेक विदुषी नारियाँ हुई हैं जिन्होंने वेदों की ऋचाएँ भी लिखी हैं। हमारे जैन शास्त्रों में भी अनेक विदुषी सतियों के नाम व कथानक प्राप्त होते हैं। महसती सीता, चन्दनबाला, ब्राह्मी तथा सुन्दरी आदि सोलह सतियाँ तो हुई ही हैं, जिनके नाम को तथा गुणों को हम आज भी प्रतिदिन प्रभात में याद करते हैं।

मैत्रेयी संसार को घृणा की दृष्टि से देखती थी। जब याज्ञवल्क्य अपनी विदुषी सहधर्मिणी मैत्रेयी को सब कुछ देकर वन जाने को प्रस्तुत हुए तब पतिपरायणा मैत्रेयी बोली-अगर ऐश्वर्य से भरी हुई पृथ्वी भी मुझे मिल जाएगी तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- धन से तुम अमर नहीं हो सकोगी पर सुखी हो जाओगी। मैत्रेयी ने कह दिया -जिससे मैं अमर नहीं हो सकूंगी उसे लेकर क्या करूँगी?

कितनी गम्भीर दार्शनिकता से उसने जीवन की ओर तथा वैभव की ओर दृष्टिपात किया था?

छाया के समान राम का अनुसरण करने वाली सीता ने बिना राम की सहायता के ही कर्तव्य निर्दिष्ट कर लिया था। वन गमन के सारे क्लेशों को सहने के लिये स्वयं तैयार हो गई थी। किन्तु अकारण ही पति द्वारा निर्वासित की जाने पर भी उसने अपने धैर्य को नहीं छोड़ा। उसका सारा जीवन ही साकार साहस है, जिस पर दैन्य की छाया कभी नहीं पड़ी।

नारी साक्षात् प्रेरणा है। वैष्णव रामायण के अनुसार उर्मिला-जिसने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ते हुए अपने प्रियतम लक्ष्मण को नहीं रोका तथा चौदह वर्षों तक कठिन वियोग सहन किया। उर्मिला का यह त्याग तथा उसकी सहिष्णुता आज संसार में अमर है।

बुद्ध के द्वारा परित्यक्ता यशोधरा ने अपूर्व साहस द्वारा कर्तव्य पथ खोजा। अपने पुत्र को परिवर्धित किया और अन्त में सिद्धार्थ के प्रबुद्ध होकर लौटने पर कर्तव्य की गरिमा से गुरु बनकर उसके सामने गई। दीन, हीन बनकर अथवा प्रणय की याचिका बनकर नहीं। सती चन्दनबाला ने अनेक परीषह सहे। उसकी आत्म-शक्ति व तेज के प्रताप से लोहे की हथकड़ियाँ भी टूटकर बिखर गई और वह देव-पूज्य बन गई। महापतिव्रता सती सुभद्रा का नाम भी आज इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है।

प्राचीन काल में नारियाँ समाज में हीन नहीं समझी जाती थीं। पुरुषों के समान ही उन्हें सुविधाएँ मिलती थीं। उन्हें सच्चे रूप में अर्धांगिनी माना जाता था।

उस समय के भारत में जितने आदर्श स्वरूप देवी-देवताओं की मान्यता थी, उनमें स्त्री रूप का महत्व अधिक था। विद्या की देवी सरस्वती, धन की देवी लक्ष्मी, सौन्दर्य की रति तथा पवित्रता की प्रतीक गंगा थी। शक्ति के लिये महाकाली दुर्गा तथा पार्वती देवी की भी उपासना की जाती थी। वर्तमान में भी विद्या के लिये सरस्वती की, सम्पत्ति की कामना होने पर लक्ष्मी की तथा शक्ति के लिये काली की उपासना की जाती है। यहाँ तक कि पशुओं में भी बैल की नहीं, गाय की पूजा होती है। महापुरुषों के नामों में प्रथम स्त्रियों के ही नाम मिलते हैं यथा सीता-राम, राधा-कृष्ण, गौरी-शंकर। इस सबसे यही प्रतीत होता है कि महिमामयी नारी मनुष्य के जीवन का चहुँमुखी कवच है, जिसके कारण कठिनाइयाँ, दुःख, परेशानियाँ पुरुष तक नहीं पहुँच पाती, जब तक कि वह विद्यमान है।

उस काल में नारियों का आत्मिक विकास भी बहुत ऊँचा था। सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों को समान अधिकार था। अपनी विद्वत्ता एवं प्रतिभा के संस्कार अपनी सन्तान पर अंकित कर वे उन्हें पूर्ण गुणवान तथा नीति मान बना देती थी। धर्मपरायणा सती साध्वी तथा आत्मविश्वास से परिपूर्ण नारियों का मनोबल इतना दृढ़ होता था कि पुरुष उनकी अवहेलना नहीं कर पाते थे।

कृष्ण और सुदामा मित्र थे। वे बचपन में साथ-साथ पढ़े थे। बड़े होने पर कृष्ण तो द्वारिका के महाराज बन गये पर सुदामा एक दरिद्र ब्राह्मण ही बने रहे। यद्यपि वे विद्वान और भक्त थे। उनकी पत्नी बड़ी पतिपरायणा थी। प्रायः सुदामा उससे अपने बचपन की, तथा कृष्ण से मित्रता की चर्चा किया करते थे। एक दिन उनकी पत्नी ने सुदामाजी से द्वारिका जाने के लिए आग्रह पूर्वक कहा। उन्हें समझाया कि जब श्रीकृष्ण जैसे आपके मित्र हैं तो फिर आप इतनी तकलीफ में क्यों दिन व्यतीत कर रहे हैं?

सुदामा सन्तोषप्रिय भक्त थे। उन्हें धन की आकांक्षा रंघ मात्र भी नहीं थी। प्रभु की भक्ति से ही उनका हृदय परिपूर्ण था। उन्होंने पत्नी से कहा -

मेरे हिये हरि के पद पंकज, बार हजार ले देखु परिच्छ।
औरन को धन चाहिये बावरी, ब्राह्मण को धन केवल भिच्छ।

पर बावली पत्नी मानी नहीं। वह स्वयं तो कष्ट उठा सकती थी पर पति के कष्ट से उसका हृदय व्यथित रहता था। फिर बोली -

द्वारका लौ जात पिए! ऐसे अलसात तुम,
काहे को लजात भई कौन सी विचित्रई।
जौ पै सब जनम दरिद्र ही सतायो तो पै,
कौन काज आइ है कृपानिधि की मित्रई॥

यानि द्वारिका जाने में तुम्हें कितना आलस्य है प्रिय! जाने में लज्जा किस बात की है? मित्र के पास जाना कोई अनोखी बात है क्या? अगर सारा जीवन दरिद्रता में ही बीते तो फिर करुणा के सागर कृष्ण की मित्रता कब काम आएगी?

बिचारे सुदामा फिर क्या करते? पत्नी को मधुर उपालंभ देते हुए द्वारिका जाने के लिए तैयार हुए-

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहू जाम यही झक तेरे।
जो न कहो करिये तौ बड़ो दुख जैए कहाँ अपनी गति हेरे॥

आठों पहर तूने तो 'द्वारिका जाओ, द्वारिका जाओ' की रट लगा रखी है। मेरी इच्छा तो नहीं है मगर तेरा कहा न मानू तो भी मेरी गति नहीं है। यही तो बड़ा दुःख है।

इस प्रकार पत्नी की अवहेलना न करके सुदामा कृष्ण के पास गए। जैसा कि उनकी सती पत्नी का विश्वास था, उन्होंने कृष्ण के द्वारा अत्यधिक आदर और स्नेह प्राप्त किया। वे अतुल वैभव के अधिकारी होकर लौटे।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन-काल में सुदामा की पत्नी, महाकवि कालीदास की पत्नी तथा तुलसीदासजी की पत्नी रत्नावली आदि ऐसी ऐसी नारियाँ हो गई हैं जिन्होंने अपने पतियों के जीवन को बदल कर उन्हें महत्ता के शिखर पर पहुँचाया।

पर धीरे-धीरे मध्यकाल में परिस्थितियाँ कुछ बदल गईं। स्त्रियों की स्वतंत्रता कम हो गई और उनके प्रति पुरुषों की विचारधारा भी विपरीत दिशा में बहने लगी। कुछ नए आदर्श बिना सिर पैर के बनाए गए, उनके लिए कहा गया -

काम क्रोध लोभादिमय, प्रबल मोह कै धारि।

तिह मंह अति दारुन दुखद माया रूपी नारी॥

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मद व मोह आदि जो मनुष्य को दुःख देने वाले हैं, उनसे भी अधिक दारुण दुःख देने वाली मायामयी नारी है।

कहा गया कि स्त्रियों को कभी स्वतन्त्र नहीं रहने देना चाहिए। उसे कौमारावस्था में पिता के, युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहना चाहिए। मनुस्मृति में कहा है -

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमहंति॥

इस विधान के अनुसार नारियों की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति को रोक कर उनका स्थान घर तक ही सीमित कर दिया गया। फिर तो गृह साम्राज्ञी जैसे आदरयुक्त शब्द की जगह पैर की जूती कहकर उन्हें हीन साबित किया गया। बाल विवाह की प्रथा चालू कर दी गई। दो, चार, छः आठ वर्ष की कन्याओं के विवाह किये जाने लगे। जबकि यह उम्र उनके शिक्षा प्राप्त करने की होती है। फलस्वरूप दस-दस बारह बारह वर्ष की उम्र वाली विधवाओं की भरमार हो गई और उनका जीवन बड़ा दयनीय होने लगा।

जिस तरह से घास-फूस से आग दब नहीं सकती और कई गुना वेग से धधक उठती है, उसी तरह नारी जाति को दबाने की, उसके तेज को कुचलने की जितनी कोशिश की गई उतने ही वेग से उनका शौर्य समय समय पर प्रज्वलित हुआ। रानी दुर्गावती, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि के उदाहरण इतिहास में अमर रहेंगे। राजपूत ललनाओं के त्याग व वीरत्व के भी अनेक अनेक ज्वलंत उदाहरण हैं, जिन्होंने अपने शौर्य की कीर्तिपताका पुनः लहरा दी। अपने हाथों से पति को कवच पहनाकर वे उन्हें युद्ध में भेज देती थीं और साथ ही स्पष्ट शब्दों में चेतावनी भी दे देती थीं -

कंत लखीजे दोहि कुल, नथी फिरंती छांह।

मुड़िया मिलसी गेंदवो, मिले न धणरी बांह॥

प्रियतम! देखो दोनों कुलों (मेरे और अपने) का ध्यान रखना तथा अपनी छाया को मत देखना। अगर तुम युद्ध से भागकर आए तो तुम्हें मस्तक के नीचे रखने के लिये तकिया मिलेगा। पत्नी की बांह नहीं मिल सकेगी।

वह पति के चले जाने पर रो-रोकर अश्रुधारा प्रवाहित नहीं करती थी वरन् पूर्ण विश्वासपूर्वक अपनी सखी से कहती थी -

सखी अमीणा कंथ री, पूरी यह परतीत।
कै जासी सूर धंगड़े, के आसी रण जीत॥

हे सखी! मुझे अपने प्रियतम पर पूरा विश्वास है कि या तो वह युद्ध में जीतकर वापिस आएंगे अथवा लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त करेंगे। इतना कहकर भी उसे संतोष नहीं होता और अत्यन्त प्रेम-विह्वल होती हुई पति की प्रशंसा करती -

हूं हेली अचरज करूं, घर में बाय समाया।
हाको सुणतां हूलसे, रण में कोच न माय॥

हे सखी! मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि मेरे प्रिय घर में तो मेरी बाहुओं में ही समा जाते हैं किन्तु युद्ध के नगाड़े सुनकर हुलास के मारे कवच में भी नहीं समाते।

अपने पति के प्रति राजपूत नारियों में कितना गर्व होता था। असीम प्रेम होता था, लेकिन पति के युद्ध से मुँह मोड़कर आने की अपेक्षा वे विधवा हो जाना पसन्द करती थीं। युद्ध में वीर गति पाने पर उनके गर्व एवं उत्साह का पारावार नहीं रहता था और अपने मृत पति को लेकर वे हँसते हँसते वापिस उनके शीघ्रतम मिलने के लिये चिता पर चढ़ जाया करती थीं। उस समय भी वे अपनी सखियों को कहना नहीं भूलती थीं -

साथण ढोल सुहावणो, देणो मो सह दाह।
उरसां खेती बीज धर, रजवट उलटी राह॥

अर्थात् हे सखी! जब अपने प्रिय के साथ मैं चिता पर चढ़ूँ उस समय तुम बहुत ही मधुर ढोल बजाना। राजपूतों की तो यही उलटी रीति है कि उनकी खेती पृथ्वी पर होती है किन्तु फल आकाश में प्राप्त होता है। इन उदाहरणों से यह साबित हो जाता है कि नारी ने ऐसे नाजुक समय में भी, जबकि उन्हें अत्यन्त तुच्छ माना जाने लगा था, अपनी महिमा को कम नहीं होने दिया, बल्कि और गौरवान्वित हो किया। राजपूत नारियों के जीवित त्याग के ऐसे उदाहरण विश्व में और कहीं भी नहीं मिल सकते। यह ठीक है कि उस समय की सतीत्व की कल्पना विवेकपूर्ण न हो और सतीत्व की कसौटी आत्मदाह है भी नहीं, तथापि इससे नारी के उत्सर्ग स्वभाव में कोई कमी नहीं आती।

अब इस नवीन युग में स्त्रियों ने अपना उचित स्थान पुनः प्राप्त कर लिया है। वे सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में बड़ी सफलता के साथ काम कर रही हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री थीं। भारतकोलिका सरोजिनी नायडू गवर्नर थीं। विजयलक्ष्मी पण्डित अमेरिका में राजदूत आदि के रूप में अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करती रही हैं। सुचेता कृपलानी उत्तरप्रदेश के शासन की सूत्रधार रही हैं।

बहनों को भी ऐसे आदर्श अपने सामने रखने चाहिये। इनसे प्रेरणा लेनी चाहिये। पुरुषों की हिंसक वृत्ति तो चरम सीमा तक पहुँच चुकी है। उन्होंने दो विश्वयुद्ध कर लिये, अब तीसरे युद्ध की भी आशंका

हैं। अणुबम, परमाणुबम, हाइड्रोजनबम आदि-आदि अनेक प्रकार के बम वे बना चुके हैं, और उनसे भी अधिक भयंकर शस्त्रों के आविष्कार कर रहे हैं। आप लोगों को पुरुषों की इस हिंसक व विद्वेषपूर्ण वृत्ति को स्नेहजल से प्लावित करना है। तात्पर्य यही है कि पुरुषों की बराबरी करके और उनके समान अधिकार पा करके भी आप लोगों को सन्तुष्ट नहीं होना है। आपको पुरुष जाति पर अपना प्रभाव डालना है, उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति को संयत बनाना है और इस तरह विश्व शान्ति की स्थापना में योग देना है।

आपका सबसे महान् कर्तव्य अपने नन्हें बालकों पर सुसंस्कार डालने का है। उनका हृदय बड़ा कोमल होता है। कुम्हार मिट्टी के कच्चे घड़े को चाहे जैसी आकृति दे सकता है। कच्चे बाँस को चाहे जैसे मोड़ा जा सकता है। उसी तरह बच्चों की बुद्धि बड़ी सरल तथा अनुकरणशील होती है, अतः माता चाहे तो अपने पुत्र को महान्, सदाचारी, वीर तथा प्रतापी बना सकती है।

शिवाजी को वीर उनकी माता जीजाबाई ने बनाया था। माता के ही संस्कारों के कारण आगे जाकर शिवाजी ने औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिये थे। गाँधीजी को भी उनकी माता ने ही जगत् पूज्य बनाया था। विलायत जाने से पहले वे गाँधीजी को एक जैन सन्त के पास ले गईं। और उन्हें मांसाहार, परस्त्री-गमन तथा शराब पीने का त्याग करवा दिया। शंकराचार्य को ज्ञान की चोटी पर उनकी माता ने ही पहुँचाया था।

आप चाहें तो अपने घर को स्वर्ग बना सकती हैं और आप चाहें तो नरक। अपने त्याग, प्रेम व स्वभाव के माधुर्य से घर को नन्दन कानन बनाइये। आपका व्यक्तित्व इतना सुन्दर होना चाहिये कि प्रत्येक बात आपके पति सुदामाजी की तरह मानें। आप में अपूर्व शक्ति भरी हुई है सिर्फ उसे पहचानने की आवश्यकता है।

कुछ लोगों की विचारधारा होती है कि स्त्रियों का कार्य तो घर में चूल्हा-चक्की तक ही सीमित होना चाहिये, अधिक पढ़ाने से क्या लाभ? आप लोग इस भुलावे में कदापि न आएँ। अपनी कन्याओं को बराबर शिक्षित बनायें पर साथ ही उनमें उच्च संस्कार डालने का प्रयत्न करें, पढ़ने-लिखने का तात्पर्य अधिकाधिक फैशनेबिल बनना, अपने माता-पिता की अवज्ञा करना नहीं है। पढ़ने का असली उद्देश्य अपने गृह का सुप्रबन्ध करना तथा आपत्ति-विपत्ति के समय पति की सहायता करना भी है। गलत रास्ते पर जाते हुए पति को चतुराई से मोड़ना भी शिक्षा का ही अंग है। प्रसिद्ध विद्वान् लेखक प्रेमचन्दजी ने भी कहा है-

“पुरुष शस्त्र से काम लेता है तथा स्त्री कौशल से। स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान होती है।”
विक्टर ह्यूगो ने तो यहाँ तक कहा है -

“Man have sight, woman insight.”

अर्थात् मनुष्य को दृष्टि प्राप्त होती है तो नारी को दिव्य दृष्टि।

बहनो ! आपको अपनी दिव्य दृष्टि खोनी नहीं है वरन् और प्रखर बनानी है। प्राचीन काल से आपकी जिस महिमा को देव भी गाते रहे हैं, उसे कायम रखना है। नारी सदा से महिमामयी रही है, इसे साबित करना है। तभी हमारे राष्ट्र का कल्याण होगा।

* * * * *

श्रमणी तीर्थ का जैन धर्म की प्रभावना में अवदान

• (श्री कुसुमवती जी म. की सुशिष्या डॉ. साध्वी दिव्यप्रभा)

मानव इस विराट् विश्व का एक चिन्तनशील एवं मननशील प्राणी है। इसकी महिमा और गरिमा वस्तुतः वर्णातीत एवं वर्णनातीत है। मानव और पशु जगत् में बहुविध समानताएं परिलक्षित होती हैं दोनों प्राणी हैं, इसलिए जीवन निर्वाह हेतु आहार अपेक्षित है। दोनों भय ग्रस्त हैं निद्रादेवी की आराधना में भी सर्वात्मना समर्पित हैं। अनेक प्रकार की सदृशता होते हुए भी एक ऐसी विलक्षण विशेषता है जिसके आधार पर यह स्पष्टतः प्रगट है कि पशुजगत् से मानव सर्वश्रेष्ठ है और सर्वज्येष्ठ है। वह विशिष्ट विशेषता यही है कि मानव अपने जीवन में धर्माचरण कर सकता है।

धर्म अपने आप में मंगलस्वरूप है और वह प्राणिमात्र के योगक्षेम का आधार है एवं वह कल्याणप्रद है। धर्म वस्तुवृत्त्या त्रिकालाबाधित सत्य है। अखण्ड एवं शाश्वत सत्य है। उक्त कथन को कथमपि नकारा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं धर्म को देश काल क्षेत्र और सम्प्रदाय की संकुचित परिधियों में निबद्ध नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत, शब्द इतना व्यापक और इतना विराट् है कि धर्म शब्द के उच्चारण मात्र से ही व्यक्ति उसका न केवल अर्थअपितु अभिप्राय भी हृदयंगम कर लेता है और आत्मसात् भी कर लेता है।

धर्म आदि नहीं अनादि है। जैनधर्म के अभिमतानुसार इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। उन्होंने जैन धर्म का प्रवर्तन किया है। अतः कालचक्र के आधार पर भगवान् ऋषभ देव को धर्म का आदिकर्ता कहा है और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं। प्रत्येक तीर्थंकर चार तीर्थों की संस्थापना करता है। इसी लिए वे तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थ की संख्या शाश्वत है वे चार हैं। जो इस प्रकार हैं - श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका ^१

उक्त चार भेदों में प्रथम के दो भेद अणगार धर्म के प्रतीक हैं और अन्तिम के दो भेद आगार धर्म के परिचायक हैं। इस प्रकार धर्म के दो भेद हैं ^२ एक आगार धर्म और दूसरा अणगार धर्म।

प्रस्तुत निबन्ध की सीमित पृष्ठ संख्या को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर श्रमणी धर्म के सन्दर्भ में आलेखन करना हमारा प्रतिपाद्य विषय है।

श्रमणी नारी जाति का सर्वाधिक परम विशुद्ध स्वरूप है। इसी स्वरूप में स्थित नारी अध्यात्मिक जगत में समुत्कर्ष करती है परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लेती है। श्रमणी बहिर्जगत् से हट कर अन्तर्जगत् में विचरण करती है। वह तन की दृष्टि से यहाँ पर है पर मन की दृष्टि से वह मोक्ष में है। वह अपने जीवन में संयम धर्म की अखण्ड रूप से आराधना करती है। समता धर्म को आत्मसात् कर लेती है राग और

१ - भगवती सूत्र २०/८

२ - स्थानांग सूत्र स्था. २

द्वेष रूप प्रगाढ़ ग्रन्थियों का उन्मूलन करती है और वह चेतनाशील मन से विघ्न बाधाओं पर विजयश्री प्राप्त करती है। चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है। वह अपने आप में ज्योति स्वरूपा है। वह ज्योति इस अर्थ में है कि वह स्वयं प्रकाशमान होती है। अन्य भव्यात्माओं को भी आलोकित कर देती है। जिससे वे भव्य आत्माएं कुमार्ग से पराङ्मुख होकर सन्मार्ग की ओर प्रस्थित होती है।

श्रमणी न केवल ज्योति है अपितु वह अग्नि शिखा भी है वह अग्निशिखा इस रूप में है कि अपने जन्म जन्मान्तरों के कर्मकाष्ठ को जला देती है और उसके पावन सम्पर्क में समागत भव्य आत्माएं भी अपने चिरसंचित कर्मघास को भस्मसात् कर देती है।

इसी अवसर्पिणी काल चक्र के प्रथम तीर्थंकर भगवान्, ऋषभदेव की माता ने द्रव्य की दृष्टि से संयम मार्ग अंगीकृत नहीं किया है पर भाव की अपेक्षा से संयम की और चारित्र की पूर्णता के कारण ही उन्हें मुक्ति मिल गयी थी। माता मरुदेवी के बाद भगवान् ऋषभदेव की दो समादरणीया पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी का सविस्तृत विवरण जैन साहित्य में उपलब्ध है। सांसारिक अवस्था में उनकी उपलब्धियों की चर्चा करना यहाँ प्रासंगिक नहीं होगा। किन्तु इतना उल्लेख करना नितान्त अपेक्षित होगा कि उन दोनों वैराग्यमूर्ति अखण्ड बाल ब्रह्मचारिणी पवित्र हृदया बहिनों ने संयम मार्ग अंगीकार कर स्वयं का कल्याण किया और साथ ही इन दोनों बहिन साध्वियों ने अपने भ्राता सरलमना तप की अखण्डमूर्ति बाहुबलि को भी वास्तविकता का परिबोध देकर लाभान्वित किया। उनके जीवन का एक संस्मरण स्मृति के आकाश में नक्षत्र की भांति चमक उठा है।

बाहुबलि ने दीक्षा अंगीकार की उसके पश्चात् अतिघोर तपश्चरण में संलग्न हुए। उनकी यह तपस्या पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। तथापि वे केवलज्ञान की शाश्वत ज्योति से उद्भासित नहीं हुए। इसका एक मात्र कारण यह था उनके अन्तर्मन में इस बात को लेकर ज्वार के समान कुछ ऐसा ही दृश्य उठ रहा था कि संयम साधना में ज्येष्ठ अपने लघुभ्राताओं को वंदन नमन कैसे करें। ज्येष्ठ होकर अनुजों को वन्दन? नहीं। यह असम्भव है। उनके मन में यही अहंकार व्याप्त था जो वास्तव में मिथ्यापूर्ण था। ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनों ने उनके निकट आकर उद्बोधन के स्वर में कहा -हे भाई! गज से उतरों। जब तक आप गज पर आरूढ़ रहेंगे तब तक आपको केवल ज्ञान की अखण्ड अनन्त दिव्य ज्योति प्राप्त नहीं हो पाएगी। बहिनों के ये शब्द बाहुबलि के कर्णकुहरों में ज्योंहि पड़े त्योंहि वे चिन्तन के गहरे सागर में डूब गये। गज-यहाँ वन में गज कहा है और इसी अनुक्रम में उनके चिन्तन में सहज रूप में मोड़ लिया। मैं कब से मानरूपी गज पर आरूढ़ हुआ हूँ। मेरा यह मान कितना मिथ्या है। वे भरे अनुज हैं तो क्या हुआ संयम में मुझ से ज्येष्ठ हैं। ज्येष्ठ होने के नाते मुझे उनकी वन्दना करनी चाहिये। बस यह विचार आते ही बाहुबलि भाइयों के सन्निकट वन्दनार्थ जाने के हेतु अपना कदम बढ़ाते हैं कि उन्हें केवल ज्ञान की अनन्त अक्षय ज्योति उपलब्ध हो जाती है। यदि ब्राह्मी और सुन्दरी उन्हें सचेत नहीं करती संक्षिप्त पर सार पूर्ण उद्बोधन नहीं देती उनके मिथ्याभ्रम की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं कराती तो क्या उन्हें केवलज्ञान हो पाता? उक्त कथनानक के तात्पर्य से यह सुस्पष्ट है कि इन दोनों बहनों के निमित्त से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ क्योंकि उपादान के लिए निमित्त का होना न केवल आवश्यक अपितु अनिवार्य है। निमित्त अपने स्थान पर महत्त्व रखता है और उपादान का भी अपना महत्त्व है।

श्रमणी वस्तुतः अपने अन्तर ज्योति के प्रकाश में इतनी दिव्य है कि उसका यथा तथ्य वर्णन करना सम्भव प्रतीत नहीं होता। वह मानव चेतना के विकास के लिए महान् उदात्त शाश्वत संदेश प्रदान करती है। वास्तव में वह पूज्या है। आदरणीया है। नमस्करणीया है। प्राचीन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जिनका विस्तार से वर्णन करना शक्ति और मति परे है। आर्या शिरोमणि चन्दना, मृगावती, अञ्जना राजीमती सुलसा आदि अनेक श्रमणियाँ अध्यात्म की सर्वोच्च भूमिका पर पहुँच गयी और वे आत्मा से परमात्मा के रूप में हो गयी।

श्रमणी का उतना ही स्थान है जितना स्थान श्रमण का है। क्योंकि श्रमण की भांति श्रमणी भी एक तीर्थ स्वरूपा है। दोनों के नियम उपनियम भी समानता लिए हुए हैं। जैसे श्रमण पंच महाव्रत का आराधक है श्रमणी भी पंचमहाव्रत की आराधिका होती है। श्रमण बावीस परिषदों पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है और श्रमणी भी बावीस परिषद को जीतने में अपना पराक्रम दिखाती है। पाँच समिति और तीन गुप्ति की परिपालना श्रमण और श्रमणी दोनों करते हैं। श्रमण की भांति श्रमणी भी प्रातः सायं षडावश्यक की साधना में संलग्न रहती है। दशविधयति धर्म श्रमण और श्रमणी दोनों के आचरणीय है।

श्रमण संघ में जिस तरह श्रमणों की व्यवस्था निर्धारित है, उसी तरह श्रमणियों की भी व्यवस्था रही है। श्रमणी संघ की समुत्कर्ष का हेतु और सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए कतिपय पदों का उल्लेख है। वे पद इस प्रकार हैं - (१) प्रवर्तिनी (२) गणावच्छेदिनी (३) अभिषेका और (४) प्रतिहारी।

इन पदों के बारे में सविस्तृत विवेचना न करती हुई संक्षेप में ही इन पदों का स्पष्टीकरण और स्वरूप प्रस्तुत कर रही हूँ।

(१) प्रवर्तिनी ^३ - श्रमणी संघ में प्रवर्तिनी का जो स्थान है वह वस्तुतः महत्वपूर्ण है। उसकी अपनी गरिमा और महिमा है। श्रमणी की दीक्षा पर्याय कम से कम आठ वर्ष की होनी चाहिये। वह आचार में कुशल, प्रवचन में प्रवीण, संक्लिष्ट चित्त वाली स्थानांग और समवायांग आदि आगमों की ज्ञाता होना आवश्यक है। प्रवर्तिनी पद के लिए प्रधान आर्या गणिनी महतरा आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जो उसके निर्मल एवं तेजस्वी व्यक्तित्व को उजागर कर देते हैं। आठ वर्ष की दीक्षा पर्याय वाली प्रवर्तिनी के लिए यह भी बताया है कि वह एक साध्वी के साथ शीत और उष्ण काल में विचरण नहीं कर सकती। कम से कम दो साध्वियाँ आवश्यक हैं।

(२) गणावच्छेदिनी - जो स्थान श्रमण श्रमणी में गणावच्छेद का रहा है वही स्थान श्रमणीसंघ में गणावच्छेदिनी का रहा है गणावच्छेदिनी पद धारिणी श्रमणी को शीत एवं उष्ण काल में तीन अन्य साध्वियों के साथ विचरण करना चाहिए वर्षावास में उसके साथ चार साध्वियाँ आवश्यक हैं।

(३) अभिषेका - श्रमण संघ में जो स्थान स्थविर का है वही स्थान श्रमणी संघ में अभिषेका का रहा है, कही-कही पर अभिषेका के स्थान पर गणिनी के समकक्ष रखा गया है।

(४) प्रतिहारी - निग्रन्थी प्रतिहारी द्वारपालिका के रूप में मानी गई है। वह प्राथमिक की तरह होती है, जहाँ कहीं ऐसे स्थलों पर रुकना पड़ता है। जहाँ साध्वी की सुरक्षा का प्रश्न होता है वहाँ वह प्रतिहारी द्वारपालिका के रूप में रहकर अन्य श्रमणियों की रक्षा करती थी।

इस प्रकार श्रमणी संघ की सर्वतोमुखी समुत्कर्षता एवं सुव्यवस्था हेतु उपर्युक्त पदों का निर्धारण किया गया है।

भगवान् श्रवणभदेव के शासन काल में चालीस हजार श्रमणियाँ सिद्ध हुई (४) तीर्थकर अजितनाथ के शासनकाल में श्रमणियों की संख्या तीन लाख तीस हजार थी (५) भगवान् संभवनाथ के शासन काल में साध्वियों की उत्कृष्ट सम्पदा तीन लाख छत्तीस हजार थी (६) भगवान् अभिनन्दन के शासन काल में श्रमणियों की संख्या छः लाख तीस हजार थी (७) तीर्थकर सुमतिनाथ के युग में पाँच लाख तीस हजार साध्वियाँ थी (८) भगवान् पद्मप्रभ के धर्मपरिवार में चार लाख बीस हजार साध्वियों की संख्या थी (९) तीर्थकरसुपाश्वर्यनाथ के शासन काल में सतियों की संख्या उत्कृष्ट सम्पन्न चार लाख तीस हजार थी (१०) तीर्थकर चन्द्रप्रभ के शासन काल में आर्याओं की संख्या तीन लाख अस्सी हजार थी (११) तीर्थकर सुविधिनाथ के धर्म परिवार में श्रमणियों की उत्कृष्ट सम्पदा एक लाख बीस हजार थी (१२) तीर्थकर शीतलनाथ के धर्म संघ में महासतियों की संख्या एक लाख छः थी (१३) भगवान् श्रेयास नाथ के शासन काल में निग्रन्थियों की उत्कृष्ट सम्पदा एक लाख तीन हजार थी (१४) तीर्थकर वासुपूज्य के धर्म संघ में साध्वी-रत्न की संख्या एक लाख रही थी। (१५) तीर्थकर विमलनाथ के चतुर्विधसंघ श्रमणियों की उत्कृष्ट संख्या एक लाख आठ सौ थी (१६) भगवान् अनन्तनाथ के धर्मपरिवार में साध्वियों की संख्या बासठ हजार थी (१७) भगवान् धर्मनाथ के श्री संघ में साध्वियों की संख्या बासठ हजार चार सौ थी (१८) भगवान् शान्तिनाथ के शासन काल में साध्वियों की उत्कृष्ट संख्या इकसठ हजार छः सौ थी (१९) भगवान् कुशुनाथ के धर्मपरिवार में साध्वियों की संख्या साठ हजार छः सौ थी (२०) भगवान् अरहनाथ के शासनकाल में साध्वियों की उत्कृष्ट संख्या साठ हजार थी। (२१) भगवान् मल्लिनाथ के शासन काल में श्रमणियों की संख्या पचपन हजार थी (२२) भगवान् मुनिसुव्रत के शासन काल में श्रमणियों की संख्या पचास हजार थी (२३) भगवान् नेमिनाथ के शासन काल में साध्वियों की संख्या इकतालीस हजार थी

४ - कल्पसूत्र सूत्र १, २, ७

५ - प्रवचन सारोद्धार १, १७ गाथा ३३, ५/३९

६ - प्रवचन सारोद्धार १७ गाथा ३३५ - ३९

७ - सत्तारोद्धार ११३ गाथा २३५ - २३६

८ - सतरियद्वार ११३ गाथा २३५ - २३६

९ - समवायाङ्ग सूत्र

१०	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
११	सतरियद्वार	११३ गाथा	२३५ - २३६
१२	प्रवचनसारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१३	प्रवचनसारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१४	प्रवचनसारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१५	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१६	सतरियद्वार	११३ गाथा	२३५ - २३६
१७	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१८	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
१९	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२०	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२१	सतरियद्वार	१०४ गाथा	२१६ - २१७
२२	प्रवचन सारोद्धार	२५ गाथा	३६८ - ८२
२३	प्रवचन सारोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९

(२४) भगवान अरिष्टनेमि के शासन काल में आर्याओं की संख्या चालीस हजार थी (२५) भगवान पाश्र्वनाथ के शासन काल में साध्वियों की उत्कृष्ट सम्पदा अड़तीस हजार थी (२६) भगवान महावीर के शासन काल में श्रमणियों की उत्कृष्ट सम्पदा छत्तीस हजार थी (२७) उपयुक्त विवेचन से किस तीर्थंकर के शासनकाल में कितनी श्रमणियाँ हुई थी, उसका स्पष्ट रूप से परिज्ञान हो जाता है।

नारी पर्याय का उत्कृष्ट स्वरूप आर्यिका के रूप में भी है, जिसका अर्थ सज्जनों के द्वारा जो अर्चनीया, पूजनीया होती है जो निर्मल चारित्र को धारण करती है वह आर्यिका का है और आर्यिका का अपरनाम साध्वी है। जो अध्यात्म साधना का यथाशक्ति परिपालन करती है, उसे साध्वी कहते हैं। शम, शील, संयम और श्रुत ही साध्वी का यथार्थ स्वरूप है और यह एक ऐसी परम निर्मल तारिका है जो अपनी साधना की प्रभा से भावुक आत्माओं का प्रभास्वर कर देती है। उनके अन्तरंग और बहिरंग जीवन में आमूलचूल परिवर्तन भी करती है।

श्रमणी जहाँ एक ओर स्वकल्याण में सर्वात्मना निरत रहा करती है। जिस साधना मार्ग पर नित्य निरन्तर अग्रसर होती हुई लक्ष्य की ओर प्रगतिशील रहती है और वह दूसरी ओर जैन धर्म की प्रभावना में भी अपना महत्वपूर्ण अवदान देती है। जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की प्राणप्रतिष्ठा जनता जनार्दन के लिए करती है। इतना ही नहीं वह उन्हें व्यसनमुक्ति का पाठ भी पढ़ाती है। सदाचार जीवन जीने की सत्प्राण प्रेरणा प्रदान करती है, जिससे उनका जीवन यथार्थ में जीवन बन जाता है और वह जीवन एक ऐसा प्रेरणास्पद होता है कि परिवार, समाज और राष्ट्र भी गौरवान्वित होता है।

श्रमणी स्वयं योग्यता सम्पन्न होती है जिससे उसकी प्रवचनकला भी महत्वपूर्ण होती है। उसका प्रभाव भी विलक्षण है जिससे श्रोतागण भी उस प्रवचन कला के प्रभाव-प्रवाह में डूबता तैरता रहता है। श्रोता अध्यात्म प्रधान प्रवचन सुधा का पान करता हुआ बहिर्जगत् से हटकर अन्तर्जगत् में पहुँच जाता है। यही उसके प्रवचन कला का अचिन्त्य प्रभाव साकार रूप में दिखाई पड़ता है।

श्रमणी अपने जीवन में उत्कृष्ट रूप से तपः साधना भी करती है जिससे जैन धर्म की प्रभावना को और अधिक व्यापकता प्राप्त होती है श्रमणी स्वयं तपः साधना में प्रलम्बकाल तक संलग्न रहने के साथ ही अन्य भव्यात्माओं को भी तपस्या की महती प्रेरणा देती है जिससे भव्य आत्माएँ अपनी जीवन को तपश्चरण के साँचे में ढाल देते हैं। तप जहाँ एक ओर जैन धर्म की प्रभावना सम्पादन में सक्षम है वहाँ दूसरी ओर तप जन्म जन्मान्तरों के संचित/बन्धित कर्म पुद्गलों को भी क्षीण कर देता है। कर्म जब आत्यन्तिक रूप से क्षय हो जाते हैं तब आत्मा परम शाश्वत पद को प्राप्त कर लेता है।

कतिपय श्रमणियाँ अहिंसा धर्म की विजय पताका फैलाती हुई हिंसा की परम्परा को सदा के लिए समाप्त कर देती हैं। समाजगत हिंसा प्रधान रूढ़ियों का उन्मूलन कर देती हैं और अहिंसात्मक स्वस्थ परम्परा का आविर्भाव करती हैं। श्रमणियाँ अध्यात्म योग के क्षेत्र में भी दक्षता प्राप्त होती हैं। अध्यात्मयोग उनका निजी रस होता है और यह रस धारा स्वयं को आप्लावित करती हुई दूसरों को भी लाभान्वित कर देती है। अहिंसा और अध्यात्मयोग ये दोनों अपने आप में महान् तत्त्व हैं। श्रमणी जगत ने इनके द्वारा भी जैन धर्म की प्रभावना/अभिवृद्धि में मूल्यवान् योगदान दिया है।

२४	प्रवचन सरोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२५	प्रवचन सरोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२६	प्रवचन सरोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९
२७	प्रवचन सरोद्धार	१७ गाथा	३३५ - ३९

सार पूर्ण शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि श्रमणियों ने जिन शासन की प्रभावना में जब से योगदान देना प्रारम्भ किया उसका इतिवृत्त शब्दशः लिखना इस लघुकाय निबन्ध में सम्भव नहीं है तथापि हमारा विनम्र प्रयास भी उस दिशा में डग भर है।

* * * * *

चिंतन - कण

- दूसरों के काम में हाथ बटाने पर सुख की अनुभूति होती है।
- यह शरीर एक दिन अवश्य नष्ट होगा, सिर्फ आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व ही शेष रह जाएंगे।
- अपने को सदा सत्कार्य करने में ही लगाओ।
- सदाचार ही जीवन का सार है।
- सहनशक्ति ही अंत में सुखकारी होती है।
- जीवन का अंतिम सुख त्याग है।
- त्याग जैन शासन का संदेश है।
- त्याग धर्म व शान्ति है, भोग अधर्म व अशान्ति है।
- जीवन एक वाटिका है, इस वाटिका में सद्गुणों के पुष्प लदे हुए हैं।
- यह संसार एक बाजार है, जीवन में (बाजार के सामान के प्रतीक) गुणों व अवगुणों को उतारने के लिए मानव स्वतंत्र है।
- जीवन अमूल्य मोती है। मोती से जन सामान्य मुग्ध हो जाता है। अतः सद्गुण रूपी मोती जीवन में उतारने से सारा संसार प्रफुल्लित हो उठता है।
- उपवन में भीनी-भीनी महक आती है पुष्पों की, वैसे ही सच्चाई के मानव में विकास से सारा संसार भीना-भीना महक सकता है।

● स्व. श्री चम्पाकुंवर जी म.सा

जैन आगम साहित्य में नारी का स्वरूप

• महासती श्री उदितप्रभा 'उषा'

महर्षि रमण का कहना है “पति के लिए चरित्र, संतान के लिये ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया, तथा जीव मात्र के लिये करुणा संजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है।”

वह तप, त्याग, प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति है। उसकी तुलना एक ऐसी सलिला से की जा सकती है, जो अनेक विषम मार्गों पर विजयश्री प्राप्त करते हुए, सुदूर प्रान्तों में प्रवाहित होते हुए संख्यातीत आत्माओं का कल्याण करती है। उसमें पृथ्वी के समान सहनशीलता, आकाश के समान चिन्तन की गहराई और सागर के समान कल्मष को आत्मसात कर पावन करने की क्षमता विद्यमान है।

नारी की तुलना भूले भटके प्राणियों का पथ प्रदर्शित करने वाले प्रकाश स्तम्भ से की जा सकती है। उसके जीवन में राहों की धूल भी है, वैराग्य का चन्दन भी है और राग का गुलाल भी है। वह कभी दुर्गा बनकर क्रान्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित करती है तो कभी लक्ष्मी बनकर करुणा की बरसात। न+अरि अर्थात् जो किसी की शत्रु नहीं उसके वात्सल्यमय आंचल में शिशु के समान अखिल विश्व पल्लवित होता है। अतः यदि उसे जगन्माता की संज्ञा से अभिहित किया जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

हमारे देश में प्राचीन काल से ही नारी का स्थान गरिमामय रहा है। “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता” जहां पर नारियों की पूजा और सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। इयं वेदिः भुवनस्य नाभिः नारी ही संसार का केन्द्र है। इन सूत्रों में नारी के प्रति अपार आस्था, श्रद्धा और पूज्य भावना अभिव्यक्त की गई है।

कवियों ने उनकी तुलना वर्ण एवं गन्ध के फूलों की महकती मनोहारिणी माला से की है, जननी के रूप में वह सर्वाधिक पूज्य एवं सम्माननीय है, बहन के रूप में वह स्नेह, सौजन्य एवं प्रेरणा की प्रवाहिनी है, पत्नी भार्या, सहधर्मिणी के रूप में वह मानव के समग्र व्यक्तित्व का मित्र रूप में विकास करती है। वह एक ऐसे असीम सागर के समान है, जिसमें चिन्तन के असंख्य मोती विद्यमान हैं।

जैन मनीषियों ने उसके महत्व के आलोक को समझा और शब्दबद्ध किया। आगम के ज्योतिर्मय पृष्ठों में उसके आदर्शों एवं गौरवगाथाओं के अनेक चित्र विद्यमान हैं। जैन धर्म में नारी को बाह्य परिवेश के स्थान पर उसके आन्तरिक सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया गया है। उसकी उग्र तपस्या, असीम त्याग अतुलनीय साहस, सेवा परायणता, शील सौन्दर्य, संवेदनशीलता, तितिक्षावृत्ति के दिव्य प्रभाव का गान किया गया है। उसने अन्तर में विद्यमान अतुल जीवन शक्ति को अनुभव कर सम्मानित किया है।

जैन इतिहास में नारी माहात्म्य विषय में सर्वोत्कृष्ट पक्ष पुरुष से पहले जीवन के विकास की चरम स्थिति में पहुंचना है। उदाहरणार्थः भगवान् ऋषभदेव के समक्ष जब माता मरूदेवी आती है, और हाथी पर

बैठे-बैठे ही उनकी अन्तश्चेतना, ऊर्ध्वारोहण करने लगती है और वह वायावी भावनाओं से ऊपर उठकर शुद्ध चैतन्य में लीन हो जाती है, उसी आसन पर बैठे-बैठे वह कैवल्यज्ञान और सिद्ध गति प्राप्त कर लेती है।

जैन धर्म में तीर्थंकर का पद सर्वोच्च माना जाता है। श्वेताम्बर, परम्परानुसार मल्लि को स्त्री तीर्थंकर के रूप में स्वीकार करके यह उद्घोषित किया कि आध्यात्मिक विकास के सर्वोच्च पद की अधिकारी नारी भी हो सकती है। उसमें अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा का निवास है। माता मरूदेवी और तीर्थंकर के दो ऐसे जाज्वल्यमान उदाहरण श्रमण संस्कृति ने प्रस्तुत किये हैं, जिनके कारण नारी के सम्बन्ध में रची गई, अनेक मिथ्या धारणाएं स्वतः ध्वस्त हो जाती हैं।

भगवान् ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी मानव जाति की प्रथम शिक्षिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं। जम्बूद्वीप-प्रशस्ति, आवश्यकचूर्णि व आदि पुराण आदि में इन्हें मानव सभ्यता के आदि में ज्योतिस्तम्भ माना है। ब्राह्मी ने सर्वप्रथम अक्षरज्ञान की प्रतिष्ठापना की तो सुन्दरी ने गणितज्ञान को नूतन अर्थ दिया है। प्रथम शाश्वत साहित्य के वैभव की देवी है, तो दूसरी राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति के हानिलाभ का सांख्य उपस्थित करती है। दोनों ने सांसारिक आकर्षणों को ताक पर रखते हुए आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर मानव जगत के बौद्धिक विकास की जो सेवा की है, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

भगवान् ऋषभदेव ने नारी के उत्थान हेतु जिन चौंसठ कलाओं की स्थापना की है, उनमें दोनों आजन्म कुमारियाँ निष्णात थी।

नारी इस सृष्टि की प्रथम शिक्षिका है, वहीं सर्वप्रथम विश्व रूपी शिशु को न केवल अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है, अपितु गिरकर फिर उठकर चलने का पाठ भी पढ़ाती है।

आवश्यकचूर्णि में ब्राह्मी और सुन्दरी द्वारा मुनि बाहुबलि को प्रतिबोध देने का उल्लेख है। प्रकृति से कोमल होने के कारण उसका उपदेशिका रूप विशिष्ट प्रभाव उपस्थित करता है। बाहुबलि संयम के पथ पर चलकर भी अभिमान के मद से मुक्त नहीं हुए थे। भगिनी द्वय ने उनके अभिमान को चूर कर समार्ग पर प्रशस्त किया था। उनका स्वर था:-

“वीरा म्हारा गज थकी नीचे उतरो।

गज चढ़या केवली न होसी रे॥”

भगिनी द्वय का उपदेश सुन करके उनके अन्तर के द्वार खुले और अहंकार निशेष हो गया।

उत्तराध्ययन और दशवैकालिक की चूर्णि में राजमति के अडिग संकल्प और दिव्यशील का वर्णन है। यादव युग की नारी राजुल की अरिष्टनेमि के साथ सगाई हो चुकी थी, विवाह के लिए बारात आ गयी थी। सहसा तोरण पर से वर लौट गये और राजुल परित्यक्ता हो गयी। परित्यक्ता होने पर वह भी टूटी नहीं। अपितु राजमहल के वैभव को छोड़कर त्याग के पथ पर चल पड़ी। उसके संयम के सामने रैवताचल की सूनी घाटियाँ भी विस्मित थी। उधर रथनेमि संयम के पथ पर चलते हुए भी वासनाओं के लाल डोरों से स्वयं को मुक्त न कर सके थे। रैवताचल की अन्धकाराच्छन्न एकान्त गुफा में भीगे सौन्दर्य को देखकर वह संयम के आकाश से वासना की धरती पर तड़पने लगे थे। जब राजमति ने रथनेमि को पतन के गर्त में

गिरते हुए देखा तो उसका उपहास नहीं उड़ाया अपितु अपनी पवित्र उपदेशामृत से ऐसी प्रशान्ति प्रदान की कि वासना का सर्प फिर कभी न फुंफकारा। संयम के मार्ग पर रथनेमि के भटकते कदमों को राजमति ने स्थिर किया। राजमति की अदम्य तेजस्विता स्तुत्य है। भगवान् महावीर स्वामी के शब्दों में राजुल के उपदेश से रथनेमी सत्यथ पर वैसे ही चल पड़ते हैं, जैसे उत्पथगामी मस्तहस्ती अंकुश से नियंत्रित हो जाता है। **“अंकुसेण जहाँ नागो घमो संपडिवाइओ”**

श्रमण संस्कृति में नारी की गरिमा आदिनाथ से महावीर युग तक अक्षुण्ण रह सकी। महावीर ने चन्दनबाला के माध्यम से उस परम्परा को एक नवीन मोड़ प्रदान किया। तदुपरान्त ही साधु और श्रावक के साथ साध्वी और श्राविका संघ की स्थापना की। साधना के पथ पर नारी ने नव कीर्तिमान स्थापित किये। पुरुषों की अपेक्षा नारियों की संख्या सदा ही बढ़कर रही। नारी ने अपने अडिग साधना द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि वह किसी भी दृष्टि से पुरुष से पीछे नहीं है - **“एक नहीं दो-दो मात्राएं नर से बढ़कर नारी।”** भ. महावीर के चतुर्विध संघ में कुल चौदह हजार साधु एवं छत्तीस हजार साध्वियां थी। एक लाख उनसठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएं थी। चन्दनबाला ने छत्तीस हजार आर्याओं के विराट एवं दिव्य श्रमणी संघ का नेतृत्व किया। चन्दनबाला जैन साहित्य में एक प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित है। दासत्व की जंजीरों से वह भगवान् महावीर स्वामी की अनुकम्पा से मुक्त हुई और उसने अध्यात्म पथ पर संयम की रंगोली सजायी।

वस्तुतः आर्य चन्दनबाला की कहानी भारतीय नारी के संघर्षों के सागर के उस पार जाने के अतुलनीय साहस का प्रमाण है।

मनीषियों ने आध्यात्मिक निर्देशनों की दृष्टि से चन्दनबाला को गणधर गौतम के समकक्ष माना। कल्पसूत्र इसके लिए प्रमाण-स्वरूप है, जिसमें बताया गया है कि साधु संत में सात सौ श्रमण केवल ज्ञान पाकर सिद्ध हुए हैं। जबकि संघ में सात सौ श्रमण केवल ज्ञान पाकर सिद्ध हुए हैं। जब कि श्रमणी संघ में चौदह सौ श्रमणियां सिद्ध बुद्ध मुक्त हुईं। इसका यह अर्थ है कि आर्य चन्दना का शासन कितना अधिक स्वच्छ, निर्मल, सशक्त एवं सक्षम था और इसके मूल में स्वयं भगवान् महावीर हैं, उनका तत्त्वज्ञान एवं धर्म शिक्षण।

श्रमण भगवान् महावीर ने नारी में विद्यमान दिव्य गुण को पहचाना और उसकी गरिमा के प्रतिष्ठापन की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

भगवान् महावीर स्वामी के सन्देश में नारी के लिये अमृत बिन्दु छलके हैं। आध्यात्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से उसके लिये विकास के नव सोपान स्थापित किये।

साध्वी श्री सुयशा का यह कथन जैन श्रमणी के लिये सार्थक सिद्ध होता है-**“नारी न सहसा विद्रोह कर सकती है और न दबू बनकर ही रह सकती है। उसका अपना एक स्वाभिमान है, जिसकी कोई ‘इदमित्थं’ जैसी ऐकान्तिक व्याख्या नहीं हो सकती। नारी सर्वथा नवीन क्रान्ति की निर्मात्री अभिनव ब्रह्माणी है। जीवन के हर नये मोड़ पर नारी की एक अनोखी ही नवनिर्मित होती है।”**

नारी को अबला और बंदिनी कह कर उसका उपहास करने वाले को जैन शिरोमणियों ने निरुन्तरित किया है। एक कवि का कथन है - **“कोमल है कमजोर नहीं तुम शक्ति का नाम नारी है,**

सबकों जीवन देने वाली मौत भी तुझसे हारी है।” कतिपय लोगों ने नारी के महत्व को न समझ कर उस पर व्यंग्य किया है। किसी ने यह कहा- “नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग” तो किसी ने उसकी तुलना ढोल से करते हुए कहा - “शूद्र गंवार ढोल पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी” अंग्रेजी के एक लेखक के सिर पर तो यह जादू कुछ अधिक ही चढ़कर बोला - “A dog, a wife and walnut tree more you beat them better they be”

कुछ लोगों ने नारी को विष की बेलड़ी, कलह की जड़ कहकर उसकी उपेक्षा की है। उन्होंने नारी के उज्ज्वल रूप को नहीं देखा। वह युद्ध की ज्वाला नहीं, शक्ति की अमृतवर्षा है। वह अन्धकार में प्रकाश किरण है। उसने अपने बुद्धि, चातुर्य और आत्मविश्वास से ‘बूले भटके’ जीवन राहियों को सही दिशा दर्शन दिया। दुराचार के सघन अन्धकार में गुमराह बने व्यक्तियों को सदाचार की सही राह बतायी।

जैन धर्म नारी के सामाजिक महत्व से भी आंखें मूंद कर नहीं चला है। उसने सामाजिक क्षेत्र में भी नारी को पुरुष के समान महत्व दिया है। संयम के क्षेत्र में भिक्षुणियाँ ही नहीं गृहस्थ उपासिकाओं भी अनवरत् आगे बढ़ी हैं। भगवान् महावीर के प्रमुख श्रमणोपासक गृहस्थों का नामोल्लेख जहां होता है वहीं प्रमुख उपासिकाएं की भी चर्चाएं आती हैं। सुलसा, रेवती, जयन्ती, मृगावती जैसी नारियां महावीर के समवसरण में पुरुषों के समान ही आदर व सम्मानपूर्वक बैठती हैं।

भगवती सूत्रानुसार जयन्ती नामक राजकुमारी ने भगवान् महावीर के पास गम्भीर, तात्त्विक एवं धार्मिक चर्चा की है तो कोशा वेश्या अपने निवास पर स्थित मुनि को सन्मार्ग दिखाती है।

उत्तराध्ययन सूत्र में महारानी कमलावती एक आदर्श श्राविका थी, जिसने राजा इषुकार को सन्मार्ग दिखाया है। महारानी चेलना ने अपने हिसापरायण महाराज श्रेणिक को अहिंसा का मार्ग दिखाया।

श्रमणोपासिका सुलसा की अड़िग श्रद्धा सतर्कता के विषय में भी हमें विस्मय में रह जाना पड़ता है। अम्बड़ ने उसकी कई प्रकार से परीक्षा ली। ब्रह्मा, विष्णु, महेश बना, तीर्थंकर का रूप धारण कर समवसरण की लीला रच डाली। किन्तु सुलसा को आकृष्ट न कर सका। सुलसा की श्रद्धा देखकर मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है। रेवती की भक्ति देवों की भक्ति का भी अतिक्रमण करने वाली थी।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रमाणित हो जाता है कि जैन दर्शन के मस्तक पर नारी तपशील और दिव्य सौन्दर्य के मुकुट की भांति शौभायमान है। उसकी कोमलता में हिमालय की दृढ़ता और सागर की गंभीरता छिपी हुई है। सीता, अन्जना, द्रौपदी, कौशल्या, सुभद्रा आदि महासतियों का जीवन चरित्र आर्य संस्कृति का यशोगान है। इनके संयम, सहिष्णुता एवं विविध आदर्शों को यदि देवदुर्लभ सिद्धि कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

ये लब्धियां महाकाल की तूफानी आंधी में भी कभी धूल धूसरित न होगी। वस्तुतः जैनागमों में नारी जीवन की विविध गाथाएं उन नन्हीं दीप शिखाओं की भांति हैं जो युग-युगान्तर तक आलोक की किरणें विकीर्ण करती रहेगी। यह दीप शिखाएं दिव्य स्मृति-मंजूषा में जगमगाती रहेगी। वर्तमान परिस्थितियों में यह ज्योति अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी नारी विविध विषमताओं के भयानक डैनों से स्वयं को मुक्त नहीं पा रही है। यदि हम जैन श्रमणियों और आदर्श श्राविकाओं की सुष्ठु एवं ज्योतिर्मय परम्परा को एक बार पुनः समय के पटल पर स्मरण करें तो आने वाले कल का चेहरा न केवल कुसुमादपि कोमल होगा अपितु उसमें हिमालयदपि दृढ़ता का भी समावेश हो जायेगा।

* * * * *

साध्वी जीवन : एक चिन्तन

• दीक्षित डा. सुशील जैन "शशि"

‘नारी’ प्रकृति की एक अनुपम कृति है। सौन्दर्य की साक्षात् समुज्ज्वला है। आनन्द की अधिष्ठाता है, पवित्रता की प्रतिमा है, मंगल की मूर्ति है एवं समता का संकलन है। नारी शक्ति ‘संचय का सामर्थ्य, उन्नति का उत्साह तथा साध्य प्राप्ति की योग्यता है। नारी न+अरि है अर्थात् नारी वह है जिसके कोई शत्रु नहीं है। समाज की स्वस्थ-व्यवस्था में नारी और पुरुष की समान आवश्यकता है। पुरुषों के मानस में नारी के प्रति अबला मानी जाने वाली मिथ्या धारणा है। नारी अबला नहीं सबला है। हम नारी की गोद से वीर, तेजस्वी, ज्ञानी एवं महान पुरुष के जन्म की चाह करते हैं, किन्तु यदि सन्तान वीर और तेजस्वी पाना है तो नारी को अबला नहीं सबला बनाना होगा। याद रखिये अबला नारी से सबल सन्तान का जन्म नहीं हो सकेगा। सियारानी से शेर का जन्म सम्भव नहीं। शेर का जन्म सिंहनी से होगा।

नारी एवं पुरुष के मध्य यदि श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ दृष्टि से मूल्यांकन किया जाय तो राम के साथ समकालीन रावण, सीता के साथ शूर्पणखा, कृष्ण के ही युग में कंस, युधिष्ठिर के साथ दुर्योधन, भगवान महावीर के साथ गौशालक, गांधी के साथ गौडसे, महासती चन्दनबाला के साथ सेठानी मूला एवं भक्त प्रह्लाद के साथ हिरण्य कश्यप का स्मरण हो आता है।

अनुभव के आधार पर पुरुषों की अपेक्षा ‘नारी’ अधिक सहनशील एवं शक्ति सम्पन्न ठहरी है। मैराथन दौड़ के ओलम्पिक खेलों में १५ वर्ष के अन्तर्गत महिलाओं ने ४० मिनट की कमी की है जबकि पुरुष धावक मात्र २ मिनट ही कम कर सके हैं। बर्फीली हवाओं में हिमांक से ५० डिग्री से नीचे के तापमान में ३३ वर्षीया महिला सूसर नबुकर ने १०४९ मील कुत्तागाड़ी दौड़ लगाकर तीसरी बार जीती थी। (१) अनुशासन क्षमता के क्षेत्र में हम स्व. प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को देख सकते हैं, जिसने पुरुषों की अपेक्षा लम्बे समय तक भारत की विशाल जनता का कुशल संचालन किया है। जैन इतिहास में १९ वें तीर्थंकर भगवान् मल्लीनाथ का जीवन नारी की पूर्णता का सजीव उदाहरण है।

जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों के प्रगतिशील दर्शन ने नारी को यथोचित सम्मान दिया है। धार्मिक क्षेत्र में भी नर और नारी की साधना में कोई भेद नहीं रखा है। चतुर्विध संघ में नारी को समान स्थान दिया है। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। जैन संस्कृति के श्वेताम्बर परिप्रेक्ष्य में पुरुषों की तरह नारी भी अष्ट कर्मों को क्षय करके मोक्ष जा सकती है, जिसका प्रारम्भिक ज्वलन्त उदाहरण भगवान् ऋषभदेव की माता मरुदेवी है। भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर ने आध्यात्मिक अधिकारों में कोई भेद नहीं रखा। उन्होंने पुरुषों की भाँति नारी को भी दीक्षित बनाया है। परिणामतः उन सभी की श्रमण सम्पदा से श्रमणी सम्पदा अधिक रही है।

साध्वी जीवन एक चिन्तन

श्रमणियों का सांगोपांग वृहत् इतिहास एक स्वतंत्र ग्रंथ का विषय है। साथ ही एतदर्थ विस्तृत शोध एवं चिन्तन की भी आवश्यकता है। वर्तमान अवसर्पिणी काल की प्रथम साध्वी आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की कन्याएं ब्राह्मी एवं सुन्दरी हैं। जिन्हें भगवान् ऋषभदेव द्वारा ३,००,००० (तीन लाख) साध्वियों की प्रमुखा बनाया गया। श्रमणी इतिहास के सन्दर्भ में भावी तीर्थंकर श्री कृष्ण वासुदेव की पटरानियों पद्मावती, गौरी, गांधारी, लक्ष्मणा, सुषमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रूक्मिणी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन्होंने श्री अरिष्टनेमि प्रभु से दीक्षित होकर यक्षिणी नामक महासती की शिष्याएं बनकर आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया था।

जाम्बवती के पुत्र शाम्बकुमार की विदुषी पत्नी मूलदत्ता एवं मूलश्री ने दीक्षित होकर मोक्ष प्राप्त किया। भगवान् महावीर की ३६,००० शिष्याओं की प्रमुखा महासती चन्दनबाला थी। कौशाम्बी नरेश सहस्रानिक की पुत्री एवं शतानिक नृप की भगिनी जयन्ती-श्राविका एवं पत्नी रानी मृगावती, मगध सम्राट बिम्बिसार श्रेणिक की नन्दा, नन्दावती, काली, सुकाली इत्यादि २३ रानियों ने महासती चन्दनबाला के पास दीक्षा स्वीकार की। इस अवसर्पिणी काल की तीर्थंकर कालीन साध्वियाँ ४५,५८,००० (४५ लाख ५८ हजार) थी, जबकि साधु २८४६००० (२८ लाख ४६ हजार) ही थे। (२) वर्तमान में जैन संघ के ९९७४ साधु एवं साध्वियाँ हैं, जिनमें ७६८७ साध्वियाँ हैं। (३)

भगवान् महावीर के निर्वाण पश्चात् इस श्रमणी परम्परा के अन्तर्गत साध्वी याकिनी महत्तरा को विस्मृत नहीं किया जा सकता है, जिसने आचार्य हरिभद्र सूरि को अपने गुरु जिनदत्त सूरि के चरणों में दीक्षित किया था। एक हजार से कुछ वर्ष पूर्व धारा नगरी के राजा मुंजदेव की महारानी कुसुमावती ने संयम ग्रहण कर इतिहास की गरिमा में अभिवृद्धि की।

तप साधना के क्षेत्र में रानियों महारानियों ने श्रमणी जीवन अपनाकर रत्ना कनकावली आदि तपाराधना कर अमर लक्ष्य को प्राप्त किया है।

चन्दनबाला के साध्वी संघ में पुष्पचूला, सुनन्दा, रेवती, सुलसा, मृगावती, जयन्ती आदि प्रमुख रानियाँ थी। सीता, द्रौपदी, अंजना, कलावती, दमयन्ती आदि साध्वी जीवन का दर्शन आज मानव मात्र के लिए अनुकरणीय बन गया है। ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र के मल्ली अध्ययन में विवाह के लिए आए हुए सातों राजकुमारों को उद्धोधन देने वाली मल्ली कुमारी का आदर्श चिरस्मरणीय बन गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित राजमति ने एकान्त के क्षणों में कामयाबना करने वाले पुरुष से अपने सतीत्व की रक्षा ही नहीं अपितु उसे (देवर रथनेमि को) प्रतिबोध देकर पुनः सन्मार्ग पर लौटाया है।

बौद्ध एवं जैन दोनों ही युगों में भिक्षुणियों का अस्तित्व था। सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन से उदासीन होकर आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर नारी ने भिक्षुणी-संघ में शरण ली है।

२ - तीर्थंकर चरित्र - रतनलाल डोसी सेलाना

३ - समग्र जैन चातुर्मास सूची १९९० प्रकाशन परिषद, बम्बई

वैदिक काल में नारी को मन्त्रोच्चारण का भी अधिकार नहीं था। अतः भिक्षुणी बनने का भी प्रावधान नहीं मिलता है।

चतुर्विध धर्म-संघ में भिक्षुणी संघ और श्राविका संघ को स्थान देकर जैन निर्ग्रन्थ परम्परा ने स्त्री और पुरुष की समकक्षता को प्रमाणित किया है। भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के तीर्थंकर परम्परानुसार बिना किसी हिचकिचाहट के भिक्षुणी अर्थात् साध्वी संघ की स्थापना की गई है। जबकि समकालीन बुद्ध को नारी के सम्बन्ध में संकोच रहा है। बौद्धकाल में बुद्ध ने अपने संघ की स्थापना के साथ नारी को भिक्षुणी बनने का अधिकार नहीं दिया किन्तु प्रमुख शिष्य आनन्द तथा गौतमी के अति आग्रह पर ५ वर्ष पश्चात् भिक्षुणी संघ की स्थापना हुई।

“वर्तमान सन्दर्भ में, साध्वी जीवन” एक चिन्तन -

जैन संघ में प्रागैतिहासिक काल से वर्तमानकाल तक सदैव ही साध्वी परम्परा, साधु समाज से वृद्धिगत संख्या में अनवरत् गतिमान है।

फिर भी साध्वी जीवन श्रमण-समुदाय से अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण बन गया है। ऐसा क्यों? जब जब भी इस प्रश्न को उठाया गया, तब तब अधिकृत पुरुष वर्ग द्वारा साध्वी जीवन को, नारी के अबला जीवन से सन्दर्भित कर उसका स्तर कम कर दिया गया। किन्तु पुरुष यह क्यों भूल जाता है कि श्रमणी वर्ग ने श्रमण की ही भाँति तीर्थंकर पद को भी प्राप्त किया है। श्वेताम्बर परम्परा में १९ वें तीर्थंकर मल्लीनाथ प्रभु इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सभी तीर्थंकरों में मल्लीनाथ (मल्ली कुमारी) ही एक थे, जिन्होंने संयम ग्रहण के प्रथम दिन ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

३६,००० श्रमणियों एवं ३,००,००० (३ लाख) श्राविकाओं का नेतृत्व कर महासती चन्दनबाला ने इस बात को प्रमाणित किया कि नारी में नेतृत्व की क्षमता पुरुष से कम नहीं है। श्रमण बाहुबली के हृदय में पलने वाले अहं को चूर चूर करने वाली ब्राह्मी, सुन्दरी भी श्रमणी ही थी। पुरुषों की ही भाँति क्षमा लेने तथा देने वाली महासती चन्दनबाला एवं मृगावती दोनों ने अविलम्ब केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

आगमिक व्याख्या काल में साध्वियों को गणिनी प्रवर्तनी, गणावच्छेदिनी, अभिषेका आदि पद प्रदान किये जाते थे। भिक्षुणी संघ की समुचित आन्तरिक व्यवस्था साध्वियों के हाथ में थी किन्तु धीरे-धीरे आगमिक व्याख्या साहित्य काल में भिक्षुणी संघ पर आचार्य का नियंत्रण बढ़ता गया। वर्तमान में चातुर्मास, प्रायश्चित्त, शिक्षा, सुरक्षा आदि सभी क्षेत्रों में आचार्य का प्रभुत्व बढ़ता ही जा रहा है। व्यवहार सूत्र के अनुसार आचार्य के अनुशासन में मुनिपद के अनुसार ही श्रमणी व्यवस्था हेतु आचार्या, उपाध्यायिका, गणावच्छेदिका एवं प्रवर्तनी का होना आवश्यक है। किन्तु पुरुष हृदय की पदलिप्सा के कारण महासती चन्दनबाला के पश्चात् आचार्या याकिनी महतरा के अतिरिक्त किसी साध्वी को आचार्या नियुक्त नहीं किया गया।

बौद्ध भिक्षु संघ में बुद्ध ने नारी को प्रवेश की आज्ञा नहीं दी। जब शिष्य आनन्द ने गौतमी की बलवती इच्छा देखकर बुद्ध से अपने संघ में सम्मिलित करने का आग्रह किया तब बुद्ध ने स्पष्ट बताया “मेरे संघ में नारी के सम्मिलित हो जाने पर अब मेरा धर्म शासन जितने समय तक चलना है, उससे आधे समय तक ही चलेगा।” साथ ही बुद्ध ने नवदीक्षित भिक्षु को चिरदीक्षिता भिक्षुणी द्वारा नमस्कार किये

जाने का विधान बनाया। गौतमी ने इस पर प्रश्न उठाया, किन्तु बुद्ध ने इसी नियम में अपने धर्म संघ की गरिमा बताते हुए गौतमी को चुप कर दिया। गौतमी का यह प्रश्न ढाई हजार वर्षों के बाद भी आज तक निरुत्तरित खड़ा है।

बौद्ध भिक्षुणी-संघ की अपेक्षा जैन भिक्षुणी-संघ स्वतंत्र विचरण, प्रवचन एवं वर्षावास कर सकता है। किन्तु जैन श्रमण परम्परा में भी भिक्षु संघ की भौति चिरदीक्षिता श्रमणी द्वारा नवदीक्षिता श्रमण को वन्दन किये जाने का विधान है। गौतमी की तरह जब भी श्रमणी वर्ग द्वारा यह प्रश्न उठाया जाता है कि ऐसा क्यों? तब “इस प्रकार का प्रश्न उठाने वाला अनन्त जन्म मरण की क्रियाओं में वृद्धि करता है।” कहकर उस प्रश्न को वहीं समाप्त कर दिया जाता है अथवा “पुरुष जेष्ठा” कह कर समाधान दे दिया जाता है।

आगम पृष्ठों में योग्य श्रमण के अभाव में उसी श्रमणी को आचार्य बनाने का विधान है, जिसका संयम पर्याय ६० वर्ष हो। जबकि श्रमण-पुरुष के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है “सौ वर्ष की दीक्षिता साध्वी के लिए सब दीक्षित साधु वन्दनीय है। औचित्य से परे पुरुष वर्ग की ओर से बना यह नियम दुराग्रह तथा आधारहीन तर्क है। आगमिक प्रतिपादनों से विपरीत (४) होने पर भी इतनी लम्बी अवधि तक इस परम्परा का टिके रहना पुरुष वर्ग की दुरभिसन्धि का द्योतक है। जिसका अन्धानुकरण वर्तमान का श्रमण वर्ग बड़े शौक से कर रहा है।

नारी वर्ग के प्रति हीनता की भावना रखने वाला समस्त पुरुष वर्ग भिन्न भिन्न परम्पराओं को भूल कर इस बिन्दु पर एक हो गया है, चाहे वह वैदिक, बौद्ध, जैन या अन्य किसी भी परम्परा का क्यों न हो।

साध्वी जीवन के इस सम्पूर्ण चिन्तन के पश्चात् आवश्यकता इस बात की है कि साध्वी समाज स्वयं पर आरोपित अनौचित्य नियमों के प्रति विरोध प्रकट कर अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयासरत बनें। साथ ही साध्वी जीवन की गरिमा एवं महिमा से जग को आलोकित करें जिससे कि इतिहास के पृष्ठों का नव निर्माण हो सके।

* * * * *

अंध विश्वास निवारण में नारी की भूमिका

• श्रीमती माया जैन

इस शीर्षक से संबंधित पहली बात नारी की पृष्ठभूमि, दूसरी बात अंधविश्वास एवं कुप्रथा तथा मिथ्या मान्यताओं से संबंधित मैं तीसरी बात व्यक्त करूंगी।

हमारी भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सभी को समान स्थान एवं समान अधिकार प्राप्त हैं। जिस तरह हमारी मातृभूमि सहिष्णु मानी गई है उतनी ही सहिष्णु नारी है। नारी सेवा रूपा और करुणा रूपा है। सेवा सुश्रुषा और परिचर्या दया, ममता, आदि के विषय में जब विचार किया जाता है तो हमारी दृष्टि नारी समाज पर जाती है। उसकी मोहक आंखों में करुणारूपी ममता का जल और आँचल में पोषक संजीविनी देखी जा सकती है। कुटुम्ब, परिवार, देश, राष्ट्र, युद्ध, शांति, क्रान्ति, भ्रान्ति, अंधविश्वास, मिथ्या मान्यताओं जैसी स्थितियाँ क्यों न रही हो। नारी सदैव लड़ती रही और अपने साहस का परिचय देती रही।

पर दुःखों को, भारी कार्यों को उठाने वाली क्रेन नहीं है। परन्तु वह इनसे लड़ने वाली एवं निरंतर चलती रहने वाले आरी अवश्य है। मैले आँचल में दुनिया भर के दुःख समेट लेना उसकी महानता है। विलखते हुए शिशु को अपनी छाती से लगा लेना उसका धर्म है वह सभी प्रकार के वातावरणों में घुलमिल जाने वाली मधुरभाषिणी एवं धार्मिक श्रद्धा से पूर्ण है। विश्व के इतिहास के पृष्ठों पर जब हमारी दृष्टि जाती है तब ग्रामीण संस्कृति में चलने वाली नारी चक्की, चूल्हे के साथ छाछ को विलोती नजर आती है और संध्या के समय वही अंधेरी रात में रोशनी का दीपक प्रज्ज्वलित करती है। हर फल, हर क्षण, नित्य नये विचारों में डूबी हुई रक्षण पोषण में लगी हुई। अंधविश्वासों से लड़ती हुई नजर आती है। जब वह अपने जीवन के अमूल्य समय को सेवा में व्यतीत कर देती है तब उसे अंध विश्वास एवं मिथ्या मान्यताओं से कोई लेना-देना नहीं होता है।

उसका सबसे बड़ा विश्वास है आदि पुरुष, आदिनाथ की ब्राह्मी एवं सुन्दरी जैसी कन्याओं की तरह धार्मिक संस्कारों से युक्त होकर समाज की सेवा करते रहना है। क्योंकि कन्या की धार्मिक भावना पिता के गृह की अपेक्षा अपने पति के गृह में प्रवेश करके स्वच्छ वातावरण को उत्पन्न करना चाहती है। जहाँ ब्राह्मी और सुन्दरी ने नारी के मनोबल को ऊँचा उठाया वहीं दूसरी ओर सभी तीर्थंकरों की माताओं को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। सभी तीर्थंकरों की मातायें क्षत्रिय कन्यायें थी। स्वयं तीर्थंकर भी क्षत्रिय थे। क्षत्रिय धर्मबल को प्रदर्शित करने वाला होता है पर धर्मबल भी उन्हीं में रहा।

राजुल ने परिवार एवं समाज की चिन्ता न करते हुए एक ऐसे रास्ते को अपनाया, जिस रास्ते पर चलना बड़ा कठिन समझा जाता था। समस्यायें और जगह-जगह कष्टों को झेलना पड़ा पर उन कष्टों की चिन्ता न करते हुए वह मुक्ति पथ की खोज में लगी रही। चन्दना ने समाज में नई जागृति पैदा की और कुन्दकुन्द की माता ने कुन्दकुन्द को महान सिद्धांतवादी एवं आध्यात्मवादी बना दिया।

मैनासुन्दरी एवं सुरसुन्दरी के कथानक अंधविश्वास एवं मिथ्या मान्यताओं को तोड़ते हैं। मैना-सुन्दरी कर्मवादी है और सुरसुन्दरी भाग्यवादी है। मैना से जब यह कह दिया जाता है कि हे बेटी, तेरा विवाह एक कोढ़ी से तय कर दिया गया है। तब वह कहती है माँ-बाप केवल विवाह करते हैं उसके बाद तो कन्या का अपना कर्म ही काम आता है। हे पिता जी, जीव कर्म से ईश्वर होता है, कर्म से रंक होता है, जो अपने ललाट पर लिखा है उसे कौन मेट सकता है। वह विधि का विधान है। मैना अपने अन्तः भरण से धर्मनिष्ठ है। वह समाज के लिए एक आदर्श है। जो दिखला देना चाहती है कि राजा भी कभी रंक हो सकता है। दुःखी भी कभी सुखी हो सकता है।

भारतीय समाज में नारी कभी क्रीत दासी भी रही। वह कभी चेरी, दासी, लोंड़ी बांदी, गोली, दूती, सेविका एवं धाय आदि के नामों से जानी जाती थी। परन्तु उनकी सेवा एवं धार्मिक भाव सदैव विद्यमान रहा।

समाज में अनेक प्रकार की बौद्धिक विचार वाली नारियाँ हैं तो दूसरी ओर अंध विश्वासों से युक्त नारियाँ हैं। हमारे समाज में मूल रूप से जादू टोना, सम्मोहन, बशीकरण, उच्चाटन, मणि, मंत्र, एवं तंत्र प्रचलित है। पर ये सभी बातें इस छोटी सी पंक्ति से निराधार हो जाती है।

मणिमंत्र तंत्र, बहु होई, मरते न बचावे कोई।

वेदों में नारियों के सोलह रूप बताये हैं। जो ज्ञान और साधना को अपनाती थी। लोपामुद्रा, घोषा, अपाला वैदिक ऋचाओं में प्रसिद्ध हुई। जिन्हें समाज का उच्च आदर्श प्राप्त हुआ उन्होंने मिथ्या मान्यताओं से परे होकर व्रतसाधना पर विशेष बल दिया। रामायण, महाभारत की आदर्श नारियाँ उस युग की गाथा को कहती हैं, मीरा समाज के बंधनों को तोड़ देती है। दुर्गावती, चाँदवीबी, ताराबाई, अहिल्याबाई, झाँसी की रानी, क्रान्ति की शिक्षा देती है। इसी बात पर मनु ने नारी की महानता को स्वीकार किया और कहा है -

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्य महींति

नारी का कर्तव्य परिवार को सुखी बनाने में सहायक होता है बुद्ध और महावीर के बाद अंधविश्वासों एवं मिथ्या मान्यताओं से लड़ती नारियाँ देखी जा सकती हैं। बुद्ध की मौसी के साथ पांच सौ नारियों ने दीक्षा ली। धर्म प्रचार किया, विम्बसार की रानी क्षेमा, श्रेष्ठि पुत्री भद्रा, कुण्डलकेसा, आम्रपाली, विशाखा आदि ने अपने समय में क्रान्तिकारी कदम उठाया। विशाखा, बसंतसेना आदि ने समाज को नई दिशा दी और नारी के लिए पतिव्रत धर्म के साथ-साथ त्याग तपस्या को बल मिला।

नारी को शिक्षित करने का अर्थ है पुरुष को शिक्षित करना, परिवार को शिक्षित करना, कुटुम्ब को शिक्षित करना, समाज को शिक्षित करना है। नारी अशिक्षा के अभाव में नारी, अन्धविश्वासों में जकड़ जाती है। वह कभी जादू टोना करती है, कभी ताबीज बांधती है, कभी डोरा डंगा बांधती है, और कभी मंत्र और तंत्र में लीन हो जाती है। यह सब इसलिए करती है कि शायद इससे कुछ प्राप्ति हो जाये। परन्तु सच्चाई यह है कि नारी इन अंध विश्वासों में पड़कर अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है और

कलह का कारण बन जाती है। आज यदि नारी समाज में जागृति उत्पन्न हो जाये कि जैसा मैना सुन्दरी ने, चन्दना ने, अंजना ने, कदम उठाया था वैसी धारणा कर ले तो निश्चित ही एक स्वस्थय समाज की कल्पना संभव है।

एक समय ऐसा भी आया कि नारी हीन दीन घोषित कर दी गई। पर उस बीच में भी नारी ने अपनी बौद्धिक विचारधारा के बल पर पुरुषों के भी छक्के छुड़ा दिये। सांस्कृतिक वातावरण एवं सामाजिक क्षेत्र के विकास में नारियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कुण्डाओं से परे होकर नारी ने विश्व क्षितिज पर मिथ्या मान्यताओं को समाप्त किया। साधु जीवन को स्वीकार करके नारी ने अपनी गरिमा को बढ़ाया। आज जब हम यह देखते हैं कि हमारी श्रमण संस्कृति में जितने श्रमण संघ हैं। उन सभी में श्रमिणों की संख्या, आर्यिकाओं की संख्या, ब्रह्मचारी बहनों की संख्या अत्यधिक देखी जा सकती हैं यह इसलिए नहीं कि उन्हें परिवार में कष्ट था, समाज में दुःख था या नारी के रूप में उचित सम्मान नहीं मिला था। अपितु वे इस कार्य क्षेत्र में इस भावना को लेकर उतरी है कि जो आज हमारे समाज में, सामाजिक क्रान्ति पुरुष वर्ग नहीं ला सकता है वह सामाजिक, क्रान्ति हम धार्मिक क्षेत्र में उतरकर नारी में आस्था के, श्रद्धा के एवं विश्वास के अंकुर पैदा कर सकते हैं। समाज में जो कुदेव, कुगरु, और कुशास्त्र की प्रथा प्रचलित है उसे यदि कोई मिटा सकता है तो घर में रहने वाली गृहिणी ही मिटा सकती है। आचार्य जिनसेन ने आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले यह बात स्पष्ट कर दी थी कि तप, साधना, एवं व्रत आदि करने में और मिथ्या मान्यताओं को दूर करने में नारियाँ अधिक आगे हैं। स्वयंप्रभा, विपुलमति, ने गृहिणी धर्म का पालन करते हुए परिवार में धर्म के अंकुर अंकुरित किये। प्राकृत कथानकों में एक कथानक यह आता है कि एक पत्नी अपने पति अपनी सास एवं श्वसुर को अधिक उम्र का होते हुए भी बहुत कम उम्र का बतलाती है। श्वसुर क्रोधित होते हैं। पर वह उनकी मिथ्या मान्यताओं का खण्डन करती हुई कहती है कि जो व्यक्ति जितना संस्कारित, जितनी उम्र से हुआ है वह उतनी ही उम्र का है। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कार से व्यक्ति अच्छा बनता है और उसी से उसकी उम्र नापी जाती है।

इसी तरह से एक यह भी दृष्टान्त आता है कि एक मनुष्य था जिसके दर्शन करने से भोजन भी प्राप्त नहीं होता था। राजा को भी भोजन प्राप्त नहीं होता। तब वह राजा उस व्यक्ति को मृत्युदंड की सजा सुना देता है। उस प्रसंग में सजायुक्त व्यक्ति यह कथन करता है कि मेरे मुख देखने से किसी को भोजन नहीं प्राप्त होता है। परन्तु राजा के मुख देखने से मुझे मृत्युदंड दिया जा रहा है।

यह उदाहरण अंध विश्वास का है। कामायनी में एक हृदयगत् भावना इस प्रकार है।

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह, कुछ सत्ता है नारी की।

समरसता सम्बंध बनी, अधिकार और अधिकारी की॥

अंध विश्वास को कुप्रथा, कुरीतियाँ एवं अशुभ विचार को संज्ञा दी जाती है। अंध विश्वासों में जादू टोना, मणि, मंत्र-तंत्र विशेष रूप से आते हैं जिन्हें आज भी समाज में देखा जाता है। यदि कोई बुरा कार्य हुआ तो मंत्र-तंत्र की ओर हमारी दृष्टि चली जाती है, पर इससे कितनों को फायदा हुआ। नारियों की थोथी मान्यताओं को नारियों के द्वारा ही जागृति पैदा करके दूर किया जा सकता है।



शकुन और अपशकुन भी समाज में देखे जाते हैं। तीर्थंकरों की माताओं ने स्वप्न देखे थे वे शुभ शकुन थे जिनका अपना विशेष महत्व था। और वे सोलह स्वप्न धर्म निष्ठ एवं श्रुत नारी को ही दिखे। आज की नारी को भी स्वप्न दिखते हैं, पर वे सत्य से परे इसलिए हो जाते हैं कि उनमें धार्मिक क्रान्ति के बीज नहीं हैं। अपशकुन का बोलबाला आज भी समाज में है, बिल्ली का रास्ता काट जाना, छींक आना, आदि है। पर इन पर विचार किया जाय तो ये अपशकुन किस रूप में हैं, इसका किसी को पता ही नहीं है, अतः इन अंध विश्वासों को त्यागना होगा। और इन्हें समाप्त करने के लिए नारियों को आगे आना होगा। आज की सबसे बड़ी कुरीति दहेज प्रथा समाज में व्याप्त है। दहेज की बलिवेदी पर कन्याएँ चढ़ा दी जाती हैं। इसका सबसे बड़ा कारण धार्मिक जागृति का न होना ही कहा जा सकता है। आत्महत्या जघन्य अपराध है, पर आत्महत्या क्यों ओर किस लिए की जाती है यह तो सर्वविदित ही है। ऐसे जघन्य अपराधों को नारी ही रोक सकती है। समाज में एक सबसे बड़ा कारण जन अपवाद भी है। जन अपवाद के कारण सीता को अग्नि परीक्षा देना पड़ी और अपनी धार्मिक, क्रान्ति से तात्कालिक समाज में सैद्धान्तिक बीज बोये, रावण की पत्नी मंदोदरी ने रावण को इसलिए शिक्षा दी कि वह अपने ज्ञान के मूल्य को समझ सके तथा नारी के मातृत्व गुण उजागर कर सके।

आज हमारी समाज में मिथ्या मान्यताओं का भी बोलबोला है जैसे किसी शुभ कार्य पर अपने इष्टदेव का स्मरण कर अन्य देवी देवताओं को पूजना, मन्दिर में तीर्थंकर की प्रतिमा, वीरागत के भावों को प्रदर्शित करने वाली होती है पर व्यक्ति धनोपार्जन की लालसा आदि को लेकर यक्ष-यक्षिणियों, पदमावती आदि की मूर्तियों की पूजा करने लगा है। मैं यहाँ यह बात स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि यक्ष यक्षिण पदमावती आदि श्रद्धा की पात्र तो हो सकती हैं परन्तु पूजा की पात्र नहीं।

अंत में यही कहा जा सकता है कि अत्याचार, अनाचार, दुराचार, पाखण्डता, आदि को दूर करने में नारी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, क्योंकि उसके व्यावहारिक जीवन में मातृत्व गुण के अतिरिक्त पवित्रता, उदारता, सौम्यता, विनय संपन्नता, अनुशासन, आदर सम्मान, की भावना, आदि गुणों का पुट मणि कांचन की तरह होता है।

* * * * *

हिन्दी काव्य के विकास में जैन श्रमणियों का योगदान

• कन्हैयालाल गोड़

साहित्य मनीषियों ने आत्म तथा अनात्म भावनाओं की भव्य-अभिव्यक्ति को साहित्य की संज्ञा दी है। यह साहित्य किसी देश, समाज अथवा व्यक्ति का सामयिक समर्थक नहीं, वरन् सार्वदेशिक और सार्वकालिक नियमों से प्रभावित होता है। मानव मात्र की इच्छाएँ, विचार धाराएँ और कामनाएँ साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है। साहित्य में साधना और आनुभूति के समन्वय से समाज और जगत् से ऊपर सत्य और सौन्दर्य का चिरन्तन रूप पाया जाता है।

हिन्दी की जैन श्रमणियों ने अपनी रचनाओं में आत्मभाव सत्यता के साथ अभिव्यक्त किया है। जैन श्रमणियों ने आध्यात्मिक अनुभूति की सच्चाई को अन्योक्ति और समासोक्ति में बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। इन श्रमणियों की आध्यात्मिक भावना में हृदय को समतल पर लाकर भावों का सार समन्वय उपस्थित किया है। जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण को दार्शनिक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करने में मानव भावनाओं का गहन विश्लेषण किया गया है।

हिन्दी की जैन श्रमणियों ने समय-समय पर हिन्दी में कविता का निर्माण कर हिन्दी काव्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन जैन श्रमणियों का रचना काल १४ वी-शती से लेकर २०वीं २१वीं शती तक रहा है जिनका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

१. गुणसमृद्धि महत्तरा - यह महत्तरा खतरगच्छीय जिनचन्द्र सूरि की शिष्या थी। इन के द्वारा रचित प्राकृत भाषा में ५०२ श्लोकों में निबद्ध अंजणा सुन्दरी चरिय ग्रन्थ वर्तमान में भी जैसलमेर के भंडार में विद्यमान है। इसमें हनुमान जी की माता अंजना सुन्दरी का चरित्र वर्णित है। इस रचना की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसकी रचना वि.सं. १४७७ में चैत्र सुदी त्रयोदशी के दिन जैसलमेर में की गई -

सिरि जैसलमेर पुरे विक्कमच उदसहसतुरे वरिसे।

वीर जिण जन्म दिव से कियमंजणि सुन्दरी चरियं ॥४१२॥^१

२. सिरिमा महत्तरा - आपत्री जिनपति सूरि की आज्ञानुवर्ती साध्वी थीं। इन्होंने २० गाथाओं की एक रचना जिनपति सूरि बधामणा गोता सं. १२३३ के आस पास लिखा। इसमें सं. १२३२ की एक घटना का उल्लेख है “आसी नयरि बघावणउ आयउ जिणपति सूरि”

जिन चंद सूरि सीसु आश्या लो वघावणउ बजावि-

सुगुरु जिणपति सूरि आविया लो आंकणी-

हरिया गोबरि गोहलिया मोतीय चउकु परेहु।
हाले महतरो इम भणइ संघह मनोरह पूरि।

इसकी भाषा ठेठ ग्राम प्रचलित लोक गीतों की भाषा है। एक नारी द्वारा प्रयुक्त यह भाषा तत्कालीन मरुगुर्जर का बड़ा प्राकृतिक स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है।^२

३. **राजलक्ष्मी** - यह तप गच्छीय शिवचूला महतरा की शिष्या थी। आपने सं. १५०० के आसपास शिवचूला गणिनी विज्ञप्ति (गाथा २०) की रचना की है। पोरवाड़ वंशीय गेहा की पत्नी विल्हणदे की कुक्षि से जिनकीर्ति सूरि और राजलक्ष्मी पैदा हुए थे। सं. १४९३ में देवलवाड़े (मेवाड़) में शिवचूला साध्वी को महतरा पद प्रदान किया गया था। उसी समय रत्नशेखर को वाचक पद प्रदान किया गया था। इस अवसर पर महादेव संघवी ने बड़ा उत्सव किया था। यह पद महतरा पद प्रदानोत्सव के अवसर पर लिखा गया है।

द्रुपदि तारा मृगावतीए, सीताय मन्दोदरी सरसती ए।
सीलसती सानिध करे इए, भगवाथी-श्री संघ दुरिया हरइ।

इसमें गणिनी शिवचूला का चरित वर्चित है। भाषा सरल एवं काव्यत्व सामान्य कोटि का है।^३

४. **पद्मश्री** - आपने सं. १५४० में चारुदत्त चरित्र नामक चरित्र काव्य लिखा है। इसके मंगला चरण में सरस्वती की वन्दना की गई है -

देवि सरसति देव सरसति अति वाणि
आपु मनि आनन्द करि धरिय भाव भासुर विचिहिं।
पय पंकज पणमूं सदा, मयहरणी भोलीय भति हिं।
चारु दत्त कम्मह चरी, पधणिमु तुम्ह पसाय,
भाविया भाविहिं सांभलु, परहरि परहु पमाय।

इसमें प्रायः चौदह छन्द का प्रयोग हुआ है। इसका अन्तिम छन्द इस प्रकार है -

भणइ भणावइ भासुर भति, अथवा जेउ सुणइ निजचिति,
तेह धरि नव निधि हुइ निरमली, भणइ पदमशीय वंछित फली।

सामान्यतया जिस प्रकार अन्य जैन काव्यों का अन्त होता है उसी प्रकार इसमें भी अंततः चारुदत्त संयम धारण करके उत्तम चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करता है और स्वयं उच्चलोक को प्राप्त करता है।^४

✓ ५- **विनयचूला गणिनी** - यह साध्वी आगमगच्छीय हेमरत्नसूरि के समुदाय की है। इन्होंने सं. १५१३ के आसपास श्री हेमरत्न सूरि-गुरुफागु नाम की ११ पद्यों में रचना बनाई है। इसमें अमरसिंह सूरि के पट्ट घर हेमरत्न सूरि का परिचय दिया गया है। इस रचना के अनुसार हेमरत्न सूरि खेवसौ वंशीय

- हिन्दी जैन साहित्य का वृहद् इतिहास ले. अ. शितिकंठ मिश्र पृ. १४५

- वही - पृ. २७४ - २७५

- वही - पृ. ४२०

भीमग के पुत्र थे। इन की माता का नाम रामली था। उन्होंने बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर अमरसिंह सूरि से दीक्षा ग्रहण की और बाद में आचार्य बनी। इनकी रचना का प्रारम्भिक पद्य इस प्रकार है -

अहे जुहारिस जगत्रय अधिपति, मनुपति सुमति जिणंद,
अहे गायसुं रंगि धनागम, आगम गच्छ मुणिंद।
श्री हेमरत्न सूरि भगतिहिं, विगतिहिं गुण वर्णवे सु,
गुरु पद पंकज सेविय, जाविय सफल करे सु।

अन्तिम छन्द देखिए -

इणिपरि सुह गुरु सेवउ, केवउ नहीं भववासि,
दुर्लभ नरभव लाघउ, साधउ सिद्धि उल्लास।

रचना काव्य की दृष्टि से सामान्य कोटि की है।^५

६. हेमश्री - ये साध्वी बड़तप गच्छ के नयनसुन्दर जी. की शिष्या थीना जैन गुर्जर कविओ भाग-१ के पृष्ठ-२८६ पर इनकी एक रचना कनकावती आख्यान का उल्लेख मिलता है यह ३६७ छन्दों की रचना है। इसका निर्माण सम्वत् १६४४ वैशाख सुदी ७ मंगलवार को किया गया। रचना इस प्रकार है -

सरसति सरस सकोमल वांणी-रे, सेवक उपरि बहु हीत आंणी रे।
श्री जिनचरण सीसज नामी-रे, सहि गुरु केरी सेवा पांमी रे।
सेवा पांमी सीस नांमी, गाउं मनह उलट धणई।
कथा सरस प्रबन्ध भण सुं, सुजन मनई आणंदनी।

७. हेमसिद्धि - इनका सम्बन्ध खतर गच्छ से था। इन के दो गीतों में पहली रचना है -लावण्य सिद्धि पहुवणी गीतम्। इस रचना में साध्वी लावण्य सिद्धि का परिचय दिया गया है। रचना के अनुसार लावण्य सिद्धि वीकराजशाह की पत्नी गुजरदे की ये सुपुत्री थी। पहुतणीरत्र सिद्धि की ये पट्टधर थी। जिन चन्द्र सूरि जी के आदेश से ये वीकानेर आई और वहीं अनशन आराधना की। सम्वत् १६६२ में स्वर्ग सिधारो रचना का आदि अन्त इस प्रकार है -

आदि भाग -

आदि जिणेसर पयनमी, समरी सरसती मात।
गुण गाइसुं गुरुणी तणा, त्रिभुवन मांही विख्यात।

अन्त भाग -

परता पूरण मन केरी, कल्पतरु थी अधिकेरी।
हेमसिद्धि भगति गुण गावइते सुख सम्पत्ति, नितुपावइ।

५ - हिन्दी जैन साहित्य का बृहद इतिहास ले.डा. शक्तिकंठ मिश्र पृ. ४९५ - ४९६

इनकी दूसरी रचना सोमसिद्धि निर्वाण गीतम् है। इसमें १८ पद्य हैं। रचना के अनुसार सोमसिद्धि का प्रारम्भिक नाम संगारी था। ये नाहर गोत्रीय नरपाल की पत्नी सिंगादे की पुत्री थी। वोथरा गोत्रीय जेठा शाह के पुत्र राजसी से इनका विवाह हुआ था। १८ वर्ष की आयु में इन्होंने दीक्षा ली। ये लावण्यसिद्धि के पद पर प्रतिष्ठित हुई। इनके बाद कवयित्री हेमसिद्धि पट्टधर बनी। यह रचना कवित्वपूर्ण है। इसमें कवयित्री का सोमसिद्धि के प्रति गहरा स्नेह और भक्तिभाव प्रकट हुआ है। रचना की पंक्तियाँ देखिये -

मोरा नइ वलि दादुरां बावीहा नइ मेहोरे,
चकवा चितवत रहइ, चंदा उपरि नेहो रे॥१६॥
दुखीयां दुख भांजीयइ, तुम्ह बिना अवरन कोइरे।
सह गुरुणी गुण गावीयइ, वांदउ दिन-२ सोई रे ॥१७॥
चन्द्र सूरज उपमा दीजइ (अधिक) आणं दो रे।
पहुतीणी हेमसिद्धि इम भणइ देज्यो परमाणं दो-रे॥१८॥

✓८. विवेक सिद्धि - ये लावण्यसिद्धि की शिष्या थी। नाहटा जी ने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृ. ४२२ पर उनकी एक रचना विमल सिद्धि गीतम् प्रकाशित की है। इस रचना के अनुसार विमल सिद्धि मुलतान निवासी माल्हु गोत्रीय शाह जयतसी की पत्नी जुगतादे की पुत्री थी। बीकानेर में इनका स्वर्गवास हुआ-। रचना का आदि अंत इस प्रकार है -

आदि भाग -

गुरुणी गुणवन्त नमीजइ रे, जिस सुख सम्पति पायीजइरे।
दुख दोहग दूरि गयी जइ रे, पर भवि सुरसाथिरमी जइरे।

अन्त भाग -

विमल सिद्धि, गुरुणी, महीयइ रे, जसु नामइ वांछित लहीयइ रे।
दिन प्रति पूजइ नर नारी रे, विवेक सिद्धि सुखकारी रे।

✓९. विद्यासिद्धि - ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृष्ठ २१४ पर इनकी एक रचना गुरुणी गीतम् से प्रकाशित है। प्रारम्भ की पंक्ति न होने से गुरुणी का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। बाद की पंक्तियों से सूचित होता है कि ये गुरुणी साठसुखा गोत्रीय कर्मचन्द की पुत्री थी और जिनसिंह सूरि ने इन्हें पहुतणी पद दिया था। यह रचना संवत् १६९९ भाद्र कृष्णा-२ को रची गई है।

✓१०. हरकूबाई - इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा से रहा है। आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार जयपुर में पुष्ठा सं. १०५ में ८८ वीं रचना महासती श्री अमरुजी का चरित्र इन के द्वारा रचित मिलती है। इसकी रचना संवत् १८२० में किशनगढ़ में की गई। इन्हीं की एक रचना महासती जी चलरु जी सज्झाय नाम से नाहटा जी ने ऐतिहासिक काव्य संग्रह में पृष्ठ संख्या २१४-२१५ पर प्रकाशित की है।

✓११. हुलसा जी - यह भी स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित है। आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर में पुष्ठा सं. २१८ में ५० वीं रचना क्षमा व तप ऊपर स्तवन इनकी रचित मिलती है। इसकी रचना संवत् १८८७ में पाली में हुई थी।

१२. सरुताबाई - सं. १९०० के लगभग - ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्रीमलजी महाराज से संबंधित है। नाहटा जी ने ऐतिहासिक काव्य संग्रह में पृ. १५६-१५८ पर इनकी एक रचना पूज्य श्री मलजी की सज्जाय प्रकाशित की है।

१३. जड़ाव जी - ये स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री रतनचन्द्र जी महाराज के सम्प्रदाय की प्रमुख रंभा जी की शिष्या थी। इनका जन्म संवत् १८९८ में सेठां की रिया में हुआ था। संवत् १९२२ में ये दीक्षित हुई। नेत्र ज्यति क्षीण होने से संवत् १९७२ तक ये जयपुर में ही स्थिरवासी बन कर रहीं। इनकी रचनाओं का एक संकलन जैन स्तवनावली नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें इनकी स्तवनात्मक, कथात्मक, उपदेशात्मक और तात्त्विक रचनाएँ संग्रहित हैं। रूपक लिखने में उन्हें विशेष सफलता मिली है। एक उदाहरण देखिए -

ज्ञान का घोड़ा चित की चाबुक, विनय लगाम लगाई।
तप तरवार भाव का भाला, रिक्का ढाल बंधाई।
सत संजम, का दिया मोरचा, किरिया तोप चढ़ाई।
सज्जाय पंच का दारू सीसा, तोपा दीवी चलाई।
राम नाम का रथ सिणगारया दान दया की फौजा।
हरख भाव से हाथी हौदे, बैठा पावों मौजा।
साच सिपाही पायक पाला, संवर का रखवाला।
धर्म राय का हुक्म हुआ जब फौजा आगी चाला।

१४. आर्या पार्वताजी - इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज की सम्प्रदाय से है। इनका जन्म आगरे के निकट खेड़ा भांड पुरी गाँव में चौहान राजपूत बलदेव सिंह की पत्नी धनवती की कुक्षि से संवत् १९११ में हुआ। जैन मुनि कंवर सेन जी के प्रतिबोध से संवत् १९२४ से इन्होंने साध्वी हीरादेवी के पास दीक्षा ग्रहण की। बाद में ये सती खम्बा जी की शिष्या तप-स्विनी मेलो जी की शिष्या बन गई। पंजाब की साध्वी परम्परा में इनका गौरव पूर्ण स्थान रहा है। इनके द्वारा रचित निम्नलिखित चार रचनाओं का उल्लेख है। (१) वृत्त मण्डली (संवत् १९४०) (२) अजित सेन कुमार ढाल (संवत् १९४०) (३) सुमति चरित्र (संवत् १९६१) (४) अरिदमन चौपाई (संवत् १९६१) इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ बीकानेर में श्री पूज्य जिन चारित्र सूरि जी के संग्रह में है। इनकी कई गद्य कृतियाँ भी प्रकाशित हैं।

१५. भूर सुन्दरी - इनका सम्बन्ध भी स्थानकवासी परम्परा से है। इनका जन्म संवत् १९१४ में नागर के समीप वुसेरी नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम अख्यचन्द्र जी रांका तथा माता का नाम रामाबाई था। अपनी भुआ से प्रेरणा पाकर ११ वर्ष की वय में साध्वी चंपा जी से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। ये कवयित्री होने के साथ-साथ गद्य लेखिका भी थी। इनके निम्न लिखित ६ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) भूर सुन्दरी जैन भजनों द्वार (संवत् १९८०), (२) भूरसुन्दरी विवेक विलास (संवत् १९८४), (३) भूर सुन्दरी बोध विनोद (सं. १९८४), (४) भूर सुन्दरी अध्यात्म बोध (सं. १९८५), (५) भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश (सं. १९८६) (६) भूर सुन्दरी विद्याविलास (सं. १९८६)

इनकी रचनाएँ मुख्यतः स्तवनात्मक और उपदेशात्मक है। इन्होंने पहेलियाँ भी लिखी हैं। उदाहरण देखिए -

आदि अखर विन जग को ध्यावे, मध्य अखर विन जग संहारे।
अन्त अखर विन लागे मीठा, वह सबके नयनों में दीठा॥

उत्तर = काजल

दाह वह अंत दह रह मध्य-अरु मांय।
तुम दरसन विन होत है, दरसन से जाय।

उत्तर = दर्द

१६ - रत्नकुंवर जी - ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी रही हैं। संवत् १९९२ में ५१ ढालों में निबद्ध इन की एक रचना श्री रत्नचूड़ मणिचूड़ चारित्र प्रकाशित हुई है।

उक्त श्रमणी कवयित्रियों के अतिरिक्त श्राविका कवयित्रियों में चम्पादेवी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये देहली-निवासी लालासुन्दर लाल टोंग्या की धर्म पत्नी थी। इनके पिता अलीगढ़ निवासी श्री मोहनलाल पाटनी थे। इनका जन्म संवत् १९१३ के आसपास हुआ था। ६६ वर्ष की आयु में ये बीमार पड़ गई। तब अर्हद भक्ति में तन्मय हो कर इन्होंने कई पद लिखे। जिनका संग्रह "चम्पा शतक" नाम से डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने सम्पादित किया है।

वर्तमान में भी विभिन्न सम्प्रदायों में कई जैन श्रमणियाँ काव्य साधना में लीन हैं। तेरा पंथ सम्प्रदाय की हिन्दी कवयित्रियों के सम्बन्ध में एक निबन्ध उदयपुर से प्रकाशित होने वाली शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। जिसमें श्रमणी जयश्री, श्रमणी मंजूला, श्रमणी स्नेह कुमारी श्रमणी कमलश्री, श्रमणी रत्नश्री, श्रमणी कानकुमारी, श्रमणी फूलकुमारी श्रमणी कमलश्री, श्रमणी रत्नश्री, श्रमणी कान कुमारी, श्रमणी फूलकुमारी श्रमणी मोहना, श्रमणी कनक प्रभा, श्रमणी यशोधरा, श्रमणी सुमनश्री तथा श्रमणी कनकश्री की काव्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया है।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि जैन काव्य धारा का प्रतिनिधित्व करने वाली इन श्रमणी कवयित्रियों का हिन्दी कवयित्रियों में एक विशिष्ट स्थान है। इन्होंने न तो डिगल कवयित्रियों की भाँति अंतःपुर में रहकर रानियों के मनोविनोद के लिये काव्य रचना की और न किसी की प्रतिस्पर्धा में ही लेखनी को मोड़ दिया। इन्होंने प्राणिमात्र को अपना जीवन निर्मल, निर्विकार और सदाचार बनाने का उपदेश दिया है। स्वानुभूतियों से निसृत होने के कारण इनके उपदेश सीधे स्वयं को स्पर्श करते हैं।^६

* * * * *

६ - मुनि द्वय अभिनन्दन ग्रन्थ (व्यावर) पृष्ठ ३०३ से ३०७ तक

जिन शासन में श्रमणियों की भूमिका

• डॉ. (श्रीमती) कुसुम लता जैन

प्रवहमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी तक श्रमणी परम्परा अनवरत रूप से चलती रही तथा वह परम्परा आज तक भी प्रवहमान है।

प्रथम राजा व प्रथम साधु के पश्चात् भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुए क्योंकि उन्होंने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना की थी। उनके धर्म शासन में ८४००० साधु, ३००००० (तीन लाख) साध्वियाँ, ३०५००० (तीन लाख पाँच हजार) श्रावक और ५५४००० (पाँच लाख चोपन हजार) श्राविकाएँ थीं। धर्म प्रचार और प्रसार के कार्य को साधुओं की अपेक्षा साध्वियों ने अधिक वृहद् रूप में सम्पादित किया था। उनकी पुत्री महासती ब्राह्मी जिन शासन की प्रथम साध्वी थीं जिन्होंने भाई बाहुबली के गर्व को गलित किया। तत्पश्चात् ही बाहुबली को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। श्रमणियों के महत्व को स्थापित करने के लिए ही भगवान ऋषभदेव ने ब्राह्मी तथा सुन्दरी को ही बाहुबली को समझाने भेजा अन्यथा वे स्वयं भी इस कार्य को कर लेते अथवा साधुओं से भी करवा सकते थे।

श्रमणियों में वाक् माधुर्य विशेष रूप से होता है जो श्रोता को शीतलता प्रदान करता है। श्रोता मन्त्र मुग्ध से धर्म पालन को तत्पर हो जाते हैं। श्रमणी वृन्द में विनय एवं अनुशासन की भावना भी बहुत अधिक होती है। जिससे जिन शासन देवीप्यमान होता रहता है।

इस अवसर्पिणी काल के चौबीसों तीर्थंकरों के शिष्य श्रमणों की अपेक्षा श्रमणियों की संख्या प्रायः अधिक रही है यथा -

नाम तीर्थंकर	श्रमण	श्रमणी	प्रमुख आर्थिका
भगवान ऋषभदेव जी	८४०००	३०००००	ब्राह्मी
भगवान अजितनाथ जी	१०००००	३३००००	प्रकुब्जा
भगवान संभवनाथ जी	२०००००	३३६०००	धर्मश्री
भगवान अभिनन्दजी	३०००००	६३००००	मेरुषेणा
भगवान सुप्रतिनाथ जी	३२००००	५३००००	अनन्ता
भगवान पद्मप्रभु जी	३३००००	४२००००	रतिषेणा
भगवान सुपार्श्वनाथ जी	३०००००	४३००००	मीना
भगवान चन्द्र प्रभु जी	२५००००	३८००००	अरुणा
भगवान सुविधिनाथ जी	२०००००	१२००००	घोषा
शीतलनाथ जी	१०००००	१००००६	धरणा

भगवान श्रेयांसनाथ जी	८४०००	१०३०००	चारण
भगवान वासुपूज्य जी	७२०००	१०००००	वरसेना
भगवान विमलनाथ जी	६८०००	१००८००	पद्मा
भगवान अनन्तनाथ जी	६६०००	६२०००	सर्वश्री
भगवान धर्मनाथजी	६४०००	६२४००	सुव्रता
भगवान शांतिनाथ जी	६२०००	८९०००	हरिषेणम
भगवान कुंथुनाथ जी	६००००	६०६००	भाकिता
भगवान अरनाथ जी	५००००	६००००	कुंथु सेना
भगवान मल्लिनाथ जी	४००००	५५०००	मधुसेना
भगवान मुनि सुव्रत जी	३००००	५००००	पूर्वदत्ता
भगवान नमिनाथ जी	२००००	४१०००	मार्मिणी
भगवान अरिष्टनेमि जी	१८०००	४००००	रक्षी
भगवान पार्श्वनाथ जी	१६०००	३८०००	मुकोका
भगवान महावीर स्वामी जी	१४०००	३६०००	चंदना

जिन शासन में श्रमण और श्रमणियों को समान अधिकार एवं समान नियमों का पालन दर्शाया गया है। श्रमण और श्रमणी शब्द में मुख्य शब्द 'श्रम' है जिसका तात्पर्य स्वावलम्ब की उत्कृष्टता को घोषित करता है। ये महानुभाव अपनी दिनचर्या स्वयं के श्रम से प्रारम्भ करते हैं, तथा अपने सारे कार्य स्वयं ही करते हैं, अपने उपयोग के लिए कोई वस्तु वे गृहस्थ से नहीं मंगवाते वे स्वयं जाकर लाते हैं। ये महापुरुष संसार को सार रहित मानकर असत् से सत् अन्धकार से आलोक, नश्वर से अनश्वर तथा मृत्यु से मोक्ष की ओर अग्रसर हो एक ऐसे मार्ग का अनुसरण करते हैं जो कष्टकाकीर्ण होते हुए भी दुःख नाशक तथा शांति प्रदायक है। जिन शासन के इन ग्रंथों को समान रूप से पाँच महाव्रत, पाँच, समिति, तीन गुप्ति, षट् आवश्यक, प्रतिक्रमण, दस लक्षण धर्म आदि का पालन अनिवार्य बताया गया है।

दशवैकालिक सूत्र में साधु साध्वियों के लिए रात्रि भोजन परित्याग नामक छोटे व्रत का उल्लेख है। इसके अन्तर्गत रात्रि में इन्हें आहार-पानी आदि लाना तथा सेवन करना वर्जित किया गया है, क्योंकि रात्रि में जीवों की विराधना विशेष होती है। अन्य तीर्थंकरों द्वारा इस व्रत का विधान नहीं किया गया था परन्तु भगवान महावीर के शिष्य वक्र जड़ थे अतः उनको स्पष्ट वर्जित करना आवश्यक था। सामान्यतया अहिंसा के अन्तर्गत ही रात्रि भोजन का परित्याग आ जाता है।

जिन शासन में श्रमणी व्रत अंगीकार करने के लिए जाति, सम्प्रदाय आदि का कोई भेद भाव नहीं है। किसी भी कुल या जाति की नारी श्रमणीव्रत ग्रहण कर सकती है।

व्यवहार भाष्य से विदित होता है कि एक गणिका द्वारा भी दीक्षा ली गई थी। जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसमें सभी तीर्थंकरों ने नारी को धर्म कार्य सम्पादन की स्वतन्त्रता प्रदान की है, एवं मोक्ष मार्ग पर अनुगमन करने का अधिकार प्रदान किया है जिसके लिए उसे पुरुष का या किसी अन्य का मुख्यापेक्षी नहीं होना पड़ता है। जिन शासन में श्रमणी और नारी अपनी धार्मिक क्रियाएं स्वयं सम्पादित कर सकती हैं। स्थानांग तथा निशीथ भाष्य में कुछ व्यक्तियों के सन्दर्भ में दीक्षा का निषेध किया गया है यथा

वृद्ध, व्याधिग्रस्त ऋणपीडित, गर्भवती तथा छोटे शिशुओं की माता आदि। इस तरह दीक्षा व्रत प्रगति के पथ पर अग्रसर करने की प्रक्रिया है।

नारियों में त्याग तप, सहनशीलता, गाम्भीर्य पुरुषों की अपेक्षा अधिक होता है इसी कारण हर तीर्थंकर के काल में श्रमणों की अपेक्षा श्रमणियों की संख्या अधिक रही है और आज भी श्रमणियों की संख्या श्रमणों की अपेक्षा अधिक है। श्रमणियाँ ने कौने-कौने में पहुँच कर बालकों में संस्कार निर्माण तथा युवाओं और वृद्धों में धर्म प्रचार समता एवं सद्भावना का प्रसार कर रही हैं अतः समाज निर्माण में श्रमणियों का विशिष्ट स्थान है।

इसी श्रमणी परम्परा को अग्रेषित करने हेतु साध्वी रत्ना श्री कानकुंवरंजीम एवं श्री चम्पाकुंवरंजी का अभ्युदय हुआ है। आप दोनों परम विदुषी, ओजस्वी व्याख्यात्री, मधुर भाषिणी, त्यागी समाजोद्धारक, समाजोत्थान की दिशा में निरन्तर रत रहने वाली आगमज्ञ श्रमणी रत्ना थीं।

आप दोनों संस्कृत प्राकृत हिन्दी एवं गुजराती की ज्ञाता थी। आपने उत्तर भारत से दक्षिण भारत-कर्नाटक तामिलनाडु तक पदयात्रा करते हुए धर्म प्रचार किया है।

* * * * *

अहंकार

- यदि अहंकार-पोषण के लिये सत्कर्म करते भी हैं तो वह फल शून्य हो जाता है।
- जिस व्यक्ति में अहंकार की अधिकता होती है वह न तो किसी को सहयोग दे पाता है और न अन्य व्यक्तियों से सहयोग ले पाता है।

आचरण

- आम जनता इतिहास नहीं देखती, वर्तमान को देखकर आचरण करती है।
- यदि आपका आचरण व व्यवहार अभद्र है, निन्दनीय है और आप चाहें कि लोग आपकी प्रशंसा करें - तो यह तो अमावस की रात में चन्द्रमा देखने की लालसा जैसी बात हो गई।

आत्मा

- संसार में कहीं ऐसा स्थान नहीं, जहाँ आत्मा अपने को न देखता हो। मनुष्य सबको धोखा दे सकता है, पर अपने आपको नहीं।
- आत्म-दर्शन भी एक प्रकार का शीशा है, इससे अपने जीवन की खामियाँ, दुर्बलताएँ और बुराईयाँ मनुष्य के सामने खुलकर आ जाती हैं।

--- स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

श्रमणी परम्परा को कुचेरा की देन

• साध्वी श्री बसंत कुंवर

कुचेरा नागौर (राज.) जिले में अजमेर से नागौर जाने वाले मार्ग पर स्थित है। इस क्षेत्र पर आचार्य श्री जयमल जी म. तथा उनकी परम्परा के साधु-साधवियों की विशेष अनुकम्पा रही है। यही इसी परम्परा की श्रमणियों का उल्लेख किया जा रहा है जिनका सम्बन्ध कुचेरा से रहा है।

मेरी स्मृति के अनुसार महासती श्री जमना जी म.सा. एवं महासती श्री तुलछा जी म. स्थिरवास में कुचेरा में रही। सद्गुरुवर्या महासती श्री कानकुंवर जी म. कुचेरा के ही थे और वर्षों तक कुचेरा में दोनों महासतियाँ जी की सेवा में रहे। आप ही की शिष्या महासती श्री चम्पा कुंवर जी म. भी कुचेरा के ही थे। इन दोनों महासतियों ने कुचेरा से विचरण करते हुए सुदूर दक्षिण भारत में जैन धर्म की ध्वजा फहराई। इनके अतिरिक्त कुचेरा से सम्बन्धित अन्य महासतियों का विवरण इस प्रकार है:-

- -वि.सं. २००६ ज्येष्ठ शुक्ला ५ को महासती श्री सोहन कुंवर जी म. की दीक्षा हुई।
- -वि.सं. २०२५ में मेरी दीक्षा भी यहीं हुई। मेरा जन्म भी यही हुआ।
- -वि. सं. २०२७ में महासती श्री नन्दाजी के सान्निध्य में श्री संतोष कुंवर जी म. की दीक्षा हुई।
- -महासती श्री उमराव कुंवरजी म. “अर्चना” की शिष्या महासती श्री प्रतिभा कुमारी जी म. का जन्म भी कुचेरा में ही हुआ। दीक्षा वि. सं. २०३१ में महामंदिर में हुई।
- -महासती श्री कंचन कुंवरजी म. भी कुचेरा के ही हैं और आपकी दीक्षा वि. सं. २०३४ में नौरवा चांदावतों का में हुई।
- -महासती श्री झणकार कुंवर जी म. की अनुकम्पा भी इस क्षेत्र पर रही। आपके सान्निध्य में यहाँ वि. सं. २०३२ में आशाजी और चंचल जी दो बहनों की दीक्षा हुई।
- -वि. सं. २०४३ में श्री मनीषा जी ने तथा वि. सं. २०४६ में आपकी सुपुत्री सविता जी ने भी कुचेरा में ही संयमव्रत अंगीकार किया।
- -वि. सं. २०४४ में महासती श्री सोहन कुंवरजी के सान्निध्य में श्री मणि प्रभा जी की दीक्षा हुई।
- -वि. सं. २०४५ में महासती श्री झणकार कुंवर जी म. ने अपनी नश्वर देह का त्याग कुचेरा में किया।
- -श्रीमान प्रेमराज जी बोहरा की बहन श्री हुलसा जी की दीक्षा भी यही हुई थी।

कुचेरा से सम्बन्धित जैन श्रमणियों का यह संक्षिप्त विवरण है। यदि प्रयास किया जावे तो इस सम्बन्ध में और भी अधिक जानकारी उपलब्ध हो सकती है, जो जैन इतिहास के साथ ही साथ कुचेरा के इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण उपलब्धि हो सकती है। विश्वास है कि जिज्ञासु पाठक इस दिशा में कुछ प्रयास अवश्य करेंगे।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं सद्गुरुवर्याश्री तथा गुरु बहन परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।



नैतिकता के सन्दर्भ में कर्मसिद्धान्त की उपयोगिता

• आचार्य श्री देवेन्द्र मणि

भौतिक विज्ञान के समान कर्म-विज्ञान भी कार्यकारण सिद्धान्त पर निर्भर

जिस प्रकार भौतिक विज्ञान कार्यकारण के सिद्धान्त में आस्था प्रगट करके ही आगे बढ़ता है और नये-नये आविष्कार करता है, उसी प्रकार कर्म-विज्ञान भी कार्य-कारणसिद्धान्त के आधार पर वर्तमान जीवन की घटनाओं की व्याख्या करता है। कार्यकारण भाव के परिप्रेक्ष्य में प्रोफेसर हरियन्ना कर्मसिद्धान्त के विषय में लिखते हैं-“कर्मसिद्धान्त का आशय यही है कि भौतिक जगत् की भांति नैतिक जगत् में भी पर्याप्त कारण के बिना कोई भी कार्य (कर्म) घटित नहीं हो सकता। यह समस्त दुःख का मूल स्रोत हमारे (नैतिकताविहीन) व्यक्तित्व में ही खोज कर ईश्वर और पड़ोसी के प्रति कटुता का निवारण करता है।”

भूतकालीन आचरण वर्तमान चरित्र में तथा वर्तमान चरित्र भावी चरित्र में प्रतिबिम्बित

इसका तात्पर्य यह है कि कर्मसिद्धान्त बताता है-भूतकाल के नैतिक या अनैतिक आचरणों के अनुसार ही वर्तमान चरित्र व सुख-दुःख का निर्माण होता है, साथ ही वर्तमान नैतिक-अनैतिक आचरणों के आधार पर प्राणी के भावी चरित्र तथा सुख-दुःखमय जीवन का निर्माण होता है। अतीतकालीन जीवन ही वर्तमान व्यक्तित्व का निर्माता है और वर्तमान जीवन (आचरण) ही भविष्यकालीन व्यक्तित्व का विधाता है। इसका आशय यह है कि कोई भी वर्तमान शुभ या अशुभ आचरण परवर्ती शुभ या अशुभ घटना का कारण बनता है, उसी प्रकार पूर्ववर्ती किसी शुभ-अशुभ आचरण के कारण वर्तमान शुभ या अशुभ घटना घटित होती है।

अतीतकालीन शुभाशुभ आचरण के अनुसार भावी परिणामः शास्त्रीय दृष्टि में

आचारांग सूत्र में जिस प्रकार कर्मसिद्धान्त के सन्दर्भ में वर्तमान के शुभ-अशुभ आचरण के भावी परिणामों का दिग्दर्शन कराया गया है, उसी प्रकार भूतकालीन शुभ-अशुभ आचरण के अनुसार वर्तमान शुभाशुभ परिणामों का निर्देश करते हुए कहा गया है कि अतीत या भविष्य कर्मों के अनुसार होता है, यह सोच (देख) कर पवित्र नैतिक आचरणयुक्त महर्षि कर्मों को धुनकर क्षय कर डाले। जैसे कि आचारांग सूत्र में पृथ्वी कायिक आदि जीवों की अमर्यादित हिंसा (समारम्भ) के परिणामों का निर्देश किया गया है कि “ऐसा करना उसके अहित के लिए है, अबोध का कारण है,” “यह निश्चय ही ग्रन्थ (कर्मों की गांठ) है, यह मोह है, यह अवश्य ही मृत्यु रूप है, यही नरक का निर्माण है।” संग्रहवृत्ति के अनैतिक पूर्वकृत कर्म और उसके परिणाम का उल्लेख करते हुए कहा गया है-“इस संसार में कई संग्रहवृत्ति मानव बचे हुए या अन्य द्रव्यों का अनापसनाप संग्रह करते हैं तथा कई असंयमी पुरुषों के उपभोग के लिए संवय करते हैं, परन्तु वे उपभोग काल के समय यदाकदा रोगों से ग्रस्त हो पड़ते हैं।” जाति कुल गोत्र आदि के मद (अभिमान) के भावी परिणामों का निर्देश करते हुए कहा गया है-“अंधा होना, बहरा होना, गूंगा होना, काना होना, टूटा होना, कुबड़ा होना, बौना होना, कालाकलूटा होना और कोढ़ी होना, ये सब जाति आदि

के मद (अभिमान) के कारण होता है। जाति आदि के मद से प्राणी इस प्रकार की अंगविकलता को प्राप्त होता है, यह न समझने वाला (मदग्रस्त) व्यक्ति हतोपहत होकर जन्म-मरण के चक्र में आवर्तन-भ्रमण करता है।”

काम भोगों में ग्रस्त मानव की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहा गया है-“यह कामकामी (कामभोगों की कामना करने वाला) पुरुष निश्चय ही शोक (चिन्ता) करता है, विलाप करता है, मर्यादा भ्रष्ट हो जाता है, तथा दुःखों और व्यथाओं से पीड़ित और संतप्त हो जाता है।” “अज्ञानी (बाल) मूढ़, मोहग्रस्त और कामसक्त व्यक्ति का दुःख शान्त नहीं होता। “वह दुःखी व्यक्ति दुःखों के ही आवर्त (चक्र) में अनुपरिवर्तित होता (बारबार जन्म-मरण करता) रहता है।” फिर उसे किसी समय एक ही साथ उत्पन्न^१ अनेक रोगों का प्रादुर्भाव होता है।

पूर्वकालिक नैतिक आचरण करने वालों का वर्तमान: व्यक्तित्व शास्त्रीय दृष्टि में

पूर्वकालीन नैतिक आचरण करने वाले व्यक्तियों के वर्तमान व्यक्तित्व के सम्बन्ध में आचारांग सूत्र कहता है-“जो पुरुष पारगामी अनैतिक आचरणों से तथा विषयभोगों से विरक्त है, वे लोभसंज्ञा को पार कर चुके, वे (वर्तमान में) विमुक्त (अकर्म) हैं। वे लोभ के प्रति अलोभवृत्ति से घृणा (विरक्ति) करते हुए प्राप्त कामभोगों का सेवन (अभिग्रहण) नहीं करते।” “अरति-संयम के प्रति अरुचि भाव को दूर करने वाला वह मेधावी क्षणमात्र में मुक्त हो जाता है।” “जो आयतचक्षु (दीर्घदर्शी) और लोग-दृष्टा है, लोक की विभिन्नता को देखने वाला है, वह लोक के ऊत्थोभाग, ऊर्ध्वभाग और तिर्यग्भाग को और उनके स्वरूप एवं कारण को जानता है।”^२ इस मनुष्य जन्म में संधि (उद्धार का अवसर) जान कर जो कर्मों से बड़ आत्म-प्रदेशों को मुक्त करता है, वही वीर है और प्रशंसा का पात्र है।”^३ यह शरीर जैसा अंदर से असार है, वैसा ही बाहर से असार है। और जैसा बाहर से असार है, वैसा ही अंदर से असार है। पंडित (ज्ञानी) पुरुष और देह के अंदर की अशुचि तथा बाहर स्नाव करते देह के विभिन्न मलद्वारों को देखे और यह रुख देख कर वह शरीर के वास्तविक स्वरूप का पर्यवेक्षण करें।”^४ इसी प्रकार “उत्तराध्ययन सूत्र” में चित्तमुनि का जीव सम्भूति के जीव-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को वर्तमान के नैतिक आचरण और उसके भावी सुफल की प्रेरणा देते हुए कहता है-“यदि तुम भोगों को छोड़ने में असमर्थ हो तो है राज्ञा। कम से कम आर्य कर्म (नैतिक आचरण) तो करो। नीति धर्म में स्थित रहकर यदि तुम अपनी प्रजा के प्रति अनुकम्पाशील बनोगे तो भी

१. (क) “कामकामी खलु अयं पुरिसे। सेसोथति जूरति तिप्पति पिड्डति (पिट्ठति) परितछति।”

(ख) “बाले पुण णिहे काम-समणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाजमेव आवट्ठं अणुपरियट्ठइ।”- आचा १-२-३

(ग) तओ से एगय रोग समुप्पाया समुप्पज्जति।”- आचारांग प्र-१, अ-२, उ-६, ३, ४

२. विमुक्का हु ते जणा, जे जण्णा पारगामिणो। लोभ अलोभेण दुगुंछमाणे, लक्ष्णे कामे नग्गिगाहइ। विणइजं लोभं निक्खम्म एवम् अकामे जाणति पासति।”-आचारांग श्रु-१, अ-२, उ-२

“अइ आउट्टे से मेहावी रवणांसि मुक्के।”- वही, १/२/२

आययचक्खू लोगविपस्सी, लोगस्स अहोभाग जाजइ उडुंभागंजाणइ तिरियं पामं णाणइ।

३. संधि विदिला इह मक्किएहि, एसवीरे पुसेसिए जो बडे पडियोयए। वही १।२।५

४. जहा अंतो वहाबाहिं जहाँबाहिं तहाअंतो। पंडिए पडिलेहाए। - आचारांग १।२।५

यहां से मरकर वैक्रियशक्ति धारक देव तो हो जाओगे।”⁴ “वर्तमान के अनैतिक आचरणों (कर्मों) का भावी दुष्परिणाम बनाते हुए कहा गया है-“जो अज्ञानी मानव हिंसक है, मृणावादी है, लुटेरा है, दूसरों का धन हड़पने वाला है, चोर है, कपटी (ठग) है, अपहरणकर्ता एवं शठ (धूर्त) है। तथा स्त्री एवं इन्द्रिय-विषयों में गृद्ध है, महारम्भी-महापरिग्रही है, मांस-मदिरा का सेवन करने वाला है, दूसरों पर अत्याचार एवं दमन करता है, ऐसा तुन्दिल व मुस्टंडा है, वह नरकाम का आकांक्षी है।”⁵ इसी प्रकार मृगों के शिकार जैसे अनैतिक कर्म को करते हुए संयत राजा को महामुनिगर्दमालि ने अहिंसा और अभयदान का उपदेश देकर उससे हिंसादि पापास्त्रव (पापकर्म) छुड़ाए और उसे सर्वजीवों का अभयदाता महाव्रती उच्चराजर्षि बना दिया।

कर्म सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में अनैतिक आचरणकर्ता को नैतिक बनने का उपदेश

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीर्थंकरों, ज्ञानी महर्षियों तथा जैन श्रमणों द्वारा जिस किसी अनैतिक आचरण परायण व्यक्ति को सदुपदेश दिया गया है, और नीतिधर्म के सम्मार्ग पर लगाया गया है, उसे कर्मसिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में ही शुभ-अशुभ कर्म, उसके उपार्जन करने के कारण और उसके शुभ-अशुभ परिणामों (फलों) का दिग्दर्शन कराया गया है।⁶

नैतिक अनैतिक कर्मों के कर्ता को कर्म ही फल देते हैं, ईश्वरादि नहीं

वैदिक, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों की तरह ईश्वर या किसी शक्ति विशेष का भय या उसके द्वारा समस्त प्राणियों को कर्मफल-प्रदान करने की बात नहीं बताई गई है। जैन कर्मसिद्धान्त की सर्वश्रेष्ठ उपयोगिता इसी में है कि वह परोक्ष और अगम्य ईश्वर या किसी देवी-देव को प्राणियों के कर्मों का प्रेरक, कर्ता या फलदाता नहीं बताता। वह आत्मा को ही अपने नैतिक-अनैतिक कर्मों का कर्ता, और कर्मों को ही स्वयं फलदाता बता कर वैज्ञानिक दृष्टि से कार्यकारण की भीमांसा करता है। जैनदर्शन, या जैन शास्त्रों में कहीं भी यह कथन (प्ररूपण) नहीं मिलेगा कि किसी पुण्य या पाप से युक्त आचरण करने वाले को उसके उक्त कर्म का फल ईश्वर या और कोई शक्ति प्रदान करती हो।⁶

पूर्वोक्त शास्त्रीय उद्धरणों में सर्वत्र कर्मसिद्धान्त के अनुसार ही प्रतिपादन किया गया है, कि अनैतिक या पापयुक्त आचरण करने वाले को नरक या तिर्यञ्च गति अथवा इहलोक में रोग, शोक, दुःख, दुर्दशा आदि फल प्राप्त होते हैं, और जो नैतिक या धार्मिक आचरण करता है तथा पापाचरण या अनैतिक आचरण से दूर रहता है, उसे स्वर्ग या मनुष्य जन्म, उत्तम अवसर, शुभसंयोग, संयम प्राप्ति या मुक्ति आदि फल प्राप्त होते हैं। ईश्वर या देवी-देव आदि के समक्ष गिड़गिड़ाने, उनकी खुशामद करने, तथा कृत पापों या अनैतिक आचरणों के फल से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करने वह या कोई शक्ति उसे अपने

4. उत्तराध्ययन आ. १३ गा. ३२. कित्सम्मूतीय।

६. वही, अ-७ गा. ५, ६, ७

७. देखें, उत्तराध्ययन का अठार हवां संयतीय अध्ययन।

“अमओ पत्थिका तुज्झ अभयदाया भवाहिय।

अयिक्के जीब्बोर्गमि कि हिंसाए पसञ्जसि।”

- उत्तरा.अ. १८।१९

८. “अप्पा बत्ता विकत्ता म दुहाजयमुहाज य।”- उत्तराध्ययन २०/२७

कृतकर्मों के फल से मुक्त नहीं कर सकती। कर्म के मामले में ईश्वर या किसी शक्ति का हस्तक्षेप जैन कर्मसिद्धान्त स्वीकार नहीं करता।^९

सप्तव्यसनरूप अनैतिक कर्मों का फल किसी माध्यम से नहीं, स्वतः मिलता है

जैनाचार्यों ने जैन कर्मसिद्धान्तानुसार नैतिक और अनैतिक आचरणों (कर्मों) का फल स्वतः तथा सीधे ही मिलने की बात कही है जैसे कि सप्त कुव्य सनरूप अनैतिक आचरण का सीधे (Direct) फल बताते हुए एक जैनाचार्य ने कहा है -“द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्रीगमन, लोक में ये सात कुव्यसन हैं, अनैतिक (पापमय) आचरण हैं, जो व्यक्ति को घोरतिथोर नरक में डालते हैं।^{१०} अथवा व्यक्ति इनसे घोरतम नरक में पड़ते हैं।” यहाँ किसी ईश्वर या किसी शक्ति को माध्यम (बिचौलिया) नहीं बताया गया है कि ईश्वर या अमुक शक्ति कुव्यसनी को घोर नरक में डालती है।

अतः नैतिकता के सन्दर्भ में जैनकर्म सिद्धान्त की उपयोगिता स्पष्ट सिद्ध है।

ईसाई धर्म में पाप कर्म से बचने की चिन्ता नहीं, क्यों और कैसे?

इसके विपरीत ईसाई धर्म के सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि वहाँ नैतिक अनैतिक आचरण (कर्म) का शुभ-अशुभ फल सीधा कर्म से नहीं मिलता, ईश्वर से मिलता है। जैसा कि डॉ. ए.बी. शिवाजी लिखते हैं -‘मसी ही धर्म में कर्म, विश्वास और पश्चात्ताप पर अधिक बल दिया गया है। याकूब, जो प्रभु ईसामसीह का भाई था, अपनी पत्नी में लिखता है -‘सो तुमने देखलिया कि मनुष्य केवल विश्वास से ही नहीं, कर्मों से भी धर्मों ठहरता है। अर्थात्-कर्मों के साथ विश्वास भी आवश्यक है।’...‘पौलूस’ विश्वास पर बल देता है। उसका कथन है -“मनुष्य विश्वास से धर्मों ठहरता है, कर्मों से नहीं।” यह तथ्य स्पष्ट कर देता है कि मनुष्य के कर्म (शुभाशुभ या नैतिक अनैतिक आचरण) उसका उद्धार नहीं कर सकते। वह अपने कर्मों पर घमण्ड नहीं कर सकता।” पौलूस की विचारधारा में कर्म की अपेक्षा विश्वास का ही अधिक महत्व है। “यदि इब्राहीम कर्मों से धर्मों ठहराया जाता तो उसे घमण्ड करने की जगह होती, परन्तु परमेश्वर के निकट नहीं।” पौलूस की लिखी हुई कई पत्रियों में इस बात के प्रमाण हैं। “जीवन में मोक्ष का आधार कर्म नहीं विश्वास है।” विश्वास से धर्मीजन जीवित रहेगा।” ईसामसीह के अन्य शिष्यों ने भी विश्वास पर बल दिया है। इसी विश्वास को लेकर ‘यूहन्ना’ ईसामसीह के शब्दों को लिखता है-“यदि तुम विश्वास न करोगे कि मैं वही हूँ तो अपने पापों में मरोगे।^{११}

९. (क) ‘आत्मा पराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्।’ - चाणक्यनीति

(ख) स्वयं कृतं कर्मयदान्मना पुरा फलंतजीयं लभते शुभाशुभम्।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकतदा॥ - अमिहगति सामायिकपाठ ३०

१०. “द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या-पापधर्द्ध-चौर्यं परदारसेवा।

एतानि सप्त व्यसनानि लोके घोरतिथोरे नरके पतन्ति॥”

११. (क) याकूब की पत्नी २:२४ (ख) रोमियो ५:१ (ग) सेमियो ४:२

(घ) प्रेरितो के काम १६:३१ (ङ) यूहन्ना ८:२४ (च) जिनवाणी सिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित

“मसीही धर्म में कर्म की मान्यता ” लेख से. पृ २०५-२०६

इसके अतिरिक्त डॉ. ए.बी. शिवाजी लिखते हैं -“मसीही धर्म में कर्म के साथ ही अनुग्रह का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि उद्धार अनुग्रह के ही कारण है। यदि ईश्वर अनुग्रह न करे तो कर्म व्यर्थ है।” बाइबिल में लिखा है -“जो मुझ से ‘हे प्रभु हे प्रभु’ कहता है, उनमें से हर एक स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करेगा, क्योंकि विश्वास के द्वारा अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है और यह तुम्हारी ओर से नहीं, वरन् परमेश्वर का दान है, और न कर्मों के कारण, ऐसा न हो कि कोई घमण्ड करे।” “....तो उसने (अनुग्रह करके) हमारा उद्धार किया, और यह धर्म के कार्यों के कारण नहीं, जो हमने आप (स्वयं) किए, पर अपनी दया के अनुसार नये जन्म के स्नान, और पवित्र आत्मा (का अनुग्रह) हमें नया बनाने के द्वारा हुआ।” १२

उपर्युक्त मन्तव्य से यह स्पष्ट है कि ईश्वर कर्तृत्ववादी मसीही धर्म में नैतिक-अनैतिक कर्मों (आचरणों) का उतना महत्व नहीं, जितना ईसामसीह (प्रभु) पर विश्वास और उसका अनुग्रह प्राप्त करने का है। ईसामसीह का विश्वास और अनुग्रह प्राप्त करके जिन्दगी भर अशुभ (पाप) कर्म करने वाला डाकू भी पवित्र जीवन जीवी ईसामसीह के साथ स्वर्गलोक में स्थान पा सकता है, इसके विपरीत शुभकर्म करने वाला अय्यूब नामक धर्मी व्यक्ति परमेश्वर या ईसामसीह (प्रभु) का विश्वास और अनुग्रह न पा कर विपत्ति और दुःख उठाना है। १३

विश्वास और अनुग्रह पर जोर, अनैतिकता से बचने पर नहीं

यही कारण है कि हत्या, दंगा, अन्याय, अनीति, अत्याचार, व्यभिचार, ठगी, फूट, ईर्ष्या, युद्ध, कलह आदि अनैतिक एवं पाप कर्म करने वाला व्यक्ति यह समझ कर कि ईश्वर या ईसामसीह पर विश्वास और उनका अनुग्रह प्राप्त करने मात्र से पापकर्म का कोई भी कटुफल नहीं मिलेगा, घड़ल्ले से ये अनैतिक पाप कर्म करता रहता है।

ईसाई धर्म में पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की मान्यता न होने से पापी मनुष्य यह भी समझता है कि पूर्वजन्म के कर्मों का कोई उत्तरदायित्व नहीं है, और न ही पूर्वजन्म के कर्मों को भोगना है, साथ ही इस जन्म में किये हुए पापकर्म का फल भी अगले जन्म (पुनर्जन्म) में नहीं मिलेगा। अतः जितना जो कुछ हिंसादि पापकर्म किया जा सके, करलो और आनन्द से जीओ।

यद्यपि बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट और न्यू टेस्टामेंट में दस-दस आज्ञाएँ (कमाण्डमेंट्स) ईसामसीह की अंकित हैं, १४ परन्तु उन्हें मानकर और बार-बार पढ़-सुन कर भी ईशवीय विश्वास और अनुग्रह प्राप्त करने के चक्कर में लोग अनैतिक कर्म करने से नहीं चूकते।

१२. (क) जिनवाली कर्मसिद्धान्त में प्रकाशित मसीही धर्म में कर्म की मान्यता लेख से पृ. २०८

(ख) मत्ती ७:२१ (ग) तीतुस ३:५

१३. (क) जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित ‘मसीही धर्म में कर्म की मान्यता’ से पृ. २०७

(ख) लूका २३:३९-४३ (ग) देखे, अय्यूब १२२

१४. देखे बाइबिल के गिरिप्रवचन ओल्ड टेस्टामेंट तथा न्यूटेस्टामेंट।

परन्तु जैनकर्म विज्ञान प्रारम्भ से ही नैतिक-धार्मिक आचरण (शुभकर्म) पर जोर देता है। वह केवल ईश्वर (परमात्मा = अर्हन्त एवं सिद्ध) पर विश्वास करने मात्र से या उनके द्वारा बताए हुए नैतिकता और धार्मिकता के यम-नियमों को मानने-सुनने मात्र से अथवा उन पर लम्बी चौड़ी व्याख्या कर देने से किसी व्यक्ति का उसे पापकर्म से उद्धार नहीं मानता। जब तक पापकर्मों व्यक्ति अपने पापकर्मों की आलोचना निन्दना (पश्चात्ताप), गर्हणा और क्षमापन द्वारा शुद्धिकरण नहीं कर लेता, तब तक वह पापकर्मों से छुटकारा नहीं पा सकता। उसे इस जन्म में या फिर अगले जन्म या जन्मों में अपने अनैतिक कुकर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। इसी प्रकार सत्कर्म करने वाले या कर्मक्षम रूप धर्मीकरण करने वाले व्यक्तियों पर तो परमात्मा का अनुग्रह स्वतः ही होता है। उसे परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उनकी खुशामद करने की, या पूजा पत्री भेंट चढ़ावा आदि की रिश्वत नहीं देनी पड़ती। उसे अपने किये हुए सत्कर्मों या सद्गर्मों (शुद्ध कर्मों) का फल देर-सबेर से अवश्य मिलता है। नैतिकता के सन्दर्भ में जैनकर्म विज्ञान इसी तथ्य को व्यक्त करता है। यही कारण है कि जैनकर्म विज्ञान को मानने वाला व्यक्ति हिंसादि पापकर्म करते हुए हिचकिचाएगा।

नरकायु और तिर्यञ्चायुकर्म बन्ध के कारण

जैन कर्म विज्ञान की स्पष्ट उद्घोषणा है कि “महारम्भ (महाहिंसा), महापरिग्रह, पंचेन्द्रियवध, और मांसाहार नरकगमन (गति) के कारण है, माया (कपट), गूढ़ माया (दम्भ) झूठा तौल नाप करे, ठगी (वंचना) करे तो प्राणी तिर्यन्धगति प्राप्त करता है।” इसमें कोई भी ईश्वर, देवी-देव या शक्ति उसे अपने पापकर्मों (अनैतिक आचरण) के फल से नहीं बचा सकता। वह स्पष्ट कहता है कि कारण अनैतिकता का होगा, तो उसका कार्य नैतिकता के फल का कदापि नहीं होगा।^{१५}

ईस्लाम धर्म में नैतिक आज्ञाएँ हैं, पर अमल नहीं

यद्यपि इस्लाम धर्म में भी अनैतिक कर्मों से बचने और नैतिक कर्म (आचरण) करने का ‘कुरानशरीफ’ आदि धर्मग्रन्थों में विधान है। वस्तुतः इस्लाम धर्म नैतिकता प्रधान है। उसके नैतिक विधानों का उल्लेख करते हुए ‘डॉ. निजाम उद्दीन’ लिखते हैं - जब हम सामाजिक कर्मों (मनुष्य अन्य मनुष्यों के साथ व्यवहारों) की ओर ध्यान देते हैं तो निम्न बातें सामने आती हैं -(१) अपने सम्बन्धियों, याचकों, दीन-निर्धनों, अनाथों को अपना हक दो, (२) मितव्ययी बनो, फिजूल खर्च करने वाले शैतान के भाई हैं, (३) बलात्कार के पास भी न फटको, यह बहुत बुरा कर्म है, (४) अनाथ की माल-सम्पत्ति पर बुरी नियतमत रखो। (५) अण या वचन की पाबन्दी करो, (६) पृथ्वी पर अकड़ कर मत चलो, (७) न तो अपना हाथ गर्दन से बांध कर चलो और न उसे बिलकुल खुला छोड़ो, कि भर्त्सना, निन्दा या विवशता के शिकार बनो (८) माता-पिता के साथ सद्व्यवहार करो। यदि उनमें से कोई एक या दोनों वृद्ध हो कर रहें तो उन्हें उफ तक न कहो, न उन्हें झिड़क कर उत्तर दो, वरन् उनसे आदरपूर्वक बातें

१५. (क) चउहिं ठणेहिं जीवा णेरइयाउयताए कम्मं पकरोति, तं.. महारमतभए, महापरिगगहयाए, पंचिदियवहण, कुणिमाहारेणं।

(ख) चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणिय (आउय) ताएकम्मं पकरोति, तं. जहा माइल्लताए णियडिल्लताए अलियववणेणं कुडतुल-कुडमाणेणं। - स्थानांग सूत्र. ४।४ सूत्र. ६२८-६२९

करो।” (९) अपनी सन्तान की दरिद्रता के कारण हत्या न करो। उनकी हत्या बहुत बड़ा अपराध है।” (१०) किसी को नाहक कत्ल मत करो, (११) किसी ऐसी वस्तु का अनुकरण मत करो, जिसका तुम्हें ज्ञान न हो, (१२) मजदूर को उसका श्रम सूखने से पहले मजदूरी दे दो, (१३) अपने नौकर के साथ समानता का व्यवहार करो, जो स्वयं खाओ पहनो वही उसे खिलाओ, पहनाओ (१४) नाप कर दो तो पूरा भर कर दो, तौल कर दो तो तराजू से पूरा तौल कर दो, (१५) अमानत में खयानत (बेईमानी) मत करो।” १६

वास्तव में ये नैतिकता प्रधान शुभकर्म हैं, परन्तु ईस्लाम धर्म में एक तो पुनर्जन्म को नहीं माना गया, दूसरे, जितना जोर खुदा की इबादत, रसूलों (पैगम्बरों) के प्रति विनम्रता पर दिया गया है, जिसमें नमाज, रोजा, हज और जकात आदि कर्म काण्ड आदि प्रमुख हैं, उतना जोर इस पर नहीं दिया गया कि अनैतिक कर्मों (आचरणों) से न बचने से यहाँ और परलोक में उसका दुष्फल भोगना पड़ता है। बल्किन ‘रोजे मशहर’ में लिखा है कि कयामत (अन्तिम निर्णय के दिन) अपने कर्मों का हिसाब अल्लाह के दरबार में हाजिर हो कर देना होता है, १७ इस कारण व्यक्ति बेखटके जीववध, मांसाहार, शिकार, मद्यपान, हत्या, आगजनी, दंगा, आतंक, पशुबलि (कुर्बानी), आदि अनैतिक कृत्यों को, पाप कर्मों को करता रहता है। अन्यथा, अल्लाह की इबादत एवं पूजा करने वाला, अल्लाह की आज्ञाओं को ठुकराता है, उनके अनुसार नहीं चलता है, तब कैसे कहा जाए कि वह खुदा का भक्त या पूजक है?

दूसरे धर्म सम्प्रदायों आदि से घृणा, विद्वेष की प्रेरणा : पाप कर्म के बीज

दूसरे, ईस्लाम धर्म में मोमिन औ काफिर का भेद करके घृणा और विद्वेष का बीज पहले से ही बो रखा है जो कि अशुभ कर्मबन्ध का कारण है। शुभाशुभ कर्मों का फल स्वयं कर्मों से ही मिल जाता है, खुदा को इस प्रपंच में डालने की जरूरत ही नहीं, खुदा (परमात्मा) की इबादत (भक्ति) करके उससे पाप माफी का फतवा लेने की बात भी न्यायसंगत नहीं है। जैन कर्म विज्ञान मनुष्य मात्र ही नहीं, प्राणिमात्र के प्रति आत्मौपम्य, मैत्रीभाव आदि रखने की बात करता है। साथ ही नैतिकता से स्वर्ग तक की ही प्राप्ति होती है, मोक्ष नहीं, इसीलिए जैन कर्म विज्ञान का स्पष्ट उद्घोष है कि शुद्धकर्म (धर्म) या अकर्म की स्थिति तक पहुँचो ताकि मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष (कर्म मुक्ति) प्राप्त कर सको, अगर वह न हो सके तो कम से कम नैतिक नियमों का पालन करो, ताकि शुभ कर्म द्वारा सुगति प्राप्त कर सको। १८

जैनकर्म विज्ञान: नैतिक संतुष्टिदायक

एक पाश्चात्य विचारक हॉग महोदय ने कर्म के विषय में एक ही प्रश्न उठाया है कि “क्या कर्म नैतिक रूप से सन्तुष्टि देता है?” १९ इसके उत्तर में जैन कर्म विज्ञान स्पष्ट कहता है कि यदि कोई धर्मनीति की दृष्टि से न्याय-नीति पूर्वक शुभ कर्म (आचरण) करता है, अथवा अहिंसा, सत्य आदि सद्धर्म (शुद्ध कर्म) का आचरण करता है तो वह निष्फल नहीं जाता। उसे देर-सबेर उसका सुफल मिलता ही है।

१६. देखें जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित ‘ईस्लाम धर्म में कर्म का स्वरूप’ लेख पृ. २१२-२१३

१७. (क) वही, पृ. २०९ (ख) ‘रोजे मशहर’

१८. देखें, उत्तराध्ययन सूत्र का चित्तसंमूतीय अध्ययन १३ बी ३२ बी गाथा।

१९. जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित ‘मसीही धर्म में कर्म की मान्यता’ लेख से उद्धृत १२०४

सभी धर्मों और सम्प्रदायों में ऐसे महान् व्यक्ति हुए हैं, जो नैतिक एवं धार्मिक आचरण करके उच्चपद पर पहुँचे हैं, विश्ववन्द्य और पूजनीय बने हैं। उनके नैतिक एवं आध्यात्मिक आचरणों के सुफल प्राप्त करने में कोई भी शक्ति या देवी देव बाधक नहीं बने। यह कर्मविज्ञान द्वारा नैतिक सन्तुष्टि नहीं तो क्या है?

कर्मसिद्धान्त का कार्य : नैतिकता के प्रति आस्था जगाना, प्रेरणा देना

डॉ. सागरमल जैन के अनुसार “सामान्य मनुष्य को नैतिकता के प्रति आस्थावान् बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि कर्मों की शुभाशुभ प्रकृति के अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होने की धारणा में उसका विश्वास बना रहे।” ^{२०} जैनकर्म विज्ञान जनसाधारण को नैतिकता के प्रति आस्थावान् रखने और अनैतिक (पाप) कर्मों से बचाने में सफल सिद्ध हुआ है। जैन धर्म के महान् आचार्य कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि ने गुजरात के सोलंकी राजा कुमाशपाल को और उसके आश्रय से अनेक राजाओं, मंत्रियों और जनता को कर्म विज्ञान का रहस्य समझा कर अनैतिक कृत्य करने से बचाया है और नैतिकता धार्मिकता के मार्ग पर चढ़ाया है। आचार्य हीरविजयसूरि तथा उनके शिष्यों ने सम्राट् अकबर को कर्मविज्ञान के माध्यम से प्रतिबोध देकर अनैतिक आचरणों से बचा कर नैतिकता के पथ पर चढ़ाया था। इस युग में जैनाचार्य पूज्य श्री लालजी महाराज, ज्योतिर्धर पूज्य श्री जवाहर लालजी महाराज, जैन दिवाकर श्री चौधमलजी महाराज आदि अनेक नामी-अनामी आचार्यों एवं प्रभावक मुनिवरों ने अनेक राजाओं, शासकों, ठाकुरों, राजनेताओं, एवं समाजनायकों तथा अपराधियों को जैनकर्म विज्ञान के माध्यम से मांसाहार, मद्यपान, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, जुआ आदि अनैतिक कृत्य छोड़ा कर नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा दी है ^{२१}। कई महान् सन्तों ने, जैन श्रावकों ने कर्मविज्ञान का सांगोपांग अध्ययन करके, दूसरों को समझा-बूझा कर इसी बात पर जोर दिया है कि भगवान् या परमात्मा की वास्तविक सेवा-पूजा उनकी आज्ञाओं का परिपालन करना है। ^{२२} एक ओर से अपने आपको परमात्मा (खुदा या गॉड) का भक्त (इबादतगार) कहे परन्तु प्राणिमात्र के प्रति रहम (दया) करने, मांसाहार, मद्यपान, व्यभिचार आदि पापकर्म न करने की उनकी आज्ञाओं को ठुकराता जाए, वह खुदा, परमात्मा या सतश्री अकाल का भक्त (बंदा) नहीं है। जैनकर्म विज्ञान इस तथ्य पर बहुत जोर देता है कि अगर अहिंसादि शुद्ध कर्म (धर्माचरण) न कर सको तो, कम से कम आर्यकर्म (नैतिक आचरण) तो करो! ^{२३}

अतः यह दावे के साथ कहा जा सकता है, कि जैनकर्म विज्ञानानुसार कर्म सिद्धान्त की नैतिकता के सन्दर्भ में पद-पद पर उपयोगिता है।

यह बात निश्चित है कि सांसारिक मानव सदैव निरन्तर शुद्ध उपयोग में रह कर, ज्ञाता-द्रष्टा बन कर शुद्ध कर्म पर या अरागदृष्टि होकर अकर्म की स्थिति या स्वरूपपरमण की स्थिति में नहीं रह सकता, इसलिए जैन कर्म विज्ञान के प्ररूपक तीर्थंकरों ने कहा शुभ-उपयोग में रह कर अनासक्तिपूर्वक कम से कम शुभकर्म करते रहना चाहिए। नौ प्रकार के पुण्य इसी उद्देश्य से बताए हैं। साथ ही उन्होंने अशुभकर्म रूप

२०. जैनकर्म सिद्धान्तः तुलनात्मक अध्ययन (डॉ. सागरमल जैन)?

२१. देखें पूज्यश्रीलालजी महाराज का जीवन चरित्र, पूज्यश्री जवाहरलालजी माहत्मा का जीवन चरित्र भाग १ तथा जैन दिवाकर चौधमलजी महाराज आदि का जीवनचरित्र।

२२. तवसपयस्तिवा ज्ञापरिपालनम्- हेमचन्द्रचार्य

२३. “जइ तेसि भोगे चइउं अहन्तो, अज्ञाई कम्माइ करेह रायं!”-उत्तराध्ययनसूत्र अ.१३ मा. ३३

अनैतिक कर्मों = अठारह पाप स्थानकों तथा सप्तकुव्यसनों आदि पापस्रोतों से बचने का निर्देश भी किया है। २४

जैन कर्मविज्ञान कर्मानुसार फलप्रदान की बात कहता है

कदाचित् विवशता से कोई प्रसजीवहिंसा आदि पापाचरण हो जाए तो जैन कर्म विज्ञान उसकी शुद्धि के लिए आलोचना, निन्दना (पश्चात्ताप), गर्हणा, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान, शुद्धि के लिए आलोचना, निन्दना (पश्चात्ताप), गर्हणा, प्रतिक्रमण, कायोत्सा, प्रत्यास्थान, भावना, अनुप्रेक्षा, त्याग, तप क्षमापना प्रायश्चित्त आदि तप बताता है। इसलिए 'डॉ. ए.एस. थियोडोर' के इस भ्रान्त मन्तव्य का खण्डन हो जाता है कि "कर्म सिद्धान्त के न्यायतावाद में दया, पश्चात्ताप, क्षमा, पापों का शोधन करने का स्थान नहीं है।" २५

जैन कर्म सिद्धान्त कर्म का फल ईश्वर या किसी शक्ति द्वारा प्रदान करने की बात से सर्वथा असहमत है, यही कारण है कि वह नैतिक (शुभ) अनैतिक (अशुभ) कर्मों का फल कर्मानुसार स्वतः प्राप्त होने की बात कहता है। परमात्मा को प्रसन्न करने या उनकी सेवा भक्ति करने मात्र से अनैतिक (पाप) कर्म के फल से कोई बच नहीं सकता। जैनकर्म सिद्धान्त 'दूध का दूध और पानी का पानी' इस प्रकार शुभाशुभ कार्य का न्यायसंगत फल बताता है। कर्मसिद्धान्त के न्याय को लौकिक विधि (कानून) वेत्ता भी कोई चुनौती नहीं दे सकता। इसलिए कर्म चाहे लौकिक (संसारिक) हो या लोकोत्तर, शुभ हो, शुद्ध हो या अशुभ हो, सबको यथायोग्य (न्यायसंगत) फल मिलने का प्रतिपादन जैनकर्मविज्ञान व्यवस्थित ढंग से करता है। इसलिए डॉ. ए.सी. बोरक्वेट के इस मत का भी निराकरण हो जाता है कि सांसारिक न्याय के रूप में कर्मसिद्धान्त अपने आप में निन्दनीय है।" २६

२४. देखें (क) स्थानांगसूत्र नौवा स्थान (ख) १८ स्थान के लिए देखें समवायांग १८ वां समवाय

२५. (क) "आलोयणाएणं.....इत्थीवेय-नपुंसयवेयं च न व बंधइ पुव्वबद्धं चणं निज्जेइ।"

(ख) "निदंणयाएणं...पच्छणुतावेणं विरज्जमाणे करण-गुणसेहिं पडिवज्जइ, क. पडिवन्नेयणं अणगारे मोहणिज्जंकम्म उग्घाएइ।"

(ग) "गरहणयाएणं....जीवे अपसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ, पसन्थे य पडिवज्जइ।"

(घ) "पडिवक्कमणेणं...वयच्छिदाणि पिहेइ। पसत्थजोग पडिवत्ते य अणगारे अणंतघाइपज्जवे खवेइ॥"

(ङ) 'काउसगेणं—तीय-पडुपन्नं पायच्छित्तंविसेहेइ। विमुच्च-पायच्छित्ते च जीवे निव्वुयहियए—सुहसुहेणं विहरइ।

(च) पज्जक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयह—सव्वदत्त्वेसु विणीय तत्तेसीइभूए विहरइ।

(छ) पायच्छिन्त-करणेणं पाबक्कविसेहिं जणयइ, बिरइयोर यावि भव...।

(ज) खमात्रणयाएणं पहलयणभावं जणयइ।—सव्व पाणजी सत्तेसु मितीभावमुवगए भावहिंसोहिं काऊण निब्बए भवइ।- उत्तराध्ययन सूत्र २९, सू.५, ६, ७, ११, १२, १३, १६, १७

(झ) Religion and Society Vol. No. XIV No. 4/1967

२६.. Christian Faith and Non Christian Religion- By A.C.Bonquet. P.196

मानवता भी कर्म सिद्धान्तानुसार अशुभकर्मक्षय से मिलती है

यद्यपि प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय ने आध्यात्मिकता की दिशा में सर्वभूतहित पर ध्यान दिया है, तथापि उसका प्रथम पड़ाव सर्व मानवहित है। सर्वमानवहित मानवता की परिधि में आता है, जो नैतिकता का आवश्यक अंग है। भगवान् महावीर ने नैतिकता के सन्दर्भ में दुर्लभता के चार अंगों में मानवता = मनुष्यत्व को प्रथम दुर्लभ अंग बताया है। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि विविध कर्मों से कलुषित जीव देव, नरक, तिर्यञ्च और असुरयोनियों तथा मनुष्यगति में भी कभी चाण्डाल, शूद्र वर्णसंकर तथा क्रूर क्षत्रिय होता है, तो कभी कीट, पतंग, चींटी, कुंथु आदि योनियों में कर्मों के वश सम्मूढ़ हो कर अमानुषी योनियों में प्राणी नाना दुःख, संकट और पीड़ा पाता है। कदाचित् पुण्योदय से क्रमशः अशुभकर्मों का क्षय करके जीव तथाविध आत्मशुद्धि प्राप्त करता है और तब मनुष्यता को ग्रहण स्वीकार करता है।^{२७}

देवदुर्लभ मनुष्यत्व : नैतिकता का प्राण और प्रथम अंग

कितनी दुर्लभ और कठिन है, मनुष्यता जो नैतिकता का प्रथम अंग है? भगवान् महावीर ने जैनकर्म सिद्धान्त की दृष्टि से मनुष्यता की दुर्लभता का विश्लेषण किया है। इसी से समझा जा सकता है कि नैतिकता के सन्दर्भ में जैन कर्म सिद्धान्त की कितनी उपयोगिता है?

नैतिकता का प्राण मानवता है। तथा उसके अन्य अवयव हैं -न्याय, नीति, मानवमात्र के साथ भाईचारे का व्यवहार, अपने ग्राम, नगर, राष्ट्र, पड़ोसी और परिवार आदि के साथ सुख-दुःख में सहायक बनना, अपने कर्तव्य का पालन, ले-दे की व्यवहारिक नीति आदि। नैतिकता का पालन न होने पर कैसी कैसी कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ आती हैं? कर्म सिद्धान्त की दृष्टि से वर्तमान में इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

नैतिकता का उल्लंघन या पालन वर्तमान में ही शुभाशुभ फलदायक

नैतिकता का या नीति नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को कर्म सिद्धान्त के अनुसार कितनी विपन्नता, उपेक्षा, अवहेलना, कर्तव्य विमुखता, दुःख-दारिद्र्य का सामना करने का शिकार होना पड़ता है, इस के ज्वलन्त उदाहरण वर्तमान मानव जीवन में देखे जा सकते हैं।

२७. (क) “चत्तारि परमंग्गणि दुल्लहाणीय जणुणो, माणुस्तं सुई सच्छ, संजमझिय वीरियं।” १॥

(ख) समावन्नाण संसारे नाणाआग्गेत्तासु जाइसु कम्मा नाणाविहा कुट्टु पुट्ठो निसं मिया पया॥२॥

श्रएगयादेव लोगेसु नरएसु वि एगमा। एगमो आसुरंकायं अहाकम्मेहिगचाई॥३॥

एगमाखत्तिओ होई, तओ चांडाल-बुक्कसो। तओ कीड पयंगोम, तओकुंभु पिवीलिया॥४॥

एवभावइजोशिसु पाणिणो कम्मकलिसा, न निविज्जंति संसारे सव्वहेस व खत्तिया॥५॥

कम्मसंगेहि सद्धा दुक्खियाबहुवेमणा। अमाणुसासु जोणीस विणिहम्मंति पाणिण्ते॥६॥

कम्माणन पहाणाए आणुपुव्वी कमाइउ। जीवा सोहिमणुपत्ता आययति मणुस्सयं॥७॥

- उत्तराध्ययन सूत्र ३।३ गा. १ से ७ तक

नैतिकता के पालन में आस्था व्यक्ति को सदाचरी तथा पारस्परिक सहानुभूति प्रदान में अग्रसर बनाती है उससे कर्तव्य निष्ठा का आनन्द प्राप्त होता है। नैतिकता की प्रवृत्तियाँ व्यक्ति के जीवन में सुख और सन्तोष का अमृत भी देती है और समाज के स्तर और गठन को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित बनाती है।

नैतिकता के आदर्शों के प्रति आस्थाएँ लड़खड़ाने पर व्यक्ति ही नहीं वह जाति भी अनैतिक कर्मों से स्वयंमेव चिन्तित, व्यथित और स्वार्थरायण बन जाती है फलतः सहयोग और उदारता की उन सभी प्रवृत्तियों का अन्त हो जाता है, जिनमें मनुष्य को कुछ त्याग और कष्ट उठाना पड़ता है।

परिवार और समाज में नैतिकता के प्रति अनास्था का दुष्परिणाम

नैतिकता की दृष्टि से सोचा जाए तो परिवार और समाज का ऋण व्यक्ति पर कम नहीं है। माता पिता और बुजुर्गों की सहायता से व्यक्ति का पालन-पोषण होता है, वह स्वावलम्बी बनता है, इस प्रकार व्यक्ति पर पितृ ऋण भी है। नैतिकता का तकाजा है कि पति-पत्नी दोनों में से किसी के प्रति अरुचि हो जाने पर भी उसकी पिछली सद्भावना और सत्कार्य के लिए ऋणी रहने तथा निबाहने को तत्पर रहना चाहिए। सन्तान के प्रति माता-पिता को और सन्तान का माता पिता के प्रति पूर्ण बफादारी और कर्तव्यनिष्ठा रखना आवश्यक है। मनुष्यमात्र में अपने जैसी ही आत्मा समझ कर न्याय, नीति, ईमानदारी, सहानुभूति और सद्भावना रखनी चाहिए। कर्मसिद्धान्त नैतिकता के इन सूत्रों के अनुसार आचरण करने, न करने का सुखद-दुःखद फल प्रायः हाथोहाथ बता देता है।

भौतिकतावादी नैतिकता विसृद्ध अतिस्वार्थी

नैतिकता के इन आदर्शों के विरुद्ध वर्तमान भौतिकता की चकाचौंध में पलने वाले लोग सीधा यों ही कहने लगते हैं -“हमें परिवार से, समाज से या माता-पिता से क्या मतलब? हम क्यों दूसरों के लिए कष्ट सहें? क्यों अपने आपको विपत्ति में डालें? ईश्वर, धर्म, नीति, परलोक, कर्म, कर्मफल, आदि सब ढोंग है, पूंजीपतियों और उनके एजेंटों की बकवास है। इनको मानने न मानने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इन्हें मानने से कोई भौतिक या आर्थिक लाभ नहीं है।”

इस अनैतिकता का दूरगामी परिणाम

इस अनैतिकता के प्रभाव की कुछ झांकी इंग्लैण्ड के प्रख्यात पत्र ‘स्पेक्टेटर’ में कुछ वर्षों पूर्व एक लेख में दी गई थी। उसमें उस देश के वृद्ध व्यक्तियों की दयनीय दशा का विवरण दिया था कि “इस देश के अधिकांश वृद्धजन अपनी असमर्थ स्थिति में सन्तान की रत्तीभर भी सेवा, सहानुभूति नहीं पाते। अतः वे इस प्रकार करुण विलाप करते हैं कि हे भगवान्! किसी तरह मौत आ जाए तो चैन मिले। पर उनकी पुकार कोई भी नहीं सुनता। दुःखित-पीड़ित वृद्धजनों का यह वर्ग द्रुतगति से बढ़ता जा रहा है।”

वृद्धों द्वारा आत्महत्या : उनकी ही अनैतिकता उन्हें ही भारी पड़ी

‘कोरोनर’ (लन्दन) के ‘डॉक्टर मिलन’ को पिछले दिनों ७०० दुर्घटनाग्रस्त मृतशवों का विश्लेषण करना पड़ा। उनमें एक तिहाई आत्महत्या के कारण मरे थे। इन आत्महत्या करने वालों में अधिकांश ऐसे बूढ़े लोग थे, जिन्हें बिना किसी सहायता के जीवन यापन भारी पड़ रहा था और उन्होंने इस तरह

घिस-घिस कर मरने की अपेक्षा, नींद की अधिक गोलियाँ खाकर मरना अधिक अच्छा समझा, ...क्योंकि बयस्क होने के बाद सन्तान ने उनकी ओर मुंह मोड़ कर भी नहीं देखा था।”^{२८}

बूढ़े अभिभावकों की इस दुर्गति का कारण प्रायः वे स्वयं ही हैं। उन्होंने अपने उन बालकों को अभिशाप समझ कर अपनी जवानी में उनके प्रति उपेक्षा रखी। न तो स्वयं बूढ़ों ने उस समय नैतिकता रखी और न ही अपने बच्चों को नैतिकता के संस्कार दिये। उन्होंने ही नैतिक उच्छृंखलता को जन्म दिया, वही नैतिक उच्छृंखलता उनके बालकों में अवतरित हुई, जो परम्परा से पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में उनके इस अनैतिकायुक्त कर्म को फल दुःख, विपत्ति, एकाकीपन, नीरस असहाय जीवन-यापन, विलाप, आदि के रूप में उन्हें और उनकी सन्तान को देखना पड़ा। जैन कर्म विज्ञान यही तो बताता है। कर्म सिद्धान्त पर अनास्था और अविश्वास लाकर जिन्होंने अपने जीवन में नीति एवं धर्म से युक्त विचार आचार पर ध्यान नहीं दिया और नैतिकता के सन्दर्भ में साधारण मानवीय कर्तव्य की भी उपेक्षा कर दी, उन्हें उन दुष्कर्मों का फल भोगना पड़ा और उनकी संतान को भी बिरासत में वे ही अनैतिकता के कुसंस्कार मिले।^{२९}

निष्कर्ष यह है कि शरीर के साथ ही अपने जीवन का अन्त मान कर कर्म विज्ञान के सिद्धान्त को व्यर्थ की बकवास मानने वाले तथा नैतिकता से रहित, अनैतिक आचरणों से युक्त जीवन यापन करने वाले थके, हारे, बूढ़े, घिसे व्यक्तियों की आँखों में आशा की चमक कैसे आ सकती है? ऐसी स्थिति में वे निरर्थकतावादी बन जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं। हिप्पीवाद इसी नीरस निरर्थक जीवन की निरंकुश अभिव्यक्ति है। अभी इसका प्रारम्भ है। कर्म विज्ञान के प्रति अनास्था जितनी प्रखर होगी, उतना ही यह क्रम उग्र होता जाएगा। हो सकता है, इसकी रसता एवं निरर्थकता की आग में झुलस कर भारतीय सम्भता और संस्कृति भी स्वाह हो जाए।^{३०} वर्तमान मानव का विश्वास कर्मविज्ञान से सम्बन्धित आत्मा परमात्मा, स्वर्ग-नरकादि परलोक, धर्म, कर्म, कर्मफल, नैतिकता, धार्मिकता आदि पर से उखड़ता जा रहा है। आस्थाकी इन जड़ों के उखड़ने से, शेष सभी अंगोपांग उखड़ जाएँगे, इसका कोई विचार नहीं है।

वर्तमान में व्यक्ति के चिन्तन को ‘फ्रायड’ और ‘माक्स’ दोनों ने अत्यधिक प्रभावित किया है। फ्रायड ने व्यक्ति की प्रवृत्तियों एवं सामाजिक नैतिकता के बीच संघर्ष एवं द्वन्द्व अभिव्यक्त किया है। उसकी दृष्टि में ‘सैक्स’ सर्वाधिक प्रमुख हो गया है। इसी एकांगी और निपट स्वार्थी दृष्टिकोण से जीवन को विश्लेषित एवं विवेचित करने का परिणाम ‘किसे रिपोर्ट’ के रूप में सामने आया। इस रिपोर्ट ने सैक्स के मामले में वर्तमान मनुष्य की मनःस्थितियों को विश्लेषण किया है। संयम की सीमाएँ टूटने लगीं। भोग का अतिरेक सामान्य व्यवहार का पर्याय बन गया। जिनके जीवन में यह अतिरेक नहीं था, उन्होंने अपने को मनोरोगी मान लिया। सैक्स-कुण्ठाओं के मनोरोगियों की संख्या बढ़ती गई। वासनातृप्ति ही जिंदगी का लक्ष्य हो गया। पाश्चात्य जीवन एवं रजनीशवाद आदि ने इस आग में ईन्धन का काम किया। प्रेम का अर्थ इन्द्रिय-विषय भोगों की निर्बाध, निमर्यादतृप्ति को ही जीवन का सर्वस्व सुख मान लिया। भार्या के लिये धर्म पत्नी शब्द ने भोग पत्नी का रूप ले लिया। नैतिकता को धत्ता बता कर पति-पत्नी प्रायः आदर्शहीनता पर

२८. अखण्डज्योति मार्च १९७२ के “अनास्था हमें प्रेतपिशाच बना देगी”, लेख के आधार पर पृ. १८

२९. अखण्डज्योति मार्च १९७२ के “अनास्था हमें प्रेतपिशाच बना देगी” लेख से साभार उद्धृत, पृ. १९

३० वही पृष्ठ १९

उतर आते हैं। पाश्चात्य जगत् में बच्चों की भी गणना एक विपत्ति में होने लगी है। माँ-बाप उन्हें अभिशप्त मानने लगे हैं। पति-पत्नी मिलन जब नैतिकता को ताक में रखकर विशुद्ध कामुक प्रयोजन के लिये ही रह जाता है, तब कृत्रिम प्रजनन विरोध, भ्रूण हत्या या गर्भपात में कोई दोष नहीं समझा जाता। इस अनैतिक कर्म के फलस्वरूप स्त्री को बीमारियाँ लग जाती हैं, पुरुष भी अतिभोग का शिकार होकर अनैतिक कर्म का दण्ड किसी न किसी बीमारी, विपत्ति या अर्थ हानि के रूप में पाता है।

पाश्चात्य जगत् की तरह भारत में भी यह प्रचलन अधिक होता जा रहा है। बच्चे जब पेट में आते हैं या जन्म लेने लगते हैं, उनके माँ-बाप को कामुकवृत्ति की पूर्ति में बाधक बनते हैं। फलतः पेट में आए हुए बच्चों से पिण्ड छुड़ाने के लिए कृत्रिम प्रजनन-निरोध का सहारा लिया जाता है। जन्में हुए बच्चों से भी कब, किस तरह पिण्ड छुटे, इसकी चिन्ता उनके माता-पिता को होने लगी है। सौन्दर्य को हानि न पहुँचे इसलिए बच्चों को माता का नहीं, बोतल का दूध पीना पड़ता है। कई परिवारों में तो अधिकांश बच्चों के पालन-पोषण की इंश्ट से बचने के लिए उन्हें पालन गृहों में दे दिया जाता है। पैसा देकर इस जंजाल से माँ-बाप छुट्टी पा लेते हैं। फिर स्वच्छन्द घूमने-फिरने और हंसने-खेलने की सुविधा हो जाती है। जैसे ही बालक कमाऊ हुआ पाश्चात्य जगत् में माँ-बाप से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। पशुपक्षियों में भी तो यही प्रथा है। उड़ने-चरने लायक न हो तभी तक माता उनकी सहायता करती है। बाप तो उस स्थिति में भी ध्यान नहीं देता। बच्चों की जीवनरक्षा के लिए यदि माता के हृदय में नैतिक दृष्टि से स्वाभाविक ममता न होती तो अनास्थावान माताएँ बच्चों की सार संभाल करने में रुचिन लेतीं और माता की निगाह बदलने पर बाप तो उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखता। नैतिकता की जगह पाशविक वृत्ति ले लेती है।^{३१}

जिन माता-पिताओं का दृष्टिकोण बच्चों के प्रति पाशविकवृत्ति-युक्त हो जाता है, उस दुष्कर्म का प्रतिफल बुढ़ापे में उन्हें भुगतना पड़ता है। वे बच्चें भी बुढ़ापे में उन दुर्नीत अभिभावकों की कोई सहायता नहीं करते और उन्हें कुत्ते की मौत मरने देते हैं। आखिर वे जब बूढ़े होते हैं तो उन्हें भी अपने बच्चों से सेवा या सहयोग की कोई आशा नहीं रहती। 'याध्वकरणं ताध्वभरणं' इस कर्मसिद्धान्त के अनुसार उनकी अनैतिकता का फल उन्हें मिलता ही है।

पति-पत्नी के जीवन में प्रायः इस अनैतिकता ने गहरा प्रवेश पा लिया है। वैवाहिक जीवन का उद्देश्य कामुकता की तृप्ति हो गया है। वेश्या जिस प्रकार शरीर सौन्दर्य, प्रसाधन एवं साजसज्जा से लेकर वाक्जाल तक के रस्सों से आगन्तुक कामुक को बांधे रहती है, वैसी ही दुर्नीति औसत पत्नी को प्रायः अपने पति के साथ बरतनी पड़ती है। जब तक कामवासनातृप्ति का प्रयोजन खूबसूरती से चलता है, तब तक वह प्रायः पत्नी को चाहता है, आर्थिक लोभ एवं स्वार्थ का दूसरा पहलू भी विवाह के साथ जुड़ गया है। प्रायः निपटस्वार्थ पूर्ण अनैतिकता की इस शतरंज का पर्याय बन गया है दाम्पत्य जीवन। एक घर में रहते हुए भी पति पत्नी में प्रायः अविश्वास का दौर चलता है। विवाह के पूर्व आजकल के मनचले युवक अपने भावी साथी के साथ जो लम्बे चौड़े वायदे और हावभाव दिखाते हैं, वे सन्तान होने के बाद प्रायः फीके हो जाते हैं।^{३२} इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की इस अनैतिकतापूर्ण विडम्बना का जब फटस्फोट होता है, तब निराशा, दुःख और संकट ही हाथ लगता है।

३१. जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित 'कर्म का सामाजिक सन्दर्भ' लेख से भावांश पृष्ठ. २८

३२. अखण्ड ज्योति मार्च १९७२ में प्रकाशित अनास्था हमें प्रेत-पिशाच बना देगी लेख पृष्ठ १९.

क्या पारिवारिक, क्या सामाजिक और क्या राष्ट्रीय जीवन में परस्पर अविश्वास, निपटस्वार्थान्धता, आत्मीयता का अभाव, नीति और धर्म से भ्रष्ट होने से वर्तमान युग का मानव प्रायः अपने आपको एकाकी, असहाय और दीन-हीन अनुभव करता है। छल और दिखावे का, बाहरी तड़क-भड़क का ताना-बाना बुनते रहने से मन कितना भारी, चिन्तित, व्यथित, क्षुब्ध और उखड़ा-उखड़ा रहता है, यह देखा जा सकता है। सारा परिवार अनैतिकता के कारण आन्तरिक उद्वेगों की आग में मरघट की चिता बन कर जलता रहता, आन्तरिक निराशा हर घड़ी खाती रहती है। नशा पी कर गम गलत करते रहते हैं।

नैतिकता की जगह भौतिकता ने ले ली है। स्वार्थ त्याग का स्थान स्वार्थ साधन ने ले लिया है। मांसाहार और मद्यपान के पक्ष में यह कुतर्क प्रस्तुत किया जाता है कि अपने स्वादिष्ट भोजन और पेय की अपनी क्षणिक लो लुपता वश पशु-पक्षियों को तथा अपने परिवार को भयंकर कष्ट सहना पड़ता है, उसकी हम क्यों चिन्ता करें? जब मनुष्य इस प्रकार का अनैतिक और स्वार्थ प्रधान बन जाता है तो उसका प्रतिफल भी कर्म के अनुसार देर सबेर मिलता है। वह दूसरों की सुविधा-असुविधा की, न्याय-अन्याय की, या सुख-दुःख की परवाह नहीं करता। नैतिकता और धर्म कर्म के प्रति अनास्था के कारण पारिवारिकता, कौटुम्बिकता और सामाजिकता का ढाँचा लड़खड़ाने लगा है। जब नीति नियम नहीं, धर्म नहीं, आत्मा-परमात्मा नहीं, कर्म नहीं, कर्मफल नहीं, परलोक नहीं, तो फिर कर्तव्य पालन नहीं, स्वार्थ त्याग नहीं, नैतिकता के आदर्शों के पालन के लिए थोड़ी सी असुविधा उठाने की आवश्यकता नहीं! इस 'नहीं' की नास्तिकता ने व्यक्ति को संकीर्णता, पशुता और अनुदारता को बढ़ावा दिया है। नैतिकता का या ले-दे के व्यवहार का भी लोप होता जा रहा है। इस प्रबल अनास्था के फलस्वरूप उच्छृंखल आचरण, स्वच्छन्द निपटस्वार्थी एवं सिद्धान्तहीन जीवन तथा अपराधी प्रवृत्तियों की आँधी तूफान की तरह बढ़ता देखा जा सकता है। ऐसा परिवार, समाज और राष्ट्र नरकागार नहीं बनेगा तो और क्या होगा? ३३

कर्म सिद्धान्त के अनुसार ऐसा अनैतिकता युक्त परिवार, समाज और राष्ट्र कैसा होगा? किस के लिए और कितना सुविधा जनक होगा? इसकी कुछ झाँकी जहाँ तहाँ देखी जा सकती है। वर्तमान युग का मानव अज्ञान क्यों है? इस पर विश्लेषण करते हुए डॉ. महावीरसरन जैन अपने लेख में लिखते हैं - ३४ "धार्मिक चेतना एवं नैतिकता बोध से व्यक्ति से मानवीय भावना का विकास होता है। उसका जीवन सार्थक होता है।...आज व्यक्ति का धर्मगत (नैतिक) आचरण पर से विश्वास उठ गया है। पहले के व्यक्ति की, आस्था जीवन की निरन्तरता और समग्रता पर थी। वर्तमान जीवन के आचरण द्वारा अपने भविष्य (इहलौकिक और पारलौकिक जीवन) का स्वरूप निर्धारित होता है। इसलिए वह वर्तमान जीवन को साधन तथा भविष्य को साध्य मानकर चलता था।

"आज के व्यक्ति की दृष्टि 'वर्तमान' को (तथा 'स्व' को) ही सुखी बनाने पर है। वह अपने वर्तमान को अधिकाधिक सुखी बनाना चाहता है। अपनी सारी इच्छाओं को इसी जीवन में तृप्त कर लेना चाहता है। आज का मानव संशय और दुविधा के चौराहे पर खड़ा है। वह सुख की तलाश में भटक रहा है। धन (येन-केन प्रकारेण) बटोर रहा है। भौतिक उपकरण जोड़ रहा है। वह अपना मकान बनाता है। आलीशान ईमारत बनाने के स्वप्न को मूर्तिमान करता है। मकान सजाता है। सोफासेट, वातानुकूलित व्यवस्था, (फ्रीज, रेडियो, टी.वी.) महंगे पर्दे, प्रकाशध्वनि के आधुनिकतम उपकरण एवं उनके द्वारा रचित मोहक प्रभाव, यह सब उसको अच्छा लगता है।"

३३. अखण्ड ज्योति मार्च १९७२ पृ. १८-१९ का भावांश।

३४. जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक कर्म का सामाजिक सकर्म लेख से पृष्ठ २८९

“जिन लोगों को ज़िंदगी जीने के न्यूनतम साधन उपलब्ध नहीं हो पाते, वे संघर्ष करते हैं। आज वे अभाव का कारण, अपने विगत (इस जन्म में या पूर्वजन्म में पूर्वकृत) कर्मों को न मान कर (न ही अपने जीवन में नीति और धर्म का आचरण करके अशुभ कर्मों को काट कर, शुभकर्मों में संक्रमित करके) सामाजिक व्यवस्था को मानते हैं। (स्वयं अपने जीवन का सुधार न करके, अपने जीवन में नैतिकता और धार्मिकता का पालन एवं पुरुषार्थ न करके) तथा समय और सादगी का जीवन न अपना कर समाज से अपेक्षा रखते हैं कि वह उन्हें ज़िंदगी जीने की स्थितियाँ मुहैया करावे। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो हाथ पर हाथ धर कर बैठने के लिए तैयार नहीं हैं। वे सारी सामाजिक व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लिए बेताब हैं।” ३५

उपर्युक्त मन्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्म सिद्धान्त पूर्वकृत कर्मों को काटने के लिए तथा अशुभ कर्मों का निरोध करने या शुभ में परिणत करने के लिए जिस नैतिकता एवं धार्मिकता (अहिंसा, संयम, तप आदि) के आचरण की बात करता है, वह जिन्हें पसंद नहीं, वे लोग केवल हिंसा, संघर्ष, तोड़फोड़, अनैतिकता एवं दुर्व्यसनों आदि का रास्ता अपनाते हैं, उसका फल तो अशान्ति, हाय हाय, बेचैनी और नारकीय जीवन तथा दुःखदअन्त के सिवाय और क्या हो सकता है?

इससे यह समझा जा सकता है कि कर्म सिद्धान्त परिवार, समाज या राष्ट्र आदि में नैतिकता का संवर्धन करने और अनैतिकता से व्यक्ति को दूर रखने, में कितना सहायक हो सकता है?

अतः कर्म सिद्धान्त के इन निष्कर्षों को देखते हुए डॉ. जोन मेकेंजी का यह आक्षेप भी निरस्त हो जाता है कि “कर्म सिद्धान्त में ऐसे अनेक कर्मों को भी शुभाशुभ फल देने वाला मान लिया गया है, जिन्हें सामान्य नैतिकदृष्टि से अच्छा या बुरा नहीं कहा जाता।” ३६ इस आक्षेप का एक कारण यह भी सम्भव है कि डॉ. मेकेंजी पौर्वात्य और पाश्चात्य आचारदर्शन के अन्तर को स्पष्ट नहीं समझ पाए। भारतीय आचारदर्शन कर्मसिद्धान्त पर आधारित है, वह अच्छे-बुरे नैतिक अनैतिक आचरण का भेद स्पष्ट करके उनका इहलौकिक पारलौकिक अच्छा या बुरा कर्मफल भी बताता है, साथ ही, वह अनेक प्रकार की धार्मिक क्रियाओं, उपवास, ध्यान, समतायोग साधना आदि को, तथा सप्तकुव्यसन त्याग को एवं मानवता ही नहीं, प्राणिमात्र के प्रति करुणा, दया, आत्मीयता आदि को नैतिक आध्यात्मिक दृष्टि से विहित व अनिवार्य मान कर इसके विपरीत अनैतिकता तथा क्रूरता, निर्दयता, अमानवता आदि को निषिद्ध मानता है। उसका भी शुभाशुभ कर्म फल बताता है, जबकि पाश्चात्य आचार दर्शन नैतिकता को सिर्फ मानव समाज के पारस्परिक व्यवहार तक ही सीमित करता है। वह न तो सप्तकुव्यसन त्याग आदि नैतिक नियमों को मानता है, नहीं मानवेतर प्राणियों के प्रति आत्मीयता को मानता है। यही कारण है पाश्चात्य जीवन में अनैतिकता और आध्यात्मिक विकास के प्रति उपेक्षा का।

यही है नैतिकता के सन्दर्भ में कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता के विविध पहलुओं का दिग्दर्शन।

* * * * *

३५. वहीं, पृ. २८९

३६.. हिन्दु एथिक्स पृ. २१८

सम्यक् दर्शन

• श्रमण संघीय महामंत्री श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

सम्यक् दर्शन का अर्थ है, 'यथार्थ समझ' समझ जीवन का नियामक और प्रेरक तत्व है। समझने की क्षमता मानव जीवन की सब से बड़ी उपलब्धि है। हम अनन्त जीवन यात्रा के पथिक हैं अनेकों विभिन्न भवों से होकर हम आये, उनमें अधिक समय तो बेसमझी का ही रहा। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जन्मों में भी अनेक बार 'असंज्ञी' अर्थात् बेमन के रहे। एकेन्द्रिय योग्यता भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुई। बहुत लम्बा समय तो ऐसा रहा जब हम विकलेन्द्रिय थे, पार्थिव दृष्टि से भी अपूर्ण थे। प्रत्येक नवीन इन्द्रिय की उपलब्धि जीवन के लिए बड़ी चीज थी तो मन की संप्राप्ति के लिए कहना ही क्या? मन आत्मा की अन्तिम पार्थिव उपलब्धि है। और यह तमाम उपलब्धियों से अनुपम भी है। मन के सहारे ही आत्मा समझने का कार्य किया करती है। अभी हम 'संज्ञी' हैं। 'संज्ञी' ही समझने की योग्यता रखते हैं। आज हम जो कुछ हैं उस स्थिति को तुच्छ न समझें वस्तुतः हमारी यह स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण है। अब एकमात्र आवश्यकता है इस महान उपलब्धि के सदुपयोग की।

हमारे सम्पूर्ण जीवन में सर्वाधिक महत्व की वस्तु हमारी समझने की योग्यता है अतः उसका ही सर्वाधिक सदुपयोग करने की आवश्यकता है। हम यदि नाशवान तुच्छ पदार्थों को समझने का ही प्रयत्न कर रहे हैं तो यह निश्चित बात है कि भटक रहे हैं। हमें सम्पूर्ण रूप से सजग होकर 'परमार्थ' को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

अनेक व्यक्ति 'परमार्थ' के नाम से चौकते हैं वे समझते हैं कि परमार्थ कोई अलौकिक रहस्यात्मक व्याख्याएं हैं, जिन्हें समझ नहीं सकते, किन्तु ऐसी बात नहीं है, न परमार्थ कोई अलौकिक तत्व है। और न कोई रहस्यात्मक व्याख्या है। परमार्थ तो 'वस्तुस्थिति' है। जो जहां है और जैसा है उसको वहीं वैसा ही समझना परमार्थ है। परमार्थ की समझ ही 'सम्यक् दर्शन' है।

षड्रव्य - इस विश्व में अन्तिम रूप से छह पदार्थ उपस्थित हैं। धर्म, अर्थ आकाश, काल, आत्मा और पुद्गल।

धर्म-अधर्म - धर्म-अधर्म, कर्तव्य और भावना के रूप में तो सर्वत्र मान्य हैं किन्तु पदार्थ (द्रव्य) के रूप में इनकी मान्यता जिन शासन में ही है। द्रव्य के रूप में धर्म अधर्म का स्वरूप जिनशासन में सचमुच निराला ही है।

जिन शासन की मान्यता है कि विश्व में समस्त पदार्थ जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर गति करते हैं यद्यपि गत्यात्मक धर्म उनमें है किन्तु विश्व नियम के अनुसार निमित्त के बिना उपादान पूर्णतया सार्थक और सक्रिय नहीं हो सकता इसी सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक पदार्थ जो स्वयं गत्यात्मकता रखता है, उसे निमित्त रूप से एक सहयोगी तत्व की आवश्यकता है, वह सहयोगी तत्व धर्म है, सम्पूर्ण विश्व तक

विस्तृत यह अमूर्त तत्व बड़ा अद्भुत है उसमें किसी वर्ण गंध रस स्पर्श का अस्तित्व नहीं है। विश्वान्त तक फैले स्थूल सूक्ष्म सभी तरह के पदार्थों की गत्यात्मकता को सार्थकता प्रदान करने वाला धर्म तत्व निर्जीव जड़ स्वरूप है, इसके अस्तित्व को सिद्ध करना नितान्त असंभव है, केवल सर्वज्ञ वचन होने से श्रद्धा सहित इसे स्वीकार करना चाहिये।

आधुनिक वैज्ञानिक 'ईथर' नामक एक ऐसा पदार्थ अवश्य मानते हैं जिसका स्वरूप 'धर्म' से मिलता है यह 'धर्म' द्रव्य जिन शासन में 'धर्मास्तिकाय' के नाम से प्रसिद्ध है।

अस्ति से तात्पर्य उसी के विभिन्न घटक 'देश-प्रदेश' छोटे बड़े हिस्से से लिया जाता है। काय का अर्थ समूह है।

धर्म की तरह ही एक द्रव्य है 'अधर्म' इसका अर्थ है पदार्थ के स्थितिकरण में सहयोग देने वाला द्रव्य। यह भी धर्म की तरह अमूर्त विश्व व्यापी वर्ण, गंध, रस स्पर्श आदि से रहित है।

आकाश काल - संसार में विद्यमान छह द्रव्यों में से तीसरे द्रव्य का नाम आकाश है, यह भी लोक व्यापी अमूर्त वर्णादि से रहित तथा नित्य है। यह पदार्थों को अवगाहन (अवकाश) अपने में स्थित होने का स्थान प्रदान करता है। विश्वगत सभी पदार्थ आकाश में ही अवस्थित है।

काल भी एक द्रव्य है यह द्रव्य सभी पदार्थों के परिणामन, परिवर्तन में सहयोगी होता है। यह भी अरूपी वर्ण गंधादि से रहित है, इसका अस्तित्व क्षेत्र केवल उतना ही है जहाँ तक मानवों का निवास है। मानवेतर स्थानों पर इसका अस्तित्व नहीं क्योंकि मात्र मानव ही समय (काल) का प्रयोग करते हैं। अन्य प्राणियों में काल द्रव्य के उपयोग की क्षमता नहीं।

आत्मा - विश्वगत मौलिक पदार्थों में पांचवां द्रव्य 'आत्मा' है षडद्रव्यों में केवल यह द्रव्य ही चेतना सम्पन्न है। अनुभव की सत्ता भी इसके ही पास है। यद्यपि यह भी रूप, वर्ण, गंधादि से रहित है किन्तु रूपी पदार्थ तथा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि के उपयोग की क्षमता भी केवल इसके ही पास है। सम्पूर्ण विश्व में जीवन द्रव्य व्याप्त है, किन्तु यह एक नहीं है। केवल कुछ निगोर योनियों को छोड़कर सर्वत्र एक शरीर एक जीव है। प्रत्येक आत्मा का मौलिक स्वरूप एक ही तरह का होता है, किन्तु फिर भी परस्पर सभी आत्माएं भिन्न हैं। सभी आत्माएं केवल अपने कृत कर्मों के प्रति उत्तरदायी हैं। उन्हें अपने कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है। आत्मा अन्य द्रव्यों की तरह आनन्दिक सत्ता वाला पदार्थ केवल पार्यायिक होता है, मौलिक नहीं। जैसे डालियों के इधर-उधर झूमते रहने पर भी वृक्ष का मूल जहाँ का तहाँ बना रहता है। यही स्थिति जीव की है। जीवन में अन्य कितने ही परिवर्तन क्यों न हो किन्तु उसके जीवत्व में नित्यत्व में और उसके निज स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आता यही कारण है कि जिन शासन में पतित से पतित प्राणी भी कभी-कभी अपना आत्मोत्थान साधकर महान ही नहीं महानतम बन जाता है। यदि अर्जुन माली के क्रूर परिणामों के साथ यदि उसकी आत्मा भी सम्पूर्ण रूप से बदल जाती तो वह महावीर के संपर्क में आकर भी कदापि नहीं सुधरता किन्तु ऐसा न हुआ न हो ही सकता है।

जीव द्रव्य का अपना स्वभाव अविनाशी है वह दब जायेगा पापों से किन्तु नष्ट कदापि नहीं होगा।

जीव द्रव्य की स्वतन्त्रता सत्ता के साथ इसके स्वरूप का जो विवेचन जिन शासन में, वह सचमुच अद्भुत और मनन करने के योग्य है।

जिन शासन वर्णित जीव द्रव्य की विवेचना जानकर या बढ़कर व्यक्ति में अनायास ही नये विश्वास का जन्म हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में परमात्मा बनने की योग्यता बताकर जिनशासन ने सभी प्राणियों में एक नया उत्साह पैदा कर दिया।

विश्व में सर्वदा स्थित षडद्रव्यों में अन्तिम द्रव्य पुद्गल है पुद्गल दृश्यमान अजीब पदार्थ है। यह अमुभव सत्ता से रहित किन्तु वर्ण, गंध, रस स्पर्श आदि को यही धारण करता है। सत्य तो यह है कि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि का उदय भी पुद्गलों से होता है। पुद्गल को 'इंगलिश' में 'मैटेरियल' कहा जा सकता है। इसका अन्तिम सूक्ष्म अंश परमाणु कहलाता है।

परमाणुओं का समूह ही स्कन्ध है स्कन्ध अर्थात् पदार्थ पिण्ड भौतिक रचना का आधार वह अजीब पुद्गल द्रव्य ही है। इसमें भी लगातार परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। किन्तु इसका मूर्तत्व आजीवत्व वर्णत्व, गंधत्व आदि इसके मौलिक गुण भी नष्ट नहीं होते।

विश्व में उपर्युक्त मात्र षडद्रव्य ही हैं इनमें भी मुख्यतया जीव और पुद्गल ही हमें प्रतीत होते हैं शेष चार द्रव्य तो प्रतीत ही नहीं होते।

कर्मवाद - सम्यक् दर्शन जिसका कि जिन शासन में सर्वाधिक महत्व है वह इन षडद्रव्यों को यथोचित समझने और स्वीकारने पर ही बन पाता है।

विश्वगत तमाम उपलब्धियों में सर्वाधिक कठिन उपलब्धि सम्यक् समझ है। धर्म अधर्म, आकाश, काल जो कि अमूर्त और अप्रभावक है। उनको छोड़ भी दे तो भी आत्मा और पुद्गल के विषय में हमारे यहाँ व्यापक भ्रांतियाँ हैं। कोई इन्हें परमात्मा की देन मानते हैं तो इन्हें मरमात्मा के हाथ के खिलौने, किन्तु वास्तव में ये इस विश्व में स्वतन्त्र द्रव्य हैं जो नितान्त अनादि हैं। सब की अपनी सत्ता है।

एक प्रश्न है कि यदि ये स्वतन्त्र द्रव्य हैं तो आत्मा को विभिन्न सुख दुःखों का अनुभव कैसे होता है? इस प्रश्न का समाधान यह है कि आत्मा अपने विकृत परिणामों से कर्म संग्रह करता है, उनका उदय है। आत्मा में सुख दुःखों का सर्जन करता है। यद्यपि कर्म पुद्गल स्वयं अजीब हैं किन्तु चेतना का संपर्क होने पर उसमें प्रभावकता आ जाती है। सुख दुःख के लिए किसी परमात्मा के कर्तव्य को स्वीकारने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण स्वरूप समझिए कि कोई व्यक्ति भांग पीता है और वह पागल सा बन जाता है तो भांग अजीब ही है किन्तु चेतना को प्रभावित कर उसे पगला देती है। कर्म अजीब है किन्तु आत्मा में सुख दुःख पैदा करने में स्वयं सक्षम है इसके लिए किसी परमात्म व्यवस्था की आवश्यकता नहीं।

निर्देशन - सम्यक् दर्शन अर्थात् यथार्थ धारणायें, देव, गुरु, धर्म, जीव, जगत के प्रति यथार्थ निश्चय की स्थिति ही सम्यक् दर्शन है। अतः जीवन के वास्तविक साफल्य के लिए आत्मा षडद्रव्य कर्म, लोक, देह, जीव सम्बन्ध आदि विषयों में स्पष्ट और असंदिग्ध निश्चय हो जाना चाहिये। प्रस्तुत निबन्ध में इतने सारे विषयों का वर्णन संभव नहीं। अतः पाठकों, जिज्ञासुओं को सत्पुरुषों, ज्ञानियों का संपर्क कर तथा स्वाध्याय द्वारा अपने अज्ञान अन्धेरे को नष्ट कर सत्य स्वरूप विस्तार के साथ समझना चाहिये।

* * * * *

समतायोग का अन्तःदर्शन

• श्रमणसंघीय सलाहकार श्री रतनमुनि

समतायोग क्या है? - समतायोग क्या है? चिन्तन कर लें। योग आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाली शक्ति है। आत्मा के परमात्मा से मिलने के मार्ग में आने वाले आरोह अवरोह, उतार चढ़ाव, विघ्न बाधाओं को समता के माध्यम से पार करना है, इसे हम समतायोग कहते हैं। इस प्रकार समतायोग का अर्थ हुआ समता के माध्यम से आत्मा को परमात्मा से या अपने चरम लक्ष्य से जोड़ने वाला, मिलाने वाला योग। समतायोग आत्मा को इस चैतन्य यात्रा में अंतिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचाने वाला एक यथदर्शक गाइड या भूमिका है जो चैतन्य यात्रा के पथ का चप्पा चप्पा जानता है। भगवद्गीता में 'समत्व योग उच्चते' समता बुद्धि को योग कहा है।

समतायोग का महत्व एवं उपयोगिता - सारा विश्व विषमताओं से घिरा हुआ है। कहीं भी समसूत्र पर स्थित नहीं है। सभी व्यक्तियों के समक्ष प्रत्येक समय प्रत्येक परिस्थिति अनुकूल होती है, वही दूसरे समय में उसके लिए प्रतिकूल हो जाती है। क्या आपने कभी सोचा है कि यह संसार विषम और विकृत क्यों बनता है? उसे विषम बनाने में किसका हाथ है? इसे हम सम बना सकते हैं? संसार अपने आप कोई विषम नहीं है। इसे विषम या विकृत बनाने वाली मनुष्य की दृष्टि है। यदि विषम परिस्थितियों में पले हुए व्यक्तियों के पास में समतायोगी के लिए तो संसार समसूत्र पर स्थित हो जाता है। वास्तव में संसार में विषमता राग और द्वेष के कारण होती है। यदि सर्वत्र सभी परिस्थितियों एवं संयोगों में राग द्वेष से दूर रहा जाए तो व्यक्ति के लिए संसार में सम होते देर नहीं लगती। संसार के दो रूप हैं। एक ओर रागरूपी महासमुद्र है तो दूसरी ओर द्वेषरूपी दावानल है। इन दोनों छोर के बीच में जो जो मार्ग हैं। जिससे रागद्वेष दोनों का लगाव नहीं है वह साम्य है, वह समतायोग कहलाता है।

समतायोग राग और द्वेष दोनों से बचाकर आत्मा को समसूत्र पर रखता है। वह मानव जीवन के सभी अटपटे एवं विषम प्रसंगों या प्रश्नों पर समभाव का मंत्र देकर राग-द्वेष से आत्मा की रक्षा करता है। जहाँ भी जीवन में अमोनोऽ, अनिष्ट एवं घृणित पदार्थों या व्यक्तियों का संयोग होगा, वहाँ समतायोग से अभ्यस्त, अनभिज्ञ व्यक्ति, सहसाद्वेष, घृणा, अरुचि या रोष करेगा तथा मनोऽ, इष्ट, स्पृश्य आदि पदार्थों के अनुकूल अभीष्ट परिस्थितियों या व्यक्तियों आदि के प्रति वह मन में राग/मोह/आसक्ति या लालसा आदि करेगा तो प्रतिकूल पदार्थों, संयोगों, परिस्थितियों या व्यक्तियों के संयोग में तथा अभीष्ट, अनुकूल पदार्थों के वियोग में तिलमिला उठेगा, दुःखित एवं व्यथित हो उठेगा। अभीष्ट कार्य में या प्रचुर साधनों के न मिलने पर उसका मन ईर्ष्या, खिन्नता, उदासी एवं निराशा से भर जायेगा।

समतायोग के सभाव में व्यक्ति के पास प्रचुर धनसाधन, बलबुद्धि, विद्या वैभव आदि होते हुए भी दूसरे के प्रति ईर्ष्या, द्वेष तथा ममता और आसक्ति, अहंकार और मद के अभाव के कारण दुःखित पीड़ित नहीं होता है, जबकि दूसरा प्रचुर मात्रा में वस्तु के होने पर भी दुःखी असंतुष्ट दिखाई देता है। यह सब

दुःख और पीड़ा समतायोग के अभाव में होता है। आज अधिकांश लोगों की शिकायत है -संघर्ष, अभाव, असंतोष, दुःख, परेशानी, अशांति, चिंता, रोग क्लेश आदि क्यों है और इसका हल क्या है? यह सब भावना की विषमता से है और इस सबका एकमात्र हल है -समतायोग को अपनाना।

आत्मा और शरीर का स्व और पर का भेद विज्ञान समतायोग से होता है किन्तु जिसके जीवन में यह भेद विज्ञान नहीं होता, वह बात बात में शरीर और शरीर से सम्बन्धित जड़ और चेतन पदार्थों एवं अन्य प्राणियों के प्रति मोह, ममत्व, मूर्च्छा, आसक्ति और मद के कारण चिन्तित, दुःखित और बेचैन होता रहता है। इन सबका निष्कर्ष यह है कि समतायोग के बिना इहलौकिक या पारलौकिक कोई भी समस्या हल नहीं की जा सकती। इसलिए मानव जीवन में खासकर साधक जीवन में समतायोग की पद पर अनिवार्य आवश्यकता है।

समतायोग का उद्देश्य - समतायोग का उद्देश्य साधक को समभाव से ओतप्रोत कर देना है। उसके मन, वचन, काया के व्यवहार व अध्यात्म में समतारस भलीभांति आ जाये तो उसे सांसारिक एवं पौद्गलिक वस्तुओं या बातों में रस नहीं रहेगा, उसके आंतरिक जीवन में क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अज्ञान, दुराग्रह, मिथ्यात्व, अंधश्रद्धा आदि के त्याग की मात्रा बढ़ती जाएगी। भोगों के प्रति विरक्ति हो, आत्मभावों में स्थिरता बढ़े। यही समतायोग का प्रयोजन है, उद्देश्य है।

समतायोग और भेदविज्ञान - समतायोग का मूल उद्देश्य यह है कि शरीर और शरीर से सम्बन्धित वस्तुओं को लेकर जो मोहमाया, आसक्ति और मूर्च्छा उत्पन्न होती है एवं उसी को लेकर पाप दोषों की वृद्धि होती है उससे बचना। परिवार धनसम्पत्ति, राज्यसत्ता, जमीन जायदाद आदि भौतिक वस्तुओं को लेकर, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, आदि विकार बढ़ते रहते हैं। फिर उन्हीं के कारण कर्म बंध होते हैं। कर्मबंध से छुटकारा पाने के लिए साधना है समतायोग। समतायोग आत्मा को सशक्त बनाने का प्रयोग है। शरीर और आत्मा के भेदविज्ञान से समतायोग सही सधेगा। भेद विज्ञान के अभाव में व्यक्ति बहिरात्मा बनकर शरीर को ही सर्वस्व समझकर उसी की सार में लगा रहता है। शरीर को वह सशक्त बनाना चाहता है, इसके लिए पौष्टिक दवाइयाँ एवं पदार्थ भी सेवन करता है। व्यायाम भी करता है, पुत आत्मिक शक्ति न बढ़ पाने के कारण शारीरिक शक्ति भी नहीं बढ़ पाती। शरीर लक्ष्मी होने से आत्मशक्ति नहीं बढ़ती। आत्मशक्ति के अभाव में वह समत्व की साधना में टिका नहीं रह सकता। जब भी विपरीत परिस्थितियों का झंझावत आयेगा वह समत्व से डिग डायेगा। क्योंकि उसको शरीर से जो मोह है। शरीर का बचपन से लेकर बुढ़ापे तक शरीर देखने का अभ्यास साधक धर्मपालक एवं समत्व साधना के लिए स्वीकृत पथ से डगमगा जायेगा। उसके पैर विपदाओं के घोर बादल देखकर लड़खड़ा जाएंगे। अतः आत्मशक्ति प्राप्त करने के लिए भेदज्ञान आवश्यक है। उसी से साधन प्राप्त होंगे और साधनों से समतायोग में सफलता मिलेगी। आत्मशक्ति प्राप्त होती है या बढ़ायी जा सकती है। आत्मा को सर्वस्व मानकर उसकी अजर, अमरता एवं अविनाशिता पर दृढ़ विश्वास से उसका भेद विज्ञान मूलक सूत्र यही होगा।

“देह मरे मरे, मैं नहीं मरता, अजर अमर पद मेरा।”

इस प्रकार आत्मा को अजर,अमर, अविनाशी मानने वाला साधक ही आत्मशक्ति पाकर अन्त तक विपत्तियों, संकटों एवं आफतों का समभावपूर्वक सामना कर सकता है और उनसे जूझता हुआ समत्वयोग पर अन्त तक टिका रह सकता है।

इस सब कारणों से भेदविज्ञान और समतायोग का अविनाभावी संबंध है। भेदविज्ञान होगा वहाँ समतयोग अवश्य सिद्ध हो सकेगा और समतायोग होगा वहाँ भेदविज्ञान होना अवश्यम्भावी है।

भेदविज्ञान का संक्षिप्त अर्थ है “यह शरीर मैं हूँ, यह जो जन्म जन्मान्तरों का संसार है, संकल्प है, उसे तोड़ना। यह शरीर भिन्न है, इस प्रकार की भिन्नता का अनुभव होना ही भेदविज्ञान है।

समभाव अध्यात्म दर्शन का सार है। जीवन में जितनी चिन्ता है, विषयभाव है, उसकी उपशान्ति का सर्वोत्तम भाव है समभाव। यही समत्वयोग का अन्तःदर्शन है।

* * * * *

चिंतन कण

- सत्य एक विशाल वट वृक्ष है उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें अनेकों फल नजर आने लगते हैं।
- सत्य एक छोटी सी चिनगारी है जो असत्य के पहाड़ को भस्मीभूत करने में सक्षम है।
- असीम अंधकार को दीपक की छोटी सी लौ समाप्त कर देती है। उसी प्रकार झूठ के अम्बार को सत्य की एक चिनगारी धराशयी कर देती है।
- असत्य के काफूर होते ही सत्य की ज्योति प्रकट हो जाती है।
- अम्बर के चमकीले तारों की अपेक्षा धरती के महकते पुष्प को अधिक स्नेह दो।
- सोना आग में तपकर निखरता है। सत्यनिष्ठ मानव में जितना सत्यता का समावेश होता है उतना ही सत्य का भाव उसे आत्मसात होने लगता है।
- सत्य न खरीदने की चीज है: न बेचने की, सत्य तो आवरण में लाने की चीज है।
- सत्य का फल अन्त में मीठा होता है।

• परमविदुषी महासती श्री चम्पाकुंवरजी म. सा

जिन और जिनशासन-माहात्म्य

• उप प्रवर्तक श्री सुकनमल (श्रमण संघ सलाहकार)

जिन शासन माहात्म्यं प्रकाश स्यात् प्रभावना।

जिन शासन की महिमा के प्रकाशन करने को प्रभावना कहते हैं। उक्त सन्दर्भ में प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन कौन और जिन शासन किसे कहते हैं और उनकी क्या महिमा है? शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार इनका अर्थ किया जाय तो जयतीति जिनः तस्य शासनम् जिनशासन जो जीतता है वह जिन और उसका शासन जिन शासन है। उसकी विशेषताओं के कथन करने को महिमा कहते हैं। लेकिन इस सामान्य अर्थ को ग्रहण करके प्रचार-प्रसार की ओर अग्रसर हो जायें तो ऐसे सभी सामान्य व्यक्ति जिन कहलाते के पात्र माने जायेंगे जिन्होंने अपने से निर्बल व्यक्ति को पराजित किया हो और उसकी झूठी सच्ची विरुदावली गाने लगें। लेकिन आप ही नहीं साधारण से साधारण व्यक्ति भी न ऐसा मानेगा और न कुछ करने के लिए तैयार होगा। अतएव यह उचित होगा कि हम व्यंजना और लक्षणा विधि का अनुसरण कर यथार्थ जिन और उसके शासन को स्पर्श करें।

जिन का स्वरूप - “जयति राग द्वेषादि शत्रुन् इति जिनः”

जो राग-द्वेष आदि आत्मा के शत्रुओं को जीतता है उसे जिन कहते हैं। राग-द्वेष आदि आत्मा के शत्रु क्यों कहलाते हैं जबकि उनका भी अवस्थान स्वयं आत्मा है? इसका उत्तर यह है कि वे आत्मा के मूल स्वभाव नहीं हैं। मूल स्वभाव तो आत्मा का अनन्त ज्ञान दर्शन सुख आदि रूप है। वे सब उसके असाधारण धर्म हैं। संक्षेप में इसी बात को इस रूप में कहा गया है -जीवो उवयोग लक्खणं- जीवन का लक्षण उपयोग है। उपयोग वह चैत्यन्यानु विधायी परिणाम है जो ज्ञान दर्शन आदि अनन्त गुणों का समुदाय है।

यद्यपि राग-द्वेष आदि आत्मा से सम्बद्ध है तथापि वे आगन्तुक हैं पर हैं। इसीलिए उनको वैभाविक भाव कहा जाता है और वैभाविकता के कारण उनको आत्मा का शत्रु कहा गया है।

राग-द्वेष आदि को आत्मा का शत्रु मानने का एक कारण यह भी है कि ये जीवन के लिए जन्म मरण रूप संसार के हेतु हैं जिससे आत्मा अपने निज स्वरूप और त्रिलोक व त्रिकालवर्ती जीव आदि पदार्थों को देख, जान नहीं पाती है, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी नहीं कहला सकती, निराबाध सुख का अनुभव नहीं कर सकती है। गीता में भी उक्त आशय को अपने शब्दों में इस प्रकार कहा है जिससे शब्द भिन्नता होते हुए भी अन्तर्निहित भाव प्रायः समान है -

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा सङ्गसमुद्भवम्।
तन्निवृत्त्याति कौन्तेय कर्म सङ्गेन देहिनाम्॥१४॥७॥

तमस्त्वज्ञानजं बिद्धि मोहनं सर्वं देहिनाम्।

प्रमादालस्य निद्राभिस्तन्निवधाति भारत॥१४॥८॥

रजो गुण रागात्मक है और उसकी तृष्णा के कारण उत्पत्ति होती है वह जीवों को कर्म बन्ध कराता है। तमो गुण अज्ञान जन्य है, सब जीवों को मोहित (स्वरूप ज्ञान के विचलित) करने वाला है, आलस्य-निद्रा-प्रमाद आदि इसके प्रत्यक्ष बाह्य चिह्न हैं और कर्म बन्ध का कारण है। इसलिए जो आत्मा इन राग-द्वेष-मोह आदि कर्म बन्ध के कारण रूप सुभटों को जिनसे चातुर्गतिक रूप संसार में गति से गत्यन्तर में भटकना पड़ता है - जीतकर काल चक्र अर्थात् संसार भ्रमण से सर्वथा मुक्त हो गया है, वर्तमान भव के बाद दूसरा भव धारण नहीं करता है उसको जिन कहते हैं आत्माएं अनन्त हैं और प्रत्येक आत्मा जिन हो सकती है अतएव जिन अनन्त हैं।

जिन के विविध नाम - इन जिन आत्माओं के अनन्त असाधारण गुणों का आस्पद-निधान होने से अनन्त नामों से सम्बोधित किया जा सकता है। उनमें से विभिन्न विशेषताओं का समन्वय करके शास्त्रों में एक हजार आठ नामों का उल्लेख किया गया है। परन्तु उन नामों की यहाँ विशद व्याख्या किया जाना सम्भव नहीं होने से सर्वजनगम्य कुछ एक नामों का उल्लेख करते हैं। जैसे - स्वयंभू, ईश्वर, शिव, अरिहन्त, महादेव, परमेश्वर, त्रिलोचन शंकर, रुद्र विष्णु पुरुषोत्तम, ब्रह्मा बुद्ध सुगत आदि। ये सभी उनमें पाये जाने वाले गुणों के कारण सार्थक नाम हैं और जिनात्मा के गुणों का बोध कराते हैं। इन नामों से किसी व्यक्ति विशेष का नहीं किन्तु उन महान आत्माओं का बोध होता है जो कर्म शत्रुओं के विजेता बनकर शुद्ध आत्म स्वरूप में लीन हैं। इनको किसी व्यक्ति विशेष का नाम मानना योग्य नहीं।

विविध नामों की सार्थकता - ऊपर जिनात्माओं के जो कुछ सम्बोधन परक नामों का उल्लेख किया है यहाँ संक्षेप में उनमें गर्भित आशय को स्पष्ट करते हैं -

- स्वयंभू - जिनको स्वयं समस्त विश्व को युग पद देखने जानने वाला अविनश्वर केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुआ है। उनको स्वयंभू कहते हैं।
- ईश्वर - जिन्होंने केवल ज्ञान रूप परम ऐश्वर्य एवं परम आनंद रूप सुख के स्थान अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया है उन कृत-कृत्य आत्माओं को ईश्वर कहते हैं।
- शिव - जिन्होंने आकुलता रहित परम शान्त और परम कल्याण रूप अक्षय शिव पद को प्राप्त कर लिया है वे शिव हैं।
- अरिहन्त - जो शारीरिक विकारों से रहित हैं और आत्म स्वरूप दर्शन के घातक चार घातिक कर्म- ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय व अन्तराय का क्षय कर चुके हैं, अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य से परिपूर्ण हैं और परम वीतरागता को प्राप्त हैं वे अरिहन्त हैं।
- महादेव - जिन महापुरुषों ने महा मोह आदि दोषों का सर्वथा उन्मूलन कर दिया है और जो संसार रूप महा सागर को पार कर चुके हैं वे देवाधिदेव महादेव कहलाते हैं।
- परमेश्वर - जो अपने परम विकास के कारण पूजातिशय, ज्ञानातिशय आदि अतिशयों से सम्पन्न होने से ऐश्वर्य की परम कोटि में स्थित हैं, वे परमेश्वर कहलाते हैं।
- त्रिलोचन - ज्ञानावरण कर्म का निःशेष रूप से क्षय हो जाने से जिनके ज्ञान रूप अलौकिक तीसरे नेत्र में समग्र त्रिलोक प्रतिबिम्बित होता है उन्हें त्रिलोचन कहते हैं।

- शंकर - जिन्होंने घोर संसार सागर में निमग्न प्राणियों के उद्धार के लिए सुख शान्ति प्राप्ति के उपायों का उपदेश दिया उन्हें शंकर कहते हैं।
- रुद्र - जिन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि द्वारा रौद्र (क्रूर) कर्म जाल को भस्म कर दिया है, उन्हें रुद्र कहते हैं।
- विष्णु - जिन्होंने द्रव्य पर्याय रूप त्रिलोक को अपने ज्ञान के प्रकाश से व्याप्त कर दिया है उन्हें विष्णु कहते हैं।
- पुरुषोत्तम - जिन्होंने अपने पौरुष का सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त कर लिया है और दूसरों को भी वैसा पुरुषार्थ करने का उपाय बताते हैं उन्हें पुरुषोत्तम कहते हैं।
- ब्रह्मा - जो सम्पूर्ण परिग्रहों से रहित हैं जिनकी देशना सर्व भाषाओं में परिणत हो जाती है, समोवसरण में जिनके चार मुख दिखाई देते हैं और काम विकारों से रहित हैं। उन्हें ब्रह्मा कहते हैं।
- बुद्ध - मतिश्रुत और अवधि इन तीन ज्ञान सहित उत्पन्न हुए और मोक्ष मार्ग में स्वयं प्रबुद्ध हैं अर्थात् जिन्हें मोक्ष मार्ग पर किसी दूसरे ने नहीं चलाया है किन्तु स्वयं चले हैं उन्हें बुद्ध कहते हैं।
- सुगत - जिन्होंने सर्व प्रकार के द्वन्द्वों से रहित आत्म स्वभाव से उत्पन्न हुए परम निर्वाण रूप स्थान को प्राप्त कर लिया है उन्हें सुगत कहते हैं।

इसी प्रकार उन सर्वज्ञ सर्व दर्शी जिन भगवान के अन्य सार्थक नाम जानना चाहिए जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। अतः उप संहार के रूप में उनका कुछ संकेत करने के लिए श्री मानतुंगाचार्य के दो छन्दों को यहाँ उद्धृत करते हैं -

त्वामव्ययं विभुमर्चित्यमसंख्यमाध,
ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति संतः॥

बुद्धस्त्वमेव विवुधार्चित! बुद्धि बोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय-शंकरत्वात्।
धाताऽसि धीर! शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥

मुमुक्षुओं के लिए नमस्करणीय - ये जिनत्व को प्राप्त अनन्त आत्म गुणों के अभिव्यंजक स्व-परावभासी ज्ञान प्रकाश से ज्योतिर्मान चिदानन्द लीन जिन अपनी वीतरागिता के कारण किसी का इष्टानिष्ट नहीं करते हैं। परन्तु प्रत्येक मुमुक्षु के अन्तर में एक नांद गूँजता रहता है कि मैं भी अपने आत्म विकास के परम लक्ष्य को प्राप्त करूँ। इसके लिए वह साधना में संलग्न हो जाता है। कभी वह अपने अन्तर को परखता है प्रवृत्तियों का लेखा जोखा करता है और आत्म आलोचना करते-करते उल्लास के क्षणों में डूब जाता है तो भक्ति वश मुख से बोल निकल पड़ते हैं -

नमुत्थुणं! अरिहंताणं भगवंताणं-सयं संबुद्धाणं

पुरिसुत्तमाणं अप्पडिहय-वर-नाण-दंसणधराणं विअट्ठउमाणं

जिणाणं बुद्धाणं सव्वत्रूणं सव्वदरिणीणं सिवमयल -
मरुअ-मणंत-मक्खय मव्वाबाह मपुणराविति सिद्धिगइनाम
धेयं ठाणं संपत्ताणं (तथा) सिद्धिगइनामधेयं ठाणं

संपाविउकामाणं नमो जिणाणं जियभयाणं।

(नमोत्युणं का समग्र पाठ पाठक गण स्वयं समझ लें विस्तार भय से आवश्यक संक्षिप्त पाठ का ही यहां उल्लेख किया है)।

जिनत्व की प्राप्ति कब? - जन्म-मरण रूप संसार में संसरण करने वाले सभी जीव जिनत्व को प्राप्त करने के अभिलाषी हैं। लेकिन यह सभी जानते हैं कि सुदृढ़ नींव भव्य भवन-निर्माण की आधार शिला है। अतएव सर्व प्रथम जिनत्व प्राप्ति की सामान्य भूमिका का दिग्दर्शन करते हैं। इसके लिए श्री मद भगवद् गीता के निम्नांकित श्लोक विशेष उपयोगी हैं -

सम दुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्य प्रिया प्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः॥
निर्मान मोहा जितसङ्ग दोषा,
अध्यात्म नित्या विनिवृत्त कामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख दुःख संज्ञैः,
गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।

गीता १४।२४ तथा १५।५

अर्थात् जो दुःख और सुख में समभाव रखता है, हर्ष विषाद का लेश मात्र भी स्पर्श नहीं करता, कंचन कंकड को एक रूप समझता है, निन्दा स्तुति में सम रहता है और स्व स्वरूप में स्थिर रहता है तथा जिसने मान मोह को जीत लिया है संगदोष (लोभ) पर विजय प्राप्त कर ली है। जो आत्मा में रमण करता है। जिसकी काम भावना प्रक्षीण हो गई है। जो संकल्प विकल्पों से विलग है ऐसा अमूढ़ (सजग व्यक्ति) अव्यय (जिन) पद प्राप्त करने का अधिकारी है।

ऐसा अधिकारी व्यक्ति परम शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का उपाय करता है तभी जिनत्व की प्राप्ति सम्भव है। सभी आत्म वादी दार्शनिकों ने, सभी जिनत्व प्राप्ति के अभिलाषियों ने जिनत्व प्राप्ति के मार्ग पर स्थितों ने यह माना है कि सम्यग् दर्शन-ज्ञान चारित्र्य कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के साधन हैं। इन्हीं को किसी ने ज्ञान और क्रिया के रूप में कहा है। किसी ने भक्ति को, किसी ने तप को, इनके साथ जोड़कर अपनी-अपनी दृष्टि से साधनों की संख्या बतायी है। जो शाब्दिक व कथन शैली की भिन्नता है। लेकिन इतना स्पष्ट है कि सम्यग दर्शन आदि तीनों की पूर्ण स्थिति बनने पर कर्म क्षय होता है और तब जिनत्व की प्राप्ति होती है।

कर्म शत्रु क्यों है? - कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वालों को जिन कहते हैं तो प्रश्न उठता है कि वे शत्रु क्यों हैं और उनका कार्य क्या है? इसका उत्तर यह है कि प्रतिपक्षी किसी का विकास नहीं होने व करने देता है। यही स्थिति कर्म की है। वह आत्मा के मूल स्वभाव को प्रकट करने

में बाधक है। आत्म शक्तियाँ अनन्त हैं। अतएव कर्म शत्रुओं की संख्या भी अनन्त है। परन्तु उन सबका आत्मा के आसाधारण गुणों को जिनसे सामान्य व्यक्ति को भी आत्मा के गुण स्वभाव का बोध हो सकता है, ध्यान में रखकर इन आठ नामों में उनका समावेश किया है - ज्ञानावरण दर्शनावरण, वेदनीय मोहनीय आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इमें ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय साक्षात् आत्म गुणों के विघातक होने से घाति और वेदनीय आदि शेष चार कर्म पूर्ण रूप में आत्म गुणों की अभिव्यक्ति न होने देने में सहकारी कारण होने से आघातिक कहलाते हैं इनमें भी मोहनीय कर्म सबसे बलवान है सब कर्मों का राजा है। क्योंकि वह आत्मा को शान्त प्रशान्त स्थिति में स्थिर नहीं होने देता है जिससे वह स्वोन्मुखी प्रवृत्ति नहीं कर पाती है। इसका उन्मूलन हो जाने पर शेष कर्म निर्बल निशक्त होकर नष्ट हो जाते हैं। जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है - सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय होता है। उसके बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्त ज्ञान-दर्शन-वीर्य के विघातक ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय यह तीन कर्म नष्ट होते हैं। इससे अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य की परमावस्था को प्राप्य आत्मा को सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन अरिहन्त पद की प्राप्ति हो जाती है। जिसको संक्षेप में संयोगि जिन नाम से भी कहा जाने लगता है।

तदनन्तर शेष आयु आदि चार कर्मों का सद्भाव रहने तक वे संयोगी जिन धर्म देसना द्वारा अपनी अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराते रहते हैं और इनका भी क्षय होने पर पूर्ण जिनत्व को प्राप्त कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो लोकत्रय में स्थित हो अनन्त काल तक स्वात्म गुणों में रमण करते रहते हैं। जन्म-जरा-मरण रूप संसार में पुनरागमन नहीं होता है। सम्पूर्ण जिनत्व को प्राप्त ये आत्माएं हम सबके लिए वन्दनीय हैं।

जिन के भेद - निश्चयनय की दृष्टि से जिनके भेद नहीं हैं। क्योंकि आत्म गुण घातक कर्मों के क्षय हो जाने से जिन आत्माओं ने स्वाभाविक चेतना प्राप्त कर ली है, आत्म स्वरूप में रमण करती हैं, वे जिन हैं। लेकिन जब सरलता से समझने के लिए व्यवहार नय की दृष्टि का सहारा लेते हैं तब विभिन्न प्रकार से भेदों की कल्पना कर ली जाती है जैसे - सकल जिन देश जिन। जो आत्मा गुण घातक कर्मों का क्षय कर चुके हैं वे सकल जिन हैं अरिहन्त और सिद्ध ये सकल जिन हैं आचार्य उपाध्याय व साधु कषाय इन्द्रिय विषय और मोह को जीतने के मार्ग पर अनुगमन करने वाले होने से देश जिन कहलाते हैं।

अथवा योग सहित केवल ज्ञानी संयोगी जिन और योग रहित केवल ज्ञानी अयोगी जिन कहलाते हैं। संयोगी जिन संयोग केवली नामक तेरहवें गुण स्थान और अयोगी जिन आयोग केवली नामक चौदहवें गुण स्थान- वर्ती हैं। कहीं कहीं सकल परमात्मा और निकल परमात्मा नाम भी जिनों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अथवा जिन के तीन भेद हैं -

१. अवधि ज्ञानी जिन २. मनः पर्याय ज्ञानी जिन और ३. केवल ज्ञानी जिन। केवल ज्ञानी जिन तो राग द्वेष आदि संसार के कारणों का पूर्ण रूप से क्षय कर चुके हैं, वे साक्षात् जिन हैं। अवधि ज्ञानी और मनः पर्याय ज्ञानी प्रत्यक्ष आत्म जन्म ज्ञान वाले होते हैं। इसलिए वे जिन सरीखे होने से उपचारतः जिन कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य प्रकार से जिनके भेदों की कल्पना की जा सकती है। शास्त्रों में भेद करने के कारणों का उल्लेख करने के साथ उनके अपने प्रकार से भेद किये हैं किन्तु विस्तार के भय से उन सबका यहाँ उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

जिन भगवान के अतिशय - जिन भगवान अनन्त गुणों के धारक होने से उनके अतिशयों की संख्या भी उतनी होगी जिससे व्यक्ति आश्चर्य चकित हो अथवा असंभव संभव रूप बने उसे अतिशय कहते हैं। सिद्ध जिनों में अतिशय की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। वे तो निराकार रूप से सत् चित

आनन्द घन के रूप में अनंत काल तक रहेंगे। परन्तु जो अरिहंत सयोगी केवली जिन हैं, उनके चौतीस अतिशयों की संख्या मानी जाती है। जिनके मूल में तीन भेद हैं। १. सहज अतिशय २. कर्म क्षय जन्म अतिशय ३. देवकृत अतिशय

जिन भगवान की देशना - जिन भगवान वीतरागता के कारण किसी का भला बुरा करने की भावना से रहित है। वे कृत-कृत्य हैं। परन्तु सयोग अवस्था में रहते अपनी जिन अनुभूतियों को वाणी द्वारा व्यक्त करते हैं, शास्त्रों में उसके लिए देशना शब्द का प्रयोग किया गया है। जो प्राणी मात्र के लिए हितकारी सारगर्भित और अर्थ गांभीर्य से सम्पन्न होती है। औपपातिक सूत्र में उस देशना का संकलन किया गया है। जिसके कुछ एक मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं - जीवादि नव तत्त्वों का उपदेश, जीव का स्वरूप, उपयोग के भेद प्रभेद, जीव के मात्र लोक स्वरूप कर्म बंध के कारणों का निरूपण, इन्द्रिय जय के उपाय, आत्मानुशासन की उपाय धर्म का स्वरूप और उसके फल का वर्णन मिथ्यात्व व सम्यक्त्व का स्वरूप और उनके भेद का फल आदि श्रावक धर्म श्रमण धर्म मोक्ष मार्ग का वर्णन आदि। विशेष जानकारी के लिए आगमों को देखिये।

जिन शासन - जिन की यही देशना जिन शासन कहलाती है। ऊपर जिस देशना का संकेत किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें शासक और शासित का भेद नहीं है किन्तु शासन व्यवस्था की नीति आत्मानुशासन है। स्वयं का शासन स्वयं करो। उस शासन में दंड व्यवस्था दूसरे के द्वारा लादी नहीं जाती है। स्वयं प्रायनिश्चित करना ही उसका आधार है। इसका क्षेत्र नदी, पहाड़ों या समुद्रों से घिरा हुआ नहीं है अपितु अनन्त आत्माओं में व्यापक है उसकी छत्र छाया में विश्राम करने वाले हजारों, लाखों, करोड़ों नहीं अनन्त जीव हैं। सबको जीने का अधिकार है। वर्ग जाति सम्प्रदाय या समाज आदि किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है। और समता के धरातल पर सब को अपना विकास करने का अधिकार है। संसार सागर में निमग्न अथवा भवाटवी में भटकने वाले प्राणियों को अपना उद्धार करने का प्रेरणा देने वाला है। सुख रूप उस स्थान को प्राप्त कराने वाला है। अभ्युदय (लौकिक उन्नति और निःश्रेयस) (लोकोत्तर अतीन्द्रिय सुख) का साधन है।

जिन शासन का दूसरा नाम जिन तीर्थ भी है। सम्यग्ज्ञान, दर्शन चरित्र के समूह को तीर्थ कहते हैं। यह तीर्थ संसार समुद्र से जीवों को तिराने वाला है। तैरने वालों की योग्यता स्थिति को ध्यान में रखकर उसके चार प्रकार माने गये हैं १. साधु, २. साध्वी, ३. श्रावक, ४. श्राविका।

अहिंसा आदि पंच महाव्रत धारी सर्व विरक्त पुरुष को साधु और स्त्री को साध्वी कहते हैं। इसी प्रकार देश विरक्त पुरुष श्रावक और स्त्री श्राविका कहलाती है।

जिनशासन की विशालता - उपर्युक्त संकोतो से जिनशासन की विशालता उदारता पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। फिर भी कुछ और स्पष्टता के लिए जिनशासन की विशालता का संकेत करते हैं।

जिनके द्वारा बताये गये मार्ग को अंगीकार करने वाला कोई भी व्यक्ति जिनानुयायी बन सकता है। जिन शासन का नागरिक बन सकता है। इसमें देश, काल, जाति आदि बाधक नहीं बन सकते हैं। सिर्फ एक शर्त है कि भिन्न वेश की भिन्न क्रिया भिन्न परम्परा के होते हुए भी उनको चित्तोपशमन की साधना में रत रहना चाहिए।

अपि भिन्न क्रिया भिन्न वेषा भिन्न परम्परा।

चित्तोपशम संलग्नाः संति जैनैर्द्र शासने॥

आत्मा की सर्वश्रेष्ठ अवस्था सिद्धावस्था है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि सिद्धावस्था जीव मात्र के पुरुषार्थ की चरम निष्पत्ति है। इसको प्राप्त करने में अन्य लिंग धारण करने से कोई बाधा नहीं पड़ती है। वशतः व्यक्ति जितेन्द्रिय हो, शान्त दान्त हो उसने कषायों को जीत लिया हो विस्तार से उसी को स्पष्ट समझने के लिए यशोविजयजी और अध्यात्मसार की वाणी सुनिये -

जितेन्द्रिया जित क्रोधा दान्तात्मा महावशाः।

परमात्म गतिं यान्ति विभिन्नै रपिवर्त्य भिः॥

अन्य लिंगादि सिद्धानामाधार स मतैव हि।

रत्नत्रय फल प्राप्तिर्यथा स्याद भाव जैनसा॥

इतना ही नहीं जिन शासन में किसी वेष को धारण करने से अथवा किसी विशेष वाद में निपुणता प्राप्त कर लेने से मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं मानी है किन्तु एक मात्र कषाय मुक्ति को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है -

नासाम्बरत्वे, न दिगम्बरत्वे न तत्त्वे न चतर्क का दे।

न पक्ष सेवा श्रयजेन मुक्तिः कषाय मुक्ति किल मुक्ति देव।

जिनशासन में इसको पूज्य माना जाये और उसको पूज्य न माना जाये, यह संकीर्णता भी नहीं है और न अमूक को पूज्य माने जाने का दुराग्रह है, किन्तु यह कहा गया है कि दोष-कलुष से मुक्त महानुभाव चाहे जिस मत के अनुयायी हों और जिस किसी भी नाम से जाने जाते हैं, वे वन्दनीय हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हरिभद्र सूरि ने इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए यहाँ तक कह दिया है - मुझे न तो महावीर के प्रति कोई पक्ष पात है, राग है और न कपिल आदि महर्षियों के प्रति द्वेष है। मैं तो गुण पूजक हूँ। अतएव जिस किसी के वचन युक्ति संगत हैं, वे ही आदरणीय हैं वन्दनीय हैं -

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिला दिषु।

युक्ति मद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

कलि काल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं अन्य आचार्यों ने हरिभद्र सूरि के विचारों की और अधिक व्याख्या करते हुए कहा है -

भव बीजांकुर जनना रागाद्या क्षय मुपागता यस्य।

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा ह्यो जिनो वा नमस्त स्मै॥

तं वदे साधु वंद्य सकलागुण निधिं ध्वस्त दोषं द्विषंतं।

बुद्धं वा वर्धमानं वा शत दल निलयं केशवं वा शिवं वा॥

इसका अर्थ सुगम है लेकिन इनमें भव बीजांकुर क्षय मुपागता यस्यः और ध्वस्त दोषं द्विषन्तं यह दो पद महत्व पूर्ण हैं जो जिन और जिन शासन की विशेषता का संकेत करते हैं।

जिन शासन के महामंत्र नवकार से भी यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है। उसमें किसी के प्रति पक्षपात नहीं किया गया है। किन्तु गुणों की मुख्यता को आधार बना कर अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार किया है।

इस प्रकार जिन और जिन शासन के प्रसंग में आवश्यक अंश पर प्रकार डालने के बाद अब उपसंहार के रूप में जिन शासन की लोक मंगल की भावना का संकेत करते हैं।

जिनशासन की लोक मंगल भावना - जिन शासन के दृष्टिकोण में जितनी उदारता और विशालता की भावना है, उतनी ही लोक मंगल की कामना भी समाई हुई। प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करते हुए सदैव यह चाहा- सर्व पूजा क्षेम कुशल पूर्वक सुख में अपना जीवन व्यतीत करें। शासक राजा धार्मिक आचार विचार वाले और बलशाली हो, जिससे स्वचक्र और परचक्र का भय न रहे समयानुसार मेघ वर्षा होती रहे। रोग महामारी का उत्पात न हों। सभी को शान्ति देने वाला जैनधर्म चक्र प्रवर्तमान रहे दिन दूना रात चौगुना प्रभावशाली हो जयवंता रहे। शास्त्राभ्यास के प्रति सभी की रुचि बढ़े। सज्जन पुरुषों की संगति का सबको सुयोग मिले। गुणीजनों के गुणानुवाद के स्वर कानों में गुंजते रहे। दोष दर्शन की कभी भी वृत्ति न हो। सबके साथ हित-मित प्रिय वाणी बोलने का ध्यान रहे और प्राणि-मात्र को आत्म विकास के अवसर प्राप्त हों, अपने परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करें।

इस प्रकार की मांगलिक संपत्ति का निधान होने के कारण ही जिन शासन की उपादेयता और सार्वभौमिकता की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और विश्व शान्ति के लिए सर्वोत्तम साधन माना है।

आशा है कि हम आप सभी जिन शासन के प्रति श्रद्धा भक्ति रखने वाले सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय जिन शासन के प्रसार में तत्पर रहकर -

‘जैनं जयतु शासनम्’

के आदर्श को साकार बनाकर स्व पर के कल्याण के लिए मंगल प्रयास करें और अनन्त पुण्यों से प्राप्त इस मानव जीवन को सफल बनाये। **इति शुभम्**

* * * * *

स्वाध्यायः एक अनुचिन्तन

• -डॉ. सुव्रत मुनि

अनादि काल से मानव सुखेच्छु रहा है। सुगति की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रायस करता रहा है। अब प्रश्न उठता है कि सुख कैसे मिलता है सुगति कैसे प्राप्ति होती है? इसके लिए भगवान कहते हैं कि

नाणं च दंसणं चेव, चरितं च तवो तहा।
एए मग्गमणुप्पता, जीवा गच्छन्ति सोगई॥

उत्तरा २८/३

अर्थात्-ज्ञान और दर्शन, चारित्र और तप रूप जो मार्ग है, उसका अनुशरण करके जीव सुगति को प्राप्त करते हैं। दशवेकालिक सूत्र में भगवान महावीर ने साधक के लिए ज्ञान प्राप्ति को प्रथम कर्तव्य प्रतिपादित किया है -“पढमं नाणं तओ दया.” दशवै. ४/१०।

जिज्ञासा होती है कि ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक गुण है अनादि काल से एकत्र किए हुए अशुभ कर्मों के प्रभाव के कारण उस पर अज्ञान का आवरण आ गया है। बस उस अज्ञान के आवरण को हटाते ही ज्ञान प्रकट हो जाता है। अज्ञान का आवरण वह स्वाध्याय से टूटता है। यथा सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेश. उत्तरा. २९/१९

स्वाध्याय से साधक ज्ञानावरणीय कर्म को क्षय करता है। यही कारण है कि चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र में स्वाध्याय को परम तप बतलाया है -नवि अत्थि नवि य होइ सज्झाएण समं तवो कम्मं। ८९ । स्वाध्याय से अनेक भवों के संचित दुष्कर्म क्षण भर में क्षीण हो जाते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने तो यहाँ कहा कि -“स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोग”ः अर्थात् स्वाध्याय के द्वारा अभीष्ट देवता के साथ साक्षात्कार किया जा सकता है।

स्वाध्याय साधना का प्राण है। इसीलिए स्वाध्याय के अभाव में साधना निर्जीव हो जाती है। स्वाध्याय ज्ञान का अक्षय निधान है। स्वाध्याय की प्रवृत्ति के कारण ही आज प्राचीन ज्ञान विज्ञान का अनुपम उपहार आज मानव जीवन में सुलभ है। इससे सिद्ध है कि स्वाध्याय ज्ञान के विकास का अनन्य साधन है। जो स्वाध्याय इतना महत्वपूर्ण है उसका क्या अर्थ है? स्वाध्याय और अध्ययन में क्या अन्तर है?

सामान्यतया कुछ भी पढ़ना अध्ययन है। परन्तु स्वाध्याय इससे भिन्न है -स्वस्थ मन से सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। आगम टीकाकार आचार्य श्री अभयदेव सूरि ने कहा है- सुष्ठु-आ भयादया अधीयते इतिस्वाध्यायः”। स्थानांग टीका ५/३

सत् शास्त्र को मर्यादा के साथ पढ़ना स्वाध्याय है। स्वाध्याय की दूसरी परिभाषा है -“स्वेन स्वस्य अध्ययनम् स्वाध्यायः” अपने द्वारा अपना अध्ययन स्वाध्याय है।

इनमें प्रथम परिभाषा आगम ग्रन्थों के अध्ययन से सम्बन्धित है और दूसरी साधकों को अन्तर्मुखी बनाती है। इसमें साधक ग्रन्थ पठन रूप स्वाध्याय के द्वारा आत्मध्यान में प्रविष्ट होता है। इससे स्पष्ट है कि स्वाध्याय ध्यान का प्रवेश द्वार है। दशवैकालिक सूत्र के अनुसार -विमुञ्जइजंसि मलं पुरेकडं समीरियं रूपमलं व जोइणो॥ दशवै. ८/६३

जैसे अग्नि द्वारा तपाये जाने पर सोने चांदी का मैल दूर होता है। वैसे ही स्वाध्याय करने से पूर्व भवों के संचित कर्म मैल दूर होकर आत्मा उज्ज्वल हो जाता है। इसीलिए उत्तराध्ययन सूत्र में बताया है -“सज्झायं तओ कुज्जो सव्वभाव विभावणं” उत्तरा. ८/६३

सर्व भावों को प्रकाशित करने के लिए स्वाध्याय करना चाहिए। इस सूत्र में स्वाध्याय के फल की जिज्ञासा का समाधान किया गया है।

स्वाध्याय एक उद्यम है, उपक्रम है तो ज्ञान का अनन्त प्रकाश उसका फल है। स्वाध्याय का सीधा प्रभाव ज्ञानावरणीय कर्म पर पड़ता है, स्वाध्याय की चोट में ज्ञानावरण की परतें टूटती हैं। ज्ञान का आलोक जगमगाने लगता है। यही प्रस्तुत प्रश्न का समाधान है।

स्वाध्याय की विधि - स्वाध्याय के हेतु भगवान् कहते हैं कि गुरु की सेवा करनी चाहिए और अज्ञानी प्रमादी लोगों की संगति से दूर रहना चाहिए। एकान्त स्थान में जहाँ लोगों का अत्यधिक आवागमन न तथा शोरगुल का अभाव हो, वहाँ स्थिर आसन पर बैठ कर, मन को एकाग्र करके स्वाध्याय करना चाहिए। स्वाध्याय के लिए उत्तम ग्रंथ हो तथा उद्देश्य पवित्र होना चाहिए। सूत्र और अर्थ दोनों का धैर्य के साथ चिन्तन-मनन का करना चाहिए।^१ स्वाध्याय नियमित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्वाध्याय सूर्य के प्रकाश में हो तो अत्युत्तम है। वैसे आगमों का स्वाध्याय करने हेतु भगवान् ने संयम निश्चित किया है।

भगवान् महावीर कहते हैं कि साधक को दिन के चार भाग करके, प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करें, दूसरे में ध्यान में लीन हो जावे तथा तीसरे प्रहर में भिक्षा आदि कार्यों से निवृत्त हो तथा चतुर्थ प्रहर में पुनः स्वाध्याय करना चाहिए।^२ इसी प्रकार रात्रि के भी चार भाग करना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि रात्रि के तृतीय प्रहर में निद्रा से मुक्त हो अर्थात् विश्राम करना चाहिए।^३ स्थानांग सूत्र में इसे ही “चतुष्काल स्वाध्याय” कहा है।^४

१. तस्सेस मग्गो गुरुविद्ध सेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झाय एगन्त निसेवणा य, सुतत्थ संचिन्तणया धिई च। उत्तरा. ३२/३
- २-३ दिवसस्स चतुरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणे। वही, २६/११
पढमं पोरिसि सज्झायं, वितियं ज्ञाणं झियायई।
तइयाए भिक्खावरियं, पुणोचउत्थीइसज्झाय। वही, २६/१२ तथा १८
४. स्थानांग सूत्र-चतुर्थ स्थान

कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीणं वा चाउक्कालं सज्झायं करेतए, तंजहा -

- १ - पुत्तणहे - दिन के प्रथम प्रहर में।
- २ - अवरणहे - दिन के अन्तिम (चतुर्थ) प्रहर में।
- ३ - पओसे - रात्रि के प्रथम प्रहर (प्रदोष काल) में।
- ४ - पच्चू से रात्रि के अन्तिम (चतुर्थ) प्रहर में।

उपर्युक्त देशना से स्पष्ट है कि साधक अहोरात्रि अर्थात् आठ प्रहर में से चार प्रहर स्वाध्याय में लगा वे तथा शेष चार प्रहर में शेष ध्याय, सेवा और भिक्षा आदि अन्य क्रियाएं पूर्ण करें। इससे स्वाध्याय का महत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। आगम स्वाध्याय के लिए काल मर्यादा का अवश्य ध्यान रखना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है।

प्राचीन आचार्यों ने “द्वादशांगी रूप” श्रुत साहित्य को ही स्वाध्याय कहा है -

बाइसंगो जिणकवाओ, सज्झाओकहिओ वुहे।
तं उवईसंति जम्हा, उवज्झायातेण वुच्चति॥^५

अर्थात् जिन भाषित द्वादशांग सज्झाय है। उस सज्झाय का उपदेश करने वाले उपाध्याय कहे जाते हैं। द्वादशांग रूप साहित्य स्वाध्याय कहलाता है।

स्वाध्याय का उद्देश्य - स्वाध्याय का मुख्य उद्देश्य बताते हुए भगवान कहते हैं कि ज्ञान के सम्पूर्ण प्रकाश के तथा अज्ञान और मोह को नष्ट करने के लिए और राग द्वेष का क्षय एवं मोक्ष रूप एकान्त सुख की प्राप्ति हेतु स्वाध्याय करना चाहिए।^६ दशवैकालिक सूत्र में दूसरे ढंग से स्वाध्याय का उद्देश्य प्रतिपादित किया है। वह चार प्रकार की समाधि बताई है^७। १- विनय समाधि, २- श्रुत समाधि, ३-तपः समाधि, ४-आचार समाधि। विनम्रता से ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से तप में प्रवृत्ति होती है। तप से आचार शुद्धि होती है। शिष्य पूछता है -श्रुत समाधि कैसे प्राप्त होती है?

आचार्य बताते हैं स्वाध्याय से श्रुत समाधि अधिगत होती है। स्वाध्याय करने के चार लाभ-उद्देश्य होते हैं।

१. सुयं में भविस्सइति अज्झाइयत्वं भवई।

मुझे ज्ञान प्राप्त होगा, इसलिये स्वाध्याय करना चाहिए।

२. एगगचित्ते भविस्सामिति, अज्झाइयत्वं भवई।

मैं एकाग्रचित्त होऊंगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए।

५. विशेषावश्यक भाष्य गाथा- ३१९७

६. नाणस्स सब्बस्स पगासणाए, अन्नणमोहस्स विवज्जणाए।

रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगन्त सोक्खं समुवेइ मोक्खं॥ उत्तरा. ३२/२

७. दश वैकालिक सूत्र अ. ९ उद्देश्य ४

३. अप्पाणं ठावइस्सामित्ति, अच्छाइयत्वं भवई।

मैं आत्मा को धर्म में स्थिर कर लूंगा, इसलिए अध्ययन करना चाहिए।

४. ठिओ परं ठावइस्सामित्ति, अच्छाइयत्वं भवई।

मैं स्वयं धर्म में स्थिर होकर दूसरों को भी धर्म में स्थिर कर सकूंगा इसलिए अध्ययन करना चाहिए। स्वाध्याय के यह चार उद्देश्य हैं।

आचार्य अकलंक ने स्वाध्याय के सात लाभ बताए हैं।^८

१. स्वाध्याय से बुद्धि निर्मल होती है। २. विचारों की शुद्धि होती है। ३. शासन की रक्षा होती है। ४. संशय की निवृत्ति होती है। ५. परपक्ष की शंकाओं का निरसन होता है। ६. तप, त्याग, वैराग्य की वृद्धि होती है। ७. अतिचारों की शुद्धि होती है।

स्वाध्याय के पांच भेद बताए गए हैं^९ १. वाचना, २. पृच्छना ३. परिवर्तना, ४. अनुप्रेक्षा, ५. धर्मकथा। आगमों का पढ़ना वाचना है। पढ़े हुए में शंकाओं को समाधित करना पृच्छना है। पढ़े हुए को पुनःपुनः स्मरण करना परिवर्तना है। उस पर चिन्तन-मनन करना अनुप्रेक्षा है और आगमिक आधार पर धर्मोपदेश करना धर्म कथा है।

* * * * *

जन्म मरण का यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। न यह भंग होता है और न उसमें परिवर्तन ही होता है। संसार में अनेक महापुरुष हुए अनन्त चक्रवर्ती और अनन्त तीर्थंकर भी हो चुके हैं। किन्तु इस नियम को कोई भी भंग नहीं कर सका। पृथ्वी को कंपा देने वाले महाशक्ति राजा, महाराजा भी इस पृथ्वी पर आ पर कोई भी अपने शरीर को टिका नहीं सके। अभिमानी और महा बलवान रावण का भी अंत एक कीड़े की तरह ही हुआ।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

८. तत्त्वार्थ राजवार्तिक

९. स्थानांग सूत्र ५ वाँ स्थान ।

पुद्गल द्रव्य : एक पर्यवेक्षण

• उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. के शिष्य श्री रमेश मुनि शास्त्री

सत्य एक है, अखण्ड है और अनन्त है। पर उस एक मात्र सत्य का निरूपण करने वाले “दर्शन” अनेक हैं। इसलिये, उन सब का प्रतिपादन, भिन्न-भिन्न है, सत्य के सम्पूर्ण स्वरूप का यथार्थ रूप से संकथन करने वाला दर्शन, उसी को माना जा सकता है कि, जिस दार्शनिक ने अपने अतीन्द्रिय अनुभवों का नवनीत अपने निरूपण एवं विवेचन में भरा हो। क्योंकि अतितीव्र तपश्चर्या, गहन आत्मानुभूति जब अपने चरम-उत्कर्ष पर पहुँचती है। तब उस साधक की आत्मा, विराट् विश्व के यथार्थ-स्वरूप पर पड़े आवरण को भेद कर, उसके अणु-अणु पर अपना परम दिव्य प्रकाश अर्थात् ज्ञान विखेर देती है। जिस की सर्वथा निर्मल ज्योति में उसे कण-कण की वास्तविकता दिखलाई पड़ती है। इस प्रखर ज्योति का धारक वह आत्मा, तब सर्वदर्शी, सर्वज्ञानी बन जाता है। इस दिव्य दृष्टि अर्थात् ज्योति के प्रकार में पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का जो “दर्शन” होता है, “दर्शन” शब्द का वही शाब्दिक अर्थ “देखना” स्वीकार करने योग्य है। और इस देखने के बाद, द्रष्टा द्वारा पदार्थ स्वरूप का जो विवेचन किया जाता है। उससे पदार्थों का जो स्वरूप निर्धारण होता है। वह यथार्थ पूर्ण है।

दर्शन-जगत् में जैन दर्शन का शिरसि शेखरायमाण स्थान है। उस की विचार धारा अध्यात्म प्रधान है, सर्वांगपूर्ण है, सुव्यवस्थित है और वैज्ञानिक है, उस की चिन्तन ज्योति ऐसी अप्रतिहत है कि काल की संकीर्ण दीवारें उस की गति को अवरुद्ध नहीं कर सकती। उस ज्योतिर्मयी दिव्य दृष्टि से उद्भूत दर्शन ही वस्तु स्वरूप की यथार्थता का निदर्शक होता है। त्रिकाल अबाधित है, अनन्य है, अपराजेय है और विलक्षण है।

जैन दर्शन ने “द्रव्य” के विषय में गहन चिन्तन एवं सविस्तृत-विवेचन किया है। इस सन्दर्भ में जो चिन्तन और विवेचन की अपनी अनुपम आभा है, दीप्ति है, ज्योति है, उस अक्षय एवं अलौकिक ज्योति से आत्मा भी शुभ्रज्ञान से ज्योति हो उठता है, प्रकाशमान हो उठता है, अज्ञान का सघन-तिमिर तिरोहित हो जाता है। प्रस्तुत दर्शन ने “द्रव्य” का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। उन के नाम निम्नलिखित हैं।^१

१. क- भगवती सूत्र, श. २५, उदे. ५, सूत्र-७४७।

ख- अनुयोगद्वार सूत्र- द्रव्यं गुण पर्यायनाम, सूत्र-१२४

ग- उत्तराध्ययन सूत्र- अध्या. २८ गा. ७।

१- धर्मास्तिकाय!

२- अधर्मास्तिकाय!

३- आकाशास्तिकाय!

४- जीवास्तिकाय!

५- पुद्गलास्तिकाय!

६- काल!

इन द्रव्यों का लक्षण एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। द्रव्य वह है, जो निश्चित रूप से सत् है। सत् और द्रव्य इन दोनों का तादात्म्य सम्बन्ध है। जो कुछ है, वह सत् है। जो सत् नहीं है, उस का अस्तित्व भी संभव नहीं है। जो असत् है। वह भी तो असत् रूप से सत् है। संक्षेप में असत् ही सत् हो सकता है। क्योंकि असत् सत् का निषेध है। सर्वथा असत् की परिकल्पना भी संभव नहीं है। जो कल्पना तीत है। उस का असत् रूप से परिबोध भी संभव नहीं है। गुण और पर्याय में भेद-विवक्षा कर के द्रव्य का लक्षण इस प्रकार है -जो गुण पर्यायवान् है, वह द्रव्य है। जो उत्पाद, व्यय और धौव्य से युक्त है, वह सत् है, जो सत् है वह द्रव्य है। जिस में पुर्व पर्याय का विनाश ^२ हो, और उत्तर पर्याय का उत्पाद हो, वह द्रव्य है। जो किसी द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण हैं तथा स्वयं निर्गुण हों, ^३ वे गुण हैं। अर्थात् जिसमें दूसरे गुणों का सद्भाव न हों, वास्तव में गुण द्रव्य में रहते हैं। जो द्रव्य और गुण इन दोनों के आश्रित रहता है। वह पर्याय है। जो उत्पन्न होता है, विनष्ट होता है तथा समग्र द्रव्य को व्याप्त करता है। वह पर्याय है। जो समस्त गुणों और द्रव्यों में परिव्याप्त होते हैं। वे पर्यक या पर्याय कहलाते ^४ हैं। द्रव्य का जो सहभावी है, वह गुण है, और जो क्रम भावी धर्म है, वह पर्याय है। ^५ द्रव्य की परिभाषा में, उत्पाद और व्यय के लिये “पर्याय” शब्द का प्रयोग हुआ है और धौव्य के लिये “गुण” शब्द प्रयुक्त है। द्रव्य में गुण की सत्ता द्रव्य की नित्यता का प्रतीक है और पर्याय द्रव्य की परिवर्तन शीलता को सूचित करता है। द्रव्य की उत्पाद और व्यय की प्रक्रिया सर्वथा नैसर्गिक है।

उक्त षट् द्रव्यों में जीवास्तिकाय जीव है और पाँच द्रव्य अजीव है। यह वर्गीकरण जीव और अजीव के आधार पर हुआ है। रूपी और अरूपी को संलक्ष्य में रख कर जो वर्गीकृत रूप हैं, वह यह है -जिन में, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चारों पाये जाते हैं वे रूपी हैं और वे सङ्ग-गलन, विध्वंसन स्वभाव से समन्वित हैं, इस के विपरीत इन लक्षणों से विहीन द्रव्य के जो पाँच भेद हैं, इनमें पुद्गलास्तिकाय नामक द्रव्य रूपी हैं, रूपी को “मूर्त” भी कहा जाता है।

२ क- तत्त्वार्थ सूत्र- अ-५ सू- २९

ख- विशेषावश्यक भाष्य-गाथा- २८!

३ क- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २८ गा.६

ख- तत्त्वार्थ सूत्र- अ-५ सू-४!

४ क- नयप्रदीप पत्र-९९!

ख- बृहद् वृत्ति- पत्र- ५५७!

ग- न्यायालोक तत्त्वप्रभा वृत्ति- पत्र २०३!

५. क- पंचास्तिकाय- वृत्ति- १६/३५/१२!

ख- श्लोक वार्तिक- ४/१/३३/६०!

“पुद्रल” शब्द एक पारिभाषिक शब्द है। लेकिन रूढ़ नहीं है। इस की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जाती है। पुद्रल शब्द में दो अवयव हैं। पुद् और गल! पुद् का अर्थ है -पुरा होना, या मिलना! और गल का अर्थ है -गलना या मिटना! जो द्रव्य प्रतिपल-प्रतिक्षण मिलता रहे, गलता रहे, बनता रहे, बिगड़ता रहे, टूटता रहे, जुड़ता रहे, वह “पुद्रल” है।^६ पुद्रल ही एक ऐसा द्रव्य है, जो खण्डित भी होता है। और पुनः परस्पर सम्बद्ध भी है। यही पुद्रलास्तिकाय नामक द्रव्य का स्वभाव है, पुद्रल द्रव्य का व्युत्पत्ति-जन्य अर्थ पूर्णतः यथार्थ है।

विराट्-विश्व में पुद्रल ही एक ऐसा द्रव्य है, जिस को छुआ जा सकता है, चखा जा सकता है, सूँघा जा सकता है और देखा जा सकता है। अतः अति स्पष्ट है कि जिस में वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श ये चारों अनिवार्यतः पाये जाते हैं। वह पुद्रल कहलाता है।^७ इसी दृष्टि से “पुद्रल” द्रव्य को रूपी कहा जाता^८ है। वैसे रूपी का अर्थ होता है -मूर्त! मूर्त वह है -जो चर्म-चक्षुओं से दृश्यमान हो। मूर्त का उक्त अर्थ, संगत नहीं है, युक्तिपूर्ण नहीं है। क्योंकि पुद्रल परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि चर्म चक्षुओं से दृष्टि गोचर हो ही नहीं सकता। सूक्ष्म पुद्रल परमाणु तो बहुत दूर, अनन्त-अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के भेल से बना व्यवहार परमाणु भी दृष्टिगोचर नहीं होता।^९ पुद्रल का अतिसूक्ष्म रूप “परमाणु” है। पुद्रल की परिभाषा से सुस्पष्ट है कि यह द्रव्य रूपी है, मूर्तिमान् है। इस का स्वभाव ही है -सड़ना और गलना! यह द्रव्य अपने स्वभाव से एक क्षण भी वियुक्त नहीं हो सकता। और इस की यही पहिचान है, और यह अपने स्वभाव में ही परिणामन करता रहता है।

जैसा कि उक्त परिभाषा से अति स्पष्ट है कि पुद्रल के मूलतः चार गुण होते हैं। स्पर्श, रस, गन्ध और स्पर्श, इन चारों के भी बीस भेद होते हैं, यह वर्गीकरण अत्यन्त स्थूल रूप में किया गया है। वास्तव ये गुण अपने विभिन्न रूपों में गणनातीत है, अगणित हैं। वे समस्त गुण वस्तुतः आदिमान परिणाम हैं।

१ - स्पर्श के आठ भेद हैं, उन को नाम इस प्रकार हैं।

१ - स्निग्ध!	५ - शीत!
२ - रुक्ष!	६ - उष्ण!
३ - मृदु!	७ - लघु!
४ - कठोर!	८ - गुरु!

६. क- तत्त्वार्थ राजकार्तिक, अ. ५ सू. १ वां २४! आचार्य अलंकदेव

ख - हरिवंश पुराण सर्ग - ७ श्लोक - ३६! आचार्य जिनसेने

ग - तत्त्वार्थ भाष्ट टीका - अ. ५ सू. १ गणी सिद्धसेन

घ - न्यायकोष पृ. ५०२!

७ - क - भगवती सूत्र - श. १२, उद्दे. ५ सूत्र - ४५०

ख - तत्त्वार्थ सूत्र अ. ५. सू. २३

८ - क- भगवती सूत्र- श. १० उद्दे-१०!

ख- तत्त्वार्थ सूत्र- अ. ५ सू. ४!

९- अनुयोग द्वार सूत्र- सूत्र- ३३०-३४६!

२ - रस के पांच प्रकार हैं, वे ये हैं।

१ - मधुर!

३ - कटु!

२ - अम्ल!

४ - तिक्त!

५ - कषायला!

३ - गन्ध के दो प्रकार हैं।

१ - सुरभि गन्ध!

२ - दुरभि गन्ध!

४ - वर्ण के पाँच भेद इस प्रकार हैं।

१ - कृष्ण!

३ - पीत!

२ - रक्त!

४ - श्वेत!

५ - नील!

“पुद्गल” द्रव्य की प्रमुख विशेषता उस के स्पर्श आदि चार गुण ही हैं, ये चारों उस के असाधारण भाव हैं। अर्थात् उस के अतिरिक्त किसी अन्य द्रव्य में संभव नहीं है। ऐसी विशेषताएँ मुख्य रूप से छह कही जा सकती हैं। पुद्गल द्रव्य का जो स्वरूप है, उनका विश्लेषण करना ही इन विशेषताओं का एक मात्र उद्देश्य रहा है।

पुद्गलद्रव्य की परिभाषा हम पहले प्रस्तुत कर चुके हैं। और उसकी कसौटी पर पुद्गल द्रव्य खरा उतरता है। इसे स्पष्टतः समझाने के लिये हम एक उदाहरण देंगे। सुवर्ण पुद्गल है। किसी राजा के एक पुत्र है। और एक पुत्री है। राजा के पास एक सुवर्ण का घड़ा है। पुत्री उस घट को चाहती है। और पुत्र उसे तोड़ कर उस का मुकुट बनवाना चाहता है। राजा पुत्र की हठ पूरी कर देता है। पुत्री रुष्ट हो जाती है। और पुत्र प्रसन्न हो जाता है। लेकिन राजा की दृष्टि केवल सुवर्ण पर है। जो घट के रूप में विद्यमान था और मुकुट के रूप में विद्यमान है, अतएव उसे न हर्ष है, न विषाद है। उस के मन में माध्यस्थ्य भाव है। ^{१०} एक उदाहरण और लीजिये। लकड़ी एक द्रव्य है और वह पुद्गल द्रव्य है। वह जल कर क्षार हो जाती है उस से लकड़ी रूप पर्याय का विनाश होता है और क्षार रूप पर्याय का उत्पाद है। किन्तु दोनों पर्यायों में पदार्थ का अस्तित्व अचल रहता है, उसके आंगारत्व का विनाश नहीं होता ^{११} है। उक्त दोनों उदाहरणों में पदार्थ का अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है, वे द्रव्य के धौव्य के प्रतीक हैं। संज्ञान्तर या भावान्तर को पर्याय कहते ^{१२} हैं। पर्याय का स्वरूप ही चूँकि यह है कि वह प्रतिसमय बदलती रहती है। नष्ट भी होती है और उत्पन्न भी होती है। अतएव उत्पाद और विनाश इन दोनों की प्रतीक है, द्रव्य की इस परिभाषा की दृष्टि से, दोनों उदाहरणों के द्वारा पुद्गलास्तिकाय की द्रव्यता सिद्ध होती है।

१०- आप्त भीमांसा श्लोक-५९ आचार्य समन्तभद्र!

११- भीमांसाश्लोक वार्तिक, श्लोक- २१-२६! कुमारिल भट्ट!

१२- तत्त्वार्थ भाष्य टीका अ.५ सू. ३७ आचार्य सिद्धसेन!

द्रव्य के भाव अर्थात् एक तत्व को परिणाम कहा जाता है। परिणाम का अभिप्राय यह है कि अपने स्वरूप का परित्याग न करते हुए एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना! निष्कर्ष यह है कि द्रव्य परिणामी होता है। वह परिणामन करता है। इसी को दूसरे शब्दों में यो भी कहा जा सकता है कि जैसे द्रव्य में उत्तर पर्याय का उत्पाद और पूर्व पर्याय का विनाश होता रहता है, किन्तु द्रव्य फिर भी अपने स्वरूप में रहता है। उस का स्वरूप का न विनाश होता है और न ही उस में परिवर्तन होता है।^{१३} उस का स्थिरत्व ज्यों का त्यों विद्यमान है। त्रिकाल व्यापी है। अति स्पष्ट है कि द्रव्य का भाव अर्थात् परिणामन 'परिणाम' है। सहज स्वाभाविक रूप में सदा से होने वाला और सदा होता रहने वाला परिणाम है। यह परिणाम जिस को नष्ट न हो, वह वस्तु नित्य है।^{१४} और उस की मौलिकता है। पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की मौलिकता स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण में है। ये चार पुद्गल द्रव्य से एक समय के लिये भी विलग नहीं होते हैं। अतएव वह नित्य है, शाश्वत है। यह एक अलग बात है कि यह मौलिकता रूपान्तरित हो जाती है। अपरिपक्व आम्र हरा है, खट्टा है, और वही पक कर पीला होता है। लेकिन वह वर्णहीन एवं रसहीन नहीं हो सकता है। सुवर्ण की चूड़ी को पिघला कर हार बनाया जाता है। लेकिन सुवर्ण फिर भी ज्यों का त्यों रहेगा है, सर्वथारूपेण नित्य रहेगा। जो संख्या में न्यूनाधिक न हो, अनादि भी हो, अनन्त भी हो और जो न स्वयं को अन्य द्रव्य को रूप में परिवर्तन करे, वह वस्तु अथवा द्रव्य अवस्थित कहलाती है। अनादि अतीत काल में जितने पुद्गल परमाणु थे। वर्तमान में उतने ही हैं। और अनन्त भविष्य में भी उतने ही रहेंगे। पुद्गल द्रव्य की अपनी जो मौलिकता है। वह यथावत् रहेगी। उक्त द्रव्य की अपनी मौलिकता किसी अन्य द्रव्य में कदापि परिवर्तित नहीं होती और नहीं किसी अन्य द्रव्य की मौलिकता पुद्गल नामक द्रव्य में परिवर्तित होती है। यह कथन शत-प्रतिशत यथार्थता लिये हुए है।

पुद्गल द्रव्य की एक अद्वितीय विशेषता है उस का रूप^{१५}। यहाँ रूप शब्द का अर्थ है शरीर अर्थात् प्रकृति! जिसमें स्पर्श, रस और गन्ध वर्ण स्वयं सिद्ध^{१६} है। पुद्गल का छोटा या बड़ा, दृश्य या अदृश्य कोई भी रूप हो, उस में स्पर्श, रस आदि चारों गुण अवश्यभावी है।^{१७} ऐसा नहीं है कि किसी पदार्थ में केवल रूप या गन्ध आदि पृथक्-पृथक् हों, जहाँ स्पर्श आदि में से कोई एक भी गुण होगा, वहाँ अन्य गुण प्रगट या अप्रगट रूप में अवश्य रूप से विद्यमान होंगे।

पुद्गल सक्रिय है, शक्तिमान है। पुद्गल द्रव्य में क्रिया होती है। इसी क्रिया को परिस्पन्दन कहते हैं। यह परिस्पन्दन अनेक प्रकार का होता है।^{१८} पुद्गल में यह परिस्पन्दन स्वतः भी होता है और दूसरे पुद्गल या जीव द्रव्य की प्रेरणा से भी होता रहता है। परमाणु की गति क्रिया की एक विशेषता है कि वह

१३- क- तत्त्वार्थ सूत्र अ. ५ सूत्र ४१!

ख- भ्रजापना परिणाम पद १३, सूत्र १८१

१४- क- भगवती सूत्र, शत-१४ उद्धे ४ सू. ५१२

ख- तत्त्वार्थ सूत्र, अ. ५ सू. ३०!

१५- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २८ गाथा-१२!

१६- सर्वार्थसिद्धि- अ. ५ सू. ५ आचार्य पूज्यपाद

१७- भगवती सूत्र- श. ७! उद्धे १०!

१८- भगवती सूत्र, शतक- ३ उद्धेशा- ३ टीका आचार्य अभय देन!

अप्रतिघाती होती है। वह वज्र और पर्वत के इस पार से उस पार भी निकल जा सकता है। पर कभी कभी एक परमाणु दूसरे परमाणु से टकरा भी सकता है। पुद्गल में, अनन्त शक्ति भी होती है। एक परमाणु यदि तीव्र गति से गमन करे तो काल के सब से छोटे अंश अर्थात् एक समय में वहलोक के एक छोर से दूसरे छोर तक जा सकता है।

पुद्गल द्रव्य लोक में अवस्थित है, लोक से बाहर नहीं है। लोक के प्रदेश, असंख्यात ही होते हैं। जबकि पुद्गल द्रव्य ही केवल अनन्त अनन्त प्रदेशात्मक है। अब विचारणीय प्रश्न उठता है कि अनन्त-अनन्त पुद्गल असंख्यात प्रदेश वाले लोक में कैसे स्थित हैं। जब कि एक प्रदेश, आकाश का वह अंश है, जिस से छोटा कोई अंश संभव ही न हो? उक्त प्रश्न का समाधान यह है कि सूक्ष्म परिणमन और अवगाहन शक्ति के कारण परमाणु और स्कन्ध सभी सूक्ष्मरूप परिणत हो जाते हैं। और इस प्रकार एक ही आकाश-प्रदेश में अनन्त-अनन्त पुद्गल रह जाते हैं। उक्त विषय को स्पष्टतया समझाने के लिये एक भावपूर्ण उदाहरण है- एक कक्ष में एक प्रदीप का प्रकाश पर्याप्त रूप से व्याप्त है। उस में एक शतक दीपकों का प्रकाश भी सहज रूपेण समा सकता है। अथवा एक दीपक का प्रकाश, जो किसी बड़े कक्ष में फैला रहता है, किसी छोटे से भाजन से ढंक जाने पर, उसी में समा जाता ^{१९} है। उक्त कथन से अति स्पष्ट है कि पुद्गल के प्रकाश-परमाणुओं में सूक्ष्म परिणमन शक्ति विद्यमान है। उसी प्रकार पुद्गल के प्रत्येक परमाणु की स्थिति है। परमाणु की भांति स्कन्धों में भी सूक्ष्म परिणमन और अवगाहन शक्ति होती है। अवगाहन शक्ति के कारण परमाणु या स्कन्ध जितने स्थान में स्थिति होता है, उतने ही, उसी स्थान में अन्य परमाणु और स्कन्ध भी रह सकते हैं। सूक्ष्म परिणमन की क्रिया का अर्थ ही यह हुआ कि परमाणु में संकोच हो सकता है, उस का घन फल, न्यून भी हो सकता है।

पुद्गल द्रव्य का जीव द्रव्य के साथ संयोग भी होता है। यह संयोग दो प्रकार का है -प्रथम अनादि है और द्वितीय सादि है। सम्पूर्ण जीव द्रव्यों का संयोग पुद्गल-परमाणुओं के साथ अनादि काल से है। या था। इस अनादि संयोग से मुक्त भी हुआ जा सकता है। मुक्त जीव को यह संयोग फिर से कदापि नहीं होता, लेकिन मुक्त या बद्ध जीव को यह प्रतिक्षण होता है, व मिटता रहता है। इसी होने-मिटने वाले संयोग को सादि कहा जाता है। यह संयोग क्यों होता है? इस प्रश्न के दो उत्तर हैं -जहाँ तक अनादि संयोग का प्रश्न है। उस का कोई उत्तर नहीं। जब से जीव का अस्तित्व है, तभी से उस के साथ पुद्गल परमाणुओं का संयोग भी है। जिस सुवर्ण को अभी खान से निकाला ही न गया हो, उस के साथ धातु, मिट्टी आदि का संयोग कब से है। इस का कोई उत्तर नहीं। जब से सोना है, तभी से उस के साथ धातु, मिट्टी आदि का संयोग भी है। यह बात दूसरी है कि सोने को उस धातु, मिट्टी आदि से मुक्त किया जा सकता है। उसी तरह जीव द्रव्य भी स्वयं के पुरुषार्थ से अपने को कर्मण वर्गणा से मुक्त कर सकता है। इधर, जहाँ तक सादि संयोग का प्रश्न है, इस का उत्तर दिया जा सकता है। अनादि संयोग के वशीभूत होकर जीव नाना प्रकार का विकृत परिणमन करता है। और इस परिणमन को निमित्त के रूप में पाकर पुद्गल परमाणु अपने आप ही कर्मण-वर्गणा के रूप में परिवर्तित होकर तत्काल जीव से संयुक्त हो जाते हैं। संयोग के बनने-मिटने की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, गतिशील है, जब तक जीव द्रव्य स्वयमेव अपने विकृत परिणमन से मुक्त नहीं हो जाता है। उससे छुटकारा नहीं पा लेता है।

१९ - क- राजप्रश्नीय सूत्र. सूत्र-७४!

ख- तत्त्वार्थ सूत्र- अ.५ सू.१६!

जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य के संयोग की इस प्रक्रिया की यह विशेषता है कि वह संयुक्त होकर भी पृथक्-पृथक् होती है। जीव की प्रक्रिया जीव में और पुद्गल की प्रक्रिया पुद्गल में ही होती है। एक ही प्रक्रिया दूसरे में कदापि संभव नहीं है। और इस प्रकार एक की प्रक्रिया दूसरे के द्वारा संभव नहीं है। जीव की प्रक्रिया जीव के द्वारा ही, और पुद्गल की प्रक्रिया पुद्गल के ही द्वारा सम्पन्न होती है। लेकिन इन दोनों प्रक्रियाओं में से ऐसी कुछ समता, एक रूपता रहती है कि जीव द्रव्य कभी पुद्गल की प्रक्रिया को अपनी ओर कभी अपनी प्रक्रिया को पुद्गल द्रव्य की मान बैठता है। जीव की यही भ्रान्त मान्यता मिथ्यात्व है, अज्ञान रूप है। २०

जीव और पुद्गल की इस संयोग प्रक्रिया के फलस्वरूप ही जीव और अजीव, पुद्गल आदि के अतिरिक्त शेष तत्त्वों की सृष्टि होती है। कुल मिलाकर नव तत्त्व इस प्रकार हैं। २१

१ - जीव तत्त्व!	५ - आश्रव तत्त्व!
२ - अजीव तत्त्व!	६ - बन्ध तत्त्व!
३ - पुण्य तत्त्व!	७ - संवर तत्त्व!
४ - पाप तत्त्व!	८ - निर्जरा तत्त्व!
	९ - मोक्ष तत्त्व!

उक्त तत्त्वों में पाँचवाँ तत्त्व “आश्रव” है। जीव से पुद्गल द्रव्य के संयोग का मूलभूत कारण है, जीव की मनसा, वाचा और कर्मणा होने वाली विकृत परिणति और इसी विकृत २२ परिणति का नाम “आश्रव” २३ तत्त्व है। २४ जो परिणति अर्थात् भाव रागादि से सहित है, वह बन्ध कराने वाला है। और जो भाव रागादि से रहित है। वह बन्ध करने वाला नहीं है। जीव के साथ कर्म पुद्गल परमाणुओं का बन्ध जाना बन्ध है। अथवा कर्म प्रदेशों का आत्मा प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध २५ है। जीव प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध को योग से तथा स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध को कषाय से करता २६ है। संक्षेप में कहा जाय तो कषाय ही “कर्मबन्ध” का मुख्य हेतु २७ है। कषाय के चार भेद हैं - क्रोध,

-
- २०- पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, श्लोक नं. १२! आचार्य अमृत चन्द्र
 २१- क- स्थानांग सूत्र, स्थान- ९ सूत्र. ६६५!
 ख- उत्तराध्ययन सूत्र- अ- २८ सूत्र. १४!
 २२- भगवती सूत्र- श. १६ उ.१ सूत्र. ५६४!
 २३- क- समवायांग सूत्र-समवाय-५
 ख- सर्वार्थ सिद्धि- ६/२ !
 ग- सूत्र कृत्वांग कृति- २/५-१७ आचार्य शीलांग !
 घ- अध्यात्म सार- १८/१३१!
 २४- समय सार- १६७!
 २५- राजवार्तिक १, ४, १७!
 २६- पंचम कर्म ग्रन्थ- गाथा- ९६!
 २७- क- स्थानांग सूत्र- स्थान २ ! उद्दे.-२
 ख- प्रज्ञापना पद- २६ सूत्र- ५

मान, माया और लोभ। ^{२८} संक्षेप में कषाय के दो भेद हैं -राग और द्वेष! उक्त दोनों भेदों को ही भावकर्म माना ^{२९} है। रागात्मक भाव एवं द्वेषात्मक भाव स्वरूप, जिस से ज्ञानावरणादि कर्म बन्धते हैं, वह परिणाम भाव बन्ध है और आत्मा और कर्म के प्रदेशों का परस्पर वस्तुतः मिल जाना द्रव्य बन्ध है। ^{३०} आश्रव और बन्ध इन दोनों में कारण कार्य का सम्बन्ध है। आश्रव कर्म बन्ध के लिये भूमिका का निर्माण करता है। बन्ध आश्रव पर निर्भर है। प्रथम क्षण में कर्म स्कन्धों का जो आगमन है, वह तो आश्रव है। और कर्म स्कन्धों के आगमन के बाद, द्वितीय क्षण में उन कर्म स्कन्धों का जीव प्रदेश में स्थित हो जाना बन्ध है। इस भेद से आश्रव और बन्ध इन दोनों की स्थिति, वस्तुतः स्पष्ट हो जाती है।

बन्ध तत्त्व के अन्तर्गत यह ध्यान देने की बात है कि पुद्गल परमाणु अर्थात् कर्मण वर्गणाएँ जीव द्रव्य में प्रविष्ट हो जाते हैं। अन्तर्लीन हो जाते हैं। जीव द्रव्य के साथ कर्मणवर्गणाएँ अपना एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं। अर्थात् आकाश के जिस और जितने प्रदेशों में जीव स्थित होता है। अपनी सूक्ष्म परिणामन शक्ति के बल पर ठीक उन्हीं और उतने ही प्रदेशों में उस से सम्बन्धित कर्मण-वर्गणाएँ भी अवस्थित हो जाया करती हैं। इस स्थिति अर्थात् एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि वे दोनों एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। इस सम्बन्ध के रहते हुए भी जीव, जीव ही रहता है और पुद्गल पुद्गल ही रहता है। दोनों द्रव्य अपने-अपने मौलिक गुणों का एक समय के लिये भी किंचित् मात्र भी नहीं छोड़ते हैं।

जीव अपने ही पुरुषार्थ से निरन्तर संयुक्त होती रहने वाली कर्मण-वर्गणाओं पर रोक लगा सकता है। और यही रोक संवरतत्त्व कहलाती है। ^{३१} संवर का कार्य है कर्मों का संयमन करना। यह आश्रव का विरोधी है। दूसरे शब्दों में संवर कर्मों के आश्रव को रोक लेता है। यह दो प्रकार का है ^{३२}

-
- २८- क- सूत्रकृतांग सूत्र- ६/२६!
 ख- स्थानांग सूत्र- ४/१/२५१!
 ग- प्रज्ञापना सूत्र- २३/१/२८०!
- २९- क- उत्तराध्ययन सूत्र- ३२/७
 ख- समय सार- ए ४/ए ६/१० ए/१७७!
 ग- प्रवचन सार- १/८४/८८!
- ३०- क- द्रव्य संग्रह- ३२!
 ख- प्रवचन सार- ८३- ८४!
 ग- सर्वार्थसिद्धि- १, ४!
- ३१- क- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २ए गा. ११!
 ख- सप्ततत्त्व प्रकरणम् ११८ -११२!
 ग- योगशास्त्र -७६!
- ३२- क- स्थानांग सूत्र, टीका २/१४!
 ख- द्रव्य संग्रह -२/३४!
 ग- सर्वार्थसिद्धि -९/१!
 घ- सप्ततत्त्व प्रकरणम् -११२
 ङ- पंचास्तिकाय -२/४२!
 अमृतचन्द्रवृत्ति!

भाव संवर और द्रव्य संवर! जो चेतन का परिणाम कर्म के योग और आश्रय को रोकने में कारण है। वह भाव संवर है। और जो वस्तुतः कर्मों का अवरोध करता है, वह द्रव्य संवर है। भाव संवर कारण है और द्रव्य संवर कार्य है।

इसी प्रकार जीव अपनी पूर्वसंयुक्त कर्मण-वर्गणाओं को क्रमशः निर्जीण या दूर भी कर सकता है। और यही निर्जरा तत्त्व है “निर्जरा” शब्द “जृ” धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका स्पष्टतः अर्थ होता है -जीर्ण होना, विनष्ट होना। यह शब्द कर्मों के क्रमिक विनाश को इंगित करता है। अतएव एक देश रूप से, आत्मा से कर्मों का छूटना “निर्जरा” है। वह दो प्रकार की है -विपाकज और अविपाकज! जहाँ कर्म पक कर निर्जीर्ण होते हैं वह विपाकज निर्जरा है। और तप आदि से जब कर्मों की निर्जरा की जाती है तो वह अविपाकज निर्जरा है। इसे क्रमशः द्रव्य निर्जरा और भाव निर्जरा भी कहते हैं। बीज फल के रूप में वृद्धिगत होता है। यदि वह स्वयं पक जाता है। तो वह विपाक कहलाता है। परन्तु यदि उस को अपक्व स्थिति में ही तोड़ लिया जाये और फिर उसे कृत्रिम साधनों के द्वारा पकाया जाये तो वह अविपाक निर्जरा है। आत्मा से कर्म रूपी पुद्गलों का फल देकर नष्ट हो जाना “निर्जरा” है। निर्जरा का प्रमुख साधन “तप” है। वह तप बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। इन दोनों के छह-छह भेद हैं ^{३३} कुल मिलाकर तप के बारह प्रकार होते हैं। आभ्यन्तर तप की उत्कृष्टता की तुलना में, बाह्य तप की साधना का भी विशेष महत्व है। आभ्यन्तर तप की जिन उर्ध्वगामी तपस्या का फल हमें मोक्ष रूप में मिलने का ज्ञात होता है, उस उत्क्रान्ति का सारा का सारा भार बाह्य तप की सर्वथा सफल साधना पर निर्भर है। यह कथन पूर्णतः यथार्थ है।

अपनी कर्मण-वर्गणाओं से सदा के लिये पूर्ण रूपेण मुक्त हो जाना जीव का मोक्ष कहलाता है। ‘मोक्ष’ शब्द “मोक्ष असने” धातु से भाव अर्थ में धञ् प्रत्यय होने पर निष्पन्न होता है। जिस का अर्थ होता है -आत्मा से बन्धे हुए समस्त कर्मों को समूलतः फेंक देना! जिन उपायों से मोक्ष यानी कर्मों के बन्धनों से छुटकारा मिलता है, उन प्रयासों की अपेक्षा से करण की प्रधानता की ध्यान में रखते हुए “छुटकारा मात्र को मोक्ष कहा गया है। जब आत्मा आठों प्रकार के कर्मों के मल कलंक से और अपने शरीर से, अपनी आत्मा को अलग कर देता है, तब उस के जो अचिन्तनीय, फिर भी स्वाभाविक ज्ञान आदि गुणों रूप और अव्याबाध सुख रूप, सर्वथा विलक्षण जो अवस्था उत्पन्न होती है। उसे मोक्ष कहते हैं। ^{३४} इन

३३ क- भगवती सूत्र पू. २५ उद्धे. ७ सू. १८७, २१७!

ख- उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३० गाथा -८, ३०।

ग- स्थानांगसूत्र स्थान ६, सूत्र ५५१!

घ- मूलाचार-गाथा ३४६, ३६०!

ङ- प्रवचन सारोद्धार -२७०-२७२!

च- औपपातिक सूत्र -३०!

छ- भगवती आराधना - २०८

ज- चारित्र सार -१३३!

झ- सर्वार्थसिद्धि -९/१९

ञ- समवायांग सूत्र, समवाय -६ अभयदेव वृत्ति!

३४ क- परमात्म प्रकाश -२/१०!

ख- ज्ञानार्णव ३/६-१०!

ग- नियम सार, तात्पर्याख्यावृत्ति -४!

घ- द्रव्य संग्रह टीका -३७!

ङ- सर्वार्थसिद्धि १/१ की उत्थानिका आचार्य पूज्यपाद!

परिभाषाओं के पर्यवलोकन से यह अति स्पष्ट हो जाता है कि इनमें मोक्ष के जिस स्वरूप पर बल दिया गया है, वह है आत्मा के अपने विशुद्ध और मौलिक स्वरूप की प्राप्ति है। ये परिभाषाएँ वास्तव में आत्मा के स्वभाविक अवस्था की विवेचना का सूत्र रूप है। इसी सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को संयुक्त रूप में मोक्ष का मार्ग बताया है।^{३५} ये तीनों मार्ग पृथक्-पृथक् नहीं हैं, अपितु समवेत रूप में कार्यकारी होते हैं। यह तीनों सम्मिलित रूप से अथवा मिलकर मोक्ष मार्ग कि वा मोक्ष प्राप्ति का साधन बनते हैं। विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य बात है कि इन तीनों सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र में से पृथक्-पृथक् कोई भी एक अथवा दो, मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा सकते हैं, तीनों का साहचर्य नितान्त आवश्यक है।

पुद्गल क्या है? हम यह स्पष्ट रूपेण जान चुके हैं कि वह एक द्रव्य है। उस के परमाणु-परमाणु में प्रति समय उत्पाद-व्यय और घौव्य की अखण्ड प्रक्रिया वर्तमान है। इस प्रक्रिया की दृष्टि से, जितने भी पुद्गल हैं, चाहे वे परमाणु -के रूप में हो, चाहे स्कन्ध के रूप में हो, सब एक समान हैं। उन में भेद या वर्गीकरण को अवकाश ही नहीं है। अतएव हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि द्रव्य दृष्टि से पुद्गल का केवल एक ही भेद है, या यों कहिये कि वह अभेद है। पुद्गल का अधिक सरल वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है -जिस से पुद्गल का स्वरूप अति स्पष्ट होता है।

प्रथम वर्गीकरण “परमाणु” है।

द्वितीय वर्गीकृत रूप “स्कन्ध” है।

१ - परमाणु पुद्गल का वह सूक्ष्मतम अंश है। परमाणु अनन्त-अनन्त है। किन्तु उन में पार्थिव, जलीय, तैजस् और वायवीय जैसा कोई भेद नहीं है। ये तो, जैसा सहकारी वातावरण पाते हैं। स्वयं को तत्तत् रूप में बदल देते हैं। यानी जो परमाणु एक बार पार्थिव रूप में बदला है। वही परमाणु, दूसरी बार जलीय, वायवीय या तैजस् रूप में भी बदल सकता है। इसी दृष्टि से एक परमाणु में वर्ण, गन्ध, स्पर्श, और रस की शक्तियाँ भी एक साथ समाहित रहती है। ये शक्तियाँ, प्रत्येक परमाणु में समान रूप से विद्यमान है और सामग्री के सहकारी के अनुरूप परिणाम को प्राप्त होती है। क्योंकि रस आदि गुणों को “रूप” के साथ अविनाभावी माना गया है।^{३६} यानी जिस परमाणु में रूप होगा, उस में रस, वर्ण, और स्पर्श भी निश्चित रूप से पाया जायेगा।

परमाणु के संघात से उत्पन्न होने वाले स्कन्ध आदि परमाणु से कुछ अंश में भिन्न है और कुछ अंश में अभिन्न है। भिन्न इसलिये होते हैं कि यह परमाणुओं का एक समूह होता है। अतएव प्रत्येक परमाणु का उस में अपना पृथक् अस्तित्व रहता है। परमाणु वह सूक्ष्मतम अंश है। जिस का पुनः अंश हो नहीं सकता। परमाणु का कदापि विभाजन नहीं किया जा सकता। अतएव वह अखण्ड, अभेद्य, अग्राह्य,

३५. क- तत्त्वार्थ सूत्र अ. १ सू. १ वाचक उमास्वाति

ख- समयसार ४, १०!

ग- स्थानीय सूत्र -३, ४, १९४

घ- उत्तराध्ययन सूत्र अ. २८ गा. १-३

ङ- आवश्यक निर्यक्ति गाथा -१०३! आचार्य भद्रबाहु!

३६ सर्वार्थ सिद्धि -५/५!

अदाह्य और निर्विभागी ^{३७} है। परमाणु यदि अविभाज्य न हो तो उसे परम + अणु नहीं कहा जा सकता। इसी सन्दर्भ में परमाणु द्विविधता का सहज स्मरण हो आता है। परमाणु के दो भेद ^{३८} ये हैं।

१ - सूक्ष्म परमाणु!

२ - व्यावहारिक परमाणु !

सूक्ष्म परमाणु का स्वरूप वहीं है, जो कुछ ऊपर की पंक्तियों में निर्दिष्ट हैं। व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के समुदाय से बनता ^{३९} है। वस्तुवृत्त्या वह स्वयं परमाणुपिण्ड है। फिर भी सामान्य दृष्टि से ग्राह्य नहीं होता और उस को अस्त्र-शस्त्र से तोड़ा नहीं जा सकता। उस की परिणति सूक्ष्म होती है। इसलिये व्यवहारतः उसे परमाणु कहा गया है। सूक्ष्म परमाणु द्रव्य रूप से निरवयव और अविभाज्य होते हुए भी पर्याय की दृष्टि से वैसा नहीं ^{४०} है। उक्त तथ्य वस्तुतः महत्त्वपूर्ण है। उस में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये चार गुणों, गुणों के अतिरिक्त अनन्त पर्याय होते ^{४१} हैं। पर्याय की दृष्टि से एक गुण वाला परमाणु अनन्त गुणवाला हो जाता है। अनन्त गुण वाला परमाणु एक गुण वाला है। एक परमाणु में वर्ण से, वर्णान्तर, गन्ध से गन्धान्तर, रस से रसान्तर और स्पर्श से स्पर्शान्तर हो जाता है। एक गुण वाला पुद्गल यदि उसी रूप में रहे तो जघन्यतः एक और उत्कृष्टतः असंख्य काल तक रहता है। ^{४२} द्विगुण से लेकर अनन्त गुण तक के परमाणु पुद्गल के लिये यह नियम है। बाद में, उन में परिवर्तन अवश्य होता है। यह वर्ण विषयक नियम गन्ध, रस व स्पर्श पर भी घटित होता है।

यह कथन पूर्णतः यथार्थ है कि परमाणु इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होता। तथापि अमूर्त नहीं है। वह मूर्त है, रूपी है। पारमार्थिक दृष्टि से वह देखा जाता है। परमाणु मूर्त होते हुए भी दृष्टिगोचर नहीं होता, इसका प्रमुख कारण उस की सूक्ष्मता है। केवल ज्ञान का विषय मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के पदार्थ हैं। इसलिये केवली तो परमाणु को जानते ^{४३} ही हैं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला व्यक्ति परमाणु को नहीं जान सकता ^{४४}। परमाणु में कोई एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श अर्थात् स्निग्ध अथवा रुक्ष, शीत या ऊष्ण होते ^{४५} हैं। अणु के अस्तित्व का परिज्ञान, उस से निर्मित पुद्गल स्कन्ध रूप कार्य से होता है। परमाणु इतना सूक्ष्म होता है कि उस के आदि, मध्य और अन्त का प्रश्न ही नहीं उठता ^{४६} है। अणु का वर्गीकरण चार प्रकार से हुआ है, वे चार वर्ग इस प्रकार ^{४७} हैं।

३७. क- भगवती सूत्र -५/७!

ख- स्थानांग सूत्र स्थान -४!

३८ अनुपयोग द्वार सूत्र, प्रमाणाधिकार सूत्र -३४०!

३९ अनुपयोग द्वार सूत्र -प्रमाणाधिकार सूत्र -१३४२!

४० प्रज्ञापना सूत्र पद -५

४१ स्थानांग सूत्र, स्थान -४!

४२ भगवती सूत्र ७/७!

४३ नन्दी सूत्र, सूत्र -२२!

४४ भगवती सूत्र -१८/८

४५ तत्त्वार्थ राज कार्तिक अ. २ सू. २५ आचार्य अकलंकदेव!

४६ तत्त्वार्थ राजकार्तिक - अ. ५ सू. २५ वां -१

४७ भगवती सूत्र २०/५/१२!

(४४)

- १ - द्रव्य परमाणु - पुद्गल परमाणु!
- २ - क्षेत्र परमाणु - आकाश प्रदेश!
- ३ - काल परमाणु - समय!
- ४ - भाव परमाणु - गुण !

चतुर्थ प्रकार भाव अणु के मूल भेद चार हैं। ^{४८} और सोलह उपभेद ^{४९} होते हैं।

परमाणु-पुद्गल अनङ्ग, अमध्य और अप्रदेश होते हैं। परमाणु सकम्प भी होता है और वह अकम्प भी है। कदाचित् वह चंचल होता है, कदाचित् नहीं भी है। उन में न तो निरन्तर कम्प भाव रहता है और न निरन्तर अकम्प भाव भी है। इसी सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि परमाणु स्वयं गतिशील है। वह एक क्षण में लोक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो असंख्य योजन की दूरी पर है। चला जाता है। गति-परिणाम उस का स्वभाव धर्म है। धर्मास्तिकाय उस का प्रेम्क नहीं है, सहायक है। गति का उपादान परमाणु स्वयं है। धर्मास्तिकाय तो उस का निमित्तमात्र है।

यह दृश्यजगत् - पौद्गलिक जगत् परमाणु संघटित है। परमाणुओं से स्कन्ध बनते हैं। और स्कन्धों से स्थूल पदार्थ निर्मित होता है। पुद्गल में संघातक और विघातक ये दोनों शक्तियाँ विद्यमान हैं। पुद्गल शब्द में “पूरण और गलन” इन दोनों का मेल है। परमाणु के मेल से स्कन्ध बनता है। और एक स्कन्ध के टूटने से भी अपने स्कन्ध बन जाते हैं। यह गलन और मिलन की प्रक्रिया स्वाभाविक भी होती है और प्राणी के प्रयोग से भी है। कारण कि पुद्गल की अवस्थाएँ सादि, सान्ता, होती है, अनादि अनन्त नहीं! पुद्गल में यदि वियोजक शक्ति नहीं होती तो सब अणुओं का एक पिण्ड बन जाता है और यदि संयोजक शक्ति नहीं होती, तो एक-एक अणु अलग-अलग रह कर कुछ नहीं कर पाते। प्राणी जगत् के प्रति परमाणु का जितना कार्य है, वह सब परमाणु समुदयजन्य है।

स्कन्ध की परिभाषा इस प्रकार हुई है - दो या दो से अधिक परमाणुओं का पिण्ड “स्कन्ध” कहलाता है। स्कन्धों को तीन वर्गों में रखा जाता है। ^{५०} “स्कन्ध” अनेक परमाणु जब एक समुदाय में आकर परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं। तब वे स्कन्ध कहलाने लगते हैं। स्कन्ध का खण्ड भी स्कन्ध कहलाता ^{५१} है। स्कन्ध का कोई भी अंश या खण्ड, जो अपने अंगी से पृथग्भूत नहीं हो वह स्कन्ध देश कहा जाता है। स्कन्ध या स्कन्ध देश का एक परमाणु जो अपनी अंगी से पृथग्भूत न हो, स्कन्ध प्रदेश कहलाता है। अथवा पुद्गल के परमाणु और स्कन्ध के रूप में दो भेद होते हैं। लेकिन ग्राह्य और अग्राह्य के रूप में भी दो भेद संभव है। पुद्गल के जो परमाणु जीव द्रव्य से संयुक्त होते हैं। उन्हें ग्राह्य कहा जाता है। ग्राह्य पुद्गलों के अतिरिक्त शेष सभी अग्राह्य हैं, उन्हें जीव ग्रहण नहीं करता है। जीव से उन का संयोग नहीं होता है। प्रवाह की अपेक्षा से स्कन्ध और परमाणु ये दोनों अनादि है, अपर्यवसित हैं। कारण यह है कि इन की सन्तति अनादि काल से चल रही है और चलती रहेगी। स्थिति की अपेक्षा से यह सादि सपर्यवसान भी है। इसी सन्दर्भ में यह एक ज्ञातव्य तथ्य है कि स्कन्ध द्रव्य की दृष्टि से सप्रदेश

४८ भगवती सूत्र २०/५/१६।

४९ भगवती सूत्र २०/५/१।

५० भगवती सूत्र, अं. ५ सूत्र- २६।

५१. तत्त्वार्थ सूत्र, अं. ५. सूत्र २६

होते हैं। जिस स्कन्ध में जितने परमाणु होते हैं। वह तत्परिमाण प्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। क्षेत्र की अपेक्षा से सप्रदेशी भी है और अप्रदेशी भी है। जो एक आकाश प्रदेशावगाही होता है, वह अप्रदेशी है और जो दो आदि आकाश-प्रदेशावगाही होता है। वह सप्रदेशी है। काल की अपेक्षा से जो स्कन्ध एक समय की स्थिति वाला होता है, यह अप्रदेशी और जो इस से अधिक स्थिति वाला होता है, वह सप्रदेशी है। भाव की दृष्टि से एक गुण वाला अप्रदेशी और अधिक गुणवाला सप्रदेशी है। यह स्पष्ट लक्ष्य है कि अनन्त प्रदेशी स्कन्ध भी जब तक सूक्ष्म परिणति में रहता है, तब तक इन्द्रिय ग्राह्य नहीं बनता है। और सूक्ष्म परिणति वाले स्कन्ध चतुःस्पर्शी होते हैं। उत्तरवर्ती चार स्पर्श बादर परिणाम वाले चार स्कन्धों में ही होते हैं। गुरु-लघु और मृदु कठिन ये स्पर्श पूर्ववर्ती चार स्पर्शों की अपेक्षा पूर्ण संयोग से बनते हैं। रक्ष स्पर्श की बहुलता से लघु स्पर्श होता है और स्निग्ध की बहुलता से गुरु-स्पर्श होता है। शीत और स्निग्ध इन दोनों स्पर्शों की बहुलता से मृदु स्पर्श और ऊष्ण तथा रक्ष की बहुलता से कर्कश स्पर्श बनता है। तात्पर्य की भाषा में स्पष्ट रूपेण कहा जा सकता है कि सूक्ष्म परिणति की विकृति के साथ-साथ जहाँ स्थूल परिणति होती है। वहाँ चार स्पर्श भी बढ़ जाते हैं।

पुद्गल द्रव्य परिणमनशील है। उस में परिणमन स्वयंमेव होता है। जीव के संयोग से भी होता है। इसी दृष्टि को लेकर उस के तीन भेद संभव ^{५२} है।

१ - प्रयोग -परिणत ऐसे पुद्गलों की प्रयोग परिणत कहते हैं। जिन्होंने जीव के संयोग से अपना परिणमन किया है।

२ - विस्त्रसा-परिणत-विस्त्रसा परिणत ऐसे पुद्गलों को कहते हैं, जो अपना परिणमन स्वतः किया करते हों, जीव का संयोग ही जिन से न हुआ हो।

३ - मिश्र परिणत - ये वे पुद्गल हैं, जिन का परिणमन जीव के संयोग से और स्वयंमेव, दोनों प्रकार से एक ही साथ रहा होता है। मिश्र परिणत पुद्गल उन्हें भी कहा जा सकता है, जिन का परिणमन कभी जीव के संयोग से हुआ हो, लेकिन अब किन्ही कारणों से जो स्वयंमेव अपना परिणमन कर रहे हैं।

अपेक्षा दृष्टि से पुद्गल के दो भेद भी हैं, ^{५३} तीन भेद भी हैं, और परमाणु का एक भेद मिलकर पुद्गल के चार भेद भी हो जाते ^{५४} हैं। ये भेद अपेक्षा-विशेष से हुए हैं। द्रव्य दृष्टि से पुद्गल एक ही भेद हैं, अथवा यों भी कहा जा सकता है कि वह वस्तुतः अभेद ही है।

परमाणु और स्कन्ध के रूप में हम ने पुद्गल का अध्ययन किया और हम स्पष्टतया उस का अध्ययन अन्य रूप में देखेंगे परमाणु सूक्ष्म है। और अचित्त महास्कन्ध स्थूल है। इन के मध्यवर्ती सौक्ष्म्य और स्थूल्य ये दोनों आपेक्षित भेद हैं। एक स्थूल वस्तु की अपेक्षा, किसी दूसरी वस्तु को सूक्ष्म और एक

५२ भगवती सूत्र -८/१/१!

५३ क- उत्तराध्ययन सूत्र -३६/११!

ख- स्थानांग सूत्र -स्थान -२!

५४ ५४ -भगवती सूत्र -२/१०/६६!

सूक्ष्म वस्तु की अपेक्षा किसी दूसरी वस्तु को स्थूल कहा जाता है। स्थूलता और सूक्ष्मता के आधार पर पुद्गल को छह वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये छहों भेद स्कन्ध को दृष्टि में रखते हुए किये ^{५५} गये हैं।

१ - स्थूल-स्थूल लकड़ी, पत्थर आदि जैसे ठोस पदार्थ इस वर्ग में आते हैं।

२ - स्थूल- इस वर्ग में जल, तेल आदि द्रव्य पदार्थ आते हैं।

३ - स्थूल -सूक्ष्म - प्रकाश, छाया, अन्धकार आदि जैसे दृश्य पदार्थ इस वर्ग में आते हैं।

४ - सूक्ष्म -स्थूल ऐसे पदार्थ इस वर्ग में आते हैं। जिन्हें हम नेत्र इन्द्रिय से तो नहीं जान पाते, लेकिन शेष चारों में से किसी न किसी इन्द्रिय द्वारा अवश्य जान सकते हैं।

५ - सूक्ष्म - शास्त्रीय भाषा में जिन्हें कर्मणवर्गणा कहते हैं। उन पुद्गलों को इस वर्ग में रखा गया है। ये वे सूक्ष्म हैं। पर स्कन्ध अवश्य है। जो हमारी विचार-क्रिया जैसी क्रियाओं के लिये अनिवार्य है। हमारे विचारों और भावों का प्रभाव इन पर पड़ता है। तथा इन का प्रभाव जीव द्रव्य एवं अन्य पुद्गलों पर पड़ता है।

६ - सूक्ष्म -सूक्ष्म - कर्मवर्गणा से भी अति सूक्ष्म!

एक अन्य दृष्टि से पुद्गल के तेवीस भेद भी किये जाते हैं। ^{५६} इन भेदों को शास्त्रीय भाषा में वर्गणाएँ कहते हैं। उन में से आठ मुख्य वर्गणाएँ हैं, और इन के अनेक उपभेद ^{५७} भी होते हैं। अष्ट विधि वर्गणाएँ इस प्रकार हैं।

१ - औदारिक वर्गणा!

५ - कर्मण वर्गणा!

२ - वैक्रिय वर्गणा!

६ - श्वासोच्छ्वास वर्गणा!

३ - आहारक वर्गणा!

७ - भाषा वर्गणा!

४ - तेजस् वर्गणा!

८ - मनो वर्गणा!

१ - औदारिक वर्गणाए - स्थूल पुद्गल - पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और व्रसजीवों के शरीर निर्माण योग्य पुद्गल समूह!

२ - वैक्रिय वर्गणा - छोटा बड़ा, हल्का भारी, दृश्य-अदृश्य आदि विविध क्रियाएँ करने में समर्थ शरीर के योग्य पुद्गल-समूह!

३ - आहारक वर्गणा - योग शक्ति जन्य शरीर के योग्य पुद्गल - समूह!

४ - तैजस वर्गणा - विद्युत परमाणु समूह!

५५- क- गोम्मटसार, जीव काण्ड गाथा -६०२! नेमिचन्द्रजी सिद्धान्त चक्रवर्ती।

ख- नियमसार गाथा -२१-२४ आचार्य कुन्दकुन्द!

५६ गोम्मटसार, जीव काण्ड -५९३, ५९४!

५७ गोम्मट सार जीव काण्ड ५९५!

- ५- कर्मण वर्गणा -जीवों सत् व असत् क्रिया के प्रतिफल में बनने वाला पुद्गल समूह!
- ६- श्वासोच्छ्वास वर्गणा-आन प्राण योग्य पुद्गल समूह!
- ७ - भाषा वर्गणा -भाषा के योग्य पुद्गल समूह!
- ८ - मनोवर्गणा -चिन्तन में सहायक बनने वाला पुद्गल समूह!

प्रथम की चार वर्गणाएँ अष्ट स्पर्शी स्थूल स्कन्ध है। वे हल्की भारी, मृदु-कठोर भी होती है। कर्मण, भाषा और मन ये तीन वर्गणाएँ चतुःस्पर्शी सूक्ष्म स्कन्ध है। इन में केवल शीत, ऊष्ण, सिग्ध, और रुक्ष ये चार ही स्पर्शी होते हैं। गुरु, लघु, मृदु और कठिन ये चार स्पर्शी नहीं होते हैं। श्वासोच्छ्वास वर्गणा चतुःस्पर्शी और अष्ट-स्पर्शी दोनों प्रकार के होते हैं।

पुद्गल द्रव्य की संख्या, क्या परमाणु और क्या स्कन्ध, सभी के रूप में अनन्त हैं। एक पुद्गल, दूसरे पुद्गल से स्पर्श, रस आदि किसी न किसी कारण से भिन्न या असमान भी हो सकता है। अतएव हम कह सकते हैं कि पुद्गल भी अनन्त है।^{५८}

प्रत्येक द्रव्य का अपना कार्य होता है। इस कार्य को उपकार या उपग्रह भी कह सकते हैं। यह उपग्रह पुद्गल द्रव्य अपने स्वयं या अन्य पुद्गल द्रव्यों के प्रति तो करता ही है, जीव द्रव्य के प्रति भी करता है। उक्त द्रव्य जीव-द्रव्य का उपग्रह भी अनेक रूपों में करता है। वह जीव के अनुसार कभी शरीर तो, कभी मन, कभी वचन तो, कभी श्वासोच्छ्वास के रूप में अपने स्वयं का परिणमन करता हुआ, उस परिणमन के माध्यम से जीव द्रव्य का उपग्रह करता रहता^{५९} है। सुख-दुःख, जीवन और मरण के रूप में भी पुद्गल द्रव्य, जीव द्रव्य का उपग्रह करता है।^{६०} पुद्गल द्रव्य के द्वारा जीव द्रव्य के उपग्रह का यह अर्थ कदापि नहीं है कि पुद्गल द्रव्य की जीव द्रव्य में कोई प्रक्रिया या परिणमन किया कराया जाता है। इस का अर्थ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, केवल यही है कि जीव द्रव्य का परिणमन जीव द्रव्य में पुद्गल द्रव्य का परिणमन पुद्गल द्रव्य में होता है लेकिन संयोगवश दोनों के परिणमनों में, स्वभावतः, ऐसी कुछ समानता अथवा एक रूपता बन पड़ती है कि हम जीव द्रव्य को लगता है कि यह परिणमन हम में जीव द्रव्य हो रहा है। वास्तव में ऐसा नहीं है। जीव द्रव्य का परिणमन उसके अपने उपादान या अन्तरंग कारण पर निर्भर है। पुद्गल द्रव्य तो केवल निमित्त हैं, और बाह्य कारण अवश्य है।

किसी भी द्रव्य का स्वरूप ही यह है कि उस में गुण और पर्याय हों, पुद्गलों के गुणों का विश्लेषण हो चुका है, पर्यायों के विषय में विचारणा यहाँ की जा रही है। यों तो, पुद्गल द्रव्य के अन्य द्रव्यों की भांति अनन्त पर्याय हैं, तथापि कुछ प्रमुख पर्यायों की चर्चा यहाँ की जाती है, जो इस प्रकार हैं।

५८ भगवती सूत्र -२!१!

५९. भगवती सूत्र -श. १३, उदे १४ सू. ४८१!

६० तत्त्वार्थ सूत्र -अ. ५, सू. २०!

परमाणु स्कन्ध रूप में परिणत होते हैं। तब उन की दस अवस्थाएँ हैं, कार्य हैं, उन के नाम इस प्रकार हैं।^{६१}

१ - शब्द!	६ भेद!
२ - बन्ध!	७ - अन्धकार!
३ - सूक्ष्म!	८ - छाया!
४ - स्थूल!	९ - आतप!
५ - संस्थान!	१० - उद्योत!

१ - शब्द - एक स्कन्ध के साथ दूसरे स्कन्ध के टकराने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है। वह शब्द है।^{६२} संक्षेप में शब्दों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है। भाषात्मक, अभाषात्मक और मिश्र। विस्तार से, शब्द के मूलतः दो भेद होते हैं और दोनों के दो-दो प्रभेद तथा द्वितीय भेद के प्रथम प्रभेद के भी चार प्रभेद होते हैं।^{६३}

भाषात्मक - इस वर्ग में मानव और पशु-पक्षियों आदि की ध्वनियाँ आती हैं। इस के दो प्रकार हैं।

अक्षरात्मक - ऐसी ध्वनियाँ इस वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। जो अक्षरबद्ध की जा सकें, लिखी जा सकें।

अनक्षरात्मक - इस वर्ग में रोने-चिल्लाने, खांसने, फुसफुसाने आदि की तथा पशु-पक्षियों की ध्वनियाँ आती हैं, इन्हें अक्षर बद्ध नहीं किया जा सकता।

अभाषात्मक - शब्द के इस वर्ग में प्रकृतिजन्य और वाद्ययन्त्रों से उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ सम्मिलित हैं। इस के भी दो वर्ग हैं -

- १ - प्रायोगिक अभाषात्मक।
- २ - दैर्घ्यात्मिक अभाषात्मक।

वाद्ययन्त्रों से उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ प्रायोगिक हैं। यह प्रायोगिक शब्द चार प्रकार का है।

तत्त वर्ग में वे ध्वनियाँ आती हैं, जो वर्म तनन आदि झिल्लियाँ के कम्पन से उत्पन्न होती हैं। तबला, ढोलक, भेरी आदि से ऐसे शब्द उत्पन्न होते हैं।

वितत शब्द वीणा आदि यन्त्र-यन्त्र में, तन्त्री के कम्पन से उत्पन्न होते हैं।

धन शब्द वे हैं, जो ताल, घण्टा आदि धन वस्तुओं के अभिघात से उत्पन्न हों,

६१ क- उत्तराध्ययन सूत्र -अ. २८ गा. १२-१३।

ख- तत्त्वार्थ सूत्र -अ. ५ सू. २४

ग- द्रव्य संग्रह, गाथा - १६।

६२ पञ्चतन्त्रिकाय - गाथा - ७३।

६३ तत्त्वार्थ राजवार्तिक अ. ५ सू. २४।

सौषिर वर्ग में वे शब्द आते हैं। जो बांस, शंख, आदि में वायु-प्रतर के कम्पन से उत्पन्न हो। ६४

वैस्त्रसिक -मेघ गर्जन आदि प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न होने वाले शब्द वैस्त्रसिक कहलाते हैं।

जैन दर्शन में शब्द को केवल पौद्गलिक कहकर ही, विश्राम नहीं लिया, किन्तु उस की ६५ उत्पत्ति, शीघ्रगति, ६६, लोकव्यापित्व ६७ स्थायित्व ६८ आदि विभिन्न पहलुओं पर गम्भीर रूप से विचार किया ६९ है। शब्द पुद्गल स्कन्धों के संधात और भेद से उत्पन्न होता है। वक्ता बोलने के पूर्व भाषा परमाणुओं को ग्रहण करता है। भाषा के रूप में उन का परिणामन करता है। तीसरी अवस्था "उत्सर्जन" है। उत्सर्जन के द्वारा बाहर निकले हुए भाषा-पुद्गल आकाश में फैलते हैं। वक्ता का प्रयत्न यदि मन्द है तो वे पुद्गल अभिन्न रहकर जल-तरंग-न्याय" से असंख्य योजन तक फैल कर शक्तिहीन हो जाते हैं। और वक्ता का प्रयत्न तीव्र होता है। तो वे भिन्न होकर दूसरे असंख्य स्कन्धों को ग्रहण करते करते अति सूक्ष्म काल में लोकान्त तक चले जाते हैं। हम जो सुनते हैं, वह वक्ता का मूल शब्द नहीं सुन पाते। वक्ता का शब्द -श्रेणियों-आकाश प्रदेश की वक्तियों में फैलता है। ये श्रेणियाँ वक्ता के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊँचे व नीचे छहों दिशाओं में हैं। हम शब्द की समश्रेणी में होते हैं। तो मिश्र शब्द सुनते हैं अर्थात् वक्ता द्वारा उच्चारित शब्द द्रव्यों और उन के द्वारा वासित शब्द-द्रव्यों को सुनते हैं। यदि हम विश्रेणी अर्थात् विदिशा में होते हैं। तो केवल वासित शब्द ही सुन पाते ७० हैं। मिश्र शब्द नहीं सुनते हैं।

२ - बन्ध - बन्ध शब्द का अर्थ है बन्धना। जुड़ना, मिलना, संयुक्त होना। दो या दो से अधिक परमाणुओं का भी बन्ध हो सकता है। और दो या दो से अधिक स्कन्धों का भी होता है। इसी तरह एक या एक से अधिक परमाणुओं का एक या एक से अधिक स्कन्धों के साथ भी बन्ध होता है। पुद्गल-परमाणुओं अर्थात् कार्मण वर्गणाओं का जीवद्रव्य के साथ भी बन्ध होता है।

बन्ध की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि उस का विघटन या खण्डन या अन्त अवश्यम्भावी है। क्योंकि जिस का प्रारम्भ होता है। उस का अन्त भी अवश्यभेव होता है। एक नियम यह भी है कि जिन परमाणुओं या स्कन्धों अथवा स्कन्ध परमाणुओं या द्रव्यों का परस्पर बन्ध होता है। वे परस्पर सम्बद्ध रह कर भी अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के साथ क्षीर और नीर की भाँति अथवा रासायनिक प्रतिक्रिया से सम्बद्ध होकर भी अपनी पृथक् सत्ता नहीं खो सकता। उस के परमाणु कितने ही रूपान्तरिक हो जाते हैं। तथापि उन का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व सुरक्षित रहता है।

६४ सर्वार्थसिद्धि -अ. ५ सू- २४।

६५ स्थानांग सूत्र स्था. २ उद्दे. ३।

६६ प्रज्ञापना सूत्र पद. -११।

६७ प्रज्ञापना सूत्र पद -११।

६८ प्रज्ञापना पद -११

६९ जम्बद्वीप प्रज्ञप्ति -५ अ।

७० प्रज्ञापना सूत्र पद -११

बन्ध का कारण -पुद्गल का बन्ध जीव के साथ भी होता है और इस के कई कारण भी हैं। यह तो अति स्पष्ट है कि पुद्गल द्रव्य सक्रिय है और जो सक्रिय होता है, उस का टूटते-फूटते रहना, जुड़ते मिलते रहना स्वाभाविक है। उस में कोई न कोई कारण निमित्त के रूप में अवश्य होता है। उदाहरणार्थ -मिट्टी के अनेक कणों का बन्ध होने पर घड़ा बनता है। इस में कुम्भकार निमित्त कारण है।

बन्ध की प्रक्रिया वास्तव में अत्यन्त ही सूक्ष्म है। परमाणु से स्कन्ध, स्कन्ध से परमाणु और स्कन्ध से स्कन्ध किस प्रकार बनते हैं। इस विषय में मुख्यतः सात तथ्य हैं, वे ये हैं -

१ - स्कन्धों की उत्पत्ति कभी भेद से, कभी संघात से और कभी भेद-संघात से होती है। स्कन्धों का विघटन अर्थात् कुछ परमाणुओं का एक स्कन्ध से विच्छिन्न होकर दूसरे स्कन्ध में मिल जाना "भेद" कहलाता है। दो स्कन्धों का संघटन या संयोग हो जाना संघात है। और इन दोनों प्रक्रियाओं का एक साथ हो जाने भेद संघात ^{७१} है।

२ - अणु की उत्पत्ति केवल भेद-प्रक्रिया से ही सम्भव ^{७२} है।

३ - पुद्गल में पाये जाने वाले स्निग्ध और रुक्ष नामक दो गुणों के कारण ही यह प्रक्रिया संभव ^{७३} है।

४ - जिन परमाणुओं का स्निग्ध या रुक्ष गुण जघन्य अर्थात् न्यूनतम शक्ति स्तर पर हो उन का परस्पर बन्ध नहीं होता है।

५ - जिन परमाणुओं या स्कन्धों में स्निग्ध या रुक्ष गुण समान मात्रा में अर्थात् समशक्ति स्तर पर हो, उनका भी परस्पर बन्ध नहीं होता है।

६ - लेकिन उन परमाणुओं का बन्ध अवश्य होता है। जिनसे स्निग्ध और रुक्ष गुणों की संख्या में दो एकांकों का अन्तर होता है। जैसे चार स्निग्ध गुणयुक्त स्कन्ध का यह स्निग्ध गुण युक्त स्कन्ध के साथ बन्ध सम्भव है, अथवा छह रुक्ष गुण युक्त स्कन्ध से बन्ध संभव है।

७ - बन्ध की प्रक्रिया में संघात से उत्पन्न स्निग्धता अथवा रुक्षता में से जो भी गुण अधिक परिमाण में होता है। नवीन स्कन्ध उसी गुण रूप में परिणत होता है। उदाहरण के लिये एक स्कन्ध, पन्द्रह स्निग्ध गुण युक्त स्कन्ध और तेरह रुक्ष गुण स्कन्ध से बने तो वह नवीन स्कन्ध स्निग्ध गुण रूप होगा।

जीव और पुद्गल के पारस्परिक बन्ध की एक विशिष्ट परिभाषा है। जीव कषाय सहित होने के कारण जीव कर्मण वर्गणा के पुद्गल को ग्रहण करता है। इसी ग्रहण का नाम बन्ध है। ^{७४} बन्ध या

७१ स्थानांग सूत्र स्थान -२ उदे -३ सू- ८२।

७२ तत्त्वार्थ सूत्र अ. ५ सू. २७।

७३ प्रज्ञापना सूत्र, परिणामपद १३ सूत्र -१८५।

७४ तत्त्वार्थ सूत्र अ. ८ सू. २।

संयोग को प्राप्त होने वाली कर्मण वर्गणाओं में अनेक प्रकार का स्वभाव पड़ना प्रकृति बन्ध है, यह आठ प्रकार का होता ^{७५} है। उन के नाम ये हैं।

१ - ज्ञानावरण कर्म!	५ - आयु कर्म!
२ - दर्शनावरण कर्म!	६ - नाम कर्म!
३ - वेदनीय कर्म!	७ - गोत्र कर्म!
४ - मोहनीय कर्म!	८ - अन्तराय कर्म!

इन कर्मों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय ये कर्म घाती हैं, और शेष कर्म अघाती ^{७६} हैं। कर्म संस्कार मात्र ही नहीं है, किन्तु एक वस्तुभूत पुद्गल पदार्थ है।

३ - सूक्ष्म - इस का अर्थ है छोटापन, यह दो प्रकार का है -अन्त्य सूक्ष्म और आपेक्षिक सूक्ष्म

४ - स्थूल - इस का अर्थ है बड़ापन। इस के दो भेद हैं। अन्त्य स्थूल, जो महास्कन्ध में पाया जाता है। आपेक्षित स्थूल जो छोटी बड़ी वस्तुएँ हैं।

५ - संस्थान - इस का अर्थ है -आकार, रचना विशेष इसके दो भेद हैं -इत्थं संस्थान, अनित्यं संस्थान।

६ - भेद - इस का अर्थ "खण्ड" है। स्कन्धों का विघटन "भेद" कहलाता है।

७ - तम - जो देखने में बाधक हो और प्रकाश का विरोधी हो। ^{७७}

८ - छाया - प्रकाश पर आवरण पड़ने पर छाया उत्पन्न होती है, यह प्रकाश का अभाव रूप नहीं है।

९ - आतप - सूर्य आदि के निमित्त से होने वाले ऊष्ण प्रकाश को आतप कहते हैं।

१० - उद्योत - चन्द्रमा, जुगनू आदि के शीत प्रकाश को उद्योत कहते हैं।

आतप और उद्योत में दोनों, प्रकाश के विभाग हैं। उन्हीं के रूप में उस का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन हुआ है।

सारपूर्ण भाषा में यही कहा जा सकता है कि जैन दर्शन में परमाणु विज्ञान और पदार्थ-दर्शन निश्चल एवं समग्र निरूपण है। अति स्पष्ट है कि उक्त दर्शन में आध्यात्मिक विवेचन जिस सीमा तक पहुँचा हुआ है, उसी प्रकार पदार्थ विश्लेषण भी पहुँच चुका है। जिस की सर्वांगपूर्ण विचारणा समय और श्रम साध्य अवश्य है। मर्यादित पृष्ठों के कारण उक्त निबन्ध में पुद्गलास्तिकाय का दिशा-निर्देश के रूप में आलेखन किया गया है, प्रतिपाद्य विषय के बहुविध आयामों का संस्पर्श भी नहीं किया है। तथापि इसे अगाध-अपार महासागर में से एक बून्द का ग्रहण करने के लिये किये गये चंचुपात की भांति मान कर विशेष अध्ययन की ओर जिज्ञासु जन अग्रसर होंगे। यही अन्तःहृदय की आकांक्षा है, मंगल मनीषा है।

* * * * *

७५ क- उत्तराध्ययन सूत्र -अ. ३३ गा. २-३!

ग- प्रज्ञापना सूत्र २३/१

ङ- तत्त्वार्थ सूत्र -८/५!

छ- पंच संग्रह -२/२!

७६ क- पंचाध्यायी २/९९८, २९९

७७ सर्वार्थसिद्धि अ. ५ सू. २४!

ख- स्थानांग सूत्र- ८/३/५९६!

घ- भगवती सूत्र श. ६ उद्दे. ९!

च- प्रथम कर्म ग्रन्थ गाथा -३!

ख- गोस्मटसार जीवकाण्ड -९!

जैन साधना और ध्यान

• डॉ. सागरमल जैन

श्रमणधारा और ध्यान - भारतीय अध्यात्मवादी परम्परा में ध्यान साधना का अस्तित्व अति प्राचीनकाल से ही रहा है। यहाँ तक कि अति प्राचीन नगर मोहन-जोदड़ों और हड़प्पा से खुदाई में, जो सीलें आदि उपलब्ध हुई हैं, उनमें भी ध्यानमुद्रा में योगियों के अंकन पाये जाते हैं^१। इस प्रकार ऐतिहासिक अध्ययन के, जो भी प्राचीनतम स्रोत हमें उपलब्ध हैं, वे सभी भारत में ध्यान की परम्परा के अतिप्राचीनकाल से प्रचलित होने की पुष्टि करते हैं। उनसे यह भी सिद्ध होता है कि भारत में यज्ञ-मार्ग की अपेक्षा ध्यानमार्ग की परम्परा प्राचीन है और उसे सदैव ही आदरपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है।

औपनिषदिक परम्परा और उसकी सहवर्ती श्रमण परम्पराओं में साधना की दृष्टि से ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान रहा हुआ था। औपनिषदिक ऋषि-गण और श्रमण-साधक अपनी दैनिक जीवनचर्या में ध्यान-साधना को स्थान देते रहे हैं यह एक निर्विवाद तथ्य है। महावीर और बुद्ध के पूर्व भी अनेक ऐसे श्रमण साधक थे, जो ध्यान साधना की विशिष्ट विधियों के न केवल ज्ञाता थे, अपितु अपने सांनिध्य में अनेक साधकों को उन ध्यान साधना की विधियों का अभ्यास भी करवाते थे। इन आचार्यों की ध्यान साधना की अपनी-अपनी विशिष्ट विधियाँ थीं ऐसे संकेत भी मिलते हैं। बुद्ध अपने साधनाकाल में ऐसे ही एक ध्यान-साधक श्रमण आचार्य रामपुत्र के पास स्वयं ध्यान-साधना के अभ्यास के लिये गये थे। रामपुत्र के सम्बन्ध में त्रिपिटक साहित्य में यह भी उल्लेख मिलता है कि स्वयं भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भी अपनी साधना की उपलब्धियों को बताने हेतु उनसे मिलने के लिए उत्सुक थे, किन्तु तब तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी^(२)। इन्हीं रामपुत्र का उल्लेख जैन आगम साहित्य में भी आता है। प्राकृत आगमों में सूत्रकृतांग^(३) में उनके नाम के निर्देश के अतिरिक्त अन्तकृतदशा^(४), ऋषिभाषित^(५) आदि में तो उनसे सम्बन्धित स्वतन्त्र अध्याय भी रहे थे। दुर्भाग्य से अन्तकृतदशा का वह अध्याय तो आज लुप्त हो चुका है, किन्तु ऋषिभाषित^(६) में उनके उपदेशों का संकलन आज भी उपलब्ध है।

१ Mohenjodero and Indus civilization, John Marshall vol.I page 52

२ Dictionary of Pali proper names, By J.P. Malal Sekhar (1937) Val.I P. 382-83

३ सूत्रकृतांग, १/३/४/२-३

४ स्यानांग, १०/१३३ (इसमें अन्तकृतदशा की प्राचीन विषयवस्तु का उल्लेख है)

५ इसिभासियाई, अध्याय २३

६ वही, अध्याय २३

बुद्ध और महावीर को ज्ञान का जो प्रकाश उपलब्ध हुआ वह उनकी ध्यान साधना का परिणाम ही था, इसमें आज किसी प्रकार का वैमत्य नहीं है। किन्तु हमारा यह दुर्भाग्य है कि प्राचीन साहित्य में भी ध्यान साधना की इन पद्धतियों के विस्तृत विवरण आज उपलब्ध नहीं है। मात्र यत्र-तत्र विकीर्ण निर्देश ही हमें मिलते हैं। फिर भी जो सूचनायें उपलब्ध हैं, उनके आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि औपनिषदिक ऋषिगण और श्रमण साधक अपने आध्यात्मिक विकास के लिये ध्यान साधना की विभिन्न पद्धतियों का अनुसरण करते थे। उनकी ध्यान-साधना पद्धतियों के मात्र कुछ अवशेष आज भी हमें योग परम्परा के साथ-साथ जैन और बौद्ध परम्पराओं से मिल जाते हैं।

जैनधर्म और ध्यान - श्रमण परम्परा की निरन्तरधारा जो आज जैन परम्परा के नाम से जानी जाती है अपने अस्तित्व काल से ध्यान साधना से जुड़ी हुई है। प्राकृत साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थों आचारांग, उत्तराध्ययन, ऋषिभाषित आदि में ध्यान का महत्व स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है। ऋषिभाषित (इसिभासियाई) में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शरीर में जो स्थान मस्तिष्क का है, साधना में वही स्थान ध्यान का है ^(७)। उत्तराध्ययन सूत्र में श्रमण जीव की दिनचर्या का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि प्रत्येक श्रमण साधक को दिन और रात्रि के दूसरे प्रहर में नियमित रूप से ध्यान करना चाहिए ^(८)। आज भी जैन श्रमण को निद्रात्याग के पश्चात्, भिक्षाचर्या एवं पदयात्रा से लौटने पर गमनागमन एवं मलमूत्र आदि के विसर्जन के पश्चात् तथा प्रातःकालीन और सायंकालीन प्रतिक्रमण करते समय ध्यान करना होता है ^(९)। उसके आचार और उपासना के साथ कदम-कदम पर ध्यान प्रक्रिया जुड़ी हुई है।

जैन परम्परा में ध्यान का कितना महत्व है इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि जैन तीर्थंकरों की प्रतिमायें चाहे वे खड्गासन में हो या पद्मासन में सदैव ही ध्यानमुद्रा में उपलब्ध होती हैं। आज तक कोई भी जिन प्रतिमा ध्यान मुद्रा के अतिरिक्त किसी भी अन्य मुद्रा में उपलब्ध ही नहीं हुई है। यद्यपि तीर्थंकर या जिन प्रतिमाओं के अतिरिक्त बुद्ध की भी कुछ प्रतिमायें ध्यान मुद्रा में उपलब्ध हुई हैं किन्तु बुद्ध की अधिकांश प्रतिमायें तो ध्यानेतर मुद्राओं यथा अभयमुद्रा, वरद-मुद्रा और उपदेश मुद्रा में ही मिलती हैं। इसी प्रकार शिव की कुछ प्रतिमायें भी ध्यान मुद्रा में मिलती हैं किन्तु नृत्य मुद्रा आदि में भी शिव प्रतिमायें विपुल परिमाण में उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार जहाँ अन्य परम्पराओं में अपने आराध्य देवों की प्रतिमायें ध्यानेतर मुद्राओं में भी बनती रही, वहाँ तीर्थंकर या जिन प्रतिमायें मात्र ध्यामुद्रा में ही निर्मित हुई, किसी भी अन्य मुद्रा में नहीं बनी। जिन प्रतिमाओं के निर्माण का दो सहस्रवर्ष का इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि कभी भी कोई भी जिन-प्रतिमा तीर्थंकर प्रतिमा ध्यान-मुद्रा के अतिरिक्त किसी अन्य मुद्रा में नहीं बनाई गयी। इससे जैन परम्परा में ध्यान का क्या स्थान रहा है यह सुस्पष्ट हो जाता है। जैनाचार्यों ने ध्यान को साधना का मस्तिष्क माना है। जिस प्रकार मस्तिष्क के निष्क्रिय हो जाने पर मानव जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता है उसी प्रकार ध्यान के अभाव में जैन साधना का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

७ इसिभासियाई (ऋषिभाषित), २२/१४

८ उत्तराध्ययनसूत्र, २६/१८

९ श्रमणसूत्र (उपाध्याय अमरमुनि), प्रथम संस्करण पृ. १३३-१३४

ध्यान-साधना की आवश्यकता - मानव मन स्वभावतः चंचल माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में मन को दुष्ट अश्व की संज्ञा दी गई, जो कुमार्ग में भागता है ^(१०)। गीता में मन को चंचल बताते हुए कहा गया है कि उसको निग्र हीत करना वायु को रोकने के समान अति कठिन है ^(११)। चंचल मन में विकल्प उठते हैं इन्हीं विकल्पों के कारण चैतसिक आकुलता या अशान्ति का जन्म होता है। यह आकुलता ही चेतना में उद्विग्नता या तनाव की उपस्थिति की सूचक है। चित्त की यह उद्विग्न या तनावपूर्ण स्थिति ही असमाधि या दुःख है। इसी चैतसिक पीड़ा या दुःख से विमुक्ति पाना समग्र आध्यात्मिक साधना पद्धतियों का मुलभूत लक्ष्य है। इसे ही निर्वाण या मुक्ति कहा गया है।

मनुष्य में दुःख-विमुक्ति की भावना सदैव ही रही है। यह स्वभाविक है, आरोपित नहीं है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति तनाव या उद्विग्नता की स्थिति में जीना नहीं चाहता है। उद्विग्नता चेतना की विभावदशा है। विभावदशा से स्वभाव में लौटना यही साधना है। पूर्व या पश्चिम की सभी अध्यात्म प्रधान साधना विधियों का लक्ष्य यही रहा है कि चित् को आकुलता, उद्विग्नता या तनावों से मुक्त करके, उसे निराकुल, अनुद्विग्न चित्तदशा या समाधिभाव में स्थित किया जाये। इसके लिये साधना विधियों का लक्ष्य निर्विकार और निर्विकल्प समता युक्त चित्त की उपलब्धि ही है। इसे ही समाधि सामायिक (प्राकृत समाधि) कहा गया है। ध्यान इसी समाधि या निर्विकल्प चित्त की उपलब्धि का अभ्यास है। यही कारण है कि वे सभी साधना पद्धतियाँ जो चित्त को अनुद्विग्न, निराकुल, निर्विकार और निर्विकल्प या दूसरे शब्दों में समत्व-युक्त बनाना चाहती हैं, ध्यान को अपनी साधना में अवस्य स्थान देती हैं।

ध्यान का स्वरूप एवं प्रक्रिया - जैनाचार्यों, ने ध्यान को 'चिन्तानिरोध' कहा है ^(१२)। चिन्ता का निरोध हो जाना ही ध्यान है। दूसरे शब्दों में यह मन की चंचलता को समाप्त करने का अभ्यास है। जब ध्यान सिद्ध हो जाता है तो चित्त की चंचलता स्वतः ही समाप्त हो जाती है। योगदर्शन में 'योग' को परिभाषित करते हुए भी कहा गया है कि चित्तवृत्ति का निरोध की 'योग' है। स्पष्ट है कि चित्त की चंचलता की समाप्ति या चित्तवृत्ति का विरोध ध्यान से ही सम्भव है। अतः ध्यान को साधना का आवश्यक अंग माना गया है।

गीता में मन की चंचलता के निरोध को वायु को रोकने के समान अति कठिन माना गया है ^(१३)। उसमें उसके निरोध के दो उपाय बताते गये हैं - १ अभ्यास और २ वैराग्य। उत्तराध्ययन में मन रूपी दुष्ट अश्व को निग्रहीत करने के लिये श्रुत रूपी रस्सियों का प्रयोग आवश्यक बताया गया ^(१४) है। चंचलचित्त की संकल्प-विकल्पात्मक तरंगे या वासनाजन्य आवेग सहज ही समाप्त नहीं हो जाते हैं। पहले उतनी भाग-दौड़ को समाप्त करना होता है। किन्तु यह वासनोन्मुख सक्रिय-मन या विक्षोभित चित्त निरोध के संकल्प मात्र से नियन्त्रित नहीं हो पाता है। पुनः यदि उसे बलात् रोकने का प्रयत्न किया जाता है तो वह

१० उत्तराध्ययन सूत्र, २३/५-५६

११ भगवद्गीता ६/३४

१२ तत्त्वार्थ सूत्र, ९/२७

१३ गीता ६/३४

१४ उत्तराध्ययन सूत्र १२३/५६

अधिक विक्षुब्ध होकर मनुष्य को पालनपन के कगार पर पहुँचा देता है जैसे तीव्र गति से चलते हुए वाहन को यकायत रोकने का प्रयत्न भयंकर दुर्घटना का ही कारण बनता है, उसी प्रकार चित्त की चंचलता का यकायक निरोध विक्षिप्ता का कारण बनता है। प्रथमतः मानव मन की गतिशीलता को नियंत्रित कर उसकी गति की दिशा बदलनी होती है। ज्ञान या विवेकरूपी लगाम के द्वारा उस मन रूपी दुष्ट अश्व को कुमार्ग से समार्ग की दिशा में मोड़ा जाता है। इससे उसकी सक्रियता यकायक समाप्त तो नहीं होती, किन्तु उसकी दिशा बदल जाती है। ध्यान में भी यही करना होता है। ध्यान में सर्व प्रथम मन को वासना रूपी विकल्पो से मोड़कर धर्म-चिन्तन में लगाया जाता है फिर क्रमशः इस चिन्तन की प्रक्रिया को शिथिल या क्षीण किया जाता है। अन्त में एक ऐसी स्थिति आ जाता है जब मन पूर्णतः निष्क्रिय हो जाता है, उसकी भागदौड़ समाप्त हो जाती है। ऐसा मन, मन न रहकर 'अमन' हो जाता है। मन को 'अमन' बना देना ही ध्यान है।

इस प्रकार चैतसिक तनावों या विक्षोभों को समाप्त करने के लिये अथवा निर्विकल्प और शान्त चित्त दशा की उपलब्धि के लिए ध्यान साधना आवश्यक है। उसके द्वारा संकल्प-विकल्पो में विभक्त चित्त को केन्द्रित किया जाता है। विविध वासनाओं, आकांक्षाओं और इच्छाओं के कारण चेतना-शक्ति अनेक रूपों में विखण्डित होकर स्वतः में ही संघर्षशील हो जाती है ^(१५)। उस शक्ति का यह विखराव ही हमारा आध्यात्मिक पतन है। ध्यान इस चैतसिक विघटन को समाप्त कर चेतना को केन्द्रित करता है। चूंकि वह विघटित चेतना को संगठित करता है इसीलिये वह योग (unification) है। ध्यान चेतना के संगठन की कला है। संगठित चेतना ही शक्ति स्रोत है, इसीलिये यह माना जाता है कि ध्यान से अनेक आत्मिक लब्धियाँ या सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

चित्तधारा जब वासनाओं एवं आकांक्षाओं के मार्ग से बहती है तो वह वासनाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं की स्वाभाविक बहुविधता के कारण अनेक धाराओं में विभक्त होकर निर्बल हो जाती है। ध्यान इन विभक्त एवं निर्बल चित्तधाराओं को एक दिशा में मोड़ने का प्रयास है। जब ध्यान की साधना या अभ्यास से चित्तधारा एक दिशा में बहने लगती है, तो न केवल वह सबल होती है, अपितु नियंत्रित होने से उसकी दिशा भी सम्यक् होती है। जिस प्रकार बाँध विकीर्ण जलधाराओं को एकत्र कर उन्हें सबल और सुनियोजित करता है, उसी प्रकार ध्यान भी हमारी चेतनधारा को सबल और सुनियोजित करता है। जिस प्रकार बाँध द्वारा सुनियोजित जल-शक्ति का सम्यक् उपयोग सम्भव हो पाता है, उसी प्रकार ध्यान द्वारा सुनियोजित चेतनशक्ति का सम्यक् उपयोग सम्भव है।

संक्षेप में आत्मशक्ति के केन्द्रीकरण एवं उसे सम्यक् दिशा में नियोजित करने के लिए ध्यान साधना आवश्यक है। वह चित्त वृत्तियों की निरर्थक भागदौड़ को समाप्त कर हमें मानसिक विक्षोभों एवं विकारों से मुक्त रखता है। परिणामतः वह आध्यात्मिक शान्ति और निर्विकल्प चित्त की उपलब्धि का अन्यतम साधन है।

ध्यान के पारम्परिक एवं व्यावहारिक लाभ - ध्यानशतक (ज्ञाणाज्ज्ञयन) में ध्यान से होने वाले पारम्परिक एवं व्यावहारिक लाभों की विस्तृत चर्चा है। उसमें कहा गया है कि धर्मध्यान से शुभास्व,

संवर, निर्जरा और देवलोक के सुख प्राप्त होते हैं। शुक्ल ध्यान के भी प्रथम दो चरणों का परिणाम शुभास्रव एवं अनुत्तर देवलोक के सुख है, जबकि शुक्लध्यान के अन्तिम दो चरणों का फल मोक्ष य निर्वाण है। यहाँ यह स्मरण रखने योग्य है कि जब तक ध्यान में विकल्प है, आकांक्षा है, चाहे वह प्रशस्त ही क्यों नहीं हो तब तक वह शुभास्रव का कारण तो होगा ही। फिर भी यह शुभास्रव अन्ततोगत्वा मुक्ति का निमित्त होने से उपादेय ही माना गया है। ऐसा आस्रव मिथ्यात्व के अभाव के कारण संसार की अभिवृद्धि का कारण नहीं बनता है। (१६)

पुनः ध्यान के लाभों की चर्चा करते हुए उसमें कहा गया है कि जिस प्रकार जल वस्त्र के मल को धोकर उसे निर्मल बना देता है, उसी प्रकार ध्यानरूपी जल आत्मा के कर्मरूपी मल को धोकर उसे निर्मल बना देता है। जिस प्रकार अग्नि लोहे के मैल को दूर कर देती है, उसी प्रकार ध्यान रूपी अग्नि आत्मा पर लगे हुए कर्मरूपी मल को दूर कर देती है (१७)। जिस प्रकार वायु से प्रेरित अग्नि दीर्घकाल से संचित काष्ठ को जला देती है, उसी प्रकार ध्यानरूपी वायु से प्रेरित साधनारूपी अग्नि पूर्व भवों के संचित कर्म संस्कारों को नष्ट कर देती है (१८) जिस प्रकार वायु से ताड़ित मेघ शीघ्र ही विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार ध्यानरूपी वायु से ताड़ित कर्मरूपी मेघ शीघ्र विलीन हो जाते हैं (१९)। संक्षेप में ध्यान साधना से आत्मा कर्मरूपी मल एवं आवरण से मुक्त होकर अपनी शुद्ध निर्विकार ज्ञाता द्रष्टा अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

ध्यान के इन चार अलौकिक या आध्यात्मिक लाभों के अतिरिक्त ग्रन्थकार ने उसके ऐहिक, मनोवैज्ञानिक लाभों की भी चर्चा की है। वह कहता है कि जिसका चित्त ध्यान में संलग्न है, वह क्रोधादि कषायों से उत्पन्न होने वाले ईर्ष्या, विषाद, शोक आदि मानसिक दुःखों से पीड़ित नहीं होता है (२०) ग्रन्थकार के इस कथन का रहस्य यह है कि जब ध्यान में आत्मा अप्रमत्त चेता होकर ज्ञाता-द्रष्टा भाव में स्थित होता है, तो उसे अप्रमत्तता की स्थिति में न तो कषाय ही क्रियाशील होते हैं और न उनसे उत्पन्न होने वाले ईर्ष्या, द्वेष, विषाद आदि भाव ही उत्पन्न होते हैं। ध्यानी व्यक्ति पूर्व संस्कारों के कारण उत्पन्न होने वाले कषायों के विषाक को मात्र देखता है, किन्तु उच्च भावों में परिणत नहीं होता है। अतः काषायिक भावों की परिणति नहीं होने से उसके चित्त के मानसिक तनाव समाप्त हो जाते हैं। ध्यान मानसिक तनावों से मुक्ति का अन्यतम साधन है। ध्यानशतक (ज्ञाणाज्झयण) के अनुसार ध्यान से न केवल आत्म विशुद्धि और मानसिक तनावों से मुक्ति मिलती है, अपितु शारीरिक पीड़ाएँ भी कम हो जाती हैं। उसमें लिखा है कि जो चित्त ध्यान में अतिशय स्थिरता प्राप्त कर चुका है, वह शीत, उष्ण आदि शारीरिक दुःखों से भी विचलित नहीं होता है। वह उन्हें निराकुलतापूर्वक सहन कर लेता है (२१)। यह हमारा व्यावहारिक अनुभव है कि जब हमारी चित्तवृत्ति किसी विशेष दिशा में केन्द्रित होती है तो हम

१६ ध्यान शतक, (ज्ञाणाज्झयण), ९३-९६

१७ वही ९७-१००

१८ वही १०१

१९ वही १०२

२० ध्यानशतक १०३

२१ वही -१०४

शारीरिक पीड़ाओं को भूल जाते हैं, जैसे एक व्यापारी व्यापार में भूख-प्यास आदि को भूल जाता है। अतः ध्यान में दैहिक पीड़ाओं का एहसास भी अल्पतम हो जाता है। आचार्य भद्रबाहु ने कायोत्सर्ग, जो ध्यान साधना की अग्रिम स्थिति है, के लाभों की चर्चा करते हुए आवश्यक निर्युक्ति में लिखा है कि कायोत्सर्ग के निम्न पाँच लाभ हैं ^(२२) १. देह जाड्य शुद्धि-श्लेष्म एवं चर्बी के कम हो जाने से देह की जड़ता समाप्त हो जाती है। कायोत्सर्ग से श्लेष्म चर्बी आदि नष्ट होते हैं, अतः उनसे उत्पन्न होने वाली जड़ता भी नष्ट हो जाती है। २. मति जाड्य शुद्धि-कायोत्सर्ग में मन की प्रवृत्ति केन्द्रित हो जाती है, उससे बौद्धिक जड़ता क्षीण होती है। ३. सुख-दुःख तितिक्षा, (समताभाव) ४. कायोत्सर्ग में स्थित व्यक्ति अनुप्रेक्षाओं या भावनाओं का स्थिरतापूर्वक अभ्यास कर सकता है। ५. ध्यान-कायोत्सर्ग में शुभ ध्यान का अभ्यास सहज हो जाता है। इन लाभों में न केवल आध्यात्मिक लाभों की चर्चा है अपितु मानसिक और शारीरिक लाभों की भी चर्चा है। वस्तुतः ध्यान साधना की वह कला है जो न केवल चित्त की निरर्थक भाग-दौड़ को नियंत्रित करती है, अपितु वाचिक और कायिक (दैहिक) गतिविधियों को भी नियंत्रित कर व्यक्ति को अपने आप से जोड़ देती है। हमें यह एहसास होता है कि हम अस्तित्व चैतन्य और दैहिक गतिविधियों से भी ऊपर हैं और हम उनके न केवल साक्षी हैं, अपितु नियामक भी हैं।

ध्यान आत्म साक्षात्कार की कला - मनुष्य के लिये, जो कुछ भी श्रेष्ठतम और कल्याणकारी है, वह स्वयं अपने को जानना और अपने में जीना है। आत्म बोध से महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठतम अन्य कोई बोध है ही नहीं। आत्म साक्षात्कार या आत्मज्ञान ही साधना का सारतत्त्व है। साधना का अर्थ है अपने आप के प्रति जागना है। वह 'कोऽहं' से 'सोऽहं' तक की यात्रा है। साधना की इस यात्रा में अपने आप के प्रति जागना सम्भव होता है ध्यान के द्वारा। ध्यान में आत्मा, आत्मा के द्वारा आत्मा को जानता है। यह अपने आप के सम्मुख होता है। ध्यान से ज्ञाता अपनी ही वृत्तियों, भावनाओं, आवेगों और वासनाओं को ज्ञेय बनाकर वस्तुतः अपना ही दर्शन करता है। यद्यपि यह दर्शन तभी सम्भव होता है, जब हम इनका अतिक्रमण कर जाते हैं, अर्थात् इनके प्रति कर्ताभाव से मुक्त होकर साक्षी भाव जगाते हैं। अतः ध्यान आत्मा के दर्शन की कला है। ध्यान ही वह विधि है, जिसके द्वारा हम सीधे अपने ही सम्मुख होते हैं, इसे ही आत्म साक्षात्कार कहते हैं। ध्यान जीव में जिन का, आत्मा में परमात्मा का दर्शन कराता है।

ध्यान की इस प्रक्रिया में आत्मा के द्वारा परमात्मा (शुद्धात्मा) के दर्शन के पूर्व सर्व प्रथम तो हमें अपने 'वासनात्मक स्व' (Id) का साक्षात्कार होता है- दूसरे शब्दों में हम अपने ही विकारों और वासनाओं के प्रति जागते हैं। जागरण के इस प्रथम चरण में हमें उनकी विद्रुता का बोध होता है। हमें लगता है कि ये हमारे विकार भाव हैं -विभाव हैं, क्योंकि हम में ये 'पर' के निमित्त से होते हैं। यही विभाव दशा का बोध साधना का दूसरा चरण है। साधना के तीसरे चरण में साधक विभाव से रहित शुद्ध आत्म-दशा की अनुभूति करता है- यही परमात्म दर्शन है। स्वभावदशा में रमण है। यहाँ यह विचारणीय है कि ध्यान इस आत्म-दर्शन में कैसे सहायक होता है?

ध्यान में शरीर को स्थिर रखकर आँख बन्द करनी होती है। जैसे ही आँख बन्द होती है व्यक्ति का सम्बन्ध बाह्य जगत से टूटकर अन्तर्जगत से जुड़ता है, अन्तर का परिदृश्य सामने आता है। अब हमारी चेतना का विषय बाह्य वस्तुएं न होकर मनोसृजनाएं होती हैं। जब व्यक्ति इन मनोसृजनाओं

(संकल्पविकल्पो) का द्रष्टा बनता है, तो उसे एक ओर इनकी पर-निमित्तता (विभाव रूपता) का बोध होता है तथा दूसरी ओर अपने साक्षी स्वरूप का बोध होता है। आत्मा-अनात्म का विवेक या स्व पर के भेद का ज्ञान होता है। कर्ता-भोक्ता भाव के विकल्प क्षीण होने लगते हैं। एक निर्विकल्प आत्म दशा की अनुभूति होती है। दूसरे शब्दों में मन की भाग-दौड़ समाप्त हो जाती है। मनोसृजनाएं या संकल्प-विकल्प विलीन होने लगते हैं। चेतना की सभी विकलताएं समाप्त हो जाती हैं। मन आत्मा में विलीन हो जाता है। सहज-समाधि प्रकट होती है। इस प्रकार समस्त आकांक्षाओं, वासनाओं, संकल्प-विकल्पों एवं तनावों से मुक्त होने पर एक अपरिमित निरपेक्ष आनन्द की उपलब्धि होती है। आत्मा अपने चिदानन्द स्वरूप में लीन रहता है। इस प्रकार ध्यान आत्मा को परमात्मा या शुद्धात्मा से जोड़ता है। अतः वह आत्मसाक्षात्कार या परमात्मा के दर्शन की एक कला है।

ध्यान मुक्ति का अन्यतम कारण - जैनधर्म में ध्यान को मुक्ति का अन्यतम कारण माना जा सकता है। जैन दार्शनिकों ने आध्यात्मिक विकास के जिन १४ सोपानों (गुणस्थानों) का उल्लेख किया है, उनमें अन्तिम गुण-स्थान को अयोगी केवली गुण-स्थान कहा गया है। अयोगी केवली गुण-स्थान वह अवस्था है जिसमें वीतराग आत्मा अपने काययोग, वचनयोग, मनोयोग अर्थात् शरीर, वाणी और मन की गतिविधियों का विरोध कर लेता है और उनके विरुद्ध होने पर ही वह मुक्ति या निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। यह प्रक्रिया सम्भव है शुक्लध्यान के चतुर्थ चरण व्युपरतक्रिया निवृत्ति के द्वारा। अतः ध्यान मोक्ष का अन्यतम कारण है। जैन परम्परा में ध्यान में स्थित होने के पूर्व जिन पदों का उच्चारण किया जाता है वे निम्न हैं -

ठाणेणं मोणेणं ज्ञाणेणं अप्पाणं वोसरामि ^{२३} - अर्थात् “मैं शरीर से स्थिर होकर, वाणी से मौन होकर, मन को ध्यान में नियोजित कर शरीर के प्रति ममत्व का परित्याग करता हूँ।” यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि अप्पाणं वोसरामि का अर्थ, आत्मा का विसर्जन करना नहीं है, अपितु देह के प्रति अपनेपन के भाव का विसर्जन करना है। क्योंकि विसर्जन या परित्याग आत्मा का नहीं, अपनेपन के अर्थात् ममत्व बुद्धि का होता है। जब कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है तभी ध्यान की सिद्धि होती है और जब ध्यान सिद्ध हो जाता है तो आत्मा अयोग दशा अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अतः यह स्पष्ट है कि ध्यान मोक्ष का अन्यतम कारण है।

जैन परम्परा में ध्यान आन्तरिक तप का एक प्रकार है। इस आन्तरिक तप को आत्म-विशुद्धि का कारण माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि आत्मा तप से परिशुद्ध होती है ^(२४) सम्यक् ज्ञान से वस्तु स्वरूप का यथार्थ बोध होता है। सम्यक् दर्शन से तत्त्व-श्रद्धा उत्पन्न होती है। सम्यक् चारित्र आश्रव का निरोध करता है। किन्तु इन तीनों से भी मुक्ति सम्भव नहीं होती, मुक्ति का अन्तिम कारण तो निर्जरा है। सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा हो जाना ही मुक्ति है और कर्मों की तप से ही निर्जरा होती है। अतः ध्यान तप का एक विशिष्ट रूप है, जो आत्म शुद्धि का अन्यतम कारण है।

वैसे यह भी कहा जाता है कि आत्मा व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्ल ध्यान में आरुढ़ होकर ही मुक्ति को प्राप्त होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि जैन साधना विधि में ध्यान मुक्ति का अन्यतम

२३. आवश्यकसूत्र- आगारसूत्र (श्रमणसूत्र (अमरमुनि) प्र.सं.पृ.३७६)

२४. उत्तराध्ययनसूत्र, २८/३५

कारण है। ध्यान एक ऐसी अवस्था है जब आत्मा पूर्णरूप से 'स्व' में स्थित होता है और आत्मा का 'स्व' में स्थित होना ही मुक्ति या निर्वाण की अवस्था है। अतः ध्यान ही मुक्ति बन जाता है।

योग दर्शन में ध्यान की समाधि का पूर्व चरण माना गया है। उसमें भी ध्यान से ही समाधि की सिद्धि होती है। ध्यान जब अपनी पूर्णता पर पहुँचता है तो वही समाधि बन जाता है। ध्यान की इस निर्विकल्प दशा को न केवल जैन-दर्शन में, अपितु सम्पूर्ण श्रमण परम्परा में और न केवल सम्पूर्ण श्रमण परम्परा में अपितु सभी धर्मों की साधना विधियों में मुक्ति का अंतिम उपाय माना गया है। योग चाहे चित्त वृत्तियों के निरोध रूप में निर्विकल्प समाधि हो या आत्मा को परमात्मा से जोड़ने की कला हो, वह ध्यान ही है।

ध्यान और समाधि - सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थवार्तिक में समाधि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार कोष्ठागार में लगी हुई आग को शान्त करना आवश्यक है, उसी प्रकार मुनि-जीवन के शीलव्रतों में लगी हुई वासना या आकांक्षारूपी अग्नि का प्रशमन करना भी आवश्यक है। यही समाधि है।^(२५) घबला में आचार्य वीरसेन ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र में सम्यक् अवस्थिति को ही समाधि कहा है^(२६)। वस्तुतः चित्तवृत्ति का उद्वेलित होना या उद्विग्न होना ही असमाधि है और उनकी इस उद्विग्नता का समाप्त हो जाना ही समाधि है। उदाहरण के रूप में जब वायु के संयोग से जल तरंगायित होता है तो उस तरंगित जल में तल में रही हुई वस्तुओं का बोध नहीं होता, उसी प्रकार तनावयुक्त उद्विग्न चित्त में आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता है। चित्त की इस उद्विग्नता का या तनावयुक्त स्थिति का समाप्त होना ही समाधि है। ध्यान भी वस्तुतः चित्त की वह निष्कम्प अवस्था है जिसमें आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप का साक्षी होता है। वह चित्त की समत्वपूर्ण स्थिति है। अतः ध्यान और समाधि समानार्थ हैं, फिर भी दोनों में एक सूक्ष्म अन्तर है। वह अन्तर इस रूप में है कि ध्यान समाधि का साधन है और समाधि साध्य है। योगदर्शन के अष्टांगयोग में समाधि का पूर्व चरण ध्यान माना गया है। ध्यान जब सिद्ध हो जाता है, तब वह समाधि बन जाता है वस्तुतः दोनों एक ही हैं^(२७)। ध्यान की पूर्णता समाधि में है। यद्यपि दोनों में ही चित्तवृत्तियों की निष्कम्पता या समत्व की स्थिति आवश्यक है। एक में उस निष्कम्पता या समत्व का अभ्यास होता है और दूसरे में वह अवस्था सहज हो जाती है।

ध्यान और योग - यहाँ ध्यान का योग से क्या संबंध है, यह भी विचारणीय है। जैन परम्परा में सामान्यता मन, वाणी और शरीर की गतिशीलता को योग कहा जाता है^(२८)। उसके अनुसार सामान्य रूप से समग्र साधना और विशेष रूप से ध्यान-साधना का प्रयोजन योग निरोध ही है। वस्तुतः मानसिक, वाचिक और शारीरिक क्रियाओं में, जिन्हें जैन परम्परा में योग कहा गया है, मन की प्रधानता होती है। वाचिक योग और कायिक-योग, मनयोग पर ही निर्भर करते हैं। जब मन की चंचलता समाप्त होती है, तो सहज ही शारीरिक और वाचिक क्रियाओं में शैथिल्य आ जाता है, क्योंकि उनके मूल में व्यक्त या अव्यक्त

२५. तत्त्वार्थ वार्तिक ६/२४/८

२६. घबला पुस्तक ८ पृ. ८८

२७. -- तत्त्वार्थ राजवार्तिक ६/१/१२

२८. तत्त्वार्थसूत्र ६/१

मन ही है। अतः मन की सक्रियता के निरोध से ही योग-निरोध संभव है। योगदर्शन भी जो योग पर सर्वाधिक बल देता है, यह मानता है कि चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है ^(२९)। वस्तुतः जहाँ चित्त की चंचलता समाप्त होती है, वहीं साधना की पूर्णता है, और वहीं पूर्णता ध्यान है। चित्त की चंचलता अथवा मन की भाग-दौड़ को समाप्त करना ही जैन-साधना और योग-साधना दोनों का लक्ष्य है। इस दृष्टि से देखें तो जैनदर्शन में ध्यान की जो परिभाषा दी जाती है वही परिभाषा योग दर्शन में योग की दी जाती है। इस प्रकार ध्यान और योग पर्यायवाची बन जाते हैं।

योग शब्द का एक अर्थ जोड़ना भी है ^(३०)। इस दृष्टि से आत्मा को परमात्मा से जोड़ने की कला को योग कहा गया है और इसी अर्थ से योग को मुक्ति का साधन माना गया है। अपने इस दूसरे अर्थ में भी योग शब्द ध्यान का समानार्थक ही सिद्ध होता है, क्योंकि ध्यान ही साधक को अपने में ही स्थित परमात्मा (शुद्धात्मा) या मुक्ति से जोड़ता है। वस्तुतः जब चित्तवृत्तियों की चंचलता समाप्त हो जाती है, चित्त प्रशान्त और निष्कम्प हो जाता है, तो वही ध्यान होता है, वही समाधि होता है और उसे ही योग कहा जाता है। किन्तु जब कार्य-कारण भाव अथवा साध्य-साधन की दृष्टि से विचार करते हैं तो ध्यान साधन होता है, समाधि साध्य होती है। साधन से साध्य की उपलब्धि ही योग कही जाती है।

ध्यान और कायोत्सर्ग - जैन साधना में तप के वर्गीकरण में आभ्यन्तर तप के जो छह प्रकार बतलाए गये हैं, उनमें ध्यान और कायोत्सर्ग- इन दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया गया है ^(३१)। इसका तात्पर्य यह है कि जैन आचार्यों की दृष्टि में ध्यान और कायोत्सर्ग दो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ हैं। ध्यान चेतना को किसी विषय पर केन्द्रित करने का अभ्यास है, तो कायोत्सर्ग शरीर के नियन्त्रण का एक अभ्यास। यद्यपि यहाँ काया (शरीर) व्यापक अर्थ में ग्रहीत है। स्मरण रहे कि मन और वाक् ये शरीर के आश्रित ही हैं। शाब्दिक दृष्टि से कायोत्सर्ग शब्द का अर्थ होता है 'काया' का उत्सर्ग अर्थात् देह-त्याग। लेकिन जब तक जीवन है तब तक शरीर का त्याग तो संभव नहीं है। अतः कायोत्सर्ग का मतलब है देह के प्रति ममत्व का त्याग। दूसरे शब्दों में शारीरिक गतिविधियों का कर्ता बनकर द्रष्टा बन जाना। वह शरीर की मात्र ऐच्छिक गतिविधियों का नियन्त्रण है। शारीरिक गतिविधियाँ भी दो प्रकार की होती हैं : एक स्वचालित और दूसरी ऐच्छिक। कायोत्सर्ग में स्वचालित गतिविधियों का नहीं, अपितु ऐच्छिक गतिविधियों का नियन्त्रण किया जाता है। कायोत्सर्ग करने से पूर्व जो आगारसूत्र का पाठ बोला जाता है उसमें श्वसन-प्रक्रिया, छींक, जम्भाई आदि स्वचालित शारीरिक गतिविधियों का निरोध नहीं करने का ही स्पष्ट उल्लेख है ^(३२)। अतः कायोत्सर्ग ऐच्छिक शारीरिक गतिविधियों के निरोध का प्रयत्न है। यद्यपि ऐच्छिक गतिविधियों का केन्द्र मानवीय मन अथवा मानवीय चेतना ही है। अतः कायोत्सर्ग की प्रक्रिया ध्यान की प्रक्रिया के साथ अपरिहार्य रूप से जुड़ी हुई है।

एक अन्य दृष्टि से कायोत्सर्ग को देह के प्रति निर्ममत्व की साधना भी कहा जा सकता है। वह देह में रहकर भी कर्ताभाव से ऊपर उठकर द्रष्टाभाव में स्थित होना है। यह भी स्पष्ट है कि चित्तवृत्तियों के

२९. योगसूत्र (पंतजलि) १/२

३०. "युजपीयोगे" हेमचन्द्र, धातु माला, गण ७

३१. आवश्यक सूत्र-आगारसूत्र

३२. आवश्यक सूत्र- आगार सूत्र

विचलन में शरीर भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हम शरीर और इन्द्रियों के माध्यम से ही बाह्य विषयों से जुड़ते हैं और उनकी अनुभूति करते हैं। इस अनुभूति का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव हमारी चित्तवृत्ति पर पड़ता है। जो चित्त विचलन का या राग-द्वेष का कारण होता है।

चित्त (मन) और ध्यान - जैन दर्शन में मन की चार व्यवस्थाएँ- जैन, बौद्ध और वैदिक परम्पराओं में चित्त या मन ध्यान साधना की आधारभूमि है, अतः चित्त की विभिन्न व्यवस्थाओं पर व्यक्ति के ध्यान साधना के विकास को आँका जा सकता है। जैन परम्परा में आचार्य हेमचन्द्र ने मन की चार अवस्थाएँ मानी है - १. विक्षिप्त मन, २. यातायात मन, ३. श्लिष्ट मन और, ४. सुलीन मन ^(३३)।

१ -विक्षिप्त मन - यह मन की अस्थिर अवस्था है, इसमें चित्त चंचल होता है, इधर-उधर भटकता रहा है, इसके आलम्बन प्रमुखतया बाह्य विषय ही होते हैं। इसमें संकल्प-विकल्प या विचारों की भाग-दौड़ मची रहती है, अतः इस अवस्था में मानसिक शान्ति का अभाव होता है। यह चित्त पूरी तरह बहिर्मुखी होता है।

२ -यातायात मन - यातायात मन कभी बाह्य विषयों की ओर जाता है तो कभी अपने स्थिर होने का प्रयत्न करता है। यह योगाभ्यास के प्रारम्भ की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त अपने पूर्वाभ्यास के कारण बाहरी विषयों की ओर दौड़ता रहता है, वैसे थोड़े बहुत प्रयत्न से उसे स्थिर कर लिया जाता है। कुछ समय उस पर स्थिर रहकर पुनः बाह्य विषयों के संकल्प-विकल्प में उलझ जाता है। जब-जब कुछ स्थिर होता है तब मानसिक शान्ति एवं आनन्द का अनुभव करने लगता है। यातायात चित्त कथंचित् अन्तर्मुखी और कथंचित् बहिर्मुखी होता है।

३ -श्लिष्ट मन - यह मन की स्थिरता की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त की स्थिरता का आधार या आलम्बन विषय होता है। इसमें जैसे-जैसे स्थिरता आती है, आनन्द भी बढ़ता जाता है।

४- सुलीन मन - यह मन की वह अवस्था है, जिसमें संकल्प-विकल्प एवं मानसिक वृत्तियों का लय हो जाता है। इसे मन की निरुद्धावस्था भी कहा जा सकता है। यह परमानन्द की अवस्था है, क्योंकि इसमें सभी वासनाओं का विलय हो जाता है।

बौद्ध-दर्शन में चित्त की चार अवस्थाएँ - अभिधम्मत्थसंगहो के अनुसार बौद्ध दर्शन में भी चित्त (मन) चार प्रकार का है - १. कामावचर, २. रूपावचर, ३. अरूपावचर और ४. लोकोत्तर ^(३४)।

१ - कामावचर चित्त - यह चित्त की वह अवस्था है, जिसमें कामनाओं और वासनाओं का प्राधान्य होता है। इसमें वितर्क एवं विचारों की अधिकता होती है। मन सांसारिक भोगों के पीछे भटकता रहता है।

२ -रूपावचर चित्त - इस अवस्था में वितर्क-विचार तो होते हैं, लेकिन एकाग्रता का प्रयत्न भी होता है। चित्त का आलम्बन बाह्य स्थूल विषय ही होते हैं। यह योगाभ्यासी चित्त की प्राथमिक अवस्था है।

३३. योगशास्त्र, १२/२

३४. अभिधम्मत्थसंगहो, पृ.१

३ -अरूपावचर चित्त - इस अवस्था में चित्त का आलम्बन रूपवान् बाह्य पदार्थ नहीं है। इस स्तर पर चित्त की वृत्तियों में स्थिरता होती है लेकिन उसकी एकाग्रता निर्विषय नहीं होती। उसके विषय अत्यन्त सूक्ष्म जैसे अनन्त आकाश, अनन्त विज्ञान या अकिञ्चनता होते हैं।

४ -लोकोत्तर चित्त - इस अवस्था में वासना-संस्कार, राग-द्वेष एवं मोह का प्रहाण हो जाता है। चित्त विकल्पशून्य हो जाता है इस अवस्था की प्राप्ति कर लेने पर निश्चित रूप से अर्हत् पद एवं निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है।

योगदर्शन में चित्त की पाँच अवस्थाएँ - योगदर्शन में चित्तभूमि (मानसिक अवस्था) के पाँच प्रकार हैं - १. क्षिप्त, २. मूढ़, ३. विक्षिप्त, ४. एकाग्र और ५. निरुद्ध।^(३५)

१ -क्षिप्त चित्त - इस अवस्था में चित्त रजोगुण के प्रभाव में रहता है और एक विषय से दूसरे विषय पर दौड़ता रहता है। स्थिरता नहीं रहती है। यह अवस्था योग के अनुकूल नहीं है, क्योंकि इसमें मन और इन्द्रियों पर संयम नहीं रहता।

२ -मूढ़ चित्त - इस अवस्था में तम की प्रधानता रहती है और इससे निद्रा, आलस्य आदि का प्रादुर्भाव होता है। निद्रावस्था में चित्त की वृत्तियों का कुछ काल के लिए तिरोभाव हो जाता है, परन्तु यह अवस्था योगावस्था नहीं है। क्योंकि इसमें आत्मा साक्षी भाव में नहीं होता है।

३ -विक्षिप्त चित्त - विक्षिप्तावस्था में मन थोड़ी देर के लिए एक विषय में लगता है, पर तुरन्त ही अन्य विषय की ओर दौड़ जाता है और पहला विषय छूट जाता है। यह चित्त की आंशिक स्थिरता की अवस्था है।

४ -एकाग्र चित्त - यह अवस्था है, जिसमें चित्त देर तक एक विषय पर लगा रहता है। यह किसी वस्तु पर मानसिक केन्द्रीकरण या ध्यान की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त किसी विषय पर विचार या ध्यान करता रहता है। इसलिए इसमें भी सभी चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं होता, तथापि यह योग की पहली सीढ़ी है।

५ -निरुद्ध चित्त - इस अवस्था में चित्त की सभी वृत्तियों का (ध्येय-विषय तक का भी) लोप हो जाता है और चित्त अपनी स्वाभाविक स्थिर, शांत अवस्था में आ जाता है।

जैन, बौद्ध और योग दर्शन में मन की इन विभिन्न अवस्थाओं के नामों में चाहे अन्तर हो, लेकिन उनके मूलभूत दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है।

जैन दर्शन	बौद्ध दर्शन	योगदर्शन
विक्षिप्त	कामावचर	क्षिप्त एवं मूढ़
यातायात	रूपावचर	विक्षिप्त
श्लिष्ट	अरूपावचर	एकाग्र
सुलीन	लोकोत्तर	निरुद्ध

जैनदर्शन का विक्षिप्त मन, बौद्ध दर्शन का कामावचर चित्त और योगदर्शन के क्षिप्त और मूढ़ चित्त समानार्थ है, क्योंकि सभी के अनुसार इस अवस्था में चित्त में वासनाओं एवं कामनाओं की बहुलता होती है। इसी प्रकार जैन दर्शन का यातायात मन, बौद्ध दर्शन का रूपावचर चित्त और योगदर्शन का विक्षिप्त चित्त भी समानार्थ है, सामान्यतया सभी के अनुसार इस अवस्था में चित्त में अल्पकालिक स्थिरता होती है तथा वासनाओं के वेग में थोड़ी कमी अवश्य हो जाती है। इसी प्रकार जैनदर्शन का श्लिष्ट मन, बौद्धदर्शन का अरूपावचर चित्त और योगदर्शन का एकाग्रचित्त भी समान ही है। सभी ने इसको मन की स्थिरता की अवस्था कहा है। चित्त की अन्तिम अवस्था जिसे जैनदर्शन में सुलीन मन, बौद्धदर्शन लोकोत्तर चित्त और योगदर्शन में निरुद्ध चित्त कहा गया है, भी समान अर्थ के द्योतक हैं। इसमें वासना, संस्कार एवं संकल्प-विकल्प का पूर्ण अभाव हो जाता है। ध्यान साधना का लक्ष्य चित्त की इस वासना संस्कार एवं संकल्प-विकल्प से रहित अवस्था को प्राप्त करना है। आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं कि क्रम और अभ्यास बढ़ाते हुए अर्थात् विक्षिप्त से यातायात चित्त का, यातायात से श्लिष्ट का और श्लिष्ट से सुलीन चित्त का अभ्यास करना चाहिए। इस तरह अभ्यास करने से निरालम्बन ध्यान होने लगता है। निरालम्बन ध्यान से समत्व प्राप्त करके परमानन्द का अनुभव करना चाहिए। योगी को चाहिए कि वह बहिरात्मभाव का त्याग करके अन्तरात्मा के साथ सामीप्य स्थापित करे और परमात्ममय बनने के लिए निरन्तर परमात्मा का ध्यान करे (३६)।

इस प्रकार चित्त-वृत्तियों या वासनाओं का विलयन ही समालोच्य ध्यान परम्पराओं का प्रमुख लक्ष्य रहा है क्योंकि वासनाओं द्वारा ही मन-क्षोभित होता है, जिससे चेतना के समत्व का भंग होता है। ध्यान इसी समत्व या समाधि को प्राप्त करने की साधना है।

ध्यान का सामान्य अर्थ - ध्यान शब्द का सामान्य अर्थ चेतना का किसी एक विषय या बिन्दु पर केन्द्रित होना है (३७)। चेतना जिस विषय पर केन्द्रित होती है वह प्रशस्त या अप्रशस्त दोनों ही हो सकता है। इसी आधार पर ध्यान के दो रूप निर्धारित हुए १ प्रशस्त और २ अप्रशस्त। उसमें भी अप्रशस्त ध्यान के पुनः दो रूप माने गये - १ आर्त और २ रौद्र। प्रशस्त ध्यान के भी दो रूप माने गये - १ धर्म और २ शुक्ल। जब चेतना राग या आसक्ति में डूब कर किसी वस्तु और उसकी उपलब्धि की आकांक्षा पर केन्द्रित होती है तो उसे आर्त ध्यान कहा जा सकता है। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की आकांक्षा या प्राप्तवस्तु के वियोग की संभावना की चिन्ता में चित्त का डूबना ही आर्तध्यान है (३८)। आर्तध्यान चित्त के अवसाद विषाद की अवस्था है।

जब कोई उपलब्ध अनुकूल विषयों के वियोग का या अप्राप्त अनुकूल विषयों की उपलब्धि में अवरोध का निमित्त बनता है तो उस पर आक्रोश का जो स्थायीभाव होता है, वही रौद्रध्यान है (३९)। इस प्रकार आर्तध्यान रागमूलक होता है और रौद्र ध्यान द्वेष मूलक होता है। राग-द्वेष के निमित्त से उत्पन्न होने के कारण ये दोनों ध्यान संसार के जनक हैं अतः अप्रशस्त माने गये हैं। इनके विपरीत धर्मध्यान और शुक्लध्यान प्रशस्त माने गये हैं।

३६. योगशास्त्र, १२/५-६

३७. तत्त्वार्थसूत्र ९/२७

३८. वही ९/३१

३९. वही ९/३६

मेरी दृष्टि में स्व-पर के लिये कल्याणकारी विषयों पर चित्तवृत्ति का स्थित होना धर्मध्यान है। यह लोकमंगल और आत्म विशुद्धि का साधक होता है। चूंकि धर्मध्यान में कर्ता-भोक्ताभाव होता है, अतः यह शुभ-आश्रव का कारण होता है। जब आत्मा या चित्त की वृत्तियाँ साक्षीभाव या ज्ञाता-द्रष्टा भाव में अवस्थित होती हैं तब साधक न तो कर्ताभाव से जुड़ता है और न भोक्ताभाव से जुड़ता है, यही साक्षी भाव की अवस्था ही शुक्ल ध्यान है। इसमें चित्त शुभ-अशुभ दोनों से ऊपर उठ जाता है।

ध्यान शब्द की जैन परिभाषाएँ - सामान्यतया अध्यवसायों (चित्तवृत्ति) का स्थिर होना ही ध्यान कहा गया है। दूसरे शब्दों में मन की एकाग्रता को प्राप्त होना ही ध्यान है। इसके विपरीत जो मन चंचल है उसे भावना, अनुप्रेक्षा अथवा चिन्ता कहा जाता है ^(४०)। इस प्रकार ध्यान वह स्थिति है जिसमें चित्त वृत्ति की चंचलता समाप्त हो जाती है और वह किसी एक विषय पर केन्द्रित हो जाती है। तत्त्वार्थसूत्र में, ध्यान को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि अनेक अर्थों का आलम्बन देने वाली चिन्ता के निरोध ध्यान है ^(४१)। दूसरे शब्दों में जब चिन्तन को अन्यान्य विषयों से हटाकर किसी एक ही वस्तु में केन्द्रित कर दिया जाता है तो वह ध्यान बन जाता है। यद्यपि भगवती आराधना में एक ओर चिन्ता निरोध से उत्पन्न एकाग्रता को ध्यान कहा गया है किन्तु दूसरी ओर उसमें राग-द्वेष और मिथ्यात्व से रहित होकर पदार्थ की यथार्थता को ग्रहण करने वाला जो विषयान्तर के संचार से रहित ज्ञान होता है, उसे ध्यान कहा गया है ^(४२)। आचार्य कुन्दकुन्द पंचास्तिकाय में ध्यान को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण और अन्य द्रव्य के संसर्ग से रहित चेतना की जो अवस्था है वही ध्यान है ^(४३)। इस गाथा में पण्डित बालचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री ने दंसणणाण समगं का अर्थ सम्पक्-दर्शन व सम्यक ज्ञान से परिपूर्ण किया है, किन्तु मेरी दृष्टि में यह अर्थ उचित नहीं है। दर्शन और ज्ञान की समग्रता (समगं) का अर्थ है ज्ञान का भी निर्विकल्प अवस्था में होना। सामान्यतया ज्ञान विकल्पात्मक होता है और दर्शन निर्विकल्प। किन्तु जब ज्ञान चित्त की विकल्पात्मक होता है और दर्शन निर्विकल्प। किन्तु जब ज्ञान चित्त की विकल्पता से रहित होकर दर्शन से अभिन्न हो जाता है, तो वही ध्यान हो जाता है। इसीलिए अन्यत्र कहा भी है कि ज्ञान से ही ध्यान की सिद्धि होती है ^(४४)। ध्यान शब्द की इन परिभाषाओं में हमें स्पष्ट रूप से एक विकास क्रम परिलक्षित होता है। फिर भी मूलरूप में ये परिभाषाएं एक दूसरे की विरोधी नहीं हैं। चित्त का विविध विकल्पों से रहित होकर एक विकल्प पर स्थिर हो जाना और अन्त में निर्विकल्प हो जाना ही ध्यान है। क्योंकि ध्यान की अन्तिम अवस्था में सभी विकल्प समाप्त हो जाते हैं।

ध्यान का क्षेत्र - ध्यान से साधन को दो प्रकार के माने गये हैं एक बहिरंग और दूसरा-अन्तरंग। ध्यान के बहिरंग साधनों में ध्यान के योग्य स्थान (क्षेत्र), आसन, काल आदि का विचार किया जाता है। और अन्तरंग साधनों में ध्येय विषय और ध्याता के सम्बन्ध में विचार किया गया है कि ध्यान के योग्य क्षेत्र कौन से हो सकते हैं। आचार्य शुमचन्द्र लिखते हैं कि जो स्थान निकृष्ट स्वभाववाले लोगों से सेवित

४०. ध्यानस्तव (जिनभद्र वीरसेवा मंदिर) २

४१. तत्त्वावलि सूत्र ९/२७

४२. भगवती आराधना विजयोदया टीका- देखे ध्यानशतक प्रस्तावना पृ. २६

४३. पंचास्तिकाय १५२

४४. गाणेण ज्ञाणसिद्धि

हो, दुष्ट राजा से शासित हो, पाखण्डियों के समूह से व्याप्त हो, जुआरियों, मद्यपियों और व्यभिचारों से युक्त हो और जहाँ का वातावरण अशान्त हो, जहाँ सेना का संचार हो रहा हो, गीत, वादित्र आदि के स्वर गूँज रहे हों, जहाँ जन्तुओं तथा नपुंसक आदि निकृष्ट प्रकृति के जनों का विचरण हो वह स्थान ध्यान के योग्य नहीं है। इसी प्रकार कांटे, पत्थर, कीचड़, हड्डी, रुधिर आदि से दूषित तथा कौए, उल्लू, शृगाल, कुत्तों आदि से सेवित स्थान भी ध्यान के योग्य नहीं होते (४५)।

यह बात स्पष्ट है कि परिवेश का प्रभाव हमारी चित्तवृत्तियों पर पड़ता है। धर्म स्थलों एवं नीरव साधना-क्षेत्रों आदि में जो निराकुलता होती है तथा उनमें जो एक विशिष्ट प्रकार की शान्ति होती है, वह ध्यान-साधना के लिए उपयुक्त होती है। अतः ध्यान करते समय साधक को क्षेत्र का विचार करना आवश्यक है। संयमी साधक का समुद्र तट, नदी तट, अथवा सरोवर के तट, पर्वत शिखर अथवा गुफा किंवा प्राकृतिक दृष्टि से नीरव और सुन्दर प्रदेशों को अथवा जिनालय आदि धर्म स्थानों को ही ध्यान के क्षेत्र के रूप में चुनना चाहिए। ध्यान की दिशा के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहा गया है कि ध्यान के लिए पूर्व या उत्तर दिशा अभिमुख होकर बैठना चाहिये।

ध्यान के आसन - ध्यान के आसनों को लेकर भी जैन ग्रन्थों में पर्याप्त रूप से विचार हुआ है। सामान्य रूप से पद्मासन, पर्यकासन एवं खड्गासन ध्यान के उत्तम आसन माने गये हैं। ध्यान के आसनों के संबंध में जैन आचार्यों की मूलदृष्टि यह है कि जिन आसनों से शरीर और मन पर तनाव नहीं पड़ता हो ऐसे सुखासन ही ध्यान के योग्य आसन माने जा सकते हैं। जिन आसनों का अभ्यास साधक ने कर रखा हो और जिन आसनों में वह अधिक समय तक सुखपूर्वक बैठ सकता हो तथा जिनके कारण उसका शरीर खेद को प्राप्त नहीं होता हो, वे ही आसन ध्यान के लिये श्रेष्ठ आसन हैं (४६)। सामान्यतया जैन परम्परा में पद्मासन और खड्गासन ही ध्यान के अधिक प्रचलित आसन रहे हैं (४७)। किन्तु महावीर के द्वारा गोदुहासन में ध्यान करके केवल ज्ञान प्राप्त करने के भी उल्लेख है (४८)। समाधिकरण या शारीरिक अशक्ति की स्थिति में लेटे-लेटे भी ध्यान किया जा सकता है।

ध्यान का काल - सामान्यतया सभी कालों में शुभ भाव संभव होने से ध्यान साधना का कोई विशिष्ट काल नहीं कहा गया है। किन्तु जहाँ तक मुनि समाचारी का प्रश्न है, उत्तराध्ययन में सामान्यरूप में मध्याह्न और मध्य रात्रि को ध्यान के लिए उपयुक्त समय बताया गया है (४९)। उपासकदशांक में सकडाल पुत्र के द्वारा मध्याह्न में ध्यान करने का निर्देश है (५०)। कही-कहीं प्रातः काल और सन्ध्याकाल में भी ध्यान करने का विधान मिलता है।

ध्यान की समयावधि - जैन आचार्यों ने इस प्रकार पर भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है कि किसी व्यक्ति की चित्तवृत्ति अधिकतम कितने समय तक एक विषय पर स्थिर रह सकती है। इस संबंध में उनका निष्कर्ष यह है कि किसी एक विषय पर अखण्डित रूप से चित्तवृत्ति अन्तर्मुहुर्त से अधिक स्थिर

४५. ज्ञानार्णव २७/२३-३२

४६. ज्ञानार्णव २८/११

४७. ज्ञानार्णव - २८/१०

४८. कल्पसूत्र - १२०

४९. उत्तराध्ययन सूत्र २६/१८

५०. उपासक दशांग ८/१८२

नहीं रह सकती। अन्तर्मुहूर्त से उनका तात्पर्य एक क्षण से कुछ अधिक तथा ४८ मिनट से कुछ कम है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ध्यान अन्तर्मुहूर्त से अधिक समय तक नहीं किया जा सकता है। यह सत्य है कि इतने काल के पश्चात् ध्यान खण्डित होता है, किन्तु चित्तवृत्ति को पुनः नियोजित करके ध्यान को एक प्रहर या रात्रिपर्यंत भी किया जा सकता है।

ध्यान और शरीर रचना - जैन आचार्यों ने ध्यान का संबंध शरीर रचना से भी जोड़ा है। यह अनुभूत तथ्य है कि सबल, स्वस्थ और सुगठित शरीर ही ध्यान के लिए अधिक योग्य होता है। यदि शरीर निर्बल है, सुगठित नहीं है तो शारीरिक गतिविधियों को अधिक समय तक नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है और यदि शारीरिक गतिविधियाँ नियन्त्रित नहीं रहेगी तो चित्त भी नियन्त्रित नहीं रहेगा। शरीर और चित्तवृत्तियों में एक गहरा संबंध है। शारीरिक विकलताएं चित्त को विकल बना देती हैं और चैत्सिक विकलताएं शरीर को। अतः यह माना गया है कि ध्यान के लिए सबल निरोग और सुगठित शरीर आवश्यक है। तत्त्वार्थसूत्र में तो ध्यान की परिभाषा देते हुए स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि उत्तम संहनन वाले का एक विषय में अंतकरण की वृत्ति का नियोजन ध्यान है ^(५१)। जैन आचार्य यह मानते हैं कि छः प्रकार की शारीरिक संरचना में से वज्रवर्षभनारांच, अर्धवज्रवर्षभनारांच, और नारांच और अर्धनारांच, ये तीन चार शारीरिक संरचनाएँ ही (संहनन) ध्यान के योग्य होती हैं ^(५२)। यद्यपि हमें यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि शारीरिक संरचना का यह संबंध मुख्यरूप से प्रशस्त ध्यानों से ही है, अप्रशस्त ध्यानों से नहीं है। यह सत्य है कि शरीर चित्तवृत्ति की स्थिरता का मुख्य कारण होता है। अतः ध्यान की वे स्थितियाँ जिनका विषय प्रशस्त होता है और जिनके लिए चित्तवृत्ति की अधिक समय तक स्थिरता आवश्यक होती है वे केवल सबल शरीर में ही सम्भव होती हैं। किन्तु अप्रशस्त आर्त, रौद्र आदि ध्यान तो निर्बल शरीर वालों को ही अधिक होते हैं। अशक्त या दुर्बल व्यक्ति ही अधिक चिन्तित एवं चिड़चिड़ा होता है।

ध्यान किसका? - ध्यान के सन्दर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि ध्यान किसका किया जाये? दूसरे शब्दों में ध्येय या ध्यान का आलम्बन क्या है? सामान्य दृष्टि से विचार करने पर तो किसी भी वस्तु या विषय को ध्येय ध्यान के आलम्बन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि सभी वस्तुओं या विषयों में कम-अधिक रूप में ध्यानाकर्षण की क्षमता तो होती ही है। चाहे संसार के सभी विषय ध्यान के आलम्बन होने की पात्रता रखते हो, किन्तु उन सभी को ध्यान का आलम्बन नहीं बनाया जा सकता है। व्यक्ति के प्रयोजन के आधार पर ही उनमें से कोई एक विषय ही ध्यान का आलम्बन बनता है। अतः ध्यान के आलम्बन का निर्धारण करते समय यह विचार करना आवश्यक होता है कि ध्यान का उद्देश्य या प्रयोजन क्या है? दूसरे शब्दों में ध्यान हम किसलिए करना चाहते हैं? इसका निर्धारण सर्वप्रथम आवश्यक होता है। वैसे तो संसार के सभी विषय चित्त को केन्द्रित करने की सामर्थ्य रखते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि बिना किसी पूर्व विचार के उन्हें ध्यान का आलम्बन अथवा ध्येय बनाया जाये। किसी स्त्री का सुन्दर शरीर ध्यानाकर्षण या ध्यान का आलम्बन होने की योग्यता तो रखता है किन्तु जो साधक ध्यान के माध्यम से विक्षोभ या तनावमुक्त होना चाहता है, उसके लिए यह उचित नहीं होगा कि वह स्त्री के सुन्दर शरीर को अपने ध्यान का विषय बनाये। क्योंकि उसे ध्यान का विषय बनाने से उसके मन में उसके प्रति रागात्मकता उत्पन्न होगी, वासना जगेगी और पाने की आकांक्षा

५१. तत्त्वार्थसूत्र - ९/१७

५२. तत्त्वार्थ स्वोपज्ञ भाष्य, उमास्वाति ९/२७

या भोग की आकांक्षा से चित्त में विक्षोभ पैदा होगा। अतः किसी भी वस्तु को ध्यान का आलम्बन बनाने के पूर्व यह विचार करना आवश्यक होता है कि हमारे ध्यान का प्रयोजन या उद्देश्य क्या है? जो व्यक्ति अपनी वासनाओं का पोषण चाहता है, वही स्त्री-शरीर के सौन्दर्य को अपने ध्यान का आलम्बन बनाता है और उसके माध्यम से आर्तध्यान का भागीदार बनता है। किन्तु जो भोग के स्थान पर त्याग और वैराग्य को अपने जीवन का लक्ष्य बनाना चाहता है, जो समाधि का इच्छुक है, उसके लिए स्त्री-शरीर की वीभत्सता और विद्रूपता ही ध्यान का आलम्बन होगी। अतः ध्यान के प्रयोजन के आधार पर ही ध्येय का निर्धारण करना होता है। पुनः ध्यान की प्रशस्तता और अप्रशस्तता भी उसके ध्येय या आलम्बन पर आधारित होती है, अतः प्रशस्त ध्यान के साधक अप्रशस्त विषयों को अपने ध्यान का आलम्बन या ध्येय नहीं बनाते हैं।

जैन दार्शनिकों की दृष्टि में प्राथमिक स्तर पर ध्यान के लिए किसी ध्येय या आलम्बन का होना आवश्यक है, क्योंकि बिना आलम्बन ही चित्त की वृत्तियों को केन्द्रित करना सम्भव नहीं होता है। वे सभी विषय और वस्तुएं जिनमें व्यक्ति का मन रम जाता है, ध्यान का आलम्बन बनने की योग्यता तो रखती हैं किन्तु उनमें से किसी एक को अपने ध्यान का आलम्बन बनाते समय व्यक्ति को यह विचार करना होता है कि उससे वह राग की ओर जायेगा या विराग की ओर, उसके चित्त में वासना और विक्षोभ जागेंगे या समाधि सधेगी। यदि साधक का उद्देश्य ध्यान के माध्यम से चित्त-विक्षोभों को दूर करके समाधि लाभ या समता-भाव को प्राप्त करना है तो उसे प्रशस्त विषयों को ही अपने ध्यान का आलम्बन बनाना होगा। प्रशस्त आलम्बन ही व्यक्ति को प्रशस्त ध्यान की दिशा की ओर ले जाता है।

ध्यान के आलम्बन के प्रशस्त विषयों में परमात्मा या ईश्वर का स्थान सर्वोपरि माना गया है। जैन दार्शनिकों ने भी ध्यान के आलम्बन के रूप में वीतराग परमात्मा को ध्येय के रूप में स्वीकार किया है (५३)। चाहे ध्यान पदस्थ हो या पिण्डस्थ, रूपस्थ हो या रूपातीत, ध्येय तो परमात्मा ही है। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जैनधर्म में आत्मा और परमात्मा भिन्न नहीं हैं। आत्मा की शुद्धदशा ही परमात्मा है (५४)। इसलिए जैन दर्शन में ध्याता और ध्येय अभिन्न हैं। साधक आत्मा ध्यान-साधना में अपने ही शुद्ध स्वरूप को ध्येय बनाता है। आत्मा, आत्मा के द्वारा आत्मा का ही ध्यान करता है (५५)। जिस परमात्मा स्वरूप को ध्याता ध्येय के रूप में स्वीकार करता है वह उसका अपना ही शुद्ध स्वरूप है (५६)। पुनः ध्यान में जो ध्येय बनता है वह वस्तु नहीं, चित्त की वृत्ति होती है। ध्यान में चित्त ही ध्येय का आकार ग्रहण करके हमारे सामने उपस्थित होता है अतः ध्याता भी चित्त है और ध्येय भी चित्त है। जिसे हम ध्येय कहते हैं वह हमारा अपना ही निज रूप है, हमारा अपना ही प्रोजेक्सन (Projection) है। ध्यान वह कला है जिसमें ध्याता अपने को ही ध्येय बनाकर स्वयं उसका साक्षी बनता है। हमारी वृत्तियाँ ही हमारे ध्यान का आलम्बन होती हैं और उनके माध्यम से हम अपना ही दर्शन करते हैं।

ध्यान के अधिकारी- ध्यान को व्यापक अर्थों में ग्रहण करने पर सभी व्यक्ति ध्यान के अधिकारी माने जा सकते हैं, क्योंकि जैन दर्शन के अनुसार आर्त और रौद्र ध्यान तो निम्नतम प्राणियों में भी पाया जाता है। अपने व्यापक अर्थ में ध्यान में प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों ही प्रकार के ध्यानों का समावेश

५३. ज्ञानार्णव - ३२/९५, ३९/१-८, मोक्खपाहुड ७

५४. अप्पा सो परमप्पा

५५. तत्त्वानुशासन ७४

५६. मोक्खपाहुड ५

होता है। अतः हमें यह मानना होता है कि इन अप्रशस्त ध्यानों की पात्रता तो आध्यात्मिक दृष्टि से अविकसित या अपूर्ण रूप में सभी प्राणियों में विकसित किसी न किसी रूप में रही हुई है। नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि सभी में आर्तध्यान और रौद्रध्यान पाये जाते हैं। किन्तु जब हम ध्यान का तात्पर्य केवल प्रशस्त ध्यान अर्थात् धर्मध्यान और शुक्लध्यान से लेते हैं तो हमें यह मानना होगा कि इन ध्यानों के अधिकारी सभी प्राणी नहीं हैं। उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में किस ध्यान का कौन अधिकारी है इसका उल्लेख किया है । इसकी विशेष चर्चा हमने ध्यान के प्रकारों के प्रसंग में की है।^(५७) साधारणतया चतुर्थ गुणस्थान अर्थात् सम्यक्दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् ही व्यक्ति धर्मध्यान का अधिकारी बनता है। धर्मध्यान की पात्रता केवल सम्यक् दृष्टि जीवों की ही है। आर्त और रौद्र ध्यान का परित्याग करके अपने को प्रशस्त चिन्तन से जोड़ने की सम्भावना केवल उसी व्यक्ति में हो सकती है, जिसका विवेक जागृत हो और जो हेय, श्रेय और उपादेय के भेद को समझता हो। जिस व्यक्ति में हेय-उपादेय अथवा हित-अहित के बोध की ही सामर्थ्य नहीं है, वह धर्मध्यान में अपने चित्त को केन्द्रित नहीं कर सकता।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि आर्त और रौद्रध्यान पूर्व संस्कारों के कारण व्यक्ति में सहज होते हैं। उनके लिए व्यक्ति को विशेष प्रयत्न या साधना नहीं करनी होती, जबकि धर्मध्यान के लिए साधना (अभ्यास) आवश्यक है। इसीलिए धर्मध्यान केवल सम्यक्दृष्टि को ही हो सकता है। धर्म-ध्यान की साधना के लिए व्यक्ति में ज्ञान के साथ-साथ वैराग्य, विरति भी आवश्यक मानी गई है और इसलिए कुछ लोगों का यह मानना भी है कि धर्मध्यान पाँचवें गुणस्थान अर्थात् देशव्रती को ही संभव है। अतः स्पष्ट है कि जहाँ आर्त और रौद्र ध्यान के स्वामी सम्यक्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकार के जीव हो सकते हैं, धर्मध्यान का अधिकारी सामान्य रूप से सम्यक्दृष्टि श्रावक और विशेषरूप से देशविरत श्रावक या मुनि ही हो सकता है।

जहाँ तक शुक्लध्यान का प्रश्न है वह सातवें गुणस्थान के अप्रमत्त जीवों से लेकर १४ वें अयोगी केवली गुणस्थान तक के सभी व्यक्तियों में सम्भव है। इस सम्बन्ध में श्वेताम्बर दिगम्बर के मत भेदों की चर्चा ध्यान के प्रकारों के प्रसंग में आगे की है।

इस प्रकार ध्यानसाधना के अधिकारी व्यक्ति भिन्न-भिन्न ध्यानों की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न कहे गये हैं। जो व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से जितना विकसित होना है वह ध्यान के क्षेत्र में उतना ही आगे बढ़ सकता है। अतः व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास उसकी ध्यानसाधना से जुड़ा हुआ है। आध्यात्मिक साधना और ध्यानसाधना में विकास का क्रम अन्योन्याश्रित हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति प्रशस्त ध्यानों की दिशा में अग्रसर होता है उसका आध्यात्मिक विकास होता है और जैसे-जैसे उसका आध्यात्मिक विकास होता है, वह प्रशस्त ध्यानों की ओर अग्रसर होता है।*

ध्यान का साधक गृहस्थ या श्रमण? - ध्यान की क्षमता त्यागी और भोगी दोनों में समान रूप से होती है, किन्तु अक्सर भोगी जिस विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है वह विषय अन्त में उसके मन को प्रमथित करके उद्वेलित ही बनाता है। अतः उसके ध्यान में, यद्यपि कुछ काल तक चित्त तो स्थिर रहता है, किन्तु उसका फल चित्तवृत्तियों की स्थिरता न होकर अस्थिरता ही होती है। जिस ध्यान के अन्त में चित्त उद्वेलित होता हो वह ध्यान साधनात्मक ध्यान की कोटि में नहीं आता है। यही कारण है कि

परवर्ती जैन दार्शनिकों ने अपने ग्रन्थों में आर्तध्यान और रौद्र ध्यान को ध्यान के रूप में परिगणित ही नहीं किया क्योंकि वे अन्ततोगत्वा चित्त की उद्विग्नता के ही कारण बनते हैं। यही कारण था कि दिगम्बर परम्परा ने यह मान लिया कि गृहस्थ का जीवन वासनाओं आकांक्षाओं और उद्विग्नताओं से परिपूर्ण है अतः वे ध्यान साधना करने में असमर्थ हैं।

ज्ञानार्णव में इस मत का प्रतिपादन हुआ है कि गृहस्थ ध्यान का अधिकारी नहीं है (५८)। इस संबंध में उसका कथन है कि गृहस्थ प्रमाद को जीतने में समर्थ नहीं होता, इसलिए वह अपने चंचल मन को वश में नहीं रख पाता। फलतः वह ध्यान का अधिकारी नहीं हो सकता। ज्ञानार्णवकार का कथन है कि गृहस्थ का मन सैकड़ों झंझटों से व्यथित तथा दुष्ट तृष्णारूप पिशाच से पीड़ित रहता है इसलिए उसमें रहकर व्यक्ति ध्यान आदि की साधना नहीं कर सकता है। जब प्रलयकालीन तीक्ष्ण वायु के द्वारा स्थिर स्वभाववाले बड़े-बड़े पर्वत भी स्थान भ्रष्ट कर दिये जाते हैं तो फिर स्त्री-पुत्र आदि के बीच रहने वाले गृहस्थ को जो स्वभाव से ही चंचल है क्यों नहीं भ्रष्ट किये जा सकते हैं (५९)। इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए ज्ञानार्णवकार तो यहाँ तक कहता है कि कदाचित् आकाश कुसुम और गंधे के सींग (क्रंग) संभव भी हो, लेकिन गृहस्थ जीवन में किसी भी देश और काल में ध्यान संभव नहीं होता (६०)। इसके साथ ही ज्ञानार्णवकार मिथ्या दृष्टियों, अस्थिर अभिप्राय वाले तथा कपटपूर्ण जीव जीने वाले में भी ध्यान की संभावना को स्वीकार नहीं करता है (६१)।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या गृहस्थ जीवन में ध्यान संभव ही नहीं है। यह सही है कि गृहस्थ जीवन में अनेक द्वन्द्व होते हैं और गृहस्थ आर्त और रौद्र ध्यान से अधिकांश समय तक जुड़ा रहता है। किन्तु एकान्तरूप से गृहस्थ में धर्मध्यान की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अन्यथा गृहस्थ लिंग की अवधारणा खण्डित हो जायेगी। अतः गृहस्थ में भी धर्म ध्यान की संभावना है।

यह सत्य है कि जो व्यक्ति गृहस्थ जीवन के प्रपंचों में उलझा, हुआ है, उसके लिए ध्यान संभव नहीं है। किन्तु गृहस्थ जीवन और गृही वेश में रहनेवाले सभी व्यक्ति आसक्त ही होते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। अनेक सम्यक्दृष्टि गृहस्थ ऐसे होते हैं जो जल में कमलवत् गृहस्थ जीवन में अलिप्त भाव से रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए धर्म ध्यान की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वयं ज्ञानार्णवकार यह स्वीकार करता है कि जो साधु मात्र वेश में अनुराग रखता हुआ अपने को महान समझता है और दूसरों को हीन समझता है वह साधु भी ध्यान के योग्य नहीं है (६२)। अतः व्यक्ति में मुनिवेशधारण करने से ध्यान की पात्रता नहीं आती है। प्रश्न यह नहीं है कि ध्यान गृहस्थ को संभव होगा या साधु को? वस्तुतः निर्लिप्त जीवन जीने वाला व्यक्ति, चाहे वह साधु हो या गृहस्थ, उसके लिए धर्म ध्यान संभव हो सकता है। दूसरी ओर आसक्त, दंभी और साकांक्ष व्यक्ति, चाहे वह मुनि ही क्यों न हो, उसके लिए धर्म ध्यान असंभव होता है। ध्यान की संभावना साधु और गृहस्थ होने पर निर्भर नहीं करती

५८. ज्ञानार्णव ४/१०-१५

५९. वही -४/१६

६०. वही -४/१७

६१. वही -४/१८-१९

६२. ज्ञानार्णव - ४/३३

उसकी संभावना का आधार ही व्यक्ति के चित्त की निराकुलता या अनासक्त हो जो चित्त अनासक्त और निराकुल है, फिर वह चित्त गृहस्थ का हो या मुनि का, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। ध्यान के अधिकारी बनने के लिए आवश्यक यह है कि व्यक्ति का मानस निराकांक्ष, अनाकुल और अनुद्विग्न रहे। यह अनुभूत सत्य है कि कोई-कोई व्यक्ति गृहस्थ जीवन में रहकर भी निराकांक्ष, अनाकुल और अनुद्विग्न बना रहता है। दूसरी ओर कुछ साधु, साधु होकर भी सदैव आसक्त, आकुल और उद्विग्न रहते हैं। अतः ध्यान का संबंध गृही जीवन या मुनि जीवन से न होकर चित्त की विशुद्धि से है। चित्त जितना विशुद्ध होगा ध्यान उतना ही स्थिर होगा। पुनः जो श्वेताम्बर और यापनीय परम्परायें गृहस्थ में भी १४ गुणस्थान सम्भव मानती हैं, उनके अनुसार तो आध्यात्मिक विकास की अग्रिम श्रेणियों का आरोहण करता हुआ गृहस्थ भी न केवल धर्म ध्यान का अपितु शुक्ल ध्यान का भी अधिकारी होता है।

ध्यान के प्रकार - सामान्यता जैनाचार्यों ने ध्यान का अर्थ चित्तवृत्ति का किसी एक विषय पर केन्द्रित होना ही माना है। अतः जब उन्होंने ध्यान के प्रकारों की चर्चा की तो उसमें प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों ही प्रकार के ध्यानों को ग्रहीत कर लिया। उन्होंने आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल, ऐसे ध्यान के ये चार प्रकार माने ^(६३)। ध्यान के इन चार प्रकारों में प्रथम दो को अप्रशस्त अर्थात् संसार का हेतु और अन्तिम दो को प्रशस्त अर्थात् मोक्ष का हेतु कहा गया है। ^(६४) इसका आधार यह माना गया है कि आर्त और रौद्र ध्यान राग-द्वेष जनित होने से बन्धन के कारण हैं। इसलिए वे अप्रशस्त हैं, जबकि धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान कषाय भाव से रहित होने से मुक्ति के कारण हैं इसलिए वे प्रशस्त हैं। ध्यानशतक की टीका में तथा अमितगति के श्रावकाचार में इन चार ध्यानों को क्रमशः तिर्यञ्चगति, नरकगति, देवगति और मुक्ति का कारण कहा गया है। यद्यपि प्राचीन जैन आगमों में ध्यान का यह चतुर्विध वर्गीकरण ही मान्य रहा है किन्तु जब ध्यान का सम्बन्ध मुक्ति की साधना से जोड़ा गया तो आर्त और रौद्र ध्यान को बन्धन का कारण होने से ध्यान की कोटि में ही परिगणित नहीं किया गया। अतः दिगम्बर परम्परा की धवला टीका ^(६५) में तथा श्वेताम्बर परम्परा के हेमचन्द्र के योगशास्त्र ^(६६) में ध्यान के दो ही प्रकार माने गए - धर्म और शुक्ल। ध्यान में भेद-प्रभेदों की चर्चा से स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होता है कि उसमें क्रमशः विकास होता गया है। प्राचीन आगमों यथा-स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र में तथा ज्ञानज्ज्ञयण (ध्यानशतक) और तत्त्वार्थसूत्र में ध्यान के चार विभागों की चर्चा करके क्रमशः उनके चार-चार विभाग किये गए हैं किन्तु उसमें कहीं भी ध्यान के पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इन चार प्रकार की चर्चा नहीं है। जबकि परवर्ती साहित्य में इनकी विस्तृत चर्चा मिलती है। सर्वप्रथम इनका उल्लेख योगीन्दु के योगसार और देवसेन के भावसंग्रह में मिलता है ^(६७)। मुनि पद्मसिंह ने ज्ञानसार में अर्हन्त के सन्दर्भ में धर्म ध्यान के अन्तर्गत पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ की चर्चा की है किन्तु उन्होंने रूपातीत का कोई स्पष्ट निर्देश नहीं किया है ^(६८)। इस विवेचना में एक समस्या यह भी है कि पिण्डस्थ और रूपस्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाया गया है। परवर्ती साहित्य में आचार्य नेमिचन्द्र के द्रव्य संग्रह में ध्यान

६३. तत्त्वार्थसूत्र ९/२९

६४. वही ९/३०, ध्यानशतक ५

६५. धवला पुस्तक १३ पृ. ७०

६६. योगशास्त्र ४/११५

६७. योगसार ९८

६८. ज्ञानसार १८-२८

के चार भेदों की चर्चा के पश्चात् धर्म ध्यान के अन्तर्गत पदों के जाप और पंच परमेष्ठी के स्वरूप का भी निर्देश किया गया है ^(६९)। इसके टीकाकार ब्रह्मदेव ने यह भी बताया है कि जो ध्यान मात्र वाक्यों के आश्रित होता है वह पदस्थ है। जिस ध्यान में स्वआत्मा का चिन्तन होता है वह पिण्डस्थ है, जिसमें चेतना स्वरूप या चिद्रूपता का विचार किया जाता है वह रूपस्थ है तथा निरंजन व निराकार का ध्यान ही रूपातीत है ^(७०)। अमितागति ने ^(७१) अपने श्रावकाचार में ध्येय या ध्यान के आलम्बन की चर्चा करते हुए पिण्डस्थ आदि इन चार प्रकार का ध्यानों की विस्तार से लगभग २७ श्लोकों में चर्चा की है। यहाँ पिण्डस्थ से पहले पदस्थ ध्यान को स्थान दिया गया है। और उसकी विस्तृत चर्चा भी की गई है। शुभचन्द्र ^(७२) ने ज्ञानार्णव में पदस्थ आदि ध्यान के इन प्रकारों की पूरे विस्तार के साथ लगभग २२७ श्लोकों में चर्चा की है। परवर्ती आचार्यों में वसुनन्दि, हेमचन्द्र, भास्करनन्दि आदि ने भी इनकी विस्तार से चर्चा की है। पुनः पार्थिवी, आग्नेयी, मारुति, वारुणी, और तत्त्वभू ऐसी पिण्डस्थ ध्यान की जो पाँच धारणाएँ कही गई हैं उनका भी प्राचीन ग्रन्थों में कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। तत्त्वार्थसूत्र और उसकी प्राचीन टीकाओं में लगभग ६ठीं-७वीं शती तक इनका अभाव है। इससे यही सिद्ध होता है कि ध्यान के प्रकारों, उपप्रकारों, लक्षणों, आलम्बनों आदि की जो चर्चा जैन परम्परा में हुई है, वह क्रमशः विकसित होती रही है और उन पर अन्य परम्पराओं का प्रभाव भी है।

प्राचीन आगमिक साहित्य में स्थानांग में ध्यान के प्रकारों लक्षणों, आलम्बनों और अनुप्रेक्षाओं का जो विवरण मिलता है वह इस प्रकार है -

१. आर्तध्यान - आर्तध्यान हताशा की स्थिति है। स्थानांग के अनुसार इस ध्यान के चार उप प्रकार हैं - ^(७३) अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर उसके वियोग की सतत् चिन्ता करना यह प्रथम प्रकार का आर्तध्यान है। दुःख के आने पर उसे दूर करने की चिन्ता करना यह आर्त ध्यान का दूसरा रूप है। प्रिय वस्तु का वियोग हो जाने पर उसकी पुनः प्राप्ति के लिए चिन्तन करना तीसरे प्रकार का आर्त ध्यान है और जो वस्तु प्राप्त नहीं है उसकी प्राप्ति के लिए इच्छा करना चौथे प्रकार का आर्त ध्यान है। तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार यह आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्त संयत में होता है। इसके साथ ही मिथ्या दृष्टियों में भी इस ध्यान का सद्भाव होता है। सैद्धान्तिकदृष्टि से मिथ्या दृष्टि, अविरत सम्यक्दृष्टि तथा देशविरत सम्यक्दृष्टि में आर्तध्यान के उपभोक्ता चारों ही प्रकार पाये जाते हैं, किन्तु प्रमत्त संयत में अन्य निदान को छोड़कर अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति की आकांक्षा को छोड़कर अन्य तीन ही विकल्प होते हैं। स्थानांगसूत्र में इसके निम्न चार लक्षणों का उल्लेख हुआ है ^(७४) -

१. क्रन्दनता	-	उच्च स्वर से रोना।
२. शोचनता	-	दीनता प्रकट करते हुए शोक करना।
३. तेपनता	-	आँसू बहाना।
४. परिदेवनता	-	करुणा-जनक विलाप करना।

६९. द्रव्य संग्रह (नेमीचन्द्र) ४८-५४

७०. द्रव्यसंग्रह टीका (ब्रह्मदेव) गाथा ४८ की टीका

७१. श्रावकाचार (अमितागति) परिच्छेद १५

७२. ज्ञानार्णव (शुभचन्द्र) मार्ग ३२-४०

७३. स्थानांगसूत्र ४/६०-७२

७४. स्थानांगसूत्र ४/६२

२. **रौद्र ध्यान** - रौद्रध्यान आवेगात्मक अवस्था है। रौद्रध्यान के भी चार भेद किये गये हैं (७५)।

१. हिंसानुबन्धी - निरन्तर हिंसक प्रवृत्ति में तन्मयता कराने वाली चित्त की एकाग्रता।
२. मृषानुबन्धी - असत्य भाषण करने सम्बन्धी चित्त की एकाग्रता।
३. स्तेनानुबन्धी - निरन्तर चोरी करने कराने की प्रवृत्ति सम्बन्धी चित्त की एकाग्रता।
४. संरक्षणानुबन्धी - परिग्रह के अर्जन और संरक्षण सम्बन्धी तन्मयता।

कुछ आचार्यों ने विषयसंरक्षण का अर्थ बलात् ऐन्द्रिक भोगों का संकल्प किया है जबकि कुछ आचार्यों ने ऐन्द्रिक विषयों के संरक्षण में उपस्थित क्रूरता के भाव को ही विषय संरक्षण कहा है। स्थानांग में इसके भी निम्न चार लक्षणों का निर्देश है (७६) -

१. उत्सन्नदोष - हिंसादि किसी एक पाप में निरन्तर प्रवृत्ति करना।
२. बहुदोष - हिंसादि सभी पापों के करने में संलग्न रहना।
३. अज्ञानदोष - कुसंस्कारों के कारण हिंसादि अधार्मिक कार्यों को धर्म मानना।
४. आमरणान्त दोष - मरणकाल तक भी हिंसादि क्रूर कर्मों को करने का अनुताप न होना।

३. **धर्मध्यान** - जैन आचार्यों ने साधना की दृष्टि से केवल धर्मध्यान और शुक्लध्यान को ही ध्यान की कोटि में रखा है। यही कारण है कि आगमों में इनके भेद और लक्षणों की चर्चा के साथ-साथ इनके आलम्बनों और अनुप्रेक्षाओं का भी उल्लेख मिलता है। स्थानांगसूत्र आदि में धर्मध्यान के निम्न चार भेद बताये गये हैं (७७) -

१. **आज्ञाविचय** - वीतराग सर्वज्ञ-प्रभु के आदेश और उपदेश के सम्बन्ध में आगमों के अनुसार चिन्ता करना, आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

२. **अपाय विचय** - दोषों और उनके कारणों का चिन्तन कर उनसे छुटकारा कैसे हो, इस सम्बन्ध में विचार करना अपायविचय धर्मध्यान है। दूसरे शब्दों में हेय क्या है? इसका चिन्तन करना अपायविचय है।

३. **विपाक विचय** - पूर्वकर्मों के विपाक के परिणामस्वरूप उदय में आनेवाली सुख-दुःखात्मक विभिन्न अनुभूतियों का समभावपूर्वक वेदन करते हुए उनके कारणों का विश्लेषण करना विपाकविचय धर्मध्यान है। दूसरे कुछ आचार्यों के अनुसार हेय के परिणामों का चिन्तन करना ही विपाकविचय धर्मध्यान है।

विपाकविचय धर्मध्यान को निम्न उदाहरण से भी समझा जा सकता है -

मान लीजिए कोई व्यक्ति हमें अपशब्द कहता है और उन अपशब्दों को सुनने से पूर्वसंस्कारों के निमित्त से क्रोध का भाव उदित होता है। उस समय उस उत्पन्न होते हुए क्रोध को साक्षी भाव से देखना

७५. वही ४/६३

७६. वही ४/६४

७७. स्थानांग ४/६५

और क्रोध की प्रतिक्रिया व्यक्त न करना तथा यह विचार करना कि क्रोध का परिणाम दुःखद होता है अथवा यह सोचना कि मेरे निमित्त से इसको कोई पीड़ा हुई होगी, अतः यह मुझे अपशब्द कह रहा है, यह विपाकविचय धर्मध्यान है। संक्षेप में कर्मविपाका के उदय पर उनके प्रति साक्षी भाव रखना, प्रतिक्रिया के दुःखद परिणाम का चिन्तन करना एवं प्रतिक्रिया न करना ही विपाक-विचय धर्मध्यान है।

४. संस्थान विचय - लोक के स्वरूप के चिन्तन को सामान्य रूप से संस्थान विचय धर्मध्यान कहा जाता है। किन्तु लोक एवं संस्थान का अर्थ आगमों में शरीर भी है। अतः शारीरिक गतिविधियों पर अपनी चित्तवृत्तियों को केन्द्रित करने को भी संस्थान विचय धर्मध्यान कहा जा सकता है। अपने इस अर्थ में संस्थान विचय धर्मध्यान शरीर-विपर्यय या शरीर-प्रेक्षा के निकट है। आगमों में धर्मध्यान के निम्न चार लक्षण कहे गये हैं (७८) -

१. **आज्ञारुचि** - जिन आज्ञा के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करना तथा उसके प्रति निष्ठावन रहना।

२. **निसर्गरुचि** - धर्मकार्यों में स्वाभाविक रूप रुचि होना।

३. **सूत्ररुचि** - आगमन शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन में रुचि होना।

४. **अवगाढरुचि** - आगमिक विषयों के गहन चिन्तन और मनन में रुचि होना। दूसरे शब्दों में आगमिक विषयों का रुचि गम्भीरता से अवगाहन करना।

स्थानांग में धर्मध्यान के आलम्बनों की चर्चा करते हुए, उसमें चार आलम्बन बताये गये हैं - १. **वाचना** - अर्थात् आगमसाहित्य का अध्ययन करना, २. **प्रतिपृच्छता** - अध्ययन करते समय उत्पन्न शंका के निवारणार्थ जिज्ञासावृत्ति से उस सम्बन्ध में गुरुजनों से पूछना। ३. **परिवर्तना** - अधीत सूत्रों का पुनरावर्तन करना। ४. **अनुप्रेक्षा** - आगमों के अर्थ का चिन्तन करना। कुछ आचार्यों की दृष्टि में अनुप्रेक्षा का अर्थ संसार की अनित्यता आदि का चिन्तन करना भी है।

स्थानांगसूत्र के अनुसार धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ कहीं गई हैं (८०) - १. **एकत्वानुप्रेक्षा**, २. **अनित्यानुप्रेक्षा**, ३. **अशरणानुप्रेक्षा** और ४. **संसारानुप्रेक्षा**। ये अनुप्रेक्षाएँ जैन परम्परा में प्रचलित १२ अनुप्रेक्षाओं के ही अन्तर्गत हैं। जिनभद्र के ध्यानशतक तथा उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में धर्मध्यान के अधिकारी के सम्बन्ध में चर्चा उपलब्ध होती है। जिनभद्र (८१) के अनुसार जिस व्यक्ति में निम्न चार बातें होती हैं वही धर्मध्यान का अधिकारी होता है। १. सम्यक्ज्ञान (ज्ञान), २. दृष्टिकोण की विशुद्धि (दर्शन), ३. सम्यक् आचरण (चारित्र्य) और ४. वैराग्यभाव। हेमचन्द्र ने (८२) योगशास्त्र में इन्हें ही कुछ शब्दान्तर के साथ प्रस्तुत किया है। वे धर्मध्यान के लिए १. आगमज्ञान, २. अनासक्ति, ३. आत्मसंयम और ४. मुमुक्षुभाव को आवश्यक मानते हैं। धर्मध्यान के अधिकारी के सम्बन्ध में तत्त्वार्थ का दृष्टिकोण थोड़ा भिन्न

७८. स्थानांग ४/६६

७९. वही ४/६९

८०. वही ४/९८

८१. ध्यानशतक ६३

८२. योगशास्त्र ७/२-६

है। तत्त्वार्थ के श्वेताम्बर पाठ के अनुसार धर्मध्यान अप्रमत्तसंयत, उपशांतकषाय और क्षीणकषाय में ही सम्भव है। गुणस्थान सिद्धान्त की दृष्टि से यदि हम कहें तो सातवें, ग्यारवें और बारहवें गुणस्थान में ही धर्मध्यान संभव है। यदि इसे निरंतरता में ग्रहण करें तो अप्रमत्त संयत से लेकर क्षीण कषाय तक अर्थात् सातवें गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक धर्मध्यान संभव है। तत्त्वार्थसूत्र के दिगम्बर मान्य मूलपाठ में धर्मध्यान के अधिकारी की विवेचना करने वाला सूत्र है ही नहीं। यद्यपि तत्त्वार्थसूत्र की दिगम्बर टीकाओं में पूज्यपाद अकलंक और विद्यानन्दी सभी ने धर्मध्यान के स्वामी का उल्लेख किया है किन्तु उनका संतव्य श्वेताम्बर परम्परा से भिन्न है। उनके अनुसार चौथे गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक ही धर्मध्यान की संभावना है। आठवें गुणस्थान से श्रेणी प्रारम्भ होने के कारण धर्मध्यान संभव नहीं है।

इस प्रकार धर्मध्यान के अधिकारी के प्रश्न पर जैन आचार्यों में मतभेद रहे हैं।

शुक्ल ध्यान - यह धर्म-ध्यान के बाद की स्थिति है। शुक्ल ध्यान के द्वारा मन को शान्त और निष्कम्प किया जाता है। इसकी अन्तिम परिणति, मन की समस्त प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध है। शुक्ल-ध्यान चार प्रकार का है (८३) - १. पृथक्त्व-वितर्क-सविचार इस ध्यान में ध्याता कभी द्रव्य का चिन्तन करते करते पर्याय का चिन्तन करता है और कभी पर्याय का चिन्तन करते करते द्रव्य का चिन्तन करने लगता है। इस ध्यान में कभी द्रव्य कभी पर्याय पर मनोयोग का संक्रमण होते रहने पर भी ध्येय द्रव्य एक ही रहता है। २. एकत्ववितर्क-अविचारी योग संक्रमण से रहित एक पर्याय विषयक ध्यान एकत्व वितर्क अविचार ध्यान कहलाता है। ३. सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती मन, वचन और शरीर व्यापार का निरोध हो जाने एवं केवल श्वासोच्छ्वास की सूक्ष्म क्रिया के शेष रहने पर ध्यान की यह अवस्था प्राप्त होती है। ४. समुच्छिन्न क्रिया-निवृत्ति जब मन, वचन और शरीर की समस्त प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है और कोई भी सूक्ष्म क्रिया शेष नहीं रहती उस अवस्था को समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान कहते हैं। इस प्रकार शुक्लध्यान की प्रथम अवस्था से क्रमशः आगे बढ़ते हुए अन्तिम अवस्था में साधक कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध कर अन्त में सिद्धावस्था प्राप्त कर लेता है, जो कि धर्म साधना और योग साधना का अन्तिम लक्ष्य है।

स्थानांगसूत्र में शुक्लध्यान के निम्न चार लक्षण कहे गये हैं (८४) -

१. **अव्यथ** - परीषह, उपसर्ग आदि की व्यथा से पीड़ित होने पर भी क्षोभित नहीं होना।

२. **असम्मोह** - किसी भी प्रकार से मोहित नहीं होना।

३. **विवेक** - स्व. और पर अथवा आत्म और अनात्म के भेद को समझना भेद विज्ञान के ज्ञाता होना।

४. **व्युत्सर्ग** - शरीर, उपाधि आदि के प्रति ममत्व भाव का पूर्ण त्याग। दूसरे शब्दों में पूर्ण निर्ममत्व से युक्त होना।

इन चार लक्षणों के आधार पर हम यह बता सकते हैं कि किसी व्यक्ति में शुक्ल ध्यान संभव होगा या नहीं।

स्थानांग में शुक्लध्यान के चार आलम्बन बताये गये हैं (८५) -

१. क्षान्ति (क्षमाभाव), २. मुक्ति, (मिलोभता), ३. आर्जव (सरलता) और ४. मार्जव (मृदुता)।
वस्तुतः शुक्लध्यान के ये चार आलम्बन चार कषायों के त्यागरूप ही हैं। क्षान्ति में क्रोध का त्याग है और मुक्ति में लोभ का त्याग है। आर्जव माया (कपट) के त्याग का सूचक है तो मार्जव मान कषाय के त्याग का सूचक है।

इसी ग्रन्थ में शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाओं का उल्लेख भी हुआ है किन्तु ये चार अनुप्रेक्षाएं सामान्यरूप से प्रचलित १२ अनुप्रेक्षाओं से क्वचित रूप में भिन्न ही प्रतीत होती हैं। स्थानांग ने शुक्ल ध्यान भी निम्न चार अनुप्रेक्षाएं उल्लेखित हैं (८६) -

१. अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा - संसार में परिभ्रमण की अनन्तता का विचार करना।

२. विपरिणामानुप्रेक्षा - वस्तुओं के विविध परिणामों का विचार करना।

३. अशुभानुप्रेक्षा - संसार, देह और भोगों की अशुभता का विचार करना।

४. अपायानुप्रेक्षा - राग-द्वेष से होने वाले दोषों का विचार करना ।

शुक्ल ध्यान के चार प्रकारों के सम्बन्ध में बौद्धों का दृष्टिकोण भी जैन परम्परा के निकट ही जाता है। बौद्ध परम्परा में चार प्रकार के ध्यान माने गये हैं -

१. सवितर्क - सविचार-विवेकजन्य प्रीतिसुखात्मक प्रथम ध्यान।

२. वितर्क विचार - रहित-समाधिज प्रीतिसुखात्मक द्वितीय ध्यान।

३. प्रीति और विराग से उपेक्षक हो स्मृति और सम्प्रजन्य से युक्त उपेक्षा स्मृति सुखविहारी तृतीय ध्यान।

४. सुख-दुःख एवं सौमनस्य - दौर्मनस्य से रहित असुख अदुःखात्मक उपेक्षा एवं परिशुद्धि से युक्त चतुर्थ स्थान।

इस प्रकार चारों शुक्ल ध्यान बौद्ध परम्परा में भी थोड़े शाब्दिक अन्तर के साथ उपस्थित हैं।

योग-परम्परा में भी समापत्ति के चार प्रकार बतलाये हैं, जो कि जैन परम्परा के शुक्ल ध्यान के चारों प्रकारों के समान ही लगते हैं। समापत्ति के वे चार प्रकार निम्नानुसार हैं - १. सवितर्का, २. निर्वितर्का, ३. सविचारा और ४. निर्विचारा।

शुक्ल ध्यान के स्वामी के सम्बन्ध में तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बर मूलपाठ और दिगम्बर मूलपाठ में तो अन्तर नहीं है किन्तु 'च' शब्द से क्या अर्थग्रहण करना इसे लेकर मतभेद है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार उपशान्त कषाय एवं क्षीणकषाय पूर्वधरो में चार शुक्लध्यानों में प्रथम दो शुक्लध्यान सम्भव है।

८५. वही ४/७१

८६. वही ४/७२

बाद के दो शुक्लध्यान केवली (सयोगी केवली और अयोगी केवली) में सम्भव है। दिगम्बर परम् अनुसार आठवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक शुक्लध्यान सम्भव है। पूर्व के दो शुक्लध्यान आठवें से बारहवें गुणस्थानवर्ती पूर्वधरो के होते हैं और शेष दो तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली का (८७)।

जैनधर्म में ध्यान साधना का इतिहास - जैन धर्म में ध्यान साधना की परम्परा प्राचीनकाल से ही उपलब्ध होती है। सर्वप्रथम हमें आचारांग में महावीर के ध्यान साधना संबंधी अनेक सन्दर्भ उपलब्ध हैं। आचारांग के अनुसार महावीर अपने साधनात्मक जीवन में अधिकांश समय ध्यान साधना में ही लीन रहते थे (८८)। आचारांग से यह भी ज्ञात होता है कि महावीर ने न केवल चित्तवृत्तियों के स्थिरीकरण का अभ्यास किया था अपितु उन्होंने दृष्टि के स्थिरीकरण का भी अभ्यास किया था। इस साधना में वे अपलक होकर दीवार आदि पर किसी एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करते थे। इस साधना में उनकी आँखें लाल हो जाती थीं। और बाहर की ओर निकल जाती थी जिन्हें देखकर दूसरे लोग भयभीत भी होते थे (८९)। आचारांग के ये उल्लेख इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि महावीर ने ध्यान साधना की बाह्य और आभ्यन्तर अनेक विधियों का प्रयोग किया था। वे अग्रमत (जाग्रत) होकर समाधिपूर्वक ध्यान करते थे। ऐसे भी उल्लेख उपलब्ध होते हैं कि महावीर के शिष्य प्रशिष्यों में भी यह ध्यान साधना की प्रवृत्ति निरन्तर बनी रही। उताध्ययन में मुनि जीवन की दिनचर्या का विवेचन करते हुए स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि मुनि दिन और रात्रि के द्वितीय प्रहर में ध्यान निर्देश दिया गया है कि मुनि और रात्रि के द्वितीय प्रहर में ध्यान साधना करे (९०)। महावीर कालीन साधकों का ध्यान कोष्ठोपगत विशेषता आगमों में उपलब्ध होता है। यह इस बात का सूचक है कि उस युग में ध्यान साधना मुनि जीवन का एक आवश्यक अंग थी। भद्रबाहु द्वारा नेपाल में जाकर महाप्राण ध्यान की साधना करने का उल्लेख भी मिलता है (९१)। इसी प्रकार दुर्बलिकापुष्पमित्र की ध्यान साधना का उल्लेख आवश्यकचूर्णि में है (९२)। यद्यपि आगमों में ध्यान संबंधी निर्देश तो है किन्तु महावीर और उनके अनुयायियों की ध्यान प्रक्रिया का विस्तृत विवरण उनमें उपलब्ध नहीं।

महावीर के युग में श्रमण परम्परा में ऐसे अनेक श्रमण थे जिनकी अपनी-अपनी ध्यान साधना की विशिष्ट पद्धतियाँ थीं। उनमें बुद्ध और महावीर के समकालीन किन्तु उनके ज्येष्ठ रामपुत्त का हम प्रारम्भ में ही उल्लेख कर चुके हैं। आचारांग में साधकों के सम्बन्ध में विपस्ती (९३) और पासग (९४) जैसे विशेषण

८७. तत्त्वार्थसूत्र ९/३९-४९

८८. आचारांग १।९।१।६, १।९।२।४, १।९।२।१२

८९. वही १।९।१।५

९०. उत्तराध्ययन २६/१८

९१. आवश्यक चूर्णि भाग २ पृ. १८७

९२. वही भाग १ पृ. ४१०

९३. आचारांग १/२/५/१२५ (आचार्य तुलसी)

९४. वही १/२/३/७३, १/२/६/१८५

मिलते हैं। इससे ऐसा लगता है कि भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ परम्परा में भी ज्ञात-दृष्टा भाव में चेतना को स्थिर रखने के लिए विपश्यना जैसी कोई ध्यान साधना की पद्धति रही होगी। यद्यपि विस्तृत विवरणों के अभाव में आज उस पद्धति की सम्पूर्ण प्रक्रिया की चर्चा तो नहीं कर सकते, परन्तु आचारांग जैसे प्राचीन आगमन में इन शब्दों की उपस्थिति इस तथ्य की सूचक अवश्य है कि इस युग में ध्यान साधना की जैन परम्परा की अपनी कोई विशिष्ट पद्धति थी। यह भी हो सकता है कि साधकों की प्रकृति के अनुरूप ध्यान साधना की एकाधिक पद्धतियाँ भी प्रचलित रही हों, किन्तु आगमों के रचनाकाल तक वे विलुप्त होने लगी थीं। जिस रामपुत्र का निर्देश भगवान् बुद्ध के ध्यान के शिक्षक के रूप में मिलता है। उनका उल्लेख जैन परम्परा के प्राचीन आगमों में जैसे सूत्रकतांग, अंतकृत्तशा, औपपातिक दशा, ऋषिभाषित आदि में होना ^(१५) इस बात का प्रमाण है कि निर्ग्रन्थ परम्परा रामपुत्र की ध्यान साधना की पद्धति से प्रभावित थी। बौद्ध परम्परा की विपश्यना और निर्ग्रन्थ परम्परा की आचारांग की ध्यान साधना में जो कुछ निकटता परिलक्षित होती है, वह यह सूचित करती है कि सम्भवतः दोनों का मूलस्रोत रामपुत्र की ध्यान-पद्धति रही होगी। इस सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाना अपेक्षित है।

षट्आवश्यकों में कायोत्सर्ग को भी एक आवश्यक माना गया है। कायोत्सर्ग ध्यान साधना पूर्वक ही होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। प्रतिक्रमण में अनेक बार कायोत्सर्ग (ध्यान) किया जाता है। वर्तमान काल में भी यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से जीवित है। आज भी ध्यान की इस परम्परा में तत्संबंधी दोषों के चिन्तन के अतिरिक्त नमस्कार मन्त्र, चतुर्विंशतिस्तव के माध्यम से पंचपरमेष्ठी अथवा तीर्थंकरों का ध्यान किया जाता है। मात्र हुआ यह है कि ध्यान की इस समग्र क्रिया में, जो सजगता अपेक्षित थी, वह समाप्त हो गई है और ये सब ध्यान संबंधी प्रक्रियाएँ रूढ़ि मात्र बनकर रह गई हैं। यद्यपि इन प्रक्रियाओं की उपस्थिति से यह ज्ञात होता है कि ध्यान की इन प्रक्रियाओं में चेतना को सतत् रूप से जाग्रत या ज्ञाता-द्रष्टा भाव में स्थिर रखने का प्रयास किया जाता रहा है।

आगम युग तक जैनधर्म में ध्यान का उद्देश्य मुख्य रूप से आत्मशुद्धि या चरित्रशुद्धि ही था अथवा यों कहें कि वह चित्त को समभाव में स्थिर रखने का प्रयास था।

मध्ययुग में जब भारत में तन्त्र और हठयोग संबंधी साधनाएँ प्रमुख बनी तो ध्यान की प्रक्रिया में परिवर्तन आया। आगमिक काल में ध्यान साधना में शरीर, इन्द्रिय मन और चित्त वृत्तियों के प्रति सजग होकर चेतना को द्रष्टा भाव या साक्षी भाव में स्थिर किया जाता था, जिससे शरीर और मन के उद्वेग और आकुलताएँ शान्त हो जाती थीं। दूसरे शब्दों में वह चैतन्यिक समत्व अर्थात् सामायिक की साधना थी। जिसका कुछ रूप आज भी विपश्यना में उपलब्ध है। किन्तु जैसे-जैसे भारतीय समाज में तन्त्र और हठयोग का प्रभाव बढ़ा वैसे-वैसे जैन साधना पद्धति में भी परिवर्तन आया। जैन ध्यान पद्धति में पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ आदि ध्यान की विधियाँ और पार्थिवी, आग्नेयी, वायवी और वारुणी जैसी धारणाएँ सम्मिलित हुईं। बीजाक्षरों और मन्त्रों का ध्यान करने की परम्परा विकसित हुई और षट्चक्रों के भेदन का प्रयास भी हुआ।

यदि हम जैन परम्परा में ध्यान की प्रक्रिया का इतिहास देखते हैं तो यह स्पष्ट लगता है कि उस पर अन्य भारतीय ध्यान एवं योग की परम्पराओं का प्रभाव आया है, जो हरिभद्र के पूर्व से ही प्रारम्भ हो गया था। हरिभद्र ने उनकी ध्यान विधि को लेकर भी उसमें अपनी परम्परा के अनुरूप बहुत कुछ परिवर्तन किये थे। मध्ययुग की जैन ध्यान साधना विधि उस युग-साधना विधि से पर्याप्त रूप से प्रभावित हुई थी। मध्ययुग में ध्यान साधना का प्रयोजन भी बदला जहाँ प्राचीन काल में ध्यान साधना का प्रयोजन मात्र आत्मा-विशुद्धि या चैतसिक समत्व था, वहाँ मध्य युग में उसके साथ विभिन्न ऋद्धियों और लब्धियों की चर्चा भी जुड़ी और यह माना जाने लगा कि ध्यान साधना से विविध अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। ध्यान की प्रभावशीलता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक तो था किन्तु इसके अन्य परिणाम भी सामने आये। जब अनेक साधक इन हठयोगी साधनाओं के माध्यम से ऋद्धि या लब्धि प्राप्त करने में असमर्थ रहे तो उन्होंने यह मान लिया कि वर्तमान युग में ध्यान साधना संभव ही नहीं है। ध्यान साधना की सिद्धि केवल उत्तम संहनन के धारक मुनियों अथवा पूर्वधरों को ही संभव थी। हमें ऐसे भी अनेक उल्लेख उपलब्ध होते हैं, जिनमें कहा गया है कि पंचमकाल में उच्चकोटि का धर्मध्यान या शुक्ल ध्यान सम्भव नहीं है। मध्ययुग में ध्यान प्रक्रिया में कैसे-कैसे परिवर्तन हुए, यह बात प्राचीन आगमों और तत्त्वार्थ के उल्लेखों की तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं दिगम्बर जैन पुराणों, श्रावकाचार्यों एवं हरिभद्र, शुभचन्द्र, हेमचन्द्र आदि के ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। मध्यकाल में ध्यान की निषेधक और समर्थक दोनों धाराएं साथ-साथ चलीं। कुछ आचार्यों ने कहा कि पंचमकाल में चाहे शुक्लध्यान की साधना संभव न हो, किन्तु धर्म-ध्यान की साधना तो संभव है। मात्र यह ही नहीं मध्ययुग में धर्म ध्यान के स्वरूप में काफी कुछ परिवर्तन किया गया और उसमें अन्य परम्पराओं की अनेक धारणाएं सम्मिलित हो गयीं। इस युग में ध्यान संबंधी स्वतन्त्र साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। झाणाज्झयण (ध्यानशतक) से लेकर ज्ञानार्णव, ध्यान स्तव आदि अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी ध्यान पर लिखे गये। मध्य युग हठयोग और ध्यान के समन्वय का युग कहा जा सकता है। इस काल में जैन ध्यान पद्धति योग परम्परा से विशेषरूप से हठयोग की परम्परा से पर्याप्त रूप से प्रभावित और समन्वित हुई।

आधुनिक युग तक यही स्थिति चलती रही। आधुनिक युग में जैन ध्यान साधना की पद्धति में पुनः एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। इस क्रान्ति का मूलभूत कारण तो श्री सत्यनारायण जी गोयन का के द्वारा बौद्धों की प्राचीन विपश्यना साधना पद्धति को वर्मा से लेकर भारत में पुनर्स्थापित करना था। भगवान् बुद्ध की ध्यान साधना की विपश्यना पद्धति की जो एक जीवित परम्परा किसी प्रकार से वर्मा में बची रही थी, वह सत्यनारायण जी गोयनका के माध्यम से पुनः भारत में अपने जीवन्त रूप में लौटी। उस ध्यान की जीवन्त परम्परा के आधार पर भगवान् महावीर की ध्यान साधना की पद्धति क्या रही होगी इसका आभास हुआ। जैन समाज का यह भी सद्भाग्य है कि कुछ जैन मुनि एवं साध्वियाँ उनकी विपश्यना साधना-पद्धति से जुड़े। संयोग से मुनि श्री नथमल जी (युवाचार्य प्रहाप्रज्ञ) जैसे प्राज्ञ साधक विपश्यना साधना से जुड़े और उन्होंने विपश्यना ध्यान पद्धति और हठयोग की प्राचीन ध्यान पद्धति को आधुनिक मनोविज्ञान एवं शरीर-विज्ञान के आधारों पर परखा और उन्हें जैन साधना परम्परा से आपूरित करके प्रेक्षाध्यान की जैन धारा को पुनर्जीवित किया है। यह स्पष्ट है कि आज प्रेक्षाध्यान प्रक्रिया जैन ध्यान की एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में अपना अस्तित्व बना चुकी है। उसकी वैज्ञानिकता और उपयोगिता पर भी कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता है, किन्तु उसके विकास में सत्यनारायण जी गोयनका द्वारा भारत

लायी गयी विषयना ध्यान की साधना पद्धति के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। आज प्रेक्षाध्यान पद्धति निश्चित रूप से विषयना की ऋणी है। इसके लिए गोयनाका जी का ऋण स्वीकार किए बिना हम अपनी प्रामाणिकता को सिद्ध नहीं कर सकेंगे। साथ ही इस नवीन पद्धति के विकास में युवाचार्य महाप्रज्ञ जी का जो महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उसे भी नहीं भुलाया जा सकता है। उन्होंने विषयना से बहुत कुछ लेकर भी उसे प्राचीन हठयोग की षट्चक्र भेदन आदि की अवधारणा से तथा आधुनिक मनोविज्ञान और शरीर विज्ञान से जिस प्रकार समन्वित और परिपुष्ट किया है। वह उनकी अपनी प्रतिभा का चमत्कार है। इस आलेख में विस्तार से न तो विषयना के सन्दर्भ में और न प्रेक्षाध्यान के सन्दर्भ में कुछ कह पाना सम्भव है, किन्तु यह सत्य है कि ध्यान साधना की इन पद्धतियों को अपना कर जैन साधक न केवल जैन, महावीर कालीन ध्यान पद्धति के प्राचीन स्वरूप का कुछ आस्वाद करेंगे, अपितु तनावों से परिपूर्ण जीवन में आध्यात्मिक शान्ति और समता का आस्वाद भी ले सकेंगे।

सम्यक् जीवन में जीने के लिए आज विषयना और प्रेक्षाध्यान पद्धतियों का अभ्यास और अध्ययन आवश्यक है। हम युवाचार्य महाप्रज्ञ के इसलिए भी ऋणी हैं कि उन्होंने न केवल प्रेक्षाध्यान पद्धति का विकास किया है अपितु उसके अभ्यास केन्द्रों की स्थापना भी की है साथ ही जीवन विज्ञान ग्रन्थमाला के माध्यम से प्रेक्षाध्यान से सम्बन्धित लगभग ४८ लघु पुस्तिकाएँ लिखकर जैन ध्यान साहित्य को महत्वपूर्ण अवदान दिया है।

यह भी प्रसन्नता का विषय है कि विषयना और प्रेक्षा की ध्यान पद्धतियों से प्रेरणा पाकर आचार्य नानालाल जी ने समीक्षण ध्यान विधि को प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में एक-दो प्रारंभिक पुस्तिकाएँ भी निकली हैं, किन्तु प्रेक्षाध्यान विधि की तुलना में उनमें न तो प्रतिपाद्य विषय की स्पष्टता है और न वैज्ञानिक प्रस्तुतिकरण ही। क्रोध समीक्षण आदि एक-दो पुस्तकें और भी प्रकाश में आयी हैं किन्तु इस पद्धति को वैज्ञानिक और प्रायोगिक बनाने के लिए अभी उन्हें बहुत कुछ करना शेष रहता है।

वर्तमान युग और ध्यान - वर्तमान युग में जहाँ एक ओर योग और ध्यान सम्बन्धी साधनाओं के प्रति आकर्षण बढ़ा है, वहीं दूसरी ओर योग और ध्यान के अध्ययन और शोध में भी विद्वानों की रुचि जागृत हुई है। आज भारत की अपेक्षा भी पाश्चात्य देशों में योग और ध्यान के प्रति विशेष आकर्षण देखा जाता है। क्योंकि वे भौतिक आकांक्षाओं के कारण जीवन में जो तनाव आगये हैं, उससे मुक्ति चाहते हैं। आज भारतीय योग और ध्यान की साधना पद्धतियों को अपने-अपने ढंग से पश्चिम के लोगों की रुचि के अनुकूल बनाकर विदेशों में निर्यात किया जा रहा है। योग और ध्यान की साधना में शारीरिक विकृतियों और मानसिक तनावों को समाप्त करने की जो शक्ति रही हुई है उसके कारण भोगवादी और मानसिक तनावों से संत्रस्त पश्चिमी देशों के लोग चैतनसिक शान्ति का अनुभव करते हैं और यही कारण है कि उनका योग और ध्यान के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। इन साधना पद्धतियों का अभ्यास कराने के लिए भारत से परिपक्व एवं अपरिपक्व दोनों ही प्रकार के गुरु विदेशों की यात्रा कर रहे हैं। यद्यपि अपरिपक्व, भोगाकांक्षी तथाकथित गुरुओं के द्वारा ध्यान और योग साधना की पश्चिम में पहुंचना भारतीय ध्यान और योग परम्परा की मूल्यवत्ता एवं प्रतिष्ठा दोनों ही दृष्टि से खतरे से खाली नहीं है। आज पश्चिम में भावातीत ध्यान, साधना, भक्ति वेदान्त, रामकृष्ण मिशन आदि के कारण भारतीय ध्यान एवं योग साधना के प्रति लोकप्रियता बढ़ी, वहीं रजनीश आदि के कारण उसे एक झटका भी लगा है। आज श्री चित्रभानुजी, आचार्य सुशील कुमारजी, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल आदि ने जैन ध्यान और साधना विधि से पाश्चात्य देशों

में बसे हुए जैनों को परिचित कराया है। तेरापंथ की कुछ जैन समणियों ने भी विदेशों में जाकर प्रेक्षाध्यान विधि का उन्हें अभ्यास कराया है। यद्यपि इनमें कौन कहाँ तक सफल हुआ है यह एक अलग प्रश्न है क्योंकि सभी के अपने-अपने दावे हैं। फिर भी इतना तो निश्चित है कि आज पूर्व और पश्चिम दोनों में ही ध्यान और योग साधना के प्रति रुचि जागृत हुई है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि योग और ध्यान की जैन-विधि सुयोग्य साधकों और अनुभवी लोगों के माध्यम से ही पूर्व एवं पश्चिम में विकसित हो, अन्यथा जिस प्रकार मध्ययुग में हठयोग और तंत्रसाधना से प्रभावित होकर भारतीय योग और ध्यान परम्परा विकृत हुई थी। उसी प्रकार आज भी उसके विकृत होने का खतरना बना रहेगा और उससे लोगों की आस्था उठ जावेगी।

ध्यान एवं योग सम्बन्धी शोध कार्य - इस युग में गवेषणात्मक दृष्टि से योग और ध्यान संबंधी साहित्य को लेकर पर्याप्त शोध कार्य हुआ है। जहाँ भारतीय योग साधना और पातन्जलि के योग सूत्र पर पर्याप्त कार्य हुए हैं, वहीं जैनयोग की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। ध्यानशातक, ध्यानस्तव, ज्ञानार्णव आदि ध्यान और योग सम्बन्धी ग्रन्थों का समालोचनात्मक भूमिका और हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न कहा जा सकता है। पुनः हरिभद्र के योग सम्बन्धी ग्रन्थों का स्वतन्त्र रूप से तथा योग चतुष्टय के रूप में प्रकाशन इस कड़ी का एक अगला चरण है। पं. सुखलालजी का 'समदर्शी हरिभद्र' अर्हंतदास बंडबोध दिगे का पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान से प्रकाशित जैन योग का आलोचनात्मक अध्ययन, मंगला सांड का भारतीय योग आदि गवेषणात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रकाशन कहे जा सकते हैं। अंग्रेजी भाषा में विलियम जेम्स का जैन योग, टाटिया की 'स्टडीज इन जैन फिलासफी', पद्माभ जैनी का 'जैन पाथ आफ प्युरीफिकेशन' आदि भी इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। जैन ध्यान और योग को लेकर लिखी गई मुनि श्री नथमल जी (युवाचार्य महाप्रज्ञ) की 'जैन योग', 'चेतना का उर्ध्वारोहण', 'किसने कहा मन चंचल है', 'आभामण्डल', आदि तथा आचार्य तुलसी की प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा आदि कृतियाँ इस दृष्टि से अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं। उनमें पाश्चात्य मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान का तथा भारतीय हठ योग आदि की पद्धतियों का एक सुव्यवस्थित समन्वय हुआ है। उन्होंने हठयोग की षट्चक्र की अवधारणा को भी अपने ढंग से समन्वित किया है। उनकी ये कृतियाँ जैन योग और ध्यान साधना के लिए मील के पत्थर के समान हैं।

निदेशक

**पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध
संस्थान, आई.टी.आई.रोड
वाराणसी-५**

* * * * *

जैन परम्परा में स्वाध्याय तप

• डॉ. दामोदर शास्त्री

भारतीय परम्परा और स्वाध्याय - भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों को उजागर करने वाले विविध साहित्य का विशाल भण्डार, आज जिस रूप में भी, हमारे पास सुरक्षित है, उसका सारा श्रेय हमारी उस सुदीर्घ परम्परा को है जिसके द्वारा पठन-पाठन, स्वाध्याय, मनन-चिन्तन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाता रहा है। जहाँ तक वैदिक संस्कृति का सम्बन्ध है, उसमें मूल ग्रन्थ वेद तथा (वेदांग आदि) के पठन-पाठन, तत्त्व-दर्शा, धर्मोपदेश आदि के रूप में प्रवर्तमान स्वाध्याय की धार्मिक दृष्टि से महत्ता सर्वविदित है। वेद को सर्वविध ज्ञान का भण्डार घोषित कर ^१ आत्म-ज्ञान या परमात्म-ज्ञान की महत्ता सर्वातिशायिनी थी जरूर ^२, पर वह वेद-प्रतिपादित या उपदिष्ट मार्ग से जुड़ी हुई थी ^३। परवर्ती अन्य स्वतंत्र दार्शनिक मतों का उद्भव व विकास भी हुआ, पर वे कमोबेश रूप में आवश्यकतानुसार श्रुत (वेद) को प्रमाण रूप में प्रस्तुत कर अपना मत समर्थित करते हैं ^४। फलतः सुदीर्घ भारतीय इतिहास में वैदिक साहित्य के स्वाध्याय की प्रवृत्ति जोर-शोर से जारी रही। स्वाध्याय को कितना महत्व दिया जाता रहा है-यह भी इसी बात से स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्याश्रम में अनेक वर्षों की पढ़ाई की समाप्ति के बाद, गुरु द्वारा शिष्य को जो कई महत्वपूर्ण उपदेश दिए जाते थे, उनमें एक यह भी था - 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' ^५ - अर्थात् स्वाध्याय से (अध्ययन, प्रवचन, अध्यापन ^६) से प्रमाद कभी न करना। अधीत ग्रन्थों के स्वाध्याय से पठित विषय में दृढ़ता आती है, और हमारे अध्ययन की तेजस्विता प्रकट होती है। अध्ययन को तेजस्वी (अर्थज्ञानयोग्य) बनाने की कामना वेद में भी व्यक्त की गई है। ^७ सच्छास्त्रों के स्वाध्याय को महत्ता देने के पीछे इसकी महती लौकिक व लोकोत्तर उपयोगिता भी थी। समस्त प्राणी-वर्ग की प्रबल इच्छा रहती है कि वह सर्वत्र, चाहे वह लोक में या लोक से विरक्त-मुक्त रहे, शान्ति प्राप्त करे। शान्ति प्राप्ति की इस अदम्य लालसा का समर्थन अनेक वैदिक वचनों से होता है ^८। स्वाध्याय से लौकिक शान्ति तो प्राप्त होती है,

१. भूतं भव्य भविष्य च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति (मनुस्मृति)।

२. यजु. ३.१८, अथ. ९.१०.१, १०.८.४४,

३. संश्रुतेन गमेमहि (अथर्व १.४)।

४. जैमिनि सू. १.३.३, ब्रह्मासूत्र १.१.३.३, २.३.१.१, न्याय सू. ३.१.३१, वैशेषिक सू. २.१.१७.१९, १.१.३, सांख्य सू. १.३६.१, १.५३, योग सू. १.७. १.२६.,

५. तैत्ति. उप. १.११.१,

६. शंकर भाष्य, तैत्ति. उप. १.११.१।

७. तैत्ति. उप., द्वितीय व तृतीय वल्ली का प्रारम्भिक शान्तिपाठ।

८. यजु. ३६.१७।

लोकोत्तर शांति (मुक्ति) ^९ का मार्ग भी खुलता है ^{१०}। इसीलिए महर्षि व्यास ने उद्घोषणा की थी - स्वाध्याय से उत्तम-श्रेष्ठ व अलौकिक शान्ति प्राप्त होती है ^{११}। जैन संस्कृति में भी स्वाध्याय को सर्वदुःखों से मुक्ति देने वाला बताया गया है ^{१२}। इसी संदर्भ में महामान्य श्री लोकमान्य तिरक का यह वचन भी मननीय है :-

“मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह दिव्य शक्ति है कि जहाँ ये होंगे, वहाँ आप ही स्वर्ग बन जाएगा।”

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति की वैदिक धारा में तो स्वाध्याय की महत्ता विद्यमान है ही, श्रमण धारा के आदि-स्रोत जैन धर्म व दर्शन में भी इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में काफी चिन्तन हुआ है। चाहे वैदिक धारा हो, चाहे श्रमण जैन धारा, दोनों के साहित्य के अनुशीलन से यह तथ्य प्रकट होता है कि मुनि-वर्ग की दैनिक जीवन-चर्या में तप व स्वाध्याय-इन दोनों की प्रमुख भूमिका है। वाल्मीकि रामायण के प्रथम श्लोक में जिस नारद से राम-कथा के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की गई है, उस नारद का विशेषण है-तपः स्वाध्यायनिरत। अर्थात् वाल्मीकि-रामायण का प्रारम्भ ही तप-स्वाध्याय ज्ञान दो पदों से हुई है ^{१३}। श्रमण (जैन) संस्कृति में भी स्वाध्याय को तप का ही एक भेद (प्रकार) स्वीकार करते हुए ^{१४} तप व शास्त्रादि-स्वाध्याय में सर्वदा सचेष्ट मुनि को प्रशस्त बताया गया है।

प्रस्तुत निबन्ध द्वारा श्रमणधारा (जैन-धर्म-दर्शन) में ‘स्वाध्याय’ के विषय में जो विचार-विमर्श हुआ है, उसे संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। ^{१५}

स्वाध्याय-योग - दशवैकालिक सूत्र में ^{१६} ‘स्वाध्याय-योग’ शब्द व्यवहृत हुआ है। ‘योग’ शब्द के ऐसे तो अनेक अर्थ हैं, पर यहाँ अर्थ है-जोड़ने वाला, सम्बन्ध कराने वाला। किससे सम्बन्ध कराने वाला? समाधान है-मोक्ष से। आचार्य हरिभद्रसूरि ने योग बिन्दु में मोक्ष से सम्बन्ध कराने वाले व्यापार को ‘योग’ पद से अभिहित किया है ^{१७}। स्वाध्याय भी संयमादि की तरह ^{१८} एक ‘योग’ है, एक यौगिक क्रिया है, जो मोक्ष-प्राप्ति में सहायक होती है।

९. श्वेता उप. ४.११ मुंडकोप ७

१०. (क) कठोप १.२.२४

छान्दोग्य उप. ३.१४.१

(ख) नैति. उप. १.२.१ पर शांकर भाष्य। पृ. ९६. ब्रह्मानन्दवल्ली

११. म. भा. शांति पर्व, १८४.२ गीता प्रेस सं.।

१२. उत. २६.१०

१३. वा. रामा १.१

१४. भगवती आरा. १०७, उत. २६.३७।

१५. द्वादशानु. ४४०।

मूलाचार- ९७१ उत. ९७१। उत. २९.५९

१६. दशवै. ८.६१।

उत. २९.१८ पर नेमिवन्द्रीय टीका में उद्धृत।

१७. -योगबिन्दु, १.३१।

१८. दशवै ८.६१ एवं भगवती सू. १८.१०.९।

स्वाध्याय का स्वरूप - स्वाध्याय के स्वरूप के सम्बन्ध में विविध निरूपण प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं -

(I) सु+आ+अध्याय=स्वाध्याय। 'सु' यानी भलीभांति (सुष्ठ), 'आ' यानी मर्यादा के साथ, अध्ययन-श्रुत का विशेषतः अनुशीलन 'स्वाध्याय' है। निष्कर्षतः जिनेन्द्र प्ररूपित शास्त्र का एकाग्र चित्त से अध्ययन-पढ़ना 'स्वाध्याय' है ^{१९}। अध्ययन से तात्पर्य, उन शास्त्रों के पठन-पाठन से है जिनसे चित्त निर्मल होता है या जिससे तत्व बोध, संयम व मोक्ष की प्राप्ति होती है ^{२०}।

(II) शास्त्रादि का स्व+अध्याय। यानी अपने लिए-अपनी आत्मा के लिए हितकारी अध्ययन करना 'स्वाध्याय' है (स्वस्मै हितः अध्यायः स्वाध्यायः ^{२१}) -

(III) स्व+अध्याय। यानी 'स्व' का, आत्मा का, अध्ययन ^{२२}। आत्मा के आशय को पढ़ना, आत्मा के गुणों की खोज करके उन्हें जीवन में उतारना इस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणों की (मननादि द्वारा) प्राप्ति ही वास्तविक स्वाध्याय है।

(IV) आत्मस्य त्याग कर ज्ञान की आराधना को 'स्वाध्याय' कहते हैं ^{२३}।

यहाँ 'ज्ञान' पद से 'सच्छास्त्र, आराधना' पद से अध्ययन' मनन आदि अभिप्रेत हैं: अतः भगवान् जिनेन्द्र द्वारा निरूपित जीवा-जीवादि तत्वों के निरूपण करने वाले (बारह अंग, चौदह पूर्व) सच्छास्त्रों का मनन ही (व्यवहार दृष्टि से ^{२४}) स्वाध्याय है। 'ज्ञान' पद से आत्मा भी अभिप्रेत होता है ^{२५}। ऐसी स्थिति में आत्माराधना ही (परमार्थ-दृष्टि से) स्वाध्याय है।

(V) पंचनमस्कृति रूप 'नमोकार मंत्र' का चित्त की एकाग्रता के साथ, 'जप' करना परम स्वाध्याय है ^{२६}।

अध्ययन के विविध प्रकार - जैनतर शास्त्रों में श्रवण मनन, निदिध्यासन-ये तीन प्रकार आत्माराधना के स्वीकृत किये गए हैं ^{२७}। आचार्य शंकर के मत में अध्ययन, प्रवचन, व अध्यापन-ये सभी स्वाध्याय के अन्तर्गत परिगणित हैं ^{२८}।

१९. तत्त्वानुशासन, ८०

२०. विशेषावश्यक भाष्य- ९५८।

२१. सर्वार्थसिद्धि ९.२०

२२. जिनदास चूणि, दशवै ८.४१।

२३. सर्वार्थसिद्धि, ९.२०।

२४. मूलाचार, ५११।

२५. प्रवचनसार १.२७ एवं १.३३

प्रवचनसार १.३३।

२६. तत्त्वानुशासन, ८०।

२७. बृहदा उप. २.४.५।

२८. शंकर भाष्य, तैत्ति. उप. १.११.१।

जैन शास्त्रों में स्वाध्याय के पांच अंग बताए गए हैं। तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार १. वाचना, २. पृच्छना, ३. प्रतिपृच्छना (अनुप्रेक्षा), ४. आम्नाय, ५. धर्मोपदेश-ये पाँच अंग हैं ^{२९}। व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र), मूलाचार आदि के अनुसार १. वाचना, २. पृच्छना, ३. परिवर्तना, ४. अनुप्रेक्षा, ५. धर्म कथा-ये ५ अंग हैं ^{३०}।

१ वाचना - निर्दोष ग्रन्थ तथा तत्प्रतिपादित अर्थ-इन दोनों के उपदेश का योग्य पात्र को प्रदान करना वाचना है ^{३१}। गुरु शिष्य को सूत्रादि को 'वाचना' प्रदान करता है, भव्य जीव को शास्त्र पढ़ाता है, ग्रन्थ के अर्थ की प्ररूपणा करता है ^{३२}, शिष्य उसको ग्रहण करता है। वह शिष्य भी योग्य पात्रों को वाचना दे सकता है। सामान्यतः सद्गुरु से सूत्रपाठ की शिक्षा लेकर (न कि किसी पुस्तकादि से चुरा ^{३३} कर या चोरी से स्वयं पोथी बाँच कर) शास्त्रों का वाचन, आत्मकल्याण-हेतु निर्दोष ग्रन्थों को स्वयं पढ़ना दूसरों को समझाने हेतु सूत्रानुयोगी व्याख्यान करना या वाचन करना-ये सब कार्य वाचना के अन्तर्गत हैं।

सूत्र-व्याख्यान के ६ भेद शास्त्रों में बताए गए हैं-(१) संहिता (पद का अस्खलित, शुद्ध उच्चारण), (२) पद (वाक्य के प्रत्येक पद का शुद्ध-शुद्ध पृथक्-पृथक् उच्चारण), (३) (पदार्थ पद का अर्थ), (४) पद-विग्रह, (५) (पदच्छेद) (चालना शंका आदि उठाना), (६) प्रसिद्धि (उठाई गई शंकाओं का समुचित समाधान) ^{३४}

सूत्रों का उच्चारण इस तरह सांगोपांग व परिपूर्ण रूप से किया जाए कि अक्षरादि की स्खलना न हो, पदों को पृथक्-पृथक् कर पढ़ा जाए, अपनी ओर से कोई अक्षर, पद आदि का न तो योग किया जाय और न ही कमी की जाए, वर्णों का यथास्थान (उदात्तादिघोष-नियमानुरूप), सुस्पष्ट (न कि अव्यक्त) उच्चारण हो, प्रत्येक पद माला में गुँथे फूल जैसा सुशोभित हो। ^{३५}

२९. तत्त्वा. सू. ९.२५।

३०. (क) व्याख्या प्र. २५.७.८०९

(ख) मूलाचार - ३९३

(ग) उत्त. ३०.३४।

३१. (क) औपपा. १९

(ख) सर्वार्थसिद्धि ९.२५।

३२. धवला ९.४.१.५४, ५५, जै. को. ३.५.३९।

३३. अनुयोग द्वार, १३-१४ सू.।

विशेषावश्यक भाष्य- ८५०-८५५।

३४. उद्धृत, सुतागमे, II भाग पृ. ५८-५९

३५. (क) अनुयोगद्वार सू. १३-१४।

(ख) द्र. विशेषावश्यक भाष्य, ८५१, ८५४, ८५५।

(ग) व्या. महाभाष्य पस्पशाह्निक १.१.१।

दिगम्बर ग्रन्थों में वाचना के चार प्रकार इस प्रकार बताए गए हैं-(१) नन्दा, (२) भद्रा, (३) जया, (४) सौम्या।^{३६}

नन्दा - अन्यदर्शनों को पूर्व पक्ष के रूप में उपस्थापित कर स्व (जैन) मत को सिद्धान्त रूप में उपस्थापित करने की वाचना 'नन्दा' है।^{३७}

भद्रा - युक्तिपूर्वक समाधान कर पूर्वापर-विरोध को हटाते हुए समस्त पदार्थों की व्याख्या 'भद्रा वाचना' है। सूत्रार्थका पूर्वापर-संगित के साथ अपने लिए ज्ञान से, तथा दूसरों के लिए वचनों से निर्गमना (निर्यापना=अर्थ-निरूपणा) वाचना-सम्पद कही जाती है।^{३८}

जया - पूर्वापर-विरोध-परिहार के बिना सिद्धान्त-अर्थों का कथन 'जया' वाचना है।^{३९}

सौम्या - कहीं-कहीं स्वल्पनपूर्ण वृत्ति से, (थोड़ा-थोड़ा भाग छूते हुए) की जाने वाली वाचना 'सौम्या' है।^{४०}

'वाचना' की स्थिति में शिष्य को मान, क्रोध, प्रमाद, आलस्य आदि से रहित होना चाहिए।^{४१}

वाचना का फल - गुरु द्वारा वाचना (अध्यापन) के निम्नलिखित लाभ शास्त्रों में वर्णित हैं -

- (१) श्रुत (शास्त्र) का संग्रह (शास्त्र-ज्ञान भण्डार में वृद्धि)।
- (२) शास्त्र-ज्ञान से उपकृत शिष्य के मन में शास्त्र-सेवा करने की भावना का प्रादुर्भाव।
- (३) श्रुत की उपेक्षा के दोष से सुरक्षा, श्रुत के अनुवर्तन से अनशातना-ज्ञान का विनय।
- (४) ज्ञान-प्रतिबन्धक कर्मों की निर्जरा, संस्कार-क्षय। चरम साध्य की उपलब्धि।
- (५) अभ्यस्त शास्त्र में स्थिरता।
- (६) निरन्तर शास्त्र-वाचना से 'सूत्र' को विच्छन्न न होने देना। फलतः तीर्थधर्म का अवलम्बन-धर्मपरम्परा की अविच्छिन्ना।^{४२}
- (७) रत्नत्रय (सम्यग्दर्शनादि) की संसिद्धि।
- (८) मिथ्यात्व का नाश एवं सत्य को प्राप्त करने की तीव्र जिज्ञासा-वृत्ति का उदय।^{४३}

३६. धवला ९.४.१.५४।

३७. वही, पूर्वोक्त।

३८. उक्त. १.५८ नियुक्ति शान्ति-सूरि वृत्ति।

३९. वही। पूर्वोक्त।

४०. वही, पूर्वोक्त।

४१. उक्त. ११.३।

४२. स्थानांग ५.३.५४१।

४३. वायणा एणं भंते किं जणायइ? निज्जर जणायइ। सुयस्य अणासायना एवम् सुयस्य अणासायणाए।

वाचनादि के पात्र - सिद्धान्त का, आगम-रहस्य का ज्ञान गुणवान व योग्य पात्र देख कर ही करना उचित है। आचार्य हरिभद्रसूरि लिखते हैं कि जिस प्रकार कच्चे घड़े में भरा जल उस घड़े को ही विनष्ट कर देता है, वैसे ही गुणरहित व्यक्ति को दिया हुआ सिद्धान्त-रहस्य उस अल्पा-धार शिष्य का ही विनाश करता है। ^{४४}

स्वाध्याय करने वाले शिष्य के गुरु के प्रति कर्तव्य-अकर्तव्य आदि के विषय में तथा योग्य व अयोग्य शिष्य के स्वरूप के विषय में जैन शास्त्रों में विस्तृत निरूपण प्राप्त होता है। ^{४५}

पृच्छना - संशय का उच्छेद करने या निश्चित बल (महत्त्व) को पुष्ट करने हेतु प्रश्न करना 'पृच्छना' है। ^{४६} शास्त्रों के संदिग्ध अर्थ को किसी दूसरे से पूछना, सत्पथ की ओर बढ़ने हेतु मोक्षादिमार्ग का स्वरूप निश्चित करना, संशय-निवारणार्थ प्रश्न या जिज्ञासा करना। पढ़ते समय; या पढ़ने के बाद, शिष्य के मन में जहाँ कोई शंका उठे-ऐसी स्थिति में, अथवा कोई बात आगम में स्पष्ट न हो सकती हो, उसके सम्बन्ध में ^{४७} गुरुजनों आदि से समाधान पाने का प्रयत्न करना 'पृच्छना' है। ये प्रश्न एक प्रकार से विषय की सुस्पष्टता के लिए प्रारम्भिक कदम है। इसीलिए शास्त्रों में आचार्यादि बहुश्रुत के समक्ष अर्थ-विनिश्चय हेतु जिज्ञासा रखने की प्रेरणा दी गई है। ^{४८}

उक्त निरूपण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पृच्छा या जिज्ञासा का मुख्य उद्देश्य स्वसंशयोच्छेद व अर्थ-विनिश्चय है। अतः अपने को बड़ा ज्ञानी व अध्येता प्रदर्शित करने, दूसरे को दबाने या उस पर रौब डालने या उसका उपहास करने, या विवाद-कलह करने की भावना से प्रश्न करना शास्त्रसम्मत नहीं। ^{४९}

पृच्छा या जिज्ञासा विशेषतः द्रव्य, गुण, पर्याय के विधि-निषेध विषयक होती है ^{५०}, अथवा सामान्यतः सूत्र या उसके अर्थ के सम्बन्ध में कोई भी जिज्ञासा या प्रश्न 'पृच्छा' है। ^{५१}

शास्त्र के अर्थ को जानने वाला भी, गुरु आदि के समक्ष जिज्ञासा रख सकता है ताकि वह असंदिग्ध (पूर्णतः निश्चित) हो जाए। स्वयं असंदिग्ध भी हो तब भी जिज्ञासा की जा सकती है ताकि ग्रन्थ के अर्थ की और भी अधिक पुष्टि (बलाधान) हो जाए। ^{५२}

४४. हरिभद्रीय टीका, दशवै. ४.१।

४५. सूत्रकृतांग- १.९.३३; १.४.१-१०, दशवै नवम अध्ययन, उत्तराध्ययन प्रथम व एकादश अध्ययन।

४६. तथा राजवार्तिक ९.१२५.२. अनगारधर्मानृत- ७.८४; धवला १४.५.६.१३।

४७. धवला ९.४.१.५५, धवला, पु. १४ पृ. ९

४८. दशवै. ८.४३। धवला १३.५.५.५०।

४९. राजवार्तिक ९.२५०२।

५०. धवला, १३.५.५.५०।

५१. धवला, वही।

५२. तत्त्वार्थ. श्रुतसागरीयवृत्ति, ९.२५।

पृच्छना का फल - सूत्र (शास्त्र) तथा तत्प्रतिपादित अर्थ-इन दोनों से सम्बन्धित सन्देह की निवृत्ति, संशय, विपर्यय आदि का निराकरण, तथा कांक्षामोहनीय कर्म का क्षय आदि पृच्छना के फल है। ^{५३}

३. परिवर्तना (या आम्नाय) - गृहीत ज्ञान को स्थायी बनाने हेतु किसी सूत्र का या पठित शास्त्र का, आचारविद, व्रती द्वारा स्वयं किया गया बारबार शुद्ध (पाठ-दोषों से रहित) पाठ 'परिवर्तना' है। ^{५४} परिचित श्रुत का मर्म समझने, तथा स्मृति में पूर्णतः स्थिर करने हेतु यह एक प्रकार का परिशीलन या पर्यालोचन भी है। ^{५५} पठित ग्रन्थ का शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करते हुए बारबार पाठ से तत्सम्बद्ध अर्थ मन में दृढ़ता से बैठता जाता है।

आम्नाय, घोषविशुद्ध, परिवर्तन (ना), गुणन, रूपादान-ये सभी शब्द एकार्थक हैं ^{५६}।

स्तुति भी (परिवर्तना) स्वाध्याय है - निरन्तर अर्हन्त भगवान् के ध्यान में लीन रहता हुआ 'जो अर्हन् शं वो दिश्यात्' (अर्हन्त भगवान् तुम्हारा कल्याण करें) इत्यादि स्तुति वचन उचारता है, वह भी स्वाध्याय है, क्योंकि इस स्तुति से भी परम्परया मोक्ष-प्राप्ति मानी गई। ^{५७}

परिवर्तन का फल - शास्त्रों में परिवर्तना का फल अक्षरों की उत्पत्ति, अर्थात् स्मृति की परिपक्वता और विस्मृत की स्मृति, तथा व्यंजन-लब्धि (वर्णविद्या) की यानी पदानुसारिणी बुद्धि की, प्राप्ति बताया गया है। ^{५८}

५३. दशवै. चूर्णि, पृ. २८।

५४. (क) तत्त्वार्थ. ९.२५ श्रुतसागरीयवृत्ति।

(ख) राजवार्तिक ९.२५.४

(ग) चारित्रसाग-पृ. ८७,

(घ) भगवती आरा. टीका, १३९

(ङ) अनगार धर्मानुत ७८७

(च) तत्त्वार्थसार, ७.१९

५५. धवला, ९.४.१.५५।

५६. (क) तत्त्वा. सू. ९.२५ भाष्य

(ख) भगवती आरा. १०४ टीका।

५७. (क) अनगार धर्म. ७.९२।

(ख) आ. भद्रबाहु, आव. नियुक्ति, १०७३।

५८. उक्त. ३९.२।

४. अनुप्रेक्षा - सन्देह की स्थिति में अधिगत शास्त्र में प्रतिपादित पदार्थ का, सुने हुए अर्थ का श्रुतानुसार तात्त्विक दृष्टि से, पुनः पुनः मन में अभ्यास, गम्भीर चिन्तन-मनन; ^{५९} मन की स्थिरता हेतु वस्तु-स्वभाव एवं पदार्थ-स्वरूप का या पूर्ण रूप से हृदयगत श्रुतज्ञान का ^{६०} परिशीलन-पर्यालोचन 'अनुप्रेक्षा' है।

अनुप्रेक्षा ग्रन्थ व उसके अर्थ का मानसिक अभ्यास है, न कि शाब्दिक। यही 'आम्नाय' से इसका भेद है। ^{६१}

अनुप्रेक्षा का फल - अनुप्रेक्षा से ज्ञान की गहराई में प्रवेश की क्षमता प्राप्त होती है, तथा ज्ञान क्रमशः प्रदीप्त होता जाता है। तत्त्वचिन्तन एक प्रकर से द्वारपाल है जो विषय वासना के दोषों को अन्दर प्रविष्ट नहीं होने देता। ^{६२} आयुष्य कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की गाढ़ बन्धन से बंधी कर्म-प्रकृतियों का बन्धन अनुप्रेक्षा से शिथिल पड़ जाता है। इससे कर्मबन्ध, के प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, प्रदेशबन्ध-इस विविधरूपों में शिथिलता, हीनता आजाती है। अनुप्रेक्षा वाले को आयुष्य कर्म कभी बंधते हैं, कभी नहीं भी। असातावेदनीय कर्म के बन्धन बार-बार नहीं बंधते, तथा अनादि-अनंत दीर्घ चार गति रूप संसार-अटवी को शीघ्र ही पार करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। संक्षेप में अनुप्रेक्षा के लाभ इस प्रकार हैं :-

१. दृढ़ कर्म का शिथिलीकरण, दीर्घकालीन कर्म-स्थिति का संक्षेपीकरण, तीव्र अनुभाग का मन्दीकरण।
२. असातावेदनीय कर्म का अनुपचय।
३. संसार से शीघ्र मुक्ति। ^{६३}

५९. सर्वार्थसिद्धि, ९.२५।

(क) तत्त्वा. ९.२५ भाष्यानुसारी टीका।

(ख) धवला १४५. ६१४।

६०. (क) धवला ९४.१५५।

(ख) तत्त्वा श्रुतसागरीय वृत्ति ९.२५।

(ग) तत्त्वा. रा वार्तिक, ९.२५.३

(घ) चारित्रसार, पृ. ६७।

(ङ) हारिभद्राय वृत्ति, ७, पृ. १०।

(च) तत्त्वार्थसार ७२०।

(ज) धर्म शर्मा. स्वोपज्ञवृत्ति, ३.५४।

६१. (क) दशवै. नि. १.४८, दशवै. चूर्णि-१, पृ. २९।

(ख) तत्त्वा. भाष्य ९.२५।

(ग) अनगा. धर्मा. ७.८३।

(घ) तत्त्वा. ९.२५ भाष्यानुसारी टीका।

६२. भग. आरा. १८४२।

६३. उक्त. २९.२२।

५. **धर्मकथा** - सर्वज्ञप्रणीत अहिंसादि लक्षण रूप धर्म का कथन (अनुयोग) धर्म-कथा है। इसे धर्मोपदेश भी कहते हैं।^{६४} धर्मकथा के अन्तर्गत त्रैसठ शलाका पुरुषों का चरित्र पढ़ना-चित्त का विषयों से रोक कर शान्तिदायी पाठों का अभ्यास तथा उन्हें कण्ठस्थ करना, चिन्तन-मनन के बाद तत्त्व रहस्य जब स्वयं को उपलब्ध हो जाएं तब विचारामृत को जन-जन के समक्ष प्रस्तुत करना, दूसरों को सत्य के अन्वेषण हेतु मार्ग बताना, तथा सन्देह-निवृत्ति हेतु पदार्थ का स्वरूप बताना, श्रुतादि धर्म की व्याख्या करना, तथा श्रोताओं में रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए स्वतंत्र रूप से धार्मिक उपदेशादि द्वारा बर्द्धित करना आदि परिगणित हैं।

प्रमुखतः दिगम्बरमतानुसार प्रथमानुयोग रूप तथा श्वेताम्बर मतानुसार धर्मकथानुयोग रूप शास्त्र 'धर्मकथा' में परिगणित है।^{६५}

धर्मोपदेश, अर्थोपदेश, व्याख्यान, अनुयोग-वर्णन ये सब पर्यायवाची शब्द हैं।^{६६}

मुनि स्वयं तो लौकिकी कथा, विकथा,^{६७} तथा असच्छास्त्रों के अध्ययन से दूर रहते ही हैं, दूसरों को भी धर्मकथा में प्रवृत्त कराते हैं।^{६८} शास्त्र-ज्ञान भी एक सदन है।^{६९} इस ज्ञान-दान के सम्बन्ध में भी पात्र-अपात्र का विचार करना चाहिए तथा स्वयं को भी योग्य उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठापित करना चाहिये।^{७०} सन्मार्गोपदेश के समान कोई परोपकार नहीं।^{७१} अतः धर्मकथा का महत्व सभी दृष्टियों से सिद्ध होता है।

धर्मकथा के फल - धर्मकथा से कर्मनिर्जरा होती है, साथ ही धर्मशास्त्र प्रवचन की प्रभावना भी। प्रभावना के फलस्वरूप भविष्य में कल्याणकारी फल वाले (कुशल) कर्म ही अर्जित होते हैं।^{७२}

६४. सर्वार्थ. ९.२५।

६५. (क) गोम्मटसार, जीवकाण्ड, ८८।

(ख) महापुराणा १.१२०।

६६. तत्त्वा ९.२५ भाष्य टीका।

६७. विकथा सात प्रकार की होती है- (१) स्त्रीकथा (२) भक्तकथा (भोजन सम्बन्धिनी कथा) (३) देशकथा (४) राजकथा (५) मृदुकारुणिकी (विपत्तिग्रस्त व्यक्ति को लक्ष्य कर करुणा रसप्रधान वार्ता), (६) दर्शनमोहिनी सम्यग्दर्शन व धर्म श्रद्धा को कम करने वाली कथा, (७) चारित्र भेदिनी।

६८. (क) मूलाचार ८५४, ८५७

(ख) दशवै. ८.४१।

६९. (क) वसुनन्दि आवकाचार २३३।

(ख) सर्वार्थ. ६.२४।

७०. उपदेशक के स्वरूप, धर्मोपदेश की विधि आदि के विषय में देखे- सूत्र कृतांग १.१४, १८-२७; १.१११.२४; १.१३.२०, २२, (म.वा.पु.३२७) असाधु धर्मोपदेश के अपात्र है- (१.१४.२० बही)।

७१. आदिपुराणा १.७६।

७२. (उत. २९.२३।

५. अंगों की क्रमिक उपादेयता-अनुसरणीयता - वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा, व धर्मकथा-इस पाँच अंगों का परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार है :-

पढ़ाने के हेतु शिष्य के प्रति गुरु का प्रयोजन-भाव, यानी पाठ धराना, वाचना है। वाचना ग्रहण करने के अनन्तर संशयादि उत्पन्न होने की स्थिति में शिष्य द्वारा पुनः पूछना, जिज्ञासा प्रकट करना 'पृच्छना' है। पृच्छना से विशोधित सूत्र कहीं विस्मृत न हो जाए- इस उद्देश्य से सूत्र का बार-बार अभ्यास, गुणन करना, फेरना परिवर्तना है। सूत्र की तरह अर्थ की विस्मृति होनी स्वाभाविक है, अतः अर्थ का बार-बार अनुप्रेक्षण, मानसिक मनन-चिन्तन 'अनुप्रेक्षा' है। इस प्रकार अभ्यस्त हो चुके 'श्रुत' का आश्रय लेकर धर्मकथा करना, श्रुतधर्म की व्याख्या करना धर्मकथा है।

स्वाध्याय किस उद्देश्य से करे? - श्रुत का अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए -

१. श्रुत हृदयंगत होगा-इस भावना से। ७३
२. एकाग्रता की प्राप्ति हेतु। ७४
३. धर्म में स्वयं स्थिर होकर दूसरों को भी स्थिर करने हेतु। ७५
४. पूजा आदि की कामना से निरपेक्ष कर्म-रज का नाश-हेतु। ७६

लौकिक फल सत्कारादि की प्राप्ति-हेतु स्वाध्याय करने का शास्त्र द्वारा निषेध है। २० व द्वेष से लोगों को ठगने के लिए असच्छास्त्र के स्वाध्याय को वर्ज्य कहा है। ७७

स्वाध्याय का काल - दिन के प्रथम व चतुर्थ प्रहर में ७८ इसी प्रकार रात्रि के प्रथम व चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय का विधान है। ७९ प्रथम प्रहर में सूत्र का स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर में सूत्रार्थचिन्तन कर्तव्य है। अनगारधर्मावृत्त के अनुसार मुनि की दैवसिक चर्या में स्वाध्याय का काल इस प्रकार वर्णित है-सूर्योदय के २ घड़ी पश्चात से मध्याह्न के २ घड़ी पहले तक, मध्याह्न के २ घड़ी बाद से सूर्यास्त के २ घड़ी पूर्व तक, सूर्यास्त के २ घड़ी बाद से अर्धरात्रि के २ घड़ी पूर्व तक, अर्ध रात्रि के २ घड़ी बाद से सूर्योदय के २ घड़ी पूर्व तक। ८०

७३. दशवै. ९४. सू. ५

७४. (वहीं)।

७५. वहीं

७६. द्वादशानु. ४६२।

७७. (क) द्वादशानु. ४६२।

(ख) द्वादशा. ४३६।

(ग) सूत्र कृ. १.१३.२२।

७८. उक्त. २६.११, २६.१२

७९. उक्त. २६.१७, २६.१८, २६.४३,

८०. अनगार धर्मावृत्त, ९.१-१३, ९.३४-३५ (को. II/१३७)। द्र. धवला ९.४.१.५४ गा. १११-११४ (को ४.५२६)

वस्तुतः तो जीवन का प्रत्येक क्षण स्वाध्याय का, आत्मचिन्तन का होना चाहिए। जीवन की प्रत्येक घटना साधक को कुछ न कुछ 'सीख' दे सकती है। इसीलिए आगम में कहा- 'अपने जीवन को देखो'।^{८१} जीवन में प्रत्येक वस्तु नश्वर है। क्या यह नश्वरता हमें विरक्त होने^{८२} तथा धर्म की शरण लेने हेतु प्रेरित करने को बाध्य नहीं करती? ^{८३} साधक को प्रतिक्षण स्वाध्याय-हेतु, आत्मकल्याण हेतु जागृत रहना चाहिए, प्रमाद नहीं करना चाहिए। ^{८४} अज्ञ व पण्डित-दोनों प्रकार के व्यक्तियों के जीवन के अन्तर को देखा जाए तो स्वयं अज्ञता छोड़ने का मन करेगा। ^{८५}

स्वाध्याय-अयोग्य काल - स्वाध्याय के कुछ काल अयोग्य बताए गए हैं, जिन्हें ध्यान में रख कर ही स्वाध्याय करणीय है। ^{८६} अकाल में समाधि असमाधि के २० स्थानों में से एक है। ^{८७}

स्वाध्याय हेतु योग्य स्थान - स्वाध्याय की भूमि प्रायः उपाश्रय से अलग-वृक्ष-मूल आदि एकान्त स्थान होती थी। वहाँ सामान्य जनता का आगमन निषिद्ध था। यही कारण है कि आगमन निषेध के कारण उसका नाम 'नैषिधिकी' पड़ा जो आजकल 'नसिया' के रूप में प्रचलित है। दशवैकालिक में शय्या व नैषिधिकी-ये दो नाम पृथक् कथित हैं। यहाँ 'शय्या का अर्थ उपाश्रय' मठ, वसति आदि है, ^{८८} अतः नैषिधिकी को उपाश्रय से पृथक् होना चाहिए। चूर्णिकारों के अनुसार नैषेधिकी वह स्थान था जो स्वाध्याय हेतु नियत था, और वह प्रायः पेड़ के नीचे बना होता था। ^{८९}

शास्त्र में गृहस्थ के घर में धर्मकथा प्रबन्ध करने का निषेध भी प्राप्त है। ^{९०}

स्वाध्याय-अयोग्य क्षेत्र का निरूपण शास्त्रों में विस्तार से प्राप्त है, जिज्ञासु जनों को वहीं से देखना चाहिए। ^{९१}

-
- ८१. इह जीवियमेव पासहा (सूत्र कृ. १.२.३.८)
 - ८२. भगवती आरा. १८१२ ।
 - ८३. उत. १४.२५
 - ८४. समय गोयम मा पमायए (उत. १०.१)
 - ८५. उत. ७.२८-३०
 - ८६. ठाणांग-४.२ ३५४, मूलाचार-२७७-२७९ (जै सि को. ४.५२७)।
धवला- ९ ४.१ ५४, गा. ९६-९९-१०९-११४ (जै. सि. को ४.५२६-२७)।
 - ८७. समवायांग- सम. २०।
 - ८८. सेज्जा उवस्सओ (अगस्त्य-चूर्णि दशवै. ५.२.१)। सेज्जा उवस्तादि मट्ठकोट्टयादि। (जिनदास चूर्णि वहीं)। शय्यायां वसतौ (हरिभद्रीय टीका)।
 - ८९. णिसीहिया-सज्जायटाणां जम्मि वा रुक्खमूलादौ जैव निसीहिया (अगस्त्य चूर्णि)। तह निसीहिया जत्य सज्जायं करेति (जिनदास चूर्णि)। नैषेधिकां स्वाध्यायभूमौ (हरिभद्रीय टीका)।
 - ९०. दशवै. ५.२.८
 - ९१. ठाणांग-४.२.३५४ धवला-९.४.१.५४ गा. १०१-१०६ (जै.सि.को ४५२६-२७)

स्वाध्याय-विधि - इस सम्बन्ध में भी विस्तृत जानकारी शास्त्रों में दी गई है।^{९२}

स्वाध्याय-योग्य ग्रन्थ - सच्छास्त्र ही योग्य हैं। इस सम्बन्ध में भी विशेष निरूपण शास्त्रों में पर्याप्त है, जो मननीय है।^{९३}

स्वाध्याय का महत्त्व - जैन धर्म व दर्शन की दृष्टि से स्वाध्याय का स्वरूप कई रूपों में प्रमाणित किया जा सकता है। जैन धर्म व दर्शन के क्षेत्र में स्वाध्याय को दैनिक-चर्या में क्या स्थान दिया गया है, स्वाध्याय का क्या स्वरूप प्रतिपादित है-अर्थात् इसकी स्वरूपगत विशेषता क्या है? इसका प्रयोजन व फल कितना महनीय प्रतिपादित हुआ है, इन सब बातों पर विचार किया जाए तो स्वाध्याय की महत्ता स्वतः उजागर हो जाती है।

(क) श्रावकधर्म में परिगणित - शास्त्रों में श्रावक (जैन) के ६ आवश्यक दैनिक क्रम बताए गए हैं, उनमें स्वाध्याय तत्त्वाभ्यास आदि का भी परिगणन है।^{९४}

सागार धर्माभूत में कहा गया है कि जो श्रावक स्वाध्यायादि में आलस्य करता है, वह हितकार्यों में प्रमाद करता है।^{९५}

(ख) स्वाध्याय-एक तप - स्वाध्याय का जो स्वरूप शास्त्रों में प्रतिपादित है, वह भी इसकी महत्ता को उजागर करता है। श्रमण संस्कृति-यह नाम ही इस धर्म में 'तप' की महत्ता प्रतिपादित करने हेतु पर्याप्त है। 'श्रम' यानी तप, जो श्रम या तप करे वह श्रमण।^{९६} मोक्ष या आत्मसाधना के मार्ग में 'तप' की महत्ता सर्वोपरि असंदिग्ध है। ९७ 'तप' से कर्मों का आना तो रुकता ही है, पूर्व उपार्जित कर्मों की निर्जरा भी होती है।^{९८} इस प्रकार तप की द्विविध क्रिया बताई गई है। 'तप' रूपी अग्नि से आत्मा रूपी स्वर्ण निष्कलंक बन जाता है।^{९९} मोक्षमार्ग से सुआवरित तप अज्ञानान्धकार नाशक 'दीपक' है।^{१००}

९२. द्र. दशवै. ५.१.९३, अंगारधर्मा. ९.४५-७४, ८३८५, मूलाचार-२८०, ३९३, धवला-९.४.१.५४ गा. १०७ (जै.सि.को. ४.५२७)।

९३. आत्मानुशासन-१७०, वसुनन्दि श्रावकाचार-३१२, सागारधर्मा. ७.५०, (जै.सि.को. ४.५२)।

९४. देवपूजा गुरुपास्ति: स्वाध्याय: समयस्तप:। दान चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने॥ (पञ्चनन्दि प. ६.९)। तत्त्वाभ्यासो स्वकीयव्रततरिर्मलं दर्शनं यत्र पूज्यं तद्गार्हस्थ्य प्रधानम् (पदमनन्दि प. १.१३)। गृहस्थस्य इज्या, वार्ता, दत्तिः, स्वाध्यायः सयमच तपः- इति आर्यषट्कर्माणि भवन्ति चारित्रसार, पृ. ४३, जै.सि. को. ४.५२)।

९५. स्वाध्यायमुत्तमं कुर्यात्, अनुप्रेक्षाश्च भावयेत्। यस्तु मन्दायते तत्र स्वाकाये स प्रमाद्यति। (धर्मा. ७.५५)

९६. (क) दशवै. १.३ पर हारिभद्रीय टीका (ख) सूत्रकृतांग १.१६.२ पर शीलकाचार्य टीका।

९७. उत्. २८.२ (तुलना-तपसा ब्रह्मा विजिज्ञासस्व, तैत्ति. उप. ३.२.५)।

९८. तपसा निर्जना च (त. सू. ९.३)। भगवती आरा. १८५१, दहइ तबो भवबीयं तणाकड़ादी जहा (मूलाचार, ७४७)।

९९. तवसा तथा विसुज्झदि जीवो कम्मेहि कणायं वा (मूलाचार ५.५६)।

१००. होइ सुतवों य दीओ अण्णाणतमं धयारचारिस्स (भगवती आरा. १४६६)।

तप के अन्तरङ्ग व बाह्य-इन दो भेदों में से स्वाध्याय ६ अन्तरंग तपों में से एक है। ^{१०१} बारह प्रकार के तपों में भी स्वाध्याय की श्रेष्ठता है। शास्त्रकार के शब्दों में ^{१०२} “स्वाध्याय के समान न तो कोई तप है और न कोई भविष्य में इससे अधिक श्रेष्ठ तप होगा। तप की तरह ^{१०३} स्वाध्याय और उससे प्राप्त सज्ज्ञान से भी कर्मों का अतिशीघ्र क्षय किया जा सकता है। ^{१०४}

(ग) मुनि-चर्या में स्वाध्याय का प्रमुख स्थान - साधु के लिए जो आवश्यक ६ क्रियाएं निर्धारित हैं, उनमें स्वाध्याय भी एक है। केवल चार घड़ी सोने के अलावा मुनि अपना समय आवश्यक धर्मक्रियाओं में ही लगाता है। उनमें भी स्वाध्याय में मुनि को, आठ प्रहर के पूरे दिन-रात में चार प्रहर का समय (यानी आधा समय) व्यतीत करना होता है। प्रथम प्रहर में सूत्र-स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर में (सूत्रार्थ-चिन्तन) ध्यान, तृतीय में भिक्षाचर्या, चतुर्थ में पुनः स्वाध्याय करने की मुनिचर्या शास्त्रों में विहित है। ^{१०५} इस विधि-विधान में त्रुटि आने पर प्रतिक्रमण में उक्त भूल का प्रायश्चित्त करता है। ^{१०६}

(घ) स्वाध्याय के महनीय फल - (१) पज्ञातिशय - ज्ञान से ही साधक ‘मुनि’ होता है। ^{१०७} ज्ञान का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से भी बढ़ कर है ^{१०८} इसके बिना मोक्षमार्ग को पार करना कठिन है। ^{१०९} ज्ञान मोक्ष-मार्ग का तत्त्व प्रकाशक एक दीपक है। ^{११०} अतः शास्त्रों में ज्ञान दीप को प्रज्वलित करने की प्रेरणा दी गई। ^{१११} ज्ञान का यह दीपक स्वाध्याय के अभ्यास के बिना प्रदीप्त नहीं हो सकता। ^{११२} स्वाध्याय से सभी संशयों की निवृत्ति, ^{११३} तथा ज्ञान का प्रसार होता है। ^{११४} इसीलिए स्वाध्याय को सब भावों (पदार्थों) का प्रकाश कहा गया है। ^{११५}

१०१. मूलाचार-३६०, पुरुषार्थसि. १९९, औपपातिक सू. १९, तत्त्वा. सू. ९.२०, व्याख्याप्र. २५.३.७०

१०२. (क) भगवती आरा. १०७। ख धवला, ९.४.१.५४, ग बृहत्कल्प भाष्य (गाथा-११६९, भाग-२)।

१०३. दश. १.१ पर जिनदास चूर्णि, पृ. १५।

१०४. (क) उक्त. २९.१८ पर नेमिचन्द्रीय टीका में उद्धृत। (ख) प्रवचनसार, ३.३८।

१०५. उक्त. सू. २६.११-१२, २६.१७-१८, २६-४३।

१०६. (क) सामायिक आवश्यक प्रतिक्रमण (आ सूत्र)। (ख) सावयावस्सय सुत-प्रतिक्रमणा सूत्र-ज्ञानातिचार पाठ।

१०७. उक्त. २५.३२।

१०८. भग. आरा. ७६८

१०९. भग. आरा. ७७१।

११०. (क) भग. आरा. ७६७। (ख) ८०७ (ग) चाणाक्य सू. ५६५।

१११. पाहुडदोहा-८७।

११२. योगशिखोप. ६.७३।

११३. तत्त्वार्थ राजवार्तिक-१.२५.६

११४. सज्ज्ञाए णाणाह पसरु (सावयधम्मदोहा, १४०)।

११५. उक्त. २६.३७

सम्पूर्ण जिनवाणी का सार ^{११६} तथा मोक्षमार्ग की सीढ़ी, ^{११७} चारित्र रूपी जहाज है, उसका चालक 'ज्ञान' ही है। ^{११८} जीवादि तत्त्वों के ज्ञान के बिना संयमादि का आचरण सम्भव नहीं है। ^{११९} मनुष्यत्व का सार 'ज्ञान' है। ^{१२०} किन्तु ज्ञान-प्राप्ति का, तत्त्व-निर्णय का, आत्म-ज्ञान का, ^{१२१} मुख्य आधार श्रुत (जिनवाणी) है। फलतः सज्ज्ञान की प्राप्ति-हेतु सच्छस्त्र की उपासना या आश्रयण मोक्षार्थी के लिए परम कर्तव्य सिद्ध हो जाता है। ^{१२२} शास्त्रों में बहुश्रुत की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। ^{१२३} बहुश्रुतता स्वाध्याय से प्राप्त होती है।

स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होकर ^{१२४} प्रज्ञातिशय उत्पन्न होता है। ^{१२५} दुःख का मूल अज्ञान है। ^{१२६} स्वाध्याय से अज्ञान का विनाश, तथा ज्ञान-सूर्य का उदय होता है। ^{१२७} घवलाकार की दृष्टि में प्रवचन के अभ्यास से सूर्य की किरणों के समान स्वच्छ ज्ञान उदित होता है। ^{१२८} राजवार्तिककार स्वाध्याय का फल सभी संशयों की निवृत्ति मानते हैं। ^{१२९}

प्रज्ञातिशय के आनुपंगिक गुण - (अ) शासन व श्रुत की रक्षा - राजवार्तिककार के मत में जिनप्रवचन की रक्षा (प्रवचनस्थिति) स्वाध्याय से सम्भव है। स्वाध्याय से परवादियों की शंका तथा सर्वविध संशय सबका उच्छेद हो जाता है। ^{१३०} शासन का विस्तार धर्मोपदेश द्वारा सम्भव है। स्वाध्याय से ही परोपदेशकता का गुण समृद्ध होता है। ^{१३१} स्थानांग के अनुसार स्वाध्याय का फल श्रुत का संग्रह,

११६. आचारंग-नियुक्ति, १७।

११७. शील पा. २०।

११८. (क) मूलाचार ८९८

(ख) समयसाराधिकार-७

११९. दशवै. ४.१२।

१२०. दर्शनप्राप्त ३१।

१२१. (क) प्रवचनसार. ३.३२। (ख) द्वादशानुप्रेक्षा-४६१। (ग) प्रवचनसार- ३.३३।

१२२. (क) उक्त. मू. ११.३२। (ख) प्रवचनसार, ३.३२।

१२३. उक्त. ११.१६.३१

१२४. उक्त. २३.१८, स्थानांग-५.३.५४१

१२५. प्रज्ञातिशय.....इत्येवमाद्यर्थः (सर्वार्थ. ९.२५)।

१२६. अण्णाणां परमं दुक्खं (कविभाषित, २१.१)।

१२७. (क) धवला, १.१.१.१ गाथा-५०-५१। (ख) तिलोपपण्णात्ति, १.३६।

१२८. धवला, १.१.१.१ गाथा-४७।

१२९. राजवार्तिक, त. सू. ९.२५.६।

१३०. राजवार्तिक, ९.२५.६

१३१. भगवती आरा. १००.

अभ्यस्त श्रुत की स्थिरता, सूत्र की अविच्छिन्नता आदि हैं। जिस शिष्य को स्वाध्याय कराया जाता है, उसमें भी श्रुत सेवा का भाव जागृत होता है। ^{१३२} स्वाध्यायी औरों को भी धर्म में स्थिर कराता है (दशवै. ९.४ सू. ५, गा. ३)।

(आ) सत्कार-सम्मान में वृद्धि - स्वाध्याय के प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों प्रकार के फल हैं। ^{१३३} परम्परा परोक्ष फल है-शिष्य-प्रशिष्य आदि द्वारा पूजा व सत्कार की प्राप्ति है ^{१३४} देवों तथा मनुष्यों द्वारा निरन्तर प्राप्त होने वाली अभ्यर्थना अर्चना आदि -ये साक्षात् प्रत्यक्ष फल हैं। ^{१३५}

(इ) लौकिक अम्युदय-सुख - सातावेदनीय आदि सुप्रशस्त कर्मों के तीव्र अनुभाग के उदय से राजा-महाराजा-चक्रवर्ती आदि ऐश्वर्ययुक्त-व्यक्तियों के सुख की प्राप्ति-यह स्वाध्याय का परोक्ष फल है। ^{१३६}

३. चित्त की एकाग्रता व ध्यानादि में सहायता - स्वाध्याय से चित्त की एकाग्रता होती है। ^{१३७} स्वाध्यायी व्यक्ति प्रमादग्रस्त नहीं होता। ^{१३८} स्वाध्याय से मन पर विजय प्राप्त होती है। ^{१३९} स्वाध्याय से इन्द्रियों की बहिर्मुखता रुकती है। ^{१४०} स्वाध्याय को धर्मध्यान का आलम्बन कहा गया है। ^{१४१}

४. मोक्षमार्ग/मोक्षप्राप्ति में सहायता - आत्म ज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति होती है, आत्मज्ञान के बिना नहीं। ^{१४२} शास्त्राध्ययन से आत्म-अनात्मविवेक (भेद-ज्ञान) हो जाता है। ^{१४३} शास्त्राभ्यास से इन्द्रिय जय, मनो-जय कषाय उपशम, तथा कर्मक्षय होकर मोक्षप्राप्ति होती है। ^{१४४} द्रव्यश्रुत से भाव श्रुत, क्रम से सम्यग्ज्ञान, संवेदन, आत्मसंवित्ति, केवलज्ञान, फिर मोक्ष होता है। ^{१४५} इसीलिए जिन-वचन को विषय सुखों का विरेचक, जन्ममरण रूप व्याधि का नाशक, सर्वदुःखःक्षय का अमृत-औषधि कहा गया है। ^{१४६}

१३२. स्थानांग ५.३.५४१।

१३३. ति. प. १.४०.४१

१३४. ति. प. १.३८

१३५. ति. प. १.३७

१३६. ति. प. १.४०-४१

१३७. दशवै. ९.४ सू. ५, गाया-३, मूलाचार-९६९,

१३८. मूलाचार- ९७१, उक्त. २९.५९

१३९. तत्त्वानुशासन- ७९,

१४०. सावयधम्मदोहा-१४०

१४१. ठाणांग-४.१.३०८, व्याख्याप्र. २५.७.८०२, औपपा. १९, रयणा सार १५५, द्वादशानु तत्त्वानुशासन-८१

१४२. प्रवचनसार- १.८९, योगसार-१२,

१४३. समयसार- २७४ पर आत्मख्यात टीका, प्रवचनसार ३.३३ पर तत्त्वदीपिका टीका

१४४. रयणा सार- ९१, ९५,

१४५. नयचक्र वृहद- ३९४ पर उद्धृत (जै. सि. को ४.५२६)।

१४६. दर्शन प्राभृत-१७,

स्वाध्याय से ज्ञान-प्रतिबन्धक कर्मों की निर्जरा होती है। सूत्रों के अध्ययन से, मननादि से जीवों के प्रति समय असंख्यात गुणित श्रेणी से पूर्वसंचित कर्मों की निर्जरा बताई गई। ^{१४७} यह निर्जरा श्रोता व व्याख्याता दोनों को होती है। ^{१४८}

स्वाध्याय से भावसंवर (बुरे भावों का रुकना) नया नया संवेग (धर्म में श्रद्धा) रत्न-त्रय में निश्चलता, तप, भावना (गुणितों में तत्परता) आदि गुण उत्पन्न होते हैं। ^{१४९} स्वाध्याय का फल प्रशस्ताध्यवसाय, ^{१५०} अतिचार विशुद्धि तथा बुद्धिनिर्मलता आदि भी हैं। साधक शास्त्रों का जैसे-जैसे अवगाहन करता है, वैसे, वैसे उसे अधिकाधिक परमानन्द का अनुभव होता जाता है। ^{१५१} स्वाध्याय से तपस्या में वृद्धि तदनुरूप निर्जरा में वृद्धि, रत्नत्रय में वृद्धि आदि अनेक महनीय फल हैं जिससे साधना-मार्ग में स्वाध्याय-योग की महती उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

उपाचार्य एवं अध्यक्ष जैन दर्शन विभाग
श्री ला.ब.शा राष्ट्रीय विद्यापीठ
(मान्यविश्वविद्यालय) करवारिया, सराय
नई दिल्ली-१६

* * * * *

१४७. धवला- ९.४.१.१

१४८. धवला ९.५.५.५०, तिलोयप १.३७, झै. सि. को. ४.५२५।

१४९. भगवती आरा १००

१५०. सवार्थ ९.२५, राजवार्तिक- ९.२५. ६,

१५१. भगवती आरा. १०५, १०६.

श्रमण संस्कृति: एक परिशीलन

• मुनि डॉ. राजेन्द्र कुमार 'रत्नेश'

जीवन, मानव के लिये सर्वोत्तम अतु सत्य है। जीवन की शाश्वत परम्परा हमें सहज अनाकांक्षित उपलब्ध हुई। जीवन के दो पक्ष हैं-उपलब्धि एवं उपयोग। जीवन की अज्ञात अदृष्ट भावों की सृष्टि से सहज उपलब्धि हुई है अतः उसमें उसकी गरिमाय अभिव्यक्ति नहीं है। जीवन की जो उपलब्धि हमें हुई है हम उसका सम्यक् रूपेण उपयोग करें, इसी में जीवन की सार्थकता के दर्शन होते हैं। यही जीवन का सौन्दर्य रूप है।

जीवन को उपयोगी बनाने हेतु समाज, सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म, दर्शन की परिकल्पना एवं उसका विकास मानव ने किया। अगर इन व्यवस्थाओं की सत्ता नहीं होती तो मानव अपने जीवन के बाह्य एवं अंतर के पक्ष को समझ नहीं सकता, संवार नहीं सकता और उसका बाह्य एवं अंतर संघर्षरत होकर उसके व्यक्तित्व को विभाजित कर देता। जहाँ धर्म, दर्शन और संस्कृति का संबंध व्यक्तित्व की अस्तित्वमयी सत्ता से है, वहीं समाज एवं सभ्यता का संबंध उसके व्यक्तित्व से है।

संस्कृति एवं सभ्यता - संक्षेप में जीवन का जितना विस्तार है उतनी ही संस्कृति की बहुमुखी सामग्री होता है। धर्म, दर्शन, साहित्य कला, समाज और उसकी परिवर्तनशील अनेक संस्थाएं, इन सबकी संज्ञा संस्कृति है।^१ तथा मनुष्य की जीवन यात्रा को सरल सन्मार्गी बनाने वाली सभी आयोजन एवं आविष्कार, सभ्य उत्पादन के प्रसाधन तथा सामाजिक राजनैतिक संस्थाएं सभ्यता के प्रतिरूप हैं।^२ सभ्यता एवं संस्कृति के अन्तर संबंध के प्रश्न पर अनुचितन करते हैं तो पता चलता है कि सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों की सहज लक्ष्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत अन्तर आनन्द की अभिव्यक्ति।^३

धर्म - भारतीय वाङ्मय में धर्म कई अर्थों में व्यवहृत शब्द है। अथर्ववेद में इसका प्रयोग धार्मिक विधियों एवं तज्जनित गुणों के संदर्भ में है।^४ छांदोग्य उपनिषद् में आश्रमों के विलक्षण विधानों को धर्म कहा है। बौद्ध साहित्य में धर्म शब्द का व्यवहार विभिन्न अर्थों में हुआ है जिनमें एक सम्पूर्ण शिक्षा भी है। जैन परिभाषा में धर्म का प्रयोग रीति परम्परा, स्थिति, मर्यादा एवं स्वभाव के अर्थ में किया है।^५ महाभारत में धर्म का आशय अहिंसा से लिया गया है।^६

१. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल : कला और संस्कृति पृ. २७

२. श्रमण संस्कृति सिद्धान्त और साधना, पृष्ठ १६१

३. हजारी प्रसाद द्विवेदी

४. अथर्ववेद ए. १७

५. कल्पसूत्र एवं आचाराङ्ग सूत्र

६. महाभारत अनुशासन पर्व ११५/१ एवं वनपर्व ३७३/३७६

तथ्यतः यह निरूपणा सुसंगत है कि भारतीय मनीषा में धर्म जीवन से जुड़ा हुआ है जिसकी गणना उपादान तत्व के रूप में हुई है।

दर्शन - भारतीय तत्व चिंतन में आत्म विद्या किंवा पराविद्या के लिए दर्शन शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका व्युत्पत्ति जन्य अर्थ चसुत्पन्न ज्ञान ही है।^७

पाश्चात्य अवधारणा में दर्शन के लिए Philosophy शब्द का प्रयोग हुआ है। यह शब्द मूलतः यूनानी है जो Philos और sophia इन दो शब्दों के संयोग से बना है, पहला प्रेमवाची है तथा दूसरा विद्याज्ञान से संस्पर्शित है जिसका रूपान्तरण हुआ विद्यानुराग। sophia का तात्पर्य wisdom (अर्थज्ञान) है जो भारतीय बोध में यथार्थ ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। यह विद्यानुराग ही आर्य संस्कृति का श्रद्धा भाव है।^८ इस संदर्भ में अरस्तू का कथन महत्वपूर्ण है कि दर्शन वह विज्ञान है जो परम तत्व के यथार्थ की अन्वेषणा करता है।^९ वही ब्रेदले की दृष्टि है कि दर्शन दृश्य जगत से वास्तविक जगत में प्रवेश का प्रयास है।^{१०} श्रमण संस्कृति की जैन अवधारणा में दर्शन यथार्थ ज्ञान है। सम्यक् दर्शन है।^{११} वहां अतीन्द्रिय सुख की अभिरुचि और वीतराग सुख स्वभाव में रमणरत निश्चय को दर्शन कहा है।^{१२} इस तरह दर्शन का आशय यथार्थ अवबोध सम्यक् दर्शन या यथार्थ ज्ञान ही है।

निष्कर्ष - संस्कृति, धर्म, दर्शन ये तीनों मानव की विकास यात्रा के प्रतीक चिह्न हैं। ये सभी परम्परा संपृक्त हैं। आचारोन्मुख संस्कृति धर्म तथा उसकी चिंतन परक प्रवृत्ति दर्शन है। संस्कृति का सम्बन्ध हमारे धार्मिक विश्वास एवं आस्था से है। सभी धर्म आम्नायों ने दर्शन एवं धर्म की एकता स्थापित की, उसी अनुरूप श्रमण विचार धारा भी इनमें अभेद स्थापित करती है। जैन विचार में दर्शन विचार है और धर्म आचार तथा बौद्ध दृष्टिकोण में हीनयान दर्शन है, महायान धर्म है। धर्म और दर्शन मानव को मिथ्यात्व से परे हटाकर यथार्थ के आलोकपथ में आने का निर्देश करते हैं।

जनोन्मुख श्रमण संस्कृति - श्रमण चिंतन के अनुसार सृष्टि शाश्वत है। सुख से दुःख की ओर तथा दुःख से सुख की ओर विश्व का क्रमशः अवसर्पण तथा उत्सर्पण होता रहता है। अवसर्पण की आदि सभ्यता सरल व अजुथी कौटुंबिक व्यवस्था न होने से कोई दायित्व नहीं था तथा दायित्व हीन जीवन व्यग्रता विरहित था। जैन पुराणों के अनुरूप जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कल्पवृक्षों से होती थी। पाप-पुण्य, निम्न श्रेष्ठ का संघर्ष नहीं था। यह युग भोग भूमि के नाम से अभिहित किया गया है।^{१३}

७. देवेन्द्रमुनि शास्त्री- धर्म दर्शन मनन और मूल्यांकन- ४७

८. वही पृष्ठ-५७

९. वही पृष्ठ- ५७

१०. वही पृष्ठ-६७।

११. तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-१

१२. द्रव्य संग्रह १४/४९ तथा ४५

१३. भगवान महावीर एक अनुशीलन- भूमिका भाग पृ. १५१।

जब इस युग के दूसरे एवं तीसरे काल खंड में कल्पवृक्षों की कमी आने लगी तो आदिकालीन मानवों में द्वन्द्व का वातावरण सृजित हो गया। इस दुःखान्त स्थिति में मानव संघर्ष से सुरक्षा की ओर उन्मुख हुआ तो व्यक्ति आश्रित पद्धति के विलीपन की संभावनाएं बनीं और सामुदायिकता का सूत्रपात हुआ। यह सामुहिकता कुल की परम्परा में ढल गई। कुलों की सृष्टि जिन्होंने की वे कुलकर कहलाये जो चौदह थे, अंतिम कुलकर नाभि थे। उन्होंने ही सर्व प्रथम दंड का विधान किया। इस युग में स्त्री पुरुष का युगल प्रजनन होता था पर नाभि और मरुदेवी से उत्पन्न युगल ऋषभ एवं सुनंदा ने परंपरा रूप परस्पर विवाह किया पर ऋषभ ने दूसरा विवाह करके इस सनातन परंपरा को विछिन्न कर दिया।

आदि राजा ऋषभदेव ने मानव सभ्यता के विकास के नवीन आयाम उद्घाटित किये। ऋषभ से ही राज्य व्यवस्था का समारंभ हुआ। नगर एवं ग्रामों की सर्जना के साथ सभ्यता नागरिक होने लगी। कल्प वृक्षों के हास के कारण कृषि का विकास हुआ, पाक निर्माण एवं शिल्पकला का आविर्भाव हुआ। व्यापारिक प्रवृत्ति का विकास हुआ। ऋषभ ने ब्राह्मी और सुंदरी को क्रमशः अक्षर एवं अंक विद्या का अवदान प्रदान किया। ऋषभदेव द्वारा प्रणीत नव समाज से व्यक्तिवाद विलुप्त हो गया। इस व्यवस्था ने व्यक्ति के जीवन को तो सुरक्षित बनाया पर उसकी आकांक्षाओं को उभार दिया और वह युद्धोन्माद से ग्रस्त हो गया। नियति का उपासक मानव पुरुषार्थ का पुजारी बन गया। वह संस्कृति का संचालक बनकर व्यवस्थाओं का नियंता हो गया।

ऋषभ युगीन मानव सिंधु सभ्यता पूर्व साधना में लीन था। फिर वही सिन्धु सभ्यता (३१०० ई.पू.-२५०० ई.पू.) का जनक बन गया। तो श्रमण संस्कृति के आदि पुरुष ऋषभ ने व्यक्ति आश्रित प्रणाली का निरसन कर सभ्यता की आधार शिला रखी जो उस युग के मानव की मनोकामना थी। सिन्धु सभ्यता से प्राप्त भग्नावशेषों से ज्ञात होता है कि तृतीय तीर्थंकर संभवनाथ तक सिन्धु सभ्यता का विकासकाल रहा है। संभवनाथ तक के तीनों तीर्थंकर मानव सभ्यता के विकास के प्रणेता रहे हैं।^{१४}

संभवनाथ का प्रतीक चिह्न अश्व था और सिंधु प्रदेश सेत्थव अश्वों के लिये सुविख्यात रहा है। मौर्यकाल पर्यन्त सिन्धु में संभु तक नामक जनपद व सांभाव जाति रही थी जो संभवनाथ की परंपरा से बद्ध थी। सिंधु सभ्यता में जो नागफना युक्त प्रस्तर कला के अवशेष मिलते हैं, वह सप्तम तीर्थंकर सुपाशर्व का प्रतीक था। इस तीर्थंकर का प्रतीक स्वस्तिक सिंधु सभ्यता में शुभंकर माना गया है। इस तरह तीर्थंकरों का सभ्यता निर्माण में योगदान रहा है वैसे भी तीर्थंकर चैत्रल्य पाते ही तीर्थ स्थापना करते हैं जो एक विशुद्ध सामाजिक संरचना का स्वरूप है।

बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतजिन का अस्तित्व रामायण काल (५००० ई.पू.) में रहा है, ने भी समाज को सुघटित बनाने में सहयोग दिया। विदेह राजा जनक के पूर्वज २१वें तीर्थंकर नमि मिथिला के अधिपति थे जिनकी अनासक्त वृत्ति विश्रुत एवं सुख्यात रही है। वैदिक हिंसा से आक्रांत प्राचीन भारत में जब जनमानस त्रस्त था तभी पशु वध एवं कर्मकांड के विद्रोही स्वरूप में श्रमण संस्कृति खड़ी हो गई।

अरिष्टनेमी ने अपने विवाह प्रसंग पर पशु हिंसा की संभावना से घबराकर अपरिणीत रहना ही स्वीकार किया। अरिष्टनेमी श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। इसी युग में हिंसक यज्ञों के स्थान पर घोर आंगिरस ऋषि ने आत्म यज्ञ की श्रीकृष्ण को प्रेरणा दी। कौशांबी के मतानुसार अरिष्टनेमी और और आंगिरस एक ही व्यक्ति हैं।^{१५}

ईसा की सात शताब्दी पूर्व तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने हिंसा की परंपरा की चुनौती दी। इसी युग में श्रमण परंपरा के विभाजन के लिए मतभेद के बीज पड़ चुके थे। पार्श्व ने एक पंचाग्नि से आतापना ले रहे तापस से संवाद कर मिथ्या मान्यताओं के प्रति विद्रोह प्रकट किया। तथागत बुद्ध भी इस तीर्थंकर की परंपरा से जुड़े रहे।^{१६} योगियों की नाथ संप्रदाय का भी पाश्च आदि पुरुष माना गया है।^{१७} इसी काल में यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस ने भारत आकर पार्श्व पंथ के श्रमणों से अहिंसा का पाठ पढ़ा। सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जनमानस को साथ लेकर श्रमण संस्कृति का विकास चक्र अविराम गतिशील रहा। पार्श्व निर्वाण के पश्चात् फिर हिंसा ने अपना सिर ऊँचा किया तो महावीर और बुद्ध ने जातिगत विषमता, यज्ञ हिंसा के विरुद्ध श्रमण परंपरा को स्थिर किया। इस काल में यज्ञों में घी होमने से अर्थ व्यवस्था चरमरा गई। बैलों को यज्ञों में होमने से कृषि पर विपरीत प्रभाव पड़ा ऐसी स्थिति में आक्रान्त जनमानस ने महावीर एवं बुद्ध के नेतृत्व में अपने मौलिक अधिकारों के लिये संघर्ष किया। दयनीय मातृ जाति एवं पीड़ित शुद्रों की स्थिति को सुधारने में और उन्हें समान सामाजिक अधिकार देने का संदेश श्रमण संस्कृति ने दिया। साथ ही एक अभिनव अहिंसा मूलक आस्था भी उन्होंने प्रजा को प्रदान की। समाज के निम्न वर्ग के साथ-साथ अभिजात्य वर्ग भी श्रमण संस्कृति से जुड़ गया क्योंकि वह ईश्वर, कर्तृत्व जातिवाद से ऊब गया था। महावीर का अनेकांत एवं बुद्ध का अनात्मवादी सिद्धान्त जन-जन वरेण्य तार्किक एवं सुसंगत होने से उन्हें अपनी और आकृष्ट कर रहा था। श्रमण संस्कृति जन मन में उठी पीड़ा की परितोषक बन गई। जनवादी स्वरूपा श्रमण संस्कृति का नेतृत्व यद्यपि क्षत्रियों के हाथ में था पर ब्राह्मणों के अत्याचारों के विरुद्ध वैश्य और शुद्रों ने भी उनको अपना सहयोग दिया जन-जन की धार्मिक आस्था जैन धर्म एवं बौद्ध के प्रति बढ़ती गई। बौद्ध धर्म आर्य देश से बाहर भी फैल गया, जैन धर्म जन धर्म के रूप में विकसित हो रहा था।

बंगाल की मानभुम एवं सिंह भुम अनपद की प्रजा आज भी सराक (श्रावक) है।^{१८} यह अहिंसक जाति 'काटने' शब्द का प्रयोग भी जीवन व्यवहार में नहीं करती। इनके पूर्वज गाजीपुरा के आसपास सरयु तट वासी थे। हजारीबाग जिले में पार्श्वनाथ हिल सम्मेल शिखर की आज भी आदिम जातियाँ पहाड़ों को देवता कहकर पुकारती हैं।^{१९} मध्यकाल के राजपूत एवं मुगल शासकों पर भी जैन धर्म का पर्याप्त प्रभाव था। अकबर की सभा में हीरचंद विजयश्री महत्वपूर्ण जैन संत थे।^{२०}

१५. भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ. ५७।

१६. Mrarhya Davida Goutam the man P.P २२-२५।

• १७. नाथ संप्रदाय- हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ. १९०।

१८. भारतीय चिंतन- पृ. ९२।

१९. मुंडांज एण्ड देअर कंट्री पृ. ५२।

२०. भारतीय तत्व चिंतन पृ. १७६।

समाज सुधार का यह संघर्ष अविराम प्रवर्तमान रहा। अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन में भी जैनाचार्य जवाहरलाल जी महाराज तथा विजय वल्लभ सूरि ने स्वतंत्रता हेतु जन जागरण का संदेश दिया। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में जैन तपस्वी श्रीमद् राजचंद्र का स्मरण सआस्था किया। इस तरह श्रमण संस्कृति सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष करती हुई मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने की परंपरा का नाम रही है। उसका परम उद्देश्य जनमंगल द्वारा विश्वमंगल ही है।

श्रमण संस्कृति का स्वरूप - भारतीय संस्कृति भारत की समग्र सांस्कृतिक एकता की सामूहिक बोध संज्ञा है। भारतीय संस्कृति के प्रधानतया दो पथ हैं - ब्राह्मण एवं श्रमण। जो समय प्रवाह के साथ विकसित होकर ब्राह्मण संस्कृति एवं श्रमण संस्कृति के नाम से सुविख्यात हुए। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के ध्वंसावशेषों ने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक जगत में कई महत्वपूर्ण नवीन तथ्य प्रदान किये। इन ध्वंसावशेषों की खोज के पूर्व यह धारणा प्रचलित थी कि धर्म एवं संस्कृति का सम्बन्ध आर्यों से ही है और उनके आद्य प्रणेता आर्य ही थे। इन ध्वंसावशेषों से प्राप्त प्रस्तर मूर्तियों एवं सांस्कृतिक अभिलेखों ने यह नवीन दिशा दी कि आर्यों के आगमन से पूर्व भी भारतीय धरा पर दर्शन, धर्म एवं संस्कृति का न केवल जन्म अपितु विकास भी हो चुका था। आर्य-काल के पूर्व का मानव न केवल सांस्कृतिक कलाओं में प्रवीण था अपितु आत्मविद्या का भी ज्ञाता था। जो ध्वंसावशेष मिले हैं उनका श्रमण संस्कृति से भी सम्बन्ध है, ऐसा अभिमत डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन का है। ऐसी ही धारणा डॉ. हेरास तथा प्रो. श्रीकंठ शास्त्री ने प्रदान की है।^{२१} ऋग्वेद के अनुसार भी पहले दो संस्कृतियाँ थीं जो ब्राह्मण एवं श्रमण संस्कृतियों के नाम से प्रसिद्ध हुई। उनका ऋग्वेद में क्रमशः बार्हत और आर्हत के नाम से उल्लेख हुआ है। बार्हत वेदों को मानते थे। यज्ञ यागादि के प्रति उनकी आस्था थी जबकि आर्हत यज्ञादि को नहीं मानते थे। उनकी आस्था का केन्द्र अहिंसा जीव-दया था। वे अर्हत के उपासक थे। विष्णु पुराण ने आर्हतों को कर्म काण्ड विरोधी तथा अहिंसा का प्रतिष्ठापक स्वीकार किया।^{२२} आर्हत संबंधी ऐसा ही उल्लेख पद्म पुराण में भी उपलब्ध हुआ है।^{२३} आर्हत संस्कृति श्रमण संस्कृति का प्राचीन नाम ही था। श्रमण संस्कृति की वैदिक काल से आरण्यक काल पर्यन्त वातरशना मुनि किंवा ब्राह्म संस्कृति के नाम से भी संबोधित किया है। ब्राह्म से तात्पर्य ब्रतों के पालक से लिया जाता है। अथर्ववेद में ब्राह्मचारी ब्राह्मण विशेष पुण्यशील विद्वान् विश्व सम्मान्य व्यक्ति ब्राह्म कहलाता था।^{२४}

ऋग्वेद में वातरशना मुनि शब्द अर्हत का समानार्थी है। सामणाचार्य ने जिनकी अतीन्द्रियार्थ दर्शी कहा है।^{२५} ब्राह्मों को कैशी और मुनि के नाम से भी पुकारा है।^{२६} इन मुनियों के नेता नाभिपुत्र ऋषभदेव थे।^{२७} इस तरह श्रमण संस्कृति की पहचान अलग-अलग समय में भिन्न-भिन्न नामों से हुई है।

२१. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन- भारतीय इतिहास एक दृष्टि, पृष्ठ २८

२२. अर्हित सर्वमेतत् मुक्तिं द्वारम संवृत्तम् धर्माद् विमुक्तहोदयं नैतन्माद परः परः॥ विष्णु पुराण ३, १८, १२।

२३. पद्म पुराण १३/३५०

२४. अथर्ववेद : सामणाचार्य १५/१/१/१

२५. सामयण भाष्य-१० १३६, २

२६. अग्वेद १०-१२-३६-२

२७. श्रीमद् भागवत ५-६-२०।

जैन साहित्य में तीर्थंकरों के लिये अर्हत शब्द का प्रयोग किया है।^{२८} जिसका प्रचलन पाश्चनाथ पर्यन्त रहा। महावीर और बुद्ध काल में अर्हत शब्द का स्थान निगंठवा निर्ग्रथ शब्द ने लिया।^{२९} इस शब्द का प्रयोग वैदिक ग्रन्थों में भी हुआ है। पं. बंगाल में सातवीं शताब्दि तक निर्ग्रथ नामक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय चल रहा था। श्रमण संस्कृति की अंग रूप एक धारा जो ब्राह्म्य कैशी मुनि निर्ग्रथ के नाम से पुकारी गयी, वही कालान्तर में जैन धर्म के नाम से अभिहित हुई। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन और सूत्र कृताङ्ग आदि प्रतिनिधि जैन आगमों में जिन शासन, जिन मार्ग, जिन प्रवचन शब्द तो सुविख्यात रहे पर जैन धर्म शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विशेषावश्यक भाष्य में हुआ।^{३०} जिसका सृष्टि काल विक्रम संवत् ८४५ है।^{३१} इस तरह फिर वैदिक ग्रंथ मत्स्य पुराण में भी जिन धर्म तथा देवी भागवत^{३२} में जैन धर्म शब्द प्रयोज्यमान हुआ। श्रमण शब्द भी जैन आगमों में उपलब्ध होता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये धर्म हैं। इन धर्मों के धारक श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका कहे जाते हैं।^{३३} इस तरह जैन धारा का सम्बन्ध श्रमण संस्कृति के आद्य स्रोत के साथ रहा है। अलग-अलग देश काल में श्रमण संस्कृति की पहचान भले ही अलग-अलग नामों से हुई, पर उसका सम्बन्ध श्रमण संस्कृति से विभक्त नहीं हुआ। इसी तरह बौद्ध परम्परा, जिसका प्रवर्तन भगवान बुद्ध द्वारा हुआ, वह भी श्रमण संस्कृति की अविभाज्य अंग रही है। बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के लिये 'श्रमण' शब्द का प्रचुरता के साथ प्रयोग हुआ है।^{३४}

निष्कर्षतः यही निरूपणा समीचीन होगी कि भारतीय सांस्कृतिक स्रोत से दो धाराओं का उद्भव हुआ जो जैन एवं बौद्ध कहलायीं, और इन दोनों की सामूहिक अभिव्यक्ति श्रमण संस्कृति के नाम से हुई। इस श्रमण संस्कृति के अन्तर्गत वैचारिक वैमनस्य के कारण आजीवक अक्रियावादी आदि कई मतों की उत्पत्ति हुई। कुछ सामायिक प्रभावों को छोड़कर वे सब काल के गाल में समा गए। मुख्य रूप से जैन एवं बौद्ध परम्परा ही अस्तित्व में रही। कालान्तर में बौद्ध संस्कृति भी भारत में कुछ परिस्थितियों से आक्रान्त होकर नष्ट प्रायः हो गयी। जैन धारा श्रमण संस्कृति की उपस्थिति का बराबर आभास देती रही है। जहाँ ब्राह्मण संस्कृति व्यवहार व कर्मकाण्ड प्रधान रही है वहीं श्रमण संस्कृति विशुद्ध आध्यात्मिक रही है। ब्राह्मण संस्कृति व्यक्ति को बाह्य जीवन की सुंदरता के साँचे में ढाल रही थी, तो श्रमण संस्कृति उसके अन्तस् को निखारने में लगी थी जिस पर उसका समग्र व्यक्तित्व टिका हुआ है। श्रमण संस्कृति आंतरिकता को महत्व देती रही। उसका उद्देश्य व्यक्ति की समस्याओं का समाधान ही था वह समाधान जो उसको अपने भीतर एक पूर्णता की अनुभूति प्रदान करे।

* * * * *

२८. कल्पसूत्र- श्री तारफ गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर पृष्ठ १६१-१६२।

२९. आचारंग १-३-९-१०८, भगवती सूत्र, १-६-३६-८६ तथा दिग्विजय सामञ्जन- फल सूत्र १८, २१ दिनय-पिटृक महावग्य पृ. २४२।

३०. जैन तिथ्य... वि भाष्य गाथा १०४३
तिथ्य जहणं... वही गाथा १०४५-१०४६

३१. मत्स्य पुराण ४/१३/४५

३२. गेत्वाथ माहमायास रजि पुद्गल वृहस्पति जैन धर्म कृत एवं यज्ञ निंदा पर तथा देवी भागवत ४, १३, ५८।

३३. भगवती सूत्र २-८६-८२, स्थानांग सूत्र ४/३, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, उसह चरियं।

३४. धम्मपद-ब्राह्मण वर्ग- ३६, एवं सुस्त निपात वासट्ट सूत्र- ३५, २४५ अध्याय।

जैन मन्त्र-साधना पद्धति :: एक परिचय

• डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी

साधना अथवा उपासना की भावना जब हृदय में उदित होती है, तो समझना चाहिये कि मेरे सत्कर्मों का सुफल परिपक्व होकर अपनी सुगन्ध से मेरे अन्तर को सुवासित कर रहा है। क्योंकि ऐसी पवित्र भावना बिना सुकृतों के परिपाक के नहीं होती। गीता में कहा गया है कि -

जन्मान्तर-सहस्रेषु, कश्चिद् यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेति तत्त्वतः॥

हजारों जन्मों के बीत जाने पर कोई एक सिद्धि के लिये मेरी उपासना द्वारा मुझे प्राप्त करने के लिये- प्रयत्न करता है। और उन प्रयत्नशाली सिद्धों में भी कोई ही मुझे वास्तविक रूप से जान पाता है।

इस भावना को यथार्थ में लाने के लिये शास्त्रकारों ने अनेक उपाय बतलाये हैं। ऐसे उपायों में मुख्यतः दो उपाय प्रमुख हैं - १- बाह्य उपाय और २-आन्तरिक उपाय। बाह्य उपाय के विभिन्न रूप हैं और वे अपने-अपने सम्प्रदाय तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से अनुष्ठित होते हैं। तप की महत्ता इसमें सर्वोपरि है किन्तु तप का तात्पर्य इस मार्ग में किसी सङ्चित प्रक्रिया तक सीमित रहकर कायकलेश सहन करना ही नहीं है, अपितु जीवन के सभी अङ्गों से मानसिक, वाचिक और शारीरिक प्रक्रियाओं का प्रकृष्ट रूप से सदुपयोग करना है।

सभी कार्यों की सिद्धि के मूल में कर्ता का तप ही बीजरूप में विद्यमान रहता है। उस बीज को अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित करने के लिये भी तुदनुकूल तप की अपेक्षा रहती है, तभी वह एक सर्वाङ्गपूर्ण वृक्ष बनकर उत्तमोत्तम फल प्रदान करने में समर्थ होता है। तप का ही अपर नाम है “उपासना”।

उपासना शब्द उप+आसना=“निकट बैठना” अर्थ को व्यक्त करता है। किस के निकट बैठना? यह इससे सम्बद्ध पहला प्रश्न है और इसका उत्तर है ‘अपने इष्ट के निकट’ जिससे हमें कुछ प्राप्त करना है उसके पास हम पहुँचेंगे तभी तो कुछ ले पायेंगे? इस पर प्रतिप्रश्न होता है कि ‘हमारा इष्ट तो हमारे हृदय में ही विराजमान है, फिर हम बाहर क्यों जाएँ?’ यह कथन समीचीन है, किन्तु जो हृदय में बैठा है, उस तक पहुँचने के लिये भी तो प्रयास करना होगा?

इसे एक उदाहरण द्वारा समझना चाहिये। जैसे घृत का आवास दूध, दही और मक्खन में हैं और वह गौ के दूध की परिणति होने से गौ में स्थित है। किन्तु क्या गौ के शरीर पर रोटी मलने से घृत की चिकनाहट रोटी पर आजाएगी? नहीं। उसके लिये तो दूध दुहने, उसे तपाकर दही जमाने और उसके मथने की क्रियाएँ करनी ही होंगी। ऐसी क्रियाओं को ही शास्त्रीय शब्दों में “उपासना” कहा गया है। यह क्रिया स्वयम्प्रयास द्वारा किये जाने पर इष्ट के साथ तादात्म्य सम्पन्न कराने में पूर्ण सहायक होती है, इसीलिये यह अवश्य कर्तव्य है।

उपासना शब्द अपने इस उपर्युक्त अर्थ के साथ ही और भी दो अर्थों को अपने में छिपाये हुए है। वे हैं - 'उप+आ+असन' अर्थात् 'इष्टदेव के समीप पहुँचने के लिये सांसारिक प्रवृत्तियों का सभी ओर से असन= त्याग' और 'इष्टदेव की सत्ता में पूर्ण विश्वास'। इन अर्थों की उपलब्धि के लिये 'अस=भुवि-सत्तायाम्' और 'असु=क्षेपे' (क्रमशः द्वितीय-अदादिगण एवं चतुर्थ दिवादि गण पठित) धातुओं का उपयोग करना होगा। इस प्रकार उपासना का अर्थ होगा - "इष्टदेव की सत्ता में विश्वास रख कर सांसारिक प्रवृत्तियों का त्याग करते हुए उसके निकट पहुँचने की क्रिया भावना और स्थिर निष्ठा।"

यह उपासना सर्वोच्च पदप्राप्त, सर्वविध दोषविमुक्त, मनुष्यों की अपेक्षा शरीर, सम्पदा, ऋद्धि-सिद्धि और बुद्धि में सर्वश्रेष्ठ देव-देवी की कोटि में प्रविष्ट एवं देव-देवियों द्वारा ज्ञात ईश्वरी शक्ति सम्पत्तों की करने का विधान जैनशासन में उपदिष्ट है, परम्परा-प्राप्त है तथा उत्तम पुरुषों द्वारा स्वीकृत है, अतः अवश्य करणीय है।

जैन-शासन में देव-देवी विषयक धारणा - भारतीय संस्कृति की चिन्तनधारा में ईश्वर-विषयका मान्यता स्व-स्वसम्प्रदायानुसार पृथक्-पृथक् है। यहाँ जैन-शासन का चिन्तन प्रसङ्ग प्राप्त है। अतः तत्सम्बन्धी विचार यहाँ प्रस्तुत हैं -

"प्रायः तीन हजार वर्ष पूर्व उत्पन्न और कलिकाल में कल्पवृक्ष के समान सहज लोकप्रिय, आदेय नामकर्मवाले तेईसवें तीर्थङ्क भगवान् पार्श्वनाथ प्रभु को योग्य समय पर त्रिकालज्ञान-केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। समवसरण में उन्होंने साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की। उस प्रसङ्ग पर पार्श्वनाथ भगवान् के शासन में अथवा उनके श्रोसङ्घ में योगक्षेम-अर्थात् प्रजा के बाह्य-आभ्यन्तर, धार्मिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष में सहयोगी बन सकें उसके लिये किसी भी एक देव और देवी की नियुक्ति होती है। यह व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है। इस व्यवस्था के अनुसार भगवान् पार्श्वनाथ के अधिष्ठायक संरक्षक के रूप में, यक्ष के रूप में पार्श्व और यक्षिणी के रूप में पद्मावती देवी की नियुक्ति हुई थी। लोकोत्तर शासन में भी देव-देवियों की सहायता अनिवार्य होती है तथा तीर्थङ्क देव भी इस अनिवार्यता का आदर करते हैं, यह बात विशेषतः ध्यातव्य है।

देव-देवियों का निवास आकाश-स्वर्ग में है और हम जिस धरती पर रहते हैं उस धरती के नीचे पाताल में भी है। संसार में सुख-दुःख, अच्छा-बुरा करने-कराने वाले जो कोई देव देवियाँ होते हैं (प्रायः) वे सब पातालवासी ही होते हैं। वैसे देव-देवियाँ भी सांसारिक जीव ही हैं। किन्तु मनुष्यों की अपेक्षा शरीर, सम्पत्ति, बुद्धि, ऋद्धि-सिद्धि के सम्बन्ध में वे सर्वश्रेष्ठ होने के कारण 'देव' शब्द से सम्बोधित होते हैं। जैसे देव के वास्तविक अर्थ में नहीं, अपितु देव के रूप में वस्तुतः ज्ञात ईश्वरी व्यक्तियों की ही भक्ति-उपासना इष्टकार्य और मनोरथों को पूर्ण करती है, उसी प्रकार इन सांसारिक देवों की उपासना भी विशिष्ट शक्ति के कारण यथाशक्ति जीवों की बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार की इष्ट सिद्धियों को पूर्ण करने में सहायक होते हैं। इसीलिये उन्हें देव के रूप में सम्बोधित किया जाता है।

इन देव-देवियों के शरीर के लिये एक विशिष्ट बात यह है कि उनके शरीर हमारे शरीर जैसे नहीं होते किन्तु हमसे पूर्णतः भिन्न होते हैं। तात्पर्य यह कि वे दिखने में हम जैसे होते हुए भी भिन्न पुद्गल परमाणुओं से बने होते हैं।

अन्तिम कक्षा का ज्ञान रखनेवाले त्रिकालज्ञानी भगवान् महावीर ने ज्ञान-चक्षु से दृश्य-अदृश्य ऐसे विराट् विश्व को देखते हुए चैतन्य-अचैतन्य स्वरूप जो सृष्टि देखी उस समग्र सृष्टि में जीव पाँच प्रकार के शरीरों में विभक्त देखे। उन पाँच प्रकार के शरीरों के नाम क्रमशः १-औदारिक, २-वैक्रिय, ३- आहारक, ४- तैजस तथा ५- कार्मण है।

मनुष्य, पशु-पक्षी, सूक्ष्म जन्तु आदि तिर्यच्छों का औदारिक शरीर है। विराट् विश्व में अदृश्य रूप में स्थित औदारिक नामक परमाणुओं से वे शरीर बने हुए होते हैं। देव और देवियों के वैक्रिय शरीर होते हैं। औदारिक से भिन्न विराट् विश्व में वैक्रिय प्रकार के पुद्गल परमाणुओं से वे शरीर निर्मित होते हैं। शेष तीनों शरीर उन-उन शरीरों के बनने योग्य विश्व में प्रवृत्त पुद्गलों से बनते हैं।

औदारिक शरीर न्यूनाधिक सात धातुओं - 'रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा, तथा वीर्य, से बने होते हैं।' जब कि देवों के शरीरों में इन सात धातुओं में से एक भी धातु नहीं होती। फिर भी वैक्रिय वर्णणा के पुद्गल शरीर के उन-उन स्थानों में इस प्रकार संयुक्त हो जाते हैं कि वे देखने में आकृत्या मानव जैसे होने पर भी मनुष्य के शरीर से असाधारण सुदृढ, तेजस्वी, प्रकाशमान और अति सुन्दर होते हैं। वैक्रिय शरीर की बात पाठकों को कुछ नई लगे वैसे है किन्तु यह वास्तविक है। इन देवों के दर्शन अशक्य अथवा दुर्लभ होने से हमें उनके रूप अथवा काया के दर्शन नहीं हो सकते। तथापि उस दर्शन के लिये एक मार्ग उद्घाटित है, वह है 'मन्त्रसाधना'। मन्त्रसाधना की सिद्धि से मनुष्य आकर्षण कर सके तो उसके लिये दर्शन सुलभ बन जाते हैं। अथवा मानव को बिना साधना के, बिना प्रयत्न के प्रतिदिन देवों के भव्य और अनूठे शरीर के दर्शन करने हों तो तीर्थङ्कर इस धरती पर विचरण करते हों उस समय जन्म लेना चाहिये।

ऐसे वैक्रिय शरीर धारी देवों को देवलोक में जन्म लेने के साथ ही भूत, भविष्य और वर्तमान के भावों को मर्यादित रूप से ज्ञान करानेवाला अवधिज्ञान प्राप्त होता है। और वे उस ज्ञान से भगवान् की समर्पणभाव से भक्ति करने वाले भक्तों की इष्टकार्यसिद्धि की सफलता, मनोकामना की पूर्ति आदि कार्यों में यथाशक्ति सहायक बन सकते हैं। इसी प्रकार स्वयं उन देव-देवियों के नाम स्मरण, पूजा-उपासना आदि किये जाएँ तो भी वे प्रसन्न होकर मनःकामनाओं की पूर्ति में सहायक होते हैं। साधना जब शिखर पर पहुँचती है, तब इष्ट कार्य में अभीप्सित सफलता और सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। देव-देवियाँ अब्दुत और आश्चर्यजनक चमत्कार कर सकते हैं। वे मानव की अपेक्षा हजारों गुना सुखी, बुद्धिशाली, प्रकाशमय शरीर वाले, रूप के भण्डार से परिपूर्ण, सदा निरोगी और सुगन्धित श्वासवाले होते हैं। वे लाखों वर्षों की आयुष्य वाले और मात्र एक ही युवा अवस्थावाले होते हैं। वे नित्यभोजी नहीं होते। मल-मूत्र की उपाधि से मुक्त होते हैं। इस संसार में भौतिक सुख की पराकाष्ठा का नाम देवलोक है।

ये देव-देवी गण केवल भौतिक सुख में ही सहायक नहीं होते अपितु धर्मप्राप्ति, मुक्ति प्राप्ति और कर्मक्षय में भी कारण बनते हैं।

सिद्धि का सर्वोत्तम साधनः मन्त्र - साधना साधन-साध्य है। जैसा कार्य होता है उसी के अनुरूप साधन का अवलम्बन मिल जाता है तो राजमार्ग पर चल कर लक्ष्य तक पहुँचने में कोई कठिनाई

नहीं होती। प्राचीन आचार्यों ने सिद्धि-प्राप्ति के लिये मानवों की रुचि-विचित्रता का ध्यान रखकर अनेक प्रकार के साधनों के कथन किये हैं। किन्तु उनमें 'मन्त्र' द्वारा साधना करने को सर्वोत्तम साधन बतलाया है। तन्त्रशास्त्रों में भी स्वात्मबोध एवं स्वरूपज्ञान तथा सांसारिक सन्तापों की निवृत्ति के लिये मन्त्र-साधना को ही सर्वाधिक मान्यता दी है। मन्त्र का स्वरूप-निरूपण करते हुए 'महार्थमञ्जरी' कार ने तो कहा है कि -

मननमयी निजविभवे निजसङ्कोचमये प्राणमयी।

कवलित-विश्व-विकल्पा अनुभूतिः काऽपि मन्त्रशब्दार्थः॥

इसके अनुसार सर्वज्ञता और सर्वकर्तृता-शक्ति से सम्पन्न अपने ऐश्वर्य का बोध कराना तथा अल्पज्ञता और अल्पकर्तृतारूपी सङ्कुचित शक्ति से उत्पन्न दीनता, हीनता, दरिद्रता आदि सांसारिक सन्तापों से मुक्त करना एवं कुत्सित वासनाओं के सङ्कल्प-विकल्पों का विनाश करके 'सोऽहम्' की भावना से भावित अनुभूति होना ही मन्त्र-शब्द का तात्पर्यार्थ, स्वरूप या प्रयोजन है।

मन्त्र की महिमा की गरिमा के कारण ही मन्त्रों की अनन्तता बनी है। संसार के प्रत्येक प्रमुख धर्म की साधना-पद्धतियों में मन्त्र का माहात्म्य चिर-स्थिर है। जैनधर्म में भी 'मन्त्र' की महिमा कम नहीं है। जैनागमों में तत्सम्बन्धी वर्णन अनेक स्थलों पर प्राप्त हैं। जैसा कि 'जैनधर्म' की परिभाषा के रूप में मनीषियों का मन्तव्य है - 'आत्मा के लिये आत्मा द्वारा प्राप्य और आत्मा में प्रतिष्ठित होनेवाला धर्म जैन धर्म है' - इसी मन्तव्य के पोषण हेतु आत्मविजय के चिरन्तन मार्ग में आत्मा के सच्चिदानन्द-स्वरूप की उपलब्धि के साधक मन्त्रों का उल्लेख जिनवाणी के रूप में संगृहीत आगमों में प्राप्त होता है। जिनेन्द्र, अर्हत् तीर्थङ्कर, सिद्ध आदि से सम्बद्ध मन्त्र भी अर्धमागधी भाषा में वहीं निर्दिष्ट हैं और उत्तरवर्ती व्याख्याग्रन्थों तथा विधि-ग्रन्थों में संस्कृत भाषामय मन्त्र प्रतिपादित हैं। उत्तरोत्तर इस प्रवृत्ति का विकास भी हुआ है और पद्धति-विषयक परिष्कार भी। जिससे मन्त्रों के सभी रूप निखर आये हैं जिनमें कूट-बीज, बीज, बहुबीज, नाम-मन्त्र, माला मन्त्र, पद्यात्मक मन्त्र, स्तुतिरूप मन्त्र, कामना-पूरक मन्त्र और रोगादि दोष-निवारक मन्त्र तो हैं ही, साथ ही अधिष्ठायिका देवियों के, यक्ष-यक्षिणियों के तथा अन्यान्य अनेक मान्यतानुकूल सिद्ध, सूरि आदि के मन्त्र भी उपलब्ध होते हैं। और जब मन्त्र हैं तो उनकी 'साधना-पद्धति' भी है ही। यहाँ हमारा मुख्य प्रतिपाद्य जैनमन्त्रों की साधना-पद्धति है, अतः इस विषय पर कुछ विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

साधना-पद्धति और उसके प्रकार - साधना की समस्त पद्धतियों का आधार वे क्रियाएँ हैं, जिनके करने से साधना की पात्रता आती है, उपासना के अंग-उपांगों का निर्वाह होता है जिनमें बाह्य और आन्तर-पूजा-विधानों के साथ ही न्यास, जप एवं आन्तरिक इष्ट-चिन्तन की विधाओं का भी समावेश होता है। ये पद्धतियाँ शास्त्रोपदिष्ट और अनुभवसिद्ध साधकों द्वारा संकलित भी हैं तथा सङ्कतरूप में सूचित भी। जैन-मन्त्र-साधना में 'पञ्चनमस्कार, सिद्धचक्र, ऋषिमण्डल' आदि के पूजा-विधान ग्रन्थरूप में उपलब्ध हैं। पद्मावती देवी, चक्रेश्वरी देवियाँ, मणिभद्र, घण्टाकर्ण और सिद्धायिका, श्रीदेवी, ज्वालामालिनी के कल्पों की संख्या भी न्यून नहीं है। इस प्रकार की विविधता से पूर्ण साधनाओं के लिये कतिपय विधियाँ तो सर्वसामान्य ही रहती हैं किन्तु विशेषपूजा के लिये विशेष पद्धतियों का पालन आवश्यक होता है। यहाँ हम सूची प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें सङ्केतरूप से नाम-निर्देश तथा अन्य आवश्यक निर्देश समाविष्ट हैं।

यथा -

“१-आराधनास्थान-प्रवेश, २-द्वार-पूजा, ३-ऊर्ध्व, दक्ष एवं वाम द्वारशाखा पूजन, ४-आसन-उपवेशन, ५- विविध शुद्धियाँ, स्थान, देह, मन, दिशा, भूत, मन्त्र, द्रव्य शुद्धि तथा देव शुद्धि, ६- भावशुद्धि के लिये पीठ, यन्त्र, प्रतिमा आदि की स्थापना-पूर्वक विविधापचारी पूजा, स्तोत्रपाठ, ८- इष्टमन्त्रजप, ९- ध्यान तथा १०- क्षमाप्रार्थना।”

उपर्युक्त दस प्रकारों के सम्पादन के लिये उपाङ्ग के रूप में भी अनेक विधान आवश्यक माने गये हैं। जिनमें सर्वप्रथम साधना की इच्छावाले व्यक्ति को ‘सद्गुरु से मन्त्र प्राप्त करना’ चाहिये। उसके लिये शुभ मुहूर्त में दीक्षा लेने का विधान है। दीक्षा से पूर्व देहशुद्धि के लिये ३, २ अथवा १ उपवास आवश्यक है। जिसमें अन्नत्याग अवश्य हो।

दीक्षित होने के पश्चात् अपने आराध्य देव की ‘नित्यपूजा’ सम्पन्न करके मन्त्रजप करो। अन्य सम्प्रदायों में मन्त्र के १- ऋषि, २- छन्द, ३- देवता, ४- बीज, ५- शक्ति और ६- कीलक से युक्त विनियोग का विधान होता है, जब कि जैन सम्प्रदाय में यह विधान नहीं होता है। परन्तु ‘न्यास-विधान’ स्वीकृत है। न्यास का तात्पर्य स्थापना है। यह स्थापना देह-तन्त्र को चैतन्यमय और पवित्र बनाने, रखने तथा शरीर स्वास्थ्य के लिये किया जाता है। ‘करन्यास’ और ‘पञ्चाङ्ग न्यास’ के अतिरिक्त कहीं-कहीं ‘मन्त्रबीज-न्यास’, ‘मन्त्रन्यास’ भी किये जाते हैं। न्यास के लिये तत्त्वमुद्रा - (अंगुष्ठ पर अनामिका रखने से बनी) का प्रयोग होता है। करन्यास में -अंगुष्ठादि- पाँच अङ्गुलियाँ और करतल-करपृष्ठ पर तथा पञ्चाङ्ग न्यास में हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, एवं ब्रह्मरन्ध्र पर न्यास किये जाते हैं।

विशिष्ट आराधना-विधियों में ‘सर्वाङ्ग न्यास’ भी होता है, जिसमें शरीर के प्रधान-प्रधान अङ्गों पर मन्त्र, बीज मन्त्र अथवा मन्त्राङ्गवर्णों का उपयोग विहित है। ‘क्षिप ऊँ स्वाहा’ इन पाँच अक्षरों के न्यास को जैनतन्त्र में ‘सकलीकरण’ की संज्ञा दी है। ये पाँचों अक्षर पाँच तत्त्वों का प्रतिनिधय करते हैं। इनके न्यास से पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्व विषम नहीं बन जायें तथा अपना समस्त देह में यथोचित बनाये रखें इसके लिये होता है। यह न्यास ‘जानु, नाभि, हृदय, मुख एवं भाल’ पर किया जाता है। इसी को ‘देह-रक्षा विधान’ भी कहते हैं।

आत्मरक्षा के लिये जैनाचार में ‘वज्रपञ्जर-स्तोत्र’ द्वारा ‘कवच-निर्माण’ की विधि की जाती है, जिसमें ‘नमस्कार-मन्त्र’ के नौ पदों के नौ मन्त्र-पद क्रमशः “मस्तक, मुखपट, अंगरक्षा, आयुधधारण, पादरक्षार्थ उपकरण धारण, वज्रमयीशिला पर स्थिति, वज्रमय बाह्य आवरण, खातिका-निर्माण तथा वज्रमय-पिधान” की भावना प्रमुख हैं।

इसके पश्चात् ‘हृदय-शुद्धि’ (हृदय पर हाथ रखकर हृदय से पाप-विचारों को दूर करने के लिये) “ऊँ विमलाय विमलचिन्ताय ज्वीं क्ष्वीं स्वाहा” मन्त्र द्वारा की जाती है। यहीं आगे और ‘कल्मष-दहन’ के लिये भी मन्त्रोच्चारण होता है। (ये दोनों विधियाँ प्रारम्भ में भी हो सकती हैं किन्तु आभ्यन्तर-शुद्धि की दृष्टि से यहाँ निर्दिष्ट हैं।) तदनन्तर ‘अष्टाङ्ग न्यास’ -(१- शिखा, २-मस्तक, ३-नेत्रद्वय, ४-नासिका, ५-मुख, ६-कण्ठ, ७-नाभि और ८-पाद इन भागों में अवरोह क्रम से न्यास) विधेय बतलाया है।

विधि के समय महत्त्वपूर्ण छह दिशाओं से आकाश में विचरण करती हुई विविध शक्तियाँ अथवा वातावरण किसी प्रकार का विघ्न न करें, उसके लिये छोटिका-क्रिया (दिग्बन्ध के लिये) होती है।

शास्त्र एवं लोक दोनों ही साधना-मार्ग में मान्य होते हैं क्योंकि शास्त्रों में शास्त्रीय-सङ्केत होते हैं जबकि पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा स्वीकृत विधियों को परम्परा उसे वास्तविकता प्रदान करती है। इस दृष्टि से

यहाँ भी जो लिखा गया है, वह सूचनमात्र है। ऐसी और भी विधियाँ देश, काल, सम्प्रदाय आदि के भेद से हैं, जिनका उल्लेख विस्तारभय से नहीं दिया जा रहा है।

देवता-सान्निध्य एवं पूजा प्रकार - साधना-पद्धति के उपर्युक्त अंगों के पश्चात् 'देवता-सान्निध्य' का क्रम आता है। इसके लिये प्रतिमा, यन्त्र, यन्त्रपट का उपयोग करते हैं। स्थिर प्रतिमा के अतिरिक्त यन्त्र और पट आदि पर 'वासक्षेप' करना, तत्पश्चात् आवृत यन्त्र का 'पटोद्घाटन' करके उसमें विराजमान सेव्य-सेवक, देव-देवियों को चैतन्यमय बनाकर जाग्रत करने के 'सुरभिमुद्रा' द्वारा 'अमृतीकरण' होता है। तब ध्यान और नमस्कार करके पूजा विधि की जाती है।

पूजा-विधि - में - 'गुरुस्मरण, गणाधिपति-पूजा, सङ्कल्प, रक्षा-विधान (जिसमें एक छोटे से वस्त्र में सरसों रखकर हाथ की कलाई पर राखी के रूप में बाँधा जाता है), पीठस्पर्शन, यन्त्रस्पर्शन, स्तोत्रपाठ द्वारा पुष्पाञ्जलि होती है जिसे 'पूर्वसेवा' भी कहते हैं। यन्त्र पूजन के प्रारम्भ में 'प्राणशुद्धि' प्राणायाम करके यन्त्र में आये हुए स्थानों में पूजा 'उत्तरसेवा' होती है। उदाहरणार्थ 'ऋषिमण्डल यन्त्र' की पूजा में निम्नलिखित विधि का स्वरूप ज्ञातव्य है - "स्वस्ति वाचन २४ तीर्थङ्करनाम, त्रैलोक्यवर्ती जिनबिम्ब और पञ्चपरमेष्ठी स्मरणरूप, मङ्गलाचरण, आवाहनादि ६ मुद्रा दर्शन, तीर्थङ्करपूजा एवं प्रार्थना, ३३ कूटाक्षर-पूजन (कादि-क्षान्त संयुक्त वर्णपूजा), नवग्रहपूजन, प्रधान अधिष्ठायकपूजा, दश दिक्पालपूजा, अर्हदाद्यष्ट पदपूजन, चतुर्निकायगत देव देवी तथा लब्धि प्राप्त महर्षिपूजन, चतुर्विंशतिदेवी पूजन, ५६ वकार (जलबीज) पूजन, के विधान विशिष्ट हैं। इसके पश्चात् (चैत्यवन्दन, ध्यान, आरती आदि होते हैं।

मन्त्र-साधना के लिये 'यन्त्र' का आधार महत्वपूर्ण माना गया है। यन्त्र को देवता का शरीर भी कहा गया है। अतः उपर्युक्त पद्धति का ज्ञान तथा विधान करना चाहिये। सूरि-मन्त्र आदि के कतिपय ऐसे भी विधान हैं, जिनकी पद्धति अधिकारी आचार्य ही जानते हैं। मन्त्रशास्त्र की अपनी मर्यादाएँ होती हैं तदनुसार पद्धतियों में भी न्यूनाधिकता आती है। उपचार द्रव्य, आसन, माला, समय, दिशा, यन्त्र आदि के बारे में 'विद्यावाद, ज्ञानार्णव, विविध कल्पग्रन्थ, निर्वाणकलिका' आदि ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं।

जैनधर्मानुयायियों में दिग्म्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि शाखाभेद भी प्रवर्तित हैं, अतः इनके कुछ विशिष्ट आचार भी मन्त्रानुष्ठान-पद्धतियों में तरतमता उपस्थित करती है। आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की साधना-पद्धति और श्रमणों द्वारा की जाने वाली पद्धतियों में भी अन्तर है, जिसका कारण साध्वाचार तथा श्रमणाचार के नियम हैं।

विविधाः पद्धतीः श्रित्वा मन्त्र-साधना-तत्पराः।
लक्ष्यमेकं साधयन्ति ततः साध्यं स्विच्छया॥
गुरौ मन्त्रे तथा देवे श्रद्धां बद्ध्वा दृढं हृदि।
मन्त्र-साधन-संसक्ता सिद्धिं विन्दन्ति निश्चितम्॥
वर्तते राजमार्गोऽयं साधनाया अनुत्तमः।
आत्कल्याण-संसिद्धये यतनीयम हर्निशम् ॥(रुद्रस्य)

पारिस्थितिकी और जैन चिन्तन

• डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

जैन सन्त और पर्यावरण - मनीषियों की मान्यता के अनुसार 'पारिस्थितिकी वह अध्ययन है जो विभिन्न जीवों के सम्बन्ध में उनके अपने-अपने पर्यावरण के परिवेश में किया जाता है'^१। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण जैव-जगत् यानी कनक सहित सारे पौधे, सूक्ष्म जीवसहित जानवर और मनुष्य तक आ जाते हैं। फिर स्वयं पर्यावरण भी है जिसमें जीव-मण्डल में विद्यमान चेतन जीव ही नहीं, बल्कि प्रकृति में क्रियाशील अचेतन शक्तियाँ भी हैं। इस पारिस्थितिकी की परिभाषा में एक पारिभाषिक शब्द आया है - पर्यावरण। पारिस्थितिकी में इसी के परिवेश में जीवों के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है। जिस व्यवस्था में वायु, जल, मनुष्य, जीव-जन्तु एवं प्लवक, मिट्टी एवं जीवाणु ये सब जीवन धारण प्रणाली में अदृश्य रूप से एक दूसरे से गुथे हुए हैं- वहीं व्यवस्था पर्यावरण कहलाती है।

बात यह है कि एक कमबद्ध इकाई विश्व या ब्रह्माण्ड है। इसमें अनेक आकाश गंगाएँ हैं। इन आकाश गंगाओं में एक ग्रह या नक्षत्र सूर्य है। सूर्य-केन्द्रित सौर-मण्डल है। सौरमण्डल में कई ग्रह हैं जो उसको केन्द्र बनाकर घूमते हैं। इन ग्रहों में एक पृथ्वी है। इस पृथ्वी की आन्तरिक और बाह्य संरचना का भी अध्ययन किया जा चुका है। पृथ्वी का केन्द्र ठोस आन्तरिक क्रोड है जो १३०० किलोमीटर मोटा है जो २०८० किलोमीटर के बाहरी क्रोड से घिरा है। यह बाहरी क्रोड पिघला हुआ है जो २९०० किलोमीटर की मोटाई वाले मैटल से घिरा है। इसका भी ऊपरी भाग पृथ्वी की परत से ढंका है जिसकी मोटाई १२ से ६० किलोमीटर है। पृथ्वी की बाहरी सतह चार भागों में बटी हुई है-(१) लियो स्फेयर (२) हाइड्रो स्फेयर (३) एटमास्फेयर (४) बायोस्फेयर। पहले में पृथ्वी की ऊपरी सतह आती है जिसमें जमीन और समुद्री तल, दूसरे में जल-मण्डल, तीसरे में वायुमण्डल और चौथे में जैव-मण्डल (जीवन का क्षेत्र) है। यह थल, जल तथा वायु सभी मण्डलों में व्याप्त है। थल-मण्डल और जल-मण्डल के अतिरिक्त यह जो वायु-मण्डल है वह पृथ्वी का रोधी आवरण है जो सूर्य के गहन प्रकाश और ताप को नरम करता है। इसी ओजोनिक परत (०३) सूर्य की जीवनाशक परागवैगनीकरणों को सोख लेती है। वायुमण्डल गुरुत्व द्वारा पृथ्वी से बंधा है। जलमण्डल से वाष्पोत्सर्जन के जरिए (पौधों के वाष्पीकरण द्वारा भी) पानी वायुमण्डल में प्रवेश करता है और हिम या वर्षा द्वारा वहाँ से नीचे आता है। जीवमण्डल ही जीवन को आधार प्रदान करता है। इस जीवनमण्डल में शैवाल, फंगस और काइयों से लेकर उच्चतर किस्म के पौधों की साढ़े तीन लाख जातियाँ हैं। इसी जीवमण्डल में एक कोशिक प्राणी से लेकर मनुष्य तक एक करोड़ दस लाख प्रकार की प्राणि-जातियाँ हैं। जीवमण्डल इस सभी के लिये आवश्यक सामग्री-प्रकाश, ताप, पानी, भोजन तथा आवास की व्यवस्था करता है। इस प्रकार यह जैवमण्डल पारिस्थितिक व्यवस्था एक

१. म. ग. इयर बुक, १९९१, पृष्ठ ७६

विकासात्मक प्रणाली है। इसमें अनेक प्रकार के जैविक और भौतिक घटकों का सन्तुलन गतिशील रहता है। जीवन की इस निरन्तरता के मूल में अन्योन्याश्रित सम्बन्धों को एक सुघटित तंत्र काम करता है। इस प्रकार यह वायु, जल, मनुष्य, जीव-जन्तु, वनस्पति, प्लवक, मिट्टी और जीवणु ये सब जीवन धारण प्रणाली में अदृश्य रूप से एक दूसरे से सम्बद्ध हैं यही व्यवस्था पर्यावरण कही जाती है।

इस पारिस्थितिक तंत्र या व्यवस्था की अपनी लय और गति होती है जो नाजुक रूप से सन्तुलित आवर्तनों के सम्पूर्ण सेट पर समाधृत है। सभी जीव-रोगाणु, पेड़-पौधे, पशुवर्ग और मनुष्य सभी पर्यावरण के साथ स्वयं अपना समायोजन करके और उसकी लय के साथ अपने जीवन को सुव्यवस्थित करने के कारण आज तक जीवित रहे हैं इसीलिए जीवन धारण के लिये नितान्त आवश्यक है कि इन आवर्तनों को अक्षुण्ण रखा जाय। इस जीव-मण्डल को सौर ऊर्जा धारण करती है।

यद्यपि पारिस्थितिकी में जीवों के सभी वर्ग आ जाते हैं फिर भी इसमें केन्द्रीय भूमिका मानव की ही है। इसका कारण यह है कि जीव वर्गों में यदि प्रकृति या पर्यावरण से किसी ने टक्कर ली है तो उसी ने।

स्थापित प्राकृतिक पद्धतियों के विरुद्ध उसके संघर्ष का लम्बा इतिहास है। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में इस संघर्ष ने एक संकट का रूप धारण कर लिया है। यही परिस्थितिजनित संकट कहा गया है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद पारिस्थितिक पद्धतियों में उसकी दखलंदाजी की मात्रा और तीव्रता दोनों ही तरफ बढ़ गई है। जल, स्थल और आकाश में जहाँ-जहाँ उसने चरण रखे हैं -सर्वत्र दखलंदाजी की है। इसे वह प्रकृतिविजय कहता है। पर्यावरण की जटिलताओं को समझे बिना हमारी दखलंदाजी बढ़ती जा रही है और इसके दुर्निवार दुष्परिणाम हो रहे हैं।

भारतीय चिन्तन मानव और प्रकृति को एक ही सत्ता का व्यवहार के स्तर पर विभाजित रूप मानता है -परमार्थ के स्तर पर नहीं, इसीलिए वह विकास के लिये परस्पर साहाय्य की बात करता है -विजय की नहीं संघर्षपूर्वक विजय की नहीं वह अपनी शारीरिक आवश्यकता को कम से कम करने पर बल देता है -जीवनयापन के साधनों को सीमित करना चाहता है। यज्ञ संस्था के आविष्कार के मूल में भारतीयों की यही दृष्टि थी कि मानव और प्रकृति पारस्परिक विकास में एक दूसरे की सहायता करें और पर्यावरण के सन्तुलन को बनाए रखें। यदि मानव अपने विकास के लिये प्रकृति से कुछ ग्रहण करता है तो उसे उस क्षति की पूर्ति का कोई उपाय भी करना चाहिए। अतीन्द्रियदर्शी ऋषि-मुनि मानते थे कि यह जगत् अनन्त विवित्रताओं से परिपूर्ण है। जो सब सुक्ष्म और गुप्त शक्तियाँ इसका संचालन करती हैं ऋषियों की परिभाषा में उनका नाम देवता है। तभी तो कहा गया है -देवाधीन जगत् सर्व -सारा संसार देवता के अधीन है। ऊपर विज्ञान जिस विश्वधारक व्यवस्था और उसमें योगदान करने वाले मण्डलों की बात कर चुका है, उनसे इस प्राचीन धारणा की तुलना करनी चाहिए। ऋषि लोग इन्हीं धारक और संचालक शक्तियों को देवता कहते हैं। जिस प्रकार शक्ति एक ही है पर कार्य भेद से अनन्त कही जाती है उसी प्रकार देवता भी एक है कार्य भेद से भिन्न-भिन्न है। यह शक्ति व्यक्त भी है और अव्यक्त भी। अव्यक्त शक्ति द्वारा कार्य सम्पन्न नहीं होता। कार्य-साधन के लिये शक्ति को जगाना पड़ता है। और जगाकर कार्य में उसका विनियोग करना पड़ता है। प्राकृतिक नियम के अनुसार शक्ति अपना कार्य करती है। विज्ञान इन्हीं नियमों की खोज करता है और प्रौद्योगिकी में उसका संचार करता है। कार्य करने पर शक्ति का अपचय होता है -फलतः

यदि शक्ति (देवता) को अक्षुण्ण रखना है तो उस अपचय की पूर्ति के लिये उसमें अक्षय का समर्पण आवश्यक है। जिसके प्राप्त होने पर शक्ति पुष्ट होकर अपना संरक्षण करने में समर्थ हो वहीं शक्ति का आहार है। यह आहार शक्ति को दिया जाना चाहिए। यही देवता के उद्देश्य से किया गया द्रव्यत्याग है। देवतोद्देश्य द्रव्यत्याग ही त्याग है। कालान्तर में यह प्रक्रिया स्वार्थदूषित हो गई। वैदिक याग में जिस प्रकार मंत्रादिजन्य संस्कार द्वारा साधारण अग्नि को दिव्य में परिणत किया जाता है और फिर उस दिव्य अग्नि में आत्मसंस्कार साधक और अन्यान्य यागादि कर्म किए जाते हैं तांत्रिक होम में भी वैसा ही किया जाता है। मंत्रकृत संस्कार से होमाग्नि, इष्टाग्नि में और इष्टाग्नि, ब्रह्माग्नि तक के संस्कार में परिणत होती थी और इस तरह सन्तुलन ठीक रखा जाता था -लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक निःश्रेयस प्राप्त किया जाता था। यह सब यज्ञ का अन्तरंग पक्ष है। स्वार्थान्धतावश जब इसका स्थूल पक्ष विकृत होने लगा तब गीताकार ने भी इसका खण्डन किया। उसने यज्ञों में जप-यज्ञ को

यज्ञानाम् जपयज्ञोऽस्मि

महत्त्व दिया। ब्राह्मण सूत्रकार बौधायन तक ने कहा -

सर्वक्रतुयाजिनामात्मयाजी विशिष्यते

अर्थात् सब प्रकार के यज्ञों में आत्मयाग ही श्रेष्ठ है। इसी का नाम आत्मत्याग, आत्मनिष्ठा और आत्मप्रतिष्ठा है। यज्ञ कर्म है पर हर कर्म यज्ञ नहीं है। विपरीत इसके वह कर्म यज्ञ है जो व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति में पर्यवसित न होकर सम्पूर्ण विश्व की साधारण सम्पत्ति के रूप में व्याप्त हो जाता है। मतलब जो विश्वात्मा की प्रसन्नता के लिये किया जाय वही यज्ञ है। उसी से विश्वात्मा तृप्त होती है और यजमान के लिये वह हित या अमृत बन जाता है।

यज्ञ की स्थूल वैदिक प्रक्रिया के विकृत हो जाने पर उसकी मूल भावना की रक्षा के लिये श्रमणधारा सक्रिय हुई। इसी मूल भावना को धारण करने के लिये बुद्ध और जिनात्माओं का अवतार हुआ। इसीलिए उन्हें व्यापक रूप में भारतीय अतीन्द्रियदर्शी ऋषियों और अवतारों की अन्तर्धारा-उपधारा कहा जाना चाहिए। जिन वे ही हैं जिन्होंने द्वेष-गर्भ-राग पर विजय प्राप्त की। यज्ञ की स्थूल प्रक्रिया जब द्वेष-गर्भ-राग से विकृत हो गई तब अन्तर्याग पर बल दिया गया। जिनों ने इस अन्तर्याग के लिये तप और अहिंसा का मार्ग ग्रहण किया। अहिंसा आचार में भी और विचार में भी। द्वेष-गर्भ-राग का शमन इनका लक्ष्य था इसीलिए ऐसे राग पर जय पाने के कारण ही वे जिन कहे गए।

आज विज्ञान से ज्ञात नियमों का हम प्रौद्योगिकी में संचार कर रहे हैं और मानव प्रकृति अर्थात् देवता पर संघर्ष द्वारा विजय प्राप्त करने के दम्भ में आत्महत्या और पर-हत्या दोनों की ओर बढ़ रहा है -मानव और प्रकृति से समेकित पर्यावरण असन्तुलित हो रहा है। इस प्रगति में जो उपभोगवादी असंस्कृति फैल रही है -वह 'हिंसा' का ही प्रसार है आवश्यकता है इस 'हिंसा' पर सर्वथा और सर्वात्मना विजय की जो 'अहिंसा' से ही सम्भव है और इसके सूत्रधार होने का श्रेय जिनों को है। पारिस्थितिक संकट का मूल मानव में दानवाकार उभरती वृत्ति 'हिंसा' की भावना है और इसका एकमात्र उपचार 'अहिंसा' है। पर्यावरण में होने वाले असन्तुलन के निवारक यज्ञ में पनपती हुई हिंसावृत्ति को कृष्ण, बुद्ध और जिनों ने लक्षित किया और अहिंसा को -निष्काम भावना को एकमात्र उपचार घोषित किया। उनके यहाँ 'हिंसा' की परिभाषा

दी गई -

प्रमाद योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा

प्रमाद के योग से यथासम्भव द्रव्यप्राण या भावप्राण का वियोग करना ही हिंसा है। प्रमाद के अन्तर्गत पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, राग-द्वेष और निद्रा का समावेश है। इन्हीं के कारण प्राण (द्रव्य और भावप्राण) का वियोग होता है। द्रव्यप्राण में पाँच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास का तथा भावप्राण में ज्ञान और दर्शन का समावेश है। प्रमाद एक प्रकार से स्वरूप बोध से असावधानी है। यह प्रमाद ही है जिसके कारण हम असत्य भाषण, चौर्य, मैथुन, परिग्रह और हिंसा करते हैं। विज्ञान से प्राकृतिक नियमों को जानकर जो प्रकृति-जय की ओर हम बढ़ रहे हैं वह अज्ञान के कारण ही है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि सम्प्रदाय साधना के स्तर पर भेद करके चलता है पर अध्यात्म स्तर पर भेद सम्भव नहीं है। तात्विक सत्य दो नहीं हो सकते। अध्यात्मविद् योगीन्दु ने 'योगसार' में इसी तात्विक सत्य का साक्षात्कार करके कहा था.....

गिम्मलु गिक्कलु सुद्धु जिषु विणहु बुद्ध सिवु सेतु।

सो परमप्पा जिण-भणउ एहउ जाणि गिमंतु॥

अर्थात् परमात्मा के ही विभिन्न नाम साम्प्रदायिक लोग लिया करते हैं -वे उन्हें जिन, ब्रह्म, शान्त, शिव, बुद्ध आदि संज्ञाएं देते हैं। तत्त्वतः वे एक हैं इसलिए भारतीय चिन्तन में सम्प्रदाय भेद है तात्विक भेद नहीं है। सम्प्रदाय की दृष्टि से ब्राह्मणों, शैवों, शाक्तों और बौद्धों में विभिन्न धाराएं हैं फिर भी वे एक-एक खेमे में जैसे माने जाते हैं वैसे ही ये परम्पर साम्प्रदायिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न होकर भारतीय चिन्तन की दृष्टि से एक हैं। कर्मबन्धन को सभी प्रमाद दशा मानते हैं और उससे स्वतंत्र सभी होना चाहते हैं। इसीलिए मुनि विद्यानन्द शासन को सम्प्रदाय-निरपेक्ष तो रखना चाहते हैं पर धर्म-निरपेक्ष नहीं। अपने-अपने धर्म में स्थित रहकर यष्टि और समष्टि अपनी सत्ता की रक्षा करते हैं। औष्ण्य में (धर्म है अग्नि का औष्ण्य) रहकर ही अग्नि अपनी सत्ता में स्थित रहता है। मानवता में रहकर ही मानव अपनी सत्ता की रक्षा कर सकता है और मानवता 'पर-रक्षा' में है। यदि हम प्रमादहीन होकर मानवता-में- स्वरूप में -प्रतिष्ठित रहें तो पारिस्थितिक संकट से उबर सकते हैं कारण, तब हम आत्मेतर की रागमूलक हिंसा नहीं करेंगे। सर्वज्ञ होकर सन्तुलन बनाए रखने में योग देंगे। जो असर्वज्ञ विश्वव्यवस्था को जानता ही नहीं वह सन्तुलन कैसे बनाएगा? यदि अहिंसामय तप में प्रतिष्ठित होगा तब उस दिशा में यात्रा अवश्य करेगा।

-२ स्टेट बैंक कालोनी

देवास रोड़, उज्जैन (म.प्र)

जैन दर्शन में जीव के अस्तित्व की वैज्ञानिकता

• विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया

वैदिक, बौद्ध और जैन दर्शन मिलकर भारतीय प्राच्य दर्शन के रूप को स्वरूप प्रदान करते हैं। वैदिक दर्शन के लिए वेद, बौद्ध दर्शन के लिए त्रिपिट तथा जैन दर्शन के लिए आगम वाङ्मय उपलब्ध है। ये सभी दर्शन आस्थावादी हैं और सभी में जीव के अस्तित्व विषय पर चर्चा की गयी है। यहाँ जैन दर्शन में जीव के अस्तित्व की वैज्ञानिकता पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

जैन दर्शन में गुणों की मान्यता वस्तुतः महत्वपूर्ण है। यहाँ गुणों के समूह को द्रव्य कहा गया है। जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल नामक षट् द्रव्यों का उल्लेख है। इन द्रव्यों का समूह वस्तुतः कहलाता है-संसार। इस प्रकार जीव संसार का चेतन द्रव्य है। यह अविनाशी है। शाश्वत है। जीव अर्थात् प्राण जब पर्याय धारण करता है, तब वह प्राणी कहलाता है। प्राणी अथवा जीव संसार में अनादि काल से जन्म-मरण के दारुण दुःखों को भोग रहा है। भव-भ्रमण की कहानी लम्बी है।

संसार में जागतिक और आध्यात्मिक दो प्रमुख दृष्टियाँ हैं। इन उभय दृष्टियों में जीव का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि ज्ञान और दर्शन स्वभावी होने से वह आत्मा कहलाता है, तथापि संसारी दशा में प्राण धारण करने से वह जीव कहलाता है। जीव अनन्त गुणों का स्वामी है, प्रकाशवंत है तथा अमूर्तिक सत्ताधारी पदार्थ है। वह किन्हीं पंचभूतों के मिलने से उत्पन्न होने वाला कोई संयोगी पदार्थ नहीं है। भव-भ्रमण और भव-मुक्ति दोनों दशाओं में उसकी प्रधानता उल्लेखनीय है।

जागतिक दशा में वह पर्यायबद्ध अर्थात् शरीर में रहते हुए भी शरीर से पृथक्, लौकिक कार्य भी करता है और कर्म का भोक्ता भी है। वह इन सबका वस्तुतः ज्ञाता है। वह असंख्यात प्रदेशी भी है और संकोच विस्तार शक्ति के कारण शरीर प्रमाण होकर रहता भी है। उसे किसी एक ही सर्व व्यापक जीव का अंश होना जैन दर्शन नहीं मानता है। जीव-तो अनन्तानंत हैं। उनमें से जो भी जीव साधना विशेष के द्वारा कर्मों तथा संस्कारों का क्षय/विनाश कर लेता है, वह सदा अतीन्द्रिय आनन्द का भोक्ता परमात्मा बन जाता है। इसी अवस्था में उसके ज्ञाता और द्रष्टा गुण मुखर हो उठते हैं। जैन-दर्शन में जीव अथवा आत्मा की इसी स्थिति को ईश्वर अथवा भगवान् कहा गया है। इसके अतिरिक्त किसी एक ईश्वर की अवधारणा जैन दर्शन में मान्य नहीं है।

जीव के मुख्य दो भेद किए गए हैं संसारी और मुक्त। संसारी जीव के भी दो उपभेद किए गए हैं -त्रस और स्थावर। त्रस जीव के चार भेद किए गए हैं -दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। स्थावर जीव को पाँच भेदों में बांटा गया है- पृथ्वीकायिक जीव, जलकायिक जीव, तेजस्कायिक जीव, वायुकायिक जीव और वनस्पति कायिक जीव। पंचेन्द्रिय जीव के भी दो उपभेद किए गए हैं -मन सहित जीव और मन रहित जीव। इन्हें पारिभाषित शब्दावलि में क्रमशः संज्ञी और असंज्ञी भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त शेष सभी जीव मन रहित होते हैं।

विकास की दृष्टि से जीव के तीन भेद किए गए हैं -बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। समस्त संसारी जीव बहिरात्मा है। बहिरात्मा जीव शरीर को ही आत्मा समझता/मानता है। संसार के प्रत्येक पदार्थ में रुचिबन्त रहता है और कषाय क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत रहता है। तब उसकी दशा में परिवर्तन होता है। वह अपने आत्म स्वरूप की ओर कभी उन्मुख नहीं होता। वह अपने कर्म फल कर्ता किसी अन्य को मानता है। ऐसा मिथ्या मति, अज्ञानीजीव जन्म-मरण के दारुण दुःखों को अनादि काल से भोगता रहा है। जब बहिरात्मा अपने दर्शन और ज्ञान स्वभाव की ओर उन्मुख होता है। चौदह गुण स्थानों -मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, सासादन सम्यक् दृष्टि गुण स्थान, मिश्र या सम्पत्तिमयत्वात् गुणस्थान, असंयत या अविरत सम्यक्दृष्टि गुणस्थान, अपूर्वकरण गुणस्थान, अनिवृत्ति बादर साम्पराय गुणस्थान, सूक्ष्म साम्पराय गुण स्थान, उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान, क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान, संयोग केवली गुणस्थान तथा अयोग केवली गुण स्थान की अवस्था को जानने लगता है। ये सभी गुणस्थान जीव के विकास के पड़ाव हैं। ज्ञान और दर्शन गुणों के बलबूते पर उसे देह और आत्मा में अन्तर स्पष्ट हो जाता है और उस पर विश्वास करने लगता है। उसमें विवेक जग उठता है कि पर पदार्थ और स्व-पदार्थ दोनों भिन्न-भिन्न हैं और जीव अपने कर्म का स्वयंकर्ता होता है और अपने किए कर्म-फल का स्वयं ही भोक्ता होता है।

वह किसी सत्ता/प्रारंभी की अधीनता अपनी कामना पूर्ति के लिए नहीं स्वीकार करता है। वह इस दृष्टि से सदा स्वावलम्बी होता है और अपने पुरुषार्थ पर पूर्ण विश्वास करता है। उसका श्रद्धान सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र में स्थिर हो जाता है और इसी मार्ग पर अग्रसर होने के लिए वह सतत रुचिबन्त रहता है। इस मार्ग को मुक्तिमार्ग स्वीकरता है। जीव की यही दशा उसकी अन्तरात्मा कहलाती है।

अन्तरात्मा का जीव अपनीचर्या को संयम पूर्वक सम्पन्न करता है। बोलने में, देखने में, सुनने में, खाने-पीने में तथा चलने-फिरने में पूर्णतः सावधानी रखता है। यहाँ तक कि किसी वस्तु को उठाने अथवा रखने में, मतमूत्र विसर्जन में भी बड़ी सावधानी रखता है। उसे सतत चिन्ता रहती है कि मेरे कारण किसी भी जीव की विराधन होने पावे। यह जीव की निर्विकार अवस्था कहलाती है।

संयम और तपश्चरण के बलबूते पर वह साधुचर्या में प्रवृत्त होता है। जैसे-जैसे वह ऐन्द्रिक व्यापारों में सधता जाता है, उसकी चर्या स्वमुखी होने लगती है। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय तथा आन्तराय कर्मों का क्षय/विनाश करने के लिए सम्यक् पुरुषार्थ करता है। जैसे ही वह इन आत्म घाती कर्मों का क्षय कर लेता है वैसे ही उसमें केवल ज्ञान का अभ्युदय हो जाता है। जीव की यह अवस्था प्रायः अरिहंत की अवस्था कहलाती है। जीव की अरिहंत अवस्था उसे भूमि से ऊपर उठा देती है। वह पृथ्वी से चार हाथ ऊपर उठकर अधर में हो जाता है। दरअसल यह उस जीव की निर्मल दशा का ही प्रकाशन है। आत्मघाती कर्मों का क्षय कर लेने पर वह जीव अपने शुद्ध पुरुषार्थ उपयोग में सतत सक्रिय रहता है। अब उसे अपने अघाती कर्म-बंध को निर्बन्ध करना होता है। वैश्वीय, आयु, नाम और गोत्र नामक कर्मबंध अघाती कर्मबंध कहलाते हैं। अघातिया कर्म का क्षय होने पर जीव का पूर्ण विकास होता है। जीव की पूर्ण विकसित अवस्था वस्तुतः उसे परमात्मा बनाती है।

जीव की परमात्मा अवस्था में अनन्त चतुष्टय जग जाते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल और अनन्त सुख वस्तुतः अनन्त चतुष्टय कहलाते हैं। अनन्त चतुष्टय धारी जीव की अवस्था ही सिद्ध अवस्था कहलाती है। यहाँ पहुँचते ही उसके सारे राग, विराग विसर्जित हो जाते हैं और वह पूर्णतः हो जाता है -वीतराग। इस प्रकार जीव का विकासात्मक अस्तित्व रागमयी से विरागमयी होता हुआ वीतरागमयी हो जाता है। उसकी वीतरागमता ही उसका सिद्धत्व है, ईश्वरत्व है।

मंगल कलश
३९४ सर्वोदयनगर, आगरा रोड़,
अलीगढ़।

* * * * *

चिंतन कण

- अगरबत्ती की खुशबू से जन-मानस प्रफुल्लित हो उठते हैं किंतु यदि उससे बढ़कर प्रेम पराग जीवन में उतर गया तो वह भी जीवन को शंकृत किए बिना नहीं रह सकता।
- प्रेम से बढ़कर इसका कोई मंत्र नहीं
- संसार के प्राणिमात्र से निःस्वार्थ भाव से प्रेम करना ही वास्तविक प्रेम है।
- जीवन के अंतिम लक्ष्य की पगडंडी तर्क नहीं वरन् समर्पण है।
- तर्क जीवन को उलझाने वाला है, वहीं श्रद्धा जीवन को सुलझाने की प्रक्रिया है।

-परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुवेंरजी म.सा.

जैनधर्म सर्वोदयतीर्थ है

• डॉ. भागवन्न जैन 'भास्कर'

धर्म और उसकी आवश्यकता क्यों? - धर्म जीवन है और जीवन धर्म है। जीवन पवित्रता का प्रतीक है। उसकी पवित्रता संसार के राग-रंगों से दूषित हो गई है। इसलिये उस दूषण को दूर करने के लिए तथा जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए धर्म का अवलम्बन लिया जाता है। यह अवलम्बन साधन है। साध्य और साधन की पवित्रता धर्म की अन्तश्चेतना है। अन्तश्चेतना विवेक का जागरण करती है और जागरण से व्यक्ति नई सांस लेता है। नई प्रतिध्वनि से उसका हृदय गूँज उठता है। गंभीरता, उदारता, दयालुता, सरलता, निरहंकारिता आदि जैसे मानवीय गुण उसमें स्वतः स्फुरित होने लगते हैं। जीवन अमृत-सरिता में डुबकी लेने लगता है। देश, काल, स्थान आदि की सीमाएं समाप्त हो जाती हैं और विश्वबन्धुत्व तथा सर्वोदय की भावना का उदय हो जाता है। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो जाती है।

जैनधर्म इस दृष्टि से वस्तुतः जीवनधर्म है। मानव धर्म है। वह जीवन को सही ढंग से जीना सिखाता है, जात-पात के भेदभाव के ऊपर उठकर अपने सहज स्वभाव को पहिचान करने का मूलमन्त्र देता है, श्रमशीलता का आवाहनकर पुरुषार्थ को जाग्रत करता है, विवाद के घेरों में न पड़कर सीधा-सादा मार्ग दिखाता है, संकुचित और पतित आत्मा को ऊपर उठाकर विशालता की ओर ले जाता है, सद्गुणों के विकास से चेतना का विकास करता है, और आत्मा को पवित्र, निष्कलंक व उन्नत बनाता है। यही उसकी विशेषता है यही जैनधर्म है और यही सर्वोदयतीर्थ है।

कटघरों को तैयार करनेवाला धर्म, धर्म नहीं हो सकता। भेदभाव की कठोर दीवाल खड़ीकर खेत उगाने की बात करनेवाला संकीर्णता के विष से बाधित हो जाता है, तुरन्त फल का लोभ दिखाकर जनमानस को शंकित और उद्विग्न कर देता है, दूसरों को दुःखी बनाकर अपने क्षणिक सुख की कल्पनाकर आल्हादित होता है, विसंगतियों के बीज बोकर समाज के गर्त में ढकेल देता है, बिखराव खड़ाकर साम्प्रदायिकता की भीषण आग जला देता है और सारी सामाजिक व्यवस्था को चकनाचूर कर नया बखेड़ा शुरू कर देता है। इन काले कारनामों से धर्म की आत्मा समाप्त हो जाती है। धर्म का मौलिक स्वरूप नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और बच जाता है उसका मात्र कंकाल जो किसी काम का नहीं रहता।

जैनधर्म व्यक्ति और समाज को धर्म की इस कंकाल मात्रता से ऊपर उठाकर ही बात करता है। उसका मुख्य उद्देश्य जीवन के यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित कर नूतन पथ का निर्माण करना रहा है। वहीं धारण करनेवाला तत्व है जिसका अस्तित्व धर्म के अस्तित्व से जुड़ा है और जिसके दूर जाने से मानवता का सूत्र भी कट जाता है। मानव-मानव के बीच कटाव के तत्वों को समाप्त कर सर्वोदय के मार्ग को प्रशस्त करना धर्म की मूल भावना है। व्यक्ति और समाज के उत्थान की भूमिका में धर्म नींव का पत्थर होता है।

श्रमण संस्कृति और सर्वोदय दर्शन - जैनधर्म श्रमण संस्कृति की आधारशिला है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद और एकात्मकता उसके विशाल स्तम्भ हैं जिन पर उसका भव्य प्रासाद खड़ा हुआ है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप उसके सोपान हैं जिसके माध्यम से भव्यप्रासाद के ऊपर तक पहुँचा जा सकता है। सर्वोदय उसकी लहराती सुन्दर ध्वजा है जिसे लोग दूर से ही देखकर उसकी मानवीय विशेषता को समझ लेते हैं। समता इस ध्वजा का मेरूदण्ड है जिसपर वह अवलम्बित है और वीतरागता उस प्रासाद की रमणीकता है जिसे उसकी आत्मा कहा जा सकता है।

श्रमण संस्कृति की ये मूलभूत विशेषताएं सर्वोदय दर्शन में आसानी से देखी जा सकती हैं। सर्वोदय दर्शन प्रस्तुत: आधुनिक चेतना की देन नहीं। उसे यथार्थ में महावीर ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र की विषमता को देखकर क्रान्ति के तीन सूत्र दिये - १. समता, २. शमता, ३. श्रमशीलता। समता का तात्पर्य है सभी व्यक्ति समान हैं। जन्म से न तो कोई ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्र है। मनुष्य तो जाति नामकर्म के उदय से एक ही है। आजीविका और कर्म के भेद से अवश्य उसे चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

मनुष्यजातिरेकं न जातिकर्मदयाद्भव।

वृत्तिभेदाहितद्वेदाच्चतुर्विध्यभिहारनुते॥

-जिनसेनाचार्य, आदिपुराण,

शमता कर्मों के समूल विनाश से संबद्ध है। इस अवस्था को निर्वाण कहा जाता है। वैदिक संस्कृति का मूलरूप स्वर्ग तक ही सीमित था। उसमें निर्वाण का कोई स्थान ही नहीं था। जैनधर्म के प्रभाव से उपनिषद्काल में उसमें निर्वाण की कल्पना ने जन्म लिया। जैनधर्म के अनुसार निर्वाण के दरवाजे सभी के लिए खुले हुए हैं। वहाँ पहुँचने के लिए किसी वर्ग विशेष में जन्म लेना आवश्यक नहीं। आवश्यक है, उत्तम प्रकार का चारित्र और विशुद्ध जीवन।

श्रमशीलता श्रमण संस्कृति की तीसरी विशेषता है। इसका तात्पर्य है व्यक्ति का विकास उसके स्वयं के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है, ईश्वर आदि की कृपा पर नहीं। वैदिक संस्कृति में स्वयं का पुरुषार्थ होने के बावजूद उस पर ईश्वर का अधिकार है। ईश्वर की कृपा से ही व्यक्ति स्वर्ग और नरक जा सकता है। जैन संस्कृति में इस प्रकार के ईश्वर का कोई स्थान नहीं। वह जो कुछ भी कर्म करता है उसी का फल उसी को स्वतः मिल जाता है। कर्म के कर्ता और भोक्ता के बीच ईश्वर जैसे दलाल का कोई स्थान नहीं। ईश्वर यदि हम आप जैसा दलाल होगा और सृष्टि के रचने संरक्षण करने और विनाश करने में उसी की मर्जी होगी तो ईश्वर में और हम आप जैसे संसारी जीवों के बीच भेदक-रेखा ही क्या रहेगी? हाँ, जैनधर्म में दान-पूजा भक्ति भाव का महत्व निश्चित ही है। इन सत्कर्मों के माध्यम से साधक अपने निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त अवश्य कर लेता है। इसमें तीर्थंकर मात्र मार्गदृष्टा है, प्रदीप के समान, वह निर्वाणदाता नहीं। इसलिये व्यक्ति के स्वयं का पुरुषार्थ ही उसके लिए सब कुछ हो जाता है। ईश्वर की कृपा से उसका कोई संबंध नहीं। पराश्रय से विकास अवरूद्ध हो जाता है। बैसाखी का सहारा स्वयं का सहारा नहीं माना जा सकता। अतः जैनधर्म में व्यक्ति का कर्म और उसका पुरुषार्थ ही प्रमुख है।

सर्वोदयदर्शन आधुनिक काल में गाँधीयुग का प्रदेय माना जाता है। गाँधीजी ने रस्किन की पुस्तक “अन टू दी लास्ट” का अनुवाद सर्वोदय शीर्षक से किया और तभी से उसकी लोकप्रियता में बाढ़ आयी। यहाँ सर्वोदयवाद का तात्पर्य है प्रत्येक व्यक्ति को लौकिक जीवन के विकास के लिए समान अवसर प्रदान किया जाना। इसमें पुरुषार्थ का महत्व तथा सभी के उत्कर्ष के साथ स्वयं के उत्कर्ष का संबंध भी जुड़ा रहता है। गाँधी जी के इस सिद्धांत को विनोबाजी ने कुछ और विशिष्ट प्रक्रिया देकर कार्यक्षेत्र में उतार दिया। सर्वोदय का प्रचार यहीं से हुआ है। वैसे इतिहास की दृष्टि से विचार किया जाये तो सर्वोदय शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जैन साहित्य में हुआ है। प्रसिद्ध जैन तार्किक आचार्य समन्तभद्र ने भगवान महावीर की स्तुति “युक्त्यनुशासन” में इस प्रकार की है -

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथ्याऽनपेक्षम्।

सर्वापेक्षामन्तकरं निरन्तं सर्वोदय तीर्थभिदं तवैव॥

यहाँ सर्वोदय शब्द दृष्टव्य है। सर्वोदय का तात्पर्य है सभी की भलाई। महावीर के सिद्धान्तों में सभी की भलाई सन्तिहित है। उसमें परिश्रम और समान अवसर का भी लाभ प्रत्येक व्यक्ति के लिये सुरक्षित है।

राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि भाव संपत्ति का अपरिमित संग्रह, दूसरे की दृष्टि को बिना समझे ही निरादर कर संघर्ष को मोल लेना तथा राष्ट्रीयता का अभाव ये चार प्रमुख तत्व व्यक्ति के विकास में बाधक होते हैं। सभी का विकास १. अहिंसा, २. अपरिग्रह, ३. अनेकान्तवाद और ४. एकात्मता पर विशेष आधारित है। अतः जैनधर्म के इन सर्वोदयी सूत्रों पर संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित है।

अहिंसा - अहिंसा सर्वोदय की मूल भावना है। वह अपरिग्रह की भूमिका को मजबूत करती है अहिंसा समत्व पर प्रतिष्ठित है। मैत्री, प्रमाद, कारुण्य और माध्यस्था भावों का अनुवर्तन, समता और अपरिग्रह का अनुचिन्तन, तप और अनेकान्त का अनुग्रहण तथा संयम और सच्चरित्र का अनुसाधन अहिंसा का प्रमुख रूप है। उसकी पुनीत प्राप्ति सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्वचरित्र पर अवलंबित है। इसी चरित्र को धर्म कहा गया है। यही धर्म सम है। यह समत्व राग-द्वेषादिक विकारों के विनष्ट होने पर उत्पन्न होने वाला विशुद्ध आत्मा का परिणाम है। धर्म से परिणत आत्मा को ही सम कहा गया है। धर्म की परिणति निर्वाण है। आचार्य कुन्दकुन्द का यही चिन्तन है -

संपज्जदि पिंवाणं देवासुरमणुंरायविहवेहिं।

जीवस्स चरिन्तादो दंसग्गणागप्पहाणांदो॥

चास्ति खलु धम्मो धम्मो जो सो समो ति पिदिट्ठो।

मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हित्तमो॥

-प्रवचनसार १, ६-७

धर्म व स्तुतः आत्मा का स्पन्दन है जिसमें कारुण, सहानुभूति, सहिष्णुता, परोपकार वृत्ति आदि जैसे गुण विद्यमान रहते हैं। वह किसी जाति या सम्प्रदाय से संबद्ध और प्रतिबद्ध नहीं। उसका स्वरूप तो सार्वजनिक, सार्वभौमिक और लोकमांगलिक है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का अभ्युत्थान ऐसे ही धर्म की परिसीमा से संभव है।

धर्म और अहिंसा में शब्दभेद है, गुणभेद नहीं। धर्म अहिंसा है और अहिंसा धर्म है। क्षेत्र उसका व्यापक है। अहिंसा निषेधार्थक शब्द है। विधेयात्मक अवस्था के बाद ही निषेधात्मक अवस्था आती है। अतः विधिपाक हिंसा के अनन्तर इसका प्रयोग हुआ होगा। इसलिये संयम तप, दया आदि जैसे विधेयात्मक मानवीय शब्दों का प्रयोग पूर्वतर रहा होगा।

हिंसा का मूल कारण है प्रमाद और कषाय। इसके वशीभूत होकर जीव के मन, वचन, कार्य में क्रोधादिक भाव प्रगट होते हैं जिनसे स्वयं के शब्द प्रयोग रूप भावप्राणों का हनन होता है। कषायादिक तीव्रता के फलस्वरूप उसके आत्मघात रूप द्रव्य प्राणों का हनन होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे को गर्मान्तक वेदनादान अथवा परद्रव्यव्यपरोपण भी इन भावों का कारण है। इस प्रकार हिंसा में चार भेद हो जाते हैं स्वभावहिंसा, स्व-द्रव्यहिंसा, पर भावहिंसा और द्रव्यहिंसा (पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ४३)। आचार्य उमास्वामि ने इसी का संक्षेप में प्रमत्तयोगात् प्राणव्यरोपण हिंसा कहा है। इसलिये भिक्षुओं को कैसे चलना फिरना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए आदि जैसे प्रश्नों का उत्तर दशवैकालिक, मूलाचार आदि ग्रन्थों में दिया गया है कि उसे यत्नपूर्वक अप्रमत्त होकर उठना बैठना चाहिए, यत्नपूर्वक भोजन-भाषण करना चाहिए।

कहं चरे कहं चिट्ठे कहमासे कहं सए
कर्थ भुंजन्तो भासन्तो पावं कम्भं न बन्धई
जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए

जयं भुंजन्तो भासन्तो पावं कम्भं न बन्धई॥ दशवैकालिक, ४. ७-८

हिंसा का प्रमुख कारण रागादिक भाव हैं। उनके दूर हो जाने पर स्वभावतः अहिंसा भाव जाग्रत हो जाता है। दूसरे शब्दों में समस्त प्राणियों के प्रति संयमभाव ही अहिंसा है। अहिंसा निउणं दिड्डां सव्वभूएसु संजमो (दश.)। उसके सुख संयम में प्रतिष्ठित है। संयम ही अहिंसा है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि वे परस्पर एकात्मक कल्याण मार्ग से अबद्ध रहे। उसमें सौहार्द, आत्मोत्थान, स्थायीशान्ति, सुख और पवित्र साधनों का उपयोग होता है, यही यथार्थ में उत्कृष्ट मंगल है।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।

देवा वितं नमंसीति जस्स धम्मो सया मणो॥ दशवैकालिक १.१

मन, वचन, काय से संयमी व्यक्ति स्व-पर का रक्षक तथा मानवीय गुणों का आगार होता है। शील, संयमादि गुणों से आपूर व्यक्ति ही सत्पुरुष है। जिसका चित्त मलीन व दूषित रहता है वह अहिंसा का पुजारी कभी नहीं हो सकता। जिस प्रकार घिसना, छेदना, तपाना, रगड़ना इन चार उपायों से स्वर्ण की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार श्रुत, शील, तप, और दया रूप गुणों के द्वारा धर्म एवं व्यक्ति की परीक्षा की जाती है -

संजमु सीलु सउज्जु तनु सूरि हिं गुरु सोई।

दाह छेदक संपायकसु उत्तम कंचणु होई॥ भावपाहुड १४३ टीका

जीवन का सर्वांगीण विकास करना संयम का परम उद्देश्य रहता है। सूत्रकृतांग में इस उद्देश्य को एक रूपक के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया गया है। जिस प्रकार कछुआ निर्भय स्थान पर निर्भीक होकर चलना-फिरता है किन्तु भय की आशंका होने पर शीघ्र ही अपने अंग-प्रत्यंग प्रच्छन्न कर लेता है,

और भय-विमुक्त होने पर पुनः अंग-प्रत्यंग फैलाकर चलना-फिरना प्रारंभ कर देता है, उसी प्रकार संयमी व्यक्ति अपने साधना मार्ग पर बड़ी सतर्कता पूर्वक चलता है। संयम की विराधना का भय उपस्थित होने पर वह पंचेन्द्रियों व मन को आत्मज्ञान (अंतर) में ही गोपन कर लेता है

जहा कुम्भे स अंगाईं सए देहे समाहरे
एवं पावाइं मेहावी अज्झपेण समाहरे॥ सूत्रकृतांग १.८.६

संयमी व्यक्ति सर्वोदयनिष्ठ रहता है। वह इस बात का प्रयत्न करता है कि दूसरे के प्रति वह ऐसा व्यवहार करे जो स्वयं को अनुकूल लगता हो। तदर्थ उसे मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, और माध्यस्थ्य भावनाओं का पोषक होना चाहिए। तभी सुखी ओर निरोग है, किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो, ऐसा प्रयत्न करे।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सन्तु सर्वे निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥
मा कार्षीत कोऽपि पापानि मा च भूत् कोऽपि दुःखतः
मुप्यतां जगदप्येषा मति मैत्री निगयते॥ यशस्तिलकचम्पू उत्तरार्ध

दूसरों के विकास में प्रसन्न होना प्रमोद है। विनय उसका मूल साधन है। ईर्ष्या उसका सबसे बड़ा अन्तराय है। कारुण्य अहिंसा भावना का प्रधान केन्द्र है। दुःखी व्यक्तियों पर प्रतीकात्मक बुद्धि से उनमें उद्धार की भावना ही कारुण्य भावना है। माध्यस्थ्य भावना के पीछे तटस्थ बुद्धि निहित है। निःशंक होकर क्रूर कर्मकारियों पर अत्मप्रशंसकों पर, निंदकों पर उपेक्षाभाव रखना मध्यस्थ भाव है। इसी को समभाव भी कहा गया है। समभावी व्यक्ति निर्मोही, निरहंकारी, निष्परिग्रही, स्थावर जीवों का संरक्षक तथा लाभ-अलाभ में, सुख-दुःख में, जीवन-मरण में, निन्दा-प्रशंसा में, मान-अपमान में, विशुद्ध हृदय से समदृष्ट होता है। समजीवी व्यक्ति ही मर्यादाओं व नियमों का प्रतिष्ठापक होता है। वही उसकी समचरिता है। वही उसकी सर्वोदयशीलता है।

महावीर की अहिंसा पर विचार करते समय एक प्रश्न हर चिन्तक के मन में उठ खड़ा होता है कि संसार में जब युद्ध आवश्यक हो जाता है, तो उस समय साधक अहिंसा का कौन-सा रूप अपनावेगा। यदि युद्ध नहीं करता है तो आत्मरक्षण और राष्ट्ररक्षा दोनों खतरे में पड़ जाती है और यदि युद्ध करता है तो अहिंसक कैसा? इस प्रश्न का समाधान जैन चिन्तकों ने किया है। उन्होंने कहा है कि आत्मरक्षा और राष्ट्ररक्षा करना हमारा कर्तव्य है। चंद्रगुप्त, चामुण्डराय, खारवेल आदि जैसे धुरन्धर जैन अधिपति योद्धाओं ने शत्रुओं के शताधिक बार दांत खट्टे किए हैं। जैन साहित्य में जैन राजाओं की युद्धकला पर भी बहुत कुछ लिखा मिलता है। बाद में उन्हीं राजाओं को वैराग्य लेते हुए भी प्रदर्शित किया गया है। यह उनके अनासक्ति भाव का सूचक है। अतः यह सिद्ध है कि रक्षणात्मक हिंसा पाप का कारण नहीं है। ऐसी हिंसा को तो वीरता कहा गया है। यह विरोधी हिंसा है। चूर्णियों और टीकाओं में ऐसी हिंसा को गर्हित माना गया है। सोमदेव ने इसी स्वर में अपना स्वर मिलते हुए स्पष्ट कहा है -

यः शस्त्रवृत्ति समरे रिपुः स्वात्
यः कष्टको वा निजमण्डलस्ता।
तमैव अस्त्राणि नृपाः क्षिपन्ति
न दीनकालीन कदाशयेषु॥

२. अपरिग्रह - अपरिग्रह सर्वोदय का अन्यतम अंग है। उसके अनुसार व्यक्ति और समाज परम्परा आश्रित है। एक दूसरे के सहयोग के बिना जीवन का प्रवाह गतिहीन सा हो जाता है। परस्परोऽपग्रहो जीवानाम्) प्रगति सहमूलक होती है, संघर्षमूलक नहीं। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संघर्ष का वातावरण प्रगति के लिए घातक होता है। ऐसे घातक वातावरण के निर्माण में सामाजिक विषम वातावरण प्रमुख कारण होता है। तीर्थंकर महावीर ने इस तथ्य की भीमांसाकर अपरिग्रह का उपदेश दिया और सही समाजवाद की स्थापना की।

समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति को समाज के लिए कुछ उत्सर्ग करना पड़ता है। दूसरों के सुख के लिए स्वयं के सुख को छोड़ देना पड़ता है। सांसारिक सुखों का मूल साधन संपत्ति का संयोजन होता है। हर संयोजन की पृष्ठभूमि में किसी न किसी प्रकार का राग, द्वेष, मोह आदि विकार भाव होता है। संपत्ति के अर्जन में सर्वप्रथम हिंसा होती है। बाद में उसके पीछे झूठे, चोरी, कुशील अपना व्यापार बढ़ाते हैं। संपत्ति का अर्जन परिग्रह है और परिग्रह ही संसार का कारण है।

जैन संस्कृति वस्तुतः मूल रूप से अपरिग्रहवादी संस्कृति है। जिन, निर्ग्रथ, वीतराग जैसे शब्द अपरिग्रह के ही द्योतक हैं। अग्रमाद का भी उपयोग इसी संदर्भ में हुआ है। मूर्ख को परिग्रह कहा गया है। यह मूर्ख प्रमाद है और प्रमाद कषायजन्य है भाव है। राग द्वेषादि भाव से ही परिग्रह की प्रवृत्ति बढ़ती है। मिथ्यात्व कषाय, मोहकषाय, इन्द्रिय विषय आदि अन्तरंग परिग्रह है और धन धान्यादि बाह्यपरिग्रह है। ये आश्रव के कारण हैं। इन कारणों से ही हिंसा होती है प्रमत्तयोगातु प्राणव्यपरोपणं हिंसा यह हिंसा कर्म है और कर्म परिग्रह है।

आचार्यांगसूत्र कदाचित्, प्राचीनतम आगम ग्रन्थ है। जिसका प्रारम्भ ही शस्त्रपरिज्ञा से होता है। शस्त्र का तात्पर्य है हिंसा। हिंसा के कारणों की भीमांसा करते हुए वहाँ स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति वर्तमान जीवन के लिए, प्रशस्त, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म, मरण और मोचन के लिये, दुःख प्रतिकार के लिए तरह-तरह की हिंसा करता है। द्वितीय अध्ययन लोकविजय में इसे भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि सांसारिक विषयों का संयोजन प्रमाद के कारण होता है। प्रमादी व्यक्ति रात दिन परितप्त रहता है, काल या अकाल में अर्थार्जन का प्रयत्न करता है, संयोग का अर्थी होकर और अर्थलोलुपी चोर या लुटेरा हो जाता है। उसका चिन्त अर्थार्जन में ही लगा रहता है। अर्थार्जन में संलग्न पुरुष पुनः पुनः शस्त्रसंहारक बन जाता है। परिग्रही व्यक्ति में न तप होता है, न शान्ति और न नियम होता है। वह सुखार्थी होकर दुःख को प्राप्त करता है।

इस प्रकार संसार का प्रारम्भ आसक्ति से होता है और आसक्ति ही परिग्रह है। परिग्रह का मूल साधन हिंसा है, झूठ, चोरी कुशील उसके अनुवर्तक हैं। और परिग्रह उसका फल है। अतः जैन संस्कृति मूलतः अपरिग्रहवादी संस्कृति है जिसका प्रारम्भ अहिंसा के परिपालन से होता है। महावीर ने अपरिग्रह को ही प्रथम माना है।

आधुनिक युग में मार्क्स सम्यवाद के प्रस्थापक माने जाते हैं। उन्होंने लगभग वही बात की है जो आज से २५०० वर्ष पूर्व तीर्थंकर महावीर कह चुके थे। तीर्थंकर महावीर ने संसार के कारणों की मीमांसा कर उनसे मुक्त होने का उपाय भी बताया पर मार्क्स आधे रास्ते पर ही खड़े रहे। दोनों महापुरुषों के छोरे अलग-अलग थे। महावीर ने “आत्मतुला” की बातकर समविभाजन की बात कही और हर क्षेत्र में मर्यादित रहने का सुझाव दिया। परिमाणव्रत वस्तुतः संपत्ति का आध्यात्मिक विकेन्द्रीकरण है और अस्तित्ववाद उसका केन्द्रीय तत्व है। जबकि मार्क्सवाद में ये दोनों तत्व नहीं हैं।

परिग्रही वृत्ति व्यक्ति को हिंसक बना देती है। आज व्यक्ति की निष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा को चीरती हुई स्वकेन्द्रित होती चली जा रही है। राजनीति और समाज में भी नये-नये समीकरण बनते चले आये हैं। राजनीति का नकारात्मक और विध्वंसात्मक स्वरूप किंकर्तव्यविमूढ़ सा बन रहा है। परिग्रही लिप्सा से आसक्त असामाजिक तत्वों के समक्ष हर व्यक्ति धुटने टेक रहा है। डग-डग पर असुरक्षा का भान हो रहा है। ऐसा लगता है, सारा जीवन विषाक्त परिग्रही राजनीति में रस्थ हो गया है। वर्गभेद, जातिभेद, संप्रदायभेद जैसे तीखे कटघरे परिग्रह के धूमिल साये में स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता पूर्वक पल पुस रहे हैं।

इस हिंसकवृत्ति से व्यक्ति तभी विमुख हो सकता है, जब वह अपरिग्रह के सोपान पर चढ़ जाये। परिग्रह परिमाणव्रत का पालन साधक को क्रमशः तात्त्विक चिन्तन की ओर आकर्षित करेगा। और समता नींव तथा समविभाजन की प्रवृत्ति का विकास होगा। अणुव्रत की चेतना सर्वोदय की चेतना है।

३. अनेकान्तवाद और सर्वोदयदर्शन - अनेकान्तवाद और सर्वोदयवाद पृथक् नहीं लिये जा सकते। अनेकान्तवाद सत्य और अहिंसा की भूमिका पर प्रतिष्ठित तीर्थंकर महावीर का सार्वभौमिक सिद्धान्त है, जो सर्वधर्मभाव के चिन्तन से अनुप्राणित है। उसमें लोकहित, लोकसंग्रह और सर्वोदय की भावना गर्भित है। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को दूर करने का अभेद्य अस्त्र है। समन्वयवादिता के आधार पर सर्वथा एकान्तवादियों को एक प्लेटफार्म पर ससम्मान बैठाने का उपक्रम है। दूसरे के दृष्टिकोण का अनादर करना और उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना ही संघर्ष का मूल कारण होता है। संसार में जितने भी युद्ध हुए हैं उनके पीछे यही कारण रहा है। अतः संघर्ष को दूर करने का उपाय यही है कि हम प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र के विचारों पर उदारता और निष्पक्षता पूर्वक विचार करें। उससे हमारा दृष्टिकोण दुराग्रही और एकांगी नहीं होगा।

प्राचीन काल से ही समाज शास्त्री और अशास्त्रीय विसंवादों में जूझता रहा है, बुद्धि और तर्क के आक्रमणों को सहता रहा है, आस्था और ज्ञान में थपेड़ों को झेलता रहा है। तब कही एक लम्बे समय के बाद उसे यह अनुभव हुआ कि इन बौद्धिक विषमताओं के तीखे प्रहारों से निष्पक्ष और निर्वेरे होकर मुक्त हुआ जा सकता है, सान्ति की पावन धारा में संगीतमय गोते लगाये जा सकते हैं और वादों के विषैले घेरे को मिटाया जा सकता है। इसी तथ्य और अनुभूति ने अनेकान्तवाद को जन्म दिया और इसी ने सर्वोदयदर्शन की रचना की।

मानवीय एकता, सह-अस्तित्व, समानता और सर्वोदयता धर्म के तात्त्विक अंग हैं। तथाकथित धार्मिक विज्ञान और आचार्य इन अंगों को तोड़-मरोड़कर स्वार्थवश वर्गभेद और वर्णभेद जैसी विचित्र धारणाओं की विषैली आग को पैदा कर देते हैं जिसमें समाज की भेड़ियाधसान वाली वृत्ति वैचारिक

धरातल से असंबद्ध होकर कूद पड़ती है। उसके सारे सभी कारण झुलस जाते हैं। दृष्टि में हिंसक व्यवहार अपने पूरे शक्तिशाली स्वर में गूंजने लगता है, शोषण की मनोवृत्ति सहनुभूति और सामाजिकता की भावना को कुंठित कर देती है, व्यक्ति और सामूहिक शान्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। इस दुर्वस्था की सारी जिम्मेदारी एकान्तवादि चिन्तकों के सबल हिंसक कंधों पर है जिसने समाज को एक झटका दिया है, अशान्ति का एक आकार-प्रकार खड़ा किया है और पड़ोसी को पड़ोसी जैसा रहने में संकोच, वितृष्णा और मर्यादाहीन भरे व्यवहारों की लौहिक दिवाल को गढ़ दिया है।

अनेकान्तवाद और सर्वोदयदर्शन इन सभी प्रकार की विषमताओं से आपादमग्न समाज को एक नई दिशा-दान देता है। उसकी कटी पतंग को किसी तरह सम्हालकर उसमें अनुशासन तथा सुव्यवस्था की सुस्थिर, मजबूत और सामुदायिक चेतना से सनी डोर लगा देता है, आस्था और ज्ञान की व्यवस्था में नया प्राण फूंक देता है। तब संघर्ष के स्वर बदल जाते हैं। समन्वय की मनोवृत्ति समता की प्रतिध्वनि, सत्यान्वेषण की चेतना गतिशील हो जाती है, अपने शास्त्रीय व्यामोह से मुक्त होने के लिए अपने वैयक्तिक एक पक्षीय विचारों की आहूति देने के लिए और निष्पक्षता, निर्वेता-निर्भयता की चेतना के स्तर पर मानवता को घूल धसरित होने से बचाने के लिए।

इस प्रकार की अनैतिकता और अस्तित्व को मिटाने तथा शुद्ध ज्ञान और चरित्र का आचरण करने की दृष्टि से अनेकान्तवाद और सर्वोदयदर्शन एक अमोघ सूत्र है। समता की भूमिका पर प्रतिष्ठित होकर आत्मदर्शी होना उसके लिए आवश्यक है। समता मानवता की सही परिभाषा है, समन्वयवृत्ति उसका सुन्दर अक्षर है, निर्मलता, और निर्भयता उसका फुलस्टाप है, निराग्रहीवृत्ति और असाम्प्रदायिकता उसका पैराग्राफ है।

अनैकान्तिक और सर्वोदय चिन्तन की दिशा में आगे बढ़नेवाला समाज पूर्ण अहिंसक और आध्यात्मिक होगा। सभी के उत्कर्ष में वह सहायक होगा। उसके साधन और साध्य पवित्र होंगे। तर्क शुष्कता से हटकर वास्तविकता की ओर बढ़ेगा। हृदय-परिवर्तन के माध्यम से सर्वोदय की सीमा को छुएगा। चेतना-व्यापार के साधन इन्द्रियाँ और मन संयमित होंगे। सत्य की प्रामाणिकता असंदिग्ध होती चली जायेगी। सापेक्षिक चिन्तन व्यवहार के माध्यम से निश्चय तक क्रमशः बढ़ता चला जायेगा स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर, बहिरंग से अन्तरंग की ओर, सांवायवहारिक से पार मार्यिक की ओर, ऐन्द्रियक ज्ञान से आत्मिक ज्ञान की ओर।

सापेक्षिक कथन दूसरों के दृष्टिकोण को समान रूप से आदर देता है। खुले मस्तिष्क से पारस्परिक विचारों का आदान-प्रदान करता है। प्रतिपाद्य की यथार्थवत्ता प्रतिबद्धता से मुक्त होकर सामने आ जाती है। वैचारिक हिंसा से व्यक्ति दूर हो जाता है। अस्ति-नस्ति के विवाद से मुक्त होकर नयों के माध्यम से प्रतिनिधि शब्द समाज और व्यक्ति को प्रेमपूर्वक एक प्लेटफार्म पर बैठा देते हैं। चिन्तन और भाषा के क्षेत्र में “न या सियावाय वियागरेज्जा” का उपदेश समाज और व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वों को समाप्त कर देता है, सभी को पूर्णन्याय देकर सरल, स्पष्ट, और निर्विवाद अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त कर देता है। आचार्य सिद्धार्थ ने “धार्मिक समुदीर्णा स्तर्वाय नाथ हस्तयः” कहकर इसी तथ्य को अपनी भगवद् स्तुति में प्रस्तुत किया है। हरिभद्र की भी समन्वयात्मक साधना इस संदर्भ में स्मरणीय है -

भववीजाङ्कुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै”

अनेकान्तवाद और सर्वोदय दर्शन समाज के लिए वस्तुतः एक संजीवनी है। वर्तमान संघर्ष के युग में अपने आपको सभी के साथ मिलने जुलने का एक अभेद्य अनुदान है, प्रगति का एक नया साधन है, पारिवारिक द्वेष को समाप्त करने का एक अनुपम चिंतन है, अहिंसा और सत्य की प्रतिष्ठा का केन्द्रबिन्दु है, मानवता की स्थापना में नींव का पत्थर है, पारस्परिक समझ और सह अस्तित्व के क्षेत्र में एक सबल लेप पोस्ट है। इनकी उपेक्षा विद्वेष और कटुता का आवाहन है, संघर्षों की कक्षाओं का प्लाट है, विनाश उसका क्लायमेक्स है, विचारों और दृष्टियों की टकराहट तथा व्यक्ति-व्यक्ति के बीच खड़ा हुआ एकलंबा गेप वैयक्तिक और सामाजिक संघर्षों की लांघकर राष्ट्र और विश्वस्तर तक पहुंच जाता है। हर संघर्ष का जन्म विचारों का मतभेद और उसकी पारस्परिक अवमानना से होता है। बुद्धिवाद उसका केन्द्रबिन्दु है।

अनेकान्तवाद बुद्धिवादी होने का आग्रह नहीं करता। आग्रह से तो वह मुक्त है ही पर वह इतना अवश्य कहता है कि बुद्धिनिष्ठ बनें। बुद्धिवाद खतरावाद है, विद्वानों की उखाड़ा-पछाड़ी है। पर बुद्धिनिष्ठ होना खतरा और संघर्षों से मुक्त होने का साधन है। यही सर्वोदयवाद है। इसे हम मानवतावाद भी कह सकते हैं जिसमें अहिंसा, सत्य, सहिष्णुता, समन्वयात्मकता, सामाजिकता, सहयोग, सद्भाव और संयम जैसे आत्मिक गुणों का विकास सन्नध है। सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थान भी इसकी सीमा से बहिर्भूत नहीं रखे जा सकते। व्यक्तिगत, परिवारगत, संस्थागत और सम्प्रदायगत विद्वेष की विषैली आग का शमन भी इसी के माध्यम से होना संभव है। अतः सामाजिकता के मानदण्ड में अनेकान्तवाद और सर्वोदयवाद खरे उतरे हैं।

४. एकात्मकता - सर्वोदय के साथ एकात्मकता अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। राष्ट्र का अस्तित्व एकात्मकता की श्रृंखला से संबद्ध है। राष्ट्रीयता का जागरण उसके विकास का प्राथमिक चरण है। जन-मन में शान्ति, सह अस्तित्व और अहिंसात्मकता उसका चरम बिन्दु है। विविधता में पत्ली-पुसी एकता सौजन्य और सौहार्द को जन्म देती हुई “परस्परप्रेमो जीवानाम्” का पाठ पढ़ाती है।

भ्रमण व्यवस्था ने उस एकात्मकता को अच्छी तरह परखा भी और संजोया भी अपने विचारों में उसे जैनाचार्यों और तीर्थंकरों ने समता, पुरुषार्थ और स्वावलम्बन को प्रमुखता देकर जीवन को एक नया आयाम दिया। भ्रमण संस्कृति ने वैदिक संस्कृति में धोखे-धोखे से आयी विकृत परंपराओं के विरोध में जेहाद बोल दिया और देखते ही देखते समाज का पुनः स्थितिकरण कर दिया। यद्यपि उसे इस परिवर्तन में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा पर अन्तर्तोगत्वा उसने एक नये समाज का निर्माण कर दिया। इस समाज की मूल निधि चारित्रिक पवित्रता और दृढ़ता थी जिसे उसने थाती मानकर कठोर झंझवातों में भी अपने आपको संभाले रखा।

भावात्मक एकता के संदर्भ में जैन संस्कृति ने लोकभाषाओं का उपयोग कर जो अनूठा कार्य किया है वह अपने आप में बेमिसाल है। संस्कृति एक वर्ग विशेष की भाषा बनकर रह गयी थी जो सर्वसाधारण समाज के परे थी। जैनाचार्यों ने उसे तो अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया ही पर साथ ही प्राकृत बोलियों का भी भरपुर उपयोग कर साहित्य सृजन किया। ये प्राकृत बोलियाँ वही हैं जिन्होंने भारत की

समूची आधुनिक भाषाओं को जन्म दिया और उनके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। एकात्मकता जीवन का सौंदर्य है। जैन संस्कृति ने जीवन को पुष्पित-फलित बनाने के शाश्वत साधन प्रस्तुत किये हैं। जीवन की यथार्थता प्रामाणिकता से घरे होकर नहीं हो पाती। साध्य के साथ साधनों की पवित्रता भी आवश्यक है। साधन यदि पवित्र और विशुद्ध नहीं होंगे, बीज यदि सही नहीं होंगे तो उससे उत्पन्न होने वाले फल भीटे कैसे हो सकते हैं? जीवन की सत्यता ही धर्म है। धोखा-प्रवंचना जैसे असामाजिक तत्वों का उसके साथ कोई सामंजस्य नहीं। धर्म और है भी क्या? धर्म का वास्तविक संबंध खान-पान और दकियानूसी विचारधारा से जुड़े रहना नहीं, वह तो ऐसी विचार क्रांति से जुड़ा है जिसमें मानवता और सत्य का आचरण कूट-कूट कर भरा है। एकात्मकता और सर्वोदय की पृष्ठभूमि में जीवन का यही रूप पलता-पुसता है।

आज की भौतिकताप्रधान संस्कृति में जैन धर्म सर्वोदयतीर्थ का काम करता है। जैनधर्म वस्तुतः एक मानव धर्म है उसके अनुसार व्यक्ति यदि अपना जीवन-रथ चलाये तो वह ऋषियों से भी अधिक पवित्र बन सकता है। श्रावक धर्म की विशेषता यह है कि उसे न्याय-पूर्वक धन-सम्पत्ति का अर्जन करना चाहिए और सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। सर्वोदय दर्शन में परहित के लिए अपना त्याग आवश्यक हो जाता है जैनधर्म ने उसे अंगुव्रत किंवा परिमाणव्रत की संज्ञा दी है इसमें श्रावक अपनी आवश्यकतानुसार सम्पत्ति का उपभोग करता है और शेष भाग समाज के लिए बांट देता है।

सर्वोदय और विश्व-बंधुत्व के स्वप्न को साकार करने में भगवान महावीर के विचार निःसंदेह पूरी तरह सक्षम हैं। उनके सिद्धांत लोकहितकारी और लोकसंग्राहक हैं। समाजवाद और अध्यात्मवाद के प्रस्थापक हैं। उनसे समाज और राष्ट्र के बीच पारस्परिक समन्वय बढ़ सकता है और मनमुटाव दूर हो सकता है। इसलिये ये विश्वशांति को प्रस्थापित करने में अमूल्य बन सकते हैं। महावीर इस दृष्टि से सही दृष्टार्थ और सर्वोदयतीर्थ के सही प्रेरणा थे। मानव मूल्यों को प्रस्थापित करने में उनकी यह विशिष्ट देन है जो कभी भुलायी नहीं जा सकती।

इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि आधुनिक मानस धर्म को राजनीतिक हथकंडा न बनाकर उसे मानवता को प्रस्थापित करने के साधन का एक केन्द्रबिंदु माने। मानवता का सही साधक वह है जिसकी समूची साधना समता और मानवता पर आधारित हो और मानवता के कल्याण के लिए उसका मूलभूत उपयोग हो। एतदर्थ खुला मस्तिष्क, विशाल दृष्टिकोण, सर्वधर्म समभाव और सहिष्णुता अपेक्षित है। महावीर के धर्म की मूल आत्मा ऐसे ही पुनीत मानवीय गुणों से सिंचित है और उसकी अहिंसा वंदनीय तथा विश्वकल्याणकारी है। यही उनका सर्वोदयतीर्थ है।

न्यू एक्सटेंशन एरिया, सदर,

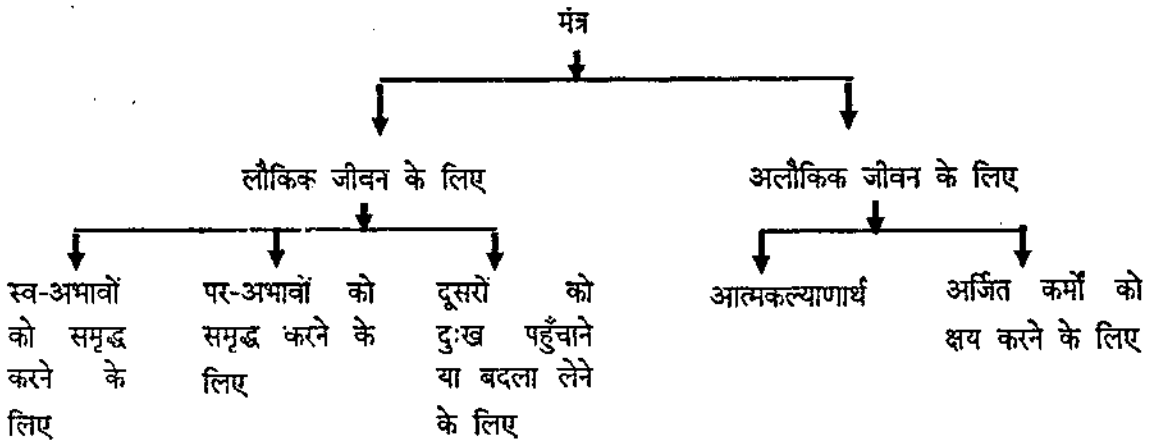
नागपुर ४४०-००१

* * * * *

जैनमंत्र साहित्य: एक परिचय

• प्रो. डॉ. संजीव प्रचंडिया 'सोमेन्द्र'

मंत्र, मन को केन्द्रीयभूत करने का साधन होता है और जब मन नियंत्रित हो जाता है तो लक्ष्य की सिद्धि सहज हो जाती है। लौकिक जीवन में, जगत् के व्यामोह से सामान्यतः व्यक्ति का मन स्थिर नहीं रह पाता है। ऊभी परिवार की समस्याओं में उसका रहना, कभी व्यवसाय की जोड़-बाकी में घुल-मिल जाना और कभी व्यावहारिक, सामाजिक समस्याओं में जुड़ जाना, मानो व्यक्ति का पर्याय ही बन गया है। उन सभी से मुक्ति पाते के लिए मंत्र मय होना आवश्यक है। यहाँ मैं एक बात अवश्य उल्लेख करना चाहूँगा। वह यह, कि मंत्रों का प्रयोग प्रायः दो रूपों में किया जाता है - एक, लौकिक जीवन में अभावों की समृद्धि करने के लिए तथा दूसरा आत्म कल्याणार्थ। इसे हम निम्न चित्र द्वारा सहज ही समझ सकते हैं।



लौकिक जीवन के लिए^(१) : लौकिक जीवन में मंत्रों का प्रयोग बहुत प्रचलित हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ 'चाह' में मंत्रों के प्रताप का सकारात्मक प्रभाव चाहता है और किसी न किसी सीमा तक वह उसे मिलता भी है। व्यवहार में मंत्रों की आवश्यकता निम्न कार्यों के निष्पादन के लिए अपेक्षित होती है

स्व-अभावों को समृद्ध करने के लिए: व्यक्ति की 'चाह' और 'इच्छा' असीमित होती है। वह 'आवश्यकता' की पूर्ति के अतिरिक्त साधारण एवं असाधारण आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है। विलासिता पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति वह मंत्रों की सहायता से प्राप्त करने की कोशिश करता है। स्थूल कार्यों की सम्पूर्ति उसे मंत्रों की सहायता से प्राप्त हो सकती है।

पर-अभावों को समृद्ध करने के लिए : दूसरों की भी मंत्रों के प्रयोग से विद्यमान कमियों को दूर करने की कोशिश की जाती है। जैसे पुत्रवान होने 'चाह', मकान दुकान, रोजगार आदि होने की 'चाह'। मंत्रों के प्रयोग से दूसरों के समृद्ध होने की घटनाएँ सुनने को प्रायः मिलती है।

दूसरों को दुःख पहुँचाने या बदला लेने के लिए : कुछेक व्यक्ति इस वृत्ति के लिए प्रसिद्ध हो जाते हैं जो दूसरों के अहित के लिए मंत्रों का प्रयोग करते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं जिससे कि उनके मन की ईर्ष्या कम हो जाए, किन्तु ऐसा हो नहीं पाता। तो बुरी भावनाओं के लिए मंत्रों का प्रयोग किया जाता है। (२)

अलौकिक जीवन के लिए: (३) जिस प्रकार लौकिक जीवन के लिए मंत्रों का अपना महत्व है ठीक उसी प्रकार अलौकिक जीवन के लिए मंत्रों का महत्व है। शुभ उपयोग के लिए मंत्रों का किया गया प्रयोग अलौकिक-जीवन के लिए अच्छा माना गया है। (४)

आत्म कल्याणार्थ : 'अलौकिक जीवन' के लिए मंत्रों की महिमा महत्वपूर्ण बतायी गयी है। (५) मंत्रों के द्वारा व्यक्ति का विवेक जग सकता है और विवेक के जागने पर समूचा उद्यम आत्म कल्याण के लिए उन्मुख हो जाता है। णमोकार महामंत्र इसी का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। (६)

अर्जित कर्मों को क्षय करने के लिए : कर्म का भोग प्रत्येक प्राणी को भोगना पड़ता है। मंत्रों के माध्यम से भोगे जा रहे विगत कर्मों के समय, 'भावों' की शुचिता का महत्वपूर्ण योगदान, कर्मों के क्षय करने में मिल जाता है। 'भावों' के बिगड़ने पर कर्म पुनः संक्रामक रोग की तरह फैलते जाते हैं, अतः मंत्रों के माध्यम से उनमें शुचिता विद्यमान हो जाती है।

व्यवहार में, चूँकि आज का युग भौतिकवादी युग है अतः लौकिक जीवन के लिए मंत्रों की उपयोगिता आवश्यक हो गयी है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने निजी जीवन के लिए मंत्रों की सिद्धि करते हैं। वे अभावों में गरीबी के प्रभावों के दर्शन खोज लेते हैं। किन्तु, कुछ मंत्र ऐसे भी होते हैं जो अपने लिए ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के लिए प्रयोग किये जाते हैं। वास्तव में जैन धर्म में ऐसे ही मंत्रों की चर्चा की जाती है, जो अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य भी हैं। (७)

जैन साहित्य और मंत्र : जैन साहित्य में उन मंत्रों का भी उल्लेख मिलता है जो जीवन के बहुमुखी क्षेत्रों में प्रयोग किये जाते हैं। (८) वास्तव में जैन धर्म में रुढ़िगत स्थितियाँ नहीं होतीं। यहाँ तो व्यक्ति के स्थान पर उसके गुणों की वंदना का पाठ पढ़ाया गया है। हम उनके गुण को धारण कर उन जैसे हो जाएँ, ऐसी स्थिति जैनधर्म और साहित्य के मूल में है। कुछेक मंत्रों का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है। (९ अ)

१. गर्भाधान क्रिया के मंत्र - "सज्जाति भागी भव, सद्गृहि भागीभव, मुनीन्द्र भागीभव, सुरेन्द्र भागीभव, परम राज्य भागी भव, आर्हन्त्यभागी भव, परम निर्वाण भागीभव"

२. प्रीति क्रिया के मंत्र - "त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैकाल्वज्ज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव"

३. सुप्रीति क्रिया के मंत्र - "अवतार कल्याण भागीभव, मंदरेन्द्राभिषेक कल्याण भागीभव, निष्क्रान्ति कल्याण भागीभव, आर्हन्त्य कल्याण भागीभव, परमनिर्वाण कल्याण भागीभव"

४. घृति क्रिया के मंत्र - “सज्जाति दातृ भावीभव, सद्गृहिदातृभागीभव, मुनीन्द्रदातृभागी भव, सुरेन्द्रदातृभागीभव, परमराज्य दातृभागीभव, आर्हन्त्यदातृभागीभव, परम निर्वाण दातृ भागीभव।”

५. जन्म संस्कार की क्रिया के मंत्र - योग्य आशीर्वाद आदि प्रदान करने के पश्चात् विभिन्न क्रिया पर भिन्न-भिन्न मंत्र पढ़े जाते हैं जो कल्याणदायी होते हैं -

नाभिनाल काटते समय - “घातिजयो भव”

ज्वटन लगाते समय - “हे जात, श्री देव्यः ते जाति क्रियां कुर्वन्तु”

स्नान कराते समय - “त्वं मन्दराभिषेकाहो भव”

सिर पर अक्षत क्षेपण करते समय - “चिरं जीव्याः” आदि

६. नाम कर्म क्रिया के मंत्र - “दिव्याष्टसहस्र नाम भागीभव, विजयाष्ट सहस्र नाम भागीभव, परमाष्ट सहस्रनाम भागीभाव”। इसके अतिरिक्त -

७. ऋषि मण्डल मंत्र {१ (ब)}

८. अग्नि मंडलमंत्र

(९) अर्हन्मंडल मंत्र

(१०) कर्मदहन मंत्र

(११) गणधरवलयमंत्र

(१२) चिन्तामार्णि मंत्र

(१३) चौबीसी मंडल मंत्र

(१४) जलाधिवासन मंत्र

(१५) दशलाक्षाणिक मंत्र

(१६) बोधि समाधि मंत्र या समाधि मरण मंत्र

(१७) मृत्युञ्जय मंत्र

(१८) मोक्षमार्ग मंत्र

(१९) रत्नत्रय मंत्र

(२०) रत्नत्रय विधानमंत्र

(२१) शान्ति मंत्र

(२२) सारस्वत मंत्र

(२३) सरस्वती मंत्र

(२४) णमोकार महामंत्र

णमोकार महामंत्र : जैन साहित्य में णमोकार मंत्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मूल बात है कि यह महामंत्र, किसी व्यक्ति विशेष की पूजा अर्चना का मंत्र नहीं है। यहाँ अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु की वंदना की गई है। ‘अरिहंत’ वे जिन्होंने अपने चार घातिया कर्म को काट लिया है, उन्हें क्षय कर लिया है। ‘सिद्ध’ वे जिन्होंने चार घातिया और चार अघातिया कर्मों (ज्ञानावरण,

दर्शनवरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम कर्म, गोत्र और अन्तराय) अर्थात् अष्टकर्म को क्षय कर लिया है। 'आचार्य' वे जिन्होंने दुष्कर्मों पर विजय पा ली है, किन्तु उन्हें वे अभी क्षय नहीं कर पाये हैं। 'उपाध्याय' वे जो दर्शन, ज्ञान, और चारित्र की त्रिवेणी के ज्ञात परम विद्वान, साधुओं के शिक्षक कहे जाते हैं। 'साधु' वे जो साधना में लीन है, संयमी है, सधे है।

अतः णमोकार महामंत्र में पंच परमेष्ठि को नमस्कार किया गया है। यद्यपि णमोकारमंत्र का लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना है तथापि लौकिक दृष्टि से यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है। उपसर्ग, पीड़ा, कष्ट आदि अनेक आधि व्याधि से मुक्ति दिलाता है। अतः कल्याणकारी है।

संदर्भ सूची - १. ज्ञानावर्ण अधिकार ४०/१०, राज चन्द्र ग्रंथमाला प्रकाशन, ई. १९०७ में निम्न उल्लेख मिलता है -

“क्षुद्रध्यान पर प्रपञ्चचतुरा रगानलोदीपिताः, मुद्रामंडल यंत्र मंत्र करेण
शराधयन्त्याहताः। पतन्ति नरके भोगार्ति भिर्विञ्चिताः।”

२. वही, ४/५२, ४/५३, ४/५४, ४/५५
३. महापुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, संवत् १९५१
४. पाण्डव पुराण, जीवराज प्रकाशन, शोलापुर, संवत् १९६२
५. राजवार्तिका, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी संवत् २००८
६. भावपुराण, माणिकचंद्र ग्रंथमाला प्रकाशन, संवत् १९१७
७. धवलापुस्तक, अमरावती प्रकाशन में निम्न उल्लेख मिलता है - (१३/५, ५, ८२/३४९/८)

“जोणिपाहुड़े भणिदमंत-तंतस्सतीयो पोग्गलाणु भागो त्रि छेताव्वो।”

८. उप-आचार्य देवेन्द्र मुनि जीः नमस्कार महामंत्रः एक चिंतन, सुधर्मा, श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर - ४१४००१
९. (अ) दशवैकालिक सूत्र देखिए तथा उत्तराध्ययन देखिए।
(ब) 'जैन मंत्र एवं यंत्र साहित्यः एक अध्ययन' डॉ. संजीव प्रचंडिया 'सोमेन्द्र' अलीगढ़।
१०. पर्यावरण, प्रदूषण, और णमोकार महामंत्र - डॉ. संजीव प्रचंडिया 'सोमेन्द्र' ट्रेक्ट, प्रकाशन विश्वकल्याण णमोकार समारोह समिति, ग्वालियर

मंगल कलश,
३९४ सर्वोदय नगर अगिरा रोड,
अलीगढ़ - २०२००१

* * * * *

समता योगः एक अनुचितन

• श्री जशकरण डागा, टोंक

“मंत्रों में परमेशी मंत्र ज्यों, ब्रतो में ब्रह्म-चर्य महान।
तारागण में ज्यों चंदा है, पर्वत बड़ा सुमेरा जान॥
नदी में गंगा काष्ठ में चन्दन, ज्यों देवों में इन्द्र महान।
त्यों योगों में ‘समता’ उत्तम, साक्षी आगम वेद पुराना॥”^१

अध्यात्म जगत में तीन योग मुख्य हैं -ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग। इन तीनों योगों के सम्यग् समन्वय का नाम ही ‘समतायोग’ है। यही मोक्ष मार्ग का सर्वोत्तम योग है। बिना इसके मात्र ज्ञान या कर्म या भक्ति योग स्वप्रतिष्ठित महान होकर भी अपूर्ण कहे गए हैं। जैसे हरड़ बहेड़ा व आँवला, तीनों गुणकारी होने पर भी त्रिफला अमृत तो इन तीनों के सम्यग् सम्मिश्रण से ही प्राप्त होता है, वैसे ही आत्मा को परमानन्द रूप अलौकिक अमृत की प्राप्ति व अनुभूति, ज्ञान, दर्शन (भक्ति) व चारित्र (कर्म) के सम्यग् समन्वय पर होती है। इसे ही समता योग कहते हैं। यह समता योग सभी योगों में श्रेष्ठ तथा सभी दर्शनों, सिद्धान्तों व शाखों का सार भूत तत्व है। जिसने इसे प्राप्त कर लिया वह कृत्य-कृत्य हो गया और शाश्वत मुक्ति का स्वामी बन गया है।

अर्थ एवं व्याख्या - समता शब्द में तीन अक्षर हैं जो रत्नत्रय के प्रतीक हैं। यथा-स=सम्यक्तव, म=मति (ज्ञान), ता=त्याग (चारित्र)। अर्थात् जहाँ सम्यग् ज्ञान दर्शन व चारित्र की पावन त्रिवेणी का संगम होता है, वहाँ जीवन में, सच्चे समता योग का सूर्य उदित होता है। समता शब्द सम से बना है। संस्कृत में इसके तीन पर्यायवाची हैं -

(i) साम्य = आत्मा की सहज तटस्थ निर्विकलष दशा ।

(ii) शम = क्रोध, मान, माया व लोभ के शमन से प्राप्त शान्त दशा ।

(iii) श्रम = तप रूप श्रम से कर्म दाय होने पर उपलब्ध आत्मा की विशुद्ध (निर्मल) दशा।

इस प्रकार से संक्षेप में कहा जाय तो ‘समता योग’ आत्मा का स्वाभाव में अवस्थित, वह सहज दशा है, जब वह परमात्म भावों में या तदनुरूप विशुद्ध भावों में स्थिर हो, अंतर में रहे शाश्वत सुख शान्ति के अजस्र स्रोत में लीन होता है। यह समता योग बहिरात्मा से अंतर आत्मा, अंतर आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा होने की सर्वश्रेष्ठ दिव्य कला है, जो सभी साधकों के तप, जप, ज्ञान, ध्यान, का चरम लक्ष्य होता है। समता योग को विशेष रूप से समझने हेतु उसके विरोधक ममता को समझना आवश्यक है। ‘ममता’ का अर्थ है (मूर्च्छा) आसक्ति। जो आत्मा विषमता पैदा करे वह ममता है।

‘ममता’ के पाँच पुत्र और अगणित संबंधी है। पाँच पुत्र हैं (i) मिथ्यात्व (ii) अव्रत (iii) कषाय (iv) प्रमाद व (v) अशुभ योग। संबंधी है क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, मत्सर, राग, द्वेष, काम, भय, घृणा, अशान्ति, कलह, क्षोभ, तृष्णा, बैर, हिंसा, असत्य अदत्त, अब्रह्म, परिग्रह, निर्दयता, रति, अरति, अभ्याख्यान, वक्रता, छल, कपट आदि पाप वृत्तियाँ एवं सभी दुर्गुण। ‘समता’ के भी पाँच पुत्र हैं और अगणित संबंधी हैं। पाँच पुत्र हैं (i) सम्यक्त्व (ii) विरति (iii) अकजाय (iv) अप्रमत्त व (v) शुभ (या शुद्ध) योग। संबंधी है- शम, संवेग, निर्वेद, आस्व, अनुकम्पा, दया, शान्ति, क्षमा, त्याग, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, अचौर्य, शील, अपरिग्रह, सरलता, सहिष्णुता, मृदुता, विनम्रता, अमत्सर्यता, अजुता, लघुता, मुमुक्षुता, निस्मृह सेवा, संवर तथा निर्जरा आदि शुभ व शुद्ध प्रवृत्तियाँ एवं सभी सद्गुण।

समता सुख का तो ममता दुख का मूल है। प्रभु से पूछा गया -“किं सुख दुख मूलं ?” उत्तर में प्रभु ने फरमाया -“समता ममताभिधानः।”^२ अर्थात् समता और ममता उनके मूल हैं। वस्तुतः चिंतन करने पर स्पष्ट होता है कि आनंद और सुख का लूख संतोष है, और संतोष का मूल समता है। इसी तरह दुःख व शोक का मूल मोह है, मोह का मूल लोभ और लोभ का भी मूल ममता है। इसी कारण से सुख का मूल समता भी दुःख का मूल ममता बताया गया है।

ममता से हानियाँ -

(१) मोक्ष मार्ग की प्राप्ति न होना - जब तक आत्मा से ममता (तीव्र आसक्ति) न हटे, मोक्ष मार्ग की उपलब्धि नहीं होती। अनंतानुबंधी कषाय तथा दर्शन मोहनीय, ममता की प्रमुख जड़े हैं। जब तक ये विनष्ट न हो, तब तक जीव कितना ही ज्ञान ध्यान, जब तप व त्याग वैराग्य की साधना कर ले, उसे धर्म की प्रथम भूमिका ‘सम्यक्त्व’ ही प्राप्त नहीं होती है।

(२) प्राण विनाशक होना - अनेक प्राणी तीव्र ममतावश आत्मघात कर लेते हैं। कभी आत्मघात की इच्छा न होते हुए भी तीव्र मुचर्छा होने से अकाल मृत्यु हो जाती है। उदाहरणार्थ एक बार एक ईसाई अध्यापक के नाम पर पाँच लाख की लाटरी खुली, जिसकी जानकारी उसके पुत्र को मिली पुत्र समझदार था। उसने विचार किया इसकी सूचना एक दम पिताजी को देना, उनके लिए घातक भी हो सकता है। वह धर्म पादरी के पास पहुँचा। पादरी ने कहा -तुम चिंता मत करो। इनाम किरतों में लेना है। मैं इसकी सूचना तुम्हारे पिताजी को इस तरह दूँगा कि वे इस खुश खबरी को सुनकर भी आश्चर्य में न पड़े।” पादरी स्कूल जाकर उस अध्यापक से मिला। पादरी ने कहा -तुम्हारे नाम एक लाख की लाटरी खुली है। अध्यापक ने प्रसन्न हो कहा -यह सही है तो पचास हजार मैं तुम्हें दे दूँगा।” पादरी पुनः बोला -लाटरी दो लाख की खुली है।” अध्यापक ने कहा -“तो एक लाख तुम्हें दूँगा।” इस तरह पादरी ने क्रमशः तीन चार व अंत में पाँच लाख का इनाम खुलने का कहा तो अध्यापक ने भी क्रमशः डेढ़, दो व अंत में ढाई लाख पादरी को देने की घोषणा कर दी। पादरी जिसे पाँच रुपये मिलने की भी आशा न थी, यकायक ढाई लाख रुपये मिलने की घोषणा सुन इतना खुश हुआ कि उसका हृदय प्रसन्नता से बढ़े रक्त चाप को बर्दाश्त नहीं कर सका और दूसरों को समझाने वाले पादरी महोदय वहीं ढेर हो गए। इस प्रकार “ममता” अनचाहे में भी प्राण हरण कर लेती है।

(३) सर्व दुखों का मूल कारण - प्रभु महावीर ने सर्व दुखों का कारण पारिग्रह (मूर्च्छा) को बताते हुए, उसे मांस के टुकड़े की उपमा दी है।^३ एक बार एक बगुला कसाई की दुकान से एक मांस का टुकड़ा लेकर वृक्ष पर जा बैठा, तो वहाँ कव्वे, चीलें व गिह आदि उसके पीछे पड़ गए। बगुला वहाँ से जल में चला गया तो वहाँ मगर, घड़ियाल आदि पीछे पड़ गए। बगुला परेशान होकर जल के बाहर किनारे पर आ बैठा तो वहाँ भी कुत्ते, सूअर आदि ने आ घेरा। अन्ततः उसने सारे झगड़े की जड़ मांस के टुकड़े को छोड़ दिया, तब ही वह शान्ति और सुख चैन से रह सका।

इस उदाहरण से सुस्पष्ट है कि जब तक धन आदि पर ममता (मूर्च्छा) की पकड़ रहेगी, जीवन में विविध दुःख और अशान्ति बनी रहेगी।

समता योग से लाभ -

(१) समता से ही चारित्र की उपलब्धि - शास्त्रकारों ने फरमाया है - 'चास्ति समभावो।'^४ अर्थात् समभाव आने पर ही चारित्र प्राप्त होता है। अमव्य जीव, मुनि का द्रव्य लिंग धारण कर गौतम स्वामी जैसी क्रिया कर लेता है किन्तु उसमें समता के अभाव से निश्चय से एक भी चारित्र नहीं होता है।

(२) समता से ही सच्ची सामायिक होना - सामायिक का मूल आधार ही समता है, कहा है-

“समता भाव धारण करे, जो देखे निज रूप।

सामायिक तेने कहे, जे, सुख शान्ति स्वरूप॥”

बिना समता, सामायिक के अन्य सभी दोषों को टाल कर विधिपूर्वक की गई सामायिक भी सच्ची सामायिक नहीं हो सकती है। सामायिक की व्याख्या में भी कहा है - 'समता सर्वभूतेषु अर्थात् समस्त प्राणियों पर समता हो। सामायिक का स्वरूप बताते हुए ज्ञानी कहते हैं -

“जो समो सव्व भूए सु, तमे थावरे सुय।

तस्स सामादयं होइ, इह केवलि भासियं॥”^५

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि सामायिक की प्राथमिक शर्त 'समता' है और बिना समता के सच्ची सामायिक नहीं हो सकती है। यह समता योग की आराधना से ही संभव है।

(३) समता सभी व्रतों का आधार है - सभी व्रत, प्रत्याख्यान, यम नियम, संयम की शुद्ध पालना समता भाव में ही संभव है। विसमता आते ही इन सबका अस्तित्व, उसी प्रकार खतरे में पड़ जाता है, जिस प्रकार समुद्र में तूफान आने पर उसमें जहाज में रहे प्राणियों का।

(४) समता से मनुष्य महान होता है - एक बार विद्वद् गोष्ठी में प्रश्न उठा कि महान कौन? उत्तर में एक ने कहा जो सर्वाधिक ज्ञानी हो। दूसरे ने कहा जो सबसे बढ़िया प्रवचन कार हो। तीसरे ने

३. सूत्रकृतांग सूत्र

४. पंचास्तिकाय १०७

५. आवश्यक निर्युक्ति, अनुयोगद्वार गा. १२८

कहा जो सबसे बड़ा त्यागी हो। चौथे ने कहा जो सबसे बड़ा तपस्वी हो। पांचवे ने कहा जिसके सर्वाधिक अनुयायी हो इत्यादि। किन्तु इन उत्तरों से सबकी संतुष्टी नहीं हुई। विद्वद् गोष्ठी में एक गीतार्थ महात्मा भी बैठे थे। उनसे सही उत्तर के लिए निवेदन किया गया। महात्मा ने सबको शान्त कर कहा 'जो राग दोसंहिं समो सपुज्जो।' ^६ अर्थात् जो राग द्वेष में सम है -जिसे कोई दस कड़वे अप शब्द कहे; फिर भी विषमता न जाये, और बदले में बीस घूट मीठे अमृत की पिलादे, वही सबमें महान है पूज्य है। महात्मा के उत्तर से सही संतुष्ट हुए। वस्तुतः जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी 'सम' रहे वह मानव महामानव होता है। प्रभु महावीर ने अपनी अंतिम देशना में फर माया है -

“लाहा लाहे सुहे दुक्खे, जीविए मरणए तहा।
समो निंदा पंससासु, समो माणा व माणंओ॥” ^७

(५) समता से सद्गति - 'जैसी मति वैसे गति के अनुसार जो मृत्यु समय में भी समता योग में रहते हैं, उनकी शुभ लेश्या होने से सद्गति सुनिश्चित होती है। जब कि ममता मूर्च्छा रखने वाले मरकार प्रायः अशुभ लेश्या में होने से तिर्यच नरक गतियों में जाते हैं।

(६) समता से अजय साधना भी विशेष फलदायक होती है - जिस प्रकार दूध के साथ घृत का योग होने से, उसका सेवन विशेष शक्ति दायक हो जाता है, उसी प्रकार साधना के साथ समता योग होने से वह भी विशेष फल- दायक हो जाती है। सामायिक हो, चाहे पूजा या त्याग तपस्या, समता योग के साथ की गई अजय साधना भी चमत्कार पैदा कर देती है। समता योग से विधि पूर्वक अरिहंत प्रभु को किया गया एक वंदन भी संसार परित्त करने का हेतु बन जाता है। इस संबंध में महान अध्यात्म योगी श्रीमद् देवचन्द्र जी ने प्रभु संभवनाथ की स्तुति करते हुए कहा है -

“एक बार प्रभु वंदना रे, आगम रीते थाय।

कारण सत्य कार्य नारे, सिद्धि प्रतीति थाय॥” आगम कार भी कहते हैं -

“इक्कोवि नमुक्कारो, जिणवर व सहस्स वद्धमानस्स संसार सागराओ, तारे इ नरंवाणारि वा।” ^८

(७) बिना समता मुक्ति नहीं - प्रभु ने फरमाया है कि 'समयाए बिण मुक्खो, न हु हुओ कह वि न हु होई।' ^९ अर्थात् बिना समता योग आराधना कभी किसी आत्मा को मुक्ति नहीं हुई और न होगी।

(८) आत्मा से परमात्मा हो जाता है - आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा पद प्राप्त करने का मूल मार्ग समता योग साधना है समता से अवगुणों का विनाश और सद्गुणों का विकास होता है। फलतः शनैः-शनैः आत्मा का परमात्मा स्वरूप प्रगट हो जाता है। एक उर्दू कवि ने भी कहा है -

६. दशवै. ९/३/९१

७. उत्तर अ १९ गा. ९०१।

८. देवचंद्रजी चौबीसी सी

९. प्रकीर्ण गाथाओं से।

१०. सामायिक प्रवचन पृ. ७८।

“जब तेरी बद फेलियो का खातमा हो जायगा।
तब तेरी यह आत्मा ही परमात्मा हो जाएगा।”

महान विद्वान आचार्य हरिभद्र सूरि ने भी कहा है -

“संयबरो वा, आसक रोवा, बुद्धो वा तहे व अन्नोवा।
समभाव भावि अप्पा, लहह मोबरवं न संदेहो॥”

अर्थात् चाहे श्वेताम्बर हो चाहे दिगम्बर चाहे बौद्ध हो या अन्य समता योग से भावित आत्मा ही मोक्ष प्राप्त करता है यह निस्संदेह सत्य है।

(९) समता योग में सच्चे सुख की उपलब्धि - समता धारण से तत्क्षण सच्चे सुख की उपलब्धि होती है। म. कबीर ने कहा है -

“जीवित समझो जीवित बूझो, जीवित मुक्ति वासा।
मुए मुक्ति गुरु लोभी बतावे, झूठा दे विश्वासा॥”^{११}

समता साधना से इसी भव में और वह भी बाद में नहीं तत्काल साधना के उसी क्षण मुक्ति के सुख की साधक अनुभूति कर लेता है। इसलिए यह समता योग धर्म उधार धर्म नहीं नगद धर्म है। जब भी समता में आओ तभी सुख पाओ। समता में अद्भुत शक्ति है। सामान्यतः सुखी वही होते हैं, जो पुण्य शाली होते हैं। किन्तु पुण्य विहीन दुखी आत्माएं भी, समता धर्म को अपना कर, पुण्य शालियों से भी अधिक सुखी हो जाती है। उसके सुख के आगे चक्रवर्ती और इन्द्र के सुख भी फीके पड़ जाते हैं। कहा है -

“तीन दूक को पिन के, रोठी किन भाजी बिन जूना।
जो सुख हो समभाव का, इन्द्र बिचारा कूना॥”

समता योग से प्राप्त सुख अनुत्तर होता है। उसके आगे संसार के अन्य सारे पौद्गलिक सुख तुच्छ है। कहा है -

“तन सुख, मन सुख, मान सुख, भले अर्थ सुख होय।
पर समता सुख परम सुख, ऐसा सुख ना कोय॥”

समता योग साधना का महत्व -

“समता से सुख स्वर्ग मोक्ष का, जो समता वह पाता है।
समता की ज्योति पाकर के, पापी भी तिर जाता है॥
समता अनुपम देन प्रभु की, यह चिन्तामणि मोती है।
इस भूतल पर स्वर्ग देख लो, जहाँ समता की ज्योति है॥”^{१२}

११ म. कबीर के पदों से।

१२. स्वरचित मुक्तक।

वस्तुतः संसार में समता से बढ़कर अन्य कुछ नहीं है।

समता योग साधना के व्यवहारिक उपाय - हम कथनी तो करें, पर तदनुकूल करणी न हो, ज्ञान तो हो, पर आचरण न हो, तो ऐसी कथनी और ज्ञान का क्या महत्व होगा? हम विद्वान होकर समता योग का तलस्पर्शी विवेचन तो करें, परंतु हमारे जीवन में समता न आवे तो वह विद्वता क्या हमारे लिए भारवाही गर्दभ के भार जैसी न होगी। कहा है -

“कुरान बाइबिल सब पढ़े चारों वेद पुरान।
जो समता आई नहीं तो सब फोकेट ज्ञान॥”

अतएव हमारे जीवन में समता कैसे आवे, हम समता योग के सच्चे आराधक और साधक कैसे हों, इस पर हमें गंभीरता से चिंतन करना है। यहाँ इसी हेतु कुछ महत्वपूर्ण व्यवहारिक उपाय जिनसे जीवन में समता योग की उपलब्धि हो सकती है। प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ये ऐसे अनुभूत उपाय हैं, जिनसे स्वयं लेखक लाभान्वित हुआ है, और मुझे पूर्ण विश्वास है, कि जो भी मुमुक्षु आत्मारथी इन पर विशेष चिंतन मनन कर जीवन में अपनावे, वे समत्व भाव की साधना में निश्चित रूप से सफल होंगे।

(१) गुण ग्रहण की रुचि - संसार में कोई जीव या अजीव वस्तु, ऐसी नहीं, कि जिसमें कोई गुण न हो। हम जिसके भी सम्पर्क में आवें, उससे गुण ग्रहण करने का सतत प्रयास रखें। जैसे हंस, नीर क्षीर में से, नीर को छोड़ क्षीर ग्रहण कर लेता है, वैसे ही हम भी नीर क्षीर विवेक की दृष्टि रख, दोषों को छोड़ते हुए, जो भी गुण मिले उसे ग्रहण करने की वृत्ति जाग्रत करें। गुण दर्शन और गुण ग्रहण से सहज ही परस्पर प्रेम और सौहार्द का वातावरण बनता है, जो विषमता को मिटा समता की अभिवृद्धि करता है।

(२) स्वदोष दर्शन - हमारे में समता न आने का एक प्रमुख कारण है, दूसरों से वैर विरोध व वैमनस्य रखना। हमें दूसरों के सूक्ष्म दोष भी बहुत बड़े नजर आते हैं, और अखरते हैं। जब कि स्वयं में रहे बड़े-बड़े दोष भी न तो नजर आते हैं, और न वे बुरे लगते हैं। एक कवि ने कहा है -

“गैर की आँख का, तिनका भी नजर आता है।
अपनी आँख का, नजर आता नहीं शहतीर भी॥”

पर निंदा से बचने के लिए स्वामी चिदानंद जी ने बड़ा सुंदर कथन इस प्रकार कहा है - ‘अंधकार को अपशब्द कहने की अपेक्षा, स्वयं पहिले अपने हाथ में दीपक उठा ले, तो सर्वत्र प्रकाश होगा और अंधकार स्वयं कूच कर जायेगा।’ हम स्वयं अपने दोषों को, विवेक के आलोक में पुनः-पुनः देखने का अभ्यास करें। जैसे -

“कितनी त्याग सका पर निंदा, कितना अपना अंतर देखा।
कितना अपने पुण्य पाप का, रख पाया हूँ अब तक लेखा॥
लोभ मोह मद कितना छोड़ा, नाता कम क्रोध से तोड़ा।
विषय वासनाओं से हटकर, कितना निज से निज को जोड़ा॥”

इस संबंध में ही महाकवि, भक्त सूरदास जी का यह पद भी पुनः-पुनः चिंतनीय है -“भो सम कौन कुटिल खल कामी।” इस प्रकार , स्वदोष दर्शन से दूसरे के दोष व छिद्र देखने की कुत्सित वृत्ति का संक्रमण हो जायेगा वही हमारे लिए सदवृत्ति बनकर उपकारक हो जायेगी। इससे दूसरों का तिरस्कार करने की आदत बदल जायेगी। जिससे परस्पर ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, बैर, की भावना खतम होकर महज प्रेम व समता का वातावरण निर्मित हो सकेगा। कुछ विचारक स्वदोष दर्शकपदों को हीन भावना उत्पन्न करने वाले कह कर, उन्हें हेय बताते हैं। किन्तु यह उचित नहीं है। वस्तुतः ऐसे पदों के बोलने से हमारे अंतर में रहे अहंकार और ममकार पर चोट पड़ती है, जिससे ऐसे पद अच्छे नहीं लगते। ऐसे पदों के बोलने से कषाय घटती है और नम्रता सरलता लघुता व समता जीवन में विकसित होती है।

(३) सर्व भूत आत्मीय भावना - सब प्राणियों में अपने समान आत्मा है, ऐसा निश्चय कर सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना का विकास करें। जो जीव अजीव द्रव्यों के स्वरूप को जानता है वह विद्वान है, किन्तु जो स्वरूप जानने के साथ अन्य सभी जीवों के साथ आत्मीय भाव रखता है वह पंडित है। कहा भी है -

“मातृवत् परदारसु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्व भूतेषु, य पश्यति स पंडितः॥”^{१३}

हम मात्र विद्वान ही न बने किन्तु समता योग साधना के उपासक हो सच्चे पंडित भी बने। समता भावना का प्रेरक एक पद प्रस्तुत है -

“कोई जीव नहीं जग मांहि, जो रहा सगा नहीं तेरा।
फिर क्यों करे किसी से बैर, दो दिन का यहाँ बसेरा।
दो दिन का यहाँ बसेरा, सब ना -समझी का फेरा।
समता दीप जला हो जाय, जीवन का दूर अंधेरा॥”^{१४}

(४) सरल सादा व संयमी जीवन - सादा जीवन उच्चविचार उक्ति के अनुसार समता साधकों को अपना जीवन बाहर से सादगी व संयमित और अंतर में सरलता युक्त बनाना आवश्यक है। जिनका जीवन सादा, सरल व संयमित नहीं वे समता दर्शन के पात्र नहीं हो सकते। तन, मन, वाणी व धन चारों पर नियंत्रण आवश्यक है। तन के असंयम से व्याधि मन के संयम से आधि, धन के असंयम से उपाधि और वाणी के असंयम से विवादी स्थितियाँ बन जाती हैं। ये सब असमाधि और विषमता पैदा करती हैं। इसके विपरीत सरल सादी संयमी दशा जीवन में समाधि लाती है।

(५) सहिष्णुता और मधुर व्यवहार - सज्जन दुर्जन शत्रु मित्र सभी के प्रति हमारा व्यवहार उदार एवं सहृदयता पूर्ण होना चाहिए। ‘सव्य जग तू समयाणु पेही’^{१५} के अनुसार सर्व जगत को ‘वसुदैव कुटुम्बकम्’ वत् समझकर विरोधियों के प्रति भी उदारता व प्रेम का व्यवहार करे। ‘वचने का दारिद्रता?’ के

१३. चाणक्य नीति १२/१३

१४. स्वरचित मैत्री भावना पद से।

१५. सूत्र कृतांग २/३/९३।

अनुसार हमारी भाषा हल्की या दूसरों को अखरने की भी न होना मधुर एवं संयत हो। जैन धर्म गुण पूजक है, व्यक्ति पूजक नहीं। अतएव व्यक्ति पूजक होकर परस्पर कटुता न लावें। विभिन्न परम्परा वालों को भी परस्पर मिलने पर समुचित आदर दिया जावे। यदि लम्बी मुहपति वालों के धर्म स्थान में चौड़ी मुहपति वाले आते हैं या बिना मुहपत्ती बाधने वाले आते हैं तो उनकी उपेक्षा न की जावे। म. महावीर के सब अनुयायी होकर यदि एक साथ एक स्थान पर प्रेम से बैठ भी न सके तो यह कैसी समता होगी? इतिहास साक्षी है कि म. पारस नाथ व म. महावीर की आचार परम्परा में भेद होते हुए भी दोनों के ही साधक जब भी मिलते तो एक दूसरे के साथ योग्य बहुमान देते व प्रेमपूर्वक आदर सत्कार करते थे। समता दर्शन का साधक कभी अपने उपास्य के प्रति भी कदाग्रही नहीं होता। उसका किसी के प्रति कोई पक्षपात नहीं होता है। वह जानता है कि पक्षपात से रागद्वेष बढ़ता है, और रागद्वेष 'रागोय दोसो वियकम्म बीय' ^{१६} के अनुसार कार्य बंध के बीज हैं। जो वीतराग हो गये वह चाहे महावीर हो या ब्रह्मा, विष्णु या अन्य कोई, वे सब उसके उपास्य देव हैं। उसकी मान्यता होती है

“भव बीजांकुर जनना रागा द्या, क्षय मुपा गता यस्य।

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरौ, जिनो वा नमस्तस्मै॥” ^{१७}

(६) विवेक जाग्रत रखें - अंधकार नहीं आता है जहाँ सूर्य का प्रकाश न हो। विषमता रूपी अंधकार जीवन में न आवे इस हेतु सदैव विवेक रूपी सूर्य को लुप्त न होने दें। विवेक के आलोक में स्वयं से स्वयं की पहिचान करें, जिससे भेद ज्ञान प्राप्त हो सके। भेद ज्ञान प्राप्त होने पर ही सच्ची समता की अनुभूति होती है। उस अनुभूति का रस कैसा अनुपम और विलक्षण होता है, उसका एक नमूना तत्वज्ञ पं. बनारसी दास जी के शब्दों में प्रस्तुत है -

‘भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, चित्त भयो जिम शीतल चन्दन।

केलि करे शिव मार्ग में, जग मांहि जिनेश्वर के लघुनन्दन॥

सत्य स्वाभाव सदा जिनका, प्रगट्यो अवघात मिथ्यात्व निकंदन।

शांत दशा जिनकी पहिचान, करे जोरि बनारसी वंदन॥”

भेद विज्ञान जो समता योग की जननी है कितना महान है जिसे पाकर जीव जिनेश्वर का लघुनंदन हो जाता है।

जाग्रत विवेकवान दूसरे गिरते हुआओं को भी बचा लेता है। एक बार एक सेठ को मरणांतिक भयंकर वेदना हुई। चिकित्सकों ने आश्चर्य किया कि २२० डिग्री ज्वर होते हुए भी सेठ जिंदा कैसे है? तभी एक महात्मा को सेठ को मंगलिक देने को जिससे शान्ति मिले, बुलाया गया। महात्मा ज्ञानी थे। उन्होंने ताड़ लिया कि सेठ की धन में मूर्च्छा होने से, उसके प्राण धन में अटक रहे हैं। महात्मा ने सेठ को मंगलिक सुना कर एक सुई दी, और कहा “आप इसे सम्हालकर रखे। परलोक जावें तो साथ लेते जावें। मैं परलोक में आऊंगा तब आप से ले लूंगा।” सेठ ने विचार कर कहा “महात्मन मेरा शरीर ही

१६. उतरा. ३२/७

१७. आचार्य हरिभद्र सूरिकृत

साथ न जावेगा तो इसे कैसे साथ जे जाऊ?” महात्मा ने कहा “जब आप सुई साथ नहीं ले जा सकते तो फिर सारे धन को साथ ले जाने की ममता से क्यों प्राण अटका कर तकलीफ पा रहे हैं?” बस सेठ का विवेक जगा और महात्मा से संधारा ग्रहण कर लिया। धन पर मूर्च्छा हट जाने से, तत्काल सेठ के प्राण निकल गए और समाधि मरण प्राप्त कर लिया।

(७) ममता विहीन अनासक्त वृत्ति - समता उपलब्धि हेतु जीवन को निर्मम और अनासक्त बनाना भी आवश्यक है। ममता सर्व दुखों और विषमताओं की जननी है। ममता की पाश, पाँच ककार से निर्मित है वे हैं कंचन, कामिनी, कुटुम्ब, काया व कीर्ति। प्राणी इस पाश से बंधकर सदा व्याकुल और चिंताओं से ग्रसित रहता है। इस पाश से मुक्ति होने के लिए ज्ञानियों ने बारह भावनाओं का ब्रह्मास्त्र बताया है। ये बारह भावनाएं इस प्रकार हैं - (१) अनित्य (२) अशरण (३) संसार (४) एकत्व (५) अत्यत्व (६) अशुचि (७) आश्रय (८) संवर (९) निर्जरा (१०) लोक (११) दुर्लभ बोधि व (१२) धर्म भावना।^{१८}

ये बारह भावनाएं वैराग्य वर्धक होने से ममता पाश को बहुत शीघ्र काट देती है, जिससे इनका नित्य पुनः-पुनः चिंतन करना चाहिए।

(८) शुभ ध्यान से प्रमोदित रहे - विषमता न पनपे इस हेतु सदा एक सूत्र याद रखो ‘कर्म करते रहो, मुस्कराते रहो।’ चित्त को सदैव शुभ में धर्म ध्यान लगाए रखो और उदास न रहो। आर्त व रौद्रध्यान समता के लिए जहर है, जिससे बचते रहो। अशुभ ध्यान प्रायः दुख या प्रतिकूलता या अभावग्रस्त स्थिति में होता है, जिससे बचने के लिए निम्न चिंतन करें -

- (i) जो भी दुख या प्रतिकूलता या अभावग्रस्तता है, वह स्व कर्म जनित है, पूर्व कर्मों का ऋण है, जिसे चुकाना ही है।
- (ii) अपने से अधिक दुखियों को देखो-इससे बड़ी राहत और संतोष मिलेगा।
- (iii) जो अशुभ कर्म बांधे हैं, उन्हें भुगतने ही पड़ेंगे। सम्भावों से वे क्षय हो जाते हैं, जब कि विषम भावों से और नए बंध जाते हैं। ज्ञानी कहते हैं -

“जो जो पुद्गल स्पर्शना तेते, निश्चय होय।

ममता समता भाव से, कर्म वंधक्षय होय॥”

- (iv) जब शुभ नहीं रहा तो यह अशुभ भी रहने वाला नहीं है। रात्रि के घोर अंधकार के बाद भी दिन आता ही है, अतः अशुभ में अधीर न होवे।

(९) असद् व्यवहार से दूर रहें - सुख शान्ति आत्मा की सहज स्थिति होने से वह बड़ी सस्ती और सुलभ है, और दुःख अशान्ति के साथ अनेक झंझटे व परेशानियाँ जुड़ी होने से वह बड़ी महंगी पड़ती है। किन्तु फिर भी हम व्यर्थ में दूसरे के प्रति ऐसा व्यवहार जो स्वयं हमें पसंद नहीं करके परस्पर कटुता, क्षोभ व अशान्ति पैदा कर लेते हैं। अतएव नीति के इस सूत्र को सदा ध्यान में रखें - “आत्मतः प्रतिकूलानि, परेषां न समा चरेत्।” जो व्यवहार अपनी आत्मा को अनुकूल नहीं, वो व्यवहार असद् होने से दूसरों के प्रति भी न करें।

(१०) स्वाध्याय सत्संग का आलम्बन रखें - ज्ञानियों ने संसार को विषवृक्ष कहते हुए उसके दो अमृत फल बताए हैं। वे हैं स्वाध्याय और सत्संग। इस विषम काल में समता साधकों के लिए ये दो बड़े आलम्बन हैं। जो स्वाध्याय और सत्संग में मन को रमा देता है, उसे फिर ममता अपने मोह जाल में नहीं बांध पाती है। कारण उसे अंतर में रहे परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है फिर उसे संसार के सभी नजारे फीके लगने लगते हैं। कविवर रहीम खान ने इसी संबंध में कहा है -

“प्रीतम छवि नैना बसी, पर छवि कहा सुहाय।
रहिमन भरी सराय लखि पथिक आप फिर जाय॥”

(११) चार उत्तम भावनाओं की पालना - समभाव में अवस्थित रहने हेतु निम्न चार भावनाओं की पालना बहुत उपयोगी है। ये उत्तम भावनाएं इस प्रकार हैं।

“सत्त्वेषु मैत्री, गुणीषु प्रमोदं, विवर्ष्टेषु जीवेषुकृपा परत्वम्।
माध्यस्थ भावों विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु दैवः॥” १९

संसार के समस्त जीवों के प्रति सब सुखी हो, सबका कल्याण हो और दुःख की मूल ऐसी पाप वृत्ति को छोड़ें ऐसी हित भावना रखना प्रथम मैत्री भावना है। जो अपने से अधिक गुणी हैं, उनका यथोचित सत्कार सम्मान करना, उनके दर्शन पाकर जैसे सूर्यमुखी कलल सूर्य देख खिल उठता है, वैसे प्रमोदित हो जाना दूसरी प्रमोद भावना है। जो दुःखी और पीड़ित हैं, वे सुखी और स्वस्थ हों व उनके प्रति सहानुभूति रखना, तीसरी करुणा भावना है। जो दुर्जन हैं, अपात्र हैं, ऐसे जीवों के प्रति भी अवैर विरोध, तटस्थ वृत्ति रखना चौथी माध्यम भावना है। ये चार उत्तम भावनाएं अनंत सुख का खजाना हैं। किन्तु महान आश्चर्य है, कि हम इनसे न जुड़कर अनंत दुःख का खजाना, क्रोध, मान, माया, लाभ से जुड़े हुए हैं। तत्त्ववेत्ता श्रीमद् राजचंद्रजी ने इस संदर्भ में जो कहा है वह बड़ा मननीय है -

“अनंत सुख नाम दुःख, त्यां रही न मित्रता।
अनंत दुःख नाम सुख, प्रेम त्यां विचित्रता॥
उपाड़ न्याय नेत्र ने निहाल रे निहाल तु।
निवृत्ति शीघ्र मेव धारी, ते प्रवृत्ति बाल तू॥”

आगमकार भी कहते हैं - ‘खल मेलू सोमवा, बहुकाल दुसवा’ २० जो विजय कायिक सुख देकर बहुत काल दुखदे वो छोड़ने योग्य है।

(१२) समता का अनंत स्रोत उत्तम क्षमा धारण करें - कटु वचन व मरणांतिक कष्ट देने पर भी अनिष्ट कर्त्ता को मात्र निमित्त मानकर उस पर तनिक क्रोध या द्वेष भी न आवे, यह उत्तम क्षमा है। यह जीवन में कैसे आवे, इस हेतु यहाँ तीन आदर्श उदाहरण प्रस्तुत हैं -

१९. कर्तव्य कौमुदी पृ. २ श्लोक ३५-५५ तथा तत्त्वार्थ सूत्र ७/६

२०. दशवै सूत्र।

(i) **मुनि क्षमा सागर जी** - पू.आ.श्री श्रीलालजी म.सा. के एक शिष्य से एकबार एक पात्रा टूट गया। टूटेपात्र को जोड़ने हेतु मुनि चौथमल जी म.सा. ने अपने पास रख लिया। आचार्य प्रवर ने यह टूटा पात्रा चौथमल जी म.सा. के पास देख, उन्हें खूब उपालम्भ दिया। और कहा तुमने लापरवाही से यह पात्र तोड़ दिया। पात्रे बड़े आरंभ से बानते हैं और प्रसुक पात्रे सर्वत्र सुएम भी नहीं होते। मुनि चौथमल जी सब उपालम्भ सुनकर भी शान्त रहे, और क्षमता मांगते रहे। तभी जिस मुनि से पात्रा टूटा था, वे गोचरी लेकर लौटे। जब आचार्य श्री को मुनि चौथमल जी को उपालम्भ देते सुना, तो वे हाथ जोड़कर बोले पात्रा तो मुझ से टूटा है, उपालम्भ चौथमल जी म.को क्यों दिया जा रहा है? आचार्य प्रवर ने तब मुनि चौथमल जी से शान्त रहकर क्षमा मांगने का कारण पूछा तो वे बोले गुरुदेव, मैं शान्त न रहता तो आप से अनमोल शिक्षाएं कहाँ सुन पाता? आचार्य प्रवर ने तब उनका नाम मुनि क्षमासागर रख दिया।

(ii) **आचार्य मिक्खु** - एक बार आचार्य मिक्खुसे चर्चा करते एक अन्य परंपरा के युवक ने क्रोधित हो उनके मस्तक पर ढोला मार दिया। इस पर वहाँ बैठे आचार्य के भक्तगण उत्तेजित हो युवक को मारने को तत्पर हो गए। किन्तु आचार्य देव ने सबको शान्त करते हुए स्वयं बिना उत्तेजित हुए बड़ी मधुरता से कहा -कोई नाराज न होवें। जब दो पैसे की मटकी भी बजाकर जांच कर लेते हैं, तो इस युवक बंधु को भी गुरु बनाना होगा, जिसके लिए परीक्षा ले रहा है। आचार्य के इन शब्दों ने जादू जैसा असर किया। जिस युवक ने आचार्य पर हाथ उठाया, वही उनके चरणों में गिरकर शिष्य बन गया।

(iii) एक बार एक संत ने कुछ भक्तों को हाथों में लाठियाँ, तलवारें लेकर जाते देखा। पूछने पर बताया गया कि दूसरे गाँव के कुछ लोगों ने उनकी मूर्ति तोड़दी है, जिससे वे भी उनका मंदिर तोड़ने जा रहे हैं। संत ने कहा -भक्तों को क्रोध न कर शान्ति से काम लेना चाहिए। भक्तों ने कहा यह हमारा सात्विक क्रोध है। संत बोले यह तो शैतान की भाषा बोल रहे हो। क्रोध कभी सात्विक नहीं होता। भक्तों ने पूछा शैतान की भाषा का क्या मतलब? कृपाकर समझावें। संत ने उन्हें प्रेम से बिठाया और कहा ध्यान से सुनो शैतान की भाषा समझाता हूँ।

एक बार एक महात्मा नौका में जा रहे थे। साथ में कुछ लोग उनको छेड़ते जा रहे थे। महात्मा ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। सायंकाल होने से महात्मा ध्यानस्थ हो प्रार्थना में बैठ गए। तब उन लोगों ने अच्छा मौका समझ महात्मा पर कंकर, जूते, आदि मारने लगे। तभी आकाश वाणी हुई -‘महात्मन, तुम कहो तो मैं नांव उलट दूँ।’ यह सुनते ही शैतानी करने वाले सब महात्मा से क्षमा मांगने लगे और बचाने की गुहार करने लगे। महात्मा ने ध्यान खोला और आकाश की तरफ मुंह कर बोले-प्यारे! यह कैसी शैतानी की भाषा बोल रहे हो? यदि उलटना ही है, तो क्यों न इनकी बुद्धि को उलट दो। तभी पुनः आकाश वाणी हुई -महात्मा, आपने ठीक पहिचाना, जो आपने सुनी वह शैतान की भाषा ही थी। आप धन्य हैं, जो आप को सताने वालों का भी भला चाहते हैं।

शैतान की भाषा, और महात्मा की अद्भुत क्षमा का यह उदाहरण सुनकर, सभी भक्तगण, जो मंदिर तोड़ने जा रहे थे, शान्त हो गए और वापिस अपने गाँव को लौट गए। इस प्रकार क्षमा के उदाहरण मात्र से एक बड़ा संघर्ष टलकर झगड़ा शान्त हो गया। वस्तुतः क्षमा समता का अनन्य स्रोत है, जिसे क्षमता साधकों को, जीवन में अपनाना बहुत आवश्यक है।

उपसंहार - अंत में निवेदन करना चाहूंगा कि हम आकृति से तो मानव बन गए। पुण्योदय से अनुकूल साधन सामग्री भी पर्याप्त मिली है। किन्तु प्रकृति से मानव बने या नहीं? यदि मानवता न आई तो फिर पशु में वह हमारे में क्या अंतर रहा? गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। मनुष्यता का कुल गुण व आधार समता है। यदि समता जीवन में आ गई तो समझो जीवन सार्थक हो गया, धन्य हो गया। सभता योग्य शब्द को उलटा कर पढ़े तो तामस गयो होता है? जिसका अर्थ है -क्रोध, विषमता में गयो समता प्राप्त करने के लिए तामस को छोड़ना ही होगा। इस हेतु हमें स्वशासित हो समता के पोलक सद् गुण शान्ति संतोष, सहिष्णुता, क्षमा आदि को अपनाना ही होगा। हमारा धर्म और कर्म आचार और विचार सभी समता योग साधनासे समता रूप हो, इस भावना का प्रेरक एक पद कह कर विषय पूर्ण करता हूँ -

धर्म है समता हमारा कर्म समता मय हमारा।
 साम्य योगी बन हृदय से स्रोत समता का बहावे।
 भावभीनी वंदना, महावीर चरणों में चढ़ावें।
 शुद्ध ज्योतिर्मय निरामय, राय अपने आप पावें॥

• डागा सदन, संघपुरा, टोंक (राज.)

ज्ञानी पुरुष अपने मन को तथा अपनी इन्द्रियों को अपने नियंत्रण में रखते हैं। अपने मन, वचन तथा काय के अहिष्ट व्यापारों को रोककर अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनाते हैं। वे अपने सत्संकल्प तथा अपने लक्ष्य से कदापि विचलित नहीं होते। किसी भी प्रकार का उपसर्ग और परीषट क्यो न आए, वे अपने विचारों का तथा पथ का परित्याग नहीं करते। उनका सम्यग्ज्ञान ही उनके उत्थान का कारण बनता है। इसी कारण संसार के सभी शास्त्र ज्ञान की महिमा का वर्णन करते हैं।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि-

स्वाध्याय का सरल स्वाध्याय

• श्री लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'

उपक्रम - स्वाध्याय का महत्व पढ़े-लिखे और बिना पढ़े-लिखे, सभी व्यक्तियों के लिये समान रूप से है फिर भी श्रोता की अपेक्षा वक्ता का और प्रश्न पूछने वाले की अपेक्षा उत्तर देने वाले का महत्व उतना अधिक है कि जितना भी शक्य और सम्भव है। यदि श्रोता न हो तो वक्ता किस के लिए प्रवचन करें? और वक्ता नहीं हो तो श्रोता किससे-किसके प्रवचन सुने? स्वाध्याय के आधार-भूत वक्ता और श्रोता का सम्बन्ध तो रोटी-दाल जैसा है पर कभी-कभी परिस्थिति विशेष में वक्ता श्रोता और श्रोता वक्ता भी बन सकता है। अनुबन्ध इतना है कि वक्ता और श्रोता दोनों को विषयविद और वक्तृत्व कलाविद होना चाहिए। यह परम प्रसन्नता की बात है कि जैन ग्रन्थकारों ने वक्ता और श्रोता के सद्गुणों और दुर्गुणों की ओर भी संकेत किया है पर यदि यह कहा या लिखा जावे कि आज के समाज में अच्छे वक्ता और श्रोता का अभाव सा है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। धार्मिक प्रवचन तो वैसे ही हाशिये पर आ गए हैं जैसे साप्ताहिक आ गया और राजनीति साहित्य सद्गुरु धर्म-क्षेत्र में छा गई है। प्रवचन पर वचन हो गए। हमें एक श्रेष्ठ वक्ता और श्रोता बनने के लिए न केवल स्वाध्याय का सरल स्वाध्याय करना होगा बल्कि स्वाध्याय के विषय को भी बखूबी समझना होगा और पठित विषय का दैनिक जीवन में प्रयोग करके जीवन के धरातल को उन्नत और उज्ज्वल भी बनाना होगा। वक्ता और श्रोता बनने के लिए उत्साह-जिज्ञासा, धैर्य-सत्संग, बुद्धि-युक्ति तो चाहिए ही साथ ही श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र्य, देव-शास्त्र-गुरु की पहिचान की शक्ति और उनमें अनुरक्ति तथा उन जैसी प्रवृत्ति एवं संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति भी चाहिए। महज अन्तरात्मा की अनुभूतियों की, अपनी सुनिश्चित भाषा शैली भाव-भंगिमा में बोलने से काम नहीं चलेगा बल्कि जन साधारण की समझ में आने लायक विषय-चयन, भाषा-शैली, उचित उदाहरण तर्क-विज्ञान का भी सहारा लेना होगा। बात तो संयुक्तिक सारगर्भित होगी ही पर उसे सर्वथा सत्य या परम सत्य मनवाने का पूर्वाग्रह त्यागना होगा। यदि हम धार्मिक स्वाध्याय के सन्दर्भ में कुछ लौकिक प्रसंग भी दें और अन्य धार्मिक प्रकरणों में समानान्तर सूर्य सत्य सिद्धान्तों को लेकर तुलनात्मक अध्ययन-अनुभव अध्यास करें तो वक्ता और श्रोता का ज्ञान सुविकसित होगा तथा वक्ता का श्रोताओं पर आकर्षक प्रभाव पड़ेगा यानी स्वाध्याय सफल होगा। स्वाध्याय, उस सत्संग का मूलधार है जिसके कारण रत्नाकर सद्गुरु ठहरे आदि कवि महर्षि वाल्मीकि बन सके थे और विद्युच्चोर-अजन चोर भी निर्ग्रन्थ होकर लोक में प्रतिष्ठा पा सके थे।

ज्ञान-ज्ञानी जननी - जिस ज्ञान के बिना मुक्ति श्री नहीं मिलती और जिस ज्ञान की सभी धर्मों के आचार्यों ने सराहना की उसी ज्ञान के विषय में 'छहढाला' के सुकवि पंडित दौलतराम जी ने प्रस्तुत पद्य लिखकर गागर में सागर ही भर दिया है -

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण। इह परमामृत जन्म जरामृत रोग निवारण॥

चूंकि ज्ञान से बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है, अतएव वह सुख का मूलभूत कारण है। यदि लोक में कुछ परम अमृत है तो वह ज्ञान है, जो जन्म और जरा तथा मरण को मिटाने में समर्थ है। अकल बड़ी या भैंस इस कहावत को इसमें निहित वास्तविक सत्य आशय को भला कौन नहीं जानता? और मानवीय जगती उसके बल और धन से बहुत बड़ी है, वह तो अतीत से आज तक सूर्य सत्य ही बना है। अन्ये आदमी के लिए सूरदास सदृश प्रज्ञा चक्षु शब्द का प्रयोग भी आपने सुना होगा और प्रयोग किया भी होगा तथा उसकी उपयोगिता पूछने पर किसी विद्वान ने आपको यह भी बताया होगा कि चर्म चक्षु की अपेक्षा प्रज्ञा चक्षु का महत्व उतना अधिक है कि जितना भी इस दिशा में शक्य और सम्भव है।

मुख में नाक के ऊपर स्थित बाहर से दीखने वाली आँखें यदि नहीं भी हों तो कोई चिन्ता की बात नहीं है पर यदि अन्तर में स्थित भीतरी बुद्धि और विवेक की आँख जाती रहे तो समझो कि हमारे पास कुछ भी नहीं बचा। सम्भव है आपने किसी क्रोधित पिता को अपने पुत्र से यह भी कहते सुना हो कि क्या तुम्हारे हिये की भी फूट गई है। भगवान् करे कि किसी की बाहर या भीतर की आँखें फूटें पर यदि होनहार या अमिट भाग्य की प्रेरणा से कदाचित् ऐसा अवसर आ ही जावे तो बाहर की आँखें भले फूट जावें पर भीतर की आँखें नहीं फूटें अन्यथा अनेक सूरदास, होमर, मिल्टन विश्व को सत्साहित्य न दे पावेगे। यों तो बातचीत के दौरान में सभी अपने लिये कच्चा और बच्चा नहीं बल्कि चच्चा और सच्चा ज्ञानी ही होने का दम भरते हैं और अपने ज्ञान एवं धर्म को एकदम शुद्ध परिमार्जित और परिष्कृत होने का दम्य या दावा भी करते हैं परन्तु मुझे तो इस दिशा में पार्श्वपुराण के प्रणेता भूधरदास जी का 'बोधिदुर्लभ' भावना विषयक दोहा ही अधिक उपयुक्त लगता है। कोई माने या न माने पर है सूर्य सत्य -

धन कन कंचन राज-मुख, सबहि सुलभ कर जान।

दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥

अर्थात् संसार में सब कुछ सहज सुलभ है पर वास्तविक आत्मिक ज्ञान नहीं और इसीलिए सुकरत को Know Thy self अर्थात् अपने को पहिचानो कहना पड़ा तथा वैदिक महर्षियों को भी 'आत्मानं बिद्धि' अर्थात् स्वयं को आत्मा को जानो लिखना पड़ा। जिन्होंने आत्मिक ज्ञान, आत्मबोध, आत्मानुभूति, अन्तर की आँख अथवा विवेकमयी हिताहित की दृष्टि पा ली, वे ही मेरे लेखे सच्चे ज्ञानी हैं, जिनकी भीतर और बाहर की आँखें सतर्क सक्रिय और सजग होकर एक ओर ज्ञान के आलोक में सर्वस्व या स्व तत्व देखती हैं और दूसरी ओर लोक में 'नेहास्ति किंचन' (लोक में मेरा कुछ भी नहीं) अर्थात् स्व तत्व आत्मा लेखती हैं। ऐसी एक से अधिक ईश्वरों या परमात्माओं को जन्म और जीवन देने वाली स्वाध्याय है। संक्षेप में एक वाक्य में, स्वाध्याय तो ज्ञान और ज्ञानी दोनों की ही जननी है और स्व पर भेद विज्ञान अथवा शरीर और आत्मा के रहस्य को समझाने वाली दीप-शिखा या दीपिका स्वाध्याय ही है।

शिक्षा की आदि स्रोत - यह तो बच्चे से लगा कर बूढ़े तक सभी जानते हैं कि शिक्षा अपूर्ण मनुष्य को पूर्ण बनाती है और शिक्षा के ध्येय और उद्देश्य के सम्बन्ध में शिक्षा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परामर्श लें तो वे कहेंगे कि शिक्षा का ध्येय चरित्र निर्माण है। और शिक्षा का उद्देश्य तो सदाचार की प्राप्ति है। तथा यही बात हम स्पेन्सर से पूछें तो वे हर्वाट से भी आगे जाकर कहेंगे कि शिक्षा का उद्देश्य तो सर्वतोमुखी तैयारी है। पर ये सभी बातें तो आज के युग की हैं जब हम अतीत की अपेक्षा आज करोड़ों किलोमीटर दूर आ गये हैं पर जब हम पहले मील के पहले फ्लांग के पहले कदम पर रहे होंगे

तब धर्म औ दर्शन, साहित्य और राजनीति, समाज और राष्ट्र तथा विश्व जैसे विविध विषयों की चर्चा तो सुदूर रही, भाषा और लिपि, कागज और स्याही तथा कलम जैसी सहज सुलभ चीजों का अभाव रहा होगा और तब मानवीय जीवन को एक अविच्छिन्न संघर्ष कहने वाली जो भावना रही होगी वही स्वाध्याय शिक्षा का आदि स्रोत होगी और वही उस समय के व्यक्ति और समाज के अलिखित अध्ययन, अनुभव, अभ्यास की मूलभूत प्रेरणा रही होगी।

संक्षेप में आज के युग में जितने भी विविध विषय हैं, वे सब एक से अधिक वर्षों के स्वाध्यायों और परीक्षणों के परिणाम हैं। विचार के धरातल में स्वाध्याय ही शिक्षा का वह आदि स्रोत है, जिसने मानव को योग्यतानुसार आगे बढ़ाया और बार-बार सिखलाया कि आदमी, अगर तू आदमी है तो आदमी को आदमी समझ। मेरी आस्था है कि अतीत और आज के युग में भी इस से बढ़कर न कोई धर्म और दर्शन अतीत में था, न आज है और न आगे भी होगा।

स्वाध्याय का अर्थ-भाव - स्वाध्याय का अर्थ सीधा साधा है पर मूलतः भावगहन चिन्तन एवं मनन को अपने में समेटे हैं। स्वाध्याय में दो शब्द जुड़े हैं :- (१) स्व (२) अध्याय। स्व से अभिप्राय आत्मा का है और अध्याय से आशय प्रकरण, पाठ, परिच्छेद, सर्ग आदि का है। अतएव समूचे स्वाध्याय शब्द का आर्थ हुआ कि आत्मा के अध्याय को पढ़ना। दूसरे शब्दों में स्वाध्याय का सरल अर्थ यह है कि धर्म और दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ना, शरीर और आत्मा के भेद-विज्ञान को समझना, तीन काल-छह द्रव्य और छह लेश्या तथा छहकाय के जीव, पाँच अस्तिकाय, पाँच व्रत, पाँच समिति, पाँच गति, पाँच ज्ञान, पाँच चरित्र ये सभी मोक्ष के मूलभूत कारण हैं, इन पर विश्वास करने वाला सम्यग्दृष्टि है। यह बात श्री १००८ जिनेन्द्र देव ने दिव्यध्वनि में कही है। इनके प्रयोग पर ही लोक-जीवन मंगलमय होगा और परलोक में भी सुख शान्ति, सन्तोष समृद्धि भी प्राप्त होगी।

पर स्वाध्याय का अर्थ हमने अनुचित अथवा अन्यथा या अपने हिसाब से कर लिया। अपने आप अध्ययन करना या अपने आप पढ़ना स्वीकार कर लिया, जब जैसा चाहा वैसा सुन या पढ़ लिया, शंका होने पर मनमाना समाधान करना या कतराना भी हमने सीख लिया। गुरु के सम्पर्क में आवश्यकता को नकार दिया। अपने आप का अध्ययन, अनुभव, अभ्यास तो आशातीत अपूर्ण है और यद्वातद्वा तथा अष्ट शण्ट एवं इतना अनर्गल विकृत हो जाता है कि उस में सुधार करना तो पूरी हिमालय की चढ़ाई ही बन जाता है। स्वाध्याय का अपूर्ण मनमाना अर्थ स्वीकार लें तब तो घर-घर अखबार, पत्र पत्रिका का स्वाध्याय हो गया, संस्थान में आसीन संचालक श्रेष्ठ बहीखाता या लेखा जोखा देखें तो स्वाध्याय हो गया, बालक-बालिकायें पाठ्यक्रम में निर्धारित कोर्स व फोर्स की किताबें पढ़ने लगें तो स्वाध्याय हो गया, युवक-युवतियाँ प्रिय विशिष्ट लेखक गुलशनन्दा आदि के उन्मादक उपन्यास पढ़ें तो स्वाध्याय हो गया, मन्दिर-स्थानक-उपाश्रय में जाकर जो भी ग्रन्थ हाथ आ गया, उसे कहीं से भी पढ़ लिया सो स्वाध्याय हो गया, यह शुद्ध भ्रम है, जो दूर होना ही चाहिये।

एक स्वाध्याय शब्द में तीन शब्द जुड़े हैं :- (१) स्व (२) अधि (३) आय। स्व का अर्थ अपना या आत्मा है और अधि का अर्थ ज्ञान है, तथा आय का अर्थ आमदनी है, प्राप्ति है। इसलिए अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही स्वाध्याय है। चूँकि पूर्व अनुच्छेद में उल्लेखित कार्यों से आत्मानुभूत, आत्मबोध, आत्मसंयम की अणुभर भी प्राप्ति नहीं होती है अतएव वे सभी कार्य उबाऊ दिमाग बिगाड़ दमघोंटू कार्य हैं। उनसे बचना चाहिए और किसी प्रामाणिक वस्तविक विद्वान-गुरु (श्रमण) के मार्ग दर्शन में

स्वाध्याय करने का स्वभाव बढ़ाना चाहिए। जिनवाणी में स्वाध्याय के हेतु जो चार अनुयोग बतलाए हैं, वे ये हैं - (१) प्रथमानुयोग (२) करणानुयोग (३) चरणानुयोग (४) द्रव्यानुयोग। इन चारों अनुयोगों का ही क्रमशः सुविधानुसार स्वाध्याय करना चाहिए। एक अनुयोग को प्राथमिकता देकर भी अन्य अनुयोग को अस्वीकार नहीं करना चाहिए। जब चारों अनुयोग, जिनेन्द्रदेव की दिव्य ध्वनि द्वारा समर्थित हैं तब उन्हें जैसे का तैसा ही क्रम से पढ़ना चाहिए। शंका होने, समझ में न आने, पुष्टि के हेतु किसी विद्वान या श्रमण से पूछ लेने में गौरव की हानि नहीं समझना चाहिए।

स्वाध्याय के पाँच प्रकार - स्वाध्याय तप के पाँच प्रकार हैं अथवा स्वाध्याय को सार्थक बनाने वाले, स्वाध्याय को सुविकसित करने वाले पाँच तत्व हैं, जिन्हें आचार्य उमा स्वामी ने अपने अमर ग्रन्थ 'मोक्ष-शास्त्र' में नवमें अध्याय के ३५वें सूत्र में इस प्रकार लिखा है - वाचनावृत्तानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः अर्थात् स्वाध्याय को वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश इन पाँच तत्वों के आधार पर उतना सुविकसित करना चाहिए कि जितना भी शक्य और सम्भव हो।

(१) **वाचना** - धर्म-ग्रन्थ के शब्दों को निर्दोष उच्चारण करके सुस्पष्ट पढ़ना-पढ़ाना, पठित शब्दों का सही 'आगमानुसार-प्रकरणानुसार' अर्थ स्वयं समझना और अन्य जनों को भी समझाना, शब्द और अर्थ दोनों को दृष्टि पथ में रखते हुए भव्य जीवों की उनकी भाषा शैली में समझाना।

(२) **पृच्छना** - अपने संशय को दूर करने के लिए अथवा स्वाध्याय द्वारा सीखे हुए विषय को सद्बुद्ध बनाने के लिए, विनयमयी बुद्धि और विनम्र विवेक लिए किसी विद्वान या गुरु साधु से प्रश्न पूछना पृच्छना है परन्तु अपने अध्ययन अनुभव अभ्यास की अभिव्यक्ति के लिए, अपनी विद्वन्ना बधारने के लिए अपना प्रभुत्व स्थापित करने, अन्य को अपमानित करने के लिए प्रश्न पूछना अनुचित निन्द्य है।

(३) **अनुप्रेक्षा** - विद्वान वक्ता या आचरणशील आचार्य द्वारा प्रतिपादित धार्मिक विषय या तत्व चर्चा के विषय में पुनः पुनः विचार करना, मनन-चिन्तन निदिध्यासन करना, सहज सुलभ पठित-लिखित ज्ञान को अपने ज्ञान की तुला पर आगम के परिप्रेक्ष्य में तौलना अनुप्रेक्षा है। (४) आम्नाय निर्दोष (ह्रस्व-दीर्घ-विराम पर ध्यान रखते) सुस्पष्ट (शुद्ध उच्चारण करते) न अधिक जल्दी न अधिक धीमे स्वर में भावनात्मक दृष्टिकोण लिए शुद्धतम पाठ करना। प्रमाद रहित होकर, उत्साहपूर्वक पठन-पाठन करना-वर्णित विषय समझना-समझाना आम्नाय है।

(५) **धर्मोपदेश** - धर्म का ही उपदेश देना, धर्म धारण करने की प्रेरणा अवश्य देना पर कर्म-बन्ध का स्वर्णोपदेश नहीं देना। धार्मिक तात्त्विक चर्चा में गम्भीर विषय को सर्वसाधारण की सरल सुबोध भाषा शैली में समझाना, जीवन के धरातल के उन्नत करने के लिए धर्मोपदेश बिना पूछे भी देना उचित है।

स्वाध्याय परंतपः - जिस स्वाध्याय को जैनाचार्यों ने परंतप कहा, उसी को श्रावक के नित्य कर्मों में तीसरा स्थान दिया और श्रद्धा-विवेक-क्रिया बढ़ाने के लिए दो बार अनिवार्य भी कर दिया। स्वाध्याय बाहर से देखने पर भले ही सामान्य लगे पर भीतर ही भीतर कितना गम्भीर तम कार्य है यह विरले विवेकी ही समझ पाते हैं। आसनों में जैसा शवासन सरल लगता है पर शारीरिक शिथिलीकरण इन्द्रिय-मन नियंत्रण करना काफी कठिनतम लगता है वैसे ही स्वाध्याय में इन्द्रिय और मन को नियन्त्रित कर, किसी विशिष्ट विषय पर ही केन्द्रित कर ऊहापोह करना कष्ट साध्य कार्य है। धर्म-सभा में बैठकर स्वाध्याय करना और शंका-समाधान करना कोई गुड़ियों का खेल नहीं है और सभी जिज्ञासुओं को सम्यक्कीत्या समाधान कर पाना तो हिमालय की एवरेस्ट की ही चढ़ाई है। वक्ता का एक गुण जहाँ प्रश्नों की बौछार से

विवर्तित नहीं होना बतलाया वहाँ श्रोता का एक गुण 'सार सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय' भी कहा। श्रोता पूर्वापर विचारक होने के साथ परिस्थिति विशेष में निस्संयोजन स्वभावी हो और अपने अन्तःकरण में पूर्वाग्रह वश कोई भूल भ्रम हो तो भी निस्संकोच स्वीकार कर सुधार ले।

आचार्य प्रवर उमास्वामी ने अपने अमरग्रन्थ मोक्ष शास्त्र अपर नाम तत्त्वार्थ सूत्र में नवमें अध्याय में निर्जरा तत्व का वर्णन करते हुये दो प्रकार के तप बतलाये हैं :- (१) बाह्यतप (२) आभ्यन्तर तप। दोनों ही प्रकार के तप छह छह प्रकार के बतलाये हैं। (१) बाह्यतप से आशय उन तपों का है जो शरीर सम्बन्धी हों और बाहर से दिखें। ये अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस-परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश हैं।

(२) आभ्यन्तर तप से अभिप्राय उनतपों से है, जो आत्मा के समीप के सम्बन्धी गुण हैं और जो बाहर दिखाई नहीं देते हैं। ये प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान हैं।

तपों के वर्गीकरण को दृष्टि-पथ में रखते हुए स्वाध्याय को आभ्यान्तर तप कहा जा सकता है। जैसे अग्नि, घास के ढेर को क्षण भर में जला कर राख कर देती है वैसे ही तप भी सभी कर्मों को जला कर सर्वदा के लिए नष्ट कर देता है। भगवती आराधना में आचार्य शिवकोटिने यह लिखा पर तप क्या है? प्रस्तुत प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर यह है कि इच्छा का निरोध करना तप है। और ऐसा तप उत्तम संहनन धारक ही कर पाते हैं, विशेषतया ध्यान तप वे भी अधिक तप अन्तर्मुहूर्त तक ही कर पाते हैं।

स्वाध्याय की शक्ति का रहस्य - स्वाध्याय की शक्ति का रहस्य अपार है। स्वाध्याय का रहस्य इतना महत्वमय है कि वह शैतान, हैवान को बखूबी इन्सान ही नहीं बल्कि भगवान भी बनाने में समर्थ है परन्तु स्वाध्याय के निम्न लिखित सूत्रों को दृष्टि-पथ में रखना अनिवार्य है -

- (१) जियात् अपने को पहिंचान, जिओ और जीने दो की भावना लिये हो।
- (२) स्वाध्याय एक ओर धार्मिक हो और दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक तथा आदर्शवादी।
- (३) स्वाध्याय-सुख-शान्ति लाने, आह और कराह मिटाने, परन्तु ज्ञान के दम्य, विज्ञानपन, प्रदर्शन के लिये नहीं हो।
- (४) स्वाध्याय सिखाती है कि जो जानता है कि वह जानता है, सचमुच ज्ञानी है।
- (५) स्वाध्याय सिखाती है कि जो जानता है पर नहीं जानता है कि जानता है, सीधा है।
- (६) स्वाध्याय जतलाती है कि जो नहीं जानता कि वह नहीं जानता है, शून्य है।
- (७) स्वाध्याय सिखलाती है कि जो नहीं जानता पर जानता कि जानता है, मूर्ख है।

उत्तराध्ययन में आचार्य रामसेन ने स्वाध्याय और ध्यान के विषय में लिखा -

स्वाध्याद् ध्यानम ध्यमास्तां ध्यानात् स्वाययायमामनेत।

ध्यान स्वाध्याय सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥

अर्थात् स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान और ध्यान के पश्चात् स्वाध्याय, इस प्रकार ध्यान और स्वाध्याय की पुनरावृत्ति से परमात्म स्वरूप उपलब्ध होता है।

* * * * *

२६ शास्त्री कॉलोनी जावरा (मध्यप्रदेश)

(१४७)

वर्तमान संदर्भ में जैन गणित की उपादेयता

• डॉ. परमेश्वर झा

गणित की व्यापकता सार्वभौम है। वेदांग ज्योतिष (१२०० ई.पू.) में इसे सबसे ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है - 'गणितं मूर्धनिस्थितम्'।^१ इसकी महत्ता के सम्बन्ध में जैन गणितज्ञ महावीराचार्य की उक्ति है-

‘लौकिके वैदिके वापि तता सामायिकेऽपि यः।

व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते॥’^२

अर्थात् ‘सांसारिक, वैदिक तथा धार्मिक आदि सभी कार्यों में गणित उपयोगी है। पुनः उन्हीने उद्धोषणा की है -

‘बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।

यत्किंचिदस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि॥’^३

अर्थात् जो कुछ इन तीनों लोकों में चराचर (गतिशील एवं स्थिर) वस्तुएं हैं, उनका अस्तित्व गणित से विलग नहीं।’ वस्तुतः संख्या का ज्ञान जीवन के हर पहलू के लिए आवश्यक है। सृष्टि के आरम्भ से ही इसकी उपयोगिता सिद्ध हुई। विश्व के प्राचीन सभ्य देशों बेबिलोनिया, मिश्र, यूनान, भारत आदि में इसका विकास समान रूप से होता रहा। भारत में गणित-ज्ञान की झाँकी यहाँ के प्राचीन ग्रंथों-वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण आदि में मिलती है। भारतीय संस्कृति के संवर्द्धन एवं संरक्षण में जैनाचार्यों का महान् योगदान है। गणित भी उनके चिंतन एवं मनन का विषय रहा है। गणितीय सिद्धान्तों द्वारा सृष्टि-संरचना को स्पष्ट करना तथा कर्म सिद्धान्त की व्याख्या करना जैनाचार्यों का प्रमुख दृष्टिकोण है। फलस्वरूप जैन आगम ग्रंथों में गणितीय सामग्री प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में विपुल परिमाण में विद्यमान है। यह तो अब निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुका है कि भारतीय गणित के अंध युग (५०० ई.पू.-५०० ई.) में भी यहाँ गणित का विकास होता रहा जिसमें जैनाचार्यों का अमूल्य योगदान है।^४ सचमुच जैन आगम ग्रंथ भारतीय गणित ज्योतिष की श्रृंखला की टूटी हुई कड़ी को जोड़ने का कार्य करते हैं। इन ग्रंथों के अवलोकन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जिन सिद्धान्तों के आविष्कार का श्रेय पाश्चात्य गणितज्ञों को दिया जाता है उनमें से बहुत सारे सिद्धान्तों को कई शताब्दियाँ पूर्व ही जैनाचार्यों ने लिपिबद्ध कर रखा है। परवर्ती विद्वानों ने पूर्णतः गणितीय ग्रंथों का भी क्षेत्रमिति आदि शाखाओं से सम्बन्धित मौलिक एवं महत्वपूर्ण सिद्धान्तों-सूत्रों का विवेचन मिलता है। वर्तमान संदर्भ में इन गणितीय सिद्धान्तों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता का विश्लेषण करना ही इस निबंध का अभीष्ट है।

इस सिलसिले में सर्वप्रथम जैनाचार्यों की गणिती उपलब्धियों का सिंहावलोकन करना आवश्यक प्रतीत होता है। जैन धर्म के महत्वपूर्ण ग्रंथ स्थानांग सूत्र (३२४ ई.पू.) के निम्न सूत्र में गणित विज्ञान के दश विषयों की चर्चा है :-

‘परिक्रम व्यवहारो रज्जु रासी कलासवर्णोय।

जावन्तावति वगो घणो ततः वग्गावगो विक्रपो वा॥’^५

अर्थात् ‘परिक्रम (मूलभूत प्रक्रियाएँ), व्यवहार (विभिन्न विषय), रज्जु (ज्यामिति), राशि (समुच्चय, त्रैराशिक), कला सवर्ण (भिन्न सम्बन्धी कलन), यावत-तावत (सरल समीकरण), वर्ग (वर्ग समीकरण), धन (धन समीकरण), वर्ग-वर्ग (द्विवर्ग समीकरण) एवं विकल्प (क्रमचय-संचय) गणित के ये दश विषय हैं। इससे स्पष्ट होता है, कि ईसा के ४०० वर्ष पूर्व ही जैनाचार्यों को इन विषयों का समुचित ज्ञान हो गया था। परवर्ती विद्वानों ने पर्याप्त रूप से इन्हें पल्लवित एवं पुष्पित किया।

गणित में अभी तक सबसे अधिक क्रांतिकारी कदम हुआ है स्थान-मान-संकेत की दशमलव पद्धति का आविष्कार जो भारतवासियों की ही देन है। किसी भी संख्या को सरलता से लिखने के लिए दश अंक (शून्य एवं १ से $\sqrt{\text{तक}}$) पर्याप्त हैं। उपलब्ध पुरालेख सम्बन्ध प्रमाणों में यह प्रमाणित होता है कि इसका आविष्कार प्रथम शताब्दी ई.पू. या इससे पूर्व ही हो चुका था। जैन आगम ग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है। जैनों को अंतरिक्ष एवं समय की माप के लिए बहुत बड़ी-बड़ी संख्याओं की आवश्यकता पड़ती थी जिसके लिए यह पद्धति बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुई। अनुयोगद्वारा सूत्र (प्रथम शताब्दी ई.पू.) के अनुसार एक शीर्ष प्रहेलिका = $(८४०००००)^{२८}$ पूर्वी^६। आर्यभट्ट प्रथम (४७६ ई.) के समकालीन अथवा समीपवर्ती जैन दार्शनिक यतिवृषभ की कृति तिलोय पण्णती में काल-माप एवं लोक माप के लिए विशाल संख्याओं एवं इकाइयों को परिभाषित किया गया है। इनमें से काल की सबसे बड़ी संख्यात इकाई अचलात्म है जिसका मान $(८४)^{३१} \times (१०)^{१०}$ वर्ष है।^७ षट्खंडागम (प्रथमशताब्दी) इस पर लिखी टीका ध्वला (९वीं शताब्दी) गणित सार-संग्रह आदि ग्रंथों में तो स्थानमान पद्धति का उपयोग हुआ है तथा उसकी विस्तृत रूप से चर्चा भी है। इन ग्रंथों में ४० पदों तक स्थानमान की सूची प्रस्तुत की गयी है। जहाँ भारत में यह प्रणाली बहुत पूर्व से ही प्रचलित थी, वहाँ पाश्चात्य देशों में फिबोनकी, जोन आफ हैलीफाक्स, पीसा के क्योनाडो आदि विद्वानों की रचनाओं में १२वीं १३वीं शताब्दी में इसका उल्लेख मिलता है। इस तरह यूरोप के विभिन्न देशों ने इस पद्धति को अपनाया जो आज प्रायः समस्त संसार में प्रचलित है।

पूर्णांक संख्याओं की तरह भिन्नो के विकास में भी जैनाचार्यों का अति विशिष्ट स्थान है। भिन्नो का लेखन एवं तत्सम्बन्धी संक्रियाओं के साथ-साथ विभिन्न सूत्र भी सूर्यप्रज्ञप्ति (५ वीं शताब्दी ई.पू.), स्थानांग सूत्र, तिलोय पण्णती, षट्खंडागम, ध्वला आदि प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध है। महावीराचार्य ने तो भिन्नो से सम्बन्धित सारे तत्त्वों को प्रतिपादित किया है।^८

उत्तराध्ययन सूत्र (३०० ई.पू.) एवं अनुयोगद्वारा सूत्र में गणितीय राशि की घातों को दशानि की विधि स्पष्ट रूप से अंकित है जिससे ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी ई.पू. या उसके पूर्व ही जैनाचार्यों को घातांकों के नियमों का ज्ञान हो गया था। अनुयोगद्वारा सूत्र में प्रथम वर्ग, द्वितीय वर्ग आदि प्रथम मूल, द्वितीय मूल आदि का प्रयोग पाया जाता है। साथ ही संसार की जनसंख्या बताने के लिए $२६४ \times २३२ = २६$ का व्यवहार हुआ है।^९ ध्वला में तो घातांक सम्बन्धी विभिन्न नियमों का उपयोग भी हुआ है जिन्हें निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है :- $x^m \cdot x^n = x^{m+n}$, $x^m / x^n = x^{m-n}$, $(x^m)^n = x^{mn}$ आदि।^{१०} इन नियमों के उल्लेख से यह सुनिश्चित होता है कि तत्कालीन जैनाचार्यों को घातांक के इन नियमों का ज्ञान हो गया था। ये नियम इसी रूप में आज भी प्रचलित हैं।

भगवती सूत्र (३०० ई.पू.), स्थानांग सूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र आदि जैन ग्रंथों में अति प्राचीन काल से ही क्रमचय-संचय सम्बन्धी विषय भंग एवं विकल्प शीर्षकों के अन्तर्गत विशदता के साथ प्रतिपादित किया गया है। भगवती सूत्र में इसका विवेचन व्यापक रूप में किया गया है। एकक संयोग, द्विक संयोग, त्रिक संयोग आदि मूलभूत प्रमाण दिए गए हैं^{११} जिन्हें निम्नलिखित रूप में व्यक्ति किया जा सकता है :-

$${}^n c_1 = n, {}^n c_2 = \frac{n(n-1)}{1.2}, {}^n c_3 = \frac{n(n-1)(n-2)}{1.2.3}$$

$$\text{तथा } {}^n p_1 = n, {}^n p_2 = n(n-1) \text{ आदि।}$$

यतिवृषभ, वीरसेनाचार्य, शीलांक, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती आदि जैन विद्वानों ने तत्सम्बन्धी नियमों का विवेचन किया है तथा विभिन्न पहलुओं पर भी विचार किया है। क्रमचय संचय सम्बन्धी से नियम अभी भी प्रयोग में लाए जाते हैं। इसके साथ ही द्विपद प्रमेय के विकास का भी उन लोगों ने पथ प्रशस्त किया है।

विभिन्न प्रकार के समीकरणों यथा सरल, द्विघाती एवं अनिर्णित प्रथम घातीय समीकरणों को हल करने की विधियाँ भी जैनाचार्यों को ज्ञात थी। स्थानांग सूत्र में प्रयुक्त यावत-तावत, वर्ग, धन, वर्ग-वर्ग आदि शब्दों में इसकी पुष्टि होती है।

लघुगणक सिद्धान्त के जन्मदाता जाने नेपियर (१५५०-१६१७ ई.) एवं वर्गी (१६०० ई.) माने जाते हैं, पर उनसे लगभग सात सौ वर्ष पहले ही धवला में इसका प्रयोग पाया जाता है। संक्रियाओं का उपयोग मिलता है जो लघुगणक के निम्नलिखित नियमों के परिचायक हैं^{१२}:-

$$\log_2 (x/y) = \log_2 x - \log_2 y, \log_2 (xy) = \log_2 x + \log_2 y$$

$$\log_2 2^x = x, \log_2 (2^x) x^x = x^x \log_2 (z^x) \text{ आदि आधार २ की जगह ३, ४ आदि किए जा सकते हैं तथा उन्हें सामान्यीकृत भी किया जा सकता है।}$$

आज राशि सिद्धान्त (समुच्चय) इतना विकसित हो चुका है कि कोई विज्ञान इससे न अछूता है और न ही इसके बिना आधारित है। इसके प्रवर्तक जार्ज केन्टर (१८८५-१९१५) माने जाते हैं, पर उस राशि सिद्धान्त का विवेचन अति प्राचीन काल में ही जैन ग्रंथों में उपलब्ध है। षट्खंडागम तिलोय पण्णती, धवला, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों में तत्सम्बन्धी अभिधारणा, भेद-उपभेद, उदाहरण तथा उन पर संक्रियाएँ दृष्टिगोचर होती हैं^{१३} विभिन्न प्रकार की राशियों का उल्लेख है तथा परिमित अपरिमित, रिक्त एवं एकल समुच्चयों के उदाहरण भी उपलब्ध है।

श्रेणियों के सम्बन्ध में जैनाचार्यों का योगदान अद्वितीय है। तिलोयपण्णती एवं त्रिलोकसार में विभिन्न प्रकार की श्रेणियों का विशद विवेचन है। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती (१० वीं शताब्दी) ने धाराओं का प्रकरण विस्तार पूर्वक लिखा है। उन्होंने १४ प्रकार की धाराओं की विस्तृत चर्चा के साथ-साथ सूत्रों का विश्लेषण भी किया है। उनके ग्रंथ त्रिलोक सार में तो वृहत्धारा परिकर्म नामक एक गणितीय ग्रंथ की भी चर्चा है।^{१४} इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि उस समय तक धाराओं से सम्बन्धित स्वतंत्र जैन ग्रंथ उपलब्ध था।

जैन ग्रंथों में ज्यामितीय विवेचन का बाहुल्य है तथा क्षेत्रमिति विषयक सामग्री विपुल परिमाण में उपलब्ध है। सूर्य-प्रज्ञप्ति में विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों की चर्चा है। भगवती सूत्र एवं अनुयोगद्वार सूत्र में ठोस आकृति धनत्रयस, धनचतुरस्र, धनायत, धन वर्ग एवं धन परिमंडल, आयत, गोल, वेलन, सम्बन्धी सूत्रों का प्रयोग मिलता है।^{१५} उमास्वामी (१५० ई.पू.) की रचना तत्त्वार्थीधिगमसूत्र भाष्य में अनेक मापिकी सूत्र विद्यमान हैं जिन्हें निम्न रूप में लिखा जा सकता है।^{१६} :- यदि किसी वृत्त की परिधि के लिए p , जीवा = c , वृत्तखंड के चाप की लम्बाई = s , वृत्तखंड की ऊँचाई = H , वृत्त की त्रिज्या = R , व्यास = D , क्षेत्रफल = A व्यक्त किया जाय तो $P = \sqrt{10}D^2$; $A = \frac{1}{4} P.D$, $C = \sqrt{8H(D-H)}H = \frac{1}{2}(D\sqrt{D^2-C^2})$, $S = \sqrt{6h^2-c^2}$ और $D = \left\{h^2 + \frac{c^2}{2}\right\} / h$ तिलोयण्णती में कुछ प्रमुख प्रयुक्त सूत्र निम्नलिखित हैं १६ :- (१) लम्बवृत्तीय वेलन का आयतन $10r^2h$; (२) लम्ब प्रिज्म के छिन्नक का आयतन = आधार का क्षेत्रफल $\times$ प्रिज्म की लम्बाई, (३) वृत्त की परिधि $D^2 \times 10$ (४) वृत्त के चतुर्थांश की जीवा का वर्ग = $2R^2$, (५) वृत्त की जीवा = $\sqrt{4\left(\frac{D}{2}\right)^2 - \left(\frac{D}{2}\right)^2}$ (६) वृत्तखंड का चाप = $s = \sqrt{26(dth)^2 - d^2}$ (७) $c = H = \sqrt{\frac{D}{2} \left[\frac{D^2}{4} - \frac{C^2}{4} \right]}$ वृत्तखंड की ऊँचाई (८) वृत्तखंड का क्षेत्रफल = $A = \frac{Hc}{4} \sqrt{10}$ त्रिलोकसार में भी ऐसे अनेक सूत्र उपलब्ध हैं।^{१८} इन सूत्रों में से प्रायः सभी का व्यवहार अभी भी किया जाता है।

वृत्त की परिधि एवं उसके व्यास के अनुपात अर्थात् π के मान की विवेचना अति प्राचीन काल से ही जैन आगम ग्रंथों में की जाती रही है। जैन परम्परानुसार इसका स्थूल मान ३ तथा सूक्ष्म मान $\sqrt{10}$ स्वीकृत किया गया है। सूर्य प्रज्ञप्ति में इन दोनों मानों की चर्चा है १२। भगवती सूत्र अनुपयोग द्वार सूत्र, तत्त्वार्थीधिगम सूत्र भाष्य, तिलोयण्णती, त्रिलोकसार आदि जैन ग्रंथों में भी ये मान उपलब्ध हैं। धवला में तो π का मान ३५५/११३ दिया गया है जो आधुनिक मान से बहुत ही निकट है। इसे चीनी मान कहा जाता है, पर ऐसा अनुमान है कि चीन में प्रयोग होने से पूर्व ही जैनाचार्यों ने इसका उपयोग किया है।

वर्तमान समय में प्रायिकता की खोज का श्रेय गैलिलियो, फरमेट, पास्कल, बरनौली आदि पाश्चात्य गणितज्ञों को दिया जाता है, पर प्रायिकता के सिद्धान्तों की नींव गुणात्मक रूप से आचार्य कुन्दकुन्द (५२ ई.पू. से ४४ ई. तक) एवं समन्तभद्र (२री शताब्दी) ने रख दी थी। स्याद्वाद के सप्तभंगों में सन्निहित इस सिद्धान्त का प्रयोग भी पाया जाता है।^{२०} इस दिशा में अन्य अनेक मौलिकताएँ एवं विशिष्टताएँ जैन ग्रंथों में युग-युग से पल्लवित होती रही है।

भारतीय गणित के इतिहास में जिन दो जैन गणितज्ञों का महत्वपूर्ण स्थान है वे हैं श्री धराचार्य (८वीं शताब्दी) तथा महावीराचार्य (८५० ई.)। श्रीधराचार्य ने गणित सम्बन्धी स्वतंत्र ग्रंथों पाटीगणित एवं त्रिंशतिका की रचना कर एक परम्परा स्थापित की। इन ग्रंथों में गणित के विभिन्न विषयों की अत्याधुनिक विधि का विवेचन किया गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि द्विघातीय समीकरण के हल करने की ऐसी वैज्ञानिक विधि की उन्होंने कल्पना की जो अभी भी उसी रूप में प्रयोग की जाती है। भास्कराचार्य

(१२ वीं शताब्दी) ने श्रीधराचार्य द्वारा स्थापित इस विधि को निम्न रूप में उद्धृत किया है :-

‘चतुराहत वर्गसमै रूपैः पक्षद्वयं गणयेत्।
अव्यक्तं वर्गं रूपैर्युक्तो पक्षो ततो मूलम्॥’^{२१}

अर्थात् ‘समीकरण के दोनों पक्षों को असात राशि के वर्ग के गुणांक के चौगुने से गुणा करें। दोनों में अज्ञात राशि के मौलिक गुणांक वर्ग को जोड़ दें। इस क्रिया की सहायता से द्विघातीय समीकरण $ax^2 + 4x + c = 0$ के मूल $x = \frac{-b \pm \sqrt{b^2 - 4ac}}{2a}$

महावीराचार्य का गणित के क्षेत्र में श्लाघनीय योगदान है। उनका गणित सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रंथ है गणित-सार-संग्रह जिसकी रचना पाठ्य पुस्तक की शैली में की गयी है। इसमें नियमों का प्रतिपादन उदाहरणों के साथ किया गया है। सर्वप्रथम उन्होंने ही घोषणा की कि ऋणात्मक राशि का वर्गमूल नहीं हो सकता।^{२२} उन्होंने इस सम्बन्ध में प्रतिभापूर्ण निष्कर्ष देकर काल्पनिक राशियों की खोज के लिए मार्ग प्रशस्त किया। काल्पनिक राशि की जो परिकल्पना उन्होंने ९वीं शताब्दी में की वही यूरोप में कोसी ने १८४७ ई. में की। वहीं सर्वप्रथम भारतीय गणितज्ञ हैं जिन्होंने गुणोत्तर श्रेणी के योग के लिए व्यापक सूत्र प्रतिपादित किया जो अभी तक प्रचलित है^{२३} साथ ही उन्होंने क्रमचय-संचय के लिए व्यापक सूत्र की स्थापना की जो यूरोप में १६३४ ई. में आविष्कृत हुआ।^{२४} इसी तरह अंकगणित ज्यामिति क्षेत्रमिति आदि शाखाओं में भी उनका योगदान स्तुत्य है। कतिपय ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफल के सूत्रों की उन्होंने ही सर्वप्रथम स्थापना की। निम्न वृत्त, उन्नत वृत्त, कंबुक वृत्त, दीर्घवृत्त, अन्तश्चक्रवाल वृत्त, वृद्धिचक्रवाल वृत्त, हस्तंदत क्षेत्र, प्रणवाकार, यवाकार, मुरजाकार, वज्राकार क्षेत्र आदि आकृतियों के क्षेत्रफल निकालने की विधि उन्होंने दी।^{२५} चक्रीय, चतुर्भुज सम्बन्धी उनके द्वारा स्थापित सूत्र शत प्रतिशत आधुनिक रूप का ही है।^{२६} महावीराचार्य के अतिरिक्त राजादित्य, हरिभद्रसूरि, रत्नेश्वर सूरि, ठक्कर फेरू, सोमतिलक, महिमोदय, हेमराज, पं. टोडरमल आदि जैनाचार्यों ने भी अपनी अपनी रचनाओं में गणितीय सूत्रों का विश्लेषण किया। फलस्वरूप जैन गणित का उत्तरोत्तर विकास होता रहा।

उपर्युक्त सिंहावलोकन से यह अब स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने गणित के उन्नयन में श्लाघनीय योगदान दिया है। तथ्य भी प्रमाणित होता है कि उनके द्वारा प्रतिपादित स्थापित मौलिक गणितीय सिद्धान्त अभी भी व्यापक रूप में प्रचलित है। अतः वर्तमान संदर्भ में भी जैन गणित की उपादेयता उसी रूप में है जिस रूप में प्राचीन काल में थी। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न ग्रंथाकारों में उपलब्ध, उपेक्षित पांडुलिपियों का अध्ययन एवं चिन्तन-मनन हो जिससे गणित में जैनाचार्यों के अवदान का सही-सही मूल्यांकन हो सके।

संदर्भ सूची

१. आर. शामराखी (सं) वेदांग ज्योतिष, मैसूर, १, ३६, श्लोक ४
२. लक्ष्मीचन्द्र जैन (सं.) गणित-सार-संग्रह, शोलापुर १, ६३, १., पृ. २
३. वही, १-१६, पृ. ३
४. परमेश्वर का भारतीय गणित के अंध युग में जैनाचार्यों की उपलब्धियाँ, साध्वीरत्न कुसुमावती अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ३४, ७४।

५. स्थानांग सूत्र श्लोक ६४३।
६. अनुयोग द्वार सूत्र श्लोक ११६।
७. लक्ष्मीचन्द्र जैन, तिलोयपम्पणी का गणित, शोलापुर, १,५८, पृ. ५४।
८. गणित-सार-संग्रह, (सं. २), ३.१-१४, पृ. ३६-६५।
९. अनुयोग द्वार सूत्र, श्लोक १४२।
१०. एच. एल. जैन (सं.) धवला, भाग ३, पृ. २५३ तथा ल. च. जैन, मैथमैटिकल टॉपिक ऑफ धवला, भाग ३, ज. एस. एस., ११.२ १.६, पृष्ठ-२५-४.१।
११. भगवती सूत्र श्लोक ३१४।
१२. धवला, भाग ३, पृष्ठ २०-२४ एवं ५६।
१३. अनुपम जैन जैन गणित की मौलिकताएँ एवं भावी शोध दिशाएँ, अर्हत्वचन, प्रवेशांक १, ८८, पृ. १२०।
१४. त्रिकोलकसार, माधवचन्द्र (टीका), बम्बई, १, २०, पृ. १४-१५।
१५. भगवती सूत्र, श्लोक ६३५-२६।
१६. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य अनुपम जैन एवं सुरेश चन्द्र अग्रवाल, जैन गणितीय साहित्य, अर्हत्व वचन, प्रवेशांक १, ८८ एवं २६-२८ एवं लक्ष्मीचन्द्र जैन, इन्जैक्ट साइन्सेस प्रोग्राम जैन सोर्सेज, भाग १, जयपुर १, ८२, पृ. ४५।
१७. लक्ष्मीचन्द्र जैन (सं. १६), पृ. ४६।
१८. वही. पृ. ४६।
१९. वही पृ. ३२-३३।
२०. रमेशचन्द्र जैन, स्याद्वाद के सप्रभंग एवं आधुनिक गणित-विज्ञान, अर्हत्व वचन, प्रवेशांक १, ८८, पृ. - १३।
२१. सुधाकर द्विवेदी (सं.) बीजगणित, बनारस, १, २७, पृ. ६३।
२२. गणित-सार-संग्रह, १.५२, पृ. ५४।
२३. वही, २.३, पृ. २८।
२४. वही, ६.२१८, पृ. १४६।
२५. वही, ७.१- २३२ १/२, पृष्ठ १८१-२५०।
२६. वही, ७.५०, पृ. १.३ ॥

* * * * *

प्रधानाचार्य
को. ओपरेटिव कॉलेज,
बेगूसराय (बिहार) - ८५११०१

यंत्र रचना प्रक्रिया और प्रभाव

- श्रमण संघीय सलाहकार श्री रतन मुनि जी म.सा. के सुशिष्य मुनि श्री सतीशचन्द्र 'सत्य'

भगवान ने फरमाया है, पहले जानो पश्चात् करो 'पढमं नाणं' जिसे हम अच्छी तरह से जानते नहीं, उसे ठीक से नहीं कर सकते और उससे मनवांछित फल भी प्राप्त नहीं होता। कोई भी क्रिया कार्य किसलिये करना, उससे क्या लाभ होगा, इस बात को जानने के पश्चात् ही आराधना, साधना अच्छी तरह हो सकती है। उसका आशातीत लाभ भी मिल सकता है।

साधना करते समय साधक को पूर्ण निष्ठा श्रद्धा से साधना में संलग्न हो जाना चाहिये। मानसिक तैयारी यदि डाँवा डोल हो तो साधना में सफलता असंभव होगी। जैसे कोई अचिन्त्य लाभ सामने दिख रहा हो, उसे प्राप्त करने में जैसी व्यक्ति को आकुलता हो तो वह लाभ प्राप्त होने पर उसकी खुशी की सीमा नहीं रहती ठीक उसी तरह साधना क्षेत्र में साधक को पूर्ण समर्पित होना नितान्त आवश्यक है।

साधक को सर्वप्रथम दृढ़ संकल्पी होकर योग्य गुरु से मंत्र प्राप्त कर यंत्र बनाने की विधि जानना चाहिये। गुरु कृपा से मंत्र प्राप्त कर उसे कण्ठस्थ करे, बताये अनुसार साधना जाप करें, उसके अर्थ पर चिंतन करें। संकल्पित जाप पूर्ण होने पर यंत्र निर्माण किया जाता है।

साधना के लिये अनुकूल स्थान, आसन, माला, काष्ठ का पट्टा, ऊपर बिछाने हेतु लाल या सफेद वस्त्र आदि यंत्र लेखन की सामग्री अष्ट गंध, चोरु या सुवर्ण की कलम, गुलाब जल आदि आराधना (साधना) करते समय प्रातः उठते ही ५, ७ या ११ बार नमस्कार स्मरण करना। उसके बाद हृदय में "हीं" का ध्यान "ऊँ हीं अर्हं नमः" का ३ बार उच्चारण करना "गुरुगम" साधना काल में साधक को दोनों समय प्रतिक्रमण, आदि क्रिया करते हुये सदाचार मय जीवन व्यतीत करना चाहिये।

मानसिक, वाचिक, कायिक शुद्धि का ध्यान रखना। पश्चात् झि पऊँ स्वाहा। ३ बार सीधा, ३ बार उल्टा का जाप करना। इस क्रिया से शरीर में स्फूर्ति, नयी चेतना का संचार होगा। उसके बाद प्राणायाम करना, ३ या ५ बार रेचक कुथक, पूरक "पूरक करते समय चिंतन करना कि मेरे शरीर में से विचारों की अशुद्धि बाहर निकल रही है, इस क्रिया से मन स्वस्थ बनेगा। पश्चात् न्यास क्रिया करना "आत्म रक्षा स्तोत्र से"(वज्रपंजर स्तोत्र बोलना)।

* * * * *

ढयास क्रिया

- (१) शिखा को स्पर्श करते समय
ऊँ ह्रीं अर्द्धध्यामम बोलना।
- (२) मस्तक को (ललाट को) स्पर्श करते समय
ऊँ ह्रीं सिद्धेश्योनमः बोलना।
- (३) दोनों आँखों को क्रमशः स्पर्श करते हुये
ऊँ ह्रीं आचार्य्योनमः बोलना।
- (४) नासिका को स्पर्श करते हुये
ऊँ ह्रीं उपाध्यायेध्यो नमः बोलना।
- (५) मुख (दोनों होठों को) स्पर्श करते हुये
ऊँ ह्रीं साधुध्यो नमः बोलना।
- (६) गले से स्पर्श करते हुये
ऊँ ह्रीं ज्ञानेध्यो नमः बोलना।
- (७) नाभि से नीचे के भाग पर स्पर्श करते हुये
ऊँ हः चारित्र्य्यो नमः कहना।
- (८) इस प्रकार क्रिया करने के पश्चात्

यंत्र के लेखन सामग्री

यंत्र लेखन से पूर्व गुरु द्वारा निर्देशित जाप विधि से पूर्ण होना चाहिये। मंत्र की तरह यंत्रों से भी लाभ प्राप्त होता है।

इसमें विभिन्न प्रकार के होते हैं त्रिभुज २, रेखा वर्ग वृत्त आदि।

यंत्र का अर्थ होता है, विशाल स्वरूप की वस्तु को किसी विशिष्ट स्थान में संकुचित करना।

यंत्र द्वारा सिद्धि प्राप्त करने के लिये, विभिन्न साधनाओं से गुजरना पड़ता है, जिसमें विधि दी गई हो वैसा करना चाहिये। जिसमें विधि का उल्लेख न हो उन्हें भोजपत्र पर अष्टगंध से लिख, तांबे के ताबीज (मादालिपा में) डाल पुरुष दायें एवं स्त्री बायें हाथ पर धारण करें।

जो यंत्र मंत्र मुक्त होता है उसे सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण पुरुष नक्षत्र में १०८ बार जाप कर उसकी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

यंत्र के लेखन में प्रायः अष्ट गंध का ही प्रयोग किया जाता है। (श्वेतचंदन, रक्तचंदन, गोरचन, कपूर, कस्तूरी, अगर, हाथी का मूद या इसके अभाव में इसमें से कोई एक) लिखते समय कलम का भी अपना महत्व होता है, शुभ कार्यों में सोना, चांदी, आर्कषण, जामुन, वशीकरण क्रश स्तंभन के लिये बरगद आदि।

यंत्र लेखन की साधना में शारीरिक मानसिक पवित्रता की पूरी सजगता होनी चाहिये। इसकी असावधानी से यंत्र लाभकारी नहीं हो सकेगा। इस काल में सात्विक भोजन, एकांत शांत वातावरण, लेखन के पश्चात् सुगंधित द्रव्य से उसकी शुद्धि आदि इन नियमों का पालन करने वाला साधक निःसंदेह सफलता प्राप्त कर सकता है।

यंत्रों का भौतिक आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार से उपयोग किया जा सकता है, साधक को आध्यात्मिक दृष्टि से ही चिंतन मनन, कर आत्मिक उत्थान में इनका सहयोग प्राप्त कर सकता है। यहाँ कुछ जैन यंत्रों की रचना दे रहे हैं (विशेष जानकारी गुरुगम को)

पैंसठ यंत्र (चौबीसजिन यंत्र)

२२	३	९	१५	१६
१४	२०	२१	२	८
१	७	१३	१९	२५
१८	२०	५	६	१२
१०	११	१७	२३	४

यहाँ २५ का अंक प्रभु का सूचक है। इस यंत्र का नहीं चौबीस जिन स्तोत्र १३-१४-३० (धनतेरस से दीपावली ३ उपवास) तक १०८ बार जापकर के अष्ट गंध से दीपावली की रात्रि में या जैसी सुविधा हो वैसे लिखकर सुगंधित द्रव्यों से वर्णित कर उपयोग में लेने से मन वांछित फल, भय दुःख दूर होते हैं।

(विशेष गुरुगम)

इसी प्रकार १६ सती यंत्र की आराधना है, उसका भी स्तोत्र पाठ उपरोक्त विधि से यंत्र बनाकर घर के प्रवेश द्वार पर लगाने से सभी प्रकार के संकट विध्व बाधाएँ दूर होती, भूत प्रेत आदि का भय दूर होता है। (श्रद्धा प्रधान है) -

(विशेष गुरुगम)

सौलह सती यंत्र

९	१६	२	७
६	३	१३	१२
१५	१०	८	१
४	५	११	१४

नोट - किसी-किसी यंत्र में १६ सतियों के नाम वीजा अक्षरों सहित उल्लेखित भी हैं।

सर्वसिद्धि यंत्र - उद्देश्य पूर्ति में यह यंत्र बड़ा चमत्कारी है। इसका उपयोग करने से पूर्व सिद्ध करना जरूरी है। यंत्र बनाने से पहले जाप संख्या पूर्ण करके पश्चात् अष्ट गंध से भोज पत्र पर लिखकर काम में लेते समय भावनाओं का संग्रह करते रहे, तो निश्चित रूप से लाभ प्राप्त होगा।

(श्रद्धा का संबल जरूरी है)

रोग निवारण यंत्र - इस यंत्र को पौष वदी दसमी के दिन १०८ बार यंत्र में दिया मंत्र (श्लोक) बोलकर सिद्ध कर लेवें पश्चात् काली स्याही से मोटे कागज पर यंत्र बनाकर जहाँ रोगी का शयन कक्ष हो जहाँ उसकी नजर पड़ती हो वहाँ लगा दें।

छोटे बालक को रोगी अवस्था में छोटे कागज पर वह यंत्र बनाकर सुगंधित द्रव्य लगाकर इसके गले में या भुजा पर बांधने से रोग का शमन होगा।

(विशेष गुरुगम)

सौलह सती

२५ह	८०र	क्षि	१५हुँ	५०हः
२०स	४५र	प	३०सुं	७५सः
झि	प	ऊँ	स्वा	हा
७०ह	२५र	स्वा	६०हुँ	५हः
५५स	१०र	हा	६५सुं	४०सः

इस यंत्र का हृदय में ध्यान करने से बुद्धि निर्मल होती है, पाप का नाश होता है। सब प्रकार के रोग संकट दूर होते हैं। यह यंत्र केशर, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से शुद्ध थाली, आदि पात्र में

लिखकर प्रासुक गर्म जल से धोकर रोगी को पिलाने से रोग दूर होता है। इस यंत्र को दीप माला पर्व पर केशर सुगंधी द्रव्यों से भोजपत्र पर या कागज पर लिखे १०८ बार तिजय पडुत स्तोत्र पढ़कर उसे सिद्ध करलें, पश्चात् हमेशा पास में रखें तो अपने परिवार में समाज में सबको प्रिय हो मान प्रतिष्ठा बढ़े या लक्ष्य की प्राप्ति हो।^१ सुख शांति आनंद मंगल हो।

१. मंत्र व यंत्र साधना करते समय उनके सभी नियमों का पालन करने के साथ गुरु आज्ञा एवं उत्तर साधक मार्गदर्शन होना जरूरी है।

* * * * *

जैन दर्शन सम्मत मुक्त, मुक्ति, स्वरूप साधन

• पं. देवकुमार जैन

भारतीय दर्शनों का लक्ष्य - यद्यपि भारतीय दर्शन विचारप्रणालियों की भिन्नता के कारण अनेक नामात्मक हैं। जीव और जगत् के प्रति अपना-अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए भी उनका एक निश्चित उद्देश्य है कि जन्म-जरा मरण आधि व्याधि और उपाधि से सदा सर्वदा के लिये मुक्त होकर जीव को परम सुखसमाधि प्राप्त हो। इस परमसमाधि का अपर नाम मोक्ष है।

मोक्ष और उसकी प्राप्ति के उपायों, साधनों का निरूपण करना भारतीय दर्शनों का केन्द्र बिन्दु है। महर्षि अरविन्द मोक्ष को भारतीय विचार-चिन्तन का एक महान् शब्द मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि भारतीय दर्शनों की कोई महत्वपूर्ण विशिष्टता है तो वह मोक्ष का चिन्तन है। जो उनकी मौलिकता है और वह अन्य दर्शनों से उनके पृथक् अस्तित्व का बोध कराता है।

भारतीय दर्शनों ने कहा है कि संसार में चार बातें ऐसी हैं, जिनको प्राप्त करना पुरुष का कर्तव्य है। उनको पुरुषार्थ कहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ कहे गये हैं। इनमें मोक्ष या मुक्ति सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है। संसार के समस्त प्राणी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, इन तीन प्रकार के दुःखों से सदा संतप्त रहते हैं। उनसे छुटकारा पाना ही पुरुष का अंतिम लक्ष्य है, साध्य है।

भारतीय दर्शनों की इस मुक्ति विषयक सामान्य भूमिका कर दिग्दर्शन कराने के पश्चात् अब विशेष स्पष्टीकरण के साथ भारत के मूल-दर्शन जैनदर्शन की मोक्ष सम्बन्धी धारणा को प्रस्तुत करते हैं।

जैनदर्शन में मोक्षवर्णन की सामान्य रूपरेखा - जैनदर्शन अध्यात्मवादी दर्शन है। उसकी प्रत्येक वृत्ति, प्रवृत्ति का परमलक्ष्य आत्यन्तिक सुख, परम समाधि प्राप्त करना है इस स्वीकृति के साथ उस सुख-समाधि को प्राप्त करने की सामान्य योग्यता का रूप क्या है? मूलतः आत्म-स्वरूप से परमशुद्ध होकर भी उससे दूर क्यों है? इसके कारण क्या हैं? उन कारणों से आत्मा किन-किन अवस्थाओं को प्राप्त करती है? ये अवस्थाएँ यदि औपाधिक हैं तो उपाधियों को दूर करने के कारण क्या हैं? उपाधियों के दूर

होते जाने के प्रसंग में आत्मा किन-किन भूमिकाओं को प्राप्त करती है? अंतिम भूमिका प्राप्त हो जाने के अनन्तर आत्मा की उपलब्धि का क्या रूप है? उस उपलब्धि में रमण करती आत्मा कहाँ और कब तक रहती है? आदि प्रश्नों का समाधान किया है।

अब इस समाधान के क्रम में सर्वप्रथम मोक्षप्राप्ति के अधिकारी की सामान्य योग्यता का निर्देश करते हैं।

मोक्षप्राप्ति के अधिकारी की सामान्य योग्यता - हमारा यह जगत अनन्त जीवों से भरा हुआ है। नर-नारक, सुर-असुर, पशु-पक्षी आदि उनकी भिन्न-भिन्न योनियाँ हैं, भिन्न-भिन्न आकृतियाँ हैं। परन्तु उन सभी की यह साहजिक वृत्ति है- बन्धन से मुक्ति। इसमें किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं है। उदाहरण के रूप में पिंजरे में पालित तोते और पिटारी में परावृत सर्प को देखें। उनको खान-पान आदि की सुविधायें सुलभ हैं, किन्तु अवसर मिलते ही पिंजरे व पिटारी के बंधन से मुक्त हो स्वतंत्र संचरण के लिये तत्पर रहते हैं। बंधन से मुक्ति की साहजिक वृत्ति होने पर भी यह तो सभी का अनुभव है कि उपलब्धि योग्यता पर आधारित है। योग्यता के अनुरूप सफलता मिलती है। अतः मोक्ष-विचार के संदर्भ में उसकी प्राप्ति का अधिकारी कौन है, कैसे बना जा सकता है और उसकी क्या योग्यता होनी चाहिये? समाधान के लिये सामान्य और न्यूनतम मानदंड यह होगा -

जो ममत्व, मान-बढ़ाई, वैर-विरोध, राग-द्वेष, कषाय-मद से मुक्त है, मौनी है, सम्यग्दृष्टि, सदाचारी है अल्पभोजी, अल्पभाषी, जितेन्द्रिय, अनासक्त है। आरंभ-परिग्रह का त्यागी है, हिंसा से सर्वथा निवृत्त है, दृढ़तापूर्वक संयम का पालन करने वाला है, निर्ग्रन्थ-प्रवचन का पालक, जीवन-मरण की आशा से निस्पृह है, हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञाता है, ज्ञान और क्रिया का समन्वित रूप में आचरण करने वाला है आदि तथा इसी प्रकार के अन्यान्य गुणों से युक्त एवं तदनुकूल आचार-विचार की वृत्ति वाला वह अवश्य मोक्ष प्राप्त करेगा, मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी है।

मोक्ष प्राप्ति के बाधक साधक कारण - मोक्षप्राप्ति के अधिकारी की सामान्य योग्यता को जान लेने के बाद अब मोक्ष के बाधक और साधक कारणों का निर्देश करते हैं।

लोक व्यवहार में जैसे प्रतिबंधक साधन, बेड़ी, कारावास आदि बंधन के कारण माने जाते हैं, वहीं स्थिति आध्यात्मिक क्षेत्र की जानना चाहिये कि कर्मों का आचरण आत्मा की मुक्ति में बाधक है।

यह कर्मावरण संसारी जीव के साथ अनादिकाल से जुड़ा हुआ है। इस जुड़ने के निमित्तों को जैन-दर्शन में आस्रव और बंधनाम से कहा है। आत्मा के मूल स्वरूप को प्रतिबिम्बित, प्रकाशित होने देना कर्म का कार्य है। द्रव्य और भाव उसके दो प्रकार हैं। द्रव्यकर्म पौद्गलिक वर्गणा रूप है और भावकर्म जीवन की राग-द्वेषादि वैभाविक परिणति रूप है। इन दोनों का ऐसा साहचर्य है कि जब तक आत्मा में राग-द्वेष आदि परिणति है, तब तक द्रव्यकर्म रूप पौद्गलिक वर्गणायें जीव से संबद्ध होती रहेंगे और कर्म रूप पौद्गलिक वर्गणाओं के सद्भाव रहते राग-द्वेष आदि भावकर्म का भी सद्भाव रहेगा। आत्मा के साथ कर्म-सम्बन्ध होने के मार्ग को आस्रव और बंध हो जाने को बंध कहते हैं।

आस्रव और बंध के कारण समान हैं। सामान्य से इन हेतुओं की संख्या पाँच है - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। इनमें भी कषाय और योग मुख्य हैं। इनका सद्भाव रहते कर्मों का

आस्रव और बंध अवश्य होता रहेगा। इनमें भी कषाय मुख्य हैं। क्योंकि यह श्लेष्मण क्षमता के कारण कर्मपुद्गलों को आत्मा के साथ चिपकने और उनमें फलदान शक्ति उत्पन्न करने में सहकारी है। योग अपने परिस्पन्दन द्वारा कर्म पुद्गलों को आत्मा की ओर आकर्षित करता है। परन्तु इन दोनों से रहित आत्मा कर्मबंधन नहीं करती है।

आस्रव और बंध के कारण संसारी जीव को जो अनादि काल से कर्मबंधन होता आ रहा है, वह सांत है। उसका अन्त अवश्य होता है। इसकी स्वर्ण पाषाण व शुद्ध स्वर्ण की स्थिति से स्पष्ट समझा जा सकता है। स्वर्ण पाषाण में अनादिकाल से मिट्टी आदि का संयोग है। किन्तु अग्निताप आदि नियमितों के द्वारा शुद्ध स्वर्ण रूप को प्राप्त कर लेता है। इसी उदाहरण के प्रकाश में कर्मावरण को आत्मा से विलग होने की प्रक्रिया को समझें। कर्मबंधन की परंपरा का अन्त करने के लिये जैनदर्शन में द्विमुखी प्रक्रिया बतलाई है - एक तो कर्मागमन के मार्गों, खेतों को रोक देना और दूसरी संचित कर्मों को निःशेष करना। इन दोनों को क्रमशः संवर और निर्जरा कहा जाता है। संवर के द्वारा नवीन कर्मों का आगमन रुकता है और निर्जरा द्वारा पूर्व संचित कर्मों का क्षय किया जाता है। इस प्रकार संवर द्वारा नवागत कर्मों का निरोध और निर्जरा से संचित कर्मों का क्षय होता है और वैसा होने पर जीव मुक्त हो जाता है।

मोक्ष साधक कारणों की व्याख्या - मोक्ष के बाधक कारणों का तो कार्य निश्चित है कि कार्य में बाधा डालना, अतएव यहाँ साधक-कारणों का कुछ विशेष विचार करते हैं।

संवर आस्रव का प्रतिबंधक है। अर्थात् आस्रव का निरोध संवर कहलाता है। आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद कषाय और योग के प्रतिपक्षी संवर के कारण होंगे। परन्तु आस्रव का निरोध किया जाना कैसे संभव हो? उसको ध्यान में रखकर कहा है - १. गुप्ति २. समिति ३. धर्म (चिन्तन) ४. अनुप्रेक्षा (संसार, शरीर) आदि के स्वरूप का चिन्तन) ५. परिषह जप और ६. चारित्राराधना। इनके क्रमशः तीन, पाँच, दस, बारह, बाईस और पाँच उत्तर भेद हैं। इन सब के नाम, लक्षण और कार्य की जानकारी के लिये शास्त्रों को देखिये। विस्तारभय से उनका वर्णन नहीं किया जा रहा है।

निर्जरा के हेतु भी वही हैं जो संवर के हैं। किन्तु इनके साथ तप का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिये। क्योंकि जैसे किसी गीली वस्तु को सुखाने के लिये तपाना पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा के साथ संश्लिष्ट कर्मों को विलग करने, उनका क्षय करने के लिये तप साधना आवश्यक है। बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से तप के मूल दो प्रकार हैं और इन दोनों के भी क्रमशः छह-छह भेद हैं। जो क्रमशः इस प्रकार है -

बाह्य तपः - १. अनशन (आहार का त्याग) २. उनोदर (भूख से कम खाना) ३. वृत्तिसंक्षेप (विविध वस्तुओं के गृद्धिभाव को कम करना) ४. रसपरित्याग (दूध, घी आदि मदकारी पदार्थों का त्याग) ५. कायक्लेश (सर्दी, गर्मी, तथा विविध आसनों द्वारा शरीर को संयमित करना) ६. संतीनता (अंगोपांगों का संकोच कर रहना, एकान्त स्थान में संयमभाव से रहना)।

आभ्यन्तरतपः - १. प्रायश्चित्त (दोषशोधन) २. विनय (नम्रता) ३. वैयावृत्त (सेवा) ४. स्वाध्याय (अध्ययन) ५. ध्यान ६. व्युत्सर्ग (शरीर आदि से ममत्व त्याग, कषायों को क्रश करना)।

यह दोनों प्रकार के तप परस्पर सापेक्ष होते हुए भी आप्मान्तर तप मुख्य है। इनसे विशेष कर्मक्षय होता है।

संवर-निर्जरा का फलितः मोक्ष का लक्षण - कारण के सञ्ज्ञाव में कार्य अवश्य होता है। संवर और निर्जरा कर्मक्षय के कारण है। बंधन के विघातक है। अतएव इनके द्वारा समग्र रूपेण कर्म क्षय होने से आत्मा की जो स्थिति बनती है, वही मोक्ष है। मोक्ष अर्थात् आत्मा की सर्वांगीण पूर्णता, पूर्ण कृतकृत्यता एवं परमपुरुषार्थ की सिद्धि। इस स्थिति के प्राप्त होने पर आत्मा कर्मकलंक, शरीर आदि से सर्वथा विलग होकर अनन्त स्वाभाविक ज्ञानादि गुणों और अव्याबाध सुखरूप विलक्षण अवस्था में रूपान्तरित हो जाती है। मोक्ष जीव की वह अवस्था है, जब सब बंधनों का अभाव हो जाता है। दैहिक, वाचिक, मानसिक सब दोष निःशेष हो जाते हैं। सभी प्रकार की उपाधियों से विमुक्त स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है।

यद्यपि मोक्ष का कोई भेद नहीं है, किन्तु अपेक्षा भेद से आत्मा को क्षायिक ज्ञान, दर्शन और यथाख्यातचारित्र रूप स्थिति प्राप्त हो जाने को भावमोक्ष और कर्मजन्य उपाधियों एवं कर्मों के सर्वथाक्षय होने को द्रव्यमोक्ष का कहा जाता है। अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार धाति कर्मों का क्षय भावमोक्ष है और वेदनीय, आयु, नाम गोत्र, इन चार अघाति कर्मों का क्षय द्रव्यमोक्ष है। इन दोनों में से प्रथम को जीवन मुक्त और द्वितीय को विदेहमुक्त भी कहा जा सकता है।

मुक्तात्मा के मौलिक गुण -

कर्ममुक्त आत्मा के मौलिक गुणों का यथाप्रसंग पूर्व में कुछ उल्लेख किया है, अतः पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं रह जाती है। किन्तु दर्शनान्तरों ने मुक्तात्मा को निर्गुण माना है। उनके मत से मुक्ति प्राप्त आत्मा की स्थिति अपने अविनाभावी असाधारण गुणों से विहीन है। दूसरे शब्दों में कहें तो जड़ पदार्थों की तरह स्थिति हो जाती है। किन्तु इस भ्रान्त धारण का निराकरण करने के लिये जैन दर्शन का मतव्य है कि जब यह माना जाता है कि इहलोक स्थित आत्मा उपयोग ज्ञानदर्शन आदिगुण युक्त है तब मुक्तावस्था में भी उन्हीं गुणों से संपन्न रहती है, यह स्वतः सिद्ध है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि कर्मावृत्त ऐहिक शरीरधारी आत्मा में वे गुण पूर्ण रूपेण स्पष्ट नहीं थे किन्तु मुक्तात्मा पूर्णतया उन गुणोयुक्त रहती है। संक्षेप में उन गुणों के नाम इस प्रकार हैं - १. अनन्तज्ञान २. अनन्तदर्शन ३. अव्याबाधसुख ४. क्षायिकसम्यक्त्व ५. अक्षयस्थिति ६. अमूर्तत्व ७. अगुरुलघुत्व ८. अनन्त वीर्य (शक्ति) इनके अतिरिक्त अन्य भी अनन्त गुण हैं। किन्तु यहाँ संकेत मात्र के लिये इन गुणों का उल्लेख इसलिये किया है कि मुक्तात्मा अपने मौलिक गुणों युक्त सदैव रहती है। कालान्तर में भी किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं पाई जाती है।

मुक्तात्मा का अवस्थान - अब यह प्रश्न है कि अन्य द्रव्यों की तरह जीव का भी अवस्थान यह लोक है तो क्या कर्मावरण से मुक्त आत्मा का अवस्थान यह दृश्यमान जगत है या अन्य कोई क्षेत्र, कर्मयुक्त आत्मा कहाँ रहती है? इसका उत्तर है कि मुक्तात्मा स्थूल (औरादिक) और सूक्ष्म (तेजस्वकार्मण) शरीर को सदा के लिये छोड़कर अशरीरी होकर अविग्रह (सीधी रेखा जैसी) गति से ऊर्ध्व गमन कर लोक के अग्रभाग में स्थित मुक्ति क्षेत्र (सिद्धशिला) में स्थित हो जाती है। इस गति में केवल एक समय लगता है।

लोकाग्रभाग तक मुक्त जीव की गति होने का कारण वहीं तक धर्मास्तिकाय का सद्भाव पाया जाता है, जो जीव और पुद्गलों की गति में सहकारी द्रव्य है। कोई अवरोधक कारण नहीं होने से अविग्रह गति होती है और ऊर्ध्वगमन करना आत्मा का स्वभाव है। जो निम्नांकित चार कारणों और उनके उदाहरणों से समझ में आ जाता है -

१. **पूर्वप्रयोग** - कुंभकार द्वारा दंड हटा लेने पर भी घुमाया गया चक्र घूमता रहता है। वैसे ही बद्ध कर्मों से मुक्त होने पर उत्पन्न वेग के कारण मुक्तात्मा ऊर्ध्व गति करती है।

२. **संग का अभाव** - मिट्टी से लपेटी तूँबड़ी पानी में डाली जाने पर धीरे धीरे लेप के हटते जाने के बाद पानी की सतह पर आ जाती है, वैसे ही कर्म लेप से मुक्त आत्मा भी लोक के ऊर्ध्वतम भाग में स्थित होती है।

३. **बंध छेद** - एरंड बीज कोष से मुक्त होने पर छिटक कर ऊपर उछलता है, वैसे ही कर्मबंधन का उच्छेद होने पर आत्मा ऊर्ध्व गति करती है।

४. **गतिपरिणाम** - आत्मा स्वभावतः ऊर्ध्वगति करने वाली है। अतः निर्वात अग्नि की लो के ऊपर की ओर उठने की तरह मुक्तात्मा ऊर्ध्वगति करती है।

इस प्रकार मुक्तात्मा के लोकाग्रपर्यन्त अविग्रह ऊर्ध्वगति करने के कारणों को जानना चाहिये।

मुक्तात्मा का परिचय - जो स्थूल मूर्त रूपी है, उसका परिचय तो किसी आकार-प्रकार द्वारा दिया भी जा सकता है। किन्तु मुक्तात्मा की तो ऐसी स्थिति नहीं है, वह अमूर्त अरूपी है। इसलिये उसका वाणी, तर्क, बुद्धि, उपमा आदि के द्वारा भी परिचय दिया जाना संभव नहीं है। निषेधपरक शब्दों द्वारा कुछ परिचय दिया जा सकता है। जैसे वह न तो ह्रस्व है, न दीर्घ उसका न कोई वर्ण, गंध, रस, स्पर्श है। न वह स्त्री, पुरुष-नपुंसक है आदि। वैदिक परंपरा में मुक्तात्मा के परिचय के लिये नेति-नेति शब्द प्रयुक्त हुआ है।

मुक्तात्मा की अवगाहन - मोक्षगामी आत्मा के वर्तमान भव में जितनी ऊँचाई वाले समस्त शरीर में आत्मप्रदेश व्याप्त रहते हैं उस ऊँचाई में से तृतीय भागन्यून करने पर जितनी ऊँचाई रहे, उतनी ऊँचाई में मुक्तात्मा के आत्मप्रदेश मुक्ति क्षेत्र में व्याप्त रहते हैं। शास्त्रों में मोक्षगामी आत्मा के वर्तमान शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई पाँच सो धनुष, मध्यम ऊँचाई सात हाथ और जघन्य दो हाथ प्रमाण बताई गई है। इनमें से तृतीयांश कम करके शेष उत्कृष्ट मध्यम, जघन्य अवगाहना जानना चाहिये और उस अवगाहना से वह अनन्त काल तक वहाँ अवस्थित रहती है।

मुक्त जीवों की तरह संसारी जीव भी अनन्त हैं - कतिपय तर्क करते हैं कि अगाध जल से भरा कुआ भी पानी निकालते निकालते खाली हो जाता है, वैसे ही मुक्ति क्षेत्र में अनन्तकाल से अनन्त आत्मायें अब स्थित हैं, हो रही हैं और होंगी, तब वह समय भी आ सकता है, जब संसार खाली हो जाये, एक भी जीव संसार में न रहे। उस तर्क का समाधान यह है -

काल अनन्त है। अतीत, वर्तमान और अनागत के रूप में उसके भेद मान लेने पर भी काल की अनन्तता में कोई अन्तर नहीं आता है। इसी प्रकार आत्मायें भी अनन्त हैं। जब अनन्त अतीत में भी यह

संसार संसारी आत्माओं से रिक्त नहीं हुआ तो अनन्त अनागत में भी यह कैसे रिक्त होगा? क्योंकि जिस प्रकार अनागत का एक समय वर्तमान बनकर अतीत बन जाता है, किन्तु अनागत जैसा का तैसा अनन्त बना रहता है, उसकी अनन्तता कभी समाप्त नहीं होती। इसी प्रकार आत्माओं की अनन्तता में अन्तर नहीं आता है। अनन्त की यही तो अन्तता है कि कितनी भी वृद्धि हानि हो, लेकिन अपनी इयत्ता का अतिक्रमण नहीं करता है। अतएव अनन्त आत्माओं को मुक्ति प्राप्त कर लेने पर भी संसारी आत्माओं की अनन्तता में न तो किसी प्रकार का अन्तर आने वाला है और न संसारी आत्माओं से संसार रिक्त होने वाला है।

मुक्तात्माओं का पुनरागमन नहीं - मुक्तात्माओं का मुक्ति से प्रत्यावर्तन होकर पुनः संसार में न आने का कारण यह है कि जिस प्रकार शुद्ध स्वर्ण पुनः कीटकालिमा से संयुक्त नहीं होता है, उसी प्रकार कर्मकलंक से सर्वथा मुक्त मुक्तात्मा कर्मसंयोग की प्राप्त नहीं करती है। दूसरी बात यह है कि बीज के जल जाने पर अंकुरोत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही संसार के कारणभूत कर्मबीज के जल जाने पर भवोंकुर भी उत्पन्न नहीं होता है। इसी कारण मुक्तात्माओं का संसार में प्रत्यावर्तन नहीं होता है।

मुक्तात्माओं संबंधी अनेक बिन्दुओं का संकेत करना अभी शेष है। विस्तारभय से वर्णन किया जाना संभव नहीं हो सका है। इस विहंगावलोकन से पाठकों को पर्याप्त बोध हो सकेगा यह हमारा मत है।

अब मुक्तिक्षेत्र सम्बन्धी वक्तव्य प्रारम्भ करते हैं।

मुक्ति क्षेत्र का स्वरूप व नाम - मुक्तक्षेत्र लोक के ऊपरी अग्रभाग में स्थित है। जैनदर्शन के अनुसार मध्य लोकवर्ती ढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त होती है। जिसकी लंबाई-चौड़ाई पैतालीस लाख योजन प्रमाण है। इतना ही क्षेत्र मुक्ति क्षेत्र का है। मुक्त क्षेत्र की मोटाई प्रारंभ में आठ योजन की है। और ऊपर-ऊपर क्रमशः पतली, होती हुई अंतिमभाग में मक्खी के एक पंख से भी अधिक पतली मोटाई रह जाती है। यह शंख, स्फटिकमणि और कुन्दपुष्प के समान श्वेत, निर्मल और शुद्ध है यह उत्तान (ऊपर की ओर मुख किये हुए) छत्र के समान आकार वाला है तथा सवार्थ सिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर है तथा मुक्ति क्षेत्र से एक योजन ऊपर लोकान्त है। यह क्षेत्र धनोदधि, धनवात और तनुवात इन तीन वातवलयों से परिवेष्टित है। अतीत, अनागत और वर्तमान काल में मुक्त हुई, होंगी और हो रही आत्मायें स्वरूप से इसी मुक्ति क्षेत्र में स्थित होती हैं।

मुक्ति क्षेत्र के आगमों में बारह सार्थक नाम इस प्रकार बताये हैं -

१. **ईषत्** - रत्नप्रभा आदि अन्य नारक पृथ्वियों की अपेक्षा यह पृथ्वी छोटी होने से ईषत् कहलाती है।
२. **ईषत् प्राग्भार** - रत्न प्रभा आदि अन्य पृथ्वियों की अपेक्षा इसकी ऊँचाई (प्राग्भार) अल्प है। अतः इसको ईषत्प्राग्भारा कहते हैं।
३. **तन्वी** - अन्य पृथ्वियों से यह पृथ्वी तनु होने से तन्वी कहलाती है।
४. **तनुतन्वी** - विश्व में जितने तनु (पतले) पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा यह पृथ्वी ऊपरी भाग में पतली है।
५. **सिद्धि** - इस क्षेत्र में पहुंचकर मुक्तात्मा स्वस्वरूप की सिद्धि कर लेती है, जिससे यह भी सिद्धि कहलाती है।

६. सिद्धालय - मुक्त आत्मायें सिद्ध कहलाती हैं, क्योंकि उन्होंने कर्मबंधन से सर्वथा मुक्त होकर परमपुरुषार्थ मोक्ष सिद्ध कर लिया है और इसको सिद्ध करने के अनन्तर यह क्षेत्र उनका आलय (वासस्थान) बनता है। इसीलिये इसका नाम सिद्धालय है।

७. मुक्ति - जिन आत्माओं ने कर्मबंधन से सर्वथा मुक्ति प्राप्त करली है, उन आत्माओं का ही इस क्षेत्र में आगमन होता है, इसलिये यह क्षेत्र भी मुक्ति कहलाता है।

८. मुक्तालय - मुक्त आत्माओं का आलय होने से यह क्षेत्र मुक्तालय कहलाता है।

९. लोकाग्र - लोक के अग्र भाग में स्थित होने से यह क्षेत्र भी लोकाग्र कहलाता है।

१०. लोकाग्रस्तूपिका - यह क्षेत्र लोक की स्तूपिका (शिखर) के समान होने इसका लोकाग्रस्तूपिता यह सार्थक नाम है।

११. लोकाग्रप्रतिवाहिनी - लोक के अग्रभाग के द्वारा वाहित किये जाने से यह भी मुक्तिक्षेत्र का नाम है।

१२. सर्वजीव-प्राण-भूत जीव सत्वसुखावहा चतुर्गति - के जीव कर्मक्षय करके इस क्षेत्र को प्राप्त करते हैं, और वे वहाँ शाश्वत सुख की प्राप्ति करते हैं।

इस प्रकार से मुक्ति क्षेत्र का संक्षिप्त संकेत करने के बाद अब मोक्ष मार्ग (मुक्ति प्राप्त करने के साधनों) का विचार करते हैं। जिनका अवलंबन लेकर आत्मा अपने लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त करती है।

मुक्ति मार्ग - जिस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में रोग, रोग हेतु, आरोग्य और औषधि, इस चार बातों का जानना आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिक विकास की साधना पद्धति में भी १. संसार २. संसारहेतु ३. मोक्ष और ४. मोक्षोपाय, इन चार का ज्ञान होना अवश्य है।

संक्षेप में संसार और संसार के कारकों का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। प्रकृत में उनका पुनः उल्लेख करना उपयोगी नहीं है। अतः मुक्ति के साधनों का कुछ विस्तार से वर्णन करते हैं।

कर्मक्षय होने पर मुक्ति प्राप्त होती है और कर्मक्षय के साधन के रूप में संवर और निर्जरा का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। परन्तु वे कब कार्यकारी होते हैं? उनके मुख्य कारणों को यहाँ मुक्तिमार्ग के रूप में समझना चाहिये।

जैन शास्त्रों में मुक्तिमार्ग का विचार दो विवक्षाओं से किया है - १. निश्चय २. व्यवहार। निश्चित से मुक्ति मार्ग एक है - क्षायिक भाव ज्ञानदर्शन आदि शुद्ध आत्मिक भावों की प्राप्ति। व्यवहार विवक्षा से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की समवेत साधना ही मुक्ति प्राप्ति का एक-मात्र मार्ग, उपाय है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये आचार्य उमास्वाति ने कहा है सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्राणि मोक्षमार्गः। इनके साथ तप का भी साधन के रूप में निर्देश किया है। जो सम्यक्चारित्र का ही एक अंग है। अतः इसका पृथक् निर्देश नहीं किया है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ सम्यक् विशेषण का साभिप्रायः प्रयोग किया है। यह जैनदर्शन को विशेषता का द्योतक है। मुक्ति का मार्ग केवल दर्शन, ज्ञान, चारित्र सामान्य नहीं, अपितु इनको सम्यक् होना

चाहिये। क्योंकि मिथ्या होने पर ये संसार के कारण होंगे। जिसकी दृष्टि सम्यक् आत्मस्वरूप चिन्तन परक है, वह सम्यग्दृष्टि है और उसके दर्शन, ज्ञान, चरित्र ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र कहलाते हैं।

सम्यग्दर्शन आदि तीनों के लक्षण इस प्रकार हैं :-

सम्यग्दर्शन - अपने-अपने स्वभाव में स्थित तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। अथवा मिथ्यात्वोदय जनित विपरीत अभिनिवेश से रहित पंचास्किय, षड्द्रव्य, जीवादि सात तत्त्व एवं जीवादि नौ पदार्थों का तथा तथ्य श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अथवा दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय, क्षयोपशम उपशम रूप अंतरंग कारण से जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस अंतरंग कारण की पूर्णता कहीं निसर्ग (स्वभाव) से होती है और कहीं अधिगम (परोपदेशादि) से होती है।

सम्यग्दर्शन सामान्यापेक्षा एक है। निसर्गज और अधिगमज के भेद से दो प्रकार का है। औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक के भेद से तीन प्रकार का है। शब्दों की अपेक्षा संख्यात, श्रद्धान करने वालों की अपेक्षा असंख्यात और श्रद्धान करने योग्य पदार्थों एवं अध्यस्यों की अपेक्षा अनन्त प्रकार का है।

सम्यग्ज्ञान - प्रमाण और नयों के द्वारा जीवादि सात तत्त्वों के संशयविपर्यय और अनध्यवसाय से रहित यथार्थ ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनपर्याय, केवल ये सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद हैं। उत्पत्ति में मन और इन्द्रियों की सहायता अपेक्षित होने से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष एवं पर निरेक्ष आत्मा से उत्पन्न होने के कारण अवधि, मनपर्याय और केवल ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाते हैं। मति, श्रुत और अवधि, ये तीन ज्ञान सम्यक् भी और मिथ्या भी होते हैं, शेष दो सम्यक् ही होते हैं। क्योंकि दोनों मिथ्यात्व के कारणभूत मोहनीयकर्म का अभाव होने से विशुद्ध आत्मा को ही संभव है। मति और श्रुत ये दो ज्ञान सभी संसारी (सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि) जीवों के पाये जाते हैं। अवधिज्ञान भव प्रत्यिक और गुण (क्षयोपशम) प्रत्यायिक होने से दो प्रकार का है। भवप्रत्यायिक देव और नारकों एवं चरमशरीरी तीर्थंकरों में और दूसरा गुण प्रत्यायिक, मनुष्यतिथिचिं में संभव है। मनपर्याय व केवल ज्ञान सम्यग्दृष्टि मनुष्यों के ही होते हैं। मिथ्यादृष्टि के अति, श्रुत और अवधिज्ञान मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान एवं विभंगज्ञान कहलाते हैं।

सम्यक्चरित्र - अशुभ से निवृत्ति और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होना सम्यक् चरित्र है। अथवा संसार के कारणभूत रागद्वेषादि की निवृत्ति के लिए ज्ञानवान पुरुष का शरीर और वचन की बाह्य क्रियाओं से तथा आभ्यान्तर मानसिक क्रियाओं से विरत होना सम्यक्चरित्र कहलाता है। यह सम्यग्ज्ञान पूर्वक होता है और सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन पूर्वक। अतएव सम्यक्त्व के बिना सम्यक् चरित्र नहीं होता है, यह सिद्ध हुआ। चरित्र में सम्यक् विशेषण अज्ञानपूर्वक आचरण की निवृत्ति के लिये है।

सामान्यतः चरित्र एक प्रकार का है। अर्थात् चरित्रमोह के उपशम, क्षय या क्षयोपशम से होने वाली आत्मविशुद्धि की दृष्टि से चरित्र एक है। बाह्य आभ्यान्तर निवृत्ति अथवा निश्चय व्यवहार या प्राणीसंयम इन्द्रियसंयम की अपेक्षा दो प्रकार का है। औपशमिक, क्षायिक क्षयोपशमिक अथवा उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य विशुद्धि के भेद से तीन प्रकार का है। छद्मस्थों का सराग और वीतराग तथा सर्वज्ञों का संयोग और अयोग इस तरह चार प्रकार का है। सामायिक छेदोपस्थापना परिहार विशुद्धि सूक्ष्म रूपराय और यथाख्यात के भेद से पाँच प्रकार का है। इसी प्रकार विविध निवृत्ति रूप परिणामों की दृष्टि से संख्यात, असंख्यात और अनन्त विकल्प रूप है।

साधनों का साहचर्य नियम - उक्त तीनों साधनों में से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में साहचर्य सम्बन्ध है। जैसे मेघपटल के दूर हो जाने पर सूर्य के प्रताप व प्रकाश एक साथ प्रगट हो जाते हैं, उसी प्रकार जिस समय दर्शन मोह के उपशम या क्षयोपशम से मिथ्यादर्शन की निवृत्ति होने से सम्यग्दर्शन प्रादुर्भूत होता है, उसी समय मिथ्याज्ञान की भी निवृत्ति हो कर सम्यग्ज्ञान का भी आविर्भाव हो जाता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का साहचर्य नियमतः निश्चित है। किन्तु सम्यक्चारित्र की अनियत स्थिति है। अर्थात् किसी में सम्यग्दर्शन-ज्ञान के साथ ही चारित्र हो भी सकता है और किसी को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के प्रगट होने के कुछ समय बाद सम्यक्चारित्र हो।

साधनों की पूर्णता व एकता आवश्यक - उपर्युक्त कथन से यह ज्ञात हो गया है कि मुक्ति साधनों का साहचर्य नियम क्या है, लेकिन पूर्णता क्रम से होती है। सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन, तदनन्तर सम्यग्ज्ञान और अन्त में सम्यक्चारित्र पूर्ण होता है। इनमें से एक भी साधन न हो, एक की भी अपूर्णता हो तो मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। तेरहवें गुणस्थान के प्रारंभ में यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पूर्ण हो जाते हैं फिर भी सम्यक्चारित्र की पूर्णता न होने से मुक्ति नहीं होती है। चारित्र की पूर्णता अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान में होती है। चारित्र मोहनीय का अभाव हो जाने से क्षीण मोह नामक बारहवें गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र है, जो चारित्र की पूर्णता का सूचक है, तथापि चारित्र की पूर्णता के लिये योग और कषाय का अभाव भी अपेक्षित है। बारहवें गुणस्थान में कषाय का अभाव हो गया है, लेकिन योग का सद्भाव है जो तेरहवें गुणस्थान के अन्त तक बना रहता है। इसीलिये तेरहवें गुणस्थान में भी चारित्र अपूर्ण माना गया है।

यहाँ यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि औपशमिक क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि को प्राप्त करने के बाद ही तत्काल मुक्ति प्राप्त नहीं हो जाती है। क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि से संपन्न आत्मा उत्क्रांति करती हुई विभिन्न श्रेणियों स्थानों को प्राप्त कर अयोगकेवली ही मुक्त होती है औपशमिक सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त आत्मा एक निश्चित तथा उपशान्ति मोह गुणस्थान तक उत्क्रांति कर पतन करती है और अपने संसार के कारण भूत मिथ्यात्व गुणस्थान पर आ पहुँचती है।

सम्यग्दर्शन आदि तीनों में लाक्षणिक भिन्नता होने से पार्थक्य है, जिससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि पृथक्-पृथक् तीन मोक्ष के मार्ग हैं। किन्तु इन तीनों का एकत्व होने पर ही आत्मा निःशेष रूप से द्रव्य और भावकर्मों से सर्वथा रहित हो मुक्त होती है।

मुक्ति प्राप्ति के लिये सम्यग्दर्शन आदि तीनों के एकत्व की आवश्यकता क्यों है? इसके लिये हम रोगोपचार की प्रक्रिया पर दृष्टिपात करें। जिस प्रकार निरोग होने के लिये औषधि पर श्रद्धान, ज्ञान और चिकित्सक द्वारा बताये गये आचार के अनुसार प्रवृत्ति की जाती है, तीनों में से एक के बिना रोग दूर नहीं हो सकता है, उसी प्रकार भवरोगी के लिये संसार रोग से मुक्त होने के लिये सम्यग्दर्शन, या ज्ञान या चारित्र से मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। तीनों की एकता अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रसिद्ध है -

हतं ज्ञानं क्रिया हीनं ह्य चाज्ञानिनां क्रिया।

धावन् किलांधको दग्धः पश्चत्रपिच पंगुलः।

संयोगमेवेह वदन्तितज्ज्ञा, लहोक चक्रेण रथः प्रयाति।

अन्यश्च पंगुश्च वने प्रविष्टौ, सौ संप्रभुक्तौ नगरं प्रविष्टौ॥

मनोविज्ञान की दृष्टि से भी विचार करें तो ज्ञात होगा कि सम्यग्दर्शन आदि तीनों में तीन मानसिक शक्तियों का समायोजन किया गया है ज्ञान, इच्छा प्रयत्न (क्रिया)। इनमें ज्ञान सम्यग्ज्ञान रूप है, इच्छा सम्यग्दर्शन रूप और प्रयत्न सम्यक्चारित्र्य रूप है। इन तीनों घटकों का एकत्व और तालमेल जैसे लोक व्यवहार में सफलता प्राप्त कराता है, वही स्थिति मुक्ति प्राप्ति के लिये भी समझना चाहिये कि सम्यग्दर्शन आदि तीनों की पूर्ण एकता आवश्यक है। केवल पृथक्-पृथक् ज्ञानादि से मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। ऊपर के दृष्टान्त में भी यही स्पष्ट किया गया है।

मुक्ति अभावात्मक नहीं है सम्यग्दर्शन आदि तीनों साधनों की पूर्णता और एकता होने पर मुक्ति प्राप्त होती है। परन्तु वह हमारे लिए प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष है। इसलिये कतिपय व्यक्ति मुक्ति की सत्ता में शंका करते हैं। इसका आशय यह हुआ कि किसी ने अपने परदादा को नहीं देखा और कहे कि मेरे परदादा नहीं थे तो कौन उसकी बात पर विश्वास करेगा? मोक्ष के अस्तित्व के विषय में शंका करने वाली इसी प्रकार के माने जायेंगे। शास्त्रीय प्रमाणों से मोक्ष के अस्तित्व की सिद्धि इस प्रकार है -

जैसे भविष्य में होने वाले चन्द्र-सूर्य ग्रहण आदि का ठीक-ठीक ज्ञान ज्योतिषास्त्र से हो जाता है कि अमुक दिन, अंश, क्षेत्र में ग्रहण होगा। इसी प्रकार सर्वज्ञ प्रतिपादित आगम से मुक्ति के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

अनुमान प्रमाण से भी मुक्ति का अस्तित्व सिद्ध होता है। जैसे धुरे के घूमने घटीयंत्र घूमता है। यदि बैलों का घूमना रुक जाये तो धुरे का और धुरे के रुकने पर घटीयंत्र का घूमना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार कर्मोदय रूपी बैलों के चलने पर ही चातुर्गतिक रूप संसार धुरे का चक्र घूमता है और चतुर्गति रूपी धुरा ही अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक आदि वेदना रूपी घटीयंत्र को घुमाता रहता है। कर्मोदय की निवृत्ति हो जाने पर चतुर्गति का चक्र रुक जाता है और उसके रुक जाने पर संसार रूपी घटी यंत्र का चलना भी बन्द हो जाता है। क्योंकि कारण के अभाव में कार्य नहीं होता है संसार रूपी घटीयंत्र के रुकने का नाम ही मुक्ति है। सारांश यह कि समस्त दुःखों और दुःख के हेतुभूत कर्मों का विनाश हो जाने पर आत्मा की जो स्थिति बनती है, वह मोक्ष है। अतः उसको अभाव रूप नहीं माना जा सकता है। फिर भी कपोल कल्पनाओं से घिरे हुए शंकाग्रस्त रहें तो भले रहें।

यद्यपि अन्यान्य दर्शनों में भी मुक्ति का विचार किया गया है। किन्तु प्रकृत में शीर्षक के अनुसार जैनदर्शन के मुक्ति विषयक विचारों को प्रस्तुत किया है।

* * * * *

खजांची मोहल्ला

बीकानेर ३३४००१ राजस्थान

जैन धर्म में व्रत

• डॉ. ए.बी. शिवाजी

विश्व में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिस ने व्रत की आवश्यकता और उसके महत्व को प्रतिपादित नहीं किया हो। इस लेख में हम अपने आप को “जैन धर्म में व्रत” तक ही सीमित रखेंगे क्योंकि जिस सूक्ष्मता से जैन में धर्म व्रतों का अन्वेषण किया गया और विस्तारित किया गया वैसा अन्य धर्मों के विद्वान नहीं कर सके हैं। जैन धर्म में व्रतों के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि “आरम्भ में व्रतों” की संख्या बहुत थोड़ी थी। आदि पुराण में केवल दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडश कारण, और अष्टाह्निका व्रतों का ही उल्लेख मिलता है। अधिकांश व्रतों की कल्पना और रचना भट्टारकों द्वारा चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी के बीच हुई जो काम्यव्रतों की श्रेणी में आते हैं।^१

जैनागम में व्रत की परिभाषा निम्न रूप से बताई गई है -

संकल्प पूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभ कर्मशाः।

निवृत्तिवो व्रतं स्याद्वा प्रवृत्ति शुभ कर्मशि॥

अर्थात् सेवन करने योग्य विषयों में संकल्प पूर्व नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मों से संकल्प पूर्वक विरक्त होना अथवा पात्रदानादिक शुभ कर्मों में संकल्प पूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है। देवेन्द्र मुनि शास्त्री के अनुसार व्रत का अर्थ, किसी कार्य को करने या न करने का मानसिक निर्णय बतलाते हैं। जिसे व्यवहार में संकल्प कहा जा सकता है किन्तु वे संकल्प और व्रत में अन्तर करते हैं। वे लिखते हैं - “संकल्प मानसिक निर्णय ही है और निर्णय शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के हो सकते हैं, पर व्रत सदा शुभ ही होता है। वह जीवन को नियंत्रित करने वाली स्वेच्छा से स्वीकृत मर्यादा है। समाज, राष्ट्र और परिवार की सुव्यवस्था, सुरक्षा और सुख शांति के लिए व्रत ग्रहण करना आवश्यक है। व्रत एक प्रकार का आत्मानुशासन है जो शरीर, इन्द्रिय और मन को अपने अनुशासन में रखता है।”^२

व्रत और विवेक में गहरा सम्बन्ध है क्योंकि व्रति केवल व्रत ही नहीं लेता, पहिले वह विवेक को जगाता है, श्रद्धा और संकल्प को दृढ़ करता है, कठिनाइयाँ झेलने की क्षमता पैदा करता है। प्रवाह के प्रति कूल चलने का साहस लाता है फिर वह व्रत लेता है।”^३

जैन धर्म में प्रचलित व्रत - महावीर ने जीवन व्रत साधना का प्रारूप प्रस्तुत किया था। इसी कारण साधना जीवन को दो वर्गों में बांटते हुए उन्होंने बारह व्रत बतलाये। इन बारह व्रतों की तीन श्रेणियाँ

१. महावीर जयन्ती स्मारिका, १९७२

२. जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप, देवेन्द्र मुनि शास्त्री पृ. १९३।

३. प्रवचन डायरी १९५६-५७, आचार्य तुलसी

हैं जो श्रावक वर्ग के लिए हैं। ये व्रत, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत हैं। वैसे पंच महाव्रतों का गुणगान जैन धर्म के सिद्धान्तों के रूप में प्रसिद्ध है, जिस में (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह गिनाये जाते हैं। ये पाँचों व्रत श्रावक और श्रमण दोनों के लिए हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि श्रमण जीवन में उनका पालन पूर्ण रूप से करता है और गृहस्थ उनका पालन आंशिक रूप से करता है।^४

अणुव्रत के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का ही समावेश है किन्तु श्रावक अपनी-अपनी क्षमता एवं स्थिति के अनुसार उसका पालन करते हैं।

गुणव्रत के अन्तर्गत दिशाव्रत, उपभोग, परिभोग परिमाण व्रत एवं अनर्थदण्ड का समावेश किया गया है।

शिक्षाव्रत के अन्तर्गत सामायिक, दैशावकाशिक, पौषधोपवास एवं अतिथि संविभाग भेद किये गये हैं।

अहिंसा व्रत - अहिंसा का पूरा आचरण महाव्रत कहलाता है और आंशिक रूप से पालन करना अणुव्रत कहा जाता है। प्रश्न व्याकरण वृत्ति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जहाँ अहिंसा के नामों का उल्लेख किया गया है वहाँ दया, दान, सेवा अभय आदि का उल्लेख भी अहिंसा के अन्तर्गत ही है। दशवैकालिक १/१ का उदाहरण देते हुए बलदेव उपाध्याय अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन' में लिखते हैं "इस प्रकार मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को क्षति न पहुँचाना सब पर समान भाव से दया करना, अभय दान देना, प्राणिमात्र की सेवा करना अहिंसा के रूप है।"^५ अहिंसा व्रत के रूप में "श्रमण को", डॉ. सागरमल जैन का कथन है, "सर्वप्रथम स्व और पर की हिंसा से विरत होना है" काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दूषित मनोवृत्तियों के द्वारा आत्मा के स्वगुणों का विनाश करना स्व हिंसा है। दूसरे प्राणियों को पीड़ा एवं हानि पहुँचाना पर हिंसा है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि भिक्षु जगत में जितने भी प्राणी हैं उनकी हिंसा जानकर अथवा अनजान में न करें, न करावें और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन ही करें।"^६ किन्तु एक सांसारिक व्यक्ति अथवा गृहस्थ के लिए जीवन निर्वाह हेतु हिंसा से बचना असम्भव है इस कारण गृहस्थ के लिए पाँच अहिंसा अणुव्रत बताये गये हैं -

(क) आरम्भिक हिंसा - भोजन बनाने, आग जलाने, गमन करने आदि आरम्भिक कार्यों में बहुत से छोटे-छोटे जीवों की हिंसा हो जाती है जिस से सर्वथा बचना गृहस्थ के लिए असम्भव है।

(ख) औद्योगिक हिंसा - कृषि आदि व्यवसायों में बहुत से छोटे-छोटे जीवों की रक्षा करना असम्भव है। अतः ऐसी हिंसा यदि होती है तो गृहस्थ के लिए क्षम्य है।

(ग) विरोधी हिंसा - मनुष्य को अपनी, अपने परिवार के सदस्यों, समाज व राष्ट्र की रक्षा डाकू, लुटेरे, असामाजिक प्राणियों से करनी पड़ती है। ऐसी दशा में मनुष्य को अपनी आत्म शक्ति के

४. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३१

५. भारतीय दर्शन- बलदेव उपाध्याय पृ. ६५-६६।

६. दशवैकालिक सूत्र ६/१०; जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३२।

द्वारा अपनी एवं आश्रितों की रक्षा प्राण देकर भी करना अनुचित नहीं है। वह अहिंसा अणुव्रत का पालन ही कहलायेगा क्योंकि उस की भावना हिंसा करने की नहीं है। भय से भागना भी उचित नहीं है। हिंसा आदि अशुभ भावना से अशुभ कर्मों का बंधन होता है। भावना रहित, शुद्ध, वीतराग अवस्था में किसी कर्म का बन्धन नहीं होता है।

(घ) संकल्पी हिंसा - मनुष्य जब विचार, संकल्प द्वारा या प्रमाद वश किसी प्राणी का जीवन नष्ट करता है, अथवा स्वाद या शौक के लिए किसी पशु को मार कर भोजन के रूप में ग्रहण करता है अथवा जो वस्तु पशु पक्षी के मारे जाने से बनती है, उसे संकल्पी हिंसा के अन्तर्गत रखा जाता है।^७ जहाँ तक हो सके मनुष्य को संकल्पी हिंसा से भी बचना चाहिये।

सत्यव्रत - महावीर स्वामी ने सत्य को भगवान के रूप में माना है (तं सत्त्वं खु भगवं) जैन धर्म एवं दर्शन के अनुसार पारसनाथ द्विवेदी अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन में सत्य की व्याख्या निम्न रूप से करते हैं -

“सत्य का अर्थ है असत्य (मिथ्या) का सर्वथा परित्याग अर्थात् मन, वचन और शरीर से मिथ्या आचरण का सर्वथा परित्याग करना ‘सत्य’ है। सत्य वह महाव्रत है जिससे हमारे जीवन में एक माधुर्य उत्पन्न होता है, नवीन स्फूर्ति एवं प्रेरणा उत्पन्न होती है, एक नया प्रकाश मिलता है। सत्य के विविध रूप हैं। क्षमा, निराभिमानता, विनम्रता, उदारता, सेवा आदि सभी सत्य के रूप हैं। राग-द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वश में होकर कभी मिथ्या आचरण कर बैठता है, अतः उनका सर्वथा परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्रकार से मिथ्या आचरण का परित्याग करना ‘सत्य’ है।^८

चाहिये रतन लाल जैन सत्य का विश्लेषण निम्न रूप से करते हैं - “अपने आर्थिक आदि लाभ के लिए दूसरों को धोखा देना या इस प्रकार कहना, संकेत करना या चुप रहना जिससे दूसरे मनुष्यों को भ्रम हो जाय या वे अन्यथा प्रकार समझ जायें असत्य आचरण है। यदि सत्य कह देने से कोई बड़ा अनर्थ होता है तो ऐसा सत्य भाषण भी उचित नहीं है। यदि किसी सत्य बात के कह देने से, किसी के घर कलह तथा आपस में मार-पीट होने की आशंका हो तो ऐसी बात को कहना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यदि कोई चोर, डाकू या अन्य व्यक्ति किसी के धन-अपहरण करने हेतु, उस व्यक्ति के घर का भेद लेना चाहे और अपने दुष्प्रयोजन को छिपाकर मीठी-मीठी बात बनावे, तो ऐसी अवस्था में उससे सत्य कहना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। ऐसे अवसरों पर मौन धारण करना ही उपयुक्त है। दूसरे मनुष्यों के गौरव कम करने या अपयश फैलाने के हेतु उनके गुप्त दोषों को प्रगट करना या अन्य प्रकार की बुराई करना अनुचित है। सत्य व्रती के लिए उचित है कि वह सदा सत्य की खोज करे, प्रत्येक बात पर निष्पक्ष बुद्धि से विचार एवं मनन करे, सत्य के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर रहे, जो सत्य प्रतीत हो उस को अंगीकार करे, जो विचार धारणायें असत्य मालूम हो, उनको त्याग दे।”^९

७. आत्म रहस्य- रतनलाल जैन पृ. १४९।

८. भारतीय दर्शन, पारसनाथ द्विवेदी, पृ. ६५-६६।

९. आत्म रहस्य- रतनलाल जैन, पृ. १५०-१५१।

लिए दू आचारांग सूत्र १/३/२, १/३/३ में स्पष्ट कहा गया है कि सत्य में मन की स्थितरता करो, जो सत्य का वरण करता है वह बुद्धिमान पाप कर्मों का क्षय कर देता है। सत्य की आज्ञा में विचरण करने वाला साधन इस संसार से पार हो जाता है।

सत्य महाव्रत के अन्तर्गत पाँच भावनाओं का विधान है जिनका पालन करना चाहिए -(१) विचार पूर्वक बोलना चाहिए, (२) क्रोध का त्याग करके बोलना चाहिए, (३) लोभ का त्याग करके बोलना चाहिए, (४) भय का त्याग करके बोलना चाहिए, और (५) हास्य का त्याग करके बोलना चाहिए।^{१०}

अस्तेयव्रत - स्वार्थ वश अन्य व्यक्तियों के धन आदि पदार्थों का बिना अनुमति के ले लेना स्तेय अथवा चौर्य के अन्तर्गत माना जाता है। इसका सर्वथा परित्याग करना अस्तेय कहलाता है। चौर्य को एक प्रकार की हिंसा ही मानी गई है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा गया है कि आदत्तादान (चोरी) संताप, भरण एवं भय रूपी पातकों का जनक है। दूसरे के धन के प्रति लोभ उत्पन्न करता है। चोरी करना अपयश का कारण होता है। आत्म रहस्य पुस्तक में लिखा गया है, “यदि कोई सम्पत्ति या वस्तु सुपुर्द की जाए उस वस्तु को हड़प कर लेना या थोड़ा देना भी चोरी में सम्मिलित है। चोरी किये हुए भूषण आदि वस्तुओं को थोड़े से मूल्य में ले लेना भी चोरी ही है। दूसरे मनुष्यों को चोरी करने की प्रेरणा करना, उतेजना देना, चोरी डाके आदि कार्यों की प्रशंसा करना सर्वथा अनुचित है। दूसरे व्यक्ति की वस्तुओं को दबाव डालकर, धोखा देकर या बहलाकर ले लेना भी इस अचौर्यव्रत के विरुद्ध है। किसी अन्य व्यक्ति की अज्ञानता, दुर्व्यवस्था या मूर्खता से लाभ उठाकर उस की बहुमूल्य वस्तु को कम मूल्य देकर ले लेने से भी इस व्रत में दूषण आता है। अनुचित लाभ उठाने के लिए चुंगी से बचने के हेतु छिपाकर वस्तु को नगर में लाना, चुंगी के अफसरों को बनावटी बीजक दिखाकर कम चुंगी देना, बनावटी बही खाता दिखलाकर इनकम टैक्स अधिकारी से कम नियत इनकमटैक्स नियत कराना रेल में बिना टिकिट चलना या नीचे श्रेणी का टिकिट लेकर ऊँची श्रेणी के डिब्बे में बैठ कर जाना, बढ़िया श्रेणी की वस्तु में घटिया श्रेणी की वस्तु मिला देना, छोटे गज से नाप देना, तोल में कम दे देना आदि बातें चौर्य कर्म में सम्मिलित हैं।”^{११}

जैन धर्म-दर्शन में स्तेय को चार भागों में विभाजित किया गया है (१) द्रव्य क्षेत्र (२) काल (४) भाव। द्रव्य में सजीव निर्जिव वस्तुओं को रखा गया है। क्षेत्र में गृह, भूमि, खेती आदि को गिनाया जाता है। काल में वेतन, ऋण आदि में कमी-बेशी करने की बातों को लिया जाता है और भाव में किसी लेखक की रचना, चाहें वह कविता, लेख अथवा निबन्ध हो, चुराने को लिया जाता है। इस कारण स्तेयव्रत का प्रावधान समाज एवं व्यक्ति दोनों के लिए लाभप्रद है।

ब्रह्मचर्यव्रत - जीवन में ब्रह्मचर्य का बहुत अधिक महत्व है। पाँचों महाव्रतों में ब्रह्मचर्य जीवन में एक विशेष स्थान रखता है। ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य व्रत भंग हो जाने पर सभी व्रत तत्काल भंग हो जाते हैं। प्रश्न व्याकरण सूत्र में बताया गया है कि ब्रह्मचर्य व्रत के भंग होने से सभी व्रत नियम, शील, तप, गुण आदि दही के समान मथित हो जाते हैं, चूर-चूर हो जाते हैं, उनका विनाश हो जाता है।^{१२} प्रश्न व्याकरण सूत्र के आधार पर ही डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं - “ब्रह्मचर्य उत्तम तप नियम, ज्ञान,

१०. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३४।

११. आत्म रहस्य- रतनलाल जैन, पृ. १५१-१५२।

१२. प्रश्न व्याकरण सूत्र, ९

दर्शन, चरित्र, सम्यक्त्व तथा विनय का मूल है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य का अन्तःकरण, प्रशस्त गम्भीर और स्थिर हो जाता है।” ^{१३} अतः मन, वचन और कर्म से समस्त इंद्रियों पर संयम करना एवं सभी प्रकार की वासनाओं एवं कामनाओं का परित्याग करना ब्रह्मचर्य विधान के अन्तर्गत देखा जाता है, ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का सबसे सुन्दर विश्लेषण रतनलाल जैन ने किया है जो निम्न प्रकार से है -

“सब से उत्तम बात यह है कि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी रहे, किसी स्त्री के साथ काम सेवन न करें, न काम वासना को हृदय में स्थान दे, अपने मन पर नियन्त्रण रखें, पूर्व ब्रह्मचारी होना साधारण गृहस्थ के लिए कठिन है, इसलिए गृहस्थ के लिए उचित है कि वह अपनी काम वासना को अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री से चाहे वह विवाहित हो या अविवाहिता, गृहस्थिन हो या वेश्या, काम सेवन न करें। स्त्री या लड़कों के साथ अनंग-क्रीड़ा करना व्यभिचार से भी अधिक निन्द्य एवं दूषित है। पर स्त्री के साथ अश्लील हास्य करना, मनोरम अंग देखना, रमने की वासना हृदय में लाना, आसक्त होना आदि ब्रह्मचर्य व्रत के विरुद्ध है। अपनी विवाहिता स्त्री के भोग विलास में रत रहना भी कभी उचित नहीं कहा जा सकता है। इसलिए मुमुक्षु जीव का कर्तव्य है कि काम वासना को वश में करें। जहाँ तक संभव हो सके, उतना कम अपनी धर्म पत्नी के साथ संभोग करें। श्रेष्ठ तो यह है कि केवल संतान उत्पत्ति के हेतु, मासिक धर्म के पश्चात् अपनी धर्म पत्नी के साथ संभोग करें। ब्रह्मचर्य व्रती के लिए उपयुक्त है कि वह अपनी आत्मिक शक्ति एवं परिस्थिति पर भली भांति विचार करके, अपने जीवन पर्यन्त या किंचित काल के लिए, अपनी स्त्री के साथ भी भोग करने के नियम बना ले। इन नियमों से उसको ब्रह्मचर्य व्रत पालने में बड़ी सहायता मिलेगी।” ^{१४}

अपरिग्रह व्रत - जैन धर्म में विश्वास किया जाता है कि अहिंसा की आधार शिला अपरिग्रह है। अपरिग्रह की साधना के बिना अहिंसा टिक नहीं सकती। ^{१५} हमें यहाँ एक बात का स्मरण रखना चाहिए कि बात वस्तुओं को छोड़ने की नहीं है किन्तु वस्तुओं से अलिप्त रहने की है। दशवैकालिक ६/२१ में माना गया है कि आन्तरिक मूच्छि भाव या आसक्ति ही परिग्रह है। तत्त्वार्थसूत्र में भी यही कहा गया है। अतः अपरिग्रहव्रत लेना व्यक्ति एवं समजा दोनों के लिए लाभप्रद है। विश्व में वर्ग भेद, विषमता, शोषण एवं संघर्ष-परिग्रह के कारण ही उत्पन्न होते हैं। अतः परिग्रह कर्मों के बन्धन का कारण बनता है।

अपरिग्रह के दो पक्ष हैं : आत्मगत और समाजगत।

अपरिग्रह व्रती इस व्रत से आत्म साधना की ओर तो बढ़ता ही है, साथ-साथ समाज का उपकार भी करता है। अपने आप की शुद्धि तथा उपलब्ध आय का वह सीमाधिकरण एवं विसर्जन करता है और इस प्रकार वह लोक और परलोक कर्तव्यों में अपनी भागीदारी का वहन ईमानदारी से करता है।

डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं - “जैन आगमों में परिग्रह दो प्रकार का माना गया है, (१) बाह्य परिग्रह और (२) आन्तरिक परिग्रह। बाह्य परिग्रह में इन वस्तुओं का समावेश होता है - (१) क्षेत्र (खुली भूमि), (२) वस्तु (भवन), (३) हिरण्य (रजत), (४) स्वर्ण, (५) धन (सम्पत्ति), (६) धान्य, (७) द्विपद

१३. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३६।

१४. आत्म रहस्य- रतनलाल जैन, पृ. १५२।

१५. तीर्थकर- श्री विद्यानन्द विशोषांक, पृ. १३३।

(दास-दासी), (८) चतुष्पद (पशु आदि) और (९) कुप्य (घरगृहस्थी का सामान)। जैन श्रमण उक्त सब परिग्रहों का परित्याग करता है। इतना ही नहीं उसे चौदह प्रकार के आभ्यन्तरिक परिग्रह का भी त्याग करना होता है जैसे १. मिथ्यात्व, २. हास्य, ३. रति, ४. अरति, ५. भय, ६. शोक, ७. जुगुप्सा, ८. स्त्रीवेद, ९. पुरुषवेद, १०. नपुसंकवेद, ११. क्रोध, १२. मान, १३. माया और १४. लोभ”

उपर्युक्त रूप से हमने देखा कि किस प्रकार श्रमण एवं श्रावक के लिए व्रतों का निर्धारण किया गया है। हमने गुणव्रत और शिक्षाव्रत का भी उल्लेख किया था जिन का पालन किया जाना चाहिए।

इस लेख के द्वारा मेरा निवेदन जैन धर्म के समस्त अनुयायियों से, चाहे वे श्रमण हो अथवा श्रावक, है कि वर्तमान में विश्व में व्याप्त विषमताओं से बचने एवं बचाने का एक ही साधन है और वह है व्रत। अतः इसका प्रचार एवं प्रसार करने की और साथ ही साथ जीवन में उतारने की आवश्यकता है जो जैन समाज में दृष्टिगोचर नहीं होती है। क्या मैं मसीही धर्म का अनुयायी होते हुए आशा करूँ कि जैन धर्म के अनुयायी एवं उपदेशक अन्य धर्मों के सम्मुख व्रतों का पालन का उदाहरण पेश करेंगे या ये बातें केवल धार्मिक ग्रंथों तक ही सीमित रहेंगी या केवल जीव्हा के आभूषण बनेंगे?

आराधना

२७ रवीन्द्र नगर, उज्जैन

अपने लिए तो सभी जिते हैं पर दूसरों के लिए जीता है वही महान है। आत्मीयता की इस भावना के विकास का भी एक क्रम होता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सिर्फ अपने लिए ही स्वार्थ तथा अपने ही शारीरिक सुख का ध्यान रखते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो अपने परिवार व सगे-सम्बन्धियों की हित चिंता में लीन रहते हैं। उनसे जो उच्च होते हैं वे अपने देश की कमाई व सुखः समृद्धि का प्रयत्न करते हैं किन्तु जिनका हृदय उनसे भी अधिक निशाए होता है, वे विश्व के प्रत्येक प्राणी के सुख को अपना सुख तथा दुःख को अपना दुःख समझते हैं।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

जैन दर्शन में ज्ञान का स्वरूप

• डॉ. कालिदास जोशी

समूचे जैन दार्शनिक चिन्तन का मुख्य आधार है अनेकान्तवाद। वह विश्व के स्वरूप को समझने का एक दृष्टिकोण है। एकान्त का मतबल है कोई एक ही निश्चय या निर्णय। अनेकान्तवाद का यह मन्तव्य है कि किसी भी वस्तु के संबंध में ऐकान्तिक पक्ष लेना सम्भव नहीं होता, क्योंकि कोई भी वस्तु अनन्त धर्मात्मक होती है। मुक्त या केवली अवस्था में जीव को उन सभी धर्मों का ज्ञान होता है। उस का ज्ञान सीमित या अधूरा नहीं होता। परन्तु बद्ध जीव में इनमें से कुछ ही धर्मों का ज्ञान हो सकता है। सभी धर्मों का नहीं। इस को समझाने के लिये हाथी और सात अंधों की कथा का उल्लेख किया जाता है। व्यवहार में हम किसी वस्तु के संबंध में कितना भी समझें, कहें, या वर्णन करें, तो भी उसके सभी धर्मों का वर्णन नहीं कर सकेंगे। कुछ धर्म हमारे कथन की मर्यादा के बाहर ही रहेंगे। यही अनेकान्तवाद का तात्पर्य है।

सात नय तथा चार निक्षेप - अनन्त गुणात्मक वस्तु का सम्पूर्ण वर्णन करने की शक्ति किसी भी मनुष्य के पास न होने से हम लोग जो भी कुछ कहते हैं वह हमेशा अन्य गुण सापेक्ष ही समझा जाना चाहिये। किसी भी वस्तु के वर्णन में द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव, इन चार बातों का विचार किया जाता है। वस्तु के अनन्त गुणों में से और पर्यायों से कुछ ही ओर ध्यान देकर हम अपना अभिमत या अभिप्राय बनाते हैं। इस सीमित, अपूर्ण, अभिप्राय को 'नय' कहते हैं। नय के सात प्रकार कहे गये हैं। १) नैगम नय २) संग्रह नय ३) व्यवहार नय ४) ऋजुसूत्र नय ५) शब्द नय ६) समभिरूढ़ नय, तथा ७) एवं भूत नय प्रथम तीन नय ब्रव्यार्थिक, तथा अन्तिम चार नय पर्यायार्थिक कहलाते हैं।

इन सात नयों के साथ चारनिक्षेप माने जाते हैं। (१) नाम निक्षेप का मतलब है, किसी वस्तु को नाम से पहचानना। (२) स्थापना निक्षेप में वस्तु को उसके आकार के अनुसार ग्रहण कर लिया जाता है। (३) द्रव्य निक्षेप वस्तु की संरचना जिस द्रव्य से हुई है उसकी ओर ध्यान देने को कहते हैं। (४) भाव निक्षेप, अर्थात् वस्तु के साथ जो संकल्पना या बोध भाव जुड़ा हुआ होता है, उसके आधार पर वस्तु को जानना।

स्याद्वाद - वस्तु का अनेकान्त स्वरूप, तथा उसका ज्ञान हमेशा नयात्मक ही होना, इन दो तथ्यों को समझ लेने पर स्याद्वाद को हमें स्वीकार करना ही पड़ता है। हमारा ज्ञान परिपूर्ण न होकर अंशात्मक होता है इसका मतलब यह नहीं होता कि वह असत्य होता है। अपूर्ण होने पर भी उसमें सत्य का अंश होना ही चाहिये। इसीलिये 'सत्य' या 'असत्य' यह ज्ञान को कसौटी न मानकर वह कसौटी 'स्थान' (शायद ऐसा हो) यह माननी पड़ेगी। वस्तु के अनन्त धर्मों में से किसी एक के संबंध में कह सकेंगे 'स्यादस्ति', और किसी अन्य धर्म के बारे में 'स्थानास्ति' ऐसा कहना पड़ेगा। 'अस्ति' तथा 'नास्ति' इन दोनों शब्दों का प्रयोग इस प्रकार एक ही वस्तु के सन्दर्भ में कर सकते हैं। अस्ति तथा नास्ति इन दोनों में जो भेद या विरोध समझा जाता है वह 'स्यात्' इस शब्द का प्रयोग करने से खत्म हो जायेगा। यही स्याद्वाद का

सिद्धान्त है। प्रसिद्ध जैन दार्शनिक मल्लिषेण सूरि के स्याद्वादमंजरी में कहा गया है कि ज्ञान के अनन्त धर्मात्मक होने से ही स्याद्वाद सिद्ध होता है।

सप्तभंग - भंग का अर्थ है विभाजित करना या तोड़ना। स्याद्वाद के अनुसार किसी भी वस्तु के संबंध में जो अनेक विधान संभव होंगे उनके सात विभाग या 'भंग' हो सकते हैं। उनमें तीन भंग मूलभूत माने जाते हैं। भगवती सूत्र इस ग्रंथ में केवल तीन ही भंगों का उल्लेख मिलता है। वे तीन भंग हैं -(१) स्यादस्ति (२) स्यान्नास्ति (३) स्याद वक्तव्यः। परन्तु बाद में यह देखा गया कि इन तीनों में से दो-दो को एक दूसरे के साथ लेने से और चार भंग बन जाते हैं। इस प्रकार ज्ञान के सात भंग या विभाग बाद में प्रचलित हुये, उनको सप्तभंग कहा जाने लगा, तथा स्याद्वाद और सप्तभंग इन दोनों के बीच एक अदृष्ट रिश्ता बन गया। वे अन्य चार भंग इस प्रकार हैं -(४) स्यादस्ति नास्ति (५) स्यादस्ति च अवक्तव्यः (६) स्यान्नास्ति च अवक्तव्यः तता (७) स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यः।

ज्ञान के पाँच प्रकार - ज्ञान जीव का गुण है। स्वभाव से जीव अनन्त ज्ञान से युक्त रहता है। परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म के कारण यह अनन्त ज्ञान हम सब लोगों में आच्छादित हो जाता है। ज्ञान के पाँच प्रकार होते हैं। वे हैं -मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मनः पर्यय, तथा केवल ज्ञान। इंद्रिय के सन्नि कर्ष से मन में जो वस्तु का बोध होता है उसको मतिज्ञान कहते हैं। इसके चार स्तर होते हैं। अवग्रह बाद विशेष बोध की जिज्ञासा होती है, वह ईहा नाम का दूसरा स्तर है। उसके द्वारा जो बोध होगा वह 'अवाय' नाम का तीसरा स्तर है। कालान्तर से इसका स्मरण होता है, वही चौथा स्तर धारणा कहलाता है। मतिज्ञान के अनेक भेद माने गये हैं। जैन दार्शनिकों ने उनके संबंध में विस्तृत विश्लेषण किया है।

ज्ञान का दूसरा प्रकार है श्रुत ज्ञान। इसका मुख्य आधार होता है शास्त्र वचन। मति तथा श्रुत इन दोनों को परोक्ष ज्ञान कहा जाता है। इसके अलावा जो ज्ञान जीव को इंद्रियों के माध्यम के बिना प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। उसके तीन प्रकार हैं अवधि, मनः पर्यय, तथा केवल। अवधि ज्ञान पुद्गल द्रव्य के ज्ञान को कहते हैं। मनः पर्यय ज्ञान चारित्र्य संपन्न साधु लोगों को ही प्राप्त हो सकता है। इससे किसी भी व्यक्ति के मन के विचारों का ज्ञान होता है। सम्यक् चारित्र्य के आचरण से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो जाने से जीव की स्वभावगत अनंत ज्ञानशक्ति प्रकट होने से केवल ज्ञान का उदय होता है। उसको स्थूल और काल की कोई सीमा नहीं रहती। केवली पुरुष को किसी भी वस्तु के सभी अनन्त गुणों का ज्ञान हो जाता है। वह जीव लोकाकाश को पार करके संसार के बन्धन से हमेशा के लिये मुक्त हो जाता है। केवल ज्ञान से मुक्ति को प्राप्त होना यही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

* * * * *

एफ-३०५ एम्बनगरी
बिबवेवाड़ी, पुणे ४११०३७

‘आचारांग’ और कबीर-दर्शन

• डॉ. निजामउद्दीन

‘आचारांग’ जैनागम का प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें आचार के ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप और वीर्य (ब्रह्मचर्य) का विशद निरूपण किया गया है। आचार-दर्शन का मूलाधार समता है यानी सभी प्राणियों से एकात्मानुभव करना। सुख-दुःख, जीवन-मरण, मान अपमान में समत्व का अनुभव करना। कबीर निर्गुण भक्तिशाखा के ज्ञानमार्गी कवियों में सिरमौर हैं। उनके काव्य का पर्यवेक्षण करने पर विदित होता है कि उन्होंने आचार पर, जीवन-व्यवहार पर अधिक बल दिया है। उनके दार्शनिक सिद्धान्तों को जब देखते हैं तो उनमें और आचारांग-प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा जीवन मूल्यों में अत्यधिक साम्य परिलक्षित होता है।

कबीर के दार्शनिक आध्यात्मिक विचारों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं -

१. परमतत्त्व
२. जीवतत्त्व
३. मायातत्त्व

परमतत्त्व के विषय में कबीर का दृष्टिकोण निराकार तथा साकार से परे है, वह न द्वैत और न अद्वैत, वह न निर्गुण है न सगुण। ब्रह्म का स्वरूप अनिर्वचनीय है। रहस्यवादी शैली में कबीर का अनिर्वचनीय ब्रह्म सबके लिए बोधगम्य नहीं, वह अगम है जीव उसी परमतत्त्व का अंश है, अतः अजर-अमर है। लेकिन परमात्मा या परमतत्त्व की स्थिति को ‘आचारांग’ के अनुसार अभिव्यंजित किया है। ‘आचारांग’ में परमात्मा का अभिनिरूपण अग्रांकित है -

१. सव्वे सरा णियडुंति (१२३)

सब स्वर लौट आते हैं -परमात्मा शब्द के द्वारा प्रतिपाद्य नहीं है।

२. तक्का जत्थ ण विज्जइ (१२४)

वहाँ कोई तर्क नहीं है वह तर्क गम्य नहीं है।

३. मई तत्थ ण गाहिया (१२५)

वह मति द्वारा ग्राह्य नहीं है।

४. ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेयण्णे (१२६)

वह अकेला, शरीर रहित और ज्ञाता है।

५. से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्ठे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमंडले।

(१७६)

वह न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत्त है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है, और न परिमण्डल है।

६. ण सुब्धिगंधे, ण दुरभिगंधे। (१२९)

वह न सुगंध है और न दुर्गन्ध है।

७. ण कक्कड़े, ण मउए, ण गरुए, ण लहुए ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण दुक्खे

वह न कर्कश है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न स्निग्ध है और न रूक्ष है।

८. अरुवी सत्ता (१३८)

वह अमूर्त अस्तित्व है।

९. से ण सदे, ण रूवे, ण गंधे, ण फासे, इच्चैतावा। (१६०)

वह न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है, न स्पर्श है, इतना ही है:

अब कबीर वाणी में इस परमात्मा का, परमतत्त्व का प्रतिबिम्ब निहारिए -

(१) कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावै साकार।

वह तो इन दोऊ ते न्यारा, जानै जाननहारा॥

(२) अवगत की गति क्या कहूं जाकर गांव न नावं।

गुन-बिहीन का पेखिये, काकर धरिये नाव॥

(३) ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।

तेरा साईं तुज्ज में, जागि सके तो जागि॥

(४) भारी कहूं तो बहु डरूं, हल्का कहूं तो झुंठ।

मैं का जानों राम कूं नैना कबहू न दीठ॥

(५) तेरा साईं तुज्ज में, ज्यों पहुपन में बास॥

जैनदर्शन में आत्मा और शरीर को भिन्न माना है, यहीं 'भेद-विज्ञान' है लेकिन आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता दर्शाई गई है यानी आत्मा अपने राग-द्वेष रहित, विकार रहित स्वरूप के कारण परमात्मा का अभिधान धारण कर लेती है। कबीर ने आत्मा परमात्मा की अभिन्नता बार-बार व्यक्त की है।

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर-भीतर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ कयौ ज्ञानी॥

माया का व्यवधान आने पर जीव परमात्मा से पृथक् रहता है, जहाँ माया का आवरण हटा, वहाँ आत्मा अपने शुद्ध, ज्ञानमय रूप में व्यक्त हो जाती है। माया का दार्शनिक रूप जैनदर्शन में कर्म, काम, क्रोध, परिग्रह, लोभ, घृणा, राग-द्वेष आदि कहा जायेगा। "आचारांग" में कहा गया है -

“कोहाइमाणं हणिया य वीरे, लोभस्स पासे गिरयं महंते।”

(शीतोष्णीय, १, ४९)

अर्थात् वीर पुरुष कषाय के आदिभूत क्रोध और मान को नष्ट करे। लोभ को महान नरक के रूप में देखे। ‘आचारांग’ में अहिंसा तथा अपरिग्रह की चर्चा बार-बार की गई है, कबीर ने भी इनका बार-बार उल्लेख किया है कुछेक उदाहरण देखिए -

सव्वेसि जीवियं पियं (लोक. ३, ६४)

सब प्राणियों को जीवन प्रिय है

मोहेण गम्भं मरणाति अति (लोक. १, ७)

मोह के कारण व्यक्ति जन्म-मरण को प्राप्त होता है।

हिंसा अनार्यवचन है और अहिंसा आर्य वचन है -

अणारियवयणमेयं। आरियवयणमेयं॥ (सम्यक्त्व २, २१-२४)

सब आत्माएं समान हैं -

समय लोगस्स जाणिता (३, १, ३)

मनुष्य परिग्रह से अपने आपको दूर रखे -

परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्केज्जा (२, ११७)

‘आचारांग’ (लोक. १०१, १०३) में स्पष्टतः कहा गया है कि जिसे तू हनन करने योग्य समझता है वह तू ही है, चूंकि अपना किया कर्म भोगना पड़ता है इसलिए किसी का वध न करना चाहिए। शुद्ध-अशुद्ध आहार के विषय में यहाँ निर्दिष्ट मत ध्यातव्य है।^१ अशुद्ध भोजन के परित्याग का दिया गया यह उपदेश आज के युग में बहुत आवश्यक है, मद्य मांस, मछली, अण्डा सभी का त्याग कर शुद्ध, सात्विक, शाकाहारी भोजन लेना चाहिए जो न पाप का भागी बनता है न रोग उत्पन्न करने वाला है। कबीर ने मांसाहार की निंदा की है -

उनको बिहिशत कहां तें होहि,

सांझै मुरगी मारे।

कबीर ने अहंकार की, तृष्णा की, लोभवृत्ति की खूब निन्दा की है। अहंकारी मनुष्य को सुख कहां, परमात्मा की प्राप्ति कहां -

मैमंता मन मारि ने, नान्हा करि-करि पीस।

तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलकै सीस॥

माया के विषय में कबीर की उक्ति है -

माया दीपक नर पतंग भ्रमि भ्रमि इवै परन्त
कहै कबीर गुर ग्यान तै, एक आध उबरन्त

अपरिग्रह एवं संतोषवृत्ति का इससे अच्छा और क्या दृष्टान्त होगा -

साई इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए॥
गौधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान
जब आवैं सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥

ये उद्धरण साम्यदृष्टि दर्शाने के अभिप्राय से दिए गए हैं। यहाँ 'आचारांग' और 'कबीर-वाणी' में जीवन के व्यावहारिक रूप को बिम्बायित पायेंगे। दोनों कृतियों में जहाँ आध्यात्मिक तत्त्वों का विश्लेषण है, बहिर्मुखी चेतना के साथ ऊर्ध्वमुखी चेतना का प्राबल्य है, वहाँ समाज के परिष्कार-परिमार्जन के लिए सुधारवादी दृष्टिकोण का आधिक्य भी विद्यमान है। "आचारांग"^२ में कैसी सारगर्भित बात कही गई है - "जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को जानता है, जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है।" कबीर कहते हैं -

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

कबीर रचित रहस्यवादी भावना से आपूर्ण पद इसी श्रेणी में आते हैं।^३

तीर्थकरों ने समता को धर्म कहा है - "समियाए धम्मे"^४ (आचारांग)। सभी जीवों, प्राणियों को आत्मवत् जानकर, समता-धरातल पर उतर कर उनके साथ व्यवहार करना कल्याणप्रद है। विषमता, विसंगति कलह उत्पन्न करती है। कबीर इसीलिए कहते हैं, "हिन्दू तुरक की एक राह है सतगुरु यहि दिखलाई।" वह सबके साथ शीतलभरा बर्ताव करने की प्रेरणा देते हैं मधुर वचन बोलने का उपदेश देते हैं क्योंकि मधुर वचन औषधि का काम करते हैं और कटु वचन तीर की भांति छेदने वाले होते हैं। अतः ऐसी वाणी बोलनी श्रेयस्कर है जो सब के तन-मन को शीतलता प्रदान करें -

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आषा खोय। औरन को सीतल करे आपहुंसीतल होय॥

-
२. जे अज्झत्यं जाणइ से बहिया जाणइ। जे बहिया जाणइ, से अज्झत्यं जाणइ। (१, १४७)
 ३. (क) दुल्लिन गाओ मंगलचार, हमारे घब आए रामराज भरतार
(ख) बाल्हा आव हमारे रे, तुम बिन दुखिया देह रे।
 ४. आचारांग-लोकसार ४०।

समत्व भाव राग-द्वेष विच्छिन्न करने वाला है। और राग द्वेष के विच्छिन्न होने पर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

‘आचारांग’ और कबीर-वाणी का विविध प्रसंगों परिस्थितियों आदि का अध्ययन-मनन करने पर यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि दोनों रचनाएं सामाजिक, लौकिक जीवनोन्मुखी और अध्यात्मोन्मुखी हैं। आचार तथा शीलतत्त्व का यहाँ सन्यक्त निरूपण हुआ है। यहाँ जीवन के नाना रूपों का कर्म, अहिंसा हिंसा, परिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि की विशदता से परिचर्चा की गई है। ‘आचारांग’ व्यक्ति का बाह्य तथा आन्तरिक परिष्कार करता है, कबीर के सिद्धान्त भी हमारे संस्कारों, मनोवृत्तियों का अभिमार्जन करते हैं। इन महत्वपूर्ण रचनाओं का गहन चिन्तन-मनन करना अनुसन्धानकर्ताओं के लिए आवश्यक है।

पो. बालैनी BALENI
मेरठ (Meerut) UP
पिन - २५०६२६

* * * * *

ज्ञान आत्मा का स्वभाव है । वह लिया अथवा दिया नहीं जाता। शिक्षक अथवा धर्मगुरु इसे सिर्फ जगाते हैं। यानी वह दिया लिया नहीं, वरण जगाया जाता है। अगर उसे जाग्रत न किया जाए तो वह आवृत, अनमिव्यक्त या दबा पड़ा रहता है।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

स्वप्न-मनोविज्ञान और मानव अस्तित्व

• डॉ. वीरेन्द्र सिंह

स्वप्न मनोविज्ञान का आधुनिक अध्ययन वैज्ञानिक-पद्धति के द्वारा फ्रायड ने तथा बाद में युंग तथा एडलर ने अपने तरीके से किया जो यह तथ्य प्रकट करता है कि स्वप्न बिम्बों के विश्लेषण एवं मनोवैज्ञानिक 'सिटिंग्स' (Sittings) के द्वारा रोगी की मानसिक चिकित्सा की जा सकती है। यह तथ्य एक अन्य बात की ओर साकेत करता है कि प्रत्येक स्वप्न का अपना अर्थवान् मनोवैज्ञानिक संरचना का संसार होता है जो उसके जागृत संसार से किसी न किसी रूप से सम्बंधित रहता है। इस पूरी स्थिति को माण्डव्योपनिषद् में इस प्रकार रखा गया है - "स्वप्न दर्शन का कारण विगत संस्कार (अचेतन रूप) ही माने गए हैं और 'देवमन' स्वप्नावस्था में अपनी महिमा का ही अनुभव करता है।^१ यह 'देवमन' मानव का मनस् (Psyche) ही है जो भारतीय मनोविज्ञान में एक इंद्रिय है जो अन्य इंद्रियों से उत्कृष्ट है - सभी इंद्रिया इसी 'मन' में एकीभूत रहती हैं। स्वप्नावस्था में मन (अचेतन चेतन) अपनी विभूतियों (इच्छाओं, कामनाओं या दमित इच्छाएं) का बिम्बात्मक विस्तार करता है जो संस्कार के रूप में अचेतन मन में अवस्थित रहती है। यही कारण है कि स्वप्न-बिम्बों को पूरी तरह से समझा नहीं जा सकता है। फ्रायड आदि ने स्वप्न बिम्बों को काफी सीमा तक विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है, लेकिन अब भी शायद हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने अचेतन-मन के रहस्यों को पूरी तरह से जान लिया है। शायद ज्ञान की यही प्रकृति है कि उसे पूरी तरह से, अंतिम रूप से जाना नहीं जा सकता है। इसके बावजूद युंग ने इन स्वप्न प्रतीकों का जो विवेचन-विश्लेषण किया है, वह इन्हें ध्येययुक्त और सामिप्राय मानता है और साथ ही, उसका यह भी विचार है कि स्वप्न प्रतीकों में एक श्रृंखला भीभिहती है। उनके पीछे कोई न कोई 'अर्थ' छिपा रहता है।^२ फ्रायड ने इन स्वप्न प्रतीकों को कामेच्छा या सेक्स से ही जोड़ा जबकि युंग आदि ने स्वप्नों को मात्र सेक्स से न जोड़कर अन्य महत्वपूर्ण मानवीय इच्छाओं और क्रियाओं से सम्बंधित किया। युंग ने कामेच्छा के स्थान पर 'लीबीडो' (Libido) शब्द का प्रयोग किया जो सेक्स से कहीं व्यापक अर्थ को संकेतित करता है। भारतीय विचारधारा में 'काम' शब्द जीवन-ऊर्जा या सृजन ऊर्जा का पर्याय है जो 'लीबीडो' के समीप है। पाश्चात्य जगत में इसे 'इरास' (Eros) की संज्ञा भी दी गयी है जो हमारे यहाँ 'रति' और 'काम' का सूचक है। इसी के साथ एक तथ्य यह भी है कि व्यक्ति का स्वप्न-दर्शन ही नहीं वरन् उसकी सभी चेतन अचेतन क्रियाओं का वैसा ही स्वरूप प्राप्त होता है जैसा कि उसका 'विज्ञान' है। इसी विज्ञान-तत्त्व पर जीव या व्यक्ति की स्मृति का रूप गठित होता है जो संस्कारजनित होते हैं। ये स्मृतियाँ अपना अभिव्यक्तीकरण अनेक स्वप्न बिम्बों के द्वारा करती हैं। फ्रायड के

१. उपनिषद् भाष्य, खंड २, पृ. ३१-३२।

२. साइकोलॉजी ऑफ दि अन्कान्सेस, युंग, पृ. ७

लिए प्रतीकों या बिम्बों का द्वितीय स्थान है क्योंकि उसके मतानुसार स्वप्न बिम्ब किसी मानसिक जटिलता या दमित इच्छाओं का गुप्त अभिव्यक्तीकरण है। युंग ने इस मत को स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसके लिए 'बिम्ब' मानसिक क्रियाओं का गुणक है जिसकी महत्ता उसके मनोविश्लेषणात्मक स्वरूप पर आश्रित है।^३

युंग आदि ने इस मनोविश्लेषणात्मकपद्धति के द्वारा सामान्यतः मनस् (Psyche) के प्रभावशाली 'रूपाकारों' का संकेत किया है जिसे वह स्वप्न के आद्यरूप (Archetype) की संज्ञा देता है। ये आद्यरूप मूलतः मनस्-तत्त्व के वे रूप हैं जिनका अभिव्यक्तीकरण भिन्न बिम्बों द्वारा होता है। ये बिम्ब या आद्यरूप इस प्रकार संयोजित होते हैं कि इन्हें उसी समय पहचाना जा सकता है जब वे अपना प्रभाव प्रकट करते हैं। यही कारण है कि आद्यरूपों का तत्त्व मूलतः रूपकों के द्वारा प्रकट होता है।^४ इन रूपकों का ही विश्लेषण स्वप्न-आद्यरूपों के सही अर्थ को व्यक्त करता है या कर सकने में समर्थ होता है। ये आद्यरूप सामूहिक अचेतन से गहरे सम्बंधित होने के कारण जातीय-मनस् के अभिन्न अंग भी होते हैं जैसे 'महामाता' का बिम्ब, रति-काम का बिम्ब, हीरो या नायक (राम-कृष्ण) का बिम्ब आदि। ये आद्यरूप जातीय मनस् में बार-बार घटित होते हैं और युगानुसार नए अर्थ-संदर्भों को प्रकट करते हैं। साहित्य, कला, दर्शन और धर्म के क्षेत्रों में इन आद्यरूपों का बार-बार नए संदर्भों में प्रयोग होता रहा है। युंग का तो यहाँ तक मानना है कि शिशु के मनस् में ये स्वप्न आद्यरूप प्राप्त होते हैं जो किसी न किसी रूप में मानवीय विकास के आदितम रूप को (शिशु) संकेतित करते हैं। ये आदितम आद्यरूप आज भी हमारे 'मनस्' के अभिन्न अंग हैं जो बीज रूप में हममें अब भी वर्तमान हैं। यही कारण है कि रचनाकार चाहे वह किसी भी 'वाद' या 'विचारधारा' का पक्षधर क्यों न हो, वह किसी न किसी स्तर पर इन 'आद्यरूपों' से टकराता अवश्य है। युंग इन आद्यरूपों को बाल्यकाल की विचार-प्रक्रिया का रूप मानता है और इन्हें आदिम मानसिकता से जोड़ता है जो मानव के अस्तित्व से गहरा सम्बंधित है। दूसरी ओर युंग मिथकों को अचेतन फ्रैन्टोसी और विचार-प्रक्रियाओं से जोड़ता है जो बाल्यकाल के विचार और फ्रैन्टोसी प्रक्रमों से भिन्न है क्योंकि मिथक एक विश्व प्रारूप को प्रस्तुत करता है जो हमारी तर्कीय वस्तुगत दृष्टि को भी प्रक्षेपित करता है।^५ मिथक के प्रति युंग का मत, मेरी दृष्टि से मात्र स्वप्न एवं यौन बिम्बों तक सीमित न होकर एक विश्व-दृष्टि के परिचय के साथ-साथ सृजन संहार और मानवीय सरोकारों को भी व्यक्त करता है।^६ इस प्रकार मिथकीय आद्यरूपों का एक गहरा सम्बंध जातीय 'मनस्' और अस्मिता से होता है।

स्वप्न के उपर्युक्त महत्व को ध्यान में रखकर एक तथ्य यह स्पष्ट होता है कि स्वप्न अनेक प्रकार के होते हैं जैसे दिव्य स्वप्न, यौन स्वप्न, भविष्य संकेतक स्वप्न चेतन विचार-प्रक्रिया के स्वप्न, नैतिक स्वप्न तथा तर्कहीन मूर्खता से भरे स्वप्न। यहाँ पर इन सब पर विचार करना संभव नहीं है, लेकिन इन स्वप्न प्रकारों के अध्ययन से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष मनोवैज्ञानिकों एवं चित्तकों ने निकाले हैं जो मानवीय 'मनस्' के रहस्य को और उसके सरोकारों को व्यक्त करते हैं। पहला निष्कर्ष लियोनार्ड ने यह निकाला कि

३. द हाऊस डैट प्रॉयड बिल्ट, जेसट्राव पृ. ९७।

४. द साइकोलॉजी ऑफ दि चाइल्ड आरिक्टीटाइप, युंग पृ २६०।

५. कॉम्पलेक्स आरिक्टीटाइप सिम्बल इन सी.जी. युंग राल्फ मेनहीम, पृ. १३७

६. मिथक- दर्शन का विकास, वीरेन्द्र सिंह पृ. २०-२५।

स्वप्न का लक्ष्य मानव अस्तित्व के क्षितिज को व्यापक बनाना है और कहीं कहीं उनके द्वारा अंतर्दृष्टि का उदय होना भी है। दूसरा निष्कर्ष यह है कि अक्सर स्वप्न में मनुष्य दिव्य या धर्म के बिम्बों से साक्षात्कार करना है जो मानव और दिव्य के सम्बंध को प्रकट करता है। यहाँ पर दिव्य आद्यरूप (यथा तपस्वी, मंदिर, क्रास, देव-देवियाँ, देवदूत आदि) भिन्न-भिन्न रूपों से आते हैं। अक्सर यह भी पाया गया कि जो व्यक्ति भौतिकवादी अधिक हैं, वे इस प्रकार के स्वप्न अधिक देखते हैं।^७ तीसरा निष्कर्ष जो इन स्वप्नों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है, वह है स्वप्न दर्शन और जागृत अवस्था में सहसम्बंध अथवा दूसरे शब्दों में स्वप्नावस्था (सुषुप्ति) और जागृतावस्था में सापेक्ष सम्बंध जिनकी निरपेक्ष स्वतंत्रता का प्रश्न ही नहीं है। इससे यह भी संकेतित होता है कि स्वप्नावस्था, जागृतावस्था की तरह, मानव अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण अंग है और यह अस्तित्व दोनों स्थितियों में (स्वप्न एवं जागृत) किसी न किसी रूप में सुरक्षित रहता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि ये दोनों स्थितियाँ मानव अस्तित्व की ऐतिहासिक निरन्तरता को प्रकट करती हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक शापनहावर का मत है कि ये दोनों अवस्थाएँ कार्य-कारण नियम से शासित हैं और दोनों के मध्य, जहाँ तक सार तत्व का प्रश्न है, कोई विशेष अंतर नहीं है। अतः हम कवियों की इस उक्ति को मान सकते हैं कि जीवन एक लम्बा और दीर्घ स्वप्न है। चौथा तथा अंतिम निष्कर्ष जिसे युग प्रस्तुत करता है, वह है स्वप्न के दो प्रकार महान स्वप्न और लघु स्वप्न। महान स्वप्न अधिकतर महान मानवीय समस्याओं, ब्रह्मांडीय एवं सामाजिक सरोकारों से सम्बंधित होते हैं, जबकि लघु स्वप्न अपेक्षाकृत छोटी प्रतिदिन की समस्याओं से सम्बंधित होते हैं और मूलतः व्यक्तिगत होते हैं। स्वप्न मूलतः सामूहिक अचेतन और 'वस्तुगत मनस्' से उद्भूत होते हैं तथा अपनी अभिव्यक्ति में "परावैयक्तिक" प्रकार के होते हैं। महान स्वप्न का विश्लेषण ही अधिकतर किया गया है क्योंकि युग के अनुसार आध्यक्षीय स्वप्ने अधिकतर सामूहिक अर्थ प्रदान करते हैं न कि वैयक्तिक अनुभव और अर्थ। आध्यक्षीय बिम्बों में जीवन और मृत्यु, मिलन और विरह, रूपांतर और बलिदान, सृजन और विलय, देव और राक्षस आदि अपने परावैयक्तिक वैश्विक मानवीय पक्ष को ही उद्घाटित करते हैं जो जातीय मनस् में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।^८

उपर्युक्त विवेचन से यह नितांत स्पष्ट है कि स्वप्न का संसार मानवीय अस्तित्व और उसके ऐतिहासिक विकास को समझने में सहायक होता है। महान तथा लघु स्वप्न का वर्गीकरण, मेरी दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है कि महान् स्वप्नों के विवेचन के द्वारा हम मानवीय एवं ब्रह्मांडीय सरोकारों को, उसके आदिम रूप से ठीक प्रकार से समझ सकते हैं। जागृतावस्था और स्वप्नावस्था का महत्व इसलिए है कि ये दोनों अवस्थाएँ मानवीय चेतना के दो स्तर हैं जो सापेक्ष महत्व रखते हैं। मानव अस्तित्व में इन दोनों अवस्थाओं का अपना ऐतिहासिक महत्व है। आध्यक्षीय बिम्ब सामूहिक अचेतन से सम्बंधित होने के साथ-साथ मानव की व्यापक समस्याओं, मिथकों, ब्रह्मांडीय रूपों तथा सामाजिक वैयक्तिक अभिप्रायों को भी समझने में भी सहायक होते हैं। अतः स्वप्न-मनोविज्ञान एक सार्थक, अर्थपूर्ण विज्ञान है जो मानव अस्तित्व से गहरा जुड़ा हुआ ज्ञान-क्षेत्र है।

५. झ १५/जवाहरनगर

जयपुर, ३०१००१

७. ऐसे अनेक उदाहरण मनोविश्लेषण परक पुस्तकों और स्वरूप- विश्लेषण सम्बन्धी पुस्तकों में मिले पड़े हैं। तथा मेडार्ड बास की पुस्तक दि "एनालिसिस ऑफ ड्रीमस्" तथा युंग की पुस्तक "साइकोलॉजी ऑफ दि अन्कासेस आदि।

८. एनालिसिस ऑफ ड्रीमस्, मेडार्ड बास, पृ. २०८।

समन्वय का मार्ग स्याद्वाद

• डॉ. उदयचंद्र जैन

भारतीय दर्शन की सुदूरगामी परम्परा है। ऋषि-महर्षि योगी-महात्माओं संतों, विचारकों, दार्शनिकों एवं चिन्तनशील मनीषियों ने अध्यात्म-जगत् में कुछ न कुछ विचार, मत या वाद तर्क अवश्य प्रदान किए। उनके फलस्वरूप चिन्तन के क्षेत्र में नए-नए विचार आए। नए-नए चिन्तन उभरे तथा नई-नई विचार-धाराओं को अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होने में विशेष बल मिला। अध्यात्मवादी और भौतिकवादी विचारों को पनपने में भी सहयोग मिला।

भारतीय चिन्तन की विचारधारा आत्म-तत्त्व को बल देने लगी, क्योंकि प्रत्येक दार्शनिक आत्मा को सर्वोपरि मानकर आत्मा, बंधन, मुक्ति, जीव एवं जगत् तथा ईश्वर को अपने चिन्तन का विषय बनाने लगा।

भारत की प्राचीन दार्शनिक परम्परा में जैन-दर्शन भी आत्मवादी दृष्टि पर आधारित समन्वय के गीत गाने लगा, विश्व शान्ति की परिकल्पना की गई। इस विचार-धारा को ज्ञान-विज्ञान की तराजू पर तोला जाने लगा। जैनदर्शन की विचारधारा अर्हत्-मत के रूप में विख्यात हुई। ऋषभ से महावीर पर्यन्त जो कुछ भी चिन्तन प्रस्तुत किया गया, वह सब एक पक्ष पर आधारित न होकर समन्वय के मूल सिद्धान्त को लेकर अपने चिन्तन को प्रस्तुत करने लगा। तीर्थंकरों एवं गणधरों के बाद जो कुछ भी कहा गया वह सब एक पक्ष की मुख्यता और दूसरे पक्ष की गौणता को सदैव स्थापित करता रहा। सामान्य और विशेष की दृष्टि नय पर केन्द्रित हो गई। जो भी वस्तु तत्त्व की सिद्धि है वह एक पक्ष सत् या असत् पर ही टिकी नहीं रह गई, अपितु जिस समय सत् रूप में वस्तु का विवेचन किया गया, उस समय सत् की प्रधानता है, असत् का अभाव नहीं, अपितु असत् का सद्भाव होते हुए भी उसकी उपस्थिति गौण रूप अवश्य बनी रहती है, जिस समय कलम कहा जाता है, उस समय कलम की प्रमुखता, पुस्तक आदि की गौणता बनी रहती है, एक का कथन करने पर दूसरे की सर्वथा अभाव नहीं हो जाता है। यदि एक विश्वशान्ति या अस्त्र-शास्त्र का निषेध करना है उस समय अन्य वस्तु का निषेध नहीं हो जाता है। सत् द्रव्य है, जो परिवर्तनशील है किन्तु उसका सर्वथा विनाश नहीं हो जाता है। अपितु वह सत् रूप वस्तु जिस समय जिस रूप में परिवर्तन को प्राप्त होती है, उस समय वह वस्तु उस रूप को प्राप्त होती है, कोई भी वस्तु अपने अस्तित्व को छोड़कर अन्य पदार्थ रूप नहीं हो जाती है, यदि पदार्थ जड़ है तो वह चेतन भी नहीं हो जाएगा, यदि चेतन है तो वह जड़ नहीं हो सकता है। जड़ और चेतन पदार्थ तो हैं पर वे अलग-अलग अपने गुणों पर टिके हुए हैं। प्रत्येक पदार्थ का अपना स्वरूप है। गीता की भी यही दृष्टि है -

“नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

अर्थात् असत् की उत्पत्ति नहीं होती और सत् का सर्वथा नाश नहीं होता है।

स्याद्वाद जैन दर्शन की एक प्रमुख दार्शनिक विचारधारा है, जिसमें विभिन्न दृष्टिकोणों से पदार्थ की सत्ता का, वस्तु के अस्तित्व का निरूपण किया जाता है। स्याद्वाद की शैली वस्तु के धर्म एवं गुण पर आधारित है, जिसका विशाल दृष्टिकोण है जिसमें समन्वयात्मक विवक्षा है।

स्याद्वाद की परम्परा - समन्वय कभी नहीं होता है। यह ऐतिहासिक और पौराणिक महापुरुषों तीर्थंकरों आदि की विचार (चिन्तन) धारा से फलीभूत हुआ है। महावीर की अन्तिम देशना के बाद ज्ञान की अक्षुण्ण धारा बनाए रखने का प्रयास जब से हुआ तभी से स्याद्वाद सिद्धान्त को विशेष बल मिला। महावीर के पूर्व पार्श्व और उससे पूर्व भी यह प्रचलित रहा होगा, क्योंकि सर्वज्ञ, वीतराग वाणी में कहीं, भी किसी भी प्रकार का विरोध नहीं पाया जाता है। जो कुछ अर्थ रूप में प्रतिपादित था, उसे गौतम गणधर ने सूत्र बद्ध किया और उसी को आचार्यों ने लिपिबद्ध कर श्रुतधारा की अविच्छिन्न धारा यहाँ तक पहुँचाई।

अरहंत-भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंधियं सम्मं। स.१९

तीर्थंकर का उपदेश है -

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो ।

तं इच्छ परस्स वि या, एतियं जिणसासणं॥ स.मु. २४२

स्याद्वाद की ऐतिहासिकता

इतिहास तो इसका निश्चित नहीं, किन्तु इतना अवश्य है कि यह वेद, उपनिषद आदि के दार्शनिक चिन्तन के साथ सदैव सामने आता रहा है। क्योंकि भेद व्यवहार की दृष्टि प्रारम्भ से ही रही होगी। इसलिए प्रमाण, नए एवं निक्षेप द्वारा युक्त-अयुक्त की समीक्षा की गई। निश्चय-व्यवहार, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक का आधार लिखा गया। महावीर से पूर्व से ही यह परम्परा चली आ रही है। नास्ति, अस्ति की सापेक्ष दृष्टि रही है। राहुल सांकृत्यायन ने शून्यवाद को सापेक्ष रूप में ही प्रस्तुत किया है। नागार्जुन ने वस्तु को न भाव रूप माना, न अभाव रूप, न उभय रूप, न अनुभय रूप माना। नागार्जुन ने वस्तु को अवाच्य माना। विज्ञानवादी बौद्धों ने विज्ञान रूप माना। सांख्य ने सत् पर बल दिया।

आचार्य सिद्धसेन ने लोक व्यवहार को बनाए रखने का स्पष्ट रूप में कथन किया -

जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा न निव्वहइ।

तस्स भुवणेक्क-गुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स॥ स.६६०

जावंतो वयणपधा -

अर्थात् जितने भी वचन पथ हैं, उतने ही नय हैं, क्योंकि सभी वचन वक्ता के अभिप्राय को व्यक्त करते हैं, ऐसे वचनों में यदि एक ही धर्म की मुख्यता बनी रही तो वे समन्वय मूलक नहीं हो सकते हैं, क्योंकि हठग्राही भाव कभी एक सूत्रता को नहीं ला सकते हैं। दुराग्रह भी यदि व्याप्तिजन्य, पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को कथन करने वाला है तो वह दुराग्रह वस्तु के एक विशेष अर्थ को अवश्य कथन कर सकेगा। इसलिए सापेक्ष सत्यग्राही दृष्टि समीचीत मानी गई है।

स्याद्वाद का व्युत्पत्ति एवं अर्थ -

विणय-णिसेहणसीलो, णिपादणादो य जो हु खुलु सिद्धो।

सो सियसदो भणिओ, जो सावेक्खं पसाहेदि॥ सम. ७१५

अर्थात् जो सदा नियम का निषेध करता है, निपात रूप से सिद्ध है, वह स्यात् शब्द है, जो सापेक्ष को सिद्ध करता है। स्यात् शब्द का प्रयोग निपात रूप में प्रयोग होने के कारण स्यात्+वाद का अर्थ शायद या सम्भव न होकर निश्चित अपेक्षा का द्योतक है।

अवरोपर-सावेक्खं अह पमाण-विसमं वा। (जैनेन्द्र नि. ४९८)

प्रमाण व नय के विषय परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा करते हैं अथवा एक नय का विषय दूसरे नय की अपेक्षा करता है यही सापेक्ष दृष्टि है अन्य नहीं। क्योंकि नय वस्तु के एक धर्म की विवक्षा/अपेक्षा से लोक व्यवहार साधना है अर्थात् किसी एक धर्म ही उसका विषय होता है, इसलिए उस समय उसी धर्म की विवक्षा/अपेक्षा रहती है। जिस समय लाल टोपी वाले को लाओ ऐसा व्यवहार किया जाता है, उस समय लाल टोपी की विवक्षा रहेगी।

सापेक्ष से नियम से समस्त व्यवहारों की सिद्धि होती है -सयल-ववहार सिद्धी सुणयादो होदिणियमेण।” स्याद्वाद में स्यात् अस्ति घटः, स्याद् नास्ति घटः का प्रतिपादन है। इसलिए स्यादवाद निश्चित अपेक्षा का कथन करने वाला सिद्धान्त है?

१. सापेक्ष स्याद्वाद है, निरपेक्ष नहीं।
२. विवक्षा की प्रयोग विधि-विधि एवं निषेध रूप है।
३. अपेक्षा-अनेक धर्मों से युक्त है।
४. स्याद्वाद की विवक्षा-मुख्य और गौण रूप है।
५. स्याद्वाद का कथेचित ऐसा भी है यह कथन सापेक्ष का प्रतिपादन करने वाला है।

स्यादवाद की सप्तभंगी व्यवस्था - नय या प्रमाण दोनों का विषय परस्पर में सापेक्ष विषय को ही आधार बनाता है। भंग/वचन व्यवहार सप्त रूप में होने से सप्त भंगी सापेक्षता के प्रतिपादन में सहायक है।

सत्तेव हुंति भंगा, पणाम-णय-दुणय भेदजुत्ता वि।

सिय सावेक्खं पमाणं, पाएण णय दुणय गिरवेक्खा॥ (सम. ७१६)

प्रमाण, नय और दुर्नय के भेद से युक्त सात भंग है। स्यात् आपेक्ष नय प्रमाण है। इसके सात भेद सप्तभंगी हैं।

अत्थि ति णत्थि दो वि य अव्वत्तव्वं सिएण संजुतं।

अव्वत्ता ने तह, पमाणभंगी सु-णायव्वा॥ (सम ७१७)

१. स्यात् अस्ति, २. स्यात् नास्ति, ३. स्यात् अस्ति नास्ति, ४. स्यात् भवक्तव्य, ५. स्यात् अस्ति अवक्तव्य, ६. स्यात् नास्ति अवक्तव्य, ७. स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य।

(१८६)

यह व्यवस्था (अस्ति और नास्ति) स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्व. काल, और स्वभाव तथा परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और पर भाव रूप हैं।

एकगिरुद्धे इयरो पडिवक्खो अवरो य सन्भावो।

सव्वेसिं स सहावे, कायव्वा होइ तह भंगा॥ सम.७२१)

अर्थात् वस्तु के एकधर्म को ग्रहण करने पर उसके प्रतिपक्षी दूसरे धर्म का भी ग्रहण अपने आप हो जाता है, क्योंकि दोनों ही धर्म वस्तु के स्वभाव हैं। अतः सभी वस्तु धर्मों में सप्तभंगी योजना करने योग्य है।

स्याद्वाद की सर्वोदय दृष्टि - स्याद्वाद द्वारा कथंचित्, किंचित्, किसी की अपेक्षा, किसी एक दृष्टि, किसी एक धर्म या किसी एक अर्थ का बोध कराया जाता है। स्याद्वाद वस्तु कथन करने की एक पद्धति है जिसमें सह-अस्तित्व का समावेश है। विश्व-शान्ति का परिचायक है। विश्व एक है, राष्ट्र अनेक हैं, इसमें किसी को विरोध नहीं।

जब एक दूसरे के प्रति विद्वेष होता है, तब असत् प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं, एक-दूसरे को समाप्त करने का भाव उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति या प्राणी जब अपने प्राणों की रक्षा चाहता है, तब क्या दूसरा नहीं चाहेगा? हाँ, अवश्य। फिर यह क्यों?

हमारा व्यवहार, हमारी क्रियाएं और हमारे देखने एवं सोचने-समझने में बदलाव आ जाता है, तब टकराव उत्पन्न हो जाता है। हमारे भीतरी और बाहरी चिन्तन में अन्तर पड़ जाता है। इसलिए यथार्थ को प्रस्तुत करते समय हठ को पकड़कर चलने लगता है, ऐसी स्थिति में न्याय, अन्याय का रूप धारण कर लेता है। सत्य, सत्य नहीं रह जाता, विश्व मैत्री खटाई में पड़ जाती है। इसलिए सूक्ष्मता को समझने के लिए स्याद्वाद की दृष्टि आवश्यक है।

स्यात्कार अनुजीवी गुण नहीं? -

स्यान्निशि नित्यं सदृशं विरूपं वाच्यं न वाच्यं सदसत्तेव

विपश्चिंतां नाम निवीततत्वमुधोद्रतोद्गार परम्परेयम्॥ (स्या. म. २५/२९५)

प्रत्येक वस्तु कथंचित् अनित्य, कथंचित् नित्य, कथंचित् सामान्य, कथंचित् विशेष, कथंचित् वाच्य, कथंचित् अवाच्य, कथंचित् सत् और कथंचित् असत् है। यह स्यात्कार का प्रयोग धर्मों के साथ होता है, कहीं भी अनुजीवी गुणों के साथ नहीं, क्योंकि स्यात्वाद प्रक्रिया आपेक्षित धर्मों में प्रवर्तित होती है, अनुजीवी गुणों में नहीं।

अनेकान्त का व्यदस्त्पापक स्याद्वाद - एक वस्तु में वस्तुत्व को उत्पन्न करने वाली परस्पर दो विरुद्ध शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकान्त है, जो तत् है, वही अतत् है, जो एक है, वही अनेक है जो सत् है, वही असत् है, जो नित्य है वही अनित्य है। धव. १५/२५/१

जिसके सामान्य-विशेष, पर्याय या गुण अनेक अन्त या धर्म हैं। युक्ति या आगम से अविरुद्ध एक ही स्थान पर प्रतिपक्षी अनेक धर्मों का निरूपण सम्यग्नेकांत कहलाने लगता है तथा जब वस्तु तत् या

अतत् के वचन विलास के रूप में रह जाती है, तब वह मिथ्या अनेकान्त का द्योतक बन जाता है। अनेकांत संशयवाद, या छल को नहीं उत्पन्न करता है अनेकान्त में एकान्त का समन्वय है।

णाणाजीवा णाणाकम्भं, णाणाविहं हवे लट्ठी।

तम्हा वयणविवादं, सग-पर समएहिं वज्जिज्जा॥ सम. ७३५)

इस संसार में नाना जीव, नाना कर्म और नाना लब्धियां हैं। इसलिए स्वधर्मों या परधर्मों को वचन विवाद से दूर ही रहना चाहिए।

स्याद्वाद एक ऐसी वचन व्यवहार पद्धति है, जिसमें वक्ता का अभिप्राय निर्णयात्मक होता है, यथार्थ, सत्यार्थ, परमार्थ पर आधारित होता है, इस स्थिति में अन्य धर्मों का निषेध नहीं होता है। अनेकान्त व्यवहार और परमार्थ दोनों का आश्रयस्थान है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु के अनन्त धर्म होते हैं उन अनन्त धर्मों को अनेकान्त की दृष्टि से स्याद्वाद पद्धति द्वारा समझाया जा सकता है। इस सिद्धान्त में मानवमूल्यों की विशाल दृष्टि है, तात्त्विक परिवेश सामाजिक विकास में सहयोगी है, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में इसकी दृष्टि उन्नत एवं सर्वोपरि है। अतः यह सिद्धान्त मानव की उदात्त-वृत्तियों को जागृत कर समन्वय के कल्याणकारी पथ को प्रदर्शित करता है।

पिऊ कुञ्ज

अरविंदनगर, उदयपुर (राज.)

३१३००१

कोई भी साधक व्रत, उपवास, तपश्चर्या आदि जो कुछ भी करता है मन को साधने के लिए ही करता है। इन्द्रिय निग्रह करने का प्रधान उद्देश्य मन का निग्रह करना होता है। मन इन्द्रियों का स्वामी होता है, अतः उसे वश में कर लिया जाय तो इन्द्रियाँ अनायास ही वश में हो जाती हैं। मन पर विजय पाना ही आत्म विजय है।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

नीति तत्त्व और जैन आगम

• श्री सुभाष मुनि "सुमन"

मनुष्य यहाँ जिस आयुष्य-कर्म को बांध कर आता है, उसे वह भोगना ही पड़ता है। दुनियाँ में जन्म लेने वाल को जीना ही पड़ता है, रोकर, हंसकर या समभाव से, पर तब तक जीना अनिवार्य है, जब तक जीने का विधान है। मनुष्य पैरों से चलना चाहे जब सीखे, चले या न चले, यह उसकी परिस्थितियों और इच्छा पर निर्भर है, परन्तु जन्म के क्षण से लेकर अन्तिम श्वास तक उसे समय के सोपान पर चढ़ते ही रहना पड़ता है। नियति के इस अटल नियम को तोड़ा नहीं जा सकता है।

जीवन-सागर की अटल गहराइयों तक पहुँच कर जीवन शास्त्र का निर्माण करने वाले तत्त्वदर्शी महामुनियों ने सोचा कि जीना तो सबको ही पड़ता है, परन्तु क्या कोई ऐसी कला या विद्या नहीं, जिससे मानव परिस्थितियों पर जीवन की उलझनों पर विजय प्राप्त करके हंसते-हंसते जीना सीखें। अपने इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने नये-नये प्रयोग आरम्भ किये, जीवन के प्रत्येक अंग का विश्लेषण किया, जीव और जीवन के सम्बन्ध-सूत्रों की छान-बीन की, मानसिक जगत के भाव-मण्डल में होने वाली प्रत्येक क्रिया को परखा, बौद्धिक स्तरों को जाना, पहचाना और इस प्रकार सुदीर्घ, साधना के अनन्तर उस कला का आविष्कार किया, जिस कला के अभ्यास से मानव हंसते-हंसते जीये और अपनी अभीष्ट साधना से वह प्राप्त कर सके, जिसे वह प्राप्तव्य मानता है। इसी जीवन-कला को वे 'नीति' कहने लगे। नीति का अर्थ है जीवन कला।

यह सत्य है कि जीवन-प्राप्तव्य की प्राप्ति में ही सुख है और सुख की शीतल छाया में स्थित मानव-सुख पर ही उल्लास जन्य हास्य की आभा छिटका करती है, परन्तु प्रश्न है कि जीवन में प्राप्तव्य क्या है? मनुष्य क्या पाना चाहता है और इस प्रश्न के दूसरे पहलू पर विचार करके यह भी देखना होगा कि मनुष्य क्या छोड़ कर आनन्द की अनुभूति करता है। इन प्रश्नों के उत्तर खोजने में चाहे जितना समय लगा हो, परन्तु नीतिविज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुँच ही गये कि 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' ये ही जीवन के प्राप्तव्य हैं, शेष जो कुछ भी है वह सब इस चतुर्वर्ग की प्राप्ति के सहायक मात्र हैं।

इस चतुर्वर्ग को दो भागों में बांटा गया है। एक ओर तो अर्थ और काम को रखा गया है और दूसरी ओर धर्म और मोक्ष को। वस्तुतः धर्म का स्थान दोनों भागों में है अतः कुछ मनीषियों ने त्रिवर्ग-भिन्नता की भी कल्पना की है। त्रिवर्ग-साधना को लोक-साधना भी कहा जा सकता है और धर्म मोक्ष को संयुक्त वर्ग को परलोक साधना। यद्यपि यह महासत्य है कि जैन साहित्य धर्म-साधना और मोक्ष साधना को ही विशेष महत्व देता है, परन्तु लोक-साधना उससे सर्वथा अछूती रही हो यह भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि वैदिक संस्कृति में त्रिवर्ग-साधना अर्थात् लोक साधना मुख्य रही है और परलोक साधना गौण, यही कारण है कि वहाँ मोक्ष को बैकुण्ठ रूप में उपस्थित किया गया है और वहाँ पर भी अर्थ सुख व काम सुख की उपलब्धि स्वीकार की गई है। जैन-संस्कृति मोक्ष को

प्रमुखता देती है, धर्म को उसका आधारभूत साधन स्वीकार करती है और इसीलिये अर्थ एवं काम से उदासीनता का पाठ पढ़ाती है।

वात्स्यायन ने प्रजापति के द्वारा एक लाख अध्यायों वाले त्रिवर्ग-शासन के निर्माण की बात लिखी है और कहा है कि उन्हीं एक लाख अध्यायों के आधार पर प्रजा की आनन्दमयी स्थिति के लिये मनु के धर्माधिकार, वृहस्पति ने अधर्माधिकार और नन्दी ने कामसूत्र अर्थात् कामाधिकार का निर्माण किया। इस त्रिवर्ग शासन की व्याख्या के रूप में नारद, इन्द्र, शुक्र, भरद्वाज, विशालाक्ष, भीष्म, पराशर और मनु आदि महर्षियों ने अपने नीति-शास्त्रों एवं स्मृतियों को रचा। आचार्य चाणक्य इस नीति-परम्परा के कुशल पारखी, अनुभवशील त्रिवर्ग-साधक हुए। उनका अर्थशास्त्र लोक-तत्त्व की विशद व्याख्या है।

जैन मुनीश्वर इस विषय में सर्वथा मौन रहे हो, यह तो नहीं कहा जा सकता। श्री सोमदेव सूरि (११ वीं शती) अपने नीति वाक्यामृत में 'समं वा त्रिवर्गं सेवेत' (३/३) कह कर धर्म, अर्थ एवं काम की समभाव से सेवना का समर्थन करते हैं। दशवैकालिक सूत्र (निर्युक्ति) में भी कहा गया है -

धम्मो अत्थो कामो भिन्ने ते पिंडिया पडिसत्ता।

जिणवयणं उत्तिन्ना, असवत्ता होति नायव्वा॥

धर्म, अर्थ और काम को चाहे कोई परस्पर विरोधी मानता हो, परन्तु जिनवाणी के अनुसार तो ये जीवन अनुष्ठान में परस्पर अविरोधी हैं। परन्तु जैनागमों में कहीं भी अर्थ और काम की सेवनीयता का समर्थन नहीं किया गया है। जैनागमों का प्रबल पक्ष धर्म और मोक्ष ही रहे हैं, 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' कह कर धर्म को ही जीवन के लिये मंगलकारी कहा गया है।

इतना अवश्य है कि बत्तीसों आगमों ने, प्रकीर्ण शास्त्रों ने, निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णिनिर्माताओं ने यथा-स्थान चतुर्वर्ग के सम्बन्ध में अपने निष्कर्ष घोषित करते हुए अपनी स्वतंत्र नीति का अपनी विलक्षण जीवन कला का परिचय दिया है।

जैन साहित्य को हम धर्म और मोक्ष सम्बन्धी नीति वाक्यों का महासागर कह सकते हैं, इन दोनों के हर पहलू को जैन-दर्शन ने परखा है, उसका विश्लेषण किया है और जीवन के लिये उनकी उपयोगिता पर विशद प्रकाश डाला है। सागर में जैसे नदियाँ मिलती हैं, इसी प्रकार छोटी-छोटी नदियों के रूप में इस महासागर में अर्थ और काम की सरिताएँ भी कहीं-कहीं मिलती अवश्य दिखाई देती हैं। जैसे -

अर्थ नीति - सर्व प्रथम अर्थ नीति को ही लीजिये, इस विषय में जैनागमों के कुछ नीति वाक्य प्रस्तुत कर रहा हूँ -

लाभुति न मज्जिज्जा, अलाभुति न सोइज्जा। -आचाराङ्ग १-२-५

अर्थ लाभ की दशा में गर्व नहीं करना चाहिये, परन्तु उसकी अप्राप्ति पर शोक भी नहीं करना चाहिये।

सव्वं जगं पर तुहं, सव्वं वावि धणं भवे।

सव्वं वित्ते अप्पज्जतं, नेव ताणाय तं तव॥ -उत्तरा १४/३९

अगर सारे संसार पर तुम्हारा अधिकार हो जाय, दुनिया का सारा धन तुम्हें ही मिल जाय, तब भी तुम्हें वह अपर्याप्त ही प्रतीत होगा, वह धन अन्त समय में तुम्हारी रक्षा भी नहीं कर सकता है।

जा बिहवो ता पुरिसस्स होइ, आणापडिच्छओ लोओ।

गलिओदयं धणं विज्जुलावि दूरं परिच्चयइ॥ - प्रा.सू.स.

जब तक मनुष्य के पास वैभव है तब तक ही लोग उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, पानी समाप्त होने पर तो बिजली भी बादल का परित्याग कर देती है।

थोवं लद्धं न खिसए। -दशवै २/२९

थोड़ा प्राप्त होने पर भी मनुष्य को झुंझलाना नहीं चाहिये।

खेतं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा।

चइताणं इमं देहं, गतव्वमवस्स मे॥ -उत्तरा १९/१७

खेत, वस्तुएं, सोना, पुत्र, पत्नी, बन्धु, बान्धव और इस देह को भी त्याग कर हमें यहाँ से अवश्य ही जाना पड़ेगा।

उपर्युक्त अर्थ-नीति सम्बन्धी वाक्यों से ज्ञात होता है कि अपरिग्रह-प्रधान, जैन संस्कृति ने अर्थ-नीति के गाह्य पहलू को नहीं, उसके त्याग-पक्ष को विशेष महत्व दिया है। उसका लक्ष्य वाक्य यही रहा है -

अर्थानामर्जने दुःखं, अर्जितानाञ्च रक्षणे।

आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थान् कष्ट संक्षयान्॥

धन को एकत्रित करते समय दुःख उठाने पड़ते हैं, उसकी रक्षा के लिये भी दुःखों का ही सामना करना पड़ता है, अतः धन के आगमन में कष्ट है, उसके व्यय में कष्ट है, इस प्रकार सभी प्रकार से कष्ट दायक धन को धिक्कार है।

कामनीति - ब्रह्मचर्य की सुदृढ़ आधार शिला पर अवस्थित जैन-संस्कृति के पावन प्रासाद में हम काम के उसी रूप में दर्शन करते हैं, जिस रूप में उसका विचरण वहाँ निषिद्ध किया जा रहा है, कहीं-कहीं उसे धक्का देकर बाहर निकाला जा रहा है, अथवा उसे वहाँ से निकलने का आदेश पत्र दिया जा रहा है। जैन संस्कृति के पावन प्रासाद द्वार पर ही यह 'मौटो' देखने को मिलता है कि 'न विषय भोगो भाग्यं, विषयेषु वैराग्यम्' विषय वासनाओं की प्राप्ति भाग्योदय का चिह्न नहीं, भाग्योदय का विलक्षण लक्षण विषयों से विरक्ति है। वासना-लिप्त धर्म को यहाँ विनाशकारी बतलाते हुए अनाथी मुनि कहते हैं -

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।

एसो विधम्मो विसओववत्तो, हणाइ वेयालइ वाविवत्तो॥ -उत्तरा २०/४०

पिया हुआ जहर, उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र और अच्छी प्रकार से बरा में न किया हुआ बेताल (पिशाच) जैसे मनुष्य को नष्ट कर देते हैं, वैसे ही वासनायुक्त धर्माचरण आराधक का विनाश कर देता है।

एवं खु तासु विन्नपं संभवं संवासं च वज्जेज्जा।

तज्जातिया इसे कामा वज्जकरा य एवमक्खाए॥ सुयगडांग ४/२/१९

इन स्त्रियों के विषय में बहुत कुछ कहा गया है, इनका परिचय और संसर्ग वर्जित है, नारी संसर्ग जन्य कामभोगों को भगवान् जिनेन्द्र ने आत्म घातक कहा है।

विसया विसं व विसमा, विसया वेत्स्या नरव्व हादकरा।

विसय विसाय विसहर, बाधाणसमा मरण -हेऊ॥

काम-भोग विष के समान विषम है, अग्नि के समान दाहक है, पिशाच, सर्प और व्याघ्र के समान मरण के कारण है।

हासं किडं रइं दप्पं, सहभुतासियाणि य।

बम्भचेररओ थीणं, नाणुचिते कयाइ वि॥ उत्तरा ९६/६

स्त्रियों के साथ मजाक, नाना विध क्रीड़ाए, उनका सहवास, मेरी स्त्री अत्यन्त सुन्दर है, इस प्रकार की दर्पोक्तियाँ स्त्री के साथ बैठ कर भोजन और उसके साथ एक ही पलंग पर बैठना आदि काम-क्रियाओं का सेवन तो दूर रहा, उनका चिंतन भी न करें।

दुज्जए कामभोगेय, निच्चसो परिवज्जए।

संका ठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं॥ उत्तरा १६/१४

ये काम भोग अजेय है, ये शंका शीलता के प्रमुख कारण है, इसलिये मानसिक एकाग्रता के अभिलाषी को इनका परित्याग ही कर देना चाहिये।

कामाणुगिद्धिपभवं खु दुक्खं। उत्तरा ३२/१९

काम की निरन्तर अभिलाषा से दुखों की उत्पत्ति होती है।

एए य संगे समइक्कमिता, सुदुत्तरा चेव भंवाति सेसा

नारी-संग का अतिक्रमण करते ही विश्व के सभी पदार्थ सुखकारी हो जाते हैं।

यह जैन सांस्कृतिक साहित्य का कामनीति सम्बन्धी ग्राह्य एवं आचरणीय दृष्टिकोण है, परन्तु यहाँ यह नहीं भूलना चाहिये कि जैनागम कामासक्ति विरोधी होते हुए भी नारी जाति का विरोधी नहीं है। यहाँ नारी को मोक्षाधिकारिणी माना है, उसे केवल वासना पूर्ति का यन्त्र न कह कर उसे सम्मान्य पूज्य स्थान दिया है। उनका कथन है -

नुनु सन्ति जीवलोके काश्छिम्मशील संयमो पेताः।

निजवंशतिलक भूताः श्रुत-सत्यसमन्विता नार्यः॥ -ज्ञानार्णव, १२/५७

शम-शील-संयम से युक्त अपने वंश में तिलक समान श्रुत तथा सत्य से समन्वित नारियाँ धन्य है।

सतीत्वेन महत्वेन वृत्तेन विनयेन च।

विवेकेन स्त्रियः काश्चिद् भूषयन्ति धरातलम्॥ ज्ञानार्नव, १२/५८

स्त्रियाँ अपने सतीत्व से, महत्व से, आचरण की पवित्रता से, विनयशीलता और विवेक से धरातल को विभूषित करती हैं।

ब्राह्मी, सुन्दरी, अञ्जना, अनन्तमती, दमयन्ती, चन्दना, राजीमती, एवं सीता आदि के सतीत्वमय नारीत्व पर जैन संस्कृति की गर्व है। तीर्थंकरों के मातृत्व के रूप में उनके गरिमा सिंहासन सब के लिये वन्द्य है। 'गिहीवासे वि सुव्वए' -सुव्रती रहकर गृहस्थ धर्म के पालन का यहाँ निषेध नहीं है। यहाँ कामनीति को मर्यादा में बाँधकर रखने का आदेश है, उसे स्वच्छन्द -विहारिणी बनने से रोका जाय, यही जैन संस्कृति का ध्येय है।

धर्म नीति - धर्म नीति के सम्बन्ध में अगर यह कहा जाय कि 'जैनागम धर्ममय हैं' -जैन साहित्य-सागर में धर्माभिरुचियों के विलास ही विलास दृष्टिगोचर होते हैं ऊर्मिमाला ही सागर है और सागर ही ऊर्मिमाला है, इस रूप में दोनों का एकत्व प्रसिद्ध है। 'उठे तो लहर है बैठे तो नीर है, लहर कहे या नीर खोय मू' की उक्ति चिरकाल से कर्ण-परिचित है।

यद्यपि धर्म क्या है, इस प्रश्न की उत्तरमाला ओर छोर रहित हो चुकी है, फिर भी इस प्रश्न का प्रश्न-चिह्न उत्तर की प्रतीक्षा में ज्यों का त्यों खड़ा है। धर्म का परिभाषात्मक रूप स्पष्ट करने के लिये हम कहेंगे -'दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं धारयतीति धर्मः' -आत्मा को दुर्गति के गहरे गर्त में गिरने से बचाकर जो उसे धारण करता है, वही धर्म है। इसीलिये चार पुरुषार्थों में धर्म को प्रथम स्थान दिया गया है।

धर्मानुगामिनी अर्थ-नीति अनर्थकारिणी नहीं हो सकती, ध-धर्मता काम-नीति को भी बुरा नहीं कहा जा सकता है, मोक्ष की तो आधार-भूमि धर्म ही है, इसलिये इसे उत्कृष्ट मंगल कहा गया है।

धम्मो मङ्गल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमोतवो।

अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म ही सर्वोत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप से वह दिव्य चेतना जागृत होती है, जिसके प्रकाश में वस्तु तत्त्व प्रत्यक्ष हो उठता है। इसलिये वस्तु स्वभाव को ही धर्म बतलाते हुए कहा गया है -'वत्थु सहाषो धम्मो।' ठीक ही है जिसने वस्तु स्वभाव को जान लिया है, उष्णता अग्नि का स्वभाव है, वहीं उसका धर्म है, इस धर्म से रहित अग्नि हम कहीं भी नहीं पा सकते। मनुष्य का स्वभाव विवेक है -ज्ञान है। विवेक से ही वह हेय-उपादेय को जान सकता है। हेय का त्याग कर सकता है और उपादेय को ग्रहण कर सकता है, अतः विवेकवान ही मनुष्य है। विवेकहीन मानवता के पावन सिंहासन पर बैठने का अधिकारी ही नहीं है। मनुष्य शब्द द्वारा हम जिससे परिचित हैं, वह हाड़-मांस का ढाँचा ही नहीं है, वह भी हाथों वाले इस पौद्गलिक देह में रहने वाला आत्मा है। वह आत्मा ही धर्म है -

अप्पा अप्पमि रओ, रायादिसू सयलदोस परिचत्तो।

संसारतरणहेदुं धम्मोत्ति जिणेहिं णिदिट्ठं॥ भाव पाहुड, ८३

राग, द्वेष आदि से रहित आत्मोद्धार से संलग्न और संसार-सागर को तरे के लिये यत्नशील आत्मा को ही जिनेन्द्र भगवात् धर्म कहते हैं। इस धर्म के सम्बन्ध में शास्त्रोक्तियाँ इस प्रकार हैं -

बावत्तरी कला कुसला पंडिय पुरसा अपंडिया चेव।

सव्व कल्लाण व परंजे धम्मकलं न जाणांति॥

चाहे कोई व्यक्ति बहतर कलाओं में कुशल है, पण्डित है या मूर्ख है, यदि वह धर्म कला से अपरिचित है तो सभी कलाएं व्यर्थ हैं।

अविसंवायण संपन्नयाएणं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ। -उत्तरा २९/४६

निष्कपट व्यवहार से मनुष्य धर्म की आराधना करने वाला हो जाता है।

धम्मेणं चेव वित्ति कप्पेमाणा विहरंति। -सूत्रकृताङ्ग २/२/३९

धर्मानुकूल आजीविका करने वाल ही सद्गृहस्थ है।

एगा धम्मपडिया जं से आया पज्जवजाए। -स्थानाद् १/१/४०

आत्मा की विशुद्धि केवल धर्म से ही होती है।

एगे चरेज्ज धम्मं। -प्रश्न व्याकरण २/३

चाहे तुम अकेले ही क्यों न हो ओ, धर्म का आचरण करते रहो।

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो य से मोक्खो। -दशवैकालिक ९/२/२

विनय ही धर्म का मूल है और मोक्ष ही उसका अंतिम फल है।

जा जा वच्चइरयणी, न सा पड़िनियत्तई।

धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ॥ -उत्तरा १४/२५

जो रातें बीत जाती है, वे पुनः लौट कर कभी नहीं आती। बीतती हुई रातें उसी की सफल है, जो धर्म का आचरण करते हैं।

एको हि धम्मो नरदेव ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि। -उत्तरा १४/२०

राजन्! एक धर्म ही मनुष्य का रक्षक है, उसके बिना मनुष्य की रक्षा करने वाला कोई नहीं।

धम्ममहिंसा संम नत्थि। -भक्त परिज्ञा, ९१

अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।

जरा मरण वेगेण बुज्झमाणाण पाणिणं।

धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमं॥ -उत्तरा २३/६८

बुढ़ापे के असह्य भार से दब कर मृत्यु-नदी के जलौघ में बहते हुए प्राणियों को यदि कोई सुन्दर आश्रय मिल सकता है तो वह है धर्म।

ये तो जैनागम-सागर की बुद्धि तट के समीप आई दो-चार तरंगे हैं, जिनके हमने ऊपर दर्शन किये हैं, ऐसी असंख्य धर्मोर्मियों के यहाँ दर्शन किये जा सकते हैं, स्वाध्याय की तरणी पर बैठकर उन मंगलमयी तरल तरंगों को देखने के चाव की आवश्यकता है।

मोक्षनीति - मोक्ष का अर्थ है मुक्ति अर्थात् स्वतन्त्रता। हम यहाँ देखते हैं, कि प्रतिदिन अनन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, खाते हैं, पीते हैं, और 'जीवेत् शरदः शतम्' के पाठ स्वरों में सौ वर्ष तक इस धरती पर सास लेते रहने की कामना करते हैं। यह भी उस अवस्था में, जबकि अपने ही कन्धों पर कितने ही शवों को ढोकर श्मशान की अग्नि में जला आते हैं। मनुष्य को पता है कि मुझे लगभग सौ साल जीना है, फिर भी वह इतना जुटाना चाहता है जिसकी सीमा न हो। यदि उसे यह पता चल जाय कि उसको हमेशा यही रहना है तो वह सारे संसार की रजिस्ट्री, सारी दुनिया के हक-हकूक अपने नाम करवा लेने के काम से भी न चूकता।

प्रश्न है कि क्या यह आना-जाना स्वयं ही हो रहा है? अथवा इसके पीछे कोई अन्य प्रेरक शक्ति है? स्वयं कुछ हो नहीं सकता, तो फिर वह कौन सी शक्ति है, जिसकी अनियंत्रित प्रेरणा से आवागमन का चक्र निरन्तर धूम रहा है? वीतराग जिनेन्द्रों ने उस प्रेरक शक्ति का अन्वेषण कर रही लिया और कहा - 'वह शक्ति कर्म भार से बंधन है, यदि कर्म-भार को उतार कर फेंक दिया जाय तो यही मोक्ष है।' तभी तो आत्मा को अमृतत्व-सिन्धु में स्नान कराने वाले आत्मधर्मा भुनीश्वर कहते हैं -

विस्सेस कम्ममोक्खो मोक्खी जिणसासणे समुद्धितो।

तम्मि कए जीवोऽवं, अणुहवई अणंतयं सोक्खं॥

सम्पूर्ण कर्मों के पाशों को तोड़कर स्वतंत्र हो जाना ही तो मोक्ष है। जिनेन्द्र भगवान् का यह आदेश है कि 'यस्य मोक्षेऽप्यनाकांक्षा स मोक्षमधि गच्छति' जिसे मोक्ष की भी आंकाक्षा नहीं, वही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अतः मोक्ष के लिये उस अवस्था की आवश्यकता होती है, जिसमें इच्छा निरोध नहीं, इच्छाओं का अस्तित्व ही समाप्त हो जाय इसीलिये मोक्षावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है-

ण वि दुक्खं, ण वि सुक्खं, ण वि पीड़ा, णे व विज्जदे वाहा।

ण वि मरणं, ण वि जणणं, तत्थेव य होई निव्वा॥

जहाँ दुःख नहीं, इन्द्रिय सुख नहीं, जहाँ पीड़ा नहीं, जहाँ कोई बाधा नहीं, न जन्म है, न मरण है, वही तो मोक्ष है।

इस अवस्था की अनुभूति के कुछ क्षण तपस्वी जीवन में भी आते हैं, उस जीवन में आनन्दोल्लास के साथ मुक्त आत्माएं कहा करती हैं -

न में मृत्युः कुतो भीतिः, न मेव्याधिः कुतो व्यथा।

नाऽहं बालो न बृद्धोऽहं, न युवैतानि पुट्रले॥

जब मैं मरण-मुक्त हूँ तो डरं किससे, जबकि रोग मेरे पास आ ही नहीं सकते, तो पीड़ा कैसी? न मैं बच्चा हूँ, न युवा हूँ, न वृद्ध हूँ यह सब तो पुद्गल क्रीड़ा है, होती रहे यह क्रीड़ा मेरा इस क्रीड़ा से क्या प्रयोजन है।

से सुमंव में अज्झात्थयं च मे, बंधप्यमुक्खो अज्जत्थेव। -आचारांग ५/५२

मैंने सुना है और अनुभव किया है कि मैं आत्मा हूँ, बन्धनों से मुक्त हूँ। कितने उल्लास मय होते होंगे इस अनुभूति के क्षण। यह आनन्दोत्सव के क्षण, सदाभावी बन जाय, इसी का प्रयास है वह समस्त सांस्कृतिक साहित्य जो मोक्षनीति का अनुगामी है।

नीति-शास्त्र की सीमाएं लोक तक ही सीमित हैं, परन्तु जैनागमों की नीति लोक-परिचायिका तो है ही, साथ ही उस ओर भी ले जाने वाली है, जहाँ मोक्ष है, जहाँ नीति का अवसान है, जो जीवन-यात्रा का अन्तिम लक्ष्य है।

ऊपर हमने चतुर्वर्ग रूप जैनत्व-मण्डित नीति-शास्त्र का विहंगावलोकन किया है। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि जैन-साहित्य एकांगी साहित्य नहीं, उसमें जीवन के सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त निष्कर्ष है, उसमें जीवन के हर पहलू को परख कर उपस्थित किया गया है, उसमें लोक की वास्तविकता के ऐसे बहुरंगी चित्र उपस्थित किये गये हैं, जिनसे मनुष्य लोक की दुःखमयता से परिचित होकर उधर बढ़ सके जिधर आनन्द का अनन्त सिन्धु लहरा रहा है।

आधुनिक सम्यता का सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि मानव अन्यत्यवाद की लहरों में बह गया है। अपने आपको मूँका बाहरों जगत में सुख तथा शांति प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। परिणाम यह होता है कि न तो वह अपने आपको पा सकता है और न जगत को ही पाता है। उसे कहीं भी शांति नसीब नहीं होता। आध्यात्मिक साधना के बिना व्यक्ति न तो परलोक सुधार पाता है और न इस लोक में सी वृष्णा के कारण संतुष्टि प्राप्त कर सकता है।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

अहिंसा की परिधि में पर्यावरण संतुलन

• डॉ. पुष्पलता जैन

अहिंसा धर्म है, संयम है और पर्यावरण निःसर्ग है, प्रकृति है। प्रकृति की सुरक्षा हमारी गहन अहिंसा और संयम साधना का परिचायक है। प्रकृति का प्रदूषण पर्यावरण के असंतुलन का आवाहक है और असंतुलन अव्यवस्था और भूचाल का प्रतीक है अतः प्राकृतिक संतुलन बनाये रखना हमारा धर्म है, कर्तव्य है और आवश्यकता भी, अन्यथा विनाश के कगारों पर हमारा जीवन बैठ जाता है और कटी हुई पतंग-सा लड़खड़ाने लगता है। यह ऐतिहासिक और वैज्ञानिक सत्य है।

प्राचीन ऋषियों, महर्षियों और आचार्यों ने इस प्रतिष्ठित तत्व को न केवल भलीभाँति समझ लिया था बल्कि उसे उन्होंने जीवन में उतारा भी था। वे प्रकृति के रम्य प्रांगण में स्वयं रहते थे, उसका आनंद लेते थे और वनवासी रहकर स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति की सुरक्षा किया करते थे। जब कभी प्राकृतिक संतुलन बिगड़ा, विपत्तियों के अंबार ने हमारे दरवाजे पर दस्तक दी और तब भी यदि हम न संभले तो मृत्यु का दुःखद आलिंगन करने के अलावा हमारे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा। शायद यही कारण है कि हमारे पुरखों ने हमें “परस्परोपग्रहो जीवानाम्” का पाठ अच्छी तरह से पढ़ा दिया जिसे हमने गाँठ बाँधकर सहेज लिया।

प्रकृति वस्तुतः जीवन की परिचायिका है। पतझड़ के बाद वसंत, और वसंत के बाद पतझड़ आती है। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख का चक्र एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। वनस्पति और प्राणी जगत प्रकृति के अभिन्न अंग है। उनकी सौंदर्य अभिव्यक्ति जीवन की यथार्थता है। वसंतोत्सव हमारे हर्ष और उल्लास का प्रतीक बन गया है। कवियों और लेखकों ने उसकी उन्मादकता को पहचाना है, सरस्वती की वंदना कर उसका आदर किया है और हल जोतकर जीवन के सुख का संकेत दिया है।

प्रकृति प्रदत्त सभी वनस्पतियाँ हम-आप जैसी सांस लेती हैं, कार्बन-डाय-आक्साइड के रूप में और साँस छोड़ती हैं आक्सीजन के रूप में। यह कार्बन-डाय आक्साइड पेड़-पौधों के हरे पदार्थ द्वारा सूर्य की किरणों के माध्यम से फिर आक्सीजन में बदल जाती है इसलिए बाग-बगीचों का होना स्वास्थ्य के लिए अत्यावश्यक है। पेड़-पौधों की यह जीवन प्रक्रिया हमारे जीवन को संबल देती है, स्वस्थ हवा और पानी देकर तथा आवाहन करती है जीवन को संयमित और अहिंसक बनाये रखने का। सारा संसार इन जीवों से भरा हुआ है और हर जीव का अपना-अपना महत्व है। उनके अस्तित्व की हम उपेक्षा नहीं कर सकते। उनमें सुख-दुख के अनुभव करने की शक्ति होती है। जैनागमों में मूलतः स्थावर और त्रस ये दो प्रकार के जीव हैं। स्थावर जीवों में चलने-फिरने की शक्ति नहीं होती, ऐसे जीव पाँच प्रकार के होते हैं - १. पृथ्वी कायिक, २. अप्कायिक, ३. वनस्पति कायिक, ४. अग्निकायिक और ५. वायुकायिक। दो इन्द्रियों से लेकर पाँच इन्द्रियों वाले जीवन त्रस कहलाते हैं। जैनशास्त्रों में इन जीवों के भेद-प्रभेदों का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है जो वैज्ञानिक दृष्टि से भी सही उतरा है। इसकी मीमांसा और विस्तार पर तो हम यहाँ नहीं जायेंगे परंतु इतना अवश्य कहना चाहूँगी कि इन सब जीवों का गहरा संबंध पर्यावरण से है।

हमारे चारों ओर की भूमि, हवा और पानी ही हमारी पर्यावरण है। इनसे हमारा पुराना संबंध है लेकिन इससे भी अधिक पुराना संबंध है पौधों और जानवरों से। हमारे लिए सारे जानवर और पौधे जरूर हैं। उनके बिना हमारा जीवन सुसंचालित नहीं हो सकता। यह पर्यावरण जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों के कारण ही जीवंत है। उनकी हिंसा करने पर प्रकृति भी अपनी प्रतिक्रिया दिखलाती है। आज के भौतिक वातावरण में, विज्ञान की चकाचौंध में हम अज्ञानवश अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए अपने प्राकृतिक पर्यावरण को दूषित कर रहे हैं। प्रकृति का संतुलन डगमगाने लगा है। उसकी सादगी और पवित्रता कुचली जा रही है, नष्ट हो रही है। इसका मूल कारण है हमारा असंयम, तृष्णा और प्रबल आशा का संचरण। हमने वन, उपवन को नष्ट भ्रष्ट कर ऊँची ऊँची अट्टालिकायें बना लीं, बड़े-बड़े कारखाने स्थापित कर लिए जिनसे हानिकारक रसायनों, गैसों का निर्झरण हो रहा है, उपयोगी पशु-पक्षियों और कीड़ों-मकोड़ों को समाप्त किया जा रहा है। वाहनों आदि से ध्वनि प्रदूषण, सारी गंदगी, कूड़ा-कचड़ा आदि बहा देने से जल प्रदूषण और गैसों से वायु प्रदूषण हो रहा है। सारी प्राकृतिक संपदा को हम अपने क्षणिक लाभ के लिए असंतुलित करने के दोषी बन रहे हैं।

कुछ प्रदूषण प्रकृति से होता है पर उसे प्रकृति ही स्वच्छ कर देती है। जैसे पेड़-पौधों की कार्बन-डाई-आक्साइड सूर्य की किरणों से साफ होकर आक्सीजन में बदल जाती है। हमारा बहुत सारा जीवन इन्हीं पेड़-पौधों पर अवलंबित है। वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि अलग-अलग तरह के पेड़-पौधों की पत्तियां विभिन्न गैसों आदि के जहर, धूल आदि से जूझकर पर्यावरण को स्वच्छ रखती है। जंगल कट जाने से वर्षा कम होती है, आबहवा बदल जाती है, सूखा पड़ता है, बाढ़ आती है, गर्मी अधिक होती है। वन्य जीव भी इसी तरह हमारी भौतिकता के शिकार हो रहे हैं। अनेक उपयोगी जानवर, पक्षी और कीड़ों को हम समाप्त कर रहे हैं। इस कारण हमारा जीवन विनाश की दिशा में तेजी से बढ़ रहा है। यदि हमने पर्यावरण की सुरक्षा अब भी नहीं की और प्रदूषण की मात्रा कम नहीं की तो पर्यावरण जहरीला होकर हमारे जीवन को तहस-नहस कर देगा। नई-नई बीमारियों से हम त्रस्त हो जायेंगे। पर्यावरण की रक्षा वस्तुतः हमारा विकास है। उदाहरण के तौर पर कोई आम पीपल वर्गद आदि पेड़-पौधे वातावरण की गंदी हवा को छानकर, और स्वयं जहर का घूंट पीकर हमें स्वच्छ हवा और प्राण वायु देते हैं। इसी तरह आम, सूर्यमुखी पथ, चौलाई, कनकौवा, गौर, सनई आदि भी गंदी हवा दूर करके हमारी सेवा करते हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधान के फलस्वरूप हम यह जानते हैं कि पर्यावरण का असंतुलन हिंसा जन्य है और यह हिंसा तब तक होती रहती है जब तक हमें आत्मबोध न हो। आत्मतुला की कसौटी पर कसे बिना व्यक्ति न तो दूसरे के दुःख को समझ सकता है और न उसके अस्तित्व को स्वीकार कर पाता है। कदाचित् यही कारण है कि आचारांग जैसे प्राचीन आगम ग्रंथ का प्रारंभ शस्त्रपरिज्ञा से कर हमें अस्तित्व बोध कराया गया है। यह अस्तित्व बोध अहिंसात्मक आचार-विचार की आस्था का आधार स्तम्भ है। अहिंसा के चार मुख्य आधार स्तम्भ हैं -आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद।^१ प्राकृतिक पर्यावरण और नैतिक पर्यावरण, दोनों की सुरक्षा के लिए इन चारों भाषणों का पालन करना आवश्यक है। इन चारों की पृष्ठभूमि में अहिंसा दर्शन प्रहरी के रूप में खड़ा रहता है।

१. आश्रवो मदहेतुः स्यात् संवरो मोक्षकारणम्।
इतीय मार्हती दृष्टि, रन्यदस्या : प्रपंचनम्॥

दिशा-दृष्टि से दूर पड़ा हुआ व्यक्ति “जीवो जीवस्य भोजनम्” मानकर स्वयं की रक्षा के लिए दूसरे का अमानुषित वध और शोषण करता है, प्रशंसा सम्मान, पूजा, जन्म-मरण मोचन तथा दुःख प्रतिकार करने के लिए वह अज्ञानतापूर्वक शस्त्र उठाता है और सबसे पहले पृथ्वी और पेड़ पौधों पर प्रहार करता है जो मूक हैं, प्रत्यक्षतः कुछ कर नहीं सकते। परन्तु ये मात्र मूल हैं इसलिए चेतनाशून्य हैं और निरर्थक हैं यह सोचना वस्तुतः हमारी मृत्यु का कारण बन सकता है जिसे महावीर ने कहा -“एस खलुमोहे, एस खलुमारे, एस खलुणरए।”^२ यह मोह हमारी प्रमाद अवस्था का प्रतीक है। इसी से हम पृथ्वीकायिक आदि जीवों की हिंसा करते हैं। इन स्थावर जीवों में भी प्राणों का स्पन्दन है, उनकी चेतना सतत मूर्छित और बाहर से लुप्त भले ही लग रही हो पर उन्हें हमारे अच्छे-बुरे भावों का ज्ञान हो जाता है, और शस्त्रच्छेदन होने पर कष्टानुभूति भी होती है। भगवती सूत्र (१९.३५) में तो यह कहा कि पृथ्वीकायिक जीव आक्रांत होने पर वृद्ध पुरुष से कहीं अधिक अनिष्टतर वेदना का अनुभव करता है। इतिहास यह बताता है कि पृथ्वी के गर्भ में करोड़ों साल पहले जीवों का रूप छिपा रहता है जो फासिल्स (जीवाश्म) के रूप में हमें प्राप्त हो सकता है, पृथ्वी के निरर्थक खोदने से उसको-टूटने की संभावना हो सकती है और साथ ही पृथ्वी के भीतर रहने वाले जीवों के वध की भी जिम्मेदारी हमारे सिर पर आ जाती है।

इसी तरह जलकायिक जीव होते हैं जिनकी हिंसा न करने के लिए हमें सावधान किया गया है। क्षेत्रीय निमित्त से जल में कीड़े उत्पन्न होने को तो सभी ने स्वीकार किया है पर जल के रूप में उत्पन्न होने वाले जीवों की स्वीकृति महावीर के दर्शन में ही दिखाई देती है इसलिए वहाँ उत्सेचन (कुए से जल निकालना), गालन (जल छानना), धावन (जल से उपकरण आदि धोना) जैसी क्रियाओं को जलकाय के शस्त्र के रूप में निर्देष्ट किया है। ऐसी हिंसा व्यक्ति के अहित के लिए होती है, अबोध के लिए होती है (तंसे अहियाए, तं से अबोहीए)। इसीलिए जैनधर्म में जल गालन और प्रासुक जल सेवन को बहुत महत्व दिया गया है। साथ ही यह भी निर्देश है कि जो पानी जहाँ से ले आये, उसकी बिलछावनी धीरे से उसी में छोड़नी चाहिए ताकि उसके जीव न मर सकें। “पानी पीजे छानकर गुरु कीजे जान के” कहावत स्वच्छ पानी के उपयोग का आग्रह करती है। दूषित पानी निश्चित ही हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। पीलिया और पोलियो जैसे वायरस रोग, दस्त, हैजा, टायफाइड जैसे बैक्टीरिया रोग और सूक्ष्म जीवों व कृमियों से उत्पन्न होने वाले रोग दूषित प्रदूषित जल के उपयोग से ही होते हैं। एक बूँद पानी में हजारों जीव रहते हैं यह भी एक वैज्ञानिक तथ्य है इसलिए व्यर्थ पानी बहाना भी अनर्थ दंड में गिना जाता है। आज के प्रदूषित पर्यावरण में नदियों और समुद्रों का जल भी उपयोगिता की दृष्टि से प्रश्न चिह्न खड़ा कर देता है। खाड़ी-युद्ध के संदर्भ में समुद्र में गिराये हुए तेल से समुद्री जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है और उसमें रहने वाले खाद्य शैवाल (काई) लवण आदि उपयोगी पदार्थ दूषित हो रहे हैं। अनेक जल संयंत्रों के खराब होने की भी आशंका हो गयी है।

अग्नि में भी जीव होते हैं जिन्हें हम मिट्टी जल आदि डालकर प्रमाद वश नष्ट कर डालते हैं। वायुकायिक जीव भी इसी तरह हम से सुरक्षा की आशा करते हैं। आज का वायु प्रदूषण हमें उस ओर अप्रमत्त और अहिंसक रहने का संकेत करता है।

वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा आज सर्वाधिक बड़ी समस्या बनी हुई है। पेड़-पौधों को काटकर आज हम उन्हें व्यर्थ ही जलाने चले जा रहे हैं। वे मूक-वधिर अवश्य दिखाई देते हैं पर उन्हें हम आप जैसी कष्टानुभूति होती है। पेड़-पौधे जनमते, बढ़ते और म्लान होते हैं। भगवती सूत्र के सातवें-आठवें शतक में स्पष्ट कहा है कि वनस्पति कायिक जीव भी हम जैसे ही श्वासोच्छ्वास लेते हैं। शरद हेमन्त, वसंत, ग्रीष्म आदि सभी ऋतुओं में कम से कम आहार ग्रहण करते हैं। वर्तमान विज्ञान की दृष्टि से भी यह कथन सत्य सिद्ध हुआ है। प्रज्ञापना (२२ से २४ सूत्र) में वनस्पति कायिक जीवों के अनेक प्रकार बताये हैं और उन्हीं का विस्तार अंगविज्ञा आदि प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। इन ग्रंथों के उद्धरणों से यह तथ्य छिपा नहीं है कि तुलसी जैसे सभी हरे पौधे और हरी घांस, बांस आदि वनस्पतियाँ हमारे जीवन के निर्माण की दिशा में बहुविध उपयोगी हैं।

यह एक विश्वजनीन सत्य है कि पदार्थ में रूपान्तरण प्रक्रिया चलती रहती। “सद्द्रव्य लक्षणम्” और “उत्पाद् व्यय द्रव्य युक्तं सत्” सिद्धांत सृष्टि संचालन का प्रधान तत्व है। रूपान्तरण के माध्यम से प्रकृति में संतुलन बना रहता है। पदार्थ पारस्परिक सहयोग से अपनी जिन्दगी के लिए ऊर्जा एकत्र करते हैं और कर्म सिद्धांत के आधार पर जीवन के सुख-दुःख के साधन संजो लेते हैं। प्राकृतिक संपदा को असुरक्षित कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर हम अपने सुख-दुःख की अनुभूति में यथार्थता नहीं ला सकते। अप्राकृतिक जो भी होगा, वह मुखौटा होगा, दिखावट के अलावा और कुछ नहीं। प्रकृति का हर तत्व कहीं न कहीं उपयोगी होता है। यदि उसे उसके स्थान से हटाया गया तो उसका प्रतिफल बुरा भी हो सकता है। ब्रिटेन में मूंगफली की फसल अच्छी बनाने के लिए मक्खी की जाति को नष्ट किया गया फिर भी मूंगफली का उत्पादन नहीं हुआ क्योंकि वे मक्खियाँ मूंगफली के पुष्पों के मादा और नर में युग्मन करती थीं। सर्प आदि अन्य कीड़े-मकोड़ों आदि के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

पर्यावरण का संबंध मात्र प्राकृतिक संतुलन से ही नहीं है बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक वातावरण से परिशुद्ध और पवित्र बनाये रखने के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है। संक्षेप में यदि कहा जाय तो धर्म ही पर्यावरण का रक्षक है और नैतिकता उसका द्वारपाल। आज हमारे समाज में चारों ओर अनैतिकता और भ्रष्टाचार सुरसा की भांति बढ़ रहा है। चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या शिक्षा का, धर्म का क्षेत्र हो या व्यापार का, सभी के सिर पर पैसा कमाने का भूत सवार है। माध्यम चाहे कैसा भी हो इससे हमारे सारे सामाजिक संबंध तहस-नहस हो गये हैं। भ्रातृत्व भाव और प्रतिवेशी संस्कृति किनारा काट रही है, आहार का प्रकार मटमैला हो रहा है, शाकाहार के स्थान पर अप्राकृतिक खान पान स्थान ले रहा है। मिलावट ने व्यापारिक क्षेत्र को सड़ी खर की तरह दुर्गन्धित कर दिया है। अर्थ लिप्सा की पृष्ठभूमि में बर्बरता बढ़ रही है। प्रसाधनों की दौड़ में मानवता कूच कर रही है। इन सारी भौतिक वासनाओं की पूर्ति में हम अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को भूल बैठे हैं। मानसिक, वाचिक और कायिक क्रियाओं के बीच समन्वय खतम हो गया है। हमारी धार्मिक क्रियाएं मात्र बाह्य आचरण का प्रतीक बन गयी हैं। परिवार का आदर्श जीवन समाप्त हो गया है, ऐसी विकट परिस्थिति में अहिंसा के माध्यम से पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने की साधना को पुनरुज्जीवित करना नितांत आवश्यक हो गया है।

पर्यावरण का यह विकट आंतरिक और बाह्य असंतुलन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में जबरदस्त क्रांति लायेगा। यह क्रांति अहिंसक हो तो निश्चित ही उपादेय होगी, पर यह असंतुलन और बढ़ता गया तो खूनी क्रांति होना भी असंभव नहीं। जहाँ एक दूसरे समाज के बीच लम्बी-चौड़ी खाई हो गयी

हो, एक तरफ प्रासाद और दूसरी तरफ झोपड़ियाँ हो, एक ओर कुपच और दूसरी ओर भूख से मृत्यु हो तो ऐसा समाज बिना वर्ग संघर्ष के कहाँ रह सकता है? सामाजिक समता की प्रस्थापना और वर्ग संघर्ष की व्यथा-कथा को दूर करने के लिए अहिंसक समाज की रचना और पर्यावरण की विशुद्धि एक अपरिहार्य साधन है। यही धर्म है और यही संयम है और यही सम्यग्ज्ञान और सम्यक् आचरण का सार है।

एवं खु पाणिणो सारं जं हिंसइ ण कंयणं।

अहिंसा समयं चेव एयावंतं वियाणि या॥ सूत्रकृतांग, १.१.४.१०

पर्यावरण पर गंभीरता से विचार किया जाये तो उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। व्यक्ति का शरीर मन और अध्यात्म का परिवेश सब कुछ उसकी सीमा में समाहित हो जाता है। वह वातावरण जो हमारे शरीर और मन को प्रभावित करता है, अपनी प्रवृत्ति से हटकर अध्यात्म को दूषित करता है, हमारे लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। प्राचीन आचार्यों ने वातावरण के इस महत्व को भलीभाँति आँका और उसे विशुद्ध करने के लिए धर्म का सहारा लिया। इसलिए यों कहा जा सकता है कि धर्म का परिपालन पर्यावरण की विशुद्धि है, शरीर की रक्षा है, मन को संयमित करना है और आध्यात्मिक वातावरण को सुस्थिर बनाना है। पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों आदि का पर्यावरण की दृष्टि से कितना महत्व है, यह हम इस तथ्य से समझ सकते हैं कि महावीर, बुद्ध और ऋषि महर्षियों ने संबोधि प्राप्ति के लिए किसी न किसी वृक्ष का सहारा लिया जिन्हें हमने बोधि वृक्ष अथवा चैत्यवृक्ष कहा और सूर्य, कच्छप, कमल आदि को तीर्थकरों का लांछल बना दिया। इतना ही नहीं बल्कि उनका पूजा-विधान और मुकटों में अंकन भी किया जाने लगा।

जैसा हमने पीछे संकेत किया है पर्यावरण का प्रथमतः दृश्य संबंध हमारे शरीर से है। जैनाचार्यों ने उपासक दशांग, भगवतीसूत्र आदि ग्रंथों में ऐसे बीसों रोगों की चर्चा है जो पर्यावरण के असंतुलित हो जाने से हमारे शरीर को घेर लेते हैं और मृत्यु की ओर हमें ढकेल देते हैं। अंग विज्जा में तो इन सारे संदर्भों की एक लंबी लिस्ट मिल जाती है। इन सबकी चर्चा करना यहाँ विस्तार को निमंत्रित करना है, पर इतना तो संकेत किया हो जा सकता है कि संधिवात, साइटिका, लकवा, मिर्गी, सुजाक पायरिया, क्षय, कैंसर, ब्लड प्रेशर आदि जैसे रोगों का मुख्य कारण कब्ज है और गलत आहार-विहार तथा श्रम का अभाव है। शुद्ध शाकाहार प्राकृतिक आहार है और संयमित-नियमित भोजन रोगों के निदान, उत्तम स्वास्थ्य और मन की खुशहाली का मूल कारण है। मोटा खाना, मोटा पहिना” की उक्ति के साथ “पैर गरम, सर रहे ठंडा, फिर डाक्टर आये तो मारो डंडा” की कहावत उल्लेखनीय है जिसमें शाकाहार पर बल दिया गया है। मांसाहार एक ओर जहाँ मानसिक क्रियाओं को असंतुलित करता है वहीं वह शरीर को भी बुरी तरह प्रभावित करता है इसलिए जैनाचार्यों ने अहिंसा की परिधि में शाकाहार पर बहुत जोर दिया है और उन पदार्थों के सेवन का निषेध किया है जो किसी भी दृष्टि से हिंसाजन्य है इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा अहिंसात्मक साधना के लिए सर्वाधिक अनुकूल पैथी है।

पर्यावरण को असंतुलित करने में क्रोधादि कषायें अधिक कारणभूत बनती हैं। रक्तचाप, मधुमेह, कैंसर आदि जैसी भयानक बीमारियाँ हमारे मानसिक असंतुलन से होती हैं जिन्हें योग साधना के माध्यम से संयमित किया जा सकता है। सारे आगम ग्रंथ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से मन को शुभ भावों की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं और आत्म विशुद्धि के लिए योग साधना की विविध क्रियाओं को स्पष्ट करते हैं।

इस प्रकार समग्र रूप में पर्यावरण पर यदि चिन्तन किया जाये तो समूचा जैन धर्म हमारे सभी प्रकार के पर्यावरणों को अहिंसात्मक ढंग से संतुलित करने का विधान प्रस्तुत करना है और वैयक्तिक तथा सामाजिक शांति के निर्माण में स्थायित्व की दृष्टि से नये आयामों पर विचार करने को विवश करता है।

न्यू एक्सटेंशन एरिया सदा
नागपुर ४४०-००१

जैन आचार : पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता

• श्री राजीव प्रचंडिया

आचार पक्ष एक ऐसा आधार स्तम्भ है जिस पर जीवन रूपी वृक्ष पुष्पित-पल्लवित है। यह जीवन की यथार्थता को प्रकट करने का एक सशक्त एवं सपाट साधन है। इसी को ध्यान में रखते हुए 'आचार-पक्ष' पर विश्व के समस्त दर्शनों, धर्मों में अपने-अपने स्तर पर विवेचन हुआ है। जैन दर्शन, धर्म भी इससे अछूता नहीं रहा है। इस व्यावहारिक एवं परम उपयोगी विषय पर चिन्तन करने से पहिले हमें यह सोचना होगा कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है? हमारे सामने तीन स्थितियाँ हैं एक आध्यात्मिक दूसरी सांसारिक और तीसरी मिश्रित रूप। सामान्यतः आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं उसमें तीसरे स्थिति ही समग्र जीवन का आयाम स्थिर करती है। यह तो हो सकता है इसमें व्यञ्जित बहुतायत कभी आध्यात्मिकता की तो कभी सांसारिकता की झलकने लगे। कारण स्पष्ट है वर्तमान परिस्थितियों में नितान्त पहली। दूसरी स्थिति परक लक्ष्य का साकार होना असम्भव सा लगता है। इसलिए देशकाल-समाज के आधार पर जो सटीक हो, न्यायसंगत हो, उपयोगी एवं उपादेयी हो, उसका समय-समय पर मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन होता रहा है, होना चाहिये। मूल्यांकन करते समय समाज व्यक्ति का लक्ष्य सुस्पष्ट होना चाहिए। देश काल के आधार पर परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती हैं, तदनु रूप जीवन भी संचालित होता रहता है। उदाहरण के लिए पूर्व में जो सहनशक्ति, सहिष्णुता विद्यमान थी वह आज उतनी मात्रा सीमा में अदर्शित है और जो आज जिस रूप में है वह कल आने वाला समय में दृष्टिगोचर नहीं होगी। अतः जो समीचीन है उस पर आज के सन्दर्भ में हमें विचारना होगा। उसमें व्यञ्जित भावों की सूक्ष्मता को पकड़ना होगा और तारतम्य बैठाना होगा उसकी सार्थकता को, समीचीनता को। आज जब हम अपनी नजर चारों ओर दौड़ाते हैं तो पाते हैं कि व्यक्ति या समाज चाहे वह आध्यात्मिक-सामाजिक आदि किसी भी वर्ग विशेष से सम्बन्धित क्यों न हो अपने निर्धारित कर्तव्यों से विमुख होने के उद्यत है। क्यों? ऐसा क्यों? जो नियम, संविधान, संहिताएँ उस काल की स्थिति के देखते हुए बनाए गए थे या निर्धारित किए गए थे या तो उन पर कट्टरता से चल जाय या फिर उनमें युगानुरूप संशोधन-संवर्धन कर नई संहिताएँ आदि स्थापित कर उस पर चला जाए। यही दो रूप हमारे सामने आते हैं। पुरानी आचार-पद्धति में प्रचलित जो वैज्ञानिकता है उसे हम सामने लाएँ तभी उसकी समीचीनता सिद्ध होगी। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य भी यही है

कि क्रियाएँ जो अज्ञान धरातल पर केन्द्रित हैं, उन्हें समूल नष्ट कर जो उपादेयी हैं उन्हें अंगीकार कर जीवन चर्या को समृद्ध किया जाए क्योंकि कोरी क्रियाएँ, निरर्थक साधनाएँ व्यक्ति, साधक को उबाऊपन उत्पन्न करने के अतिरिक्त और क्या दे सकेंगी। 'जैन-आचार' में जो बातें समाविष्ट हैं वे निश्चय ही आत्महित एवं लोकहितकारी हैं, साथ ही परम वैज्ञानिक उपयोगी एवं उपादेयी भी हैं।

आचार (क्रिया) और विचार (ज्ञान) ये दो संवाहक जीवन-रथ को संचालित करते हैं। जैन-आचार का मूल है अहिंसा और विचार है -अनेकान्त। अहिंसा एक व्यापक शब्द है। वह जैन धर्म का प्राण है। अहिंसात्मक जीवन को केन्द्रित करने के लिए जैन धर्म में तप व्रत और संयमादि के स्वरूप और महत्ता का सम्यक् रूप से उद्घाटन हुआ है। हम वर्तमान सन्दर्भ में इनकी क्या उपयोगिता है, आदि को ध्यान में रखते हुए संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

तप भारतीय साधना का प्राण तत्व है क्योंकि उससे व्यक्ति का बाहर-भीतर समग्र जीवन परिष्कृत, परिशोधित होता हुआ उस चरम बिन्दु पर पहुँचता है जहाँ से व्यक्ति, व्यक्ति नहीं रह जाता है अपितु परमात्म अवस्था अर्थात् परमपद, सिद्धत्व को प्राप्त हो जाता है। वास्तव में तप में तृप्ति है, इसकी साधना से लब्धि-उपलब्धि, ऋद्धि-सिद्धि, तैजस् शक्तियाँ, अगणित विभूतियाँ सहज ही प्रकट होने लगती हैं अर्थात् तप से सर्वोत्तम पदार्थों की प्राप्ति होती है। इस जगत में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसकी प्राप्ति तप से न हो सके। तपः साधना से समस्त बाधाएँ, अरिष्ट उपद्रव, शमन तथा क्षमा शान्ति, करुणा प्रेमादि दुर्लभ गुणजीवन में व्याप्त होते हैं अतः यह लौकिक और अलौकिक दोनों ही हित का साधक है। तपः साधना व्यक्ति को स्थूल से सूक्ष्म की ओर वहिर्जगत से अन्तर्जगत की ओर ले जाने में प्रेरणा-स्फूर्ति का संचार करती है क्योंकि बाहर कोलाहल-हलचल है, दूषण-प्रदूषण है, जबकि भीतर निःस्तब्धता, निश्चलता और शुद्धता है।

जैनदर्शन-धर्म में तप के समस्त अंगों पर वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। आत्म-विकास हेतु साधना का निरूपण जैन दर्शन का मुख्य लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य हेतु जो साधना की जाती है वह साधना वस्तुतः तप कहलाती है। इस दर्शन में सांसारिक सुखों, फलेच्छाओं, एषणाओं, सांसारिक प्रवचनाओं हेतु किए जाने वाले तप की अपेक्षा सम्यग्दर्शन (आस्तवादितत्वों को सही-सही रूप में जानना और उन पर श्रद्धान रखना) ज्ञान (पर-स्व भेद बुद्धि को समझना) चारित्र (भेद विज्ञान पूर्वक स्व में लय करना) रूपी रत्नत्रय का आविर्भाव करने के लिए, इष्टानिष्ट, इन्द्रिय-विषयों की आकांक्षा का विरोध करने की अपेक्षा निरोध करने के लिए किए जाने वाले तप ही सार्थक तथा कल्याणकारी माने गए हैं। साधना की दृष्टि से यहां तप दो प्रकार के माने गए हैं एक बाह्य तप जिसके अन्तर्गत अनशन, उनोदरी-अवमौदर्य, वृत्ति परिसंख्यान-भिक्षाचारी, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रतिसंलीनता-विविक्त शय्यासन हैं तथा दूसरा आभ्यन्तर तप है जिसमें प्रायश्चित्त विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग है। बाह्य तप बाह्य द्रव्य के अवलम्ब से होता है, इसे दूसरों के द्वारा देखा जा सकता है। इसमें इन्द्रिय-निग्रह होता है किन्तु आभ्यन्तर तप में बाह्य द्रव्य की अपेक्षा अंतरंग परिणामों की प्रमुखता रहती है, दूसरों की दर्शनीयता रहती है। साधना में जाने वाला साधक सर्वप्रथम बाह्यतपान्तर्गत 'अनशन' में प्रवेश करता है तदनन्तर शनैः-शनैः अभ्यास करता हुआ तथा अनवरत साधना में प्रवेश करता है तदनन्तर शनैः-शनैः अभ्यास करता हुआ तथा अनवरत साधना क्रम-बिन्दुओं से गुजरता हुआ आभ्यान्तर तपान्तर्गत ध्यान-व्युत्सर्ग में प्रवेश कर साधना की परिपूर्णता को प्राप्त करता हुआ आत्मा की चरमोत्कर्ष स्थिति में पहुँच जाता है। साधना की इस प्रक्रिया में

यदि साधक बाह्यतप में दर्शित बिन्दुओं-भेदों में कदाचित् परिपक्वता प्राप्त नहीं कर पाता तो निश्चय ही वह आभ्यन्तर तप साधना के क्षेत्र में सही रूप में प्रवेश नहीं कर सकता अर्थात् बाह्यतप के बिना अन्तरंग तप और अन्तरंग तप के बिना बाह्यतप निरर्थक प्रमाणित होते हैं, इनका सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है, शाश्वत है।

बाह्यतप द्वारा साधक असद्वृत्तियों से हटकर सद्वृत्तियों में अपने मन-वचन-शरीर को तन्मय करता हुआ सुप्त अन्तश्चेतना को जाग्रत कर सकता है। काम-वासना, अहंभावना, क्रोध ज्वाला, कपट, छल, प्रवंचना, तथा दूसरों के धन सम्पत्ति हड़पने की प्रक्रिया की वहि जो आज प्रज्वलित है जिससे परिवार-समाज-राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अस्थिरता, असामाजिकता तथा अराजकता-आतंकवादिता का शोर-शराबा परिलक्षित है शान्त-शमन हो सकती है। जब साधक बाह्य तपानुरूप अपनी जीवनचर्या स्थिर कर लेता है तब उसे यह अनुभव होने लगता है कि जीवन जीने का लक्ष्य मात्र उदरपूर्त के साधन-उपकरण जुटाने-एकत्र करने अर्थात् इन्द्रिय जन्य व्यापारों में खपाने की अपेक्षा आत्मशोधन विकास में ही होना श्रेयस्कर एवं सार्थक है। तप-साधना के प्रथम चार चरण (अनशन, उनोदर, भिक्षाचरी, रस परित्याग) आहार-त्याग से सम्बन्धित है क्योंकि बिना आहार-शुद्धि के शरीर शुद्धि और तज्जन्य चित शुद्धि का होना नितान्त असम्भव है। शेष दो चरणों (कायक्लेश, प्रति-संतीनता) में शरीर की शुचिता पर बल दिया गया है जिससे मन विकृति से हटकर निवृत्ति की ओर उन्मुख होता हुआ साधना-पथ पर नैरन्तर्य आगे बढ़ने को प्रवृत्त हो सके।

जैनाचारात्तर्गत तप साधना शरीर को कष्ट देने की अपेक्षा उसे विकार-विवर्जित बनाती है। इसमें अन्तःकरण को शुद्ध किया जाता है। साधक कभी अनशन करके तो कभी भूख से कम खाकर, कभी सीमित पदार्थ ग्रहण कर तो कभी किसी रस को तज कर शरीर को नियन्त्रित करता हुआ चेतन-अवचेतन मन में प्रविष्ट वासनाओं पर विजय प्राप्त करता है। इन सबके लिए ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन-चितवन आदि में वह लीन रहता है। संसारी बाह्य प्रभावों से अपने को अलग करता हुआ साधक अन्ततोगत्वा आत्मस्वरभाव अर्थात् आत्मस्वरूप की प्राप्ति में जीवन को अध्यात्म-साधना में खपा देता है। इसलिए तप जीवन का एक अनिवार्य अंग है। अस्थिरता, अशान्ति, बैचेनी, एक अजीब प्रकार की उकताहट-निराशादि के वातावरण में यह जीवन को एक नया आयाम देता है, स्फूर्ति और शक्ति का संचार करता है।

जैनाचार में व्रतों पर बल दिया गया है। वर्तमान सन्दर्भ में जहाँ चाँद-सितारे पर पहुँचने की, ताल-पाताल भी अतल गहराइयों को छूने की होड़ चल रही हो, आधुनिक-अत्याधुनिक उपकरणों के निर्माण में जीवन खपाया जा रहा हो, वहाँ व्रतों की भूमिका क्या होगी? यह एक विचारणीय तथ्य है।

व्यक्ति चाहे कितनी ही उपलब्धि अर्जित कर ले, विज्ञान कितना ही विकसित हो जाए यदि उसमें मर्यादा, अनुशासन का अभाव है, उच्छृंखलता, स्वच्छन्दता का प्रभाव है तो विकास की अपेक्षा विनाश, निर्माण की अपेक्षा संहारनर्तन करता दिखाई देगा। व्रत, व्यक्ति, परिवार समाज और राष्ट्र के लिए सुव्यवस्थित, सुरक्षित सुख-शान्ति तथा सौहार्द पूर्ण जीवन जीने का मार्ग प्रस्तुत करता है।

जैनधर्म के अनुसार व्रत में परकीय की अपेक्षा स्वेच्छा की प्रधानता रहती है। इसलिए व्रत धारण करने वाले को अपनी योग्यता, पात्रता तथा क्षमता को ध्यान में रखकर ही व्रत धारण करना चाहिए। व्रतों का व्रत के प्रति अगाध निष्ठा तथा लक्ष्य सुस्पष्ट होना चाहिए। व्यक्ति के व्रत धारण करने की शक्ति-समर्थता के आधार पर जैन आचार में व्रतों को दो भागों में एक आंशिक रूप में (अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत) तथा दूसरे पूर्णरूपों में (महाव्रत) विभक्त किया गया है।

व्यक्ति को चाहे वह गृहस्थ रूप में हो, चाहे वह साधना-पथ पर हो, सुव्यवस्थित-मर्यादित जीवन चर्या के लिए व्रतों की शरण में जाना होता है। व्रत से व्यक्ति में समत्व जगता है अर्थात् मानसिक और शारीरिक सन्तुलन अर्थात् तनावों से मुक्त जीवन जीने की पद्धति विकसित होती है। आज संसार के समक्ष 'तनाव' की सबसे बड़ी समस्या है। तनाव जीवन के प्रत्येक चरण में गहराता जा रहा है। इसकी समाप्ति के लिए अनेक अनुसंधान हो रहे हैं। व्रतों की इस दिशा में एक अहम् भूमिका रही है। प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीन तक हमारे आध्यात्मिक गुरु तनावों से मुक्ति के लिए व्रतों पर सदा बल देते आए हैं। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यदि हम व्रतों का वैज्ञानिक ढंग से अपने जीवन में उपयोग करते हैं तो वे हमारे लिए सर्व प्रकार की स्वस्थता तो प्रदान करते ही हैं साथ ही प्रसुप्त ओज का जागरण भी होता है। ओज प्रदीप्त से जीवन प्रमाद से रिक्त किन्तु सम्यक् पुरुषार्थ से सित्त होता है। वास्तव में जन-जन के अभ्युत्थान में व्रतों की भूमिका उपयोगी सिद्ध हुई है।

जैन आचार प्रत्येक व्यक्ति को सप्त व्यसन (जुआ, मांसाहार, मद्यपान, चोरी, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन तथा शिकार) का त्याग तथा अष्ट प्रवचन तीन गुप्ति (मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति) पूर्ण जीवन जीने के लिए निर्देश देता है। इनका परिपालन एक प्रकार से व्रतों की परिधि में परिगणित किया जा सकता है। जैन आचार के ये पवित्र विधान आज भी प्रासंगिक हैं। सप्तव्यसनी में विवेक, धीरता, सहनशीलता, लगन, आत्म विश्वास तथा स्मरण शक्ति आदि मानवीय गुणों का नितान्त अभाव दिखाई देता है। बिना इन गुणों के क्या वह अपना और अपने राष्ट्र का विकास कर सकता है? कदापि नहीं। व्यसन तो एक ऐसा आवेश है जिसके जोश में व्यक्ति अपना होश तो खो बैठता ही है साथ ही वह समाज और राष्ट्र का एक अंग होने के कारण उसे भी गर्त में ले जाता है। वास्तव में व्यसन मानवता का एक अभिशाप है। अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन मूल्यों को क्षतविक्षत करने वाला यह पिशाच अपनी पाशुविकता के अतिरिक्त समाज को और क्या दे सकेगा। आनन्द रश्मियाँ तो व्यसन मुक्ति जीवन से ही विकीर्ण होती हैं।

दूसरा पवित्र विधान है अष्ट प्रवचन माता। समिति-गुप्ति पूर्ण जीवन से जीवन में प्रामाणिकता आती है। व्यक्ति अपनी हर क्रिया के प्रति सजग और सचेष्ट रहता है। वह किसी को भी दुःख, पीड़ा पहुँचाए बिना अपना जीवन यापन करता है। उसका जीवन आर्तया, रौद्रता की अपेक्षा, हितकारी बातों में ही बीतता है। उसका मनन-चिन्तन रागद्वेष से रहित, माध्यस्थ भावों से सम्पन्न रहता है। वास्तव में ऐसा जीवन स्वयं अपने लिए तो उपयोगी है ही साथ ही राष्ट्र के लिए वरेण्य भी है।

विचार करें, जैन आचार के इन पवित्र विधानों में मूल हैं -अहिंसा। ये सब अहिंसा के ही आयाम हैं। अहिंसा का विस्तार है तप, संयम और व्रत।

अहिंसा मानव जीवन का स्वभाव है। स्वभाव प्रच्छन्न तो हो सकता है किन्तु समाप्त नहीं होता। भय, संदेह, अविश्वास, असुरक्षा, पारस्परिक वैमनस्य, शोषण, अत्याचार तथा अन्याय आदि की वह्नि जो आज प्रज्वलित है, उसका मूल कारण है जीवन में अहिंसा का अभाव। अहिंसा में क्षमा, मैत्री, प्रेम, सद्भावना, सौहार्द्रता, एकता, वीरता तथा मृदुता आदि मानवीय गुण विद्यमान रहते हैं। इसके द्वारा ही विश्व के समस्त प्राणियों में क्षमा करने की भावना तथा शक्ति जाग्रत होती है। अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि अहिंसा निर्बलों (कायरों) का अस्त्र है। यह उन लोगों का कोरा भ्रम है। अहिंसा तो वीरों का

आभूषण है। सच्चा अहिंसक सिंह की भाँति निर्भीक निडर तथा शक्तिशाली होता है। आज आवश्यकता है अहिंसा के व्यापक स्वरूप को ठीक-ठीक समझने की। अहिंसा को केवल निवृत्ति अर्थात् निषेधात्मक रूप में ही नहीं अपितु प्रवृत्ति अर्थात् विधेयात्मक रूप में भी उसे देखा जाय। निवृत्ति रूप में किसी को कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है किन्तु प्रवृत्ति रूप में कमजोर, अहसाय, दीनदुःखी, हताश और सताए हुए व्यक्ति की रक्षा करना अहिंसा का एक अंग है। अस्तु किसी को बचाना कायरों का नहीं, शूरवीरों का परम कर्तव्य है। वास्तव में अहिंसक आत्मजयी होता है। आज जब सारे विश्व में अशान्ति हाहाकार मचा हुआ है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने की प्रक्रिया में व्यस्त है अस्तु त्रस्त-संत्रस्त हैं। सारी शक्ति अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में लगी हुई है। वहाँ अहिंसा का उद्घोष निश्चित ही वरदान सिद्ध होगा। इतिहास के पन्ने बोलते हैं कि जहाँ हिंसा से कुछ नहीं हुआ, वहाँ अहिंसा ने ही आकर सामंजस्य स्थापित किया। वास्तव में अहिंसा जीवन का एक अनिवार्य अंग है। वह प्राणिमात्र के हित की संवाहिका है।

आज हमारी दृष्टि जब जैनसमाज पर जाती है तो यह देखकर दंग रहजाना होता है कि जिसका आचार और विचार पक्ष इतना समुज्ज्वल व समन्वय वादिता से अनुप्राणित है वहाँ भी भेद-प्रभेद। इसका मूलकारण है 'आचार'। 'आचार' की इतनी अधिक व्याख्याएँ हुई हैं कि उनसे अनेक विभाजन उठ खड़े हो गए। जबकि आज आवश्यकता है आचार के भीतर प्रतिष्ठित जो मूल आत्मा है उसको समझने की, हृदयगम करने की, आत्मसात करने की अर्थात् लक्ष्य की। दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी, तेरापंथी आदि अन्ततोगत्वा सबका लक्ष्य तो एक ही है -अनन्त आनन्द की प्राप्ति। कर्म से विमुक्ति मार्ग विभिन्न हो सकते हैं किन्तु मार्ग तो एक ही है, तो जो समीचीन लगे, आत्म औल लोकहित में जो उपयुक्त हो उसका अनुसरण कर जीवन यात्रा को तय करना ही सार्थक है।

इस प्रकार जैनाचार पर जब हम गहराई के साथ चिन्तन करते हैं तो तीन बिन्दु पाते हैं- एक दर्शन, दूसरा ज्ञान और तीसरा चारित्र्य। ये तीनों जब सम्यक्त्व पूर्ण होकर एक रूप हो जाते हैं तब मोक्ष का मार्ग खुलता है। व्यक्ति का अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' है। 'मोक्ष' अर्थात् बंधनों से मुक्ति अर्थात् शाश्वत स्वतन्त्रता। जैन आचार जहाँ एक ओर व्यक्ति में नैतिक संस्कारों को, समत्व को, विश्वास-श्रद्धा को अपने प्रति निष्ठावान होने को, कर्तव्यदायित्व के बोध आदि को जगाता है वहीं दूसरी ओर अनन्त चतुष्टय के द्वार भी खोलता है। निश्चय ही 'जैनाचार' आज भी अपनी उपयोगिता एवं प्रासंगिकता को समेटे हुए है।

'मंगलकलश' ३९४, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड़, अलीगढ़ (उ.प्र.) -२०२००९

शब्द विचार

• डॉ. धनलाल जैन

सुह - प्राचीन जैन साहित्य में सुह शब्द शुभ और सुख का अपभ्रंश है। अनेक स्थानों पर 'सुह' शब्द का अर्थ भी स्पष्ट नहीं हो पाता है। शुभ शब्द में शु का सु हो गया तथा भ की अल्प प्राण ध्वनि का लोप हो कर शेष 'ह' महाप्राण ध्वनि रही। सुख शब्द में ख की अल्प प्राण ध्वनि का लोप शेष महाप्राण ध्वनि 'ह' रही। शुभ और सुख दोनों का 'सुह' रूप हो गया। अर्थ लगाने के लिए संदर्भ देखना पड़ता है। सुह कम्म अर्थात् शुभ कर्म, सुह-निलअ-सुख-णिलय अर्थात् सुख का घर। सुख का घर-तीर्थकर।

सूर - प्राचीन जैन साहित्य में शूर और सूर्य का अपभ्रंश रूप सूर मिलता है। सूर (शूर) वीर के अर्थ में भी है और सूर सूर्य के अर्थ में भी है। सूर्य शब्द में से 'य' का लोप होने से सूर बना। सूरकांति का अर्थ सूर्य की कांति भी हो सकता है। तपस्वी शूर की कांति से भी मण्डित होते हैं और सूर्य की कांति से भी मण्डित होते हैं। एक तपस्वी, संसारी कर्मों से युद्ध भूमि के वीर की तरह लड़ता है, यह अर्थ भी सही है और एक तपस्वी अपनी तपस्या से सूर्य की कांति से मण्डित होता है, यह अर्थ भी सही है।

सिय - श्री सीता और श्वेत शब्दों का जैन साहित्य में 'सिय' शब्द रूप आया है। श्री, लक्ष्मी, शोभा, सीता आदि के लिये 'सिय' शब्द प्रयुक्त होने से अर्थ में बाधा उत्पन्न होती है तथा किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते हैं। सिय जोय का अर्थ लक्ष्मी दर्शन भी हो सकता है और सीता-दर्शन भी हो सकता है। राम-कथा का महत्व जैन-दर्शन साहित्य में होने से, एक अर्थ विचार पर नहीं पहुँचा जा सकता है। सिय शब्द विशेषण के रूप में आने पर तो अर्थ श्वेत स्पष्ट हो जाता है।

सुर - सुर (देव) और सुरा के लिये 'सुर' रूप ही आया है। सुरांद सुरांद का अर्थ देवों का आनंद भी है और सुरा (मदिरा) का आनंद भी है। जैन साहित्य की दृष्टि से तो हम सुरांद का अर्थ, देवों का आनंद लगा रहे हैं। पर सुरांद का अर्थ सुरा (मदिरा) का आनंद भी है। रीतिकालीन साहित्य में सुरांद का अर्थ सुरा का आनंद ही लगेगा।

सम्मत - सम्यक्तव और सुमति का प्राचीन जैन साहित्य के 'सम्मत' शब्द रूप मिलता है। सम्मत अर्थात् सुसम्मत अर्थात् सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन से ही जीव मोक्ष का अधिकारी होता है। मोक्ष, जैन-दर्शन का मूल है। तीर्थंकर आदि मोक्ष-गामी हैं। मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होने में भी सुख है। सुख और दुख भाव-वाचक संज्ञा होने से अति-सूक्ष्म भाव हैं। सुख और दुख मन की स्थितियाँ भी हैं, जो परिस्थितियों से उत्पन्न होती हैं। एक जीव के लिये जो स्थिति सुख देने वाली होती है वही दूसरे जीव के लिये दुख देने वाली भी होती है।

छव्वासय - षडावश्यक का अपभ्रंश छव्वासय शब्द रूप बना है। षड का छः और विसर्ग का घ तथा क को लोप होने से बना छव्वासय। सामायिक, स्तुति वंदना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग ये षडावश्यक होते हैं। एक जैनी के लिये ये षडावश्यक आवश्यक हैं।

कुदंसण - कुदर्शन का अपभ्रंश कुदंसण है। कु उपसर्ग है। दर्शन का दंसण हो गया। न का जैन साहित्य में ण हो जाता है। नमो का णमो। कुदर्शन अर्थात् मिथ्यात्व या मिथ्यादर्शन। एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान ये पाँच कुदर्शन हैं। कुदंसण का पर्याय तम भी है।

आउक्कम - आयु कर्म का अपभ्रंश में आउक्कम होता है। आयु कर्म चार प्रकार के हैं - देवायु, मनुष्यायु, नरकायु और तीर्थश्चायु। देवायु सर्वश्रेष्ठ है।

खाइय दंसण - क्षायिक दर्शन का अपभ्रंश में खाइय दंसण होता है। क्ष का ख, यि में से य का लोप, क का लोप और य श्रुति। दर्शन का दंसण। क्षायिक दर्शन, सम्यग्दर्शन का भेद है। कर्म के क्षय होने से क्षायिक। कर्म का क्षय आचार और विचार से संभव है। विचार के बिना आचार संभव नहीं है। विचार, अगर आचार में नहीं आता है तो वह विचार व्यर्थ है। मनुष्य विचारशील होने से, विचार अधिक करता है। आज के वैज्ञानिक युग में, जहाँ भौतिक उन्नति, अपनी चरम सीमा पर है 'खाइय दंसण' का सर्वाधिक महत्व है।

जिण - इंद्रियों पर विजय पाने वाला जिण। 'जिण' से बना जैन। आज जैन शब्द एक धर्म-विशेष के अर्थ में संकुचित हो कर रह गया है। वास्तव में जो भी अपनी इंद्रियों पर विजय प्राप्त करता है, वही जैन है। जैन एक व्यापक शब्द है। जिण शब्द अपने आदिकाल में विशेषण था, पर आज संज्ञा है। जिण (जैन) अब एक धर्म भी है और दर्शन भी। जिण (जैन) धर्म और दर्शन का अनुसरण, व्यक्ति को बहुत ऊँचा उठाकर सुख प्रदान करता है। यह सुख आध्यात्मिक होता है। शारीरिक सुख क्षणिक होता है, इस कारण जैन-धर्म-दर्शन में इसका महत्व नहीं है।

तीर्थंकर - तीर्थंकर शब्द का अर्थ है - तीर्थ करने वाला। तीर्थ और अंकर से मिलकर बना तीर्थंकर। तीर्थ अर्थात् पवित्र, शुद्ध। जो केवल ज्ञान प्राप्त कर लोगों को तीर्थ (पवित्र, शुद्ध) करे, वह तीर्थंकर। जैन धर्म में चौबिस तीर्थंकर हुए हैं। केवली तो अनेक हुए हैं, पर वे केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गामी हो गये, इसलिये तीर्थंकर नहीं बने। अगर अन्य केवली भी लोगों को तीर्थ बनाते तो वे भी तीर्थंकर कहलाते। वे जैनों के शीर्ष हैं। तीर्थंकरों ने अति-उच्च तपस्या, त्याग कर मानवता को गरिमा प्रदान की है। तीर्थंकरों का त्याग और तपस्या, विश्व में अद्वितीय है। कठोर तपस्या जो यहाँ है, वह कहाँ? त्याग का सुख जो तीर्थंकरों ने भोगा है, वह सुख आज तक अन्य कोई नहीं भोग सका।

पुण्यपाव - पुण्य और पाप से मिलकर बना पुण्यपाप और अपभ्रंश में पुण्यपाव। जैन दृष्टि से जीव कल्याण के मार्ग में हितकर कार्य पुण्य और अहितकर कार्य पाप होते हैं। पुण्य और पाप भाव वाचक संज्ञाएँ हैं। जैन धर्म में तो भाव-हिंसा भी पाप है। कुछ प्राचीन प्रतिलिपियों के पुण्यपाव रूप भी आया है।

सुवज्ञाण - शुभ ध्यान का अपभ्रंश में सुवज्ञाण होता है। श का स, भ का लोप और व भ्रति, ध्या का ज्ञा तथा न का ण। आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल चार ध्यान माने गये हैं। आर्त्त और रौद्र

ध्यान अशुभ-ध्यान है तथा धर्म और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान है। जीव और संसार के स्वरूप का विचार धर्म-ध्यान और समाधि-रूप से आत्म-चिंतन शुक्ल ध्यान माना गया है।

तत्त्व - तत्त्व का प्राकृत-अपभ्रंश में तत्त होता है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष जैन-धर्म में सात तत्त्व माने गये हैं। जैन दर्शन में इन सात तत्त्वों का सोच ही 'तत्त्व चिंतन' कहलाता है। तत्त्व चिंतन बड़ा ही वैज्ञानिक सोच है। जीव को अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। जीव की गति मोक्ष है। पर जब तक मोक्ष नहीं तब तक जीव दुःख भोगता ही रहेगा।

प्राकृत - अपभ्रंश जैन साहित्य बहुत विशाल है। जैन-दार्शनिक-शब्दावलियों का सही-सही शुद्ध पाठ और अर्थ नहीं होने से, जैन-साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। इस क्षेत्र में हमारे विद्वानों ने अधिक परिश्रम से बहुत काम किया है। पर सर्व सम्मत पाठ और अर्थ आज भी उपलब्ध नहीं है। हम यह भी निर्धारित नहीं कर सके हैं कि णमोकारमंत्र सही है या नवकारमंत्र सही है। णमोअरिहंताणं है तो कहीं णमोअरिहंताणं है। विद्वानों को चाहिए, वे एक सर्व-सम्मत पाठ और अर्थ निर्धारित कर दें।

८६, तिलक पथ,
इंदौर (म.प्र.)

सच्चा साधक या महापुरुष वही कहला सकता है जो दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानता है। दूसरों की विपदाओं को अपनी विपदा समझता है और दूसरों के घात को अपने मर्मान्तक दुःख का कारण मानता है। अनेक वर्षों तक तपस्या करके देह को सुखाने की अपेक्षा एक प्राणा के जीवन का रक्षण करतना अधिक महत्व पूर्ण है। जिसके हृदय में ऐसी भावनाएँ हैं वह स्वयं अपना तथा औरों का कल्याण कर सकता है तथा अनन्त सुख का स्थायी बन सकता है। ऐसा दिव्यकृत्या पुरुष ही अपने जन्म-जन्मान्तरों का क्रम रोक कर मय भ्रमण से छुटकारा तपा सकता है।

युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

जैनदर्शन में प्रयुक्त कतिपय दार्शनिक शब्द

• डॉ. (श्रीमती) अलका प्रचण्डिया 'दीप्ति'

प्रत्येक तत्त्वदर्शी ने आचार रूप धर्म का उपदेश देने के साथ वस्तु स्वभाव रूप धर्म का भी उपदेश दिया है जिसे दर्शन कहा गया है। प्रत्येक धर्म का अपना एक दर्शन होता है। दर्शन में आत्मा क्या है? परलोक क्या है? विश्व क्या है? ईश्वर क्या है? आदि-आदि मूल तत्त्वों पर विचार किया जाता है। आध्यात्मिक तथा भौतिक जगत को देखने की दृष्टि अलग है। जैन दर्शन को प्रतिपादित करने वाले अनेक शब्द हिन्दी जैन साहित्य में व्यवहृत हैं जिनका शब्दार्थ लौकिक हिन्दी काव्य से भिन्न है। दार्शनिक शब्द का अर्थ है - दर्शन विषयक शब्द समूह। दर्शन विषय का प्रतिपादन करने वाले शब्द कुल वस्तुतः दार्शनिक शब्द कहलाते हैं। इन शब्दों में एक विशेष अर्थ-अभिप्राय सन्निहित रहता है। फलस्वरूप इन्हें पारिभाषिक रूप में सम्मिलित किया जाता है। पारिभाषिक शब्द उन्हें कहते हैं जो किसी विशिष्ट अर्थ को अपने में समेटे रहते हैं। प्रस्तुत आलेख में जैनदर्शन से संबंधित कतिपय दार्शनिक शब्दों का अर्थ-अभिप्राय प्रस्तुत करना हमें अभीप्सित है।

अजीव - न जीव: इति अजीवः अर्थात् चैतन्य शक्ति का अभाव है। जैनदर्शन में षट् द्रव्यों का उल्लेख मिलता है-यथा-जीव, अजीव धर्म, अधर्म, आकाश, काल। अजीव द्रव्य जड़ रूप है। उसमें ज्ञाता द्रष्टा स्वरूप जीव द्रव्य की योग्यता नहीं है। अजीव द्रव्य के अंतर्गत चार प्रकार का वर्णन हुआ है - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश। इसमें पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है क्योंकि उसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श पाया जाता है क्योंकि इसमें रूपादि गुण नहीं होते। अजीव द्रव्य का कथन सभी आचार्यों ने भेदभेद सहित किया है। सभी ने उसे जीव से विपरीत लक्षण वाला तत्त्व स्वीकार किया है।

अणुव्रत - 'अणु' का अर्थ सूक्ष्म है तथा व्रत का अर्थ धारण करना है। इस प्रकार अणुव्रत शब्द की संधि करने पर इस शब्द की निष्पत्ति हुई - अणु नाम व्रत ही अणुव्रत है। निश्चय सम्यक् दर्शन सहित चरित्र गुण की आंशिक शुद्धि होने से उत्पन्न आत्मा की शुद्धि विशेष को देशचारित कहते हैं। श्रावक दशा में पांच पापों का स्थूल रूप एक देश त्याग होता कहै, उसे अणुव्रत कहा जाता है। अणुव्रत पाँच प्रकार से कहे गए हैं - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। यह अणुव्रत सम्यक् दर्शन के बिना नहीं होते हैं, ऐसा जैनाचार्यों ने कहा है।

अतिचार - चरते इति चारः अत्यंत निकृष्टतम चारः अतिचारः। 'चर' धातु में अति उपसर्ग पूर्वक इस शब्द की निष्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है सम्यक् आचार से अतिरिक्त आचरण करना अथवा विषयों का वर्तन करना। राग के उदय से जीवात्मा सम्यक् श्रद्धान से विचलित हो जाता है। इस प्रकार इंद्रियों की असावधानी से शील व्रतों में कुछ अंश भंग हो जाने को अर्थात् कुछ दूषण लग जाने को अतिचार कहते हैं। जिनवाणी में दो अतिचार के भेद कहे हैं - (१) देशत्याग - मन, वचन, काय कृतकारित, अनुमोदनादि नौ भेदों से किसी एक के द्वारा सम्यक् दर्शनादि में दोष उत्पन्न होना देशातिचार है। (२) सर्वत्याग - सर्व प्रकार से अतिचार होना सर्व त्यागातिचार है।

अनंतचतुष्टय - न अंतः यस्य असौ अनंतः। चतुः स्तः हल् संधि होकर विसर्गों का 'व' 'स्त' का तः होकर चतुष्टय शब्द निष्पन्न हुआ। अनंत का पर्याय आत्मा है तथा चतुष्टय का अर्थ चार तत्त्वों आदि का समूह। इस प्रकार 'आत्मानः चतुष्टयं अनंत चतुष्टय' अर्थात् आत्मा के चार गुण। जिनवाणी में आत्मा का स्वभाव अनंत चतुष्टय बताया गया है। अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य, अनंत सुख के समन्वित रूप को अनंत चतुष्टय कहते हैं। जीवात्मा निजस्वभाव द्वारा चार घातिया - दर्शनावरणी, ज्ञानावरणी, मोहनीय, अंतराय-नामक-कर्मों को क्षय कर अनंत चतुष्टय गुण को प्राप्त कर अनंतानंद की अनुभूति करता है। अनंत चतुष्टय जैन दर्शन में इसी अभिप्राय में प्रयुक्त हुआ है।

अनंतानुबंधी - अनंतस्य अनुबंधः अनंतानुबंधः। अनंतकाल से अनुबंधित होने वाले कषायों को अनंतानुबंधी कहते हैं। जिनके उदय होने पर आत्मा को सम्यक्त्व न हो सके, स्वरूपाचारण चरित्र न हो सके। वे अनंतानुबंधीकषाय हैं। जीव की अनंतानुबंधी प्रकृति के उदय होने से अभिप्राय की विपरीतता के कारण इसे सम्यक्त्व घाती पर तथा पर - पदार्थों में राग द्वेष उत्पन्न करने के कारण चारित्रघाती कहा है। यह अनंतानुबंधी कषाय चार प्रकार से कहा गया है यथा-क्रोध, मान, माया, लोभ।

अनुभागबंध - 'अनु' उपसर्ग 'भज' धातु से अनुभाग शब्द की सिद्धि होती है अर्थात् अनुपश्चात् भज्यते इति अनुभाग। अनुभागस्य बंधः अनुभागबंधः। जैन दर्शन के अनुसार कर्मों में तीव्र मंद फलदान शक्ति अनुभाग बंध कहलाती है। अनुभागबंध-बंध तत्व के चार प्रकारों - प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभाग बंध तथा प्रदेश बंध में से एक बंध विशेष है। कषाय प्रवृत्तियों द्वारा प्रकृतियों में अनुभाग बंध होता है। अनुभाग बंध के अनुसार ही कर्म के उदय काल में उनकी प्रवृत्तियों का फल उत्पन्न होता है।

अनर्थदण्ड - अनर्थ व्यर्थ दंडः अनर्थदंडः। अनर्थ दंड का अर्थ व्यर्थ में किसी को दंड देना है। जिनवाणी में कहा है कि निष्प्रयोजन किया हुआ कार्य वस्तुतः अनर्थदंड कहलाता है। इस शब्द का व्यवहार जैन दर्शन में सर्वत्र हुआ है। इसके त्याग को अनर्थदंड व्रत कहा गया है।

अनायतन - न आयतनं अनायतनम्। यह यौगिक शब्द है अन+आयतन। अर्थात् धर्म का स्थान न होना। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और इन तीनों के सेवक इस तरह अधर्म के स्थानक षट् प्रकार से कहे गए हैं। इनकी संगति से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। फलस्वरूप वीतराग भाव प्रकट नहीं हो पाता। परिणाम स्वरूप प्राणी को परम इष्ट मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो पाती। इनसे अतत्त्व श्रद्धान परिपुष्ट होकर मोह-भाव का प्रयोजन प्रकट होता है। अनायतन शब्द का प्रयोग जिनवाणी में इसी अभिप्राय को लेकर हुआ है।

अनुप्रेक्षा - अनु+प्र+ईक्ष धातु में टाप लगाने से अनुप्रेक्षा शब्द बना जिसका अर्थ चारों ओर से देखना है। इस प्रकार अनुप्रेक्षा का शाब्दिक अर्थ देखना, सोचना तथा चिंतन करना है। वस्तुतः अनुप्रेक्षा भावना का ही पर्यायवाची है। आत्मा में वैराग्य के लिये जिनका बारंबार चिन्तन किया जाता है इसे भावना कहते हैं। इस प्रकार के चिन्तन को बारह कोटियों में विभाजित किया गया है- (१) **अनित्यानुप्रेक्षा** - पर्याय की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु क्षणिक है (२) **अशरणोपप्रेक्षा** - संसार में कोई भी शरण नहीं है (३) **संसारानुप्रेक्षा** - संसार का स्वरूप वर्णन, अपने-तेरे से उत्पन्न दुःख वर्णन (४) **एकत्वानुप्रेक्षा** - जीव के अकेलेपन का कथन (५) **अन्यत्वानुप्रेक्षा** - जीव से शरीरादि भिन्न है

(६) अशुचित्वानुप्रेक्षा - शरीर की अशुचिता का कथन (७) आस्रवानुप्रेक्षा - योग ही आस्रव है। तीव्र-मंद, कषाय अशुभ शुभ आस्रव के कारण हैं (८) संवरानुप्रेक्षा - संवर के हेतु-गुप्ति, समिति, धर्म आदि का स्वरूप वर्णन (९) निर्जरानुप्रेक्षा - निर्जरा का स्वरूप उसके कारणों का वर्णन (१०) लोकानुप्रेक्षा - लोक के स्वल्पादि का वर्णन (११) बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा - मनुष्य जन्म प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करने के लिए रत्नत्रय में आदर भाव रखने की भावना (१२) धर्मानुप्रेक्षा- सर्वज्ञ देव का स्वरूप ज्ञान, सर्वज्ञता प्राप्त करने के साधनों को चिंतन।

अनुयोग - 'अनु' उपसर्ग को 'युज' धातु से धत्र प्रत्यय करने पर अनुयोग शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ परिच्छेद अथवा प्रकरण है। जिनवाणी में वर्णित आगम जिसमें सर्वज्ञ प्रणीत सूक्ष्म-दूरवर्ती-भूत व भावी काल के पदार्थों का निश्चयात्मक वर्णन किया गया है - ऐसे आगम के चार भेदों को अनुयोग कहते हैं जिनके क्रमशः चक्रवर्ती का चरित्र निरूपण, जीव कर्मों, त्रिलोक आदि सप्त तत्त्वों 'मुनिधर्म' आदि का निरूपण किया गया है। जैनधर्म में अनुयोग चार प्रकार से कहे गये हैं। (१) प्रथमानुयोग - इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महान पुरुषों का चरित्र वर्णन है। (२) करणानुयोग - यहाँ जीव के गुण-स्थान, उसके मार्गादि रूप, कर्मों तथा त्रिलोकादि का निरूपण हुआ है। (३) चरणानुयोग - मुनि धर्म तथा गृहस्थ धर्म का वर्णन हुआ है। (४) द्रव्यानुयोग - षट्द्रव्य, सप्ततत्त्व, स्व-पर भेद विज्ञानादि का निरूपण हुआ है।

मंगलकलश, ३९४
सर्वोदयनगर, आगरा रोड़,
अलीगढ़

चिंतन कण

- प्रेम में वह शक्ति है जो तीर, तलवार, एटमबम्ल में भी नहीं हो सकती।
- प्रेम रूपी मंत्र विश्व मैत्री के संदेश का सामर्थ्य रखता है।
- जिस प्राणी को विश्व की बड़ी-बड़ी शक्ति परास्त नहीं कर सके, उसे स्नेह शक्ति ने नत मस्तक कर दिया।
- प्रेम में वह शक्ति है जो विष को भी अमृत में परिणत कर दें।

• परम विदुषी महास्ती श्री चम्पा कुवंरजी म.झा.

(२१२)

सप्तधातु और आधुनिक विज्ञान

• डॉ. रज्जन कुमार

जैनदर्शन एक प्राचीन वैज्ञानिक दर्शन है। विज्ञान जगत में हो रहे नित नूतन अविष्कारों तथा अनेक वैज्ञानिक मान्यताओं का अभूतपूर्व वर्णन जैनागमों में किया गया है। यही नहीं अनेक ऐसी जटिल समस्याएँ जिनके बारे में आज वैज्ञानिक हतप्रभ हैं उनका अनूठा समाधान भी कई जगह पर जैन ग्रंथों में प्राप्त होना है। शाकाहार एवं उसके लाभ पर्यावरण की रक्षा क्यों और कैसे, हिंसा निवारण आदि कुछ ऐसे ही ज्वलंत प्रश्न हैं जिन पर विज्ञान निश्चित रूप से कोई सर्वमान्य हल नहीं खोज पाया है परंतु जैन ग्रंथों में इन समस्याओं का समुचित समाधान मिलता है। इसी प्रकार हमारा शरीर तथा संसार के अन्यान्य जीवों का शरीर किन-किन तत्वों से मिलकर बना है, इनके शरीर में कौन कौन से धातु, उपधातु आदि पाए जाते हैं, इन विषयों पर जैनाचार्यों ने व्यापक रूप से चिंतन किया है। प्रस्तुत निबंधों में जैनों द्वारा प्रतिपादित सप्तधातु की व्याख्या आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास किया जा रहा है।

धातु क्या है इस संबंध में जैनों का कहना है कि जीव का शरीर कुछ तत्वों से मिलकर बना है और ये तत्व ही धातु कहलाते हैं। इन धातुओं की कुल संख्या सात है।^१ इन सप्त धातुओं के नाम हैं।^२ १. रस, २. रक्त, ३. मांस, ४. मेद, ५. अस्थि, ६. मज्जा और ७. वीर्य। तात्पर्य यह है कि जीव के शरीर में कुल सात प्रकार के ही धातु पाए जाते हैं और ये सातों मिलकर ही शरीर का निर्माण करते हैं।

(१) रस धातु- जीव अपने जीवन को टिकाए रखने के लिए आहार लेता है। यह आहार ठोस और द्रव दोनों ही रूपों में लिया जाता है। यह आहार जीव के शरीर में जाकर भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रिया प्रक्रिया के फलस्वरूप एक पतले रस के रूप में परिणत हो जाता है और यही पतला रस रस धातु कहलाता है। योगशास्त्र में आचार्य हेमचंद्र रस के बारे में लिखते हैं खाए गए अन्न व पिए गए पान के परिपाक से जो पतला निस्पंद (पतली धातु विशेष) उत्पन्न होता है उसी का नाम रस धातु है।^३

जीव ठोस आहार को अपने दाँतों की सहायता से छोटे-छोटे टुकड़े में बाँटता है। फिर उन छोटे-छोटे टुकड़े को पीसता है। यह पीसा हुआ भोजन मुँह से आहार नाल में जाता है और वहाँ से होते हुए पेट एवं छोटी बड़ी आंतों में पहुँचता है। इन सभी स्थानों पर जीव के शरीर पर पाए जाने वाले विभिन्न तरह के रासायनिक तत्व (enzymes) भोजन से मिलते हैं। जब ये तत्व भोजन से मिलते हैं तो पीसा हुआ भोजन और ज्यादा महीन हो जाता है। इसके साथ ही साथ शरीर के विभिन्न अंगों में संकोच-विकोच रहता है इस कारण भी आहार और ज्यादा पतला हो जाता है। इन सब क्रियाओं के फलस्वरूप आहार द्रव के रूप में बदल जाता है और यही रस धातु कहलाती है।

इस रस धातु से शरीर का निर्माण कैसे होता है, इस संबंध में विज्ञान सम्मत सिद्धांत का अवलोकन किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने आँतों को काटकर देखा है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि

आंतों की भीतरी बनावट असमतल है। इस असमतल सतह पर अंकुर निकले रहते हैं और इन अंकुरों में रस या द्रव के सोखने की शक्ति होती है। पचित आहार या रस जब इन अंकुरों के सम्पर्क में आता है तब वह इनके द्वारा सोख लिया जाता है और यह शोषित रस सम्पूर्ण शरीर में रक्तादि के माध्यम से प्रवाहित होता है और शरीर के जिस भाग को जिस तत्व की आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति हो जाती है। अंकुरों तथा आंतों की सतहों में रक्त वाहिकाओं का जाल बिछा रहता है और इनमें सदैव रक्त प्रवाहित होता रहता है। ४

(२) रक्त धातु- धातुओं में जिसका वर्ण लाल होता है वह रक्त धातु के नाम से जाना जाता है। ५ योग शास्त्र में रक्त धातु के बारे में कहा गया है कि इसकी उत्पत्ति रस धातु से होती है। ६ वैज्ञानिक भी जैनों के इस मत का समर्थन करते हैं, लेकिन वे मात्र लाल वर्ण वाले धातु को ही रक्त नहीं मानते हैं। प्रयोगों तथा निरीक्षणों के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि रक्त लाल रंग के अतिरिक्त श्वेत रंग का भी होता है।

संभवतः जैनों ने सप्त धातुओं की व्याख्या करने एवं उनमें कुछ अंतर दिखलाने के लिए ही लाल वर्ण वाले धातु को रक्त कहा है क्योंकि सामान्यतया लोग रक्त को लाल वर्ण वाला द्रव मानते हैं। परंतु वैज्ञानिक रक्त के तीन भेदों का उल्लेख करते हैं। ७ १. प्लाज्मा, २. लाल रक्त कण और ३. श्वेत रक्त कण। रक्त के हल्के पीले रंग का द्रव होता है यही प्लाज्मा है। इसी प्लाज्मा में छोटे-छोटे गोल आकार लाल रक्त कण तैरते रहते हैं। इन्हीं कणों के कारण रक्त का रंग लाल होता है। इन दोनों के अतिरिक्त शरीर में अनिश्चित आकार वाले एक दूसरे प्रकार का रक्त होता है, जिसका वर्ण श्वेत होता है और श्वेत रक्त कण के नाम से जाना जाता है।

रक्त का रंग लाल उसमें घुले हुए हीमोग्लोबिन नामक लौह तत्व के कारण है। हीमोग्लोबिन आक्सीजन नामक गैस को सोख लेता है और उसे सम्पूर्ण शरीर में पहुँचाता है। आक्सीजन जीवन को टिकाए रखने के लिए एक आवश्यक गैस है क्योंकि शरीर में पाई जाने वाली वस्तुएँ इससे मिलकर जलती हैं और इस कारण शरीर को आवश्यक ऊर्जा और गर्मी मिलती है। इसी ऊर्जा के कारण जीव अपनी गतिशीलता को कायम रखता है। मनुष्य पशु के शरीर में पाया जाने वाला यह लौह तत्व पौधों के शरीर जैसे हरी पत्तियों आदि में भी पाया जाता है। यहाँ यह कार्बनडाइऑक्साइड नामक गैस को सोखकर पौधों को भोजन बनाने में सहयोग करता है। अतः इतना तो तय हो गया कि रक्त जीव के शरीर में गैस संवाहक का कार्य करते हैं। गैस संवाहन की इस प्रक्रिया में किसी परिस्थिति में ये श्वसन का कार्य करते हैं तो कभी आहार निर्माण में सहयोग करते हैं।

यह तो पूर्व में ही बताया जा चुका है कि रक्त का रंग मात्र लाल नहीं होता सफेद भी होता है। यह श्वेत रक्त कण जीवों को रोगाणुओं से लड़ने में मदद करता है। किंतु इस संसार में कुछ ऐसे भी जंतु हैं जिनके शरीर में लाल रक्त कण पाया ही नहीं जाता है अर्थात् ऐसे जीवों के शरीर में जो रक्त होता है उनमें लौह तत्व नहीं पाया जाता है। लौह तत्व नहीं रहने के कारण ही उनके रक्त का रंग लाल नहीं होता है। तिलचट्टा इसका सामान्य उदाहरण है। ८

(३) मांस धातु - जीव के शरीर की सारी आकृति, मुख की सुंदरता, अंगों की सुडौल रचना ये सभी मांस के द्वारा ही संभव है। मांस ही जीव के शरीर में उपस्थित अस्थि आदि ढाँचे के ऊपर इस

प्रकार स्थित होता है कि वह आकर्षक लगता है। इसी के कारण जीव को एक विशिष्ट व्यक्तित्व मिलता है। जैन परम्परा में मांस धातु के लिये मात्र मांस शब्द का ही प्रयोग किया जाता है, लेकिन वैज्ञानिक इस मांस पेशी इन दो शब्दों से जानते हैं। इस संबंध में उनका कहना है कि शरीर में स्थित मांस का पिंड एक अकेले मांस से मिलकर नहीं बना है बल्कि उस पिंड को बनाने में मांस के कई टुकड़े लगे हैं। मांस के दो टुकड़े परस्पर एक तंतु से जुड़े रहते हैं जिन्हें पेशी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि मांस पिंड मांस और पेशी से मिलकर बने हुए है संभवतः यही कारण है कि वैज्ञानिक मांस धातु के लिए मांस पेशी शब्द का प्रयोग करते हैं।^९

प्रायः मांस पेशियों गहरे लाल रंग की होती है। संभवतः इसी कारण जैनों ने इसे रक्त से उत्पन्न मान लिया है, क्योंकि रक्त का रंग भी लाल होता है। इस संबंध में योगशास्त्र में लिखित इस संदर्भ को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस ग्रंथ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि रुधिर से जो धातु विशेष उत्पन्न होता है वह मांसधातु है।^{१०} परंतु वैज्ञानिक ऐसा नहीं मानते हैं। मांस गहरे लाल रंग का क्यों दिखाई देता है इस संबंध में डॉ. टी.एन.वर्मा का कहना है कि मांस में विभिन्न प्रकार की रक्त वाहिकाएँ पाई जाती हैं, जिनमें सदैव रक्त भरा रहता है और यही कारण है कि मांस लाल रंग का दिखाई देता है।^{११} मांस क्या है इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए डॉ. वजीफदार लिखते हैं कि यह विभिन्न प्रकार के रंगों से बना एक स्थूल पिंड है जो रक्तवाहिकाओं, स्नायु तंत्रिकाओं तथा लिम्फों से युक्त रहता है।^{१२}

जीव के शरीर में पाई जाने वाली मांस पेशियों विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने में उसे सहायता प्रदान करती है। कार्य करने की दृष्टि से मांस-पेशियों दो प्रकार की होती हैं।^{१३} १. अनैच्छिक और २. ऐच्छिक। जिन मांस पेशियों को हम अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य करने को प्रेरित नहीं कर सकते हैं वे अनैच्छिक मांस-पेशियाँ हैं। हृदय, आंतादि की मांस-पेशियाँ हमारी इच्छा के अनुरूप कार्य नहीं करती हैं। जब आंतों में भोजन पहुँचता है या जब इसे भोजन की आवश्यकता होती है यह कार्य करना प्रारंभ कर देता है। हृदय लगातार धड़कता रहता है। हम चाहकर भी इसका धड़कना बंद नहीं कर सकते हैं। इन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता है। जिन मांसपेशियों को हम अपनी इच्छानुसार कार्य करने को प्रेरित कर सकते हैं वे ऐच्छिक कहलाती हैं जितनी भी मांसपेशियाँ अस्थियों पर लगी रहती हैं और जिनसे गति होती है सब ऐच्छिक हैं। हाथ-पाँव मुखादि की मांसपेशियाँ ऐच्छिक हैं।

जैनों ने मांसधातु की उत्पत्ति रक्त से होना माना है इस संबंध में वैज्ञानिकों का उत्तर नकारात्मक है। वे मांस धातु की उत्पत्ति रस धातु से होना मानते हैं। क्योंकि उनका कहना है कि मांसपेशियों अच्छे आहार लेने से बनती है न कि रक्त धातु से। आहार अच्छा हो या बुरा इन सबका पाचन होना है और आमाशय में इसका रस बनता है जिससे रक्त मांसादि सभी अवयव बनते हैं।

(४) मेद धातु- जीव के शरीर में पायी जाने वाली वसा धातु का स्थान चौथा है। सामान्यतया इसका रंग हल्का पीला या धी के जैसा होता है। लेकिन कुछ जीवों में असामान्य अवस्था में इसका रंग भूरा भी हो जाता है। मेद या वसा धातु जीवों के शरीर में त्वचा के नीचे पाया जाता है। यह शरीर को कोमल, चिकना बनाए रखने में मदद करने के साथ साथ शरीर के कुछ अंगों की रक्षा भी करता है। कभी-कभी यह शरीर के कुछ भागों में अधिक मात्रा में जमा हो जाता है और जीव की प्राण रक्षा की जगह प्राणलेवा भी हो जाता है।

योगशास्त्र में कहा गया है कि वसाधातु का निर्माण मांस धातु से होता है।^{१४} आधुनिक विज्ञान जगत में वसाधातु के संबंध में जैनों की यह अवधारणा मान्य नहीं है। वसाधातु का निर्माण तैलीय पदार्थों से होता है मांस धातु से नहीं। जीवों के शरीर में जो वसा तत्व पाया जाता है उसे वैज्ञानिक फैट सेल्स (fat cells) या एडिपोज टिश्यू (adipose tissue) कहते हैं। जीव के शरीर में विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में जब यह जमा हो जाता है तब इसे फैट सेल्स कहा जाता है तथा फैट सेल्स के समूह को ही एडिपोज टिश्यू कहा जाता है।^{१५}

पुरुषों एवं महिलाओं दोनों के शरीर में वसा धातु पाया जाता है। लेकिन महिलाओं में यह पुरुषों की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाया जाता है। महिलाओं एवं पुरुषों में वसाधातु के इस सामान्य वितरण का कारण उन दोनों की शारीरिक रचना की विभिन्नता एवं कार्य की प्रकृति है। महिलाओं के शरीर में दुग्ध ग्रंथियाँ पाई जाती हैं।^{१६} फिर इसका शरीर कोमल होता है इन सबका कारण वसाधातु ही है। दुग्ध ग्रंथियों में वसा धातु अधिक मात्रा में पाया जाता है। महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा शारीरिक परिश्रम कम करना पड़ता है, शारीरिक परिश्रम कम करने से वसा तत्व कम जलता है इस कारण भी महिलाओं के शरीर में वसाधातु की अधिक मात्रा पाई जाती है।

वसा धातु शरीर को गर्मी प्रदान करता है। शारीरिक परिश्रम करने से तथा श्वसन प्रक्रिया द्वारा जो आक्सीजन ग्रहण किया जाता है जब यह वसा धातु से मिलता है तब यह जलने लगता है। ज्वलन की इस प्रक्रिया में अत्यधिक मात्रा में ताप उत्पन्न होता है और यह ताप शरीर को गर्मी प्रदान करता है। शरीर के कुछ अंगों यथा, हथेली, तलवे, नितम्बों आदि पर अधिक मात्रा में जमा रहता है। इन स्थानों पर यह उन अंगों में पाए जाने वाली शिराओं की रक्षा करता है। शरीर के इन अंगों पर शरीर के भार के कारण अधिक दबाव पड़ता है। इस दबाव के कारण हो सकता है कि इन अंगों में पाई जाने वाली वाहिकाएँ फट जाती और जीव की मृत्यु का कारण बन सकती है। लेकिन यहाँ पर जमा वसा तत्व इन दबावों को स्वयं वहन कर लेता है और वाहिकाएँ सुरक्षित रह जाती हैं। इस तरह के वसा धातु दबाव रक्षक (Soakabsorbor) का काम करता है और जीवों के प्राण की रक्षा भी करता है। कभी-कभी वसा धातु प्राणियों के पेट, कूल्हे, जोड़ों आदि स्थानों पर अधिक मात्रा में जमा हो जाता है इस कारण वह प्राणी काफी स्थूल हो जाता है और अपना कार्य सामान्य ढंग से नहीं कर पाता है। अतः इस परिस्थिति में वसा धातु प्राणी के लिए रक्षक न होकर भक्षक की भूमिका का कार्य करता है।

अस्थि धातु - जीव का शरीर कोमल और कठोर दोनों ही प्रकार की वस्तुओं से मिलकर बना है। सामान्य रूप से कोमल भाग मांस-पेशी से बनता है जबकि कठोर भाग का निर्माण एक विशेष प्रकार के तत्व से होता है जिसे अस्थि या हड्डी कहा जाता है। जीव के शरीर का ढाँचा इन्हीं अस्थियों से बना होता है। इन अस्थियों के ऊपर मांस-पेशी चर्म आदि लगे रहते हैं। जिनके कारण प्राणी को एक निश्चित आकार मिलने के साथ साथ एक विशेष प्रकार का व्यक्तित्व भी मिलता है। शरीर को निश्चित आकार देने, मांस-पेशियों आदि को सम्यक् रूप से ढलाव प्रदान करने के कारण अस्थियाँ हड्डी को शरीर का आधार भी माना जाता है।

योगशास्त्र के अनुसार अस्थि मेद या चर्बी से उत्पन्न होने वाली कीकस धातु है।^{१७} कीकस का अर्थ कठोर होता है और अस्थि की प्रकृति कठोर होती ही है। संस्कृत हिन्दी कोश में कीकस का अर्थ

हड्डी बताया गया है।^{१८} अतः यह स्पष्ट है कि अस्थि की उत्पत्ति मेद या चर्बी से होती है। वैज्ञानिकों का मत इससे भिन्न है। वे अस्थि को मेद या चर्बी से उत्पन्न होना नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि अस्थि एक कठोर धातु है और यह कैल्शियम मैग्निशियम आदि रासायनिक तत्वों के कार्बोनेट फोस्फेट से बना है। इन रासायनिक तत्वों का सामान्य बोलचाल की भाषा में चूना कहा जाता है।^{१९}

जीव के शरीर में जितने भी धातु पाए जाते हैं उन्हें वैज्ञानिक संदर्भों में कोशिका कहा जाता है। अस्थि भी एक धातु है इस कारण इसे भी कोशिक माना जाता है। ये कोशिकाएँ बहुशाखात्विता होती हैं और इस शाखाओं में एक विशेष प्रकार का तत्व भरा रहता है जिसे मैट्रिक्स कहा जाता है। प्राणी जब शैशावस्था या भ्रूणावस्था में रहता है तो उसके शरीर में पाई जाने वाली अस्थियाँ अत्यंत मुलायम होती हैं और इस कार्टिलेज के नाम से जाना जाता है। जब शिशु वृद्धि करता है तब उसकी हड्डियाँ कठोर हो जाती हैं और यही कठोर भाग पूर्ण अस्थि कहलाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राणी के शरीर में दो प्रकार की हड्डियाँ पाई जाती हैं। १. मुलायम जिसे कार्टिलेज कहा जाता है और २. कठोर जिसे अस्थि या हड्डी के नाम से जाना जाता है। जीव के शरीर में जो अस्थि पाई जाती है वह खोखली होती है। खोखली होने के कारण इनका वजन कम होता है। यद्यपि यह खोखली होती है, परंतु इसकी मजबूती में किसी तरह की कमी नहीं पाई जाती। इसका मुख्य कारण चूने के लवण हैं जो इन्हें मजबूती प्रदान करते हैं। इसके खोखला होने के कारण है। अगर हड्डी पूरी तरह ठोस होती तो इसका भार काफी ज्यादा होना और संभव था कि प्राणी इस अत्यधिक भार को वहन नहीं कर पाता फलतः वह अपने कार्यों का सम्पादन समुचित ढंग से नहीं कर पाता। इसके साथ ही साथ इन खोखले स्थानों में लाल अस्थि मज्जा भरी रहती है। जिसमें रुधिर वाहिनियाँ होती हैं। इनसे भोजन ग्रहण कर कुछ विशेष कोशिकाएँ विभाजन करती हैं फलस्वरूप हड्डियाँ बढ़ती हैं।

हड्डी के कारण ही प्राणी चलता है, भार उठाता है, बैठता है। शरीर के कुछ संवेदनशील एवं कोमल अंग हड्डी के द्वारा रक्षित होते हैं जैसे हृदय फेफड़ा आदि। देखना सुनना आदि भी अस्थि के सहयोग से ही संभव है। क्योंकि आंखें हड्डी के बने गोलों के अंदर ही रहती हैं और सम्यक् रूप से चलती हैं जिसके कारण प्राणी छोटे-बड़ी सभी चीजों को देख पाता है। ध्वनि के प्रकंपन के कारण कान में बने हड्डी के हथौड़े कान के परदे पर चोट करते हैं जिसके कारण प्राणी ध्वनि को सुन पाता है। थोड़े से में कहें तो हम यही देखते हैं कि अस्थि प्राणी के लिए अत्यंत महत्व की चीज है।

(६) मज्जा धातु - जैनों ने सप्तधातुओं में मज्जा को छठे स्थान पर रखा है मज्जा को जैनों ने धातु माना है लेकिन आयुर्वेदाचार्यों ने इसे उपधातु माना है। अतः मज्जा धातु है या उपधातु यह एक शोध का विषय है, लेकिन यहाँ हम मज्जा मानकर ही चल रहे हैं। इस धातु की उत्पत्ति अस्थि धातु से मानी गई है। परंतु विज्ञान जगत के लिए यह बात मान्य नहीं है। मज्जा धातु अस्थि के पोले भाग में पाई अवश्य जाती है तथा इसका निर्माण भी वही होता होगा लेकिन इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि यह अस्थि धातु से उत्पन्न होता है। इसकी उत्पत्ति कैसे होती है इस संबंध में अभी शोधकार्य चल रहे हैं। वैज्ञानिकों ने अपने शोध के अनुक्रम इस धातु के संबंध कई महत्वपूर्ण खोज किए हैं - अस्थि में पाई जानी वाली मज्जा धातु लाल रक्त कण का निर्माण करती है (जबकि जैनों ने रक्त का निर्माण रस धातु से होना माना है) बच्चों के शरीर में पाई जानी वाली इस धातु का रंग लाल होना जबकि वयस्कों में इसका रंग पीत वर्ण का होता है।

लाल रक्त मज्जा या मज्जा प्राणी के शरीर में पाई जाने वाली लंबी हड्डियों के दोनों छोरों पर ही मिलता है। प्राणी के शरीर के हाथ पाँव की हड्डियाँ ज्यादा लंबी होती हैं अर्थात् इन हड्डियों में ही मज्जा पाया जाता है। अतः हम यह नहीं कह सकते हैं कि मज्जा का निर्माण अस्थि धातु से ही होता है। कुछ रोगों की अवस्था में मज्जा नष्ट होने लगता है क्योंकि इन रोगों को उत्पन्न करने वाले रोगाणु मज्जा का ही भक्षण करने लगते हैं मज्जा के नष्ट होने की स्थिति में लाल रक्त कण का निर्माण होना बंद हो जाता है फलतः जीव धीरे-धीरे मर जाता है।

(७) वीर्य धातु - प्राणी के शरीर में पाए जाने वाले सप्त धातुओं में से वीर्य धातु के अतिरिक्त अन्य छः धातुएँ किसी न किसी रूप में शरीर का निर्माण से जुड़ी रहती हैं परंतु वीर्य धातु इस शरीर की उत्पत्ति का ही कारण बनता है अर्थात् इसके कारण ही जीव को शरीर मिलता है। इस संसार में सामान्य रूप से दो प्रकार के प्राणी मिलते हैं - नारी और पुरुष। इन दोनों के शरीर में सप्तधातुएँ पाई जाती हैं। जब ये नारी और पुरुष परस्पर मिलते हैं तो उनके इस मिलन को सहवास या संभोग कहा जाता है। इस प्रक्रिया के अनंतर दोनों के वीर्य मिलते हैं जिससे एक नवीन शिशु की उत्पत्ति होती है, फिर यह शिशु इसी प्रक्रिया के अनंतर एक नया शिशु उत्पन्न करता है, इस तरह से शिशु पर शिशु की परंपरा चलती रहती है। तात्पर्य यह है कि वीर्य धातु जो प्राणी के शरीर में पाया जाना एक नए शरीर निर्माण की क्षमता रखता है।

योगशास्त्र के अनुसार वीर्य धातु की उत्पत्ति मज्जा धातु से मानी गई है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से योगशास्त्र में वीर्य धातु के संबंध में उल्लेखित यह मत कभी भी मान्य नहीं हो सकता है। क्योंकि वीर्य धातु की जहाँ उत्पत्ति होती है वहाँ मज्जा धातु बनता ही नहीं। नर में वीर्य धातु नरजननांग में बनते हैं तथा मादा में मादा जननांग में। ये दोनों ही अंग पेट के नीचे पाये जाते हैं। नर और मादा वीर्य कहाँ बनते हैं यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, लेकिन उसका वर्णन संभव नहीं है। नर और मादा वीर्य कैसे होते हैं इसका वर्णन किया जा सकता है।

नरवीर्य को शुक्राणु कहते हैं। यह एक अत्यंत सूक्ष्म जीव है। यह तीन भागों में बटा रहता है - सिर, गर्दन और पूंछ। पूंछ की सहायता से यह गति करता तथा सिर की सहायता से मादा वीर्य के साथ संपर्क करता है और उसके साथ मिलकर नए शिशु उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाता है। मादा वीर्य डिम्ब के नाम से जाना जाता है। यह शुक्राणु से आकार में बड़ा होता है। सहव सके अनंतर पुरुष द्वारा स्खलित शुक्रक्रीत नर जननांग से होता हुआ डिम्ब के अंदर प्रवेश करता है। जब शुक्रक्रीत डिम्ब के अंदर प्रवेश कर जाता है तब वह डिम्ब निषेचित डिम्ब कहलाता है। यह निषेचित डिम्ब ही कई प्रक्रियाओं से गुजरकर एक नए शिशु को उत्पन्न करता है।

इस तरह से जैनों द्वारा प्रतिपादित सप्तधातु की अवधारणा की वैज्ञानिक व्याख्या की गई।

संदर्भ

१. शरीर पर्याप्ति: सप्तधातुतया रसस्य परिणमनशक्ति : -

— -स्थानांग, अभयवृत्ति, ७२

२. रसासृग्यमांसमेदोऽस्थिमज्जा शुक्रान्नवर्चसाम् - योगशास्त्र, ४/७२

३. रसो भुक्त-पीतान्न-पान परिणामजो नित्यन्द : -

— योगशास्त्र, स्वप्न विवरण ४/७२

४. हमारे शरीर की रचना, भाग II, डॉ. टी. एन. वर्मा, दी इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, १९३८, पृष्ठ १५०

५. धातुप्रभृतिभिर्द्रव्यैः रत्तीकृते - बहत्कल्पभाष्य, पीठीका. १, उद्दे. -२

— उद्घृत अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ६, पृ. ४८२

६. असृग्ग्यरक्तं रससम्भवो धातु : योगशास्त्र, स्व. ४/७२

७. हैड बुक ऑफ फिजियोलॉजी - एन. जे. वजीफदार, पॉपुलर बुक डिपो, बम्बई १९४४, पृ. ४३२।

८. मॉडर्न टेक्स्ट बुक ऑफ जूलोजी : इन्वर्टिबरेट - आर. एल. कोटपाल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, १९९०, पृ. ४५८

९. ग्रेज एनाटोमी : डिस्क्रीप्टिव एण्ड एप्लाइज - संपा. टी. बी. जॉन्स्टन और जे. विलिस, लॉगमैन ग्रीन एण्ड को. १९४२. पृ. ५१७

१०. मांसं पिशितमसृग्भवम् - योगशास्त्र, स्व. ४/७२

११. मानव-शरीर-रहस्य, भाग I - मुकुन्दस्वरूप शर्मा, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२९, पृ. ९६।

१२. हैड बुक ऑफ फिजियोलॉजी, पृ. ३५०

१३. वही - पृ. ३५०

१४. मेदो वसा मांससंभवम् - योगशास्त्र, स्व. ४/७२

१५. टेक्स्ट बुक ऑफ ह्यूमन हीस्टोलॉजी - इन्द्रजीत सिंह, पृ. ८१

१६. कठिनगन्धम मैनयूअल ऑफ शैक्टिकल एनाटोमी संपा. आर्थर राबिन्सन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस १९३०, पृ. १४१-१५१।

१७. अस्थि कीकसं मेदसंभवम् - योगशास्त्र, स्व. ४/७२

१८. संस्कृत-हिन्दी-कोश, वामन शिवराम आष्टे, पृ. २७८

१९. टेक्स्ट बुक ऑफ ह्यूमन हीस्टोलॉजी, पृ. १०१-१०२

मानवीय मूल्य और जैन धर्म

• डॉ. (श्रीमती) शारदा स्वरूप

‘दर्जनो पुलिसकर्मी बेटिकट यात्रा करते हुए पकड़े गये’, ‘जमीन विवाद में पुत्र ने पिता का सिर फोड़ा’, ‘कर्नाटक प्रांत में, मैसूर-स्थित, जैन साधु बाहुबली की विशाल मूर्ति को नक्सलियों से खतरा’, ‘लाखों के घोटाले में नगर-पालिका प्रमुख के प्रति अविश्वास प्रस्ताव’, ‘घर में घुसकर सामूहिक बलात्कार’, ‘सशस्त्र बदमाशों ने ट्रेक्टर सवारों से हजारों लूटे’, ‘दो प्रमुख राजनैतिक दलों के नेताओं के बीच गाली गलौच’, ‘एक सवारी गाड़ी में शक्तिशाली बम विस्फोट - सैकड़ों हताहत’, ‘जबर्दस्त हंगामे के बीच लोकसभा का अधिवेशन स्थगित’ ये हैं एक प्रमुख दैनिक समाचार पत्र में हाल ही में प्रकाशित कुछ शीर्षक। इसी प्रकार की अन्य अनेकानेक घटनाएं देश भर के समाचार-पत्रों की सुर्खियों में स्थान पाती रहती हैं। चाहे वह भगवान बाहुबली की मूर्ति को भूमिसात् कर देने की धमकी हो अथवा राजनैतिक दलों के नेताओं की नोकझोंक, नगर पालिका में भ्रष्टाचार का आरोप, या ट्रेन में बमविस्फोट की आतंकवादी कार्यवाही, पितापुत्र का संपत्ति संबंधी विवाद अथवा किसी महिला के प्रति पाशविक दुराचरण, राह चलते नागरिकों से लूटपाट या देश की सर्वोच्च प्रतिनिधि सभा का हंगामे के कारण स्थगन इन सब के मूल में एक ही सूत्र दौड़ता है। व्यक्तिगत स्तर पर हो, सामाजिक स्तर पर अथवा राजनैतिक स्तर पर, एक सूचना इस तथ्य को लेकर स्पष्ट है, कि माननीय मूल्यों का घोर अवमूल्यन हुआ है। नैतिकता की भावना आज के मानव से कोसों दूर चली गई है। एक स्वस्थ समाज में क्या होना चाहिये और क्या हो रहा है उसमें महान् अंतर परिलक्षित हो रहा है।

समाज अस्वस्थ है। उसको उपचार की आवश्यकता है और ऐसा उपचार की जो दूरगामी, प्रभावोत्पादक और चिरस्थायी है। ऐसा उपचार धर्म द्वारा ही संभव है। धर्म का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है सामाजिक चरित्र का उत्थान। सामाजिक नैतिकता जब भी पतनोन्मुख हुई है, अमानवीय आचरण में बढ़ोतरी हुई है, धर्म द्वारा ही उसे अनुशासित किया गया है।

इसमें दो मत नहीं हैं कि जैन धर्म अत्यंत प्राचीन होते हुए भी परम वैज्ञानिक और व्यावहारिक है। इसका दृष्टिकोण उदारतावादी है और तर्क विज्ञान सम्मत। इसी कारण इसकी प्रासंगिकता आज के अति भौतिकता से पीड़ित और गृधुता से ग्रसित वातावरण में भी समाप्त नहीं हुई है।

दुःख कदाचित् जागतिक जीवन का एक कटु सत्य है और दुःख के निराकरण का उपाय, सुख की अभिलाषा भी उतना ही शाश्वत सत्य है। परंतु दुःख से बचने के उपाय या सुखोपलब्धि के साधन मानव की सोच में हैं। उसके विचारने का ढंग विकृत हो गया है। वह केवल अपने को केंद्र में रखकर सोचता है। व्यक्ति से परिवार, परिवार से कुटुंब ततः समाज, देश, राष्ट्र और विश्व बनते हैं। परंतु यदि मनुष्य मात्र अपने या अपने मूल परिवार के सुख ऐश्वर्य का ही ध्यान रखेगा तो समाज का क्या होगा? मनुष्य समाज का अंग है और क्रमशः विश्व का भी। आजकल जैसे संयुक्त-परिवारों का विघटन हो रहा है वैसे ही समूचा देश भी विघटन के कगार पर खड़ा है।

संसार में विविध प्रकार की विसंगतियां दिन प्रतिदिन पनप रही हैं। धनी निर्धन, ऊंचनीच, जातपात, धर्मविधर्म, आस्था अनास्था की विसंगतियां मनुष्य द्वारा स्वयं उत्पादित की गई हैं। ये विसंगतियां मानव दुःख का प्रमुख कारण हैं और उसकी सुख की खोज में सबसे बड़ा व्यवधान। इसीलिये ऐसे धर्म की शरण में जाने की महती आवश्यकता है जिसके द्वारा इन बहुआयामी समस्याओं को समझा जा सके और निराकरणार्थ पहल भी की जा सके।

जैन धर्म में पंच महाव्रतों की स्थापना की गई है - जो मुनियों के लिए हैं - गृहस्थों द्वारा पालनीय पञ्चाणुव्रत अपेक्षाकृत कम कठोर हैं - सुगम हैं - साथ साथ समाज के सर्वांगीण विकास तथा कल्याण की कुंजी हैं।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पांच अणुव्रत आज के परिप्रेक्ष्य में विशेषतः उपयोगी हैं - शर्त यह है कि हम इनको मात्र सिद्धांत मान कर न चले वरन् जीवन में कार्यरूप में परिणित करने का दृढ़ संकल्प और साहस जुटा पाएं। इन पांचों में से किसी एक को अलग करके नहीं जिया जा सकता ये अन्योन्याश्रि हैं और भावना तथा व्यवहार दोनों के स्तर पर परस्पर संपृक्त भी।

एक समय था जब मनुष्य प्रकृति का दास था पर आज वह उसका स्वामी बनने का दम भरने लगा है। भौतिक विज्ञान की प्रगति से उसके नेत्र चमत्कृत हो गये हैं। इतनी तीव्र गति से ज्ञान विज्ञान का विकास हो रहा है कि एक शाखा का विशेषज्ञ भी उसकी समूची जानकारी रखने का दावा नहीं कर सकता। भौतिक उपकरणों के प्रभाव में पहले के मनुष्य ने, दुःख अधिक भोगे थे। सुखों की प्राप्ति ही उसके परलोक की, स्वर्ग की कल्पना का आधार थी। आज वह धरती को ही स्वर्ग बना कर जीना चाहता है। पर वह सुख सुविधा के समस्त साधन जुटा कर भी सुखी नहीं है। वह शांति की खोज में भटक रहा है। सुख और शांति की तलाश मृगतृष्णा बन गई है। धूप से तपती बालू पर पानी के लिये भटकते हिरन को दूर पर जल की सत्ता का आभास होता है - दौड़ता हुआ वहाँ तक पहुँचता है परंतु चिलचिलाती धूप में चमकते रेत कणों के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता।

आधुनिक मनुष्य ने बहुत कुछ अंशों में प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। जल, अग्नि, वायु, प्रकाश अंधकारीय प्राकृतिक तत्वों को अपना दास बना लिया है। विज्ञान द्वारा उपार्जित शक्ति के सहारे यंत्रचलित सा जीवन व्यतीत कर रहा है- बटन दबाने मात्र से बहुत कुछ कार्य संपन्न हो जाते हैं - परंतु जैसा कि किसी विचारक ने कहा है -“मनुष्य ने पक्षियों की भांति उड़ना सीख लिया है, मछलियों की भांति तैरना सीख लिया है परंतु एक मानव की भांति जीना नहीं सीखा” विज्ञान द्वारा प्रदत्त गति और शक्ति को हमें सीमित करना है। समाजोपयोगी जीवन जीने की कला मर्यादा में है, अनुशासन में है। अनुशासनहीन व्यक्ति समाज पर बोझ होता है।

विज्ञान की प्रचुर प्रगति ने विश्व का क्षेत्र संकुचित कर दिया है। प्राविधिक सामंजस्य के संसार में मनुष्य-मनुष्य में बहुत कम अंतर रह गया है - भले ही वह प्राणी ब्रिटेन का निवासी हो या अफ्रीका का, अमरीका का, या जापान का, इसने ‘सत्त्वेषु मैत्री’ के सिद्धांत के कार्यान्वयन को नवीन आयाम प्रदान किया है। परंतु विडम्बना यह है कि देश और स्थान के अंतर की कमी हृदयों की दूरी को कम करने के स्थान पर विवृद्ध करती परिलक्षित होती है। औपनिवेशिक शोषण का राजनैतिक रूप समाप्त प्रायः है पर आर्थिक रूप से उपनिवेशवाद की जड़ें गहरी होती जा रही हैं। कहा जाता है कि ब्रूनी के शेख के पास अथाह धन

संपत्ति है - वह विश्व का सर्वाधिक धनी व्यक्ति है। विश्व के अनेक विकसित और विकासशील देशों में कुछ परिवार अत्यधिक समृद्धशाली हैं। उन्होंने व्यापार पर एकाधिपत्य जमा लिया है। जिससे उस पदार्थ विशेष को वे मनमाने दामों पर क्रय विक्रय कर अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। इसी प्रकार कुछ समृद्धशाली देश अपने हथियारों की खपत के लिये, कम शक्तिशाली देशों को लड़ा कर बंदरबाट की स्थिति बनाए रखने में भलाई समझते हैं। जिसका दुष्प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ता है। कई देशों की विपन्नता, संपन्न देशों की देन है - कृत्रिम है - स्वार्थ से प्रेरित है। अपने देश की खपत से अधिक उपज को समुद्र में बहा देना, जला देना स्वीकार है परंतु निर्धन-दुर्भिक्ष पीड़ित देशों को देना नहीं। अन्यथा सत्ता संतुलन डगमगाने लगेगा। भ्रातृत्व और मैत्री का सिद्धांत प्राचीन है परंतु सनातन है - इनकी आवश्यकता आज मानव अस्तित्व की रक्षा के लिये अधिकाधिक अनिवार्य हो गई है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि मानव स्वभाव में देवत्व तथा दानवत्व का सम्मिश्रण होता है किसी में देवत्व का अंश कम किसी में अधिक। मात्रा में अंतर आधार पर दुर्जन और सज्जन के स्वभाव का निर्धारण होता है। एक विदेशी विचारक ने बड़ी सटीक बात कही है।

में कुछ परिवार अत्यधिक समृद्धशाली हैं। उन्होंने व्यापार पर एकाधिपत्य जमा लिया

दानव में विश्वास छोड़ देना आधुनिक सभ्यता की महती भूल है क्योंकि वही (दानव ही) इसकी व्याख्या है। कहने का तात्पर्य है कि आधुनिक सभ्यता की विकृतियों के लिये मानव स्वभाव में दानवत्व का बाहुल्य उत्तरदायी है। अपने अंदर के दानव को यदि हमें वश में रखना है, उसके द्वारा संचालित नहीं होना है तो मनःकाय वचन तीनों द्वारा शुभ, समाजपयोगी कर्म ही अभिप्रेत हैं।

अनुशासित, मर्यादित और समाजोपयोगी जीवन जीने की कला इसी में है कि पदार्थ होते हुए भी उसके प्रति आसक्ति न हो - वास्तव में गहराई से विचारने पर यह एक घोर तपस्या से कम नहीं - जितना इसका कह देना या लिख देना सरल है उतना ही इसका पालन और अनुकरण कष्ट साध्य है। परंतु अधिक उत्पादन से समस्या का निदान संभव नहीं, वह संभव हो सकता है सही वितरण से। इस तथ्य को तो अर्थशास्त्री ने ही प्रतिपादित किया है। आज उपभोक्तावाद का बोलबाला है। आज धनी देश अथवा धनी व्यक्ति देश की अधिकांश उपज और धन पर सर्प की भांति कुंडली मार कर बैठ गए हैं। उपभोग का अंतहीन सिलसिला जारी है - परंतु क्या उपभोक्ता को तृप्ति का लेशमात्र भी उपलब्ध है? उत्तर नकारात्मक ही होना पड़ेगा - आवश्यकता की पूर्ति धक्कती ज्वाला - सध्ण है - जितनी आहुति दी जाय - समिधा-प्रेक्षवण किया जाय उतनी ही विकराल लपटें उठती रहेंगी। कषायितजिह्वा वाले व्यक्ति को जल सुस्वादु, मीठा प्रतीत होता है ऐसी ही गति उपभोगोपलब्धि से होती है। ऐसी स्थिति में, आवश्यकताओं का परिसीमन एक बहुत व्यावहारिक व सुखद उपाय है। धनी निर्धन के बीच की खाई कम होगी, उत्पादन-वितरण की आर्थिक व सामाजिक समस्या सुलझेगी साथ ही आत्मिक संतोष भी प्राप्त होगा।

आज का व्यक्ति, उसकी समस्त गतिविधियां अर्थप्रधान हो गई हैं। वह प्रातः उठता है तो धनोपार्जन की चिंता लेकर, दिनभर व्यस्त रहता है तो उसी में, रात्रि को शैया पर जाता है तो उसी के विषय में सोचता हुआ। अनेक व्यक्तियों को तो अर्थ-चिंता में रात्रि को निद्रा भी नहीं नसीब होती वह धनोपार्जन के नए-नए तरीके उसके अधिकारियों की कुदृष्टि से छिपाने के उपाय आदि ही सोचता रहता है। यही कारण है कि दोहरा जीवन जीने वालों की संख्या बढ़ रही है। पर हमने कभी शांत चित्त से नहीं

विचार कि 'धनवान्' का वास्तविक अभिप्राय होता क्या है? शुभधन से युक्त मात्र 'धनाढ्य' नहीं। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर 'शुभ-लाभ' पद अंकित रहता है। दीपावली के, लक्ष्मी-पूजन के, अवसर पर आपसी संबंधों के नवीनीकरण एवं दृढ़ीकरण हेतु मंगल संदेश (ग्रीटिंग कार्ड) भेजने की प्रथा का आजकल अधिक प्रचलन दिखाई पड़ने लगा है। उन संदेशों में भी 'शुभ-लाभ' का उल्लेख होता है। ऐसा 'लाभ' जो 'शुभ' है - जो शुभ कर्मों द्वारा अर्जित किया गया हो - उचित साधनों द्वारा प्राप्त किया गया हो। परंतु 'लाभ' की 'शुभता' के स्थान पर मिलावट, बेईमानी, भ्रष्टाचार का बोलबाला है। हमने साधन को साध्य मान लिया है। धन जीवन को सुचारु रूप से संचालन के लिये आवश्यक है परंतु जीवन का एकमात्र ध्येय नहीं है।

मूल्यों से प्रेरित समूह को 'समाज' की संज्ञा दी जा सकती है। पर दोहरे मापदंडों में मूल्यों की चर्चा अरण्यरोदन सी प्रतीत होती है। कथनी और करनी का अंतर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। बाह्य आडंबर के युग में, व्यक्ति सामाजिक व्यवहार में सौम्य उदार तथा दयालु दिखाई पड़ता है। पुलिपिट पर खड़े होकर, समाज के ठेकेदार, देश के कर्णधार, सत्य की, ईमानदारी की देशोद्धार की दुहाई देते हैं परंतु असलियत में वे ही शीघ्र धनी बनने की लिप्सा में कुकर्म कराते हैं, खाद्य पदार्थों में मिलावट कराते हैं। राजनीति का अपराधीकरण तथा अपराधियों को राजनैतिक-प्रश्रय प्राप्ति भी इसी का एक दूसरा पहलु है।

"जिओ और जीने दो" एक चिरंतन गौरवशाली और महिमामंडित सिद्धांत है। हर प्राणी की अपनी गरिमा और महत्ता है। रंग, वस्त्र, भोजन, स्थान, देशादि तो बाह्य स्थितियां मात्र हैं। सबके प्रति उदारता, व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तरों पर समानता का एकीकरण परम आवश्यक है। परंतु अपने आग्रहों के मंडन अन्यो के खंडन की प्रवृत्ति समाज में घोर संकट का कारण बन रही है। महावीर और महात्मा द्वारा उद्घोषित तथा प्रतिपादित 'अहिंसा' के 'जप' को हमने तलवार की नोक और बंदूक की नलियों से उड़ा दिया है - 'हिंसा' को जीवन का सर्वोच्च सिद्धांत मान लिया है। जिसका विकृत रूप मारकाट, चोरी डकैती, साम्प्रदायिक दंगों, घृणा, भ्रष्टाचार और चतुर्दिक फैली अनुशासनहीनता के रूप में परिलक्षित हो रहा है। समाज की जड़ों को खोखला करते इस हिंसा के धुन को हमें दूर भगाना है - सदा सदा के लिए उससे मुक्ति पानी है - अन्यथा आने वाली पीढ़िया हमें कभी क्षमा नहीं करेगी।

'ब्रज-आश्रम'
बांस मंडी, मुरादाबाद
२४४००१

हेमचंद्राचार्य और उनका सिद्धहेम में व्याकरण

• प्रो. अरुण जोशी

आज से करीब आठ सौ वर्ष पहले का गुजरात सुख, समृद्धि और संस्कारिता के त्रिवेणी संगम का स्थान था। उस वक्त गुजरात में सोलंकी युग प्रवर्तित था। सिद्धराज जयसिंह तथा कुमारपाल जैसे यशस्वी नरपतियों ने अपनी कर्तव्य निष्ठा से गुजरात को सुवर्णकाल का परिचय कराया था। इन दोनों नरपतियों को जिसने ज्ञानदृष्टि प्रदान की, वे राजगुरु कलिकाल-सर्वज्ञ नाम से ख्याति प्राप्त आचार्य हेमचंद्राचार्य थे।

हेमचंद्राचार्य का जन्म अहमदाबाद के निकट धंधुका शहर में मौढ़ वणिक जाति में हुआ था। उनके पिता का नाम चाचदेव या चाचिंग था और माता का नाम पाहिणीया चाहिणी था। ई.स. १०८८ अर्थात् वि.सं. ११४५ की कार्तिक पूर्णिमा को उनके युगप्रवर्तक पुत्र का जन्म दिन था। शैशव में उनका नाम चांग था। शास्त्रवेत्ता तेजस्वी जैनचार्य देव चंद्रसूरि से उचित वय प्राप्त करने के बाद चांग को दीक्षा प्राप्त हुई। तत्पश्चात् चांग का नाम सोमचंद्र रखा गया। विद्याभ्यास पूर्ण होने पर जब आचार्य की पदवी प्राप्त हुई तब वे हेमचंद्राचार्य नाम से प्रसिद्ध हुए। चौर्यासी (८४) वर्ष की जीवनयात्रा दरम्यान उन्होंने जिस साहित्य की साधना की। उस में संबंध में सोमप्रभाचार्य ने लिखा है।

क्लृप्तं व्याकरणं नवं, विरचितं छंदोऽनवं द्वायाश्रया-
लंकारौ प्रथितौ नवौ, प्रकटितं श्री योगेशास्त्रं नयम्।
तर्कः संजनितो नवो, जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन, न केन केन विधिना महिः कृतो दूरतः॥

अर्थात् नया व्याकरण बनाया, नया छंदशास्त्र रचा, द्वायाश्रय महाकाव्य और अंलकार शास्त्र को विस्तृत किया और नूतन स्वरूप से प्रकट किया। श्री योगशास्त्र को जन्म दिया, जिनवरों के चरित्रों को ग्रंथ बद्ध किया। किन किन प्रकार से श्री हेमचंद्राचार्य ने अज्ञान का नाश नहीं किया है?।

इस श्लोक में जो नया व्याकरण का उल्लेख हुआ है वही सिद्धहेम है। उसको शब्दानुशासन भी कहा जाता है। सिद्धराज ने जब मालवा पर आक्रमण किया था तब वहां से विजय उपरांत भोज का 'सरस्वती कंठाभरण' नामक व्याकरण भी प्राप्त हुआ था। मालवा में लिखित भोज के व्याकरण से अधिक सुंदर व्याकरण गुजरात में लिखा जाय ऐसी सिद्धराज की कामना थी, जो श्री हेमचंद्राचार्य ने पूरी की। मात्र एक वर्ष के सीमित काल में उन्होंने व्याकरण ग्रंथ की रचना करके उसका नाम 'सिद्धहेम' रखा। इससे सिद्धराज और हेमचंद्र ये दोनों अमर हो गये। इस ग्रंथ को हाथी पर सुवर्ण की थाली में रखकर पाटण नगर में दबादबापूर्वक सम्मानपूर्वक प्रदर्शित किया गया था। संस्कृत और प्राकृतभाषा के लिये लिखित ऐसा समर्थ व्याकरण हेमचंद्र के बाद लिखने का साहस अब तक किसी ने नहीं किया है।

अपने ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति होने के लिये शास्त्रकार मंगलाचरण की रचना करते हैं। श्री हेमचंद्राचार्य ने भी इसी परंपरानुसार ग्रंथ के आरंभ में लिखा है।

प्रणम्य परमात्मानं श्रेयः शब्दानुशासनम्।

आचार्य हेमचंद्रेण स्मृत्वा किंचित प्रकाशयते॥

अर्थात् कुछ याद करने के बाद परमात्मा को प्रणाम करके श्री हेमचंद्राचार्य श्रेयकारी शब्दानुशासन को प्रकाशित करते हैं। इस ग्रंथ में सूत्रों द्वारा व्याकरण की चर्चा की गई है। प्रथम सूत्र है “अर्हम्”। यह शब्द एक अव्यय है और जैन परंपरा में प्रसिद्ध है। यह परमेश्वर का वाचक शब्द है। किंतु इस शब्द द्वारा मात्र जैन परंपरा का ही बोध नहीं मिलता है। व्याकरण कोई खास संप्रदाय विशेष का ग्रंथ नहीं है किंतु संस्कृत या प्राकृत सीखने वाले समस्त छात्रों के लिये लिखा गया है। इस दृष्टि बिंदु को स्पष्ट करने के लिये श्री हेमचंद्र प्रारंभ में कहते हैं कि ‘अर्हम्’ का ‘अ’ विष्णुका वाचक है। ‘र’ द्वारा ब्रह्म का ख्याल मिलता है। ‘ह’ महादेव का वाचक है और ‘म्’ अर्थात् “अर्धचंद्रकार संज्ञा निर्वाण का सूचक है। आचार्यजी के शब्दों में इस बात को व्यक्त करने के लिये लिखा है।

अकारेण उच्यते विष्णुः रेज्ञे ब्रह्मा व्यवस्थितः।

हकारेण हरः प्रोक्तः तदंते परमं पदम्॥

इस व्याकरण ग्रंथ में कुल आठ अध्याय हैं। प्रथम सात अध्यायों में संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखित है और अंतिम अध्याय में प्राकृत भाषा का व्याकरण लिखा गया है।

प्रथम अध्याय में संज्ञा, स्वरसंधि, व्यंजन संधि, नाम के विभक्ति के रूपों की निष्पत्ति आदि के लिये २४१ सूत्र रचित हैं। दूसरे अध्याय में नाम के विभक्ति के रूपों की चर्चा आगे चलती है। विभक्ति का कहां और किस अर्थ में प्रयोग होता है इसकी चर्चा ४६० सूत्रों में की गई है। तीसरे अध्याय के ५२१ सूत्रों में समास, क्रियापद के रूप आदि की चर्चा है। चौथे अध्याय के ४८१ सूत्रों में क्रियापदों की चर्चा की गई है। पांचवें अध्याय के ४९८ सूत्रों में कृदंत की चर्चा है। छठवें अध्याय में ६९२ सूत्रों में तद्धित प्रकरण की चर्चा है और सातवें अध्याय में तद्धित की चर्चा के बाद संस्कृत भाषा का व्याकरण समाप्त होता है। आचार्यजी की निरूपण पद्धति परिचय प्राप्त करने के लिये कुछ उदाहरण देखें।

१) एक-द्वि-त्रिमासा ह्रस्व-दीर्घ-प्लुताः। जिस स्वर का उच्चारण करने में एक मात्रा का समय लगे उसको ह्रस्व दो मात्रा का समय लगे उसको दीर्घ और तीन मात्रा का समय लगे उसको प्लुत स्वर कहते हैं।

२) कादिः व्यंजनम्। ‘क’ और ‘ह’ के बीच में आने वाले वर्ण व्यंजन कहे जाते हैं। कुल ३३ व्यंजन हैं। पाणिनि ने कादयो भावसनाः स्पर्शाः सूत्र द्वारा ‘क’ से ‘म’ तक के व्यंजनों को स्पर्श व्यंजन की संज्ञा दी है।

३) आद्य-द्वितीय-शाषसा अघोषाः। प्रति वर्ग के प्रथम और श, ष, स, अर्थात् क, च, ह, त, प, एवं ख, छ, ठ, थ, फ, तथा श, ष, स, ये तेरह अघोष या कठोर व्यंजन हैं।

४) अन्यो घोषवान्। सूत्र नं ३ में लिखित १३ के अतिरिक्त जो व्यंजन हैं वे सब घोष अथवा कोमल है।

५) यरलवा अंतस्थाः। य, र, ल, व, अंतःस्थ है।

६) स्वतंत्र कर्ता। क्रिया की सिद्धि में जो प्रधान होता है वह प्रधान होता है वह 'कर्ता' है।

७) कर्तुः व्याप्यं कर्म। अपनी क्रिया से कर्ता जिस वस्तु को विशेषतः प्राप्त करना चाहता है वह व्याप्त कहलाता है और उसको कर्म संज्ञा दी गई है।

८) साधकतमं करणम्। क्रिया करने में जो अधिक से अधिक सहायक होता है उसको करण कहते हैं।

९) कर्माभिप्रायेः संप्रदानम्। कर्ता, कर्म द्वारा या क्रिया द्वारा जिसका विशेषतया इच्छता है वह संप्रदान है।

१०) अपायेऽपधिरपादानम्। अपाय को विच्छेद कहते हैं। उपाय की जो अवधि है वह 'अपादान' है।

११) क्रियाऽऽश्रयस्या ऽऽधाने धिकरणम्। क्रिया के आश्रय रूप कर्ता या कर्म का जो आधार है वह 'अधिकरण' है।

१२) गिरिनदीनाम्। गिरि, नदी आदि शब्दों में 'न' का विकल्प से 'ण' होता है तदनुसार गिरिणदी या गिरिनदी - दोनों शब्द सिद्ध होते हैं।

अब तक उदाहरण रूप जिन सूत्रों का उल्लेख किया वे संस्कृत व्याकरण के बोधक सूत्र हैं किंतु श्री हेमचंद्राचार्य ने सिद्धहेम का आठवाँ अध्याय प्राकृत भाषा के व्याकरण के लिये लिखा है। उसमें उन्होंने महाराष्ट्री, शौरसेनी, अपभ्रंश आदि भाषाओं के व्याकरण की चर्चा की है। महावीर स्वामी ने अल्प शिक्षितों को ख्याल में रखकर प्राकृत में उपदेश दिया था। अतः प्राकृत भाषा के ज्ञान से देश्य भाषा की रचना शास्त्रीय रीति से ज्ञात हो सके इस आशय को ध्यान में रखकर श्री हेमचंद्राचार्य ने अपने व्याकरण ग्रंथ में प्राकृत भाषा का व्याकरण समाविष्ट किया है। 'सिद्धहेम' के अंतिम यानि के आठवें अध्याय में एक हजार सूत्र द्वारा प्राकृत भाषा का व्याकरण रचा है। यह भाषा समाज में जीवंत होने से उन्होंने कतिपय दूहा-छंद रचना भी इसी अध्याय में समाविष्ट की है। एक उदाहरण देखें।

एक कुडुली पंचहि रुद्धि
तह पंचहं वि जुअं जुअं बुद्धि।
बहिणुएं तं घरं कहि किंव नंदउ
जेत्थु कुडुंबउं अण्णछंदउ॥

अर्थात् हे बहन, एक झोपड़ी में पाँच जन रहते हैं उन सब के विचार एक समान नहीं हैं। जहाँ कुटुंब स्वच्छंदी हो वहाँ सुख कहाँ?।

ऐसे अनेक सुंदर दूहा द्वारा सुंदर काव्य से कर्ता ने आठवां अध्याय निरूपित किया है।

आचार्यश्री ने प्राकृतभाषा को सरलता से समझाने के लिये, समसंस्कृत, तद्धव और देश्य प्राकृत को लक्ष्य में रखकर जिन सूत्रों की रचना की है उनका परिचय अब प्राप्त करें।

१) स्वरस्य उद्धृते। व्यंजन के साथ जुड़ा हुआ जो स्वर होता है उसमें से व्यंजन निकल जाने के बाद जो स्वर बचता है उसको उद्धृत संज्ञा दी गई है।

२) स्वरे अंतरश्च। अर्थात् अंतर, निर या दुर के बाद स्वर आने पर 'र' का लोप नहीं होता है।
निर + अंतर = निरंतर, अंतर + अप्पा = अंतरप्पा, दुर + अवगाह = दुरवगाह।

३) मांसादेः वा। अर्थात् मांस आदि शब्दों में अनुस्वार का विकल्प लोप होता है। प्राकृत में मांस और मास दोनों शब्द हैं। संमुहं भी है और संमुहं भी है कि करोमि और किं करमि-दोनों प्रयोग सही हैं।

४) ईः हरे वा। अर्थात् हर शब्द में आदि 'अ' का विकल्प से ई भी होता है। अतः हीर और हर का अर्थ शंकर है।

५) द्वारे वा। यहां कहा गया है कि द्वार शब्द में 'आ' का ए विकल्प से होता है। अतः दार और देर शब्द निष्पन्न होता है। प्राकृत शब्द 'डेरतंबु' का डेरा शब्द देर पर से आया है।

६) किरात च। अर्थात् किरात शब्द का 'क' प्राकृत में 'च' हो जाता है। 'किरात' के लिये 'चिलाआं' शब्द मिलता है।

७) स्थूले लः रः। अर्थात् संस्कृत स्थूल शब्द के लिये जब प्राकृत शब्द बनता है तब 'ल' का 'र' होता है और स्थूल पर से थारे शब्द उत्पन्न होता है।

८) गृहस्य घरः अपतौ। अर्थात् जब गृह के साथ पति शब्द नहीं जुड़ा होता है तब गृह का प्राकृत में घर शब्द होता है। गृहपति के लिये प्राकृत में 'गृहपई' बनता है किंतु घरपई नहीं बन सकता है।

इस कतिपय दृष्टान्तों से स्पष्ट होता है कि अष्टम अध्याय वर्तमान कालीन गुजराती, हिंदी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के इतिहास पर विशेष ध्यान देता है। आचार्यश्री हेमचंद्राचार्य को प्राकृत व्याकरण के पश्चिमी संप्रदाय के प्रमुख वैयाकरण माना जाता है। इस अंतिम अध्याय का सर्वप्रथम सम्पादन विदेशी विद्वान पिशाले ने किया था।

आचार्यश्री ने साहित्य एवं लोक में प्रचलित रूपों को ध्यान में रख कर नियमावली प्रस्तुत की है। विषय की संपूर्ण चर्चा करने का प्रयत्न किया है फिर भी डॉ. डोल्चीनिति ने उनकी उग्र आलोचना करते हुए लिखा है कि 'सिद्धहेम' में प्राकृत व्याकरण की पूर्णता नहीं है, प्रौढ़ता नहीं है और कोई विशेष प्रतिभा नहीं है। ग्रंथ के अनुशीलन करने से हम इस आलोचना से सहमत नहीं हैं।

भारत वर्ष में संस्कृत व्याकरण का उद्गम अति प्राचीन काल से हुआ था। पाणिनि ने भी अपने से पूर्व आविर्भूत आपिशलि काश्यप, गालव जैसे दस व्याकरण शास्त्रियों का उल्लेख किया है। व्याकरण शास्त्र में पाणिनि, कात्यायन या वररुचि और पंतजलि मुनित्रय संज्ञा से अतीव ख्याति प्राप्त हुए हैं। हेमचंद्र के व्याकरण का मूल स्रोत कौन है यह प्रश्न संशोधन का विषय रहा है किंतु हेमचंद्राचार्य ने केचिन,

कश्चिन अन्य आदि शब्दों द्वारा अपने पूर्वाचार्यों का संकेत दिया ही है। इस व्याकरण ग्रंथ में समाविष्ट प्राकृत व्याकरण पर चंद्र और वररुचि का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। पाणिनि ने भी 'प्राकृत लक्षण' नामक ग्रंथ लिखा था ऐसा कहा जाता है। किंतु इसकी अनुपलब्धि में प्राकृत प्रकाश के कर्ता वररुचि ही प्राचीनतम प्राकृत वैयाकरणी है।

व्याकरण की रचना में परिभाषा का खास महत्व है। जार्ज कोडो के अनुसार परिभाषा metarules को कहते हैं। उसको Rules of interpretation भी कहा जाता है। उसको अव्यवस्था दूर करने के लिये प्रयुक्त वास्तविक विधान भी कहा जाता है। हेमचंद्र ने परिभाषा के लिये 'न्याय' शब्द का प्रयोग किया है और अध्येता की अल्प, मध्यम, उच्च कक्षा ध्यान में रख कर स्वयं आचार्यश्री ने तीन प्रवृत्तियां भी लिखीं हैं।

श्री हेमचंद्राचार्य ने पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' में प्रविष्ट क्लिष्टता को अपने ग्रंथ से दूर रखा है। विद्यार्थी के लिये वर्ण्य विषय का सरलता निरूपित करने का ध्येय उन्होंने निभाया है। और इस प्रक्रिया में वे महद् अंशतः शाकटायन के अनुगामी रहे हैं।

संक्षेप में कहा जाय तो पाणिनि द्वारा सूत्रबद्ध पतंजलि द्वारा विस्तृत, जयादित्य द्वारा वृत्ति बद्ध कैयट द्वारा व्याख्यान और बाद में नागेशपंडित द्वारा स्थिरीकृत व्याकरण को श्री हेमचंद्राचार्य ने सरलीकृत करने का प्रयास किया है।

पुष्प कु सो. हिल ड्राइव
भाव नगर, ३६४००१
(गुजरात)

चिंतन कण

- आज के मानव प्रेम की पुकार कर रहे हैं किंतु प्रेम पुकारने की चीज नहीं, जीवन में उतारने की चीज है।
- जो व्यक्ति मन, वजन व कर्म से प्रेम की सरिता बहाता है, वह सबता प्रिय बन जाता है।
- जो वास्तव में प्रेम की सरिता में अहर्निश सराबोर रहता है, उसके सम्पर्क में आने वाला दुःखी प्राणी भी उस आह्लादित सुख से वंचित नहीं हो पाता।
- फूट को बिदाकर एकता के सूत्र में प्रत्येक प्राणी को पिटोने वाला सूत्र प्रेम ही तो है।

• परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुर्वरजी म. सा.

बुद्धि का वैभव

• डॉ. आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

कागज पर एक तरफ संसार का चित्र था और दूसरी तरफ मनुष्य का। पिता ने फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। फिर अपने छोटे पुत्र से उसे जोड़ने के लिए कहा। बच्चे ने संसार का चित्र जोड़ने का काफी यत्न किया, किंतु जुड़ नहीं सका। तब दूसरी तरफ मनुष्य का चित्र देखा। ज्यों ही उसे जोड़ा, संसार भी जुड़ गया। वास्तव में संसार मनुष्य के पीछे ही है। संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य सबसे अधिक बुद्धिमान माना गया है। है भी वह समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ। हाथी डीलडौल में बड़ा है। एक हाथी दस मनुष्यों को पछाड़ सकता है। लेकिन मनुष्य उस पर भी सवारी करता है। उसे वह अपने काबू में कर लेता है। केहरि बड़ा शक्तिशाली है, परंतु है वह शरीर से ही ताकतवर, बुद्धि में ताकतवर नहीं। इसी कारण मनुष्य उसे पिंजरे में बंद कर देता है। मनुष्य में यह विलक्षण शक्ति उसकी बुद्धि की बदौलत ही है। अपनी इसी बुद्धि के कारण वह सबके सिर पर चढ़ बैठता है। कहते हैं जिसके पास बुद्धि है, उसी के पास बल है। निबुद्धि में बल ही कहाँ? बुद्धि के बल पर ही मनुष्य ने विविध कलाओं और शिल्पों की शोध-खोज की। बुद्धि के बल पर ही उसने समाज व्यवस्थाएँ बनाई, सभ्यता से रहना सीखा, शिष्टाचार और धर्म की मर्यादाएँ बांधी, सुख से जीवन यापन करने के उपाय सोचे। यहाँ तक कि बुद्धि की बदौलत ही मनुष्य ने अपने जीवन का सर्वांगीण विकास करने की तरकीबें ढूँढ़ी और आध्यात्मिक विकास में सर्वोच्च प्रगति करके मनुष्य ही नहीं, पशुपक्षी ही नहीं समस्त प्राणियों के साथ आत्मीयता और कौटुम्बिकता का संबंध बाँधा। मनुज जीवन के अंतिम ध्येय-परमपद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने का उपाय बुद्धि बल द्वारा ही तो मनुष्य ने खोजा है। एक से बढ़कर एक वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य की बुद्धि की ही उपज है। मनुष्य की बुद्धि ने जल, स्थल, और नभ पर अपना आधिपत्य जमाकर सारे संसार को चकित कर दिया है। मनुष्य की बुद्धि ने समुद्र की छाती चीर कर, पृथ्वी का पेट फाड़कर और आकाश के चंद्रमा सूर्य और तारों की दूरी नापकर समस्त रहस्य खोलकर रख दिए हैं। हवाई जहाज, रेडियो, टेलीफोन, टेली-विजन, टेलीप्रिंटर, मीटर, रेल आदि सब मनुष्य की बुद्धि के ही चमत्कार हैं। अणु-परमाणुओं की शोध भी मानव बुद्धि ने की है।

जिसके द्वारा बोध हो, उसे बुद्धि कहते हैं। ज्ञान तो अध्ययन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है किंतु बुद्धि महान अनुभवों के बीच उत्पन्न होती है। बुद्धि तो अज्ञान को नाश करने वाली है। प्रज्ञा कुशल बुद्धिवालों का अमोघ शस्त्र है। शास्त्रों का बोध बुद्धि से होता है, अबुद्धि से नहीं। दीपक सामने होने पर भी चक्षुहीन व्यक्ति देख नहीं सकता। बल की अपेक्षा बुद्धि बड़ी है। उसके अभाव में ही बलवान हाथी मनुष्य की सवारी बन रहा है। गुजराती कहावत है-‘अकल बिना नो आंध लो, पैसा बिना ना पांग लो’। जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है। निबुद्धि के पास बल कहाँ? चार प्रकार की बुद्धि कही गई हैं। (१) घट-जल के समान परिमित अर्थ को धारण करने वाली, (२) कूप जल के समान नए नए अर्थ को ग्रहण करने वाली (३) तालाब के पानीवत् बहुत अर्थ का लेन देन करने वाली (४) समुद्र जल के तुल्य

अथाह तत्त्व को धारण करने वाली। 'गीता' में तीन प्रकार की बुद्धि का उल्लेख मिलता है- सात्विकी, राजसी तथा तापसी। जो बुद्धि प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग को, कर्तव्य-अकर्तव्य को, भय-अभय को और बंध मोक्ष को तत्त्व से जानती है, वह सात्विकी बुद्धि है। जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म-अधर्म एवं कर्तव्य-अकर्तव्य को यथार्थ रूप से नहीं जानता, वह राजसी बुद्धि है। तमोगुण से आवृत जो बुद्धि अधर्म को धर्म मानती है और सब पदार्थों को विपरीत समझती है, वह तामसी बुद्धि है। लोक में कहा गया है कि पानी में तेल बिंदु के तरह फैलने वाली बुद्धि तेलिया है। मोती में किए गए छिद्रवत्, समानरूप से रहने वाली बुद्धि मोतिया है। कंबल आदि में किए गए छिद्र की तरह नष्ट हो जाने वाली बुद्धि नमदा है। सेवा बुद्धिवाला सफलता को मुख्यता देता है। कर्तव्य बुद्धिवाला जिम्मेदारी से पीछे नहीं हटता। उपकार बुद्धिवाला अहसान करना चाहता है। स्वार्थ बुद्धिवालों के लिये कहावत है- 'गंजेड़ी यार किसके, दम लगाया खिसके।'

एक बुद्धि तारक होता है और दूसरी होती है मारक। इन दोनों को दूसरे शब्दों में कहना चाहे तो एक को परमार्थ बुद्धि और दूसरी को स्वार्थबुद्धि कह सकते हैं। तारक बुद्धि दूसरों के हित और अपने हित को सोचती है, दूसरों का कल्याण, उपकार ही उसके द्वारा होता है। जहाँ तारक बुद्धि है वहाँ ठगी, धोखेबाजी, दंभ, छलप्रपंच, कपट, झूठ फरेब, अन्याय, अत्याचार, शोषण, बेईमानी आदि बुराइयां नहीं हो सकती और वहाँ सार्वत्रिक और सार्वकालिक हित और सुख की दृष्टि से ही सोचा जाता है। इसलिये उसे परमार्थ बुद्धि कहते हैं। मतलब यह है कि तारक बुद्धि दूसरों का अहित कभी नहीं सोच सकती। तारक बुद्धि वाला दूसरों को जिलाकर यानि अपना जीवन दूसरों के लिये बिताकर जीता है। उसका चिंतन सर्वस्व यही रहता है कि मैं कौन हूँ? कहां से आया हूँ? कैसे मनुष्य बन गया? मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? किसके साथ मेरा क्या संबंध है? मेरा क्या कर्तव्य क्या है, क्या दायित्व और क्या लक्ष्य है? दूसरों के साथ मैं अपने उस परमार्थ संबंध को रखूँ या छोड़ दूँ? इस प्रकार की तारक बुद्धि वाला अपनी बुद्धि को स्व.पर कल्याण में लगाएगा।

मारक बुद्धि स्व पर हिताहित की नहीं सोचती। उसके द्वारा दूसरों का कल्याण या उपकार नहीं होता। मारक बुद्धि वाला अपने तुच्छ और क्षणिक स्वार्थ की दृष्टि से सोचेगा। मारक बुद्धि के हथियार होते हैं - हिंसा, झूठ, चोरी, दम्भ, कपट, धोखा, अन्याय, अत्याचार, शोषण, बेईमानी और बदमाशी आदि। मारक बुद्धि वाला दूसरों को मारकर जीने की सोचता है। उसका चिंतन खासतौर से रोद्रध्यान का विषय होता है। दूरदर्शी या अपनी आत्मा से संबंधी चिंतन का नाश करने का सोचने के साथ-साथ अपना भी सर्वनाश कर बैठती है। पुराणों में एक कथा आती है - सुन्द और उपसुन्द नामक दो राक्षस सगे भाई थे। दोनों बलवान थे, खूब काम करने वाले। एक बार उन्होंने कोई अच्छा काम किया तो विष्णुजी ने उन्हें वरदान मांगने को कहा। उन्होंने परस्पर सलाह मशविरा करके अपनी राक्षसी बुद्धि के अनुसार यह वरदान मांगा कि हम जिसके सिर पर हाथ रख दें, वह भस्म हो जाये। विष्णुजी वचनबद्ध थे, अतः उन्होंने 'तथास्तु' कहकर उन दोनों राक्षसों को वरदान दे दिया। देवों और दानवों की परस्पर लड़ाई चलती ही रहती थी। अतः देवों को परास्त और नेस्तनाबूद करने के लिए उन्होंने द्वेषवश उन पर हाथ रखना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे देवों का सफाया होने लगा। देवों में घबराहट मची और उन्होंने विष्णुजी से जाकर प्रार्थना की। विष्णु ने सोचा-यह तो मैंने बंदरों के हाथ में तलवार देने जैसा काम कर दिया। अब क्या हो? सोचते-सोचते उन्हें इन दोनों भाइयों को हटाने के लिए एक उपाय सूझा। उन्होंने अपनी माया से

मोहिनी का रूप बनाया और हावभाव करती हुई वह उपसुन्द के पास पहुँची। उपसुन्द मोहिनी को देखते ही उस पर मोहित हो गया। परंतु सुन्द ने ज्यों ही मोहिनी को देखा वह भी उस पर आसक्त हो गया। दोनों भाइयों में मोहिनी को घाने के लिये तू-तू, मैं-मैं होने लगी। मोहिनी कभी सुन्द के सामने जा खड़ी होती, कभी उपसुन्द के सामने। अब तो दोनों भाइयों में लड़ाई छिड़ गई। जब दोनों ने देखा कि दोनों में से कोई भी नहीं मान रहा है, तब उन्होंने अपने वरदान का उपयोग करना ही ठीक समझा। बस सुन्द ने उपसुन्द के मस्तक पर और उपसुन्द ने सुन्द के मस्तक पर हाथ रखा कि दोनों ही एक साथ भस्म हो गए। मोहिनी ने अपनी माया समेट ली। अब देखा कि मारक बुद्धि वाला अपनी बुद्धि रूपी वरदान का उपयोग दूसरों के विनाश में करता है, तो दूसरा भी उसका नाश कर देता है या उसका अपना ही सर्वनाश स्वयमेव हो जाता है।

वैज्ञानिकों की मारक बुद्धि ने लाखों मनुष्यों का संहार करने के लिए अणुबम, हाईड्रोजन बम, नाईट्रोजन तथा अन्य भयंकर प्रक्षेपणास्त्र, टैंक, मशीनगन, रडार, रॉकेट, आदि बनाकर अपने विनाश को न्यूता दे दिया है। अमेरिका ने वैज्ञानिकों से अणुबम बनवाकर जापान के दो शहरों हीरोशिमा और नागासाकी पर बरसाए। लाखों मनुष्यों को मौत के घाट उतार दिया, लाखों प्राणियों का संहार किया और करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट कर दी। सारी ही बस्ती खैदान मैदान कर दी। जो मनुष्य बचे वे भी अंग विकल, बीमार और दुःखी होकर जिंदगी की सांस ले रहे हैं। यह था अमेरिका की मारक बुद्धि का उपयोग। इस प्रकार के भीषण नर संहार से क्या मिला? बुद्धि का दिवाला ही तो उसने निकाला। आत्मा के लिये तो अमेरिका के मांघाताओं ने विनाश के ही बीज बोए।

इन्हीं दोनों बुद्धियों को हम क्रमशः सुबुद्धि और कुबुद्धि कह सकते हैं। ये ही इस चेतन की दोनों पत्नियाँ हैं। सुबुद्धि धर्म की ओर ले जाती है और कुबुद्धि पाप की ओर। कुबुद्धि का हृदय काला होता है, कृष्ण लेश्यावाला और सुबुद्धि का हृदय स्वच्छ स्फटिक जैसा होता है, शुभ लेश्याओं वाला। कुबुद्धि ममता की जननी है और सुबुद्धि है समता की जननी। 'रामचरितमानस' में महात्मा तुलसी कहते हैं - 'जहाँ सुमति, तहाँ सम्पत्ति नाना। जहाँ कुमति, वहाँ विपत्ति निदाना।' जहाँ कुबुद्धि का राज्य है वहाँ बेचारी सुबुद्धि को कौन पूछता? कुबुद्धि पौद्रालिक धन बढ़ाती है लेकिन उसके बढ़ाये हुए धन में सर्वनाश का बीज छिपा रहता है। जबकि सुबुद्धि ज्ञान धन बढ़ाती है, जिसका कभी दीवाला नहीं निकलता, जो अक्षय रहता है। कुबुद्धि मनुष्य के दिल से दया, करुणा, सेवाभावना, स्वार्थ त्याग आदि को निकालकर उसे निर्दय, क्रूर, हत्यारा और स्वार्थी बना देती है, अन्यायी अत्याचारी भी बना देती है। निर्गुण संत कवि कबीर कह उठते हैं-

कबीर! कुबुद्धि संसार के घट-घट मांहि अड़ी।

किन-किन को समझाइए कुवै भांग पड़ी॥

संसार में कोई भी ऐसा पाप नहीं, जिसे कुबुद्धि नहीं करा बैठती है। वह पाँच इंद्रियों में विषम भाव लाती है। इसके फंदे में फंस कर मनुष्य सभी प्रकार के दुर्व्यसनों-चोरी, जाली, शराब, मांसाहार, वेश्यागमन, शिकार आदि तथा समस्त दुर्गुणों-लाभ, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध, छल दम्भ आदि को अपना लेता है कुबुद्धि के चक्कर में पड़कर आत्मा असंख्य जन्मों तक अनेक योनियों में भटकती फिरती है जहाँ उसे सद्बोध मिलना दुष्कर होता है। किसी कवि का मानना है -

काम, क्रोध, जल, आरसी, शिशु त्रिया, मद फाग।

होत सयाने बावरे, आठ बात चित्त लाग॥

अतः यह आत्मतत्त्व अर्थात् अपने चेतन देव को चाहिए कि कुबुद्धि के मोह में न पड़े और उसके पंजे से छुटकारा पाकर सुबुद्धि को अपनी सेवा में रखे जो उसे कल्याणमार्ग बताएगी। अपने स्वरूप का मान कराएगी, अनिष्टों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और भयंकर पापों से उसे बचाएगी, दुःखों से त्राण करेगी, धर्माचरण में लगाकर उसे मुक्ति की अधिकारी बनाएगी। पाँच इंद्रियों में समभाव लाकर सुबुद्धि मनुष्य को कर्मबंधन से बचा देगी। इसी सुबुद्धि की शरण में जाने के लिए और वैषयिक सुखरूपी फल की चकाचौंध में न फंसने के लिए गीता कहती है - 'बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवा।' अतः जो मनुष्य अच्छे खानपान भड़कीली पोशाक और मौज शौक में पड़कर अपनी इंद्रियों को व्यर्थ के कामों में लगाता है, अपनी सुबुद्धि रूपी स्त्री की सलाह नहीं लेता, उससे पूछता तक नहीं, वह धिक्कार का पात्र बनता है, वह यदि सदा रह जाय तो कौन बंधनों से मुक्त न हो। पश्चाताप के समय जैसी बुद्धि होती है, वह यदि पहले हो जाय तो हर एक को मोक्ष मिल जाए।

आग्रह न करना ही बुद्धि का फल है। असल में बुद्धि का फल है - तत्व का विचार करना और मनुष्य देह पाने का सार है - व्रतधारण करना। कहा हुआ तथ्य तो पशु भी ग्रहण कर लेते हैं। प्रेरणा के अनुसार घड़े-हाथी चलते ही हैं। बुद्धिमान व्यक्ति बिना कहे अर्थ जान लेता है। दूसरे के इंगित का ज्ञान कर लेना ही बुद्धि का फल है। जो बार-बार पूछता है, सुनता है और दिन रात याद करता रहता है। सूर्य-किरणों के कमलिनीवत उसकी बुद्धि बढ़ती है। सुनने की इच्छा करना, सुनना, सुनकर तत्व को ग्रहण करना, ग्रहण किए हुए तत्व को हृदय में धारण करना, फिर उस पर विचार करना अर्थात् उसे तर्क की कसौटी पर कसना, विचार करने के पश्चात उसका सम्यक् प्रकार से निश्चय करना, निश्चय द्वारा वस्तु को समझना, अंत में उस वस्तु के तत्व की जानकारी करना - ये आठ बुद्धि के गुण हैं।

आज अधिकांश लोग बुद्धि का फल मानते हैं - चालाकी, ठगी, बेईमानी, रिश्ततखोरी, झूठफरेब, शोषण, अन्याय, अनीति आदि के द्वारा धन बटोरना, इज्जत पाने के लिए तिकड़मबाजी करना और दुनियादारी के काम करके कुछ लोगों को अपनी और खींच लेना। एक राजनीतिज्ञ अपनी बुद्धि का फल चाहता है - किसी प्रकार से देश में तोड़फोड़, दंगे, उपद्रव, जानमाल की हानि तथा दूसरे पक्षों, खासकर सत्तासीन पक्ष की अतिशय निंदा करके येन केन प्रकारेण चुनाव में जीतना और सत्ता प्राप्त करना। एक वैज्ञानिक अपनी बुद्धि का फल नरसंहारक अस्त्र शस्त्रों का निर्माण करके पैसा और प्रतिष्ठा प्राप्त करने में मानता है। एक इंजीनियर खराब से खराब वस्तुएं या कम वस्तुएं बाँध, सड़क, मकानात आदि में लगाकर, बीच में लाखों करोड़ों रुपये खाकर अपना घर बनाने में ही बुद्धि का फल मानता है। एक वकील वादी और प्रतिवादी दोनों को लड़ाकर या झूठा मुकदमा लेकर अपने मवक्किल से किसी न किसी प्रकार से पैसा खींचना ही अपनी बुद्धि का फल मानता है। एक डॉक्टर रोगी का रोग ठीक करने के बजाय, उसे अधिक दिन रुग्णशय्या में रखकर, भारी बहम में डालकर, रोग को बढ़ाकर या बढ़ा चढ़ा कर कहकर, नकली दवाइयाँ या इंजेक्शन देकर अधिक से अधिक पैसा बनाना ही बुद्धि का फल समझता है। एक अध्यापक या प्राध्यापक विद्यार्थी को अच्छी तरह न पढ़ाकर, उसके यहाँ टयुशन करके, रिश्तत लेकर पास करा देने, कम से कम विद्या देकर विद्यार्थी को ढीठ रखने में ही बुद्धि का फल मानता है। एक व्यापारी चोर

बाजारी, तस्कर व्यापार, मिलावट, नापतौल में कमी, आय-विक्रय कर चोरी, बेईमानी, धोखेबाजी आदि को करके शीघ्र ही लखपति करोड़पति बन जाना बुद्धि का फल समझता है। आशय यही है कि अधिकांश जनता, फिर वह चाहे किसी भी वर्ग की हो, किसी भी प्रकार से हमारे पास धन आ जाए की बुद्धि से प्रेरित होकर बुद्धि का फल केवल धनोपार्जन करना मानती हैं। लेकिन बुद्धि का वास्तविक फल वस्तु तत्व का सही निर्णय करना है। यानी तत्व निर्णय करने ज्ञानार्जन करना और उसे परमार्थ में लगाना ही बुद्धि का फल है। बुद्धि का फल हिताहित कर तत्व का विचार करना है। प्रत्येक कार्य, प्रत्येक प्रवृत्ति और प्रत्येक व्यवहार में कल्याणकारी और अकल्याणकारी तत्वों का विचार करके कल्याणकारी तत्वों पर स्थिर हो जाना ही वास्तव में बुद्धि का फल है।

मंगलकलश

३१४, सर्वोदय नगर,

आगरा रोड, अलीगढ़-२०२००१ (उ.प्र.)

मन को समाधि में स्थिर करने से एकाग्रता आती है और एकाग्रता आने पर सच्ची शांति और सुख का अनुभव होता है। जिस प्रकार मनुष्यों को निद्रा लेना अनिवार्य है, रात्रि में अथवा दिन में वह निद्रा लेकर अपने शरीर को स्वस्थ रखता है। एक रात्री को अगर अनिद्रा की अवस्था में गुजारी जाती है तो सारा शरीर बेचैनी का अनुभव करता है और जब पुनः वह निद्रा ले लेता है तभी हलकापन तथा शांति महसूस करता है और इसी प्रकार कुछ काम समाधिपूर्वक व्यतीत करने पर मन शांत होता है और वह एकाग्रता का अनुभव करता है समाधि का बार-बार अभ्यास करने पर मन को एकाग्र रहने की आदत पड़ जाती है और उनकी चंचलता खतम हो जाती है। इसे ही मन पर विजय पाना कहते हैं।

• युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

जैन धर्म में तप का स्वरूप

• घोरतपस्वी मुनि अमृतचंद्र 'प्रभाकर'

अनादिकालिक कर्मों से आवद्ध आत्मा मलिन हो जाता है। अतः ज्ञानी पुरुषों ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार अनेक संशुद्धि के उपाय प्रस्तुत किये हैं। जैन धर्म में 'तप' को आत्मशुद्धि का महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। जैसे-सुवर्ण अग्नि में तप कर, विशुद्ध होकर अत्यधिक चमक प्राप्त करता है वैसे ही तप रूपी अग्नि से परिष्कृत होकर मानव का व्यक्तित्व निखरता है, आत्मा का सौंदर्य झलकता है। 'तप' वह प्रक्रिया है, जिससे मानव स्वरूप को पाने के लिये अग्रसर होता है तथा उसे सहज रूप में प्राप्त भी कर लेता है।

जैन धर्म में तप का विश्लेषण अतीव विशद रूप में हुआ है जिसका संक्षिप्त स्वरूप इस लघुनिबंध के माध्यम से प्रस्तुत करने का मेरा प्रयास है-।

तप की व्याख्यायें

'तप' शब्द तप् तपने धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है-तपाना। तपना। 'तप' शब्द की व्याख्यायें अनेक आचार्यों ने की हैं। जैनागमों के प्रसिद्ध चूर्णिकार जिनदास गणीमहत्तर ने तप की व्युत्पत्तिजन्य परिभाषा करते हुए कहा है-।

तप्यते अणेण पावं कम्मिमिति तवो?^१

अर्थात् जिस साधना से दुष्कृत कर्मों का क्षय होता है- उसे तप कहते हैं।

आचार्य अभयदेवसूरि ने 'तप' का निरुक्तिलक्ष्य अर्थ प्रस्तुत किया है-।

रसरुधिमांस में दोऽस्थि गज्जाशुक्राण्यनेन तप्यते कर्माणि वाडशुभानि इत्यतस्तपो नाम निरुक्तः।^२

जिस साधना से शरीर के रस, रक्त, मांस हड्डियाँ, मज्जा शुक्र आदि तप जाते हैं, सूखे जाते हैं, वह तप है तथा जिसके द्वारा अशुभ कर्म जल जाते हैं, वह 'तप' कहलाता है।

आचार्य मलय गिरि ने कहा है-।

तापयति अष्टप्रकार कर्म - इति तपः।^३

१. निशीथ चर्णि ४६
२. स्थानांग वृत्ति - ५
३. आवश्यक मलयगिरी, खण्ड - २ अध्ययन - १

अर्थात् जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता है, उन्हें क्षीण करता है - उसे तप कहते हैं।
उमास्वाति ने कहा है-

इच्छा निरोधस्तपः

इच्छाओं पर नियंत्रण करना तप है।

इस प्रकार तप की निरुक्तियों एवं परिभाषाओं के परिशीलन से ज्ञात होता है कि 'तप' वह साधना है जिसके द्वारा मनुष्य इंद्रिय तथा मन को नियंत्रित करके, विषयों की तरफ से पराङ्मुख करके, अंतर्मुखी बना देता है जिससे आत्म दर्शन सुलभ हो जाता है।

तप का महत्व

श्रमण संस्कृति तप प्रधान संस्कृति है। श्रमणशब्द की व्युत्पत्ति भी तप परक है-

श्राम्यति तपसा खिद्यति इति कृत्वा श्रमणों वाच्यः।

अर्थात् जो श्रम करता है। तपस्या करता है वही 'श्रमण' कहलाता है।

उत्तराध्ययन में तप के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है-

तवो जोई जीवो जोइठाणं,
जोगा सुया सरीरं करिसंगं।
कम्मोहा संयमजोग संती
होगं हुषामि इसिण पसत्थं॥

अर्थात् तप ज्योति है, अग्नि है। जीव ज्योति स्थानिक है। मन, वचन, काया के योग-सुवा-आहुति देने की कड़खी है, शरीर कारीषांग = अग्निप्रज्वलित करने का साधन है, कर्म जलाये जाने वाला ईंधन है, संयम योग शक्ति पाठ है। मैं इस प्रकार का यज्ञ करता हूँ, जिसे ऋषियों ने श्रेष्ठ बताया है।

आचारा ङ्ग में तप को कर्ममूल शोधक बताते हुए कहा गया है।

जहू खलु मइलं वत्थं सुज्झए उदगाइएहि दव्वेहि।
एवं भावुवहाणेणं सुज्झए कम्मद्वविहं॥

जिस प्रकार जल आदि शोधक द्रव्यों से मलिन वस्त्र भी शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक तप साधना द्वारा आत्मा ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्म मल से मुक्त हो जाता है।

तप का वर्गीकरण

जीवन को सुविकसित एवं परिपूर्ण बनाने के लिये तप की महती आवश्यकता है। तप में वह असीम शक्ति है जिससे जीवन-जीवन बनता है। तप के अनेक भेद हो सकते हैं किंतु सूक्ष्म रूप से दो प्रकार में विभाजित किया गया है।

सो तवो दुविले वुतो बहिरब्भंतरो तहा।^५

तप दो प्रकार के होते हैं।

१. बाह्य तप २. आभ्यंतर तप

बाह्य तप

जिस तपः साधना का सम्बन्ध शरीर से अधिक प्रतीत होता है उसे बाह्य तप कहते हैं। जैसे - उपवास, प्रत्याख्यान आदि। बाह्य तप ६ प्रकार का है- १. अनशन, २. ऊनोदरी, ३. भिक्षाचरी, ४. रसपरित्याग, ५. कायक्लेश, ६. संलीनता।

आभ्यंतर तपः-

आभ्यंतर तप का सीधा संबंध आत्मा से होता है। इसके भी ६ भेद स्वीकार किये गये हैं। १. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान, ६. कायोत्सर्ग।

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि बाह्य तप गौण है परंतु यह नितांत भ्रांत धारणा है, निर्मूल विचारणा है क्योंकि बाह्य तप की दृढ़ता न होने पर आभ्यंतर तप सहज संभाव्य नहीं है और हाँ यह भी सत्य है कि आभ्यंतर तप के अभाव में बाह्य तप की व्यर्थता स्पष्ट है।

जैन धर्म में तप का महत्व

• श्री चाँदमल नाबेल

धर्मः मंगल मुत्कृष्टं, अहिंसा संयम तपः।
देवा अपि तं नमस्यन्ति, यस्य धर्मे सदा मनः॥

श्रमण सुत।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा संयम और तप उसके लक्षण है जो इस धर्म में लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। भगवान महावीर की वाणी को भी आचार्य शंयम्भव ने इन्हीं शब्दों में सूत्र दशवैकालिक में संकलित की है। अर्थात् तप का उसी प्रकार महत्व है जितना अहिंसा एवं संयम का।

“तवसा धुणइ पुराण पावगं” दशवैकालिक

तपस्या द्वारा प्राचीन पाप नष्ट किये जाते हैं। यदि तप का आचरण नहीं हो और यथेच्छ खानपानादि एवं शब्दापि विषय चलते रहे तो संयम भी सुरक्षित नहीं रह सकता। संयम की सुरक्षा एवं वृद्धि के लिये तप रूपी कवच प्रबल साधन है। यह तप आत्मशुद्धि का प्रबल साधन है। इसके द्वारा आत्मा प्रपंच पंक से बाहर होकर सर्वथा शुद्ध और निर्मल हो जाता है।

आज विश्व में दो प्रकार के विचार धारा प्रचलित हैं। एक आध्यात्मिक और दूसरी भौतिक एक अंतर्मुखी और दूसरी बहुमुखी एक इहलौकिक तो दूसरी पारलौकिक, एक देहपोषक तो दूसरी आत्मपोषक भौतिक विचार धाराओं की मान्यता eat drink & be marry खाओं पीओं और मीज करो।

यावत् जिवेत् सुखम् जीवेत् ऋणम् कृत्वाधृतं पिवेत।

भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः (“चार्वाक”)।

चार्वाक विचारधारा केवल इस भौतिक शरीर को सुरक्षा, आभिवृद्धि पर ही ध्यान देती है केवल इसी जन्म को स्वीकार करती है किंतु जैन दर्शन में तप को अधिक महत्व दिया है। संवर से मुख्यतः आश्रव की रोक होती है किंतु पुराने कर्मों की निर्जरा नहीं। आत्मा के साथ पूर्व में बंधे हुए कर्मों को तोड़कर अलग करने का उपाय तो मुख्यतः तप ही है।

जहा महातलागस्स, संतिसूदे जलागमे।

उस्सिचणाए तवणाए, कमेणं सोसण भवे।

एवं तु संजयस्सवि, पावकम्मनिरा सवे।

भव कोडि संचिय कम्मं तवसा णिज्जारेज्जई॥

• उत्तराध्ययन सूत्र

जिस प्रकार बड़े भारी तालाब को खाली करने के लिये पहले उसके पानी के द्वारों को बंद करके बाहर से आने वाले पानी को रोकने की आवश्यकता रहती है। उसके बाद तालाब में पहले भरे हुए पानी की निकालने की प्रक्रिया होती है। जिसमें सिंचाई से एवं सूर्यादि के ताप से क्रमशः सूख जाता है। इसी प्रकार संयमी पुरुष पहले संवर द्वारा नये कर्मों की आवक को रोक देता है। और बाद में अपनी आत्मा में करोड़ों भवों के संग्रह किये हुए कर्मों को तपस्या के द्वारा क्षय कर देते हैं।

तपस्या का प्रतिफल बताते हुए इस प्रकार कहा है।
तवेणं भंते। जीवे किं जणयइ? तवेणं वोदाणं जणयइ।

• उतराध्ययन

प्रश्न - हे भगवान! तप से किस फल की प्राप्ति होती है?

उत्तर - तप से व्ययदान = पूर्व के बंधे कर्मों की निर्जरा होती है।

तप का आचरण पूर्व के सभी महापुरुषों ने किया है। भगवान ऋषभ देव के समय एक वर्ष तक तप किया जाता था। मध्य तीर्थंकरों के समय आठ माह तक भगवान महावीर के समय ६ महिने तक का तप किया जाता था। स्वयं भगवान ने भी ६ मास का तप किया था। वास्तवमें तप से आत्मा शुद्ध और पवित्र होती है।

सदोषमपि दीप्तेन, सुवर्णं वाहिनी यथा।
तपोऽग्निता तप मनस्तथा, जीवो विशुध्यति॥

• आचार्य हेमचंद्र

जैसे मिट्टी से लिप्त सोना अग्नि में तप कर शुद्ध बन जाता है। इसी प्रकार तप रूपी अग्नि में तप कर आत्मा विशुद्ध हो जाता है। क्योंकि आत्मा अनंत काल से क्रोधादि कषाय एवं काम विकारों से अशुद्ध है। यह अशुद्धता वैभाविक है। अतः स्वाभाविक स्थिति में लाने हेतु तप को प्रमुख माना है।

चरितेण निगिण्हाई तवेण सुज्झई

• उतराध्ययन सूत्र

चरित्र में आने वाले कर्मों को रोका जाता है। किंतु तप से विगत जन्मों के एकत्र पाप को क्षय किया जाता है जिस प्रकार तप रूपी धर्म, एक ओर संयम की रक्षा करता है तो दूसरी ओर आत्मा की सफाई करता हुआ निर्मल बनाता है। अन्तर्मन की शुद्धि तप से ही होती है।

इच्छा निरोध स्तपः

तप से विषय वासनाओं का निरोध होता है अतः तप का काम भौतिक इच्छाओं का निरोध करना

(२३८)

है। भगवान महावीर ने वासना जन्य विकार को नष्ट करने के लिये तप रूप महाऔषधि सेवन करने का विधान किया है।

उव्वाहिज्जामाणे गामधम्मोहि अवि णिव्वत्तासए अवे
ओमोयरियं कुज्जा अवि उडुं ठाणं ठाइज्जा आवे गामाणुगामं
दुइज्जिज्जा अवि आहारं वुच्छिदिज्जा अविचयइत्थिसुमणं

• आचारांग

साधु इंद्रियों के विषयों से विकार ग्रस्त बन रहा हो तो उस विकार को नष्ट करने के लिये रूखा सूखा और सत्वरहित वस्तु का आहार करे या अहार कम करे अथवा कायोत्सर्ग करे, शीत ताप की आतापना ले, ग्रामानुग्राम विहार करे, यदि इससे विकार भी नहीं मिटे तो आहार का सर्वथा त्याग कर दे किंतु स्त्रियों की ओर मन को नहीं जान दे।

तप की परिभाषाओं से तप का महत्व स्वतः ही प्रकट हो जाता है।

तप्यते अवेण पावं कम्ममिति तपो

• निशीथचूर्णिभास्य

जिस साधना से पाप कर्म तप्त हो जाता है वह तप है।

तप्यते कर्माणि अनेन इतितपः

जिसके द्वारा कर्म तपाये जाय वही तप है।

तवोणाम तावयति अट्ठविह कम्मगट्ठि नासे तिति वुत्तभवई जो आठ प्रकार की कर्म ग्रंथी को तपाता है अर्थात् आठो कर्मों को नष्ट करता है, भस्म सात करता है वह तप है।

तप एक दिव्य ज्योति है जो कि हृदय में प्रकाश ला देता है। तप वही है जिसके द्वारा तन मुझाए किन्तुमन हर्षये

सोनाम अणसण तवों, जेण मणों म्गुलं न चित्तेई

जेण इंद्रियहाणी, जेण य जोगा न हायंति

वही तप श्रेष्ठ है जिससे मन अमंगल न सोचे इंद्रियों को हानिन हो, नित्य प्रति के योग धर्म क्रियाओं में विघ्न न आये। तप से प्रसन्नता बनी रहे। तप जो भी किया जाए वह विशुद्ध भावों से मात्र कर्म निर्जरा के लिये ही करना चाहिये। इसके लिये किसी प्रकार की दूसरी भावना नहीं होनी चाहिये अन्यथा तप शस्त्र बन कर अपने आपके लिये घातक बन जाता है। चण्डकौशिक सर्प पहले एक तपस्वी संत ही था। बह्मदत्त चक्रवर्ती ने पूर्व भव में तप का दुरुपयोग किया और सातवीं नरक में गया। जितने भी वासुदेव होते हैं वे सब नरक में जाते हैं। इसका मूल कारण तप का दुरुपयोग है। तप रूपी महारसायन संयम और क्षमारूपी पथ्य सेवन से ही आत्मा को पुष्ट कर के अंनत सुख प्रदान करने वाली होती है।

यदि कषाय अथवाय क्षाणिक रूपी कुपथ्य का सेवन किया तो यही रसायन क्षाणिक इच्छा पूरी कर के महान दुःखदायक बन जाती है।

तप का ढोंग बड़ा खतरनाक होता है आगमकार उसे तप चोर कहते हैं।

तवतेणे वयतेणे रुवतेणे य जेनेरे। अयार भावतेणे

य, कुव्वई देवकिव्विसं

• दशवै कालिक

जो साधु तपचोर, व्रतचोर, वचनचोर, रूपचोर और आचार भाव का चोर होता है वह नीच जाति के देवों में उत्पन्न होता है। तथा वहां से चलकर भेड बकरा होता है इसके बाद नरक गति प्राप्त कर दुखी होता है। तप चोर के विषय में और भी बताया है।

अतवस्सी य जे के इ तवेण पविकत्थइ।

सव्वलोए वरे तेणे महा मोहं पकुव्वइ

• दशाश्रुतस्कन्ध

जो तपस्वी नहीं होता हुआ भी अपने आप को तपस्वी के रूप में उपस्थित कर सम्मान प्राप्त करता है वह महा मोहनीय कर्म का बंध करता है।

तप एक प्रकार की दया है। सुख दुःख का अनुभव आत्मा करती है, शरीर नहीं, शरीर अधिष्ठाता आत्मा है। आत्मा सर्दी गर्मी भूख प्यास सहने करने में प्रसन्नता अनुभव करता है उस प्रसन्नता को बढ़ाना तप है। क्रोध, लोभ मोह, स्वार्थ वश शारीरिक कष्ट सहा जाता है बिना ज्ञान के खुद कष्ट में पहुँचता है, दूसरो को कष्ट देना तप के नाम पर ताप है। इसके विपरीत स्वार्थ से दूर होकर ज्ञान भाव को जगाकर वृत्तियों को वश में करना शरीर का कष्ट सहन करते हुए मन में उल्लास भाव रखना विषय कषाय वृत्तियों को ढीली पटकना ताप है। तप के बाद उदासीन न होकर उमंग हर्ष की लहर आनी चाहिये तप का लक्ष्य कर्म बंधन काटना है।

तपस्या जो भी की जाय वह विशुद्ध भावों से, मात्र कर्म निर्जरा के लिये ही करनी चाहिये। इसके लिये किसी भी प्रकार की दूसरी भावना नहीं होनी चाहिये। तप समाधि है, यह समाधि चार प्रकार की होती है।

नो इह लोगद्धयाए तव महिठिज्जा

नो पर लोगद्धयाए तव महिठिज्जा

नो कितिवण्णछसिसे लोगगट्ठयाए तव महिठिज्जा

नन्नत्थ णिज्जरट्ठयाए तव महिठिज्जा

• दशवैकालिक

इस लोक संबंधी सुखों की कामना से तपस्या नहीं करें, परलोक में प्रचुर वैभव और उतमोत्तम भौतिक सुखों की चाहना रखकर तप नहीं करें, अपनी प्रशंसा हो इस भावना से, कीर्ति की लालसा से, जनता में यशोगान करवाने और धन्यधान्य कहलाने के लिये तप नहीं करें, किंतु केवल एक मात्र अपने कर्मों को निर्जरा लिये तपस्या ही करें।

और भी इस प्रकार बताया गया है:-

विविहगुणतवोरए णिज्जं, भवइ निरासएणिज्जरट्टिए अर्यात् मोक्षार्थी को मन में इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की आशा नहीं करते सदैव तप समाधि में संलग्न रहे और विविध गुणों से युक्त तप में निरंतर लगा रहे जिस प्रकार उत्तम फल की प्राप्ति के लिये भूमि भी उत्तम होनी चाहिये उत्तम भूमि में ही उत्तम फल का बीज अंकुरित होता है और फलता फूलता है उसी प्रकार तप के यथार्थ फल के लिये मनरूपी क्षेत्र विशुद्ध करना चाहिये। तभी कर्मों का क्षय होकर मोक्ष फल की प्राप्ति होती है। अर्जुन माली एवं धन्नाअनगार की तरह तप करने से मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है।

जस्सवि अदुप्पाणि हि आहोतिकपायातवं चरंतस्स
सोबाल तवस्सीवि वगयणहाण परिस्समं कुणई

• आचार्य भद्रबाहु

जिस तपस्वी ने कषायों को निगूहित नहीं किया वह बाल (अज्ञानी) तपस्वी है उस तपस्वी का कार्यक्रम हाथी के स्नान की तरह निरर्थक है। जैन दर्शन अज्ञान तप को स्वीकार नहीं करता है।

“नहु बाल तवेण मुक्खुति”

• भद्रबाहु

बाल तप से कभी मुक्ति नहीं मिलती है। बाल तप से कर्मों की निर्जरा नहीं होती है।

जं अनाणी कम्मं खवेई, बहुयाहिं वाताकोडिहि
तंणाणि तिहिं गुतो, खवेई उसास मितेणं

हजारों वर्षों तक तप करने पर भी अज्ञानी जितने कर्मों को क्षय नहीं कर पाता उतने कर्मों को एक ज्ञानी कुछ ही समय में नष्ट कर देता है। अतः तप करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

निदोष निर्विदानाढयं तंमिर्जरा प्रयोजनम्
चितोत्साहेन् सद बुद्धया तपनीयंतः शुभम्

निदोष कामना रहित केवल निर्जरा के लिये सद्बुद्धि के साथ दिल के उत्साह से तप करना शुभ एवं प्रशस्त तप माना गया है।

तप के साथ अपनी पवित्र भावना भी बननी चाहिये तभी कल्याण हो सकता है अन्यथा केवल भूखे मरना ऋषियों ने अपनी वाणी में इस प्रकार बताया है।

“कषायां विषयांहाराणां, त्यागो यत्र विधिपते

उपवासः सविज्ञेयः शेष लंघनकं विंदुः”

कषाय, विषय, आहार त्याग हो उसे तप समझना चाहिए अन्यथा केवल लंघन मात्र है अतः जीवन में जागरूकता की आवश्यकता है तथा इसी से जीवन की कठिनाइयों को पार किया जा सकता है।

“यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गमं पञ्च दुष्करम्

सर्वं तु तपता साध्यं तपो हि दुरुतिं क्रयम्॥

जो दुर्गम और दुष्कर, जिसे प्राप्त करना कठिन है वह भी तप के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। निश्चित तप के प्रभाव से सब कठिनाइयों को पार किया जा सकता है। द्वारिका का विनष्ट तप के खंडित होने से हुआ था - रात्रि भोजन छोड़ने पर आधे दिनों का तप हो जाता है जैसे एक माह तक रात्री भोजन त्याग से १५ दिन की तपस्या हो जाया करती है। तप निष्कपट भाव से होना चाहिये अन्यथा मल्लीनाथ की तरह स्थिति बन जाती है क्योंकि उन्होंने कपट व्यवहार से तप किया था अतः निष्कपट भाव से तप ही सही कर्मों की निर्जरा में सहायक हो जाता है।

तप करने से तो कर्मों की निर्जरा होती है किंतु तप की अनुमोदना से भी अच्छा प्रतिफल मिल जाता है।

जहा तवस्ती घृणतेतवेण कंमं तहाजाण तवोऽणुमंता

• बृहदकल्पभाष्य

जिस प्रकार तपस्वी तप के द्वारा कर्म को घुन डालता है वैसे ही तप का अनुमोदन करने वाला भी निर्जरा कर सकता है।

जिस प्रकार हंस दूध और पानी को अलग अलग करता है उसी प्रकार तप आत्मा और कर्म के आवरण को अलग अलग कर देता है।

जैन धर्म में तप के अनेक भेद बताये गये जैसे उर्वई सूत्र में कुल ३५४ भेद है किंतु मोटे रूप से भेद इस प्रकार है।

सोतवो दूविहो वुतो बाहिरब्भंतरोतहा

बाहिरो छःव्वि हो वुता एवमव्यितरो तवो

इस प्रकार भगवान महावीर ने तप से मुख्य दो भेद किया है (१) बाह्य तप (२) आभ्यंतर तप बाह्य तप के ६ भेद इस प्रकार है।

(१) अनशन :- अन्न, पान, खाद्य स्वाद्य का थोड़े समय तक त्याग करना या जीवन पर्यंत त्याग करना।

(२) ऊनोदरी :- वस्त्र, पात्र कम रखना भिक्षा कम लेना अल्प क्रोध मान माया लोभ करना अहारादि सामग्री में कमी करना, आदि सब ऊनोदरी तप है।

(३) भिक्षाचरी :- अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण कर भिक्षा लेना, इससे आहार प्राप्ति में कठिनाई होनी है भूख प्यास परिश्रम की परवाह नहीं करके भिक्षाचरी करने वाले निर्ग्रन्थ हैं कोटि के होते हैं।

(४) रस परित्याग :- खाते पीते हुए भी रस लोलुपता का त्याग करना शिष्यों का त्याग करना।

(५) काया क्लेश :- एक ही स्थान पर स्थिर होकर ८४ प्रकार के आसन साधु की १२ पडिमा आतापना वस्त्र रहित, कठोर वचन सहना, गाली मार प्रहार सहना, लोच करना नंगे पैर चलना आदि।

(६) प्रति संलीनता :- इंद्रियों को वश में रखना अनुकूल प्रतिकूल शब्दादि पर राग द्वेष न करना।

बाह्य तप की तरह आभ्यंतर तप के भी छः भेद हैं।

(१) प्रायश्चित्त :- चरित्र में लगे हुए दोषों को दूर करने के लिये जो शुद्धि की जाती है इस शुद्धि करने लिये प्रायश्चित्त लिया जाता है।

(२) विनय :- जिस के द्वारा आत्मा के कर्म रूपी मैल को हटाया जा सके उसे विनय कहते हैं। यह गुण और गुणों के पात्र की भक्ति, आदर एवं बहुमान करने से होता है।

(३) वैयावृत्य :- गुरु तपस्वी, वृद्ध आदि साधु की आहार पानी, आदि से सेवा करना और संयम पालन में सहायता देना वैयावृत्य तप है।

(४) स्वाध्याय :- भावपूर्वक, अस्वाध्याय के कारणों को टालकर आगमों का स्वाध्याय करना, अध्ययन करना स्वाध्याय नाम का तप है।

(५) ध्यान :- किसी एक वस्तु अथवा विषय पर चित्त को लगा देना-एकाग्र कर देना ध्यान कहलाता है।

(६) व्युत्सर्ग :- अंतकरण से ममत्व रहित होकर, आत्म सांनिध्य से पर वस्तु का त्याग करना व्युत्सर्ग का तप है।

सी. ४६ डॉ. राधाकृष्णन् नगर

भीलवाड़ा (राज.)

३११००१

* * * * *

(२४३)

जैन मत में पुनर्जन्म

• श्री प्रह्लाद नारायण वाजपेयी

जैन धर्म आचार प्रधान धर्म है। इसमें सदाचार और अहिंसा को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। जैन धर्म में साधारण से साधारण पाप कर्म को महान अपराध का कारण माना जाता है और उसके निवारण के लिये जीवात्मा के अनेक योनियों में जन्म लेने की बात कही गई है।

पुष्पदंत के “जसहर चरित्र” में महाराज जसहर (यशोधर) की माता चंद्रमती द्वारा आटे के कुक्कट की बलि देने के कारण भाव हिंसा का अपराध हुआ जिसके फलस्वरूप उन दोनों के मयूर, नेवला, कुत्ता, मत्स्य, बकरी, भैंसा, कुक्कट आदि अनेक योनियों में जन्म लेकर नाना प्रकार के कष्ट भोगने का वर्णन मिलता है।

इसी प्रकार जैन मत में कर्म विपाक ही पुनर्जन्म का एकमात्र कारण माना गया है। कर्म सिद्धांत के प्रश्न पर सभी भारतीय दर्शन एक मत प्रतीत होते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के फलों के अनुरूप ही शरीर की उत्पत्ति होती है। पूर्वकृत फलानुबंधात् तदुत्पत्तिः।

इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है कि प्रारब्ध कर्मानुसार ही शरीर की उत्पत्ति और उसके साथ आत्मा का संयोग होता है- शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्ति निमित्तं कर्म।

न्याय दर्शन के उक्त कथन जैन कथन की कर्म संबंधी मान्यता के बहुत निकट हैं। जैन मतानुसार जीव इस संसार में कर्म से प्रेरित होकर भ्रमण करता है। पुष्पदंत के अनुसार ब्रह्मा विष्णु तथा महेश भी कर्म से लिप्त रहते हैं। संसार में कर्म विपाक अति बलवान है। जिस प्रकार चुंबक लोहे को अपनी ओर खींचता है उसी प्रकार कर्म भी जीव को अनेक पर्यायों की ओर खींच लेता है-।

संभुवि बंधुवि कम्मायतउ
कम्मविवाउ लोइ बलवंतउ।
लोहु व कट्टुएण कट्टिज्जइ

जीव सकम्मि चउगइ णिज्जइ॥ (जसहर चरित्र ३/२२/११-१२)

जैन मत कर्म को पुनर्जन्म तथा तज्जन्य नाना प्रकार के दुःखों का मूल मानते हुए सांसारिक विषयादि अशुभ कर्मों के पृथक् रहने तथा अपने आत्म स्वरूप को पहचानने की आवश्यकता प्रतिपादित करता है। आचार्य कुंदकुंद के अनुसार जीव जब तक विषयों में फंसा रहता है तब तक आत्मा को नहीं जान पाता। विषयों से विरक्त रहने पर ही वह आत्मा को पहचान सकता है। यथा:-।

ताम ण णज्जई अप्पा
विसएसु णरो पवट्ठए जाम।
विसए विरत्तचित्रों,
जोई जाणेइ अप्पाणं॥

जैन मत में कर्म को विजातीय तत्व माना गया है। यह शुद्ध आत्मा से अलग है। इसीलिये शुद्ध आत्मा के लिये कर्म का आकर्षण नहीं होता। जिस आत्मा के साथ इसका सम्पर्क है, वही आत्मा कर्म का आकर्षण करता है। कर्म ग्रहण के तीन केंद्र हैं। -मन, वाणी और शरीर। इन तीनों की जो शुभात्मक अवस्था है, वह शुभ कर्म को ग्रहण करती है। कर्म दोनों ही हेय हैं। शुभ और अशुभ दोनों ही के द्वारा संसार होता है। आत्मा का दोनों से अलग होना ही निर्वाण है, मोक्ष है।

अज्ञान की गाँठ खुलने का नाम मोक्ष है। लिंग और शरीर वियोजित अवस्था मोक्ष है। मुक्तात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता। पुराणों और गीता में कहा भी गया है पुनर्जन्म ने विधये। मुक्ति के अभाव में पुनर्जन्म का प्रभाव रुकता नहीं है। उसे रोकना है तो कर्म प्रवाह को रोकना है।

कर्म प्रवाह को रोकने की प्रक्रिया है-अशुभ का निरोध और सत् में प्रवर्तन। अशुभ निरोध के पश्चात् शुभ के निरोध का अभ्यास करना। स्वाध्याय और ध्यान शुभ कर्म के संवरण के साधन हैं। इन दोनों के होते हुए पुनर्जन्म को रोक नहीं जा सकता। वह होता है और होता रहेगा।

आकार परिवर्तन ही पुनर्जन्म है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिन्हें अपने पूर्व जन्म की स्मृति बनी रहती है। उनके रोचक संस्मरण हमें प्रायः पढ़ने व सुनने को मिलते हैं। जैन आगम साहित्य में पूर्व जन्म की स्मृति को जाति स्मृति कहा गया है और इस तरह के अनेक व्यक्तियों का उल्लेख है, जिन्हें पूर्व जन्म की स्मृति थी। आज तो इस संबंध में सभी जगह वैज्ञानिक दृष्टि से खोज की जा रही है।

सत्य यह है कि जन्म जन्मांतर का क्रम सृष्टि के आदिकाल से चलता आया है। वर्तमान जन्म पूर्व जन्म से असंबद्ध नहीं है, नहीं रह सकता। आत्मा की अजरता, अमरता और शाश्वतता का मत पूर्व जन्म की धारणा का सशक्त आधार है। गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा- तू, मैं और ये राजा आदि पहले भी थे, आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे, प्राण वियोजन से आत्मा का विनाश नहीं होता। विद्वान व्यक्ति नश्वर प्राणों की चिंता नहीं करते।

प्राचीन मिस्र के इतिहासवेत्ता होरोडोटस के अनुसार मिस्री प्रथम जाति है, जिसने इस सिद्धांत को निकाला है कि आत्मा अजन्मा है। यूनानी दार्शनिक बाजल के शब्दों में- पहले आत्मा यमलोक में जाता है, वहां पर उसका न्याय होता है उसके पश्चात् वह पुनः लोट आता है।

अफलातून ने कहा था-पशु से उन्नति करते करते मनुष्य योनि मिलती है। सेन्ट अगस्ताइन का विचार था-मेरे अतिरिक्त और ईसाई भी मानते हैं कि क्या माता के गर्भ में आने के पूर्व में विद्यमान नहीं था? वह स्वयं ही उत्तर देता है कि हाँ मैं विद्यमान था। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट ने १७ फरवरी, १८२८ को अपनी डायरी में लिखा था - जब मैं भोजन कर रहा था तो मुझे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं संसार में पहले भी आ चुका हूँ। सुप्रसिद्ध कवि शैले ने भी बादल नामक कविता में आत्मा की अमरता का घोष करते हुए लिखा था - मैं बदल तो सकता हूँ किंतु मर नहीं सकता।

जन्म और मृत्यु तो जीव का धर्म है। कोई भी प्राणी क्यों न हो, जन्मता और मरना स्वीकार करना उसकी अपनी विवशता है। इसमें चिंतन धारा अथवा धार्मिकता का प्रकार बाधक नहीं बन सकता। जब तक कर्म बंध बना रहेगा तब तर पुनर्जन्म का क्रम भी चलता रहेगा। यह किसी धर्म विशेष को स्वीकार करने से बदलने वाला नहीं है।

आत्मा और कर्मों का अटूट संबंध है जिसे जैन धर्म में एक क्षेत्रावगाह संबंध कहा जाता है। संयोग तो अस्थायी होता है। आत्मा के साथ कर्म संयोग भी अस्थायी है। इसका विघटन भी संभव है।

कर्मों के संबंध के विघटन का उपाय जैन धर्म में तप बताया गया है। तप का प्रारंभ भीतर से होता है। बाह्य तपों को जैन शास्त्रों में महत्व नहीं दिया गया। आंतरिक तप की वृद्धि के लिये जो बाह्य तप अनिवार्य हैं, वे स्वतः ही हो जाते हैं। तपों का जो अंतिम भेद ध्यान है वहीं कर्म नाश का कारण है।

यह ध्यान उन्हीं से प्राप्त होता है जिनका आत्मोपयोग शुद्ध है। शुद्धोपयोग ही मुक्ति की साक्षात् कारण है अथवा मुक्ति का स्वरूप है। आत्मा की पाप और पुण्य रूप प्रवृत्तियाँ उसे संसार की ओर खींचती हैं। जब इन प्रवृत्तियों से वह उदासीन हो जाता है तब नये कर्मों का आना रुक जाता है। इसे जैन मत में संवर कहा जाता है। संवर हो जाने पर जो पूर्व संचित कर्म हैं, वे अपना रस देकर आत्मा से अलग हो जाते हैं और नये कर्म आते नहीं, तब आत्मा की मुक्ति हो जाती है।

कर्मों के विनाश का अर्थ है - सतो नात्यन्त संक्षयः। (आप्त परीक्षा) नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति। (स्वम्भू स्तोत्र)

तप निर्जरा द्वारा जीव अनावृत होकर परमशुद्ध एवं निर्मल हो जाता है। वह अपने प्राकृत गुणों में दीप्तिमान हो जाता है। निरंतर आराधना तथा तल्लीनता द्वारा वह परमात्मपद को प्राप्त कर मोक्ष के चरम बिंदु पर स्थिर हो जाता है। मोक्ष हो जाने पर आत्मा को पुनर्जन्म अथवा जन्मांतरण नहीं व्यापता।

साहित्य संस्थान
राजस्थान विद्यापीठ
उदयपुर

* * * * *

वर्तमान संदर्भ में शाकाहार की उपादेयता

• श्रीमती किरण सिरोलिया

“जैसा खाये अन्न वैसा होय मन” ये कहावत जग प्रसिद्ध है। इसी प्रकार अंग्रेजी में भी कहावत है कि “यू आर, व्हाट यू ईट” अर्थात् आप वह है, जो खाते हैं। ये कहावतें इस तथ्य को उजागर करती हैं कि भोजन के अनुरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं उसके स्वभाव का निर्माण होता है। सरल सात्विक जीवन, क्रोधपूर्ण तामसिक प्रवृत्तियाँ, क्रूर-असहज व्यवहार, ये सब भोजन के स्वरूप एवं उसके प्रकार पर निर्भर करते हैं।

राघवेन्द्र स्वामी मठ के श्री सुजयेन्द्र तीर्थ ने कहा कि सात्विक होने के लिए सात्विक भोजन अपेक्षित है और उसके लिए निरामिष आहार आवश्यक है। निरामिष आहार का अर्थ इतना ही नहीं है कि हमें आहार से आमिष-भोजन का त्याग करे, लेकिन हमारे मन में अमैत्री का भाव हो, हमारे व्यवहार में शोषण प्रतिष्ठित हो और हमारे वचन में हर्ष और कटुता हो। जिस प्रकार एक ओर चीनी को पानी खिलाना या मछलियों को तालाब में दाना देना तथा दूसरी ओर बेहिचक मुनाफाखोरी, जमाखोरी और शोषण करना अहिंसा का परिहास है, उसी प्रकार एक तरफ निरामिष आहार का व्रत लेना तथा दूसरी तरफ प्रपंच, विश्वासघात और विषमता में लगे रहना पाखंड है।

निरामिष आहार का दर्शन है - मैत्रीभाव निरामिष आहार केवल आहार की ही एक शैली नहीं है वह जीवन की भी शैली है, जिसका आधार है कि इस पृथ्वी पर ईश्वर-कृत प्राणियों से प्रेम करे और उन्हें मन, वचन एवं कर्म द्वारा किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुंचाये, इसलिए निरामिष आहार केवल शरीर को ही नहीं बल्कि मन और हृदय को भी विशाल उदार एवं प्राजल करता है। विनोबाजी के अनुसार निरामिष आहार तो भारतीय ब्रह्म-विद्या का विश्व को श्रेष्ठ आव्हान है। भले ही इसका मूल्य अभी प्रकट नहीं हो लेकिन जैस-जैसे मानव-सभ्यता का विकास होता जाएगा इसका महत्व और भी अधिक प्रकट होता जाएगा।

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। उसके हिंसा-अहिंसा, दया-करुणा, घृणा आदि विचारों के आधार पर प्रकृति की अंतःशक्तियों का संतुलन एवं नियमन होता है। विश्व के मनीषियों ने मनुष्य के श्रेष्ठ प्राणी के रूप में जीवन यापन करने के उद्देश्य से अनेक प्रतिबन्ध एवं नियमन लागू किये हैं जो मनुष्य को हैवान बनाने से रोकते हैं और भगवान बनने के लिए प्रेरित करते हैं इस प्रक्रिया में आहार का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है।

मानवीय आहार को निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। अन्नाहार, फल एवं शाकाहार, दूध फल एवं शाकाहार, अण्डा सहित दूध-फल शाकाहार मांसाहार। इनमें अन्नाहार एवं फल शाकाहार शुद्ध शाकाहार की श्रेणी में आते हैं जबकि दुग्धाहार शाकाहार की श्रेणी में होकर भी भावनात्मक दृष्टि से अल्प तामसिक आहार में वर्गीकृत किया जा सकता है, क्योंकि दूध की उत्पत्ति शरीर से होती है। अण्डा एवं मांसाहार दोनों मांसाहार की श्रेणी में आते हैं। अण्डों को शाकाहारी कहना भ्रांतिपूर्ण दुःप्रचार है।

आज अमेरिका, इंग्लैंड, जापान, यूरोप तथा विश्व के अनेक स्थानों से समाचार मिल रहे हैं कि वहां शाकाहारियों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। बुद्धिजीवी व्यक्ति शाकाहारी जीवन-प्रणाली को अधिक प्रगतिशील और वैज्ञानिक मानने लगे हैं। संसार के महान् बुद्धिजीवी उदाहरणार्थ अरस्तू, प्लेटो, शेक्सपीयर, आइंस्टीन, जार्ज बर्नार्ड शाँ, श्रीमती एनीबेसेंट रुसो आदि सभी शाकाहारी थे किंतु भारत जो परम्परागत अहिंसा और शाकाहार का देश है वहाँ के फेशन के नाम पर लोग अण्डे एवं मांस का अपने भोजन में समावेश करने लगे हैं जबकि वैज्ञानिक अन्वेषण परीक्षण के पश्चात् यह सिद्ध हो चुका है कि मांसाहार स्वास्थ्य के लिए सर्वथा हानिकारक है और शाकाहार स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभदायक और दीर्घायु प्राप्त करने वाला है फिर हमारा कोई धर्म नहीं जिसमें मांस भक्षण को प्रधानता दी गई हो। यदि गहराई से साथ अध्ययन मनन चिंतन किया जावे तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि प्रत्येक धर्म का प्राण अहिंसा है।

मांसाहार घोर हिंसापूर्ण आहार है। इसी कारण विश्व के सभी संत, महात्मा तथा महापुरुष इसे त्याज्य बताते हैं।

मनुस्मृति में लिखा है- “मारने की सलाह देने वाला, मांस बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला ये सभी घोर पापी हैं”। गुरु नानक देव ने कहा है- “मांसाहारियों के हाथ का खाना-पीना भी घोर पाप है”। भगवान् बुद्ध ने कहा- “किसी भी प्राणी से हिंसा मत करो। शाकाहारी भोजन सर्वोत्तम है”। महात्मा गांधी ने कहा है- “हमारे लिए वही आहार सार्थक बनता है जो हममें स्वस्थ रक्त बनावे और वह है शाकाहार”।

कुरान शरीफ में कहा गया है- “जानवरों को मारना और खेती को तबाह करना जमीन में खराबी फैलाता है और अल्लाह खराबी पसंद नहीं करता”।

इस प्रकार सभी विद्वानों ने मांस त्यागने की बात कही है और जैन धर्म में तो अहिंसा को परम धर्म ही माना गया है।

आज आम लोगों की ये धारणा है कि अण्डे एवं मांस में प्रोटीन, जो शरीर के लिए एक आवश्यक तत्व है, अधिक मात्रा में पाया जाता है किंतु यह बात कितनी गलत है यह इससे साबित होगा कि सरकारी आंकड़ों के अनुसार ही, १०० ग्राम अण्डों में जहां १३ ग्राम प्रोटीन होगा, वहीं पनीर में २४ ग्राम, तो मूंगफली में ३१ ग्राम, दूध से बने कई पदार्थों में तो इससे भी अधिक प्रोटीन होता है। यदि हम कैलोरी की बात करें तो जहां १०० अण्डों में १६० कैलोरियां, मुर्गे के गोشت से १९४ कैलोरियां प्राप्त होती हैं, वही दालों में उसी मात्रा से ३३० कैलोरियां, मूंगफली से ४५० कैलोरियां और मखखन-निकले दूध एवं पनीर से ३४८ कैलोरियां प्राप्त होती हैं। हमारे विद्वान् डाक्टरों का मानना है कि अण्डे में अधिक प्रोटीन तो नहीं, अधिक विष अवश्य होता है। क्योंकि १८ मास परीक्षण के पश्चात् अण्डों में ३० प्रतिशत डी.डी.टी. विष पाया गया है और एक अण्डे में लगभग ४ ग्रेन कोलेस्टेरास की मात्रा पाई जाती है। इतनी अधिक मात्रा के कारण अण्डे दिल की बीमारी, हाई ब्लड प्रेशर, गुर्दे का रोग आदि पैदा कर देते हैं। चिकित्सा विशेषज्ञों की राय है कि शाकाहारी भोजन में कैंसर रोकने वाले तत्व होते हैं। आंतों और स्तनों का कैंसर अधिकतर मांसाहारी लोगों को होता है। शाकाहारी का स्वभाव उग्र नहीं बनता, इसके विपरीत मांसाहारी जल्दी ही उत्तेजित हो जाता है। हृदय रोगों की आशंका भी मांसाहारी व्यक्तियों में अधिक देखी गई है। शाकाहारी भोजन मनुष्य को दीर्घायु बनाता है।

इसके अलावा जानवरों के भी कुछ उदाहरण देकर हम इस बात को साबित कर सकते हैं कि शाकाहारी भोजन स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। जैसे गैंडा, हाथी, घोड़ा, ऊंट आदि ताकतवर जानवर हैं इनका मुख्य कारण यह है कि ये शुद्ध शाकाहारी हैं। इस प्रकार शाकाहारी भोजन स्वास्थ्यप्रद एवं पोषण प्रदान करने वाला है।

फूड एंड न्यूट्रीशन बोर्ड की राष्ट्रीय शोध परिषद ने यह सिद्ध किया है कि मांसाहार करने वाले व्यक्तियों को निरामिष व्यक्तियों की तुलना में ६ गुना अधिक भूमि चाहिए। मांसाहार के लिए पशुओं को चारा खिलाने के लिए कम से कम ३०,००,००,००० एकड़ जमीन पर कोई अच्छी पैदावार नहीं होती। आज भी अन्न उपजाकर ही हमें अपना खाद्य संकट दूर कर पाये हैं न कि मांसाहार से। अनेक शोधों से यह प्रमाणित हो चुका है कि कृषि फल-फूल आदि के संवर्धन से ही देश की खाद्य समस्या को हल कर सकते हैं। अतः निरामिष भोजन तो हमारी सामाजिक-आर्थिक अनिवार्यता है।

स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से भी देखा जाय तो हमारे शरीर की बनावट मांसाहार के उपयुक्त नहीं है। सुलभ पाचन की दृष्टि से निरामिष आहार उपयोगी है।

विश्व में आज सबसे बड़ी समस्या है विश्व शांति की ओर बढ़ती हिंसा को रोकने की। वर्तमान में हिंसा और आतंकवाद के काले बादल मंडरा रहे हैं। उन्हें रोका जा सकता है तो केवल मनुष्य के स्वभाव को अहिंसा और शाकाहार की ओर प्रवृत्ति करने से। निरामिष आहार शांति के जीवन दर्शन पर आधारित है। पश्चिमी जगत मांसाहार को त्यागकर शाकाहार को अपना रहा है। आइये हम भी शाकाहार को अपने जीवन का अंग बनाकर प्रकृति के अन्य निरीह प्राणियों के प्रति दया करने का संकल्प लें तथा विश्वशांति के अपने स्वप्न को साकार करें।

१०३ इंदिरा गांधी
नगर केसर बाग रोड़,
आर.टी.ओ. कार्यालय के पास
इंदौर (म.प्र.),

* * * * *

जैन धर्म में तप

• सौ. सुनीला नाहर

जैन संस्कृति तप प्रधान संस्कृति है। जीवन को जीवंत एवं आत्मा को तेजोमय बनाने में तप का महत्वपूर्ण स्थान है।

‘तवस्सा कम्मं खवई’

तप के माध्यम से अनंत संचित कर्म क्षणमात्र में नष्ट हो सकते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में नमि महर्षि ने ब्राह्मण के रूप में परिक्षार्थ आये इंद्र से कहा-

तव नाराय जुतेण, भित्तूणं कम्म-कंचुयं

तप के लोहबाण से कर्म रूपी कवच को चीरकर साधक वास्तविक विजय प्राप्त कर संसार-सागर से पार उस दिव्यलोक में पहुंच जाता है जहां आधि, व्याधि एवं उपाधि का नाम भी नहीं है। जहां सदा शाश्वत, अखंड, अविभाज्य, अलौकिक आनंद की उपलब्धि होती है। तारक प्रभु महावीर ने कहा-

एवंतु संजयस्सावि, पावकम्मं निरासवे

भव कोडि संचियं कम्मं, तवस्सा निज्जरिज्जई!!

उत्त. ३०/६

साधक साधना के क्षेत्र में बढ़ते हुए कदमों से तप द्वारा पाप कर्मों को रोक देता है तथा जो करोड़ों जन्मों के संचित कर्म व कुसंस्कार हैं उन्हें तपश्चर्या के द्वारा नष्ट कर देता है।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा, संयम, तप यही धर्म है आत्मशुद्धि और कर्मनाश के लिए तप एक अमोघ साधन है। तप से अनेक लौकिक सिद्धियां भी प्राप्त होती हैं एक कवि ने कहा है।

कांतारं नं यथेतरो ज्वलयितुं, दक्षोदवाग्निं बिना। दावाग्निं न यथेतरो शमयितुं, शक्तो विनाम्भोधरम् निष्णातं पवनं बिना निर सितुं, नान्यो यथाज्भोधरम् कर्मोऽथ तपसा बिना किमंपर हर्तुं समर्थो तथा

वन को जलाने में दावाग्नि के सिवा कोई अन्य समर्थ नहीं है उस दावाग्नि को मेघ बुझा देता है उस मेघ को भी वायु उड़ा देता है। इसी प्रकार तप कर्ममल को जलाता है और विषय, कषायाग्नि का शमन करता है, वायु के समान उड़ा देता है। भाव यह है कि तप से कर्ममल समूल रूप से नष्ट हो जाता है।

‘तपसा परिसुज्झई’ तप से पूर्व संचित कर्मों का क्षय होकर आत्मा की शुद्धि होती है। तप से आत्मा के कर्मों की निर्जरा होती है। तप के लिए समय ऋतु आदि का बंधन नहीं क्योंकि तप आत्मा को आनंदित करने का हेतु है। तप तो गंगा की पवित्रतम धारा की भांति है जो सागर (मोक्ष) में मिलकर ही अपने अस्तित्व की सफलता स्वीकार करती है।

तप में एक ऐसी शक्ति है कि वह पाप से दबी आत्मा को हल्का करने की प्रक्रिया है जिस प्रकार कुंदन के प्रयोग से सोना निखरता जाता है, वह मूल रूप में आता है। उसी प्रकार अहर्निश तप का जीवन में स्वाभाविक रूप से उतर जाने के बाद वह क्षण दूर नहीं रह जाता, जब हम अपने जीवन के वर्तमान क्षण में ही चरमानंद स्थिति से सरोबार होते हुए मुक्ति के क्षणों का दर्शन कर सकें।

तप जैसा छोटा सा शब्द अपने आप में व जीवन में उतरने हेतु इतना गंभीर व रहस्यात्मक है कि जैसे अग्नि कूड़ा कर्कट के ढेर को जलाकर वह जगह स्वच्छ करने में समर्थ हो जाती है। ठीक वैसे ही चंचल मन से आच्छादित अनादिकाल के क्रियाकलापों से पाप में दबी यह आत्मा को उसके सही अस्तित्व में प्रस्तुत कर उसके प्रकाश से चारों ओर प्रकाश्य विकीर्ण करने में समर्थ हो जाती है।

तप एक ऐसी अग्नि है जो भीतर एकत्र हुए अवांछित तत्वों को जला डालती है। परिणामतः चेतना का ऊर्ध्वरोहण होना संभावित होता है और साधक अपने जीवन में शांतिमय आनंदानुभूति में समाहित होता है। भ. महावीर का तप की ओर यही संकेत था कि अपनी जीवनीशक्ति ऊर्जा बाहर प्रवाहित न होकर अंदर ठहर जाय। अतः चेतना का अंतर्मुखी प्रवाह ही तप है।

तप एक ऐसा सरल नियम है जिसके सहारे हम अपनी इंद्रियों को वश में करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इंद्रिया वश में होने से मन बहिर्मुखी बनने के बजाय अंतर्मुखी बनता है। उसकी दृष्टि शनैः शनैः इतनी निर्मल होती जाती है कि आत्मा को निर्मल बनाने में अप्रसर हो जाता है।

तप का उद्देश्य है इंद्रियों की उत्तेजना पर विजय प्राप्त करना, निद्रा विजयी होना और स्वाध्याय ध्यान में निराबाध प्रवृत्त रहना। आचार्य कुंदकुंद ने यहां तक लिखा है कि “वह जैन शासन को नहीं जान सकता जो आहार विजयी, निद्राविजयी, और आसन विजयी नहीं है”। प्रमाद, विपर्यय, विकल्प निद्रा और स्मृति ये पांच वृत्तियों के कारण चित्त शुद्ध नहीं रहता और अशुद्ध चित्त में परमात्मा का अवतरण नहीं होता। अतः सफलता के चरण चूमने तप की शरण में जाना नितांत आवश्यक है। जिस प्रकार घनघोर काली घटा को वायु का तीव्र झोंका बिखेर देता है उसी प्रकार तप कर्म रूपी बादल को छिन्न भिन्न कर देता है। भ. महावीर ने कहा है।

सउणी जह पंसुगुंडिया, विहुणिय धंसयई सियं रयं।
एवं दवि ओवहाणवं कम्मं खवइ तवस्सि माहणे!!

सू.कृ. १/२/१/१५

“जिस प्रकार शकुनी पक्षी अपने पैरों को फड़फड़ा कर अपने ऊपर लगी धूल झाड़ देता है, उसी प्रकार तपस्या द्वारा मुमुक्षु अपने आत्मप्रदेशों पर लगी हुई कर्म-रज को दूर कर देता है। “तप के माध्यम से आत्मा पापों से मुक्त होती है। आत्मा पर चढ़े कर्म आवरण दूर होते हैं। तप के द्वारा कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं लेकिन तप इहलोक या श्लाघा, प्रशंसा निमित्त नहीं करना चाहिए केवल तप कर्म निर्जरा हेतु करना चाहिए।

तप को भ.महावीर ने २ भागों में विभक्त किया बाह्य-तप व आंतरिक तप। ये भेद केवल औपचारिक है। स्थूल व सूक्ष्म शरीर की भांति ये भी संयुक्त है। बाह्य तप के प्रकार में अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रस-परित्याग, कायाक्लेश, प्रतिसंतीनता तथा आंतरिक प्रकार में प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान। ध्यानाध्ययन में आचार्य जिनभद्रगणि कहते हैं= “मोक्ष के दो मार्ग हैं- संवर और निर्जरा। उनका मार्ग है तप और तप का प्रधान अंग है-ध्यान। इसलिए मोक्ष का मुख्य साधन ध्यान है।

जैन दर्शन अनुसार मोक्ष के दो हेतु हैं एक संवर और दूसरा निर्जरा। संचित कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना ‘निर्जरा’ है ‘संवर’ से यद्यपि नवीन कर्मों का आना रुक जाता है तथापि पुरातन कर्म तो आत्मा में संचित ही रहते हैं उनको ही दूर करने के लिए आत्मा को विशेष प्रयास करने की आवश्यकता होती है क्योंकि वे एक साथ आत्मा के विलग नहीं हो जाते, अपितु क्रम २ से दूर होते हैं। ‘नेमिचंद्रिका’ में कवि ने सफल निर्जरा की प्राप्ति के लिए आत्मध्यान अर्थात् तपश्चर्या को अनिवार्य माना है। तप द्वारा कर्म श्रृंखला छिन्न भिन्न होती है और जीव मुक्तता की ओर बढ़ता है। सारांश में तप हमें चरमबिंदु तक पहुंचाने की सफल सीढ़ी है।

* * * * *

चितक कण

- प्रेम का क्षेत्र संकुचित नहीं बल्कि आकाश की तरह विशाल व व्यापक है।
- प्रेम किसी वाटिका या कारखाने में उत्पन्न नहीं होता; वह तो हृदय का उदगार है।
- प्रेम की सरिता में बहकर ही जन-जन को प्रेम का संदेश देना कारगर होता है।
- प्रेम वाटिका में अनेकों पुष्प खिले हुए हैं, उस वाटिका में स्वयं जाकर ही उस पुष्प रूपी प्रेम सौरभ से हम जीवन को महका सकते हैं।

• परम विदुषी महासती चम्पाकुंवर जी म.सा

कुचेरा और जैन धर्म।

• श्री जतनराज मेहता, मेड़ता।

कुचेरा धर्मप्रिय व वैभव सम्पन्न श्रेष्ठ वर्ग की नगरी रही है। यह नगरी मड़ता-बीकानेर मार्ग पर स्थित है और नागौर जिले में है।

मरुधरा के परम प्रतापी आचार्य श्री मूधरजी म. के यशस्वी शष्यरत्न आचार्य श्री जयमलजी म.सा, की परम्परा के सरल हृदय संत स्वामी जी श्री हजारीमलजी म., स्वामी श्री बृजलालजी म. एवं विद्वद्वर्य युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म. 'मधुकर' आदि मुनियों का वरद हस्त इस नगरी पर रहा है।

अपने जीवन काल में मुनि श्री हजारीमलजी म.सा. ने चौदह चातुर्मास यहां किये जिससे पता चलता है कि कुचेरा पर स्वाजी की असीम कृपा थी।

स्वामी जी के स्वर्गवास के पश्चात आप ही के लघु गुरु भ्राता श्री बृजलाल जी म.सा. ने भी दो चातुर्मास किये, इस प्रकार परम्परा के सोलह चातुर्मास कुचेरा में हुए।

इसी नगरी में वि.सं. २०११ में स्वामी श्री हजारीमल जी म. सा. के साथ उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. का संयुक्त ऐतिहासिक चातुर्मास हुआ।

वि.सं. २०१३ में विख्यात संत कवि श्री अमरचंद जी म.सा. का चातुर्मास हुआ।

पू. श्री जवाहरलाल जी म. सा., उपाध्याय श्री प्यारचंदजी म.सा. महासती श्री सुमति कुंवर जी म.सा. आदि भी यहां पधारे। महासती श्री रतन कुंवर जी म. महासती श्री वल्लभ कुंवर जी म.का. वि.स. २०१० में चातुर्मास हुआ। स्वामी श्री हजारीमल जी म. की आज्ञानुवर्तिनी कश्मीर प्रचारिका, अध्यात्म योगिनी महासती श्री उमराव कुंवर जी म.सा. का भी यहां अनेक बार पदार्पण हुआ।

इस प्रकार इस नगरी पर अनेक मनीषी सन्तों का वरदहस्त रहा।

लगभग एक शताब्दी पूर्व आचार्य श्री जयमल जी म. सा. की परम्परा के सन्त-सतियों का एक विशाल सम्मलेन भी इसी धरती पर हुआ, जिसमें पूज्य श्री भीकमचंद जी म. सा. के सुशिष्य पूज्य श्री कानमल जी स्वामी को आचार्य पद से विभूषित था। इसी समय स्वामीजी श्री नथमल जी म. अपने समय के धुरंधर विद्वान संत हुए। आप व्याख्यान वाचस्पति के रूप में विख्यात थे। आपके ही श्री चरणों में आशुकि श्रताचार्य श्री चौथमल जी म. की दिक्षा हुई। आप भी कुचेरा के निकटवर्ती ग्राम पीरोजपुरा के थे। आपके भी छः चातुर्मास कुचेरा में हुए। इस क्षेत्र पर आपकी असीम कृपा रही।

आपके पास ही श्री धनराज जी म. की दीक्षा भी कुचेरा में हुई। आप जीवन पर्यन्त स्वामी श्री चौथमल जी म. सा. के साथ रहे। आपका जन्म स्थान भी कुचेरा ही था। आप भण्डारी कुलोत्पन्न थे।

इस अंचल के प्रसिद्ध संत स्वामी जी श्री रावतमल जी म. कई वर्षों तक कुचेरा में स्थिरवास विराजे। आप श्री विराजने से इस नगरी में धर्म भावना का और भी विकास हुआ व जन-मानस में धर्म के प्रति श्रद्धा भाव का अद्भुत अंकुरण हुआ, आज भी श्रद्धाशील श्रावकों के हृदय घट में विराजमान हैं।

मुनि श्री रावतमल जी म.सा. इसी क्षेत्र के रड़ौद ग्राम के थे। वे रावत बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं के शिष्यों श्री भैरव मुनि जी भी यहां वर्षों तक रहे। आपका देहावसान कुचेरा में ही वि.सं. २०२७ में गुरुश्री रावतमल जी म.सा. के श्री चरणों में हुआ।

वि.सं. २०२९ में ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को १३ वर्ष की लघुवय में श्री नूतन मुनिजी म.सा. की दीक्षा स्वामी श्री रावतमल जी म.सा. के श्री चरणों में कुचेरा में सम्पन्न हुई।

वि.सं. २०३० में कुचेरा में ही स्वामी श्री रावतमलजी म.सा. का स्वर्गवास हुआ। आपकी स्मृति में कुचेरा निवासियों ने रावत स्मृति भवन बनवाया है।

जयगच्छ परम्परा की एक शाखा के आचार्य प्रवर श्री जीतमल जी म. विख्यात संत रहे हैं। आपका जन्म कुचेरा के समीपवर्ती ग्राम लूणसरा में हुआ। आपके कई चातुर्मास कुचेरा में हुए।

स्मरणीय है कि कुचेरा प्रारंभ से ही आचार्य श्री जयमलजी म.सा. की परम्परा का क्षेत्र रहा है। आज भी इस क्षेत्र पर युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.सा. व आचार्य श्री जीतमलजी म.सा. का ही वर्चस्व है। स्मरणीय है कि युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी म.सा. 'मधुकर' के शिष्य श्री विनय मुनिजी म. भी कुचेरा के निकटवर्ती ग्राम गाजू के हैं।

पू. श्री जवाहरलाल जी म.सा. के पास कुचेरा के ही श्री हनवंतचंद जी भण्डारी की भी दीक्षा कुचेरा में ही हुई श्री व बाबाजी श्री पूरणमल जी म.सा. के पास भी एक वैरागी की दीक्षा कुचेरा में हुई।

इस प्रकार कुचेरा ने अनेक संत रत्नों को श्री जिन शासन की सेवामें अर्पित कर शासन की धवल कीर्ति को बढ़ाने में अपना अनुपम योगदान दिया।

इसी प्रकार अनेक महासतिथां जी म. का जन्म, दीक्षा व स्वर्गवास भी इस पुनीत स्थान पर हुआ।

प्रस्तुत ग्रंथ की अभिवन्दनीया महासती श्री कान कुंवर जी म.सा. भी कुचेरा के ही थे। आपकी दीक्षा वि.सं. १९८९ में महासती श्री जमनाजी म. के श्री चरणों में हुई। आपने अपना सांसारिक मकान समाज को देकर संयम मार्ग स्वीकार किया, उत्तम संयम पथिका बनकर अनेक वर्षों तक मरुधरा के ग्राम-नगरों में विचरण करने के पश्चात, म.प्र. महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश आदि में विचरण करते हुए तामिलनाडु में पधारे और साहुकार सेठ, मद्रास में अस्वस्थता के कारण अंतिम समय तक रहे।

आपके पास ही महासती श्री चम्पाकुंवर जी म.सा. की दीक्षा कुचेरा में ही वि. सं. २००५ में हुई। आपने ज्ञान ध्यान की अराधना करते हुए अपने संयम-जीवन को दीपाया। व्याख्यान प्रस्तुति की इनकी अपनी शैली थी। व्याख्यान की छटा उत्तम रहती थी। अनुशासन का अपना ढंग था। महासती श्री कानकुंवर जी म. के साथ ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मद्रास में एकाएक स्वर्गवास हो गया।

आपके छोटे महासती श्री बसन्त कुंवर जी भी कुचेरा के ही हैं। आपकी दीक्षा वि.सं. २०३४ में कुचेरा में हुई। महासती श्री कानकुंवरजी एवं महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. के स्वर्गवास के पश्चात वर्तमान में सिंघाड़े की बागडोर आप ही सम्हाले हुए हैं।

महासती श्री कंचन कुंवर जी भी कुचेरा के हैं। आप इस सिंघाड़े के देदीप्यमान साध्वी रत्न हैं। आपने संयम मार्ग पर दृढ़ता से चलकर एक आदर्श उपस्थित किया है। श्री चम्पाकुंवर जी के बाद इस सिंघाड़े में इनकी व्याख्यान शैली मधुर है।

महासती श्री कानकुंवर जी म. ने अपना जो मकान संघ को समर्पित किया था, आज वह “काना जी के स्थानक” के नाम से कुचेरा के मध्य गर्व से स्थित है। इसके पुनर्निर्माण का श्रेय पद्मश्री सेठ श्री मोहनमल जी चोरडिया की धर्मपत्नी श्रीमती नैनी कंवरबाई हैं।

महासती श्री कानकुंवर जी म.सा. के सुदूर दक्षिण प्रदेश में चले जाने पर महासती श्री झणकार कुंवर जी म.सा. का वरदहस्त इस क्षेत्र को मिला। महासती श्री झणकार कुंवर जी म. आत्मार्थी, सरलहृदया, संयम के प्रति समर्पित सती थी। आपके विचरण से इस धरती पर पुनः नव चेतना उभरी व वि.सं. २०३२ की विजयादशमी के दिन कुचेरा में ही श्री आशा जी व श्री चंचल जी दोनों बहनों की दीक्षा आपके श्री चरणों में हुई। इससे पूर्व श्री जयमाला जी जो इन दोनों बहनों की बड़ी बहन हैं। आसोप में दीक्षा हो चुकी थी व कालान्तर में आपकी सबसे छोटी बहन श्री चन्द्रप्रभाजी सोजत में श्री मरुधर केसरी जी म. के सान्निध्य में दीक्षित हुई। इस प्रकार संसार पथ की इन चार बहनों में गुरुवर्षा श्री झणकार कुंवर जी म. की अन्तेवासिनी शिष्या बनकर एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

महासती श्री झणकार कुंवर जी म. की संयम ज्योत्सना में अभिमुख हो कुचेरा के ही आबड़ परिवार से श्री मनीषा जी ने वि.सं. २०४३ में प्रव्रज्या ग्रहण की व आपकी ही सुपुत्री श्री सविता जी ने भी मां के चरणारविदों का अनुसरण करते हुए वि.सं. २०४६ में कुचेरा में ही संयम स्वीकार किया। इस प्रकार दोनों ने आदर्श मां और आदर्श बेटी का उदाहरण प्रस्तुत किया।

महासती श्री झणकार कुंवर जी म. ने कुचेरा में ही-वि.सं. २०४५ दि. १८-११-१९८८ को अपनी नश्वर देह का त्याग किया।

युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म. के सांसारिक पथ के माता जी महासती श्री तुलछां जी म. कई वर्षों तक ठाणापति रहने के पश्चात कुचेरा में ही वि.सं. २०१३-१४ के आसपास स्वर्ग सिंधारे। आपकी दीक्षा युवाचार्य श्री के साथ ही भिनाय में हुई थी। महासती श्री जमना जी का स्वर्गवास भी कुचेरा में ही हुआ।

श्री प्रेमराज जी बोहरा की बहन श्री हुलसां जी की दीक्षा भी हुई। इसी नगरी में वि.सं. २००६ में महासती श्री सोहन कुंवर जी म.सा. की दीक्षा महासती श्री वगतावर कुंवरनी म. के चरण कमलों में हुई।

आगे चलकर वि.सं. २०४८ में श्री मणिप्रभाजी की दीक्षा भी आपके श्री चरणों में कुचेरा में ही हुई।

वि.सं. २०२७ में महासती श्री नन्दाजी के पास संतोष कुंवर जी म. की दीक्षा भी इसी धरती पर सम्पन्न हुई।

महासती श्री उमराव कुंवर जी म.सा. अर्चना की सुशिष्या श्री प्रतिभा जी (पुष्पाजी) भी कुचेरा के हैं। आपकी दीक्षा जोधपुर महामंदिर में श्री अमरचंद सा. छाजेड़ पादु निवासी ने दिलवाई।

इस प्रकार अनेक मुनिराजों एवं महासतियों का जन्म दीक्षा व स्वर्गवास इस पावन धरती पर हुआ। इतिहास के पृष्ठों को उलटते हुए जब यह जानकारी मिलती है तो गौरव का अनुभव होना स्वाभाविक है। यह बहुत सम्भव है कि ऊपर वर्णित संत-सतियों के अतिरिक्त और भी भव्य आत्माओं का सम्बन्ध कुचेरा से किसी न किसी रूप में रहा होगा। किन्तु जानकारी के अभाव में उनका उल्लेख नहीं किया जा सका। इस सम्बन्ध में और आगे अनुसंधान की आवश्यकता है।

इस प्रकार अनेक संयमात्माओं की प्रव्रज्या स्थली होने के साथ साथ इस धरती ने अनेक श्रावक रत्न भी दिये। जिनमें प्रमुख उल्लेखनीय नाम है-पद्मश्री सेठ श्री मोहनमल जी सा. चोरडिया, श्री प्रेमराज जी सा. बोहरा श्री जबरचंदजी गेलड़ा आदि। इनमें समाज सेवी और चिंतक दोनों प्रकार के समाज रत्न हैं।

वर्तमान समय में भी अनेक श्रीमंतों से यह धरती सुशोभित है। प्रसिद्ध समाज सेवी श्री बलदेवराज जी मिर्धा भी इसी नगरी के हैं। आपने इस समूचे क्षेत्र में जाट जाति के उत्थान का शंख बजाया। आपके ही परिवार में श्री राम निवास मिर्धा व श्री नाथूराम मिर्धा केन्द्रीय मंत्री के रूप में अपनी सेवायें दे चुके हैं।

यहां एक जोरावर जैन प्राचीन ग्रंथों का भण्डार भी है। यह भण्डार मुनि श्री जोरावर मल जैन पुस्तकालय के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें संतों द्वारा लिखित प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ व अनेक मुद्रित ग्रंथ संग्रहीत हैं।

यहां एक धार्मिक छात्रावास भी है, जो श्री गुलाबचंद जवरीमल सुराणा के नाम से वर्षों से जैन समाज की सेवा कर रहा है। अनेक वर्षों तक श्री जसवंत राज जी खींवसरा ने यहां के छात्रावास में रहकर संत-सतियों को पढ़ाने की सेवा की।

यहां, श्री जिनेश्वर जैन औषधालय, श्री इन्द्रचंदजी गेलड़ा, द्वारा स्थापित किया गया था जो आज भी जनता की सेवा कर रहा है।

श्री संतों द्वारा स्कूल, अस्पताल आदि के अनेक भवनों का निर्माण करवाने के साथ ही अनेक जनहित के कार्य किये गए हैं।

यहां प्रस्तुत लेख में कुचेरा में स्थानकवासी जैन परम्परा की दृष्टि से कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। यदि इस सम्बन्ध में विस्तृत रूप से शोध परक लेखन किया जावे तो और भी बहुमूल्य जानकारी उपलब्ध हो सकती है। विश्वास है कि जिज्ञासु बंधु इस दिशा में अवश्य ही विचार कर इस कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयास करेंगे।

* * * * *

महासतीं द्वय (अध्यात्म योगिनी महासती श्री कानकुंवर जी म. सा. एवं परम विदुषी महासती श्री चम्पाकुंवर जी म. सा.) स्मृति ग्रंथ के प्रकाशन में श्रद्धा व उदारतापूर्वक अर्थ सहयोग प्रदान करने वाले सम्माननीय सहयोगी महानुभावों की शुभ नामावली

प्रमुख स्तम्भ

■ श्रीमान् मूलचंद जी चोरडिया	कटंगी (म.प्र.)
■ श्रीमान् पन्नालाल जी बोधरा	चांगुटोला (म.प्र.)
■ श्रीमान् जवरीलाल जी कटारिया	मद्रास (तमिलनाडु)
■ श्रीमान् रीखबचंद जी गौतम चंदजी लोढ़ा	मद्रास (तमिलनाडु)
■ श्रीमान् कस्तूर चंद जी सुराणा	कटंगी (म.प्र.)
■ श्रीमान् गौतम चंद जी सुराणा	मद्रास (तमिलनाडु)

स्तम्भ

■ श्रीमान् भंवरलाल जी प्रवीण कुमार जी श्री श्रीमाल	दुर्ग (म. प्र.)
■ श्री गुप्त	—
■ श्रीमान् जुगराज जी डूंगरमल जी बाफना	बेंगलौर (कर्नाटक)
■ श्रीमान् लाभचन्दजी बुधमल जी भंडारी	मद्रास (तमिलनाडु)
■ श्रीमान् किशनलाल जी बेताला	मद्रास (तमिलनाडु)
■ श्रीमान् भंवरलाल जी नीलम चंद जी सुराणा	मद्रास , ,
■ श्रीमान् अन्नराज जी पृथ्वीराज जी चोरडिया	मद्रास , ,
■ श्रीमान् जबरचन्द जी बादल चंदजी बागमार	मद्रास , ,
■ श्रीमान् मूलचंद जी सुमेरमल जी सुराणा	मद्रास , ,
■ श्रीमान् हेमराज जी तेजराज जी सुराणा	मद्रास , ,
■ श्री गुप्त	—
■ श्रीमती चंचल बाई बोकडिया	मद्रास , ,
■ श्रीमान् उदयरज जी अमृतलाल जी	
गौतमचंद जी सुराणा	मद्रास , ,
■ श्रीमान् नेमीचंद जी महावीरचंद जी मेहता	मद्रास , ,

■ श्रीमान् पारसमल जी संजय कुमार जी गोठी	मद्रास	, ,
■ श्रीमान् चन्दनमल जी चोरडिया/चितादरी पेठ	, ,	
■ श्रीमान् पुखराज जी विजयकुमार जी चोरडिया	मद्रास	, ,
■ श्रीमान् दुलीचंद जी लोढ़ा	मद्रास	, ,
■ श्रीमान् लूणकरण जी लोढ़ा	मद्रास	, ,
■ श्रीमान् भीकमचंद जी पगारिया	बालाघाट	(म. प्र.)
■ श्रीमती भंवरी बाई चोरडिया	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् मांगीलाल जी कोठारी	आलन्दूर	, ,

सदस्य

■ श्रीमान् मोहनलाल जी मदनलाल जी श्री श्रीमाल	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्री गुप्त	—	
■ श्रीमान् गौतमचंद जी कमलचंद जी पारख	बेंगलूर	(कर्नाटक)
■ श्रीमान् जसराज जी रमेश कुमार जी पारख	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमान् मांगीलाल जी पारसमल जी संचेती	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमान् सुगनचन्द जी संजय कुमार जी संचेती	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमान् घीसुलाल जी लालचन्द जी पारख	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमान् प्रकाशचन्द जी अशोक कुमार जी श्री श्रीमाल	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमान् मूलचन्द जी तनसुखचन्द जी बोहरा	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमती सुन्दर बाई संचेती	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमान् उगमचंद जी निर्मल कुमार जी मेहता	दुर्ग	(म. प्र.)
■ श्रीमान् अनोपचन्द जी मोतीलाल जी मनोज पारख	भखारा	(म. प्र.)
■ श्रीमान् सुगनचन्द जी शिवकुमार जी संचेती	राजनाँदगाँव	(म. प्र.)
■ श्रीमान् पुखराज जी मेहता	—	
■ श्रीमान् संतोषचन्द जी छाजेड़	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् सरदारमल जी पन्नालाल जी चोपड़ा	चारामा	(म. प्र.)
■ श्रीमान् कालूराम जी गौतमचंद जी बैताला	सेदापेठ	(तमिलनाडु)
■ श्रीमती दीपी बाई विमलचन्द जी मोदी	जगदलपुर	(म. प्र.)

■ श्रीमान् प्रेमराज जी जतनराज जी मेहता	मेड़ता सिटी	(राज)
■ श्रीमान् छगनलाल जी बोहरा	देवकर	(म. प्र.)
■ श्रीमान् सोहनलाल जी ललित कुमार जी बोहरा	बोलराम	(आं. प्र.)
■ श्रीमान् जबरचंद जी बोकड़िया	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमती बरजी बाई सिंघवी	मद्रास	, ,
■ श्रीमान् बस्तीमल जी खारीवाल	मद्रास	, ,
■ श्रीमती अनोप बाई बैताला	मद्रास	, ,
■ श्रीमान् रीखबचन्द जी दीपक कुमार बोहरा	मद्रास	, ,
■ श्रीमान् दौलतचन्द जी सुराणा	नागौर	(राज.)
■ श्रीमान् भवंरलाल जी सुभाष कुमार बागमार	कुचेरा	(राज.)
■ श्रीमान् जी पारसमल जी सिंघवी	चंगलपेठ	
■ श्रीमान् जी शांतिलाल जी प्रकाशचन्द्र जी खीबसरा	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमती रतनबाई सुमरेमल जी बेद	मैलापुर	
■ श्रीमान् मोहनलाल जी पुगलिया	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् नारायणदास जी लोढ़ा	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् सुगनचन्द जी पदमचंद जी छाजेड़	सैदापेट	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् प्रसन्नचंद जी पदमचन्द जी बोहरा	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् डूंगरमल जी ललित कुमार जी बैताला	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् रीधकरण जी धनमल जी भूरट		
■ श्रीमान् गौतमचंद जी अशोक जी बैताला	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् भरचन्द्र जी छल्लानी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् बालचन्द्र जी सुरेश कुमार जी बैद	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमती सम्पत बाई सुराणा	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् पुखराज जी ललवानी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् बक्सुलाल जी बैताला	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् जोगीलाल जी शांतिलाल जी कोठारी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् शांतिलाल जी चोरडिया	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् हुक्मीचंद जी खीबसरा	मद्रास	(तमिलनाडु)

■ श्रीमान् मेधराज जी छाजेड़	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् सुखलाल जी किशनलाल जी मल्लेचा	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् देवराज जी कोठारी	आलन्दूर	
■ श्रीमान् विमलचन्द्र जी चेतन कुमार जी कोठारी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् नथमल जी छाजेड़	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् नेमीचन्द्र जी विजयराज जी कोठारी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् लालचन्द्र जी किशनचन्द्र जी कोठारी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् पुखराज जी सज्जनराज जी कोठारी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् रूपचंद जी विमलचन्द्र नाहर	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् इन्द्रचन्द्र जी राजेन्द्र कुमार जी बाफना	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमती उगमा बाई बागमार	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् जुगराज जी रवीन्द्र कुमार जी कोठारी	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् किशोरकुमार जी सुनीलकुमार जी जैन	मद्रास	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् नरपतसिंह जी चोरडिया	चितादरी पेठ	
■ श्री गुप्त	—	
■ श्रीमान् भागचन्द्र जी बोथरा	बालाघाट	(म. प्र.)
■ श्रीमान् चम्पालाल जी सुभाषकुमार सुराणा	सोलापुर	(तमिलनाडु)
■ श्रीमान् मोहनलाल जी चोरडिया	मैलापुर	
■ श्रीमान् फूलचन्द्र जी चोरडिया	चितादरी पेठ	

